# हिन्दी भक्ति-काव्य में शृंगार रस

(सं० १३७५ वि० से सं० १७०० वि०)

प्रयाग विश्वविद्यालय की डी० फिल० उपाधि

के लिए

प्रस्तुत प्रबंध

१९६१

हिन्दी भक्ति काव्य में शृंगार रस

( सं० १३७५ वि० से सं० १७०० वि० )

## विषय - सूची

### उपक्रम

विषय विचार, २ विषय का आकर्षण, ३ विषय की व्यापकता, ४ अन्य विषयों से संबद्धता, ५ कठिनाइयाँ, ६ हस्त-लिखित ग्रंथ, ७ विषय की सीमा और रूप, ८ दृष्टि कोण की नवीनता, ९ निवेदन । १० कृतज्ञता- ज्ञापन, ११ क्षमा- प्रार्थना ।

### प्रथम अध्याय

### धर्म में शृंगार की परंपरा

#### (क) ऐतिहासिक विवेचन

धर्म और शृंगार का साहचर्य, २ अध्ययन में सतर्कता की आवश्यकता, ३ आदिम मानव के धर्म में शृंगार- भावना, ४ भारतीय आदिम जातियों के धर्म में शृंगार, ५ वैदिक धर्म में शृंगार, ६ उप-निषद् ग्रन्थों में शृंगार, ७ रामायण और महाभारत में शृंगार, ८ बौद्ध धर्म में शृंगार, ९ तंत्र में शृंगार, १० शैव संप्रदाय में शृंगार, ११ उत्तर बौद्ध धर्म में शृंगार, १२ वैष्णव धर्म में शृंगार, १३ विदेशी धर्मों में शृंगार, १४ धर्म के अन्य क्षेत्रों में शृंगार-शिल्प में शृंगार-मंदिर, १५ देवदासी, १६ अर्चाविधि, १७ अनुभूतियाँ ।

हिन्दी भक्ति काव्य में शृंगार रस

( सं० १३७५ वि० से सं० १७०० वि० )

## विषय - सूची

### उपक्रम



### प्रथम अध्याय

### धर्म में शृंगार की परंपरा

#### (क) ऐतिहासिक विवेचन



#### (ख) व्याख्यात्मक विवेचन

चतुर्थ अध्याय

हिन्दी भक्ति- काव्य में प्राप्त प्रेम का स्वरूप

पंचम अध्याय

## हिन्दी भक्ति- काव्य में नायक का स्वरूप

भूमिका, १ ज्ञानाश्रयी शाखा, २ प्रेमाश्रयी शाखा- अनुकूल नायक- शुद्ध अनुकूल नायक- संकर अनुकूल नायक- दक्षिण नायक - प्रेमी, उपपति और पति- नायकों का काम-शास्त्रीय भेद - नायक के अन्य गुण- द्यूत -निपुण, रति निपुण, योगी नायक, ३ रामाश्रयी शाखा, ४ कृष्णाश्रयी शाखा - अनुकूल कृष्ण- दक्षिण नायक कृष्ण- धृष्टकृष्ण- शठ कृष्ण- अन्य भेद, ५ चारित्रिक विश्लेषण, ज्ञानाश्रयी शाखा, ७ प्रेमाश्रयी शाखा- रत्नसेन-सुजान- मनोहर, ८ रामाश्रयी शाखा, ९ कृष्णाश्रयी शाखा- निकुंज लीला बिहारी कृष्ण- वृंदावन बिहारी कृष्ण, १० भक्ति काव्य में नायकों के स्वरूप की तुलना, ११ निष्कर्ष । पृ. १३३-२०६

षष्ठ अध्याय

## हिन्दी भक्ति- काव्य में नायिका का स्वरूप

भूमिका, २ (क) स्वकीया, ३ ज्ञानाश्रयी शाखा, ४ प्रेमाश्रयी शाखा - मुग्धा- मध्या- नागमती- धीराधीरा मध्या- पद्मावती- प्रगल्भा नायिका- स्वकीया के अवस्थानुसार अन्य भेद- नायिकाओं का काम-शास्त्रीय-स्वरूप- स्वकीया नायिका के अन्य भेद, ५ रामाश्रयी शाखा- पार्वती- स्वाधीन भर्तृका - मुग्धा- मध्या- प्रगल्भा पार्वती- सीता-मुग्धा- प्रोषित भर्तृका- स्वाधीन भर्तृका- पतिव्रता- पति के विचारों को समझने वाली- पति सेविका सीता, ६ कृष्णाश्रयी शाखा- मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा- नृत्य कला प्रवीण- स्वाधीन भर्तृका- अभिसारिका- स्वयं दूतिका ।

७ (ख) परकीया- ८ ज्ञानाश्रयी शाखा, ९ प्रेमाश्रयी शाखा- प्रेम पीड़िता- क्रिया विदग्धा- अभिसारिका- मुदिता- स्वाधीन

भर्तृका - विरहिणी नायिका, १० रामाश्रयी शाखा- ११ कृष्णाश्रयी शाखा, १२ विद्यापति - मुग्धा-भयातुरा- राधा- अभिसारिका राधा- मुदिता राधा- लक्षिता- सुरत गोपना- क्रिया और वचन विदग्धा- कलहान्तरिता- उत्कंठिता- प्रोषित पतिका- खंडिता- विप्रलब्धा, १३ सूरदास- राधा का परकीयात्व- राधा-कृष्ण- प्रेम का विकास- कुलकानि का भय- राधा का विवाह प्रसंग- गांधर्व विवाह का लक्षण- परकीयात्व की स्वीकृति - गोपियां, १४ परमानंद दास, १५ नन्ददास, १६ कुंभनदास आदि अष्टछाप के अन्य कवि, १७ व्यास जी, १८ अन्य वैष्णव कवि, १९ मीरां ।

२० (ग) सामान्या, २१ नायिका का चारित्रिक विश्लेषण, २२ ज्ञानाश्रयी शाखा, २३ प्रेमाश्रयी शाखा, २४ रामाश्रयी शाखा- पार्वती-सीता, २५ कृष्णाश्रयी शाखा- गोपियां- ललिता- सुषमा आदि- राधा, २६ भक्ति काव्य की नायिकाओं का तुलनात्मका रूप, २७ निष्कर्ष । पृ० २१०-२२१

सप्तम अध्याय

## हिन्दी भक्ति- काव्य में नायक- नायिका -सहायक

भूमिका, २ विट, चेट आदि, ३ गुरु आदि, ४ वंशी, ५ सखा, ६ उद्धारक बंधु एवं भगनी, ७ देवता आदि मानवेतर प्राणी, ८ दूत, ९ दूती, १० सखी, ११ सखी भाव का, धार्मिक कारण, १२ सखी भाव का मनोवैज्ञानिक कारण, १३ हिन्दी भक्ति -काव्य में सखी -ज्ञानाश्रयी शाखा- प्रेमाश्रयी शाखा- रामाश्रयी शाखा- कृष्णाश्रयी शाखा, १४ निष्कर्ष । पृ०-२२२- ३२०

अष्टम अध्याय

## हिन्दी भक्ति- काव्य में उद्दीपन

भूमिका, १ भेद, २ आलंबनगत उद्दीपन- (क) नायक का रूप अलंकार और आभूषण-वर्णन (ख) नायक की विभिन्न चेष्टाएं (ग) नायिका का रूप नख-शिख शृंगार और [illegible]

(घ) नायिका की विभिन्न चेष्टाएं । (क) ३ नायक का रूप-वर्णन अलंकार और आभूषण वर्णन ४ ज्ञानाश्रयी शाखा, ५ प्रेमाश्रयी शाखा नायक के नवजाता रूप का वर्णन - तरूण नायक-योगी नायक, ६ नायक के अलंकार- नायक के आभूषण, ६ (क) रामाश्रयी शाखा-राम का रूप वर्णन- राम का नखशिख वर्णन- नायक के अलंकार-आभूषण, ७कृष्णाश्रयी शाखा- नायक का रूप वर्णन- कृष्ण का नखशिख -वर्णन -नायक के अलंकार- आभूषण । (ख) नायक की विभिन्न चेष्टाएं , ८ ज्ञानाश्रयी शाखा, ९ प्रेमाश्रयी शाखा, १० रामाश्रयी शाखा, ११ कृष्णाश्रयी शाखा । १२(ग) नायिका का रूप, नख-शिख एवं आभूषण वर्णन, १३ ज्ञानाश्रयी शाखा, १४ प्रेमाश्रयी शाखा-सामान्य रूप -वर्णन और उसका प्रभाव- वयः संधि-सौंदर्य- विरहिणी नायिका का रूप-वर्णन- नखशिख-मुख्य नायिका के नखशिख की सामान्य विशेषताएं- गौण नायिकाओं के नखशिख की सामान्य विशेषताएं- रूप-वर्णन तथा नखशिख वर्णन में शरीर के विभिन्न अंगोपांगों के उपमान- सोलह श्रृंगार (क) शारीरिक शुचिता संबंधिनी क्रियाएं -(ख) श्रृंगार प्रसाधन अथवा सौंदर्य-वर्द्धन-क्रियाएं - (ग) आभूषण, १५ रामाश्रयी शाखा- पार्वती का रूप-शूर्पणखा-सीता- दासियों का नखशिख वर्णन- नायिका के आभूषण १६ कृष्णाश्रयी शाखा- सामान्य रूप -वर्णन - संक्षिप्त नख-शिख वर्णन -विस्तृत नख-शिख वर्णन- संयोगिनी राधा- वियोगिनी राधा आभूषण और श्रृंगार । १७ (घ) नायिका की चेष्टाएं, १८ ज्ञानाश्रयी शाखा १९-२० प्रेमाश्रयी शाखा- प्रिय का पत्र, प्रिया की लिखावट - प्रिया का संदेश, कटाक्ष आदि, २१ रामाश्रयी शाखा, १२ - कृष्णाश्रयी शाखा- नायिका का दही मथना,अधिकार जताना, छेड़ छाड़, नृत्य और काम-कला कुशलता, नेति- नेति वचन, संदेश २३ तटस्थ उद्दीपन, २४ ज्ञानाश्रयी शाखा, २५ प्रेमाश्रयी शाखा- प्रकृतिगत उद्दीपन - षट्ऋतु- बारहमासा- अन्य उद्दीपन , २६ रामाश्रयी शाखा- प्रकृतिगत उद्दीपन- अन्य उद्दीपन- प्रिय का सौंदर्य, आभूषण एवं उसका रव, प्रिय का प्रतिबिंब, कपट, संकेत, प्रेम-पथ से विरत करने का प्रयत्न, प्रिय प्रेम का श्रवण, प्रिय के वस्त्राभूषण आदि चिह्न, २७ कृष्णाश्रयी शाखा- प्रकृतिगत उद्दीपन- षट्ऋतु और बारहमासा-

## नवम अध्याय

## हिन्दी भक्ति-काव्य में अनुभाव और व्यभिचारी भाव

### (क) अनुभाव

भूमिका, २ ज्ञानाश्रयी शाखा- विस्तृत योजना नहीं है, ३ प्रेमाश्रयी शाखा- विशेष विस्तार नहीं - मूर्च्छा की बहुलता- रूप- श्रवण जनित मूर्च्छा - दर्शन जनित मूर्च्छा- अन्य- नायिका के अलंकार, ४ रामाश्रयी शाखा- सात्विक आदि- नायिकाके अलंकार, ५ कृष्णाश्रयी शाखा- बहुलता- सात्विक और कायिक - नायिका के अलंकार ।

### (ख) व्यभिचारी भाव

६ भूमिका, ७ ज्ञानाश्रयी शाखा- प्रमुख उदाहरण, ८ प्रेमाश्रयी शाखा- व्यभिचारियों की प्रचुरता, ९ रामाश्रयी शाखा- अन्य उदाहरण, १० कृष्णाश्रयी शाखा- विविधता और बहुलता है - नवीन संचारी भी पर परंपरागत के अंतर्गत लिए जा सकते हैं - उदाहरण - ११ निष्कर्ष । पृ. ४३२-४७४

## दशम अध्याय

## हिन्दी भक्ति - काव्य मेंसंभोग श्रृंगार

भूमिका, (क) पूर्व संभोग क्रियाएं, २ आलिंगन- सामान्य आलिंगन-विद्धक- अपविद्धक- लतावेष्टित- तिल तंडुलक और क्षीर-नीरक - स्तनालिंगन-ललाटिका- वृक्षाधिरूढ़क, ३ भक्ति- काव्य में चुंबन के प्रकार- शुद्ध पीड़ित- उद्भ्रांत- नेत्र चुंबन- कपोल चुंबन- स्तन ग्रहण पूर्वक चुंबन- धाम्मिल ग्रहण पूर्वक चुंबन, ४ नख-क्षत-रेखा- अर्द्धचन्द्रक - शशाप्लुतक- मयूर पदक- उत्पल- पत्रमाला- किंशुक नख-क्षत- सामान्य नख- क्षत- एक वीभत्स वर्णन, ५ दशनच्छेदन- बिंदु, ६ केशाद्ग्राह, ७ प्रहणनसीत्कृतविरुत ।

(ख) ८ संभोग, ९ रतिभय, १० गोपियों की आसक्ति, ११ प्रिय-मिलन के लिए श्रृंगार, १२ संकेत स्थान, १३ सेज, १४ कुंज शोभा, १५ सखी शिक्षा- नायक को शिक्षा, १६ संभोग- कामोत्तेजक क्रियाएँ- प्रथम समागम-रतिरण, १७ संभोग का वर्णन- संभोग के संकेतात्मक वर्णन- संकेत-मात्र - उल्लेख मात्र, कथन मात्र- विस्तृत-वर्णन- आमंत्रण, वार्तालाप, ताम्बूल निवेदन, चुंबन- वस्त्रापहरण, कुच मर्दन और नख-दंत- क्षतादि, नीवी मोचन, जघन स्पर्श तथा मदन- सदन दर्शन, सुरत, १८ विपरीत, १९ विपरीत की तैयारी, २० विपरीत- मान क्रीड़ा, २१ विपरीत वर्णन । २२ आभूषणों की ध्वनि, २३ कटि चालन, २४ शोभा वर्णन, २५ रति श्रम- विपरीत श्रृंगार, २६ रतिरण- रूप, २७ रतिरण की तैयारी- अनंग नृपति से रण, असफलता की प्रतिक्रिया जनित रण, मान-मोचन होने पर रण, रण की सज्जा, २८ रति रण का वर्णन- रूपक- राम-रावण, रमणा-संग्रामा, २९ गढ़- विजय रूपक, ३० रतिरण का वर्णन, ३१ विपरीत रतिरण ।

(ग) ३२ सुरतांत, ३३ बाह्य अंग, ३४ वस्त्रों का मुदित होना ३५ वस्त्र- परिवर्तन, ३६ आभूषणों का टूटना, ३७ रति चिह्न, ३८ शैथिल्य, आलस्य और प्रस्वेद, ३९ सखियों द्वारा परिचर्या- केलि उपरांत जागरण पर पुनः श्रृंगार, ४० आंतरिक अंग ।

(घ) ४१ हास- विलास, ४२ संभोग में परिहास और खेल- दर्पण देखना- दिखाना- आँख मिचौनी- मुरली की छीन झपट- मान बिडंबना, ४३ जल-क्रीड़ा, ४४ हिंडोल- क्रीड़ा, ४५ होली, ४६ अक्षय तृतीया, ४७ रास, ४८ दान, फूल श्रृंगार, ऋतु वर्णन तथा संयोग ।

(ङ०) ४९ संभोग का साहित्य- शास्त्रीय स्वरूप, ५० ज्ञानाश्रयी शाखा एवं रामाश्रयी शाखा, ५१ प्रेमाश्रयी शाखा- संक्षिप्त अथवा पूर्वरागानन्तर संभोग- समृद्धिमान या प्रवासानन्तर संभोग- संपन्न अथवा करुण-विप्रलंभानन्तर संभोग, ५२ रामाश्रयी शाखा, ५३ कृष्णाश्रयी शाखा- संक्षिप्त -संभोग- संकीर्ण संभोग- समृद्धिमान संभोग- संपन्न संभोग, ५४ निष्कर्ष । पृ ४७५- ८१३

## एकादश अध्याय

## हिन्दी भक्ति- काव्य में विप्रलंभ श्रृंगार

भूमिका, २ ज्ञानाश्रयी शाखा- पूर्वराग, मान, प्रवास, निष्कर्ष, ३ प्रेमाश्रयी शाखा- पूर्वराग (१) एक पक्षीय पूर्वराग, (२) पारस्परिक पूर्वराग - प्रारंभ (१) गुण-श्रवण (२) रूप दर्शन (३) इन्द्रजाल (क) चित्र दर्शन (ख) प्रत्यक्ष दर्शन-पूर्वराग में प्रथम दर्शन का प्रभाव- विकास (क) प्रयत्न (१) नायक का प्रयत्न, (२) नायिका का प्रयत्न (ख) प्रथम दर्शन (ग) बाधाएं (घ) बिरह -पूर्वराग की सीमा- कामदशाएं- षट्ऋतु और बारह मासा- मान- प्रवास- विरह- निष्कर्ष ४ रामाश्रयी शाखा- विरह का अल्प वर्णन - विरह का स्वरूप -पूर्वराग -पूर्वरागोदय (क) प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा (ख) गुण-श्रवण द्वारा-पूर्वराग की सीमा-पूर्वराग में प्रिय प्राप्ति के उपाय- पूर्वराग की दशाएं- मान-विरह- विरह का स्वरूप- (१) सीता का हरण होने पर विलाप, (२) राम का आश्रम को सूना पाने पर विलाप (३) राम का वन में विलाप (४) सीता से हनुमान द्वारा राम-विरह-कथन (५) सीता का विरह -स्वरूप (६) राम से हनुमान द्वारा सीता- विरह-कथन- काम दशाएं- निष्कर्ष,४(क) वल्लभ संप्रदाय-विरह की स्वीकृति- आसक्त भक्त का विरह- विरह का स्वरूप -पूर्वराग-स्वरूप -दशाएं- मान( १) साधारण, प्रणय जन्य (२) विभ्रम (३) ईर्ष्या जन्य (४) बड़ी मान लीला- मान मोचन विरह- विप्रलंभ- सूक्ष्म विरह का समान्यतः अभाव- प्रत्यक्ष विरह, पलकांतर विरह, स्थूलविरह- भेद - (१) गोपी (२) राधा विरह- देशान्तर अथवा प्रवास जन्य विरह (१ ) साधारण (२० भ्रमरगीत- कामदशाएं, निष्कर्ष ५ राधावल्लभ संप्रदाय- स्थूल विरह का अभाव, सूक्ष्म विरह की कल्पना - सूक्ष्म विरह का स्वरूप - विरह के भेद- प्रेम वैचित्र्य अथवा पलकांतर विरह - मान- अभाव - सूक्ष्म मान का स्वरूप- मानमोचन, निष्कर्ष, ६ हरिदासी संप्रदाय- विरह का अभाव- सूक्ष्म विरह- कारण-भेद- अपवाद- मान -अभाव- स्वरूप मान मोचन, निष्कर्ष ७ निम्बार्क संप्रदाय - पूर्वराग विरह और मान-विरह - मान - मान मोचन- मिलन, निष्कर्ष ८ न्य

विरह - मान- महत्ता- कारण- मोचन- मिलन- निष्कर्ष,९ रसखान पूर्वराग- दशाएं- मान -विरह- १० मीरा- पूर्वराग - कामदशाएं-मान प्रवास- मथुरा प्रवास- द्वारका-प्रवास- कुब्जा प्रीति,दर्शनाकांक्षा, लोक लज्जा का त्याग, पाती, उपालंभ, विरहाभिव्यक्ति, निष्कर्ष
पृ.६१८-७५६

द्वादश अध्याय

हिन्दी भक्ति- काव्य में प्रतीकात्मकता

---

भूमिका- भक्ति में संभोग श्रृंगार और उसकी प्रतीकात्मक व्याख्या, २ इस व्याख्या को स्वीकार करने में कठिनाई, ३ प्रतीक का अर्थ, ४ प्रतीक का महत्व, ५ प्रतीक का सीमित अर्थ, ६ प्रतीकों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या, ७ धार्मिक प्रतीक ८ धार्मिक प्रतीकों के भेद, ९ प्रतीकात्मक व्याख्या और उसकी सीमा रेखा, १० श्रृंगार प्रतीक, ११ प्रतीकात्मक व्याख्या के आग्रह का कारण, १२ हिन्दी भक्ति,- साहित्य में प्रतीकात्मकता, १३ ज्ञानाश्रयी शाखा में प्रतीकात्मकता स्वीकृत, १४ प्रेमाश्रयी शाखा- प्रतीकात्मकता अस्वीकृत, कुछ शब्द प्रतीक स्वीकृत, १५ कृष्णाश्रयी शाखा- प्रतीकात्मकता अस्वीकृत, १६ रामाश्रयी शाखा- प्रतीक नहीं, १७ ज्ञानाश्रयी कवियों एवं मीरा के संभोगोल्लेख तथा अन्य भक्त कवियों के संभोगोल्लेख का अंतर- स्वकीयात्मक अभिव्यक्ति और सखी की अभिव्यक्ति, १८ भक्त सखियाँ के प्रतीक भी नहीं । भक्ति श्रृंगार की प्रतीकात्मक व्याख्या अनुचित है। पृ.७६०-८०७

उपसंहार

१ भक्ति में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्ष की महत्ता, २ धर्म और श्रृंगार का निकट संबंध- हिन्दी के भक्त कवियों में भी श्रृंगार- इसके विकास-स्त्रोत- स्वतंत्र विकास - (क) धर्म का कामात्मक स्वरूप, (ख) साहित्यिक परंपरा, (ग) काम-शास्त्र का प्रभाव (घ) रस-शास्त्र का प्रभाव- भक्ति शास्त्रों का प्रभाव- नगण्य, ३ भक्ति -काव्य की प्रतीकात्मकता, ४ भक्तों का सखी भाव,५ भक्ति और रीति साहित्य, ६ अश्लीलता । पृ. ८०८-८१७

# परिशिष्ट

सहायक ग्रंथ- अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी-(क) अनुद्रित शोध प्रबंध (ख) हस्तलिखित वाणियाँ (ग) मुद्रित ग्रंथ। ६१-७०

# उपक्रम

उपक्रम

विषय विचार:-

" हिन्दी-भक्ति-काव्य में शृंगार रस" कोई नई न विषय नहीं है। हिन्दी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और ख्याति प्राप्त काल भक्ति काल है। इसे हिन्दी का स्वर्ण युग भी कहा जाता है। इस स्वर्ण युग पर अनेक विद्वानों ने अपनी लेखनी चलाई है और अनेक श्रेष्ठ ग्रन्थों की रचनाएं हुई हैं। सभी साहित्य के इतिहास ग्रंथ, भक्ति-कालऔर भक्ति-संप्रदायों से संबंधित ग्रन्थ तथा इस काल के कवियों तथा प्रवृत्तियों से संबंधित ग्रंथों में शृंगार-रस का थोड़ा बहुत विवेचन मिलता है। किंतु इस विवेचन ने मुझे संतोष नहीं दिया। इसके कई कारण हैं। प्रथम, इन विवेचनों में भक्ति-शृंगार के नित्य संबंध के मूल कारणों को खोजने का प्रयास नहीं है। श्रेष्ठ, विरक्त भक्तों के काव्य में शृंगार की ऐसी तीव्रधारा क्यों और कहां से प्रवाहित हो रही है, इसका समाधान उपलब्ध नहीं है। द्वितीय, इस शृंगार का जिन विद्वानों ने विवेचन किया भी है उनका दृष्टिकोण एकांगी रहा है। शृंगार के संभोग और वियोग दो पक्ष हैं। भक्ति-काव्य में दोनों ही पक्ष सबल और संतुलित हैं। फिर भी अधिकतर विद्वानों ने जहां भक्ति-कवियों के विप्रलंभ-शृंगार पर अनेकानेक पृष्ठ रंग डाले हैं वहां उनके संभोग वर्णन के लिए कुछ पंक्तियों को ही यथेष्ठ समझा है। यह संभोग वर्णन काव्यकी उत्कृष्टता की दृष्टि से, भक्ति की तन्मयता की दृष्टि से और रसात्मकता की दृष्टि से विप्रलम्भ शृंगार से किसी भी प्रकार कम नहीं है। फिर भी इसकी गहरी उपेक्षा हुई है, इसका सम्यक् अध्ययन नहीं हुआ है और सामने पड़ने पर इसे टाल देने का ही प्रयत्न किया गया है।

२- विषय का आकर्षण -

भक्ति-काव्य की मोहकता अजेय है। ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी, रामाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखाओं में विभाजित होकर इसकी सरिता बहती है। जिस किसी ने भी इस साहित्य का निकट से अवलोकन किया होगा उसने इसमें बहने वाली भक्ति और शृंगार

की अविच्छिन्न और प्रबल धारा को अवश्य देखा होगा । संभव है कि भक्ति और शृंगार का यह समन्वय उसे अश्लील लगा हो । संभव है कि उसने इस पर गहराई से सोचने की आवश्यकता भी न समझी हो । समस्याओं को टालने की हमारी मनोवृत्ति होती भी है, किन्तु ऐसे लोगों की बात हम नहीं करते । जिन लोगों का ध्यान इस ओर गया होगा, उन्हें भक्ति और शृंगार के इस संबंध ने अवश्य उद्वेलित किया होगा । इस संबंध का क्या कारण है? यह कहाँ से आया? क्या यह केवल हिन्दी साहित्य में ही प्राप्त है? ये कुछ प्रश्न हैं जिन्होंने मुझे अपनी ओर आकर्षित किया ।

३- विषय की व्यापकता:

हिन्दी के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के साहित्य की ओर सरसरी दृष्टि फेरने पर वहाँ भी शृंगार की यह धारा दिखलाई पड़ी । साहित्य ही क्यों शिल्प और कला तथा धर्म के प्रत्येक अभिव्यक्त रूप में शृंगार की रेखा है । आदिम जातीय संस्कृतियों से लेकर संसार की अत्यंत विकसित संस्कृतियों तक में, सर्वत्र यह भक्ति-शृंगार प्राप्त है । शृंगार की यह धारा यदि किसी काल में दब गई है तो आगे चल कर पुनः फूटती दृष्टिगोचर होती है । ऐसी यह सबल धारा है । धर्म की भाँति ही यह भी विश्व-व्यापिनी ।

४- अन्य विषयों से संबद्धता

व्यापकता के साथ-साथ ही यह विषय अन्य विषयों से भी संबद्ध है । धर्म के उद्गम, नृशास्त्र, मनोविज्ञान, काम शास्त्रादि से इसका घनिष्ट संबंध है । इस प्रश्न का उपर्युक्त अनेक शास्त्रों की दृष्टि से पृथक्-पृथक् अध्ययन संभव है और अपेक्षित भी था ।

५- कठिनाइयाँ

इस अध्ययन में प्रोत्साहन का अभाव और विषय की नवीनता के साथ - साथ सामग्री के अभाव की कठिनाई भी थी ।

मुद्रित और हस्तलिखित दोनों ही प्रकार की सामग्री यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध नहीं है । जो मुद्रित सामग्री उपलब्ध भी है उसका पाठ प्रायः दूषित है । पाठालोचन का विषय हिन्दी वालों के लिए नया है । उसके महत्व से सभी पूर्णतः अभिज्ञ नहीं है । जब विद्वानों का यह हाल है तो धार्मिक ग्रंथों के उन प्रकाशकों या संपादकों को क्या दोष दें जो कि पुण्यार्थ किसी रचना का प्रकाशन या संपादन करते हैं और जिसमें वे उस रचना का बृहत्तम ( समस्त प्रक्षिप्त अंशों से पूर्ण) रूप देना चाहते हैं । अतएव वैज्ञानिक संपादन के अभाव में ग्रन्थों के प्राप्त रूपों के आधार पर अध्ययन करने में यह भय सदा बना रहता है कि जिस आधार पर समस्त अध्ययन खड़ा किया जा रहा है ।कहीं वही तो अप्रामाणिक नहीं है । प्रस्तुत प्रबंध में यह समस्या उतनी जटिल नहीं है जैसी कि अन्यत्र होती है। सूर का एक पद कल अप्रामाणिक सिद्ध हो जाए तो उसके आधार पर प्राप्त निष्कर्ष भी अशुद्ध हो जायेंगे । परंतु सूर के उस पद की अप्रामाणिकता भक्ति साहित्य के अन्दर प्रवाहित होने वाली शृंगार की धारा को नष्ट नहीं करती । इसीलिये प्रस्तुत अध्ययन में कवियों की आलोचना न करके, उन्हें तथा उनकी कृतियों को आधार भूत सामग्री मानकर, भक्ति कालीन शृंगार की प्रवृत्तियों का विश्लेषण ही किया गया है । फिर भी संभव है कि समस्त भक्ति कवियों की रचनाओं के प्रामाणिक संस्करण उपलब्ध होने पर निष्कर्षों में थोड़ा हेर-फेर होता । उस अंश तक इस कार्य की शुद्धता सीमित है ।

६- हस्तलिखित ग्रन्थ

हस्तलिखित ग्रंथों की कठिनाइयां और भी जटिल हैं । अनेक स्थानों में ग्रंथ-रत्न भरे पड़े हैं, नष्ट हो रहे हैं और हम असहाय की तरह उन्हें पाने में असमर्थ हैं । एक विशाल साहित्यिक कोश नष्ट होता जा रहा है और उनके स्वामी सर्प की भांति उस पर बैठे हैं । उनको देखना तक मुश्किल है । आज वह स्थिति नहीं है जो २५-३० वर्ष पूर्व थी पर ऐसे लोगों की मनोवृत्ति में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ है । अतः जितनी हस्तलिपि एवं अप्रकाशित सामग्री

उपलब्ध हो सकी है, उतने मात्र से ही संतोष करना पड़ा ।

७- विषय की सीमा और रूप-

प्रस्तुत प्रबंध का उद्देश्य रस या भक्ति का मौलिक विवेचन नहीं है । ये तो सर्वथा स्वतंत्र ग्रंथ के विषय है । इस प्रबंध का उद्देश्य तो हिन्दी-भक्ति काव्य में शृंगार के जो रूप उपलब्ध हैं उनका विश्लेषण करना और उनसे संबंधित जो समस्याएं है उन पर विचार करना है । इस कार्य के लिए आलोच्य काल के सभी भक्तों की रचनाओं को यथा संभव लेने का प्रयत्न करते हुए भी उसका आग्रह नहीं है । स्थाली-पुलाक-न्याय से भक्ति की प्रत्येक शाखा के प्रतिनिधि भक्त को ही महत्व दिया गया है । यही इस प्रबंध की सीमा है ।

फलस्वरूप इस प्रबंध के प्रथम अध्याय में धर्म और शृंगार के आदिम संबंध की रूप रेखा खींची है तथा उसके नृशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक व्याख्या को संक्षेप में दिखलाया गया है । इसके अवलोकन से धर्म और शृंगार के संबंध के नयेपन की भावना का शमन होगा और धर्म तथा शृंगार के नित्य संबंध से अवगत होकर आलोच्य काल के भक्ति शृंगार को समझने की सही पृष्ठ भूमि बन सकेगी ।

द्वितीय अध्याय में शृंगार रस का भक्ति शास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक परिचय दिया गया है । इसके शास्त्रीय परिचय देने की आवश्यकता नहीं समझी गई, क्योंकि वह चिर परिचित है । प्रस्तुत प्रबंध में शृंगार के इसी रस-शास्त्रीय रूप के आधार पर ही भक्ति काव्य के शृंगार का विश्लेषण किया गया है ।

तृतीय अध्याय का महत्व भी भक्ति-काव्य की पृष्ठ भूमि रूप में है । उन सभी परंपराओं और प्रेरणाओं की रूप रेखा इसमें दी गई है जिनके ऊपर हिन्दी भक्ति-काव्य का विशाल प्रासाद निर्मित हुआ है ।

चतुर्थ अध्याय में विभिन्न भक्ति-शाखाओं में उपलब्ध प्रे के स्वरूप का उद्घाटन कर उसका विवेचन किया

प्रेम ही शृंगार रस का मूलाधार है ।

पंचम- अध्याय से लेकर एकादश अध्यायों में हिन्दी भक्ति काव्य में प्राप्त शृंगार के समस्त अवयवों का विश्लेषण किया गया है । इसमें भी संभोग शृंगार का अध्याय अपने प्रकार का प्रथम कार्य कहा जा सकता है । इन समस्त विश्लेषणों में धार्मिक, साहित्यिक, मनोवैज्ञानिक और काम-शास्त्रीय पद्धतियों का सहारा लिया गया है ।

द्वादश अध्याय इस शृंगार की एक समस्या को लेकर चला है । भक्ति-काव्य के प्रतीकात्मक होने के आग्रह को पूरी तरह से जाँच कर उसकी सीमा का इसमें निर्धारण है । कृष्ण और प्रेम काव्य की प्रतीकात्मकता को इस अध्याय में अस्वीकार किया गया है ।

उपसंहार में इस भक्ति काव्य के विभिन्न स्रोतों की ओर संकेत किया गया है । भक्ति और रीतिकाल के साम्य और वैषम्य की ओर संकेत कर अंत में इस साहित्य के संबंध में अश्लीलता संबंधी -प्रश्न का संकेत कर दिया गया है । इस प्रकार भक्ति-काव्य में उपलब्ध शृंगार का अत्यंत विस्तृत फलक पर यह अध्ययन है ।

८- दृष्टिकोण- की नवीनता-

भक्ति काव्य में शृंगार की जो पुष्ट धारा है उसके पीछे साहित्य के रस शास्त्र के साथ- साथ काम शास्त्र की भी गहरी धारा है । इस काम शास्त्र का अध्ययन रस- शास्त्र के साथ - साथ अभी तक नहीं किया गया है । भक्ति काव्य के अन्दर काम शास्त्र की पुष्ट धारा प्रच्छन्न रूप से प्रवाहित होती है इस अध्ययन से इस परिणाम की सत्यता सिद्ध होगी । शृंगार रस और विशेषकर संभोग शृंगार के विश्लेषण में इस दृष्टि कोण से यह अध्ययन सर्वथा नवीन है । इसका यह अर्थ नहीं है कि अंशों के अध्ययन में रस शास्त्र और मनोविज्ञान की उपेक्षा की गई है । रस और मनोविज्ञान की सुदृढ़ भित्ति पर धार्मिक शृंगार को एक नए दृष्टिकोण से देखने का यह प्रयास है ।

## प्रथम अध्याय

## धर्म में शृंगार की परंपरा

### (क) ऐतिहासिक विवेचन

## धर्म में श्रृंगार की परंपरा

### (क) ऐतिहासिक विवेचन

धर्म और श्रृंगार का साहचर्य :-

धर्म और श्रृंगार अथवा काम भावना का निकट संबंध है। धर्म का यदा कदा अध्ययन करने वाले विद्यार्थी ने भी धर्म और काम के इस निकट संबंध को अवश्य देखा होगा, और अनेक ने आश्चर्य के साथ ऐसे अनेक सम्प्रदायों का भी अध्ययन किया होगा जिनकी भित्ति ही योनि या काम तत्व पर आधारित है[1]। उपर्युक्त विचार प्रो० जे० बी० क्टटन ने अपनी पुस्तक " साइकलाजिकल फिनमना इन क्रिश्चियानिटी में ईसाई धर्म के संबंध में व्यक्त किये हैं। यह विचार भारतीय धर्मों और उनमें भी विशेषकर भक्ति- सम्प्रदाय के लिए भी उतना ही सत्य है जितना कि ईसाई मत के लिए। हिन्दी भक्ति-साहित्य के विद्यार्थियों से उसमें प्रवाहित होने वाली तीव्र श्रृंगार की धारा छिपी नहीं है। यथार्थ में यदि भक्ति - साहित्य से श्रृंगार (संभोग और विप्रलंभ) निकाल दिया जाय तो उसके बाद जो कुछ बच रहेगा वह अल्प, अनाकर्षक और प्राय: महत्व रहित होगा और इस श्रृंगार के हटा देने से अनेक सम्प्रदायों की नींव ही हिल जायेगी।

धर्म और श्रृंगार के इस व्यापक साहचर्य के आधार पर यह सोचना उचित ही है कि इस संबंध के मूल में कुछ न कुछ कारण अवश्य हैं। उन कारणों की खोज एवं भारतीय धार्मिक साधना के इतिहास में प्राप्त इनकी रूपरेखा देना ही इस अध्याय का उद्देश्य है। यह पृष्ठभूमि हिन्दी - भक्ति - साहित्य में प्राप्त श्रृंगार को समझने के लिए आवश्यक है।

२ - अध्ययन में सतर्कता की आवश्यकता :-

धर्म और श्रृंगार के संबंध के अध्ययन में विशेष सतर्कता की

---

१ - पृ० ४१६

टिप्पणी : - प्रस्तुत अध्ययन में धर्म का सामान्य अर्थ ही लिया गया है। इसे अंग्रेजी के शब्द ( Religion ) का पर्याय

आवश्यकता है । श्रृंगार मानव की मूल एवं अत्यन्त वेगशाली भावना है । उसका धर्म से संबंध धार्मिक इतिहास के अंग रूप में है । ये दोनों मिलकर इस अध्ययन को तीव्र मोहकता प्रदान करते हैं । फल यह होता है कि अध्येता अपने संतुलन को खो बैठता है । वह दो में से किसी एक को ही महत्व देने लगता और किसी एक के प्रभाव को ही सर्वोपरि मान बैठता म है । वह धर्म को संपूर्ण रूप से श्रृंगारिक मानने लगता है अथवा यदि वह दूसरे पक्ष का हुआ तो समस्त श्रृंगारिकता को धार्मिकता प्रदान करने की चेष्टा करता है । दोनों ही दो सीमाओं पर हैं और इसीलिए सतर्कता की और भी अधिक आवश्यकता है[2] । अतएव विषय की रोचकता एवं उसकी मादकता से सतर्क रहते हुए सत्य की खोज के आदर्श को ग्रहण कर बिना किसी पूर्व - निश्चित मान्यता की पुष्टि की हठधर्मी को लिए हमें धर्म में श्रृंगार के अध्ययन की ओर निरपेक्ष अध्येता के रूप में बढ़ना चाहिए ।

धर्म और श्रृंगार के संबंध को हम आदिम मानव के धर्म के अध्ययन एवं उससे विकसित होते हुए धार्मिक इतिहास के अवलोकन द्वारा ही समझा जा सकता है । अत: सर्व प्रथम हम आदिम मानव के धर्म में श्रृंगार के रूप को देखेंगे ।

## ३ - आदिम मानव के धर्म में श्रृंगार - भावना :-

आदिम मानव का जीवन धार्मिक वातावरण में व्यतीत होता था । यथार्थ में वह सामान्य जगत में न रह कर अत्यधिक धार्मिक भावना से ओत - प्रोत एक असाधारण जगत् में रहता था । उसकी शक्तियां अल्प थीं और संसार के प्रत्येक कार्य में उसे रहस्यात्मकता दृष्टिगोचर होती थी । प्रकृति के रौद्र रूप को देखकर उसे भय और सुखद रूप को देख कर आनन्द होता था । उसने प्रत्येक वस्तु में विभिन्न शक्तियों का अनुमान किया होगा और सर्वश्रेष्ठ शक्ति के रूप में अपने ही अनुरूप किन्तु शक्ति, में अपने से कहीं शक्तिमान ईश्वर की भी कल्पना की होगी । ईश्वर की मानवस्वरूप में कल्पना करने के कारण मानव को सुखकर लगने वाली वस्तुएं ईश्वर को भी प्रिय हैं, यह विचार स्वत: ही विकसित हुआ होगा । उसके क्रोध को शांत करने तथा उसे प्रसन्न कर अपने इष्ट - साधन के लिए उसकी

------------------------------------

प्रिय वस्तुएं और क्रियाएं उसकी उपासना के अन्तर्गत अपने आप आ गई होंगी । आदिम शृंगारोपासना का आरंभ संभवत: इसी सुख की भावना के आधार पर हुआ होगा । सुख की तीव्रतम अनुभूति संभोग में है और इष्टदेव के संबंध में भी यह बात लागू हो गई होगी । संभोगानन्द प्रदान करने वाली इंद्रिया उस आदिम मानव के लिए (जैसा कि आज के सुसंस्कृत मानव के लिए भी है ) सबसे महत्वपूर्ण रही होंगी किन्तु इस समय तक उसे संभवत: संभोग और संतानोत्पत्ति का संबंध ज्ञात न रहा होगा[3] ।

समय बीतने के साथ साथ आदिम मानव को संभोग क्रिया और संतानोत्पत्ति का संबंध ज्ञात हुआ होगा । उस समय संतान का महत्व न केवल परिवार के लिए बल्कि जाति के लिए भी था । विभिन्न जातियों में प्रति दिन ही छोटे - मोटे युद्ध हुआ करते थे जिनमें जन-हानि स्वाभाविक ही थी । इस कमी की पूर्ति संतान द्वारा होती थी और जिस क्रिया - द्वारा संतान उत्पन्न होती है उस क्रिया का महत्व अपने आप बढ़ता गया होगा । इस प्रकार धर्म के अन्तर्गत इसकी स्वीकृति हुई होगी और शृंगारोपासना संतान - प्राप्ति कराने वाली तथा प्रजनन - बर्द्धक है, इस विश्वास का विकास हो गया होगा । संभोग के दो फल आनन्द और संतान का संबंध होते ही संभोग - क्रिया का प्रत्येक प्रदर्शन प्रजनन - बर्द्धक एवं धार्मिक मान लिया गया होगा[4] ।

जिस प्रकार आदिम मानव सिंह एवं अन्य जंगली जंतुओं से बचाव के लिए उनके नख, दांत अथवा बाल अपने साथ रखता था, अथवा जिस प्रकार पापों का प्रायश्चित अभिमंत्रित जल छिड़कने के द्वारा करता था उसी प्रकार उसका यह भी विश्वास था कि वह अपनी फसल की वृद्धि भी ऐसी क्रिया के द्वारा कर सकता है ।

---

३ - स्काट : फेलिक वर्शिप (१९४१) पृ० ४७

४- वही पृ० ५४

जिसका संबंध प्रजनन से है[५]। अमरीका की मय जाति में यह नियम है कि खेत बोने के पूर्व किसान अपनी स्त्रियों और रखैलों से कई दिन तक अलग सोये जिससे कि खेत बोने के दिन वह संभोग अधिक उग्र रूप से कर सके। अनेक व्यक्ति इस कार्य के लिए नियुक्त भी किये जाते हैं कि खेत में प्रथम बार बीज बोए जाने के अवसर पर वे खेत में संभोग करें जिससे कि कृषि की वृद्धि हो सके[६]।

आदिम वासियों के प्रजनन नृत्य भी इसी श्रेणी में आते हैं। कृषि और मानव - प्रजनन की समानता के आधार पर इन नृत्यों में स्त्री और पुरुष दोनों ही भाग लेते थे[७]। ये नृत्य अन्त में संभोग में पर्यवसित हुआ करते थे। इसी प्रकार अपने शिकार की वृद्धि के लिए भी स्त्री - पुरुष उन पशुओं का रूप धारण कर संभोग क्रिया का नाट्य किया करते थे[८]।

इन क्रियाओं का मूल मनोविज्ञान यह है कि उस समय धर्म और जीवन के बीच कोई स्पष्ट विभाजक रेखा नहीं थी। आदिम मानव का तर्क था कि एक प्रकार की क्रिया से उसी प्रकार की सभी वस्तुएं प्राप्त हो सकती हैं। इसी कारण ऐसी क्रियाएं विकसित हुई जो जीवन से संबद्ध, धार्मिकता से ओत: प्रोत और आदिम - जीवन के लिए प्रभावशाली थीं[९]।

यह संभव है कि लगभग सभी धर्मों में प्राप्त उत्पत्ति एवं सृष्टि पर विशेष बल का मूल कारण उत्पत्ति और वृद्धि-संबंधित उपर्युक्त क्रियाएं ही हों। एक बार उत्पत्ति और धर्म का संबंध निश्चित हो जाने के बाद यह स्वाभाविक ही है कि श्रृंगारोपासना तथा श्रृंगार - प्रतीक स्वयमेव प्रचलित हो गए हों। इस सम्बन्ध में डनलप का निम्नलिखित विचार द्रष्टव्य है :-

---

५ - हर्बर्ट होम बैन्क्राफुट : दि नैटिव रैसेज आफ दि पैसिफिक स्टेट आफ नार्थ अमेरिका भाग १ पृ० ७२० । स्काट द्वारा उद्धृत पृष्ठ ५४

६ - एफ० एच० लंड: इमोशन्स आफ मैन(१६३०) पृ० १६८

७ - बुहर्न : दि रिलीजस ऐटीट्यूड(१६२७) पृ० १६४

८ - एफ० एच० लंड: इमोशन्स आफ मैन पृ० १८६

९ - [illegible]र्न : दि [illegible]लीजस ऐटीट्यूड

' श्रृंगार - प्रतीक और श्रृंगारात्मक विशेषताओं तथा संभोग क्रिया का महत्व धर्म के सृष्टि, उत्पत्ति और वृद्धि पर विशेष बल देने का कारण हुआ है। एक ऐसी शक्ति की कल्पना ही - जिस तक मानव पहुंचने का प्रयत्न कर सके अथवा जिसके द्वारा इस जीवन की कठिनाइयों से वह बच सके - उस शक्ति पर आधारित है जो कि सृष्टि की उत्पत्ति और स्थिति से संबंधित है।'

' संसार में उत्पन्न होने वाली सभी वस्तुओं में मानव शिशु का जन्म मानव के लिए सबसे महत्वपूर्ण है। अत: यह कोई आश्चर्य नहीं कि प्रजनन एवं उससे संबंधित क्रियाएं अत्यधिक धार्मिक महत्व प्राप्त कर लें। इसके अतिरिक्त आदिम मानव ने जो कि आज के सभ्य मानव से कहीं अधिक पवित्र और स्पष्टवक्ता था, इन बातों को इतनी स्पष्टता से व्यक्त किया होगा कि हमारे विचारों को धक्का लगता है और हमें उसे गलत समझ लेते हैं।[१०]'

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्रकृति की दो शक्तियां - स्त्री और पुरुष आदिम वासियों के धर्म में स्वीकृत हो गई होंगी। यह स्वीकृति विश्व - व्यापी है और सभी स्थलों पर अलग - अलग स्वतंत्र रूप में विकसित हुई है। इसका कारण मानव - मात्र की भावनाओं की मूल एकता है। इस स्वीकृति ने उपासना का रूप धारण कर लिया और इसी कारण स्त्री - पुरुष की जनेन्द्रियां प्रकृति की सृष्टि एवं वर्द्धक - शक्ति की तथा इनसे संबंधित देवताओं की प्रतीक बन गई होंगी। दोनों अंगों का संबंध प्रकृति की प्रजनन - क्रिया एवं उसके जीवन का प्रतीक बन गया क्योंकि आदिम मानव में प्रकृति एवं उसकी क्रियाओं के प्रति श्रद्धा की मात्रा अत्यधिक थी।[११]

४ - भारतीय आदिम जातियों के धर्म में श्रृंगार :-

भारतीय आदिम जातियों का अभी विस्तृत अध्ययन

---

१० - लंड : इमोशन्स आफ मैन पृ० १६८-१६६ में उद्धृत

११ - वेस्ट्राप : ऐंशेंट सिम्बल वर्शिप पृ० २१

नहीं हुआ है । अतएव उनके सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त नहीं है । जो स्वल्प सूचनाएं प्राप्त हैं वे १८९५ ई० में लिखी हुई एक पुस्तक के अनुसार संक्षेप में इसी प्रकार हैं :-

दक्षिण के गोंड लोगों में नागों की वार्षिक पूजा होती है । पूजा के उपरान्त भोज होता है । इस उपासना के संबंध में विशेष ज्ञात नहीं है क्योंकि यह नितांत एकांत में होती है । जहां तक ज्ञात है, यह श्रृंगारिक होती है तथा इसमें संभोग की छूट रहती है ।[१२]

दक्षिण के कोड़ों में " सल्लो - कल्लो " भोज सूर्यदेव की उपासना में होता है । इसमें स्थानीय मदिरा का खूब व्यवहार होता है। यह भोज फसल के समय में होता है । इसमें सभी प्रकार की श्रृंगारिक क्रियाओं की छूट रहती है ।[१३]

पश्चिमी बंगाल के संथालों का " वंदन " उत्सव भी प्रति - वर्ष होता है । इसमें वाम मार्गी शाक्त मत के समान की क्रियाएं होती हैं और विवाह के रूप में इनका अंत होता है । समस्त अविवाहित युवक - युवतियां इसमें एक दूसरे से संभोग करते हैं और अन्त में प्रत्येक पुरुष अपनी रुचि की स्त्री को विवाह के लिए चुन लेता है[१]

इस समय यह श्रृंगारिकता उनके धार्मिक कृत्यों में कहां तक रह गई है यह ज्ञात नहीं है ।

५ - वैदिक धर्म में श्रृंगार :-

भारत के प्राचीनतम ज्ञान - स्त्रोत वेद हैं और सभी हिन्दू संप्रदाय अपना मूल वेदों में खोजते हैं । उसका यह अर्थ नहीं है कि ये साम्प्रदायिक विशेषताएं वेदों में उसी रूप में प्राप्त हैं जिस रूप में वे बाद में प्रचलित हुईं । जहां तक श्रृंगारिक - उपासना का सम्बन्ध, है, इसका अर्थ केवल इतना है कि तत्कालीन धर्म - व्यवस्था में यह स्वीकृत थी और उसका उस समय प्रचार था ।

---

१२- हापकिन्स : दि रिलीजन्स आफ इंडिया (१८९५) भाग १ पृ० ५२७-५२८

१३- वही पृ० ।

संहिता और ब्राह्मण ग्रन्थों में शृंगार

ऋग्वेद में सृष्टि की उत्पत्ति " स्वधा " ( प्रकृति ) एवं शक्ति ( आत्मा ) के संयोग से हुई है।[१५] इसमें पिता की पुत्री से संभोग - कामना एवं संयोग का भी उल्लेख है।[१६] इसकी व्याख्या करते हुए सायण कहते हैं कि प्रजापति ही पिता है तथा पुत्री उषा है। इसी प्रकार का उल्लेख शतपथ १७ और ऐतरेय १८ तथा टाण्ड्य महाब्राह्मण १६ में भी है। ऋग्वेद में यम से यमी के संभोग प्रस्ताव का भी वर्णन है। यम भ्राता है और यमी बहन। यमी कहती है कि " भला वह युवक (भाई ) ही क्या हुआ कि जिसके होते हुये मैं अनाथिनी की भांति भटक रही हूं। मैं कैसी बहन हूं जो भाई के होते हुए भी संताप भोग रही हूं। आओ रथ के दो पहियों की भांति हम एक - दूसरे से मिल जायं। जिस प्रकार लता वृक्ष के चारों ओर लिपट जाती है, उसी प्रकार मैं भी तुमसेमिलूं।[२०] दयानन्द ने यम-यमी को पति - पत्नी माना है जो कि विशेष संगत नहीं लगता, पर उससे कुछ अन्तर नहीं पड़ता। संभोग - प्रस्ताव की स्थिति तो अक्षुण्ण रहती है। पुरुरवा और उर्वशी के अस्थिर दाम्पत्य - प्रेम का वर्णन भी ऋग्वेद में प्राप्त है।[२१]

लोपामुद्रा ने भी ऋग्वेद में पति - पत्नियों में समागम के लिए कहा है तथा काम को धर्म के अन्तर्गत स्थान दिया है।[२२]

---

१५ - ऋग्वेद १०-१२६-५

१६ - वही १०-६१-५-७

१७ - शतपथ १-६, २-१

१८ - ऐतरेय ३-१३

१६ - टाण्ड्य ८-२-१०

२० - ऋग्वेद १०-१०-१-१३

२१ - वही १०-६५

२२ - [illegible] १-१७६-२

ऋग्वेद में शिश्न[२३] तथा देवमें शिश्न देवों - शिश्न - पूजकों[२४] का उल्लेख भी मिलता है।ये इन्द्रोपासना के विरोधी थे। इन्हें इन्द्र ने पराजित किया था। इस उल्लेख से स्पष्ट है कि ऋग्वेद के समय में शिश्नोपासक संप्रदाय थे। आर्य लोग इनसे घृणा करते थे[२५]। तथा उन्होंने इनका विरोध भी किया था।

अथर्ववेद में भी अनेक श्रृंगारिक उल्लेख मिलते हैं, यथा -

हे पुरुष तू पत्नी के नितम्बों पर आ जाओ। हाथ का सहारा दो। प्रसन्नचित्त होकर पत्नी को चिपका लो और हर्ष मनाते हुए तु म दोनों संतान उत्पन्न करो जिससे सविता देव भी तुम दोनों की आयु बढ़ावें[२६]। तथा

हे स्त्री। विद्वान लोग सदा से ही अपनी पत्नियों को प्राप्त कर लेने के अनन्तर उनके शरीर में अपने शरीर को पूरी तरह मिलते मिलाते आए हैं। अत: हे ऐश्वर्यशालिनी। हे संतान जनने वाली। तू भी अपने पति से मिल। हे परमेश्वर। आज मुझे अपनी पत्नी में बीज वपन करना है[२७]। संभोग में इस प्रकार कामोत्तेजना की प्रार्थना भी है।

अथर्ववेद में परकीया संबंध से मिलते - जुलते संबंध का भी स्पष्ट उल्लेख है। इसके अनुसार अपने पति के अतिरिक्त उपपति रखने वाली स्त्री, ` अज - पंच दोणा` क्रिया के द्वारा वियोग से बच सकती है और यदि उसका उपपति भी इस क्रिया को करता है तो मृत्यु के बाद दोनों को एक ही लोक प्राप्त होता है[२८]। इतना ही नहीं स्वर्ग प्राप्ति के लिए किये जाने वाले कुछ ऐसे साधनों का भी उल्लेख है जो कि विवाहिता स्त्री केवल अपने उपपति के साथ ही कर सकती है[२९]।

---

२३ - वही १०-२७-१९

२४ - वही ७-२१-५, १०-९९-३

२५ - ऋग्वेद कल्चर : ए० सी० दास कृत पृ० १६४, बोस कृत पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट में उद्धृत पृ० ९९-१०० [१६६]

२६ - अथर्ववेद १४।२।३९

२७ - वही १४।२।३२-३३,३८

२८ - वही ६-५-२७।,२८

वैदिक यज्ञों में गाए जाने वाले स्त्रोत और सामणों में अथवा कपाल, गृह या वलि के संबंध में चाहे कितना पारस्परिक मतभेद क्यों न हो, किंतु कुछ ऐसे सिद्धान्त भी हैं जो कि सभी में समान रूप से परिव्याप्त हैं। समस्त यज्ञ इस सिद्धांत पर आधारित हैं कि मैथुनी-करण आध्यात्मिक आनन्दोत्पादक है। यथार्थ में संभोग स्वयं अग्निहोत्र है।[30] यह धार्मिक कृत्य है।[31] वे ' -दस- सद ' को बंदकर गोपनीय रखते थे। क्योंकि बंद करना मैथुनी करण है और इसलिए इसे छिपा कर करना चाहिए।[32] विश्व- ज्योतिष का निर्माण प्रजनन में सहायक होने के कारण किया जाता था।[33] ' सद ' को छिपाने के समय में देखना अनुचित समझा जाता था। जिस प्रकार पति - पत्नी यदि संभोग करते हुए देख लिये जाते हैं तो वे भाग जाते हैं, क्योंकि यह कार्य लज्जाजनक है। इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति द्वार के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान से ' सद' को देखता है तो उससे कहना चाहिये कि ऐसा न करे क्योंकि यह संभोग देखने के समान है। हां। वह उसे द्वार से देख सकता है क्योंकि द्वार देवताओं द्वारा निर्मित है। इसी प्रकार हविधानि को भी चारों ओर से बंद करके सोचते हैं कि एकांत में प्रजनन होता रहेगा, क्योंकि दूसरों के द्वारा देखी गई, प्रजनन - क्रिया अनुचित है। अत: हविधानि देखने वाले को भी मना कर देना चाहिये क्योंकि वह संभोग देखता है।[34]

ऐतरेय ब्राह्मण में आज्ञा - शास्त्र के शक्त - पाठ के प्रथम पद का पाठ मैथुन को व्यक्त करता है :-

जब होतर अनुष्टुभ छंद के प्रथम पद -' प्र वा देवाय अग्नेय' का उच्चारण करता है तो उसे दूसरे पद से विला कर उच्चरित करता

---

३० - शतपथ - ११-६- २-१०

३१ - वही ३-२,१,२ आदि

३२ - वही ४-६,७,१०

३३ - वही ४-५, ३-५

३४ - वही ४-६,७,६,१०

है क्योंकि संभोग के समय स्त्री अपनी जंघाओं को विस्फारित करती है । होतर् उपर्युक्त मंत्र के अंतिम दोनों पदों को साथ जोड़ कर पढ़ता है क्योंकि संभोग के समय पुरुष अपना जंघाओं को सटा कर रखता है । यह संभोग का प्रतीक है । इस प्रकार होतृर पाठ का प्रारंभ में ही मैथुन - क्रिया संपादन करता है जिससे कि प्रजनन अधिक हो । इस क्रिया - से अवगत, संतति और पशुधन प्राप्त करता है[३५] ।

वैदिक आर्य अकेले देवी की उपासना कभी नहीं करता था । देवी को आहुति देने् के पूर्व, सूर्य को घी अर्पित करने का विधान है क्योंकि इस प्रकार देवियों का सूर्य से संभोग हो जाता है ।

इस संबंध में यह विधान है कि सूर्य के लिए घी अर्पित करते समय बार - बार उन्हीं मंत्रों का उच्चारण अनावश्यक है । एक बार का उच्चारण ही यथेष्ट है क्योंकि एक पति से ही अनेक पत्नियाँ संभोग कर लेती हैं । अत: होतर् जब देवियों को आहुति देने के पूर्व सूर्य - मंत्र का पाठ करता है तो वह सूर्य का सभी देवियों से मैथुन करा देता है[३६] ।

पशुधन - वर्द्धन के लिए छंदोमास यज्ञ में त्रिष्टुभ और जगती छंदों को पुरुष और स्त्री में मान कर के सह - उच्चरण करते हैं । दोनों का यह सह-उच्चारण संभोग का द्योतक माना जाता है[३७] ।

शतपथ में इड़ा कहती है कि यदि तुम यज्ञ के अवसर पर मेरा उपभोग करोगे तो तुम्हारी समस्त अभिलाषाएं पूर्ण होंगी[३८] ।

पीछे कहा जा चुका है कि वैदिक युग में केवल पुरुष या केवल स्त्री द्वारा उपासना नहीं की जाती थी । अत: यदि किसी व्यक्ति के पत्नी नहीं है तो वह कैसे उपासना करें ? इसके संबंध में कहते हैं कि श्रद्धा ही उसकी पत्नी है और सत्य ही होतर् है ।श्रद्धा और सत्य का संबंध सर्वोत्तम है तथा श्रद्धा और सत्य मिलकर स्वर्ग को भी विजय कर लेते हैं[३९] ।

---

३५ - ऐतरेय ब्राह्मण- २-५-३

३६ - वही ३-५-४

६ - उपनिषद् - ग्रन्थों में श्रृंगार

संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद यदि हम उपनिषदों को देखें तो उनमें भी श्रृंगार की महत्ता और उसकी स्वीकृति अनेक स्थलों पर मिलेगी ।

छान्दोग्य में " आत्म यज्ञ के अंग " प्रकरण में लौकिक क्रियाओं को धार्मिक रूप दिया गया है । उसके अनुसार :-

" वह ( पुरुष ) जो भोजन करने की इच्छा करता है, जो पीने की इच्छा करता है और जो रममाण ( प्रसन्न ) नहीं होता - वही इसकी दीक्षा है फिर वह जो खाता है, जो पीता है और जो रति का अनुभव करता है - वह उपसदों की सहस्थता को प्राप्त होता है । तथा वह जो हंसता है, जो भक्षण करता है और जो मैथुन करता है - वे सब स्तुत शास्त्र की ही समानता को प्राप्त होते हैं तथा जो तप, दान , आर्जव ( सरलता ) अहिंसा और सत्य वचन हैं, वे ही इसकी दक्षिणा है । इसी से कहते हैं कि " प्रसुता "- होगी " अथवा " प्रसुता हुई " वह इसका पुनर्जन्म ही है, तथा मरण ही अवभृथस्नान है ।[40]

आगे चलकर " पुरुष की अग्नि के रूप में उपासना " प्रकरण में कहा गया है :-

" गौतम । पुरुष ही अग्नि है । उसका वाक् ही समिध् है, प्राण धूम है, जिह्वा ज्वाला है, चक्षु अंगारे हैं और श्रोत्र विस्फुलिंग हैं । इस अग्नि में देवगण अन्न का होम करते हैं उस आहुति से वीर्य उत्पन्न होता है ।[41]

इसी प्रकार " स्त्री की अग्नि - रूप में स उपासना " प्रकरण में कहते हैं :-

" गौत म । स्त्री ही अग्नि हैं । उसका उपस्थ ही समिधु है, पुरुष जो उपमन्त्रण करता है वह धूम है, योनि ज्वाला है, तथा जो भीतर की ओर कहता है", वह अंगारे हैं और उससे जो सुख होता है, वह विस्फुलिंग हैं । इस अग्नि में देवगण वीर्य का हवन करते हैं,

---

४० - छांदोग्य - उपनिषदांक पृ० ४२५

करते हैं, उस आहुति से गर्भ उत्पन्न होता है।[४२]

इसी में ओंकार की व्याख्या नामक प्रारम्भिक प्रकरण में कहते हैं :-

' वाणी ही ऋचा है, प्राण साम है, 'ॐ' यह अक्षर ही उद्गीथ है। जो वाणी और प्राण तथा ऋचा और साम हैं, यह एक ही जोड़ा है, दो नहीं। अर्थात् वाणी अथवा ऋचा तथा प्राण अथवा साम एक दूसरे के पूरक हैं। वाणी और प्राण का अथवा ऋचा और साम का यह जोड़ा ॐ रूप इस अक्षर में भली भांति संयुक्त किया जाता है। जिस समय स्त्री और पुरुष आपस में प्रेम पूर्वक मिलते हैं, उस समय वे अवश्य ही एक दूसरे की कामना पूर्ण करते हैं। इसी प्रकार यह वाणी और प्राण का जोड़ा जब ओंकार में लगाया जाता है, तब वह सदा के लिए पूर्ण काम - कृत - कृत्य हो जाता है। इस रहस्य को जानने वाला जो कोई उपासक इस उद्गीथ स्वरूप अविनाशी परमेश्वर की उपासना करता है वह निश्चय ही संपूर्ण कामनाओं की प्राप्ति में समर्थ होता है।[४३]

आगे चलकर ' वाम देव्य- सामोपासना ' में मिथुन कल्पना की गई है :-

' स्त्री - पुरुष का संकेत हिंकार है, पारस्परिक सन्तोष प्रस्ताव है, सह- शयन उद्गीथ, अभिमुख- शयन प्रतिहार है, समाप्ति निधन है। वह जो पुरुष इस मिथुन में वामदेव्य साम को स्थित जानता है, सदा जोड़े से रहता है, उसका कभी वियोग नहीं होता। मिथुनी भाव से उसके संतान उत्पन्न होती है। वह पूर्ण आयु का उपभोग करता है। उज्ज्वल जीवन व्यतीत करता है, प्रजा और पशुओं के कारण महान होता है तथा कीर्ति के कारण महान होता है।[४४]' शंकर ने इसी में ' ना कांचन परिहार्यते ' के भाष्य में लिखा है कि वाम देव्य- साम जानने वाले व्यक्ति के लिए कोई भी स्त्री त्याज्य

---

४२ - वही ८ वही देखो बृहदारण्यक - ६,२ उपनिषदांक पृ० ५०४

४३ - वही १-१६ ,, ,, ४०६

४४ - वही २-१३ वही ०७१

नहीं है। वह सबसे संबंध रख सकता है।[४५]

मुण्डकोपनिषद् में सृष्टि - उत्पत्ति की चर्चा करते हुए बतलाते हैं कि पर - ब्रह्म पुरुषोत्तम से सर्व प्रथम तो उनकी अचिन्त्य शक्ति का एक अंश अद्भुत अग्नि - तत्व उत्पन्न हुआ, जिसकी समिधा सूर्य है, अर्थात् जो सूर्य बिम्ब के रूप में प्रज्ज्वलित रहती है, अग्नि से चन्द्रमा उत्पन्न हुआ, चन्द्रमा से मेघ उत्पन्न हुए। मेघों से वर्षा द्वारा पृथ्वी में नाना प्रकार की औषधियां उत्पन्न हुईं। उन औषधियों के भक्षण से उत्पन्न हुए वीर्य को जब पुरुष अपनी जाति की स्त्री में सिंचन करता है, तब उससे संतान उत्पन्न होती है। इस प्रकार परम पुरुष परमेश्वर से य नाना प्रकार के चराचर जीव उत्पन्न हुए हैं।[४६]

श्वेताश्वतरोपनिषद् का मंत्र तथा सांख्य-शास्त्र के बीच मंत्र को श्लेष द्वारा उक्त मतावलंबी अर्थ करते हैं कि प्रकृति एक तिरंगी बकरी है जो बद्ध जीव रूपी बकरे के संयोग से अपनी ही जैसी तिरंगी त्रिगुणमयी संतान उत्पन्न करती है।[४७]

वृहदारण्यक तो अपनी प्रतीकात्मक शैली के लिए प्रसिद्ध ही है। मानव की पूर्णता तथा उसकी इच्छाओं का वर्णन करते हुए इसमें कहा गया है कि 'पहले एक यह आत्मा ही था। उसने कामना की कि - मेरे स्त्री हो, फिर मैं संतान रूप से उत्पन्न होऊं। तथा मेरे धन हो, फिर मैं कर्म करूं।' बस, इतनी ही कामना है। इच्छा करने पर इससे अधिक कोई नहीं पाता। इसी से अब भी एकाकी पुरुष यह कामना करता है कि मेरे स्त्री हो, फिर मैं संतान रूप से उत्पन्न होऊं तथा मेरे धन हो तो फिर मैं कर्म करूं। वह जब तक इनमें से एक को भी प्राप्त नहीं करता, तब तक वह अपने को अपूर्ण ही मानता है। उसकी पूर्णता इस प्रकार होती है। मन ही इसका आत्मा है, वाणी स्त्री है, प्राण सन्तान है नेत्र मानुष वित्त है, क्योंकि वह नेत्र से ही गौ आदि मानुष-वित्त को जानता है। श्रोत्र देव- वित्त है, क्योंकि श्रोत्र से ही वह सुनता है। आत्मा(शरीर) ही इसका कर्म है क्योंकि आत्मा से ही यह कर्म

---

४५ - बोस : पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट पृ० १०१

४६ मुं० २-१-५ उपनिषदङ्क पृ० २७

करता है ।`[४८]

बृहदारण्यक में चारो वर्णों की सृष्टि का उपाख्यान भी प्राप्त है । इसके अनुसार` वह (प्रथम पुरुषाकार आत्मा ) भयभीत हो गया । इसी से अकेला पुरुष भय खाता है । उसने यह विचार किया ` यदि मेरे सिवाय कोई दूसरा नहीं है तो मैं किससे डरता हूं । तभी उसका भय निवृत्त हो गया । किंतु उसे भय क्यों हुआ ? क्योंकि भय तो दूसरे से ही होता है । वह ( अकेला) रमण नहीं करता था । इसी कारण अब भी एकाकी पुरुष रमण नहीं करता । उसने दूसरे की इच्छा की । जिस प्रकार परस्पर आलिंगित स्त्री और पुरुष होते हैं वैसा ही उसका परिमाण हो गया । उसने इस अपनी देह को ही दो भागों में विभक्त कर डाला । उससे पति और पत्नी हुए । इसलिए यह शरीर अर्द्ध बृगल ( द्विदल अन्न के दल ) के समान है - ऐसा याज्ञवल्क्य ने कहा । इसलिए यह (पुरुषार्द्ध ) आकाश स्त्री से पूर्ण होता है । वह उस ( स्त्री ) से संयुक्त हुआ, उसी से मनुष्य उत्पन्न हुए है । उस (शतरूपा) ने यह विचार किया कि` अपने से ही उत्पन्न करके यह मुझसे क्यों समागम करता है ? अच्छा , मैं छिप जाऊं ।` अत: वह गौ हो गयी, तब दूसरा यानी मनु वृषभ होकर उससे संभोग करने लगा, इससे गाय- बैल उत्पन्न हुए । तब वह घोड़ी हो गयी और मनु अश्व श्रेष्ठ हो गया । फिर वह गर्दभी हो गयी और मनु गर्दभ हो गया और उससे समागम करने लगा । इससे खुर वाले पशु उत्पन्न हुए । तदनन्तर शतरूपा बकरी हो गयी और मनु बकरा हो गया । फिर वह भेड़ हो गयी और मनु भेड़ा हो गया और उससे समागम करने लगा । इससे बकरी और भेड़ों की उत्पत्ति हुई । इसी प्रकार चींटी से लेकर ये जितने मिथुन हैं, उन सभी की उन्होंने रचना कर डाली ।[४९]

इसी में आगे चलकर पुरुष और प्रज्ञात्मा के संबंध का वर्णन स्त्री- पुरुष के मिथुन से किया गया है ।` व्यवहार में जिस प्रकार अपनी प्रिया भार्या को आलिंगन करने वाले पुरुष को न कुछ

---

१ - बृहदारण्यक १-५-१७ वही पृ० ४६५

२ - ,, १-४-२ । से ६ उपनिषदांक पृ० ४६३

बाहर का ज्ञान रहता है और न भीतर का, उसी प्रकार यह पुरुष प्रज्ञात्मा से आलिंगित होने पर न कुछ बाहर का विषय जानता है और न भीतर का।[५०]

धार्मिक कृत्यों को ही केवल मैथुन का स्वरूप नहीं दिया गया है। इसके विपरीत मैथुन - क्रिया को भी धार्मिक संस्कार रूप में भी मान्यता दी गई है।[५१] छांदोग्य उपनिषद् के वाम देव्यसामोपासना की चर्चा हम कर चुके हैं। तैत्तिरीयोपनिषद् में संहिता के रूप में प्रजा का वर्णन करके संतान - प्राप्ति का रहस्य समझाया गया है। भाव यह है कि इस - प्रजा - विषयक संहिता मे माता तो मानों पूर्व वर्ण है और पिता पर - वर्ण है। जिस प्रकार दोनों वर्णों की संधि से एक नया वर्ण बन जाता है, उसी प्रकार माता पिता के संयोग से उत्पन्न होने वाली संतान ही इस संहिता में दोनों की संधि (संयुक्त-स्वरूप) है। तथा माता और पिता का जो ऋतु काल में शास्त्र - विधि के अनुसार यथोचित नियम पूर्वक संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से सहवास करना है, यही संधान है। जो मनुष्य इस रहस्य को समझ कर संतानोत्पत्ति के उद्देश्य से ऋतुकाल में धर्मयुक्त स्त्री - सहवास करता है, वह अवश्य अपनी इच्छा के अनुसार श्रेष्ठ संतान प्राप्त कर लेता है।[५२] आगे चल कर पुन: कहा गया है - - - 'सबके साथ सुन्दर मनुष्योचित लौकिक व्यवहार करना, शास्त्र विधि के अनुसार गर्भाधान करना और ऋतुकाल में नियमित रूप से स्त्री सहवास करना तथा कुटुम्ब को बढ़ाने का उपाय करना - इस प्रकार हमें सभी श्रेष्ठ कार्यों का अनुष्ठान करते रहना चाहिये।[५३]

---

५० - वही ४-३-२१ वही पृ० ४६०

५१- शतपथ - ३-२-१,२ आदि, लाटयायन श्रौतसूत्र १४-३-१७
कात्यायन श्रौतसूत्र १३-४२, तैतरीय आरण्यक १४-७-५ तथा १०-६७ ऐतरेय आरण्यक १-२-४ से १० तथा ५-१-५ से १३, गोभिल गृह्यसूत्र २-५-६,६११० सांख्यायन गृह्यसूत्र १-१६-२ से ६५, हिरण्य केशीय गृह्यसूत्र १-२४-३ आपस्तंब गृह्यसूत्र ३-८-१०, पराशर गृह्यसूत्र १-११-७ आपस्तंब श्रौतसूत्र ५-२५-११, टाण्ड्य ब्राह्मण - ८-७-१५

५२- तैतिरीयोपनिषद्: शिक्षावली-तृतीय अनुवाद उपनिषदांक पृ० २१९

५३- वही वही

बृहदराण्यक में तो सन्तानोत्पत्ति - विज्ञान का एक सम्पूर्ण प्रकरण ही है।[५४] स्त्री की यज्ञ - कुन्ड तथा संभोग - व्यापार की यज्ञता का भी बृहदराण्यक में स्पष्ट उल्लेख है। इसको इस रुप में जानने वाला ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।[५५] इस संस्कार को करते समय मंत्रोच्चारण आवश्यक है।[५६] इसके अतिरिक्त वैदिकाचार के वाम देव वृत और महावृत में, तथा अथर्ववेद के तथा कथित सौभाग्य - खंड में के कालिकोपनिषद् एवं अन्य तांत्रिक उपनिषदों में भी मैथुन एक धार्मिक कृत्य के रुप में स्वीकृत है।[५७]

उपर्युक्त विस्तृत उल्लेख से स्पष्ट है कि वैदिक काल में, वैदिक धर्म में, धार्मिक क्रियाओं की न केवल संभोग- क्रिया से तुलना ही की जाती थी बल्कि संभोग- क्रिया को एक धार्मिक कृत्य के रुप में स्वीकार भी किया जाता था। इस प्रकार वैदिक काल और धर्म में श्रृंगार का महत्वपूर्ण स्थान है।

## ७ - रामायण और महाभारत में श्रृंगार

रामायण और महाभारत में अनेकानेक स्थलों पर नारियों के रुप का हृदय ग्राही वर्णन है तथा अनेक श्रृंगारकथाओं की ओर संकेत है जैसे अप्सराओं का श्रृंगी ऋषि का कामोद्दीपन करना, इन्द्र का अहिल्या के साथ व्यभिचार, वायु का कुशनाम की कन्याओं के साथ बलात्कार[५८] तथा कच - देवयानी, तप्ता-संवरण और नल- दमयन्ती[५९] के उपाख्यान आदि[५९]। इन सभी में श्रृंगार की अत्यन्त जीवंत धारा प्रवाहित होती है।

---

५४ - बृहदारण्यक ६-४-१ से १८ वही पृ० ५०६-५०९

५५ - वही ६-२-६ से १४ वही पृ० ५०४

५६ - बृहद देवता ५-९०,८-८२, ऋग्वेद ५-६२-४,१०-८५-३७, ऋग्वेद खिला ३०-१, परिशिष्ट २-१-१ से ८ आश्वलायन श्रौतसूत्र ८-३-२८, गोपथ ब्राह्मण ६-१५

५७ - बुद्दफ : शक्ति एंड शाक्त (१९२९) पृ० ३२

५८ - वाल्मीकी रामायण- बालकाण्ड ४८-१४-३३, ३२-११-२३

५९ - महाभारत आदि पर्व ७६, वन पर्व १७४, वन पर्व ५४ क्रमशः

८ - बौद्ध धर्म में श्रृंगार :-

जैसा पूर्व लिखित बौद्ध पुस्तक ' कथा - वत्थू ' में ' एका-धिप्पायो ' नामक रीति के प्रचलन का उल्लेख है।यह रीति आंध्र, वैतल्यक तथा उत्तरापथ के निवासियों में प्रचलित थी । इस रीति के अनुसार परस्पर यौनात्मक संबंध किया जा सकता है । एक ही विहार के रहने वाले, एक प्रकार की उपासना करने वाले तथा एक ही विचार धारा और भाव वाले स्त्री- पुरुष परस्पर संभोग कर सकते हैं । (एकाधिप्पायेन मिधुनो धम्मो से वितब्बो)[५६]

उपर्युक्त ग्रन्थों मे ही एक अन्य स्थान पर उल्लेख है कि अमानु अर्हत के वेश में धर्म के लिए मैथुन करते हैं ( अर्हतानम वण्णेना अमानु - श्शा मिशुनम् धम्यम् पति र्सेवंती ।) इस पर बुद्ध घोष की व्याख्या से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि उस समय उत्तरापथ में ऐसे सम्प्रदा प्रचलित थे जिनमें भिक्षु और भिक्षुणियों को काम - संबंध स्थापित करने की आज्ञा थी । यह संबंध धार्मिक - साधन के लिए किया जाता था ।

मज्झिम निकाय ( भाग १ पृ० ३०५ ) में बुद्ध ने ऐसे ब्राह्मण और श्रमणों का उल्लेख किया है जो कि भिक्षुणियों से काम संबंध स्थापित करने में किसी प्रकार की हानि नहीं समझते थे।[६०]

९ - तंत्र में श्रृंगार :-

तांत्रिकों की रहस्योपासना लगभग उतनी ही प्राचीन मानी जाती है जितने कि वेद हैं और इसकी परंपरा अविच्छिन्न रूप में बराबर चली आरही है । तंत्रों का सामान्य अध्ययन करने वाले को भी ज्ञात है कि उसमें कामोपासना की न केवल स्वीकृति ही है वरन् यह उनकी साधना का अत्यधिक महत्वपूर्ण और अनिवार्य अंग भी है । तांत्रिकों में यौन या काम उपासना की साधना अत्यन्त विकसि है और इसका मूलाधार दर्शन की दृढ़ भित्ति पर आधारित माना जाता है। तंत्र में श्रृंगारोपासना के दार्शनिक आधारादि की चर्चा हम यथा-स्थान करेंगे, यहाँ पर तो केवल यह दिखलाना ही अभीष्ट है कि

---

५६ - (क) चैतन्य एण्ड हिज एज़ - दिनेश चन्द्र सेन कृत(१९२२) पृ० - ३६ - ७

६० - बोस- पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट(१९३०) पृ०

भारतीय धर्म-साधना के इस प्राचीन सम्प्रदाय में भी शृंगार की विशेष स्वीकृति है ।

तांत्रिक साधना के लिए स्त्री नितांत आवश्यक है । तंत्रों के अनुसार बिना स्त्री (शक्ति), मत्स्य आदि के कोई भी साधना सफल नहीं हो सकती । इतना ही नहीं उनका तो यह भी कहना है कि यदि साधक बिना परकीया के साधन-रत होता है तो उसकी साधना कभी भी सफल नहीं होगी चाहे वह मंत्रों का अरबों बार भी पाठ क्यों न कर ले । [६१]

सूत्रालंकार में प्रयुक्त "परावृत्ति" [६२] शब्द की अनेक विद्वानों ने विभिन्न व्याख्याएं की हैं । उनकी आलोचना करते हुए बागची ने अपने मत की स्थापना की है । उनके अनुसार इस श्लोक में आनन्द की स्थिति का वर्णन है । यहां पर परावृत्ति का अर्थ न तो मैथुन-भोग और न त्याग है । बल्कि मैथुनानन्द के समान आनन्द का उपभोग है । [६३]

डा० भट्टाचार्य ने ज्ञानसिद्धि एवं वज्रसत्व का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वे सभी प्रकार के अच्छे और बुरे कार्य करने के लिए स्वतंत्र हैं । उदाहरणार्थ पशु-वध, चोरी, स्त्री-प्रसंग और असत्य वादन । [६४] वज्रसत्व भक्ष्याभक्ष्य पदार्थों को खाने के लिए स्वतंत्र है । उसे किसी भी जाति की स्त्री-विशेष कर नीच जाति की स्त्री-से घृणा नहीं होनी चाहिए क्योंकि इस प्रकार की स्त्रियों का जितना ही अधिक उपभोग किया जाएगा उतनी ही शीघ्र साधना में सफलता प्राप्त होगी । [६५]

इसी प्रकार अनंग वज्र के अनुसार अपनी माता, भगिनी, पुत्री और भगिनी-पुत्री से संभोग करने वाला साधक शीघ्र ही अपनी साधना पूर्ण कर लेता है । [६६]

---

६१- वही पृ० १२१

६२- मैथुनस्य परावृत्तौ विभुत्वंलभ्यते परम् । आदि
बागची कृत स्टडीज़ इन दि तंत्र (१९३९) पृ० ८७

६३- वही पृ० ८७-९२

६४- टू वज्रयान वर्क्स-गायकवाड़ ओरियंटल सीरीज़ भूमिका पृ० १९

६५- वही० पृ

गुह्य-समाज-तंत्र में इसी प्रकार कहा गया है कि अपनी माता, स्त्री और पुत्री से मैथुन करने वाला साधक सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त करता है जो कि महायान का ध्येय है। इसी में आगे चलकर पुनः कहा गया है कि संसार की समस्त स्त्रियों का उपभोग महामुद्रा-साधना में किया जा सकता है।[६७]

उपर्युक्त कुछ उल्लेखों के अतिरिक्त वाममार्ग में प्रचलित पंच-तत्व-साधना तो सर्व प्रसिद्ध है ही। इसमें मांस, मदिरा, मत्स्य, मुद्रा और मैथुन के उपयोग को अनेक प्रकार से समझने का प्रयत्न किया गया है। यह मैथुन चाहे मानसिक हो अथवा आद्य शक्ति के साथ, चाहे यह साधन के विशेष स्तर के लिए हो अथवा सामान्य स्तर के लिए, किन्तु इस बात को मानने में किसी को भी आपत्ति नहीं होगी कि इस संप्रदाय में मैथुन को धार्मिक रूप प्राप्त है।

१०- शैव संप्रदाय में शृंगार

पाशुपत संप्रदाय में विधि की चर्चा करते हुए शंकराचार्य ने साधन का उल्लेख किया है जिसमें (१) क्रथन (२) स्पंदन (३) मंडन (४) शृंगार (५) अवितत्कर्म और (६) अवितद् भाषण है। इनमें चतुर्थ के अंतर्गत साधक सुन्दरी स्त्री को देख कर कामी और लंपट की भाँति आचरण करता है।[६८]

११- उत्तर बौद्ध धर्म में शृंगार

बौद्ध धर्म अपने आरंभ होने के कुछ ही शताब्दियों बाद राजाश्रय खो बैठा और उसे लोक धर्म का सहारा लेना पड़ा। फल-स्वरूप उसकी महायान और हीनयान शाखाएं अलग-अलग हो गईं जिनमें से महायान ने लोक धर्म को अपने में अधिकाधिक आत्मसात् करना प्रारम्भ कर दिया। उसमें तंत्र-मंत्र, जादू-टोना, ध्यान-धारणा आदि आ गए और उसकी अंतिम परिणति अभिचारादि में हुई।[६९] आगे चलकर यह अनेक शाखा-उपशाखाओं में विभाजित

---

६७- वही

६८- भंडारकरः शैवज़िम आदि पृ १७५ तथा गोपीनाथ राववः हिंदू इकोनग्राफी खंड २ भाग १ पृ० २२

६९- हजारी प्रसाद द्विवेदीः हिंदी साहित्य की भूमिका पृ० ९.७.८

होता हुआ अंत में बज्रयान और सहजयान के रूप में व्याप्त हुआ। इस सहज संप्रदाय के अंतर्गत ही ८४ सिद्ध आते हैं।

महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री द्वारा संकलित "बौद्ध गान और दोहा" के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस संप्रदाय में काम - संबंध की पूर्ण स्वीकृति थी और यह उनकी साधना का महत्वपूर्ण अंग था।

सहजानन्द, जिसे हम साधारण शब्दों में ब्रह्मानन्द कह सकते हैं, स्त्री - पुरुष के संभोगानन्द के स्वरूप का है, जिसे प्रतीक रूप में कुलिश और कमल से व्यक्त किया गया है।[७०]

बज्रयान- साधना आनंद के आधार पर आधारित है और इस आनन्द की प्राप्ति के लिए स्त्री नितांत आवश्यक है। डा० शास्त्री द्वारा नैपाल से लाई गई चंड रोषण महातंत्र में स्त्री के साथ साधना करने की विधि का विस्तृत वर्णन है।[७१]

कण्हपा आदि सिद्धों ने अन्य पंच वर्णों की स्त्री के सेवन करने की क्षमता प्राप्त करने के लिए अपनी स्त्री के भोग की आवश्यकता बतलाई है और महासुख का प्रतीक आलिंगन बद्ध जोड़ा माना है।[७२] अंत्यज स्त्रियों, विशेषत: डोम्बिनी, रजकी आदि का अबाध सेवन इस साधना का आवश्यक अंग है। पं० रामचन्द्र शुक्ल ने कण्हपा के डोम्बिनी गीतों का उद्धरण अपने इतिहास में दिया है।[७३]

नाथ संप्रदाय ने यद्यपि श्रृंगार के आधिक्य से अपने को मुक्त रखने का प्रयत्न किया है किन्तु फिर भी शिव-शक्ति की भावना के कारण कुछ श्रृंगार मयी वाणी नाथ पंथ के किसी- किसी ग्रंथ(जैसे, शक्ति- संगम- तंत्र) में मिल जाती है।[७४]

---

७० - बौद्ध गान ओ दोहा, पृ० २ टिप्पणी। पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट से उद्धृत पृ० १३५

७१ - वही पृ० १४०

७२ - एकण किज्जइ मंत्रण तंत। णिअ घरणी लइ केलि करंत।
णिअ घर घरिणी जावण मज्जइ। ताव कि पंच वर्ण विहरिज्जइ
जिमि लोण विलिज्जइ पाणि एहि, तिमि घरिणी लइ चित्त।
समरस जइ तक्खणे जइ पुणु ते सम नित्त।।-शुक्ल, इतिहास पृ० १०

७३ - वही पृ० ११

१२ - वैष्णव धर्म में श्रृंगार :-

वैष्णव धर्म की ओर यदि हम अपनी दृष्टि फेरें तो आलवार भक्त, विष्णु, हरिवंश, भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों तथा नारद पांचरात्र[७५] में प्रेम भक्ति का विकास और काम - संबंध का स्पष्ट उल्लेख है। किन्तु पूर्व उल्लिखित विवरणों से ये इस बात में भिन्न है कि साधना के उस रूप में अंग नहीं हैं जिस रूप में वे हैं। इनमें देवी- देवताओं की काम - क्रीड़ा का ही वर्णन है। इनकी चर्चा हम आगे चलकर करेंगे। यहां तोर केवल इतना ही कहना अभीष्ट है कि वैष्णव धर्म में भी श्रृंगार की स्वीकृति है।

१३- विदेशी धर्मों में श्रृंगार :-

भारतीय धर्म ही नहीं, विदेशी धर्मों में भी श्रृंगार की प्रचुर मात्रा मिलती है। ईसाई धर्म ग्रन्थ में सांग आफ सालोमन[७६] अपनी श्रृंगारिकता के लिए प्रसिद्ध ही है। इसके अतिरिक्त भी उसमें अनेक श्रृंगारिक अंश प्राप्त हैं। यहां तक कि इस श्रृंगारिकता से भयभीत होकर अनवादों में मूल बाइबिल के स्वरूप को बहुत कुछ बदल दिया गया।

मुसलमानों के सूफी - साहित्य और धर्म में भी श्रृंगारिकता की मात्रा कम नहीं है। इन सबको बतलाना हमारा उद्देश्य नहीं है अतएव इनका संकेत मात्र कर दिया गया है।

---

७५ - वशीकरण साधन - महादेव उवाच:

ब्रजगोपियों से आलिंगत कृष्ण का ध्यान, दशाक्षरी मंत्र का जाप और होम, प्रिय स्त्री से विवाह कराने में समर्थ है।

- नारद पांचरात्र, श्लोक १०

तथा - हरि का देवी से आलिंगित रूप ध्यान करो, एक लक्ष मंत्र - जाप करो और पायस से दस सहस्र यज्ञ करो। - वही, श्लोक १६ तथा - अपने बाम भाग में लक्ष्मी को लेकर आलिंगन करते हुए पुरुषोत्तम का ध्यान करो, फिर लक्ष्मी को पुरुषोत्तम की बाईं जांघ पर आसीन कर ध्यान करो जिसके सौंदर्य के पीछे संपूर्ण विश्व पागल सा हो रहा है। - वही, श्लोक २८

७६ - ओल्ड टैस्टमैंट ( बाइबिल )

## १४ - धर्म के अन्य क्षेत्रों में प्राप्त श्रृंगार

मूल धर्म के अतिरिक्त उससे संबंधित अन्य क्षेत्रों में भी यथेष्ट श्रृंगार प्राप्त है। उन्हीं की संक्षिप्त चर्चा नीचे की जा रही है।

### शिल्प में श्रृंगार

धर्म का शिल्प से निकट संबंध है। देवालय, मस्जिद और गिरजे के रूप में धर्म का अंग बन कर शिल्प भी विश्व-व्यापक है। यथार्थ में प्राचीन शिल्प धर्म के इन्हीं पीठों में ही अपने पूर्ण वैभव को प्राप्त हुआ है। भारत इसका प्रतिवाद नहीं है। जिस प्रकार धर्म के एक पक्ष में श्रृंगार की प्रचुरता दिखलाई जा चुकी है उसी प्रकार शिल्प में भी श्रृंगार की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

### मंदिर

हिन्दू मंदिर सामूहिक रूप से एकत्र होकर पूजा करने का स्थान नहीं है। यह इष्टदेव के ऐश्वर्य प्रदर्शन हेतु निर्मित प्रासाद है जिसमें इष्टदेव की उपासना निश्चित पुजारियों द्वारा निश्चित एवं विस्तृत नियमों के अनुसार होती है। मुसलमानों की मस्जिद और ईसाइयों के गिरजे से यह इसी रूप में भिन्न है।

मंदिर केवल इष्ट देव के रहने का एक साधारण प्रासाद मात्र ही नहीं है बल्कि यह ब्रह्माण्ड का रूप भी है जिसमें प्रतीकों द्वारा सृष्टि की नियामक शक्तियों का चित्रण रहता है। इसका निर्माण आगमों में स्वीकृत विधानों के अनुसार ही किया जाता है और प्रत्येक देवता के लोक के ही अनुरूप उसके मंदिर का निर्माण होता है। विभिन्न प्रकार के देवताओं तथा आगमों के अनुसार मंदिर भी विभिन्न प्रकार के होते हैं।

बर्नियर के मतानुसार मंदिर का निर्माण तीन भागों में होता है। इसका मुख्य भाग बीच में होता है जिसे गर्भगृह कहते हैं। इस गर्भगृह के ऊपर सात खंडों का शिखर होता है जोकि सप्त लोक या सप्त - भूमि का प्रतीक है। इसी गर्भगृह में इष्टदेव की मूर्ति की स्थापना होती है।

गर्भ गृह के आगे दो मंडप होते हैं। ये स्तंभों पर आधारित होते हैं और इनमें झरोखों द्वारा प्रकाश आने की व्यवस्था रहती है। मुख्य मंडपों के अतिरिक्त अनेक छोटे मंडप भी हो सकते हैं। संपूर्ण मंदिर ऊंची कुर्सी पर निर्मित होता है जिस तक जाने के लिए सीढ़ियां होती हैं।

मंदिर के बाह्य और आभ्यांतर भागों में शिल्पकारी और अलंकार रहता है। यहां पर की मूर्तियों का स्थान निश्चित होता है। मंदिर का प्रत्येक स्थान महत्वपूर्ण होने के कारण उसका कोई भी स्थान रिक्त नहीं रखा जा सकता है। हिन्दू मंदिर अपने अलंकरण की विशेषताओं के द्वारा ही पहचाना जाता है। और यही इसकी अन्य मंदिरों से भिन्नता है।[७७]

आजकल प्राप्त अधिकतर प्राचीन मूर्तियाँ (मथुरा से प्राप्त) सामान्यत: प्रथम शताब्दी ई० के पचास वर्ष पूर्व से लेकर द्वितीय शताब्दी ई० के पचास वर्ष पूर्व तक की है। इनमें से कुछ द्वितीय शताब्दी के अंतिम दशक तक की हो सकती है। प्राप्त मूर्तियों में से अधिकतर वृक्षों से संबंधित नग्न एवं अर्ध- नग्न स्त्रियों की मूर्तियां हैं जो कि भरहुत, बोधगया और सांची की यक्षिणियों तथा वृक्षों की याद दिलाती हैं, तथा रामेश्वर, एलोरा और बादामी गुफाओं की पूर्वज हैं। जमालपुर से भी एक खड़ी अप्सरा की नग्न प्रतिमा प्राप्त हुई है जो कि संभवत: लक्ष्मी की प्रतीक है।[७८]

शैव - मंदिरों में भुवनेश्वर का वैभवशाली लिंगराज का मंदिर और खजुराहो का कांदर्य - महादेव के मंदिर अपनी शोभा में अप्रतिम है। लिंगराज तथा खजुराहो के मंदिरों में काम - कला संबंधी शिल्प प्राप्त हैं। खजुराहो में इनकी भुवनेश्वर से प्रचुरता है।

वैष्णव धर्म के इतिहास में पुरी के जगन्नाथ जी के मंदिर का एक विशेष स्थान है, किन्तु शिल्प की दृष्टि से इसकी कला न तो लिंगराज मंदिर के समान उत्कृष्ट है और न ही कोणार्क मंदिर के समान भव्य। इस मंदिर का निर्माण अथवा पुनर्निर्माण १३ वीं

---

७७ - बर्नियर : हिन्दू मेडीवल स्कल्पचर
७८ - कुमारस्वामी : हिस्ट्री आफ इंडियन एण्ड इंडोनीसियन आर्ट

शताब्दी तक हो चुका था और १५ वीं शताब्दी से वैष्णव मंदिर के रूप में इसकी प्रतिष्ठा हो गई थी । इस मंदिर का दर्शन करने वाले इसके मंडप पर खचित श्रृंगार मूर्तियों से अपरिचित न होंगे । यथार्थ में ये मूर्तियां जगन्नाथ के यात्री को आश्चर्य में डाल देती हैं । इनकी प्रतीकात्मकता अथवा इनके निर्माण के पीछे काम करने वाली भावना में जाने की हमें अभी आवश्यकता नहीं है, किंतु धर्म में उनकी स्वीकृति से इन्कार नहीं किया जा सकता ।

सूर्य मंदिरों में कोणार्क का सूर्य मंदिर अत्यन्त प्रसिद्ध है । इसके अतिरिक्त खजुराहो में का एक अन्य अत्यंत भव्य मंदिर है, किंतु कण्डर्य - इ महादेव के मंदिर के सन्मुख वह विशेष महत्व नहीं प्राप्त कर सका । दोनों ही मंदिरों में अन्य मूर्तियों के साथ संभोग की अनेक मूर्तियां हैं जिनकी ओर दर्शकों का ध्यान अनायास आकृष्ट हो जाता है । प्राचीनता में ये जगन्नाथ के मंदिर से पहिले के हैं ।

काशी में काठ के बने नैपाली मंदिर में भी ऐसी अनेक मूर्तियों है ।

उपर्युक्त संभोग की स्पष्ट मूर्तियों के अतिरिक्त श्री विष्णु, उमा और महेश्वर तथा ब्रह्मा और सरस्वती की परस्पर आलिंगित मूर्तियां लगभग सभी मंदिरों में प्राप्त हैं । उमा - महेश्वर मूर्ति के निर्माण के संबंध में " विष्णुधर्मोत्तर " तथा " रूप - मंडन" में निम्नलिखित विधान किया गया है :-

उमा और शिव की मूर्ति एक आसन पर एक दूसरे को आलिंगित करती हुई होनी चाहिए । शिव के सिर पर जटा - मुकुट होना चाहिए जिस पर द्वितीया का बाल- चन्द्र शोभित हो । उनकी दो भुजाएं हों । दक्षिण भुजा में नीलोत्पल तथा वाम भुजा उमा के स्कंध - प्रदेश से होती हुई उन्हें आलिंगित करती हो । उमा देवी सुन्दर- स्तन तथा पीन नितम्बों वाली होनी चाहिए । उनकी दक्षिण भुजा शिव के दक्षिण स्कंध से होती हुई उनका आलिंगन करती हो । उनकी वाम भुजा में दर्पण होना चाहिए । उमा - महेश्वर की मूर्ति अत्यन्त सुन्दर होनी चाहिये ।

रूप - मंडन" के अनुसार शिव की चार भुजाएं होनी

मातुलुंग-फल होना चाहिए । उनकी एक वाम भुजा उमा के स्कंध पर से होती हुई उनका आलिंगन करे तथा दूसरी भुजा में सर्प होना चाहिए । महेश्वर का वर्ण प्रवाल - होना चाहिए । उमा का स्वरूप " विष्णुधर्मोत्तर " में वर्णित रूप का होना चाहिए । इसके अतिरिक्त वृषभ ( नंदी ), गणेश, कार्तिकेय और नृत्य करते हुए भृंगी ऋषि की मूर्तियां भी अत्यंत कलात्मक होनी चाहिए ।[७९]

शिवलिंग भी शृंगारिक मूर्ति का ही एक रूप है ।

भारतीय मंदिरों के अतिरिक्त विदेशों में भी उपासना गृहों में शृंगार - शिल्प प्राप्त है । इनमें से कुछ नष्ट हो गए हैं तथा अनेक संग्रहालयों में पहुंचा दिए गए हैं ।

बर्मा में " अरी " संप्रदाय का पेगान के निकट " मिंगे न यू " में " पेपाथान्जू " के तीन मंदिरों में शृंगारिक शिल्प प्राप्त है । चीन के " यिंग-यांग " , जापान के " शिन्टो ", बैलजियम और फ्रांस में संत फोन्टीन के शिश्न की उपासना, एंटवर्प के गिरजाघर के द्वार की मूर्तियां, इटली की " इल-संतो मेम्ब्रो " , डारसेट में टेंढ्रल पहाड़ी पर " सेरना जायंट ", आयरलैंड में " शेइला- न- जिग " नाम से प्रसिद्ध लायन कैथीड्रल तथा कार्नवाल एवं हरफोर्ड - शायर में जब भी शृंगारात्मक शिल्प प्राप्त है ।[८०]

इस प्रकार धर्म - शिल्प रूप में भी शृंगार विश्व- व्यापी है ।

१५ - देवदासी

धर्म में शृंगार के उल्लेख में देवदासी या उससे मिलती-जुलती प्रथाएं अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । देवदासी प्रथा अत्यंत प्राचीन है । इसके मूल स्रोत एवं विकास का पता लगाना लगभग असंभव है । इसकी विश्व व्यापकता एवं सभी स्थानों पर धर्म के साथ के घनिष्ट संबंध के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह प्रथा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि धार्मिक भावना । इसका प्राचीनतम उल्लेख

---

७९ - गोपीनाथ राव : हिंदू इकोनोग्राफी पृ० १३२-१३३ चित्र-

और शिलालेखों में मिलता है। ग्रीस तथा ईराक में भी इसके चिन्ह पाए जाते हैं।

भारतवर्ष के दक्षिणी मंदिरों में ही इसका पूर्ण विकास हुआ है। वहां पर यह परंपरा ८ वीं शताब्दी से मिलती है। माता पिता अपनी पुत्रियों को मंदिर में चढ़ा आते थे। उनका विवाह वहीं के ठाकुर जी के साथ हो जाता था जिनकी उपासना वे प्रतिरूप में करती थीं[८१] किन्तु जिस प्रकार ठाकुर जी अपना सब काम अपने प्रतिनिधि पुजारी के द्वारा करते हैं उसी प्रकार वे अपने वैवाहिक कृत्य भी पुजारी - द्वारा करने लगे और देवदासियां पुजारियों की रखैल बन गईं। अनुमान है कि उनका उपयोग राज और नगर के प्रतिष्ठित लोग तथा यात्रीगण शुल्क देकर कर सकते थे। इस रूप में वे वेश्याएं थीं।[८२] दिन में इनका काम इष्ट देव के सन्मुख हाव - भाव- नृत्य द्वारा उन्हें रिझाना था और रात्रि को यह कार्य उन्हें पुजारी, राजा या यात्री के साथ भी करना पड़ता था। ऐसा भी हुआ है कि इनमें कुछ शुद्ध आचरणों की अत्यंत भावुक और कवयित्रियां हुई हैं। इनका विशेष सम्मान हुआ है। 'अंदाल' या 'गोदा' शायद ऐसी ही देवदासी थीं। उसके भावात्मक गीत किसी भी साहित्य की निधि हो सकते हैं। ये पद दक्षिण के 'तिरुप्पावई' नामक पुस्तक में मिलते हैं। इनमें अपने इष्ट के प्रति प्रेम अपने प्रगाढ़तम रूप में प्रवाहित हुआ है। दक्षिण में ये (देवदासियां) अब तक होती थीं। सामाजिक भावनाएं इस प्रथा के विरुद्ध होने से इसे हाल में ही सरकार द्वारा बंद कर दिया गया है। कहा जाता है कि जगन्नाथ के मंदिर में भी देवदासियां होती रही हैं यद्यपि उतनी प्रचुरता से नहीं जितनी कि वे दक्षिण में है।

पश्चिम में भी यह प्रथा सदैव ही प्रचलित रही और अब भी है यद्यपि उसका स्वरूप कुछ भिन्न है। देवदासियों की जगहें यह

---

८१ - आलवार कुल शेखर का श्री रंग के साथ अपनी पुत्री का विवाह करना - प्रपन्नामृत पृ० २८५
रामभक्ति में रसिक संप्रदाय पृ० ७७

स्त्रियाँ " नन्स " कहलाती हैं तथा इनका विवाह ईसा- मसीह से कर दिया जाता है जिसकी ये पति रूप में उपासना करती हैं। इनमें भी अनेक श्रेष्ठ भक्तिनें हो गई हैं जैसे "थेरसा " आदि। मध्ययुगीन धार्मिक संस्थाओं में भ्रष्टाचार के आधार पर अनुमान है कि ये अधिकतर पादरी तथा अन्य लोगों की काम - पिपासा शांत करने के काम में ही आईं[८३]। धर्म द्वारा इस प्रथा को पूर्ण मान्यता प्राप्त है और आज भी ईसाई समाज में यह प्रचलित है।

१६ - अर्चाविधि

अर्चना धर्म का बाह्य और कलात्मक रूप है। यह धार्मिक, भावात्मक एवं बौद्धिक तथा दार्शनिक विचारों का बाह्य रूप है। इसका संबंध उपासना से है और इसके अंतर्गत पूजा, सेवा, जप, भोग आदि सभी वस्तुएं आती हैं। इसके द्वारा धार्मिक तत्त्व को स्थूल रूप में प्रकट कर जन-साधारण के लिए बोधगम्य बनाया जाता है। सभी श्रेणियों के व्यक्तियों को प्रभावित करने की इसमें शक्ति भी है। इसके द्वारा मानव के विचारों में परिवर्तन और पवित्रता आती है। शारीरिक एवं मानसिक स्थिति में परिवर्तन करके यह इष्ट अथवा धर्म के सत्य- स्वरूप को साक्षात करा देता है। यही कारण है अर्चाविधि धर्म का महत्वपूर्ण अंग है। शाक्त साधक को शिक्षा दी जाती है कि वह स्वयं शक्तियुक्त शिव हैं। यह केवल कथन मात्र नहीं है। यह तो अनुभव करने वाली वस्तु है और साधक अपने साधन द्वारा इस सत्य का साक्षात्कार करता है। इसी प्रकार भक्त का निकुंज में प्रिया-प्रियतम की केलि का साक्षात्कार केवल कथन मात्र नहीं है। यह तो जीवन में उतार कर अनुभव करने की वस्तु है। इसी ध्येय को दृष्टिगत कर तीर्थयात्रा, स्नान, ध्यान, पूजा-पाठ, अष्टयाम सेवा, जाप आदि का विधान है।

अर्चाविधि का महत्त्व एक अन्य रूप में भी है। धर्म की विभिन्न प्रकार की साधारण मनोवैज्ञानिक अनुभूतियों को पुनः...

---

८३ - देखें : इंसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एंड एथिक्स भाग ५ पृ० ८३०

मान्यताओं के आधार पर सत्य या असत्य घोषित करना भी है । प्रत्येक धर्म अपने नियम और साधन द्वारा जनता को ऐसी अनुभूतियों से बचाता है जो कि उनके धार्मिक आधार के विरुद्ध हैं । ऐसी अनुभूतियों को धर्म झूठी, महत्वहीन अथवा पापमय घोषित कर देते है । इस संबंध में जुंग ने ऐसे व्यक्तियों की चर्चा की है जिनको अनुभूतियां हुईं किन्तु वे उनके संबंध में धार्मिक मान्यताओं को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं थे । उन अनुभूतियों के दूषित प्रभाव से छुटकारा प्राप्त कराने के लिए उन व्यक्तियों को उन भयानक और वीभत्स मार्ग से ले जाना पड़ा जहां मानसिक द्वंद उभर आते हैं, मानसिक विकृतियां बढ़ जाती हैं और उलझनें मुंह फाड़ कर सामने आ जाती हैं तथा निराशाएं पीड़ित करती हैं । इस कारण वे अर्चाविधि और साधन को मानसिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक समझते हैं ।[८४] ऐसे व्यक्ति यदि धर्मों में विश्वास करते हैं तो अपनी अनुभूतियों को धार्मिक स्वरूप देकर उनके भयंकर परिणाम से बच जाते हैं ।[८५]

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि धर्म का साधनात्मक अथवा अर्चाविधि - पक्ष मनोविज्ञान की दृष्टि से दार्शनिक पक्ष से अधिक महत्वपूर्ण है । इसका एक अन्य कारण भी है । दार्शनिक सिद्धान्त सदैव सूक्ष्म और बौद्धिक होते हैं जबकि अर्चाविधि द्वारा उसी तत्व को कहीं अधिक स्पष्टता से क्रियाओं द्वारा स्पष्ट कर दिया जाता है । उस अगम तत्व को व्यक्त करने की यही सरलतम , मनोवैज्ञानिक एवं उपयुक्त विधि है । ये अर्चा- विधियां यदि एक ओर अनुभूतियों पर आधारित होती हैं तो दूसरी ओर इनके पीछे शताब्दियों की परम्परा और विश्वास रहता है । ये अर्चाविधियां सभी ~~सब~~ धर्मों में प्राप्त हैं और ~~विश्वास रहता है । ये अर्चाविधियां सभी~~ स्वप्न, समाधि आदि के द्वारा प्रकट हो सकती है । इनकी उत्पत्ति कल्पना द्वारा नहीं होती । यथार्थ में इनका प्रारम्भ मानव - विकास की उस स्थिति में ही हो चुका था जब कि वह मस्तिष्क के पूर्व

---

८४- जुंग - साइकालजी आफ रिलीजन पृ० ५२-५३

८५- वही पृ० ५३

निश्चित उपयोग से अनभिज्ञ था । मानव के मस्तिष्क में विचार पहले आए और वह सोचने की क्रिया से अभिज्ञ बाद में हुआ । इन अनुभूतियों का विचार नहीं अनुभव हुआ था । ये अवीविधियां स्वप्नवत, मानव के अचेतन मन में एकाएक उद्भूत क्रियाएं हैं । भविष्य में होने वाला हानिकारक अनुभूतियों से बचाने में ये दर्शन से अधिक उपयुक्त और सफल है । दर्शन अनुभूति के भावात्मक पक्ष की उपेक्षा करता है जबकि अवीविधि इसी भावना - पक्ष के द्वारा ही अपने को व्यक्त करती है । दार्शनिक सिद्धांतों का खंडन - मंडन होता रहता है । किन्तु अवीविधियां शताब्दियों तक चलती रहती हैं।[८६]

उपर्युक्त कारणों से धर्म में अवीविधि का महत्वपूर्ण स्थान है । इष्ट की अष्टयाम सेवा, शृंगार, उपासना, कीर्तन, आरती, उनके अप्रतिम सौंदर्य का चिंतन, उनकी केलि का मनन आदि सभी भक्ति- संप्रदायों में अनिवार्य रूप से पाया जाता है ।

१७ - <u>अनुभूतियां</u> :-

प्रत्येक धर्म में वहां के पहुंचे हुए साधक और सिद्धों की अनुभूतियों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है । ये अनुभूतियां न केवल उस व्यक्ति की महत्ता की ही स्वीकृति कराती हैं बल्कि ईश्वर- साक्षात्कार और " पहुंचे " होने का प्रमाण भी हैं । इन अनुभूतियों का साम्प्रदायिक मूल्य इस रूप में भी है कि इनके द्वारा सम्प्रदाय अपनी सच्चाई का डंका भी पीटते हैं ।

भारतीय संतों एवं भक्तों की अनुभूतियां प्रामाणिक रूप में प्राप्त नहीं है । जो कुछ प्राप्त है वह भी किंवदंती है । सूरदास के पास जल की झारी रख आना[८७] । कीर्तन बना देना[८८]।

---

८६- वही पृ० ५६-५७

८७- अष्टसखान की वार्ता पृ० १६

८८ - वही पृ० २७ ( सूरदास )

श्रीनाथ जी का स्वयं दरवाजा खोल देना,[८६] भक्त के साथ खेलना,[९०] बालक[९१] गोद में बैठना,[९२] प्रिया - प्रियतम की काम केलि में प्रवेश आदि का उल्लेख मिलता है। इनमें जिन संप्रदायों में शृंगारोपासना स्वीकृत है, उनकी अनुभूतियां भी शृंगारात्मक होती है।

विदेशी संतों ने अवश्य अपनी अनुभूतियों की विस्तृत चर्चा की है। उनकी अनुभूतियां भी अधिकतर शृंगारात्मक है। ईसा के प्रति पत्नी - भाव की उनकी उपासना रही है और उन्होंने संभोगादि का अनुभव भी किया है।[९३]

ऐसी अनुभूतियाँ चैतन्य देव के सम्बन्ध में भी प्रसिद्ध हैं जिनमें राधा - कृष्ण के प्रेम में वे व्याकुल हो जाते थे। उनमें उस समय प्रेम के समस्त सात्त्विक विकार उत्पन्न हो जाते थे। भक्तों की ऐसी अनुभूतियां अधिकतर शृंगारिक ही हुआ करती हैं और इनका स्वरूप अपनी - अपनी धार्मिक एवं सांप्रदायिक मान्यताओं के अनुकूल हुआ करता था।

उपर्युक्त विस्तृत ऐतिहासिक उल्लेख के बाद धर्म और शृंगार के पुरातन संबंध के विषय में शंका नहीं रह जाती। धर्म का शृंगार से सदैव संबंध रहा है और धर्म रूप में शृंगार की सदा स्वीकृति रही है।

- - - - - - - - - - -

---

८६ - वही पृ० ५० ( परमानंद )

९० - ९१ वही पृ० ६२

९२ - वही पृ० ७१

९३ - इंसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स भाग ६ पृ० ६ तथा संत थेरसा की अनुभूतियां - हैवलाक एलिस ब्या स्टडीज इ साइकलाजी आफ सेक्स में उद्धृत भाग १ खन्ड १ पृ० २०६

(ख) व्याख्यात्मक विवेचन

भूमिका :- धर्म में शृंगार की परम्परा का संक्षिप्त विवरण पीछे दिया जा चुका है। धर्म में इस शृंगार की स्थिति के कारण की व्याख्या देने का प्रयत्न यहाँ किया जाएगा। यह व्याख्या तीन शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है। प्रथम नृशास्त्रीय व्याख्या है जिसके अंतर्गत धार्मिक भावना का विकास आदिम काल में किस प्रकार हुआ होगा और उसमें कैसे शृंगारिकता आई होगी, इसका अनुमान वर्तमान काल में प्राप्त आदिम जातियों के अध्ययन पर किया जाता है। द्वितीय मनोवैज्ञानिक व्याख्या है जो धर्म और काम के स्वरूप को स्पष्ट करती हुई उनके संबंध के कारण को बतलाती है। अंतिम दार्शनिक व्याख्या है जिसके अंतर्गत प्रत्येक धर्म भिन्न-भिन्न प्रकार से अपने अंदर प्राप्त शृंगारिकता की व्याख्या करता है। यहाँ केवल हिन्दू धर्म के अंदर जो शृंगार की दार्शनिक व्याख्या प्राप्त है उसका संक्षिप्त उल्लेख किया जाएगा, क्योंकि वही भक्ति कालीन कवियों में प्राप्त शृंगार की पृष्ठभूमि है। इन तीनों प्रकार की व्याख्या के द्वारा ही धर्म में शृंगार की परंपरा का रहस्य स्पष्ट हो सकता है।

१- नृशास्त्रीय व्याख्या-

नृशास्त्र मानव की मूल भावनाओं और रीति-रवाज के उद्गम और विकास का अध्ययन करता है। इस अध्ययन का आधार संसार में प्राप्त आदिम जातियों के रीति-रिवाज है जो कि बड़े अंश में उनमें अपने मूल रूप में अब भी प्रचलित हैं। मानव की मूल भावनाओं में धर्म और काम है। इनमें धर्म और उसमें काम के स्वरूप का अध्ययन नृशास्त्रियों का प्रिय विषय रहा है। उन्होंने धर्म और काम के संबंध की जो व्याख्या दी है उसी की संक्षिप्त रूप रेखा नीचे दी जा रही है।

नृशास्त्री "ट्रेवी" का विचार है कि धर्म का विकास मानव की अपनी परिस्थितियों के प्रति भावात्मक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ होगा। इस प्रतिक्रिया के द्वारा उसने प्राकृतिक शक्तियों के रहस्य को जानने तथा उनका अपने हित के लिए उपयोग करने का प्रयत्न किया होगा। यह (प्रयत्न) तीन प्रकार से हुआ होगा।
पुजारी पूजा-उपासना द्वारा, चिकित्सक जड़ी-बूटी द्वारा और ओझा

जादू-टोने द्वारा अपने यजमान के लिये दैवी शक्ति और सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहा होगा। यह दैवी शक्ति सभी कार्यों में अपेक्षित रहती होगी क्योंकि उस समय मानव प्रकृति के सच्चे स्वरूप से अपरिचित था। उस समय पुजारी, चिकित्सक और ओझा एक ही व्यक्ति रहते होंगे और इन तीनों कर्मों में विशेष अंतर नहीं समझा जाता होगा। अभी भी सभ्य समाज में ऐसे रूप प्राप्त होते हैं। आदिम मानव समाज में पुजारी, चिकित्सक और ओझा का एक सा ही सम्मान रहा होगा।

समय बीतने के साथ पुजारी और ओझा की स्थिति में अंतर पड़ता गया। एक ओर धर्म का स्थान ऊंचा होता गया तो दूसरी ओर जादू-टोना को लोग हेय समझने लगे यद्यपि समाज इसका बहिष्कार न कर सका। पुजारी और भक्त का सम्मान यथावत् रहा, किन्तु ओझा के प्रति भय की भावना बढ़ गई। इसका कारण था। धर्म ने अधिकाधिक सामाजिक हित की भावना को अपनाया और जादू-टोना ने व्यक्तिगत स्वार्थ को। फलस्वरूप एक की मूलशक्ति दैवी और दूसरे की दानवी मानी जाने लगी।[१]

धर्म से जादू-टोना एक अन्य रूप में भी भिन्न है। मैलिनोस्की के अनुसार धार्मिक क्रियाएं साधन नहीं साध्य हैं जबकि जादू एक क्रियात्मक कला है। यह एक सुनिश्चित ध्येय की प्राप्ति का साधन है। इसकी क्रियाएं यांत्रिक होती हैं। इसका कार्य इस विश्वास पर होता है कि यदि किसी को साधन-विधि का समुचित ज्ञान है तो ध्येय प्राप्ति साधारण एवं सरल है। उस समय मानव का विश्वास था कि उपयुक्त साधन द्वारा प्रत्येक कार्य संभव है। उसके फल को कोई शक्ति नहीं रोक सकती।[२] अनुमानतः इसी की विकसित परंपरा में ही भारतीय यज्ञ आते हैं जिनके द्वारा सभी फल प्राप्त किए जा सकते हैं, और उन फलों को रोकने की शक्ति किसी भी देव-दानव में नहीं है।

---

१- सेवी-रिलीजन एण्ड लाइफ (१९३०) पृष्ठ - ९-१०
२- वुडवर्न- दि रिलीजस ऐटीट्यूड में उद्धृत (१९२७) पृ० ७४-७५ मैलिनोस्की के विचार।

क्योंकि भारतीय ऋषियों ने सदा जन-कल्याण की भावना को यजमान की इच्छा से अधिक महत्व दिया इसीलिए उनके यज्ञों का सम्मान रहा पर इसके विपरीत जन-कल्याण की अवहेलना करके व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए भी यज्ञ और प्रयोग होते रहे। जादू और धर्म का यह अन्तर सभ्यता के विकास के बाद हुआ होगा। आदिम कालीन सामाजिक स्थिति में यह अंतर नहीं था। जादू और धर्म, दोनों ही साथ-साथ चलते थे। बल-प्रयोग और प्रार्थना दोनों ही साथ प्रयुक्त होते थे। यथार्थ में उस समय व्यक्तिगत और सामाजिक भावना का स्पष्ट अंतर नहीं था। धर्म, जादू विज्ञान, कला, नैतिकता आदि सभी वस्तुएं थीं किंतु उनका क्षेत्र अथवा रूप पृथक् और स्पष्ट नहीं था। बहुत बाद में ही ये सब पृथक् हुए होंगे।

प्रारंभ में धर्म, जादू-टोना, विज्ञान एवं नैतिकता के बीच कोई सुस्पष्ट विभाजक रेखा नहीं थी, बल्कि सभी एक दूसरे से घुले-मिले थे। इसी कारण से धर्म, जादू-टोना आदि सभी क्षेत्रमें शृंगार भावना मिलती है। सभ्यता के विकास के साथ धर्म के नीतिकता के अधिकाधिक प्रवेश के कारण तथा सामाजिक व्यवस्था के स्थायित्व की दृष्टि से शृंगार-भावना एवं उसके स्थूल उपयोग की भावना का क्रमशः ह्रास होता गया। उसका सूक्ष्मीकरण और उन्नयन भी हुआ। प्रजनन नृत्यों से उत्पन्न होने वाले यौन-संबंध बंद हो गए। अल्पकालीन मैथुन-संबंधों की कमी होती गई, यद्यपि पूर्णतः इसका बहिष्कार न हो सका। इसके विपरीत दूसरी और ऐसे धर्म-कर्म जिनमें मानव की साधना-शक्ति पर ही समस्त बल है, जिनमें सही विधि और फल-प्राप्ति का अनिवार्य संबंध है, उनमें स्त्री के काम-रूप का ही महत्व रहा और आ भी है। शाक्तों की साधनाओं में स्त्री के महत्व का यही रहस्य है। उनमें स्त्री सिद्धि की दात्री है।

धर्म और शृंगार-भावना के इस संबंध को सभी स्वीकार करते हैं। किन्तु एक वर्ग- शृंगार-भावना को ही धर्म मानता है तो विचारकों का दूसरा वर्ग शृंगार-भावना और धर्म में केवल संबंध ही स्वीकार करता है, एकरूपता नहीं। स्टारबक ने "इनसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स" में दोनों वर्गों के मतों का उल्लेख किया है। उसी के आधार पर दोनों वर्गों के मत संक्षेप में नीचे दिये जा रहे हैं। इनकी पुष्टि में भारतीय उदाहरणों को अपनी [illegible] जोड़ दिया

प्रथम मत

इस मत के अनुसार आधुनिक धार्मिक विश्वास आदिम युग के धार्मिक विश्वासों से विकसित हुए हैं । आदिम मानव में धर्म का विकास और अलौकिक तथा अमानव में विश्वास अपने तथा अपनी परिस्थितियों के प्रति अज्ञान से हुआ होगा । आज भी बाह्य रूप में इन विश्वासों से मुक्त होकर भी हम उनसे छूट नहीं पाए हैं ।

आदिम मानव में समस्त शृंगार-क्रियाओं के प्रति अलौकिक भावना रही होगी । इसी प्रकार जड़ी-बूटी और उपवास द्वारा उत्पन्न अनुभूतियाँ भी उसे अलौकिक लगती होंगी । ये सब उसके धर्म का अनिवार्य अंग बन गई होंगी ।

सभ्यता और ज्ञान के विकास के साथ धर्म में इस काम के प्रति क्रियाएं उठी होंगी । अनुमान है कि यह प्रतिक्रिया तीन रूप में हुई होगी । प्रथम में काम को सहज रूप में धर्म का अंग स्वीकार कर लिया गया होगा । उस समय काम-क्रियाओं को धार्मिक रूप दिया गया होगा और धार्मिक क्रियाओं को काम -स्वरूप बतलाया गया होगा । वैदिक कालीन धर्म में धर्म और काम की ऐसी समता के अनेक उदाहरण हम पीछे दे आए हैं । संभोग यज्ञ है तथा यज्ञ संभोग है, मंत्रों का संभोग-क्रिया रूप में पाठादि इसी स्थिति के द्योतक हैं ।[३]
प्रतिक्रिया का दूसरा रूप धर्म में काम के दमन द्वारा प्रकट हुआ । धर्म के ब्रह्मचर्य का महत्व इसी कारण हुआ होगा । संभवतः इसके पीछे यह विचार रहा होगा कि विवाह और गृहस्थी मानव को सांसारिक बनाने वाले हैं । ब्रह्मचारी सभी बंधनों से मुक्त होने के कारण ईश्वर के प्रति एकनिष्ठ हो सकता है । मनोवैज्ञानिक इस विचार को इस प्रकार व्यक्त करते हैं कि अविरुद्ध कामवासना धर्म के क्षेत्र में कई गुनी तीव्र होकर प्रकट होती है । इस रूप में ब्रह्मचर्य की भावना के पीछे काम का दमन है । भारतीय कामों में काम के इस दमन का [illegible] मिलता है । तपस्या, भिक्षु-जीवन और वैराग्य का भारतीय धर्मों में महत्वपूर्ण स्थान है । इन भिक्षुओं, साधुओं के जीवन में काम के दमन की प्रतिक्रिया में कितनी कामुकता उत्पन्न हुई इसका प्रमाण बौद्ध धर्म के संघों के इतिहास में है । इसी के फलस्वरूप अनेक संप्रदायों

---

३- प (क) ५, ६ ।

में बाल्य रूप में ब्रह्मचर्य पर महत्व देते हुए मानसिक श्रृंगार का द्वार खोल दिया गया । श्रृंगारिक संप्रदायों में इष्ट की श्रृंगार लीला का चिंतन मनन ऐसी ही तुष्टि करने वाला है । इस प्रतिक्रिया का तीसरा रूप सचेष्ट हो कर काम को धर्म का अंग स्वीकार करने में है । इसका विकास"स्वतंत्र-प्रेम" के रूपमें हुआ है स्वतंत्र प्रेम का अर्थ है अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य स्त्रियों से संबंध की छूट । सिद्ध, सहजिया आदि में परकीया का यही आधार प्रतीत होता है । "स्वतंत्र प्रेम " की इस स्वीकृति के दो तर्क दिए जाते है । प्रथम यह कि शारीरिक और आत्मिक संबंध भिन्न-भिन्न है । पत्नी के रहते हुए भी अन्य स्त्री से आध्यात्मिक संबंध स्थापित किया जा सकता है । दूसरी यह कि आत्मा पर शारीरिक क्रिया-कलापों का प्रभाव नहीं पड़ता । फलस्वरूप साधक उन सभी कर्मों को करने लगता है जिन्हें साधारणतः त्याज्य समझा जाता है ।यह कार्य धार्मिक प्रभाव के साथ प्रकट रूप में किए जाते है ।

भक्तों की अनुभूतियों में भी काम का स्वरूप मिलता है । इसे वे लीला दर्शन, लीला-प्रवेश आदि नामों से व्यक्त करते है । ये अनुभूतियां धर्म और काम की मौलिक एकता व्यक्त करती है । ऐसा अनुमान है कि ये अनुभूतियां मानसिक व्याधि के लक्षण है क्योंकि अनेक मानसिक रोगियों में प्राप्त अनुभूतियों और भक्तों की अनुभूतियों में बड़ा साम्य है ।[४]

भक्तों की अनुभूतियों के संबंध में यह तर्क दिया जाता है कि उनका आलम्बन अपार्थिव अथवा अलौकिक होता है । इस मत के लोगों का विचार है कि इससे कोई अंतर नहीं पड़ता क्योंकि भावनाएं मूल रूप में एक है ।

भक्तों की श्रृंगार प्रधान अभिव्यक्तियों को प्रतीक मानने के पक्ष में इस मत के लोग नहीं है । प्रो॰ जेम्स के विचार[५] से सहमत होते हुए ये लोग इन भावनाओं को लौकिक मानते हैं । बिना ... कता के इनमें वह तीव्रता तथा तन्मयता नहीं आ सकती है ...

---

४- देखें क्लौउस्टन कृत क्लिनिकल लेक्चर्स आन मैंटल डिजीसेज पृ॰५०४

५- "..there is not a single one of our state of mind, high or low, healthy or morbid, that has not some organic process as its condition-" Varieties of Religious Experience. p.14.

भक्तों में उपलब्ध होती है। इस संबंध में श्रृंगार और धर्म में "[illegible]
"[illegible]" की समानता भी हमारा ध्यान आकृष्ट करती है। यही
कारण है कि प्रेमी प्रेमपात्र की प्राप्ति के लिए साधु, योगियों का
रूप बनाते हैं। प्रेमाश्रयी शाखा के नायक इसके उदाहरण हैं।

इस संदर्भ में अंतिम महत्त्व पूर्ण बात है भक्त और संतों का
इन कामात्मक साधनाओं और अनुभूतियों में दृढ़ विश्वास है। वे इसे
धर्म का अंग मानते हैं और इसकी अनैतिकता का प्रश्न उनके सामने
उठता ही नहीं। मध्ययुगीन हिन्दी-भक्त कवि ऐसे ही हैं।

धर्म और श्रृंगार को एक मानने वाले लोगों के उपर्युक्त तर्क
संक्षेप में इस प्रकार रखे जा सकते हैं:-

(१) भक्त और संतों की अनुभूतियों और वाणियों
में श्रृंगारिकता है। उनकी साधनाएं श्रृंगारिक हैं।

(२) इन श्रृंगारिक अनुभूतियों और साधनाओं में उनका
दृढ़ विश्वास है कि ये धार्मिक हैं।

(३) उनकी ये अनुभूतियों और अभिव्यक्तियां प्रतीकात्मक
नहीं है बल्कि यथार्थ हैं, और

(४) इसके पीछे

(क) वैराग्य की प्रतिक्रिया है,

(ख) दमित काम -वासना प्रच्छन्न और मानसिक भोग
रूप में व्यक्त हुई है,

(ग) इस श्रृंगारिकता की स्वीकृति शरीर के ऊपर
आत्मा की महत्ता प्रतिपादक करने के कारण भी हुई
है।

## द्वितीय मत

दूसरा वर्ग उन विद्वानों का है जो कि धर्म में श्रृंगार के
प्रभाव को मानते हुए भी उसको नगण्य समझते है। उनके अनुसार
श्रृंगारिकता ऐसी क्रियाओं में ही अधिकतर प्राप्त है जिनको धर्म में
कोई महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है जैसे जादू-टोना, प्रेम-साधना
आदि। धर्म में जो थोड़ी बहुत श्रृंगारिकता मिलती है वह केवल
प्रजनन उत्सव देवदासी-प्रथा अथवा शिश्नोपासना

उनका विचार है कि ऐसे उत्सव जिनमें काम-स्वतंत्रता रहती है काम-वासना के उन्मुख रूप नहीं है बल्कि प्रजनन और उत्पत्ति की शक्तियों के प्रति श्रद्धा-प्रदर्शन मात्र है। धर्म का संबंध नैतिकता से है और वह इस (काम) शक्ति को स्वीकार कर उसका नियंत्रण करता है और पवित्रता का आदर्श स्थापित करता है।

इन लोगों के अनुसार धर्म में श्रृंगार तीन रूपों में प्रकट होता है- (१) देवियों, (२) शिश्नोपासना और (३) धार्मिक और लौकिक प्रेम द्वारा।

संसार के सभी धर्मों में ऐसी देवियां है जो कि प्रेम विवाह और वासना की प्रतिमूर्ति हैं। रोम की " बीनस " ग्रीस की " अफ्रोडाइट", " स्कैंडीनेविया की "फ्रेमा", "बेबीलोन की "इश्तर' एज़्टेक की"ट्लजोल्टइओल"[६] भारत की राधा, उर्वशी, रम्भा, मेनका, विमला, उमा आदि ऐसी ही देवियां हैं। इन देवियों के व्यवहार और उनकी उपासना से स्पष्ट है कि भक्तों के हृदय में इन देवियों का प्रेमात्मक स्वरूप ही मुख्य है। इन देवियों के प्रति इनके स्वामियों का व्यवहार भी अनेक बार अत्यंत वासनात्मक चित्रित हुआ है।

धर्म में श्रृंगार की प्रमुखता मानने वालों का कहना है कि इन देवियों का स्वरूप तब तक स्पष्ट नहीं होता जब तक कि इनके प्रतीकों को न समझा जाए। इन प्रतीकों में शिश्न-योनि प्रतीक सबसे महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार सर्प से संबंधित मनसा- मंगल की कथाएं भी श्रृंगारिक है। कुछ तो फल, फलयुक्त वृक्ष और यहां तक कि गोंद में भी श्रृंगारिक प्रतीक देखते हैं। उनके अनुसार " कमल" "ॐ" तथा " आमीन" भी श्रृंगार-प्रतीक है।[७]

इसका विरोध करते हुए द्वितीय मत वालों का कहना है कि अधिकतर देवियों का संबंध श्रृंगार से नहीं है। उदाहरणार्थ- रोम की " मिनर्वा", भारत की "लक्ष्मी", " सरस्वती", और "सीता" आदि। इसके अतिरिक्त कालांतर में प्रेम और वासना की देवियों का भी नवीन रूप विकसित हो गया। पार्वती और विमला

---

१- कूपर- सिम्बालिक ऐण्ड माइथिलाजिया, खण्ड १(।) पृष्ठ ४१२

७- वही

ऐसी ही देवियां है। साथ ही साथ शृंगारिक देवियों के प्र...
कारण उनकी बहुलता नहीं बल्कि मानव की दुर्बलताएं हैं। इनका कहना है कि सर्वत्र शृंगारकी प्रधानता देखने वालों का मस्तिष्क स्वयं शृंगार से इतना संपृक्त है कि उन्हें और कुछ सूझता ही नहीं है। इनके अनुसार सौन्दर्य और चपलता के प्रतीक रूप में शृंगारिक प्रतीक देखना अनुचित है। इसी प्रकार कमल सुंदरता, पवित्रता और आध्यात्मिकता का प्रतीक है। उसमें भी शृंगार देखना अपनी विकृत मानसिक स्थिति के कारण है। ऐसे लोग प्रत्येक वस्तु खंभे, दरवाजे, कलम, दावात, नाली आदि में शृंगारिकता ही शृंगारिकता देखते है जिसका वहाँ नामो-निशान भी नहीं होता है।

धर्म का उद्देश्य सदा काम-वासना का नियंत्रण और दमन करना रहा है। भारत, मिस्त्र, यूरोप, मैक्सिको आदि सभी देशों में ब्रह्मचर्य तथा वैराग्य की प्रतिष्ठा करने का धर्म ने सदा प्रयत्न किया है। इन देशों में विहार, संघ, कानवेंट आदि का निर्माण इसी काम के नियंत्रण के लिये ही हुआ था और इस कार्य की ओर वे लगन से लगे रहे। संभव है धर्म में काम के प्रभाव को और भी कम करने के कारण ही देवता-अवतारादि का जन्म कुमारी कन्या, यज्ञ आदि से प्राप्त चरु, अन्य इन्द्रियों से अथवा प्राकट्य द्वारा बतलाया गया है। अयोनिज देव-देवियों की कल्पना बहुत प्रचलित है। इस प्रकार धर्म ने ब्रह्मचर्य और वैराग्य को सर्वोच्च स्थान दिया है। मंदिरों में देवदासियाँ रही हैं और उनका दुरुपयोग भी हुआ है किन्तु अधिकतर मंदिर, विहार आदि ने अपने यहाँ के स्त्री-पुरुष, भिक्षु-भिक्षुणियों आदि की पवित्रता की रक्षा का ही प्रयत्न किया है। धार्मिक कृत्यों में स्त्री की महत्ता उसकी यौनात्मकता के कारण नहीं है। उनकी तीव्र भावात्मकता और कलात्मकता के कारण ही उपासनादि में उनका विशेष स्थान रहा है। अतः धर्म कुछ विकृतियों को ही पकड़ कर उसके आधार पर निष्कर्ष निकालना उचित नहीं है।

इस प्रकार धर्म और शृंगार में अधिक से अधिक एक संबंध ही माना जा सकता है। दोनों को एक कहना अनुचित है। धर्म और शृंगार में यह संबंध दो कारणों से है -(१) दोनों में ही एक ही भावना काम करती है तथा (२) प्रजनन या काम-वृत्ति की अत्यंत

सैंटीमेंट" में पृष्ठ १३ पर लिखा है:-

" धार्मिक भावना को प्रश्रय दीजिए और प्रेम स्वयं उत्पन्न हो जाएगा जो कि व्यक्तिगत तथा सांस्कृतिक भिन्नता के अनुसार विभिन्न रूपों में विकसित होगा । किसी भी प्रकार के प्रेम को अत्यन्त तीव्रता से विकसित कर दो और धार्मिक भावना से संबंध के कारण यह व्यक्ति की धार्मिक भावना को अपने अनुकूल बना लेगा दोनों के संबंध का यह साधारण नियम है ।"

दूसरे नियम के अनुसार धर्म का कार्य मानव जीवन पर नियंत्रण करना है । धर्म में काम की अधिकता इस बात का प्रमाण है कि मानव की काम वृत्ति इतनी तीव्र है कि उसका नियंत्रण कठिन है । धर्म यह नियंत्रण दो प्रकार से करता है - (क) दमन के द्वारा तथा (२) परिष्कार के द्वारा । शिश्नोपासना का प्रभाव परिष्कृत हो गया है । आज यह काम-प्रतीक होते हुए भी काम से एक दम अलग है । ग्रिफिथ ने जापानी शिश्नोपासना (रिलीजन इन जापान पृ० ५१) के संबंध में लिखा है कि इस उपासना में जीवन के रहस्य को समझने के अतिरिक्त मैंने और कुछ नहीं देखा । भारतीय शिवलिंग में भी अब काम-भावना नहीं है । काम की प्रबल वृत्ति के दमन तथा उन्नयन के इस प्रकार के प्रयत्न तथा जीवन से सामंजस्य को न समझसकने के कारण ही धर्म में शृंगार को गलत समझा गया[८]।

इस प्रकार नृशास्त्रियों ने धर्म और काम के संबंध में विभिन्न मतों को प्रस्तुत करते हुए भी यह एक मत से स्वीकार किया है कि धर्म और काम की मूल भावनाएं एक हैं । प्रारंभ में दोनों मुले मिले थे और बाद में भी धर्म ने किसी न किसी रूप में काम को अंग रूप में स्वीकार किया । दोनों का संबंध आदिम काल से रहा है और आज भी है ।

३- मनोवैज्ञानिक व्याख्या-

धर्म और काम के निकट संबंध की ओर अनेक मनोवैज्ञानिकों का ध्यान गया है । इस संबंध को व्यक्त करने वाले अनेक "केस" इन मनोवैज्ञानिकों ने प्रस्तुत किए हैं ।[९] उन्माद रोग के चिकित्सकों

---

८- स्टार बक- इंसाइक्लोपीडिया आफ रिलीजस ऐंड एथिक्स पृ०८
९- जे०बी०फेडरिक-हैवलक एलिस-स्टडीज इन द साइकलाजी आफ

ने बारंबार इस संबंध का उल्लेख किया है । उनके विचार से भक्तों में यह काम व्याधि विशेष रूप से मिलती है ।[१०] इस संबंध में बलात बारस का कहना है कि वे मरीज जो कि अपने को कुमारी मरियम, चर्च, ईश्वर या मसीह की पत्नी समझते हैं, उनमें आगे या पीछे विकृत काम-भावना के लक्षण अवश्य प्रकट होते है । फारेल अपनी पुस्तक" डाई सैक्सुली फ्रैज " में अपना तर्क देते हैं कि धार्मिक भावना के मूल में अज्ञात रूप से काम भावना रहती है । अपनी पुस्तक " सैक्सुएलबन अनसरर जी अत" में बलाख का कहना है कि एक अर्थ में धर्म के इतिहास को मानव काम भावना का व्यक्त इतिहास कहा जा सकता है । धर्म और काम के संबंध का अध्ययन करने वाले अनेक विद्वानों ने इस संबंध को स्वीकार किया है[११]। क्राफ्ट एबिंग भी दोनों के संबंध को अन्योन्याश्रित कहते है ।[१२] इस संबंध में प्रसिद्ध काम शास्त्री हैवलक एलिस का विचार है कि काम -कीन भावना धर्म-भावना का मूल स्त्रोत है, किंतु धर्म के संपूर्ण रूप को बनाने वाली नहीं है । उनके अनुसार काम भावना का प्रभाव पूर्ण विकसित धर्मों पर है किंतु उसकी मूल सामग्री इस भावना से नहीं प्राप्त हुई है । इसने शायद धर्म के विकास की सुप्त संभावनाओं को जागृत किया है ।[१३]

मनोवैज्ञानिकों के इन विचारों को बतलाने के उपरांत धर्म और काम के संबंध में समस्त मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों को उनके महत्वानुसार क्रम से नीचे दिया जा रहा है । इन सिद्धान्तों का संकेत पहले भी हो चुका है । इन सभी में सत्यांश है पर पूर्ण सत्य शायद सम्भवतः इनमें से किसी एक में नहीं है ।

---

१०- वर्थयिर, वही

११- ब्रानर्डल, मार्सली, बैसन, मेरी, ह्यूगुस आदि ।

१२- साइकोपैथिया सैक्सुआलिस, अष्ठम् संस्करण पृ०८ और ११

१३- स्टार बक,-साइकलाजी आफ रिलीजन, अध्याय ३० तथा हैवलक एलिस- स्टडीज् इन दि साइकलाजी आफ सैक्स खण्ड १, भाग १, पृष्ठ- ३१४-३१६

काम -भावना के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त

(क) काम -भावना धार्मिक भावना से पृथक है । इस विचार के अनुसार दोनों में कोई भी संबंध नहीं है । कभी-कभी काम-भावना अपनी सीमा तोड़ कर धर्म में प्रवेश कर गई है पर दोनों में कोई संबंध नहीं है । इस विचार का कारण यह है कि संसार की सभी वस्तुओं को दो खंडों में विभाजित कर दिया जाता है- एक तो पवित्र और दूसरी अपवित्र । एक धार्मिक और दूसरी अधार्मिक, एक श्रेष्ठ और दूसरी निकृष्ट । यह विचार गलत है । इस प्रकार का विभाजन आदिम मानव में नहीं था । उसमें धार्मिक और शृंगारिक क्रियाओं में अंतर प्राप्त नहीं है । यह विभाजन विकसित मानसिक अवस्था का है जिसमें काम-भावना की प्रबलता को स्वीकृत करते हुए उससे धर्म को बचाने की भावना है । इस सिद्धांत की दुर्बलता इसकी विभाजन-प्रणाली और काम को निकृष्ट मानने में है । यह सिद्धांत धर्म को अत्यंत सीमित और सूक्ष्म मानता है जो कि सत्य नहीं है ।

(ख) काम-भावना और धर्म-भावना एक है । यह सिद्धान्त प्रथम का विलोम है । इसके अनुसार धार्मिक भावना काम -भावना का ही परिष्कृत रूप है । काम-भावना और धार्मिक भावना का विकास साथ-साथ हुआ है । शारीरिक और आध्यात्मिक प्रेम का स्वरूप एक है और उनके विकास की सरणियां भी एक है ।[१४] ऐसा अक्सर देखा गया है कि स्त्रियां में काम-विचार धार्मिक रूप धारण कर लेता है[१५]

उपर्युक्त विचार विकसित धर्मों के संबंध में लागू नहीं होते । आज तो धर्मों में जो काम का स्वरूप मिलता है वह वासना को नियंत्रित करने के लिए है । इसके अतिरिक्त धार्मिक प्रेम के मूल में काम के साथ -साथ साहचर्य और सौन्दर्य -भावना भी है । यह हमें नहीं भूलना चाहिये । सर्वत्र काम ही काम देखना अनुचित है । धर्म में केवल काम भावना ही नहीं अन्य अनेक भावनाएं भी है ।

---

१४- हाल- एडोलेसेंस ( १९०४ ) पृ० २९५-३०१

१५- जे० बी०डिक्सन- दि साइंस एंड प्रक्टिस आफ मैडिसिन इन रिलेशन टू माईंड - (१८७४ ) पृष्ठ ३८३

(ग) धर्म में काम का नियंत्रण है । धर्म का उद्देश्य जीवन को आदर्श बनाना है । इसलिए यह जीवन की सभी क्रियाओं का नियंत्रण करना चाहता है । इन क्रियाओं में "काम" भी है । पहले अधिक संतान का महत्व था । समाज का संगठन सुदृढ़ तथा व्यापक नहीं था । उस समय अबाध-काम संबंध का महत्व था । परिवार के संगठन के उपरांत विवाह के स्थायित्व पर अधिक बल दिया जाने लगा होगा । व्यभिचार बुरा समझा जाने लगा होगा और काम-भावना नियंत्रित की गई होगी । धर्म इसी नियंत्रण का स्वरूप है और इसीलिये धर्म ने काम-संबंध-विवाह आदि को अपने अंतर्गत ले लिया । इसने काम-भावना को एक ओर रोका और दूसरी ओर विवाह के रूप में उसको एक मार्ग भी दिया । विवाह को धार्मिक क्रिया और स्थायी संबंध बनाकर धर्म ने काम-भावना को सामाजिक बनाया और उसका नियंत्रण किया । इस रूप में धर्म और काम का संबंध है ।

(घ) धर्म में काम की स्वीकृति है । कभी - कभी धर्म ने काम को विशेष रूप से स्वीकार कर उसे प्रश्रय भी दिया है । इस प्रश्रय का कारण सामान्यतः सामाजिक होता है और इसका रूप धार्मिक । बड़े परिवारों और उनमें भी पुत्रों की उपयोगिता देख कर धर्म ने संतानोत्पत्ति और पुत्रोत्पत्ति को धर्म का अंग बना लिया। बिना पुत्र उत्पन्न हुए वंश तो नष्ट होता है पितर भी पीड़ित होते हैं । इस प्रकार धर्म काम को बढ़ावा देता है । यह प्रश्रय देते हुए भी वह इसको एक सीमा से आगे नहीं बढ़ने देता है । इसी स्वीकृति के कारण भी धर्म में काम-भावना आई हो सकती है ।

(ङ०) धर्म में काम का मिश्रण है । धर्म विविध भावों एवं मनोवेगों का मिश्रित रूप है और काम-भावना उनमें से एक है । धर्म के विकसित रूप में यह काम-भावना कम होती जाती है । धर्म में भय, आत्म सम्मान, प्रेम, करुणा, जिज्ञासा, आदि अनेक भाव और मनोवेगों का मिश्रण है । ये अपने स्थूल और हेय रूप से परिष्कृत होकर धर्म में मिले हैं । जिस समय धर्म युवक-युवतियों को सामाजिक जीवन में प्रवेश कराता है उसी समय उसमें काम-भावना दिखलाई पड़ने लगती है । इस समय काम-भावना के साथ -साथ और भी अनेक विकास दिखलाई पड़ते हैं जैसे तर्कशीलता, साहसिकता आदि । अतएव

यह सोचना कि धार्मिक भावना में सर्वत्र काम-भावना ही है। अथवा इसी के ऊपर ही धार्मिक भावना विकसित हुई है - उचित न

यह सत्य है कि बहुत से रहस्यवादियों, भक्तों और संतों की धार्मिकता में काम-भावना का कारण शारीरिक या मानसिक विकृतियां होती हैं, किंतु उनकी मात्रा इतनी कम है कि इनके आधार पर ही धर्म को काम-मय मान लेना उचित नहीं है। साथ ही साथ अनेक धार्मिक विकृतियां ऐसी भी हैं जिनमें काम-भावना बिल्कुल नहीं रहती तथा ऐसी भी काम विकृतियां होती है जिनमें धार्मिकता का अंश भी नहीं रहता। अतः यह निष्कर्ष और भी अनुचित होगा कि धर्म और काम एक है।

प्रेम में तीन स्वतंत्र मनोवेग कार्य करते हैं- काम, साहचर्य और सौन्दर्य। काम के कारण धर्म में कोमलता, स्नेह आदि का प्रवेश होता है और अपने विकृत रूप में यह कामोपासना या यौनोपासना का रूप ले लेता है। साहचर्य के द्वारा परोपकार, दया, त्याग और भ्रातृत्व की भावना विकसित होती है। सौन्दर्य-भावना किसी भी वस्तु की सुन्दरता के प्रति आकृष्ट कर उसका आनन्द उठाने की भावना उत्पन्न करती है और इसके द्वारा ईश्वर की सर्वव्यापकता का भान होता है। इनमें सहचर्य की भावना क ही प्रमुख है। इसके लिए आवश्यक नहीं है कि लोग भिन्न-लिंगी हों। रिबट ने अपनी पुस्तक " मनोवेगों के विज्ञान " (१८९७ पृ० २७६-३०३) में यह सिद्ध किया है कि साहचर्य की भावना का आधार जीवनेच्छा है। इसी के कारणएक प्रकार के जीव परस्पर आकर्षित होते हैं। इस जीवनेच्छा कारण ही सामाजिक भावना का विकास होता है और इसमें "काम" का प्रवेश नहीं है। इसी साहचर्य की भावना से धर्म ने विशेष ग्रहण किया है, काम -भावना से नहीं। इस प्रकार धर्म का उद्देश्य काम की तृप्ति नहीं बल्कि जीवनेच्छा, साहचर्य और विकास है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि धर्म में काम का स्थान है। मानव की आदिम अवस्था में दोनों घुले मिले थे। सभ्यता के विकास के समय धर्म में काम का स्थान गौण होने लगा। और उसमें बौद्धिकता बढ़ती गई। जहां बौद्धिकता के स्थान पर भावना की महत्ता हुई वहीं धर्म में काम ने प्रवेश किया क्योंकि दोनों का मूल स्त्रोत बड़े अंश में समान है।

४- दार्शनिक व्याख्या

धर्म में प्राप्त शृंगार की दार्शनिक व्याख्या के अंतर्गत हम केवल भारतीय दार्शनिक व्याख्या देंगे । इस व्याख्या के पूर्व हम बतला आए हैं कि भारतीय धर्म में वैदिक काल से ही शृंगार प्राप्त है । इसके स्वरूप के आधार पर उसकी कुछ स्पष्ट विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं । उनको संक्षेप में दोहरा लेना अच्छा होगा । ये विशेषताएं निम्नलिखित हैं:-

(क) भारतीय धर्मों में शृंगार का स्पष्ट मिश्रण है । अनेक धार्मिक क्रियाओं का कामात्मक स्वरूप है और अनेक काम-क्रियाओं को धार्मिक माना जाता है ।

(ख) इन क्रियाओं का दार्शनिक आधार है ।

(ग) इन क्रियाओं के प्रति लज्जा या अश्लीलता की भावना नहीं है । इन्हें स्वाभाविक रूप से स्वीकार किया गया है पर उनको गोपनीय रखने का भी उल्लेख है ।

(घ) भारतीय धर्मों में काम अंग स्वरूप है । यही सब कुछ नहीं है ।

(ङ०) यह काम यद्यपि धर्म में प्रारम्भ से ही प्राप्त है पर भारतीय धर्मों के स्वरूपों के विकास के साथ यह विकसित होता रहा । इसकी अनुमानित रूप रेखा नीचे दी जा रही है ।

आर्यों के आगमन के बाद उनका द्रविड़ संस्कृति के संपर्क में आना स्वाभाविक था । द्रविड़ों को निकृष्ट मानते हुए भी दोनों संस्कृतियों का संगम होने लगा होगा । दोनों जातियों में परस्पर विवाह संबंध हुए । फलस्वरूप द्रविड़-संस्कृति के देवी-देवता, यक्ष-यक्षिणियों, नाग-नागिनें, भूतप्रेत आदि का प्रभाव आर्यों पर भी पड़ा । द्रविड़ों के अनुसार सभी वस्तुओं में आत्मा होती है । इस भावना के साथ द्रविड़ों की आर्यों में स्वीकृति हो गई और उन्हें शूद्र वर्ण के अन्दर स्थान मिला ।

द्रविड़ों के लोक-प्रचलित पूजा-पाठ आदि के कारण वैदिक कालीन धर्म में काम का महत्व बढ़ने लगा । इसका विरोध भी हुआ पर इसे रोका नहीं जा सका और धीरे-धीरे इसे स्वीकार भी कर

लिया गया । ऐसा भी संभव है कि कुछ अंशों में आर्यों में स्वतंत्र रूप से भी काम को धार्मिकता प्राप्त थी । सृष्टि के कारण यही "काम" है । और अथर्ववेद में इसके आकर्षण और प्रभाव का निरंतर गान है ।

आर्यों की दार्शनिक विचार धारा की मूलभित्ति परिवार पर थी । पितरों की तृप्ति के लिए सुखमय पारिवारिक जीवन होना चाहिए जिसमें पति-पत्नी अनेक पुत्रों को जन्म दें । इस सुखमय पारिवारिक जीवन-व्यतीत करने की अनेक विधियों और पति-पत्नी संबंध में उठने वाली कठिनाइयों का हल धर्म के अंतर्गत आ गया । इस प्रकार काम को स्वीकार करते हुए उसे जीवन और धर्म का महत्वपूर्ण अंग समझा गया और काम का उल्लेख धार्मिक पवित्रता के साथ किया गया । यही स्वीकृति भावी काम की अधिकता का मूलाधार है ।

## उपनिषद् और ब्राह्मण ग्रंथ

संहिता काल के बाद ऋषियों के चिंतन के फलस्वरूप एकेश्वरवाद या ब्रह्म की कल्पना विकसित हुई । इसी ब्रह्म ने इच्छा या काम से सृष्टि को उत्पन्न किया ।[१६] अद्वैत से द्वैत इस प्रकार विकसित हुआ और इसी द्वैत को मिटाना ही मोक्ष है । इस रूप में मानव की प्रजनन-विधि का आरोप ईश्वर पर किया गया । वही संसार का पिता है । उसके अन्दर स्त्री और पुरुष दोनों ही तत्व हैं । इसलिये उसके स्वरूप की कल्पना दो ही रूप में संभव है । वह या तो अर्द्धनारीश्वर रूप है अथवा मैथुन-क्रिया में आबद्ध जोड़े का । इस ईश्वर ने भोग के लिए दूसरे की कामना की और उसका स्त्री-रूप -प्रकृति-अलग हो गया । इस प्रकृति के साथ विविध रूप में संभोग कर इस संसार की सृष्टि पुरुष ने की । यही अद्वैत का द्वैत में परिवर्तन है । संसार में प्राप्त स्त्री और पुरुष उसी द्वैत के स्वरूप हैं । इसी द्वैत का नाश ही मोक्ष-जीवन का उद्देश्य है, ईश्वर की प्राप्ति है । फलस्वरूप स्त्री-पुरुष चिह्न- योनि और लिंग, प्रकृति और पुरुष के प्रतीक बन गए । संभोग सृष्टि का प्रतीक बना- यज्ञ कहलाया । समस्त भारतीय

---

१६- दे अ० १(क) ६६ बृहदारण्यक- १-४-१७, १-४-३ आदि

काम साधनाओं के दर्शन की यही मूल-भित्ति है ।

जिस प्रकार सृष्टि का प्रतीक संभोग बना, वैसे ही ईश्वरानन्द, ब्रह्मानन्द का प्रतीक भी मानवीय संभोगानन्द बना । संभोग सुख ही संसार में प्राप्त सभी सुखों में उत्कृष्टतम है । अतएव ब्रह्मानन्द को व्यक्त करने वाला है । इसलिए संभोग एक पावन क्रिया है, ईश्वरीय है यज्ञ है । धीरे-धीरे सभी काम क्रियाएं पवित्र और धार्मिक हो गईं । ब्रह्म का प्रतीक "ॐ" भी संभोग का प्रतीक हो गया और सभी कामनाओं की मूर्ति करने वाला हो गया ।

इन विचारों का उपनिषदों में उच्चतम विकास हुआ जो कि जन साधारण की बुद्धि से परे था । अतएव इन विचारों का अवश्य प्रभाव डालने के लिए अनेक कर्मों, पूजा आदि का विकास हुआ । हिन्दू धर्म को एक सूत्र में बांधने के लिए के संस्कार-विधि का विकास हुआ । विवाह को अग्नि की साक्षी दिला कर धार्मिकता प्रदान की गई । यह संस्कार विधि भारत-व्यापी हो गई ।

बौद्ध धर्म और योग का प्रवेशः-
----------------------------

ब्राह्मण धर्म की वर्ण-व्यवस्था और पुजारियों आदि के दुराचार के विरुद्ध गौतम और महावीर ने विद्रोह किया तथा बौद्ध और जैन सुधार आंदोलन चलाए । ब्राह्मण और इन धर्मों के बीच संघर्ष लगभग १००० वर्षों तक चलता रहा । इसी बीच प्रतापी सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म को अपनाकर इसका प्रचार भारत ही नहीं विदेश में भी किया । इस धर्म के भिक्षुक सारे भारतवर्ष में घूम घूम कर बुद्ध का संदेश सुनाने लगे । एक बार तो लगभग सारा भारत ही बौद्ध सा हो गया ।

यह बौद्ध धर्म ब्राह्मण धर्म की वर्ण-व्यवस्था और अन्य अनेक दोषों को दूर करने में तो समर्थ हुआ पर स्वयं उसकी संस्कार विधि आदि से अछूता न रह सका । धीरे-धीरे उसका प्रभाव बौद्ध भिक्षुओं पर पड़ता गया और उन्होंने भिक्षुओं की योग-साधनाएं अपना लीं । इतना ही नहीं, बौद्ध धर्म को लोक-पक्ष के निकट लाने का संघर्ष उसी के अन्दर चलने लगा और कट्टर हीनयान के स्थान पर उदार महायान का विकास हुआ जिससे उस समय के समाज में प्रचलित सभी प्रकार

के आचार-विचार, अर्चना-पूजा, विश्वास-अन्धविश्वास को अपना लिया ।

महायान में " शून्यता" के रूप विकास में परिवर्तन हुआ । योग्य शिष्य ही " बोधिचित्र" है । उसमें शून्यता और करुणा के संयोग से निर्वाण की स्थिति होती है । यही शून्यता और करुणा प्रज्ञा और उपाय हैं । इनके संयोग से निर्वाण के पर्याय महासुख की प्राप्ति होती है । शून्यता और प्रज्ञा -स्त्री, प्रकृति है । करुणा, उपाय-पुरुष हैं । दोनों का सामरस्य, सम्मिलन, द्वय ही "युगनद्ध " है ।

इसमें दो अन्य सिद्धान्तों का भी योग है । " अहंकृति " के अनुसार ध्यान के अवसर पर ध्याता अपने को ध्येय रूप से देखता है। साधक स्वयं अपने को " हेरुक" के रूप में सोचता है । इस प्रकार दोनों में अद्वय होता है । दूसरे सिद्धांत के अनुसार लौकिक स्त्री-पुरुष पारलौकिक स्त्री-पुरुष, प्रज्ञा-उपाय के रूपान्तर हैं । साधक और मुद्रा-उपाय तथा प्रज्ञाके प्रतिरूप हैं । इस प्रकार उपाय-भगवान, वज्रसत्व, युवक है । प्रज्ञा-भगवती, मुद्रा, वज्रकन्या, युवती, षोडश-वर्षी है । युवक का लक्षण वज्र और युवती का पद्म है। वज्र और पद्म का संयोग ही साधना है ।

योग-सूत्र के सिद्धान्त भी हिन्दू और बौद्धों दोनों को समान रूप से मान्य हुए । उसके अनुसार प्रत्येक जीव का प्रतीक एक यंत्र के द्वारा व्यक्त किया जा सकता है । यह यंत्र मानव के शरीर के अन्दर स्थित सूक्ष्म केन्द्रों को व्यक्त करते हैं । विभिन्न आसनों द्वारा शरीर के इन केन्द्रों को इस प्रकार बदला जा सकता है कि वे एक नवीन यंत्र का रूप धारण कर लें । यदि इन यंत्रों का अभ्यास किया जाय तो कुछ काल बाद, इन केन्द्रों को बदलने के कारण वह साधक उस नए रूप को प्राप्त कर लेगा जो कि उस प्रकार के यंत्र द्वारा व्यक्त होता है । इन केन्द्रों पर अधिकार प्राप्त करने के दो मुख्य आसन हैं । एक तो पद्मासन और दूसरा काम-कला के आसन जिनकी संख्या ८४ मानी गई हैं । इन आसनों के अभ्यास द्वारा मनुष्य क्लेश, राग, द्वेष, अस्मिता और अभिनिवेष से छूट कर कैवल्य प्राप्त कर लेता है ।

**काम सूत्र का प्रवेश-**

विवेचन की आवश्यकता पड़ी । पुरुषार्थ में काम को गौण से ही कम महत्व है अन्य से नहीं । अतः कामशास्त्र को धार्मिकता प्राप्त हुई और वात्स्यायन ऋषि माने जाने लगे । कामानन्द को ईश्वरानन्द का स्वरूप पहले ही माना जा चुका है और इस प्रकार से धार्मिक स्वीकृति मिलते ही कामानन्द की धर्म में प्रबलता हो गई।

वैष्णव, शैव और शाक्तों का प्रवेश

दसवीं शताब्दी के आस पास साँप्रदायिक देवताओं का ब्रह्म से तादात्म्य् होने लगा । इसके फल स्वरूप तीन देवताओं को प्रमुखता प्राप्त हुई । विष्णु को परब्रह्म मानने वाले वैष्णव, शिव को मानने वाले शैव और शक्तियों को मानने वाले शाक्त हुए । शंकर के अद्वैत को आधार मान कर भी उसके विरोध में इन संप्रदायों का विकास हुआ । इन संप्रदायों ने भक्ति को भी महत्व दिया । इनमें इष्ट का स्वरूप मानवीय माना गया । और उसकी अनुकम्पन से मुक्ति ।

शैव और शाक्त संतों में गुह्य-उपासनाएं प्रचलित हुईं । परब्रह्म का स्वरूप शिव-शक्ति का समालिंगित रूप है । शैवों के "सोम सिद्धान्त" के अनुसार यही रूप आराध्य है ।[१७] साधक भी पार्वती की प्रतिरूपा स्त्री से सानन्द आलिंगित होकर उपासना करना है ।

पशुपतों की गणकारिका में " साधन " के अंतर्गत शृंगारण, मर्दन आदि अश्लील चेष्टाओं का विधान है । इससे तथा कौलों से संबद्ध निःश्वासतत्व -संहिता में गुह्य[१८] उपासना का विधान है । इस उपासन के चार विभाग हैः-(१) मूल-सूत्र,(२) आदि-उत्तर सूत्र(३) प्रथम नय-सूत्र और (४) पूर्व गुह्य सूत्र । इसी के आधार पर कौलों में दो भेद- उत्तर कौल और पूर्व कौल है । उत्तर कौलों में साक्षात् युवती की देवी रूप में पूजा होती है किन्तु पूर्व कौलों में उसके अंग विशेष की अर्चना का ही विधान है । इन कौलों का ९-१० शताब्दी में व्यापक प्रचार था । ये नारी रूप धारण कर देवी की उपासना करते थे ।[१९]

१७- दि सोमि आर दि सोम सेक्ट आफ दि शैवस्-इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली, भाग ८ पृ० २२०

१८- प्रबोध चन्द्र बागची: स्टडीज़ इन तंत्र पृ० १-८

१९- एपीग्राफिका इंडिका भाग १ पृष्ठ ११२ तथा आर०सी०मजुमदार: दि हिस्ट्री आफ बंगाल पृष्ठ १७४

इन्हीं से संबद्ध "त्रिपुर सुंदरी" का सिद्धान्त है। इसमें भी उपर्युक्त साधनाएं दिखाई देती हैं। इस मत में शिव-शक्ति के सामरस्य को "सुंदरी" कहते हैं। इसमें शक्ति तत्व प्रधान है। सुंदरी के रूप में कामेश्वर और कामेश्वरी दोनों का समन्वय है। यह सुंदरी किशोरी या नित्य षोडश-वर्षी है। इनकी उपासना के लिए साधक को किशोरी रूप धारण करना अनिवार्य है।

परब्रह्म के रूप में शिव-शक्ति के संगम की कल्पना के साथ ही मानव-शरीर को संसार का रूप भी माना गया है। इस शरीर के मस्तिष्क में, सहस्रार में शिव का निवास है तथा मूलाधार में शक्ति कुंडलनी-रूप में रहती है। इस शक्ति का शिव के संगम कराना ही परब्रह्म को प्राप्त करना है।

शिव-शक्ति के इस संयोग में हठ-योग की साधना आवश्यक है। मानव शरीर के बाईं और दाहिनी ओर क्रमशः इड़ा और पिंगला नाड़ियाँ हैं। मेरुदंड के भीतर से हो करसुषमणा नाड़ी जाती है। प्राण और अपान वायु को इसी सुसमणा नाड़ी के द्वारा मिलाकर साधक ब्रह्म को प्राप्त करना है।

शिव-शक्ति का यह स्वरूप पुरुष और स्त्री रूप में संसार में भी है। जिस प्रकार अंतिम सत्य शिव-शक्ति का संगम है उसी प्रकार लौकिक धरातल पर भी स्त्री-पुरुष का संगम उसी मूल सत्य का रूप है। अतएव स्त्री-पुरुष को यह साधना सम्मिलित होकर करनी चाहिए। शिव और शक्ति का यही प्रतीक लिंग और योनि है। दोनों का संयोग यज्ञ है।

परब्रह्म की इस प्राप्ति के लिए "पंच मकार" की साधना है इनके उपभोग के द्वारा साधक संसार के बंधन से छूट जाता है क्योंकि यही जीव को बांधने वाले हैं। इनका उपयोग गुरु के द्वारा ही संभव है। ये उस विष की भांति है जो कि उचित प्रयोग के द्वारा विष के प्रभाव को नष्ट कर सकते हैं पर इनका दुरुपयोग शाघातक भी हो सकता है। अतएव यह साधना गुह्य और जन साधारण के लिए नहीं है।

वैष्णवों में गुह्य उपासना नहीं है। विष्णु और शक्ति का श्रृंगारिक रूप सातवीं शताब्दी में प्राप्त है। कहीं-कहीं गोपी

भाव भी मिलता है पर शक्ति का प्राधान्य साजीवित स्त्री की उपासना नहीं मिलती । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे शैव-शक्ति से अप्रभावित रहे ।

वैष्णवों ने भी ब्रह्म-रस, के लीला हेतु दो रूप कृष्ण और राधा माने । यह लीला वृंदावन के निकुंजों में हुई । कृष्ण ही एक मात्र पुरुष है और राधा शक्ति । इनका पारस्परिक संबंध ही "हित" है । सारी सृष्टि में हित-तत्व" ही व्याप्त है । सिद्ध देह से उस हित तत्व का साक्षात्कार ही रस भक्ति है । इस वैष्णव भक्ति में पांचरात्रिक मंत्रमंडल युक्त पूजा का प्रत्याख्यान हुआ और युगनद्ध-समालिंगित रूप से युगल उपासकों का ध्यान एक मात्र साधना बनी । इसका बीज बौद्ध और शैव-शाक्त उपासना में ही है । अंतर इस बात का रहा कि इन वैष्णवों ने युगल सरकार को शरीर के किसी चक्र में नहीं देखा । वैष्णव भक्तों के लिए कृष्ण की ऐतिहासिक परंपरा थी और वही आधार बनी । वृंदावन में राधा कृष्ण का अहर्निश विहार ही ध्येय बना । सहजिया वैष्णवों ने वृंदावन का प्रतीकात्मक अर्थ स्त्री का शरीर लिया पर अन्य वैष्णवों ने उसे नहीं माना । लौकिक वृंदावन ही नित्य लीलास्थली है । वैष्णवों के राधातत्व में भी "किशोरी या सुंदरी" तत्व ही है । यथार्थ में मध्ययुगीन वैष्णव धर्म की श्रृंगारिकता में उपर्युक्त सभी तत्वों का सम्मिश्रण है । इसी दार्शनिक आधार पर धर्म में श्रृंगार की स्वीकृति हुई है ।

## ५- निष्कर्ष

धर्म और श्रृंगार के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं:-

(१) धर्म में काम व्यापक और घनिष्ट रूप में प्राप्त है ।

(२) धर्म में काम की यह व्यापकता नृशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से स्वाभाविक है ।

(३) धर्म में काम के इस रूप को दार्शनिक आधार दे कर इसे स्वीकार कर लिया गया है और इसे धार्मिकता प्रदान कर दी गई है ।

(४) मध्ययुग में प्राप्त शृंगार की यह पृष्ठभूमि है यदि यह पृष्ठभूमि न होती तो आलोच्य काल के भक्तगण अपने इष्टदेवों की शृंगार-लीला के इतने खुले और निर्भीक वर्णन न कर सकते जिस रूप में उन्होंने किया है। भक्त कवियों के शृंगार-वर्णन का रहस्य इसी पृष्ठ भूमि में ही है।

------oooo-

## द्वितीय अध्याय

## श्रृंगार रस

(क) भक्ति शास्त्रीय परिचय

(ख) मनोवैज्ञानिक परिचय

(ग) भक्ति में श्रृंगार रस

# श्रृंगार रस

## भूमिका

प्रस्तुत अध्याय में श्रृंगार रस का मक्ति-शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक परिचय ही दिया गया है । साहित्य शास्त्रीय परिचय देने की आवश्यकता इसलिए नहीं समझी गई क्योंकि यह विषय लगभग सर्वज्ञात है । उसका मौलिक विवेचन विषय की सीमा के बाहर होने के कारण उचित नहीं है तथा केवल श्रृंगार रस की साहित्य-शास्त्रीय रूप रेखा देना प्रबंध के आकार को अनावश्यक रूप से बढ़ाना होगा । इसके स्थान पर श्रृंगार रस के मक्ति-शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक परिचय की आवश्यकता इसलिए समझी गई क्योंकि यह कुछ नवीन तथा अल्प-ज्ञात है । इस परिचय को भी अत्यंत संक्षेप में ही दिया जा रहा है क्योंकि इस दृष्टि से भी श्रृंगार रस का मौलिक विवेचन इष्ट नहीं है । इस संक्षिप्त परिचय से यह ज्ञात हो जाएगा कि किस प्रकार मक्ति-शास्त्र ने श्रृंगार रस को स्वीकार कर लिया है । मक्ति परक इस श्रृंगार रस के विवेचन में जहां कहीं साहित्य शास्त्रीय श्रृंगार रस से महत्वपूर्ण भिन्नता होगी उसका उल्लेख यथास्थान कर दिया जाएगा ।

## २(क) मक्ति-शास्त्रीय परिचय

मक्तों और उनसे प्रभावित आलंकारिकों ने परंपरागत रसों में 'नवीन रस 'मक्ति रस' की प्रतिष्ठा कराने का सदा प्रयत्न किया है । दंडी ने प्रेयस् के उदाहरण में जो दो उद्धरण दिए हैं वे मक्ति के ही हैं[1] और यह स्वाभाविक ही है कि बाद में मक्ति को एक स्वतंत्र रस की प्रतिष्ठा देने का आन्दोलन चले । मक्ति को एक रस मानने का विरोध भी कम नहीं हुआ । अभिनव भारती ने इसे रस

---

१- इत्याह युक्तं विदुरो नान्यतस्तादृशी घृति: ।
मक्ति मात्र समाराध्य: सुप्रीतश्च ततो हरि: ।। काव्यादर्श
तथा इति साक्षात्कृते देवे राज्ञो यद्राजवर्मण: ।
प्रीति प्रकाशनं तच्च प्रेय इत्यवगम्यताम् ।। वही

मानने से अस्वीकार किया और इसे शांत रस के अंतर्गत ही माना। दशरूपक कार ने भी इसकी स्थिति स्वीकार नहीं की। उसने प्रीति और भक्ति को भाव माना है और उन्हें हर्ष, उत्साह आदि किसी भाव में अंतर्निहित माना है। पंडित राज जगन्नाथ भी भक्ति को रस नहीं मानते हैं। वे इसे शांत के अंतर्गत लेने के लिये तैयार नहीं हैं और इसे भाव मात्र ही स्वीकार करते हैं। इसके विपरीत मधुसूदन सरस्वती, ने भगवद्भक्ति रसायन में, कविकर्णपूर ने अलंकार कौस्तुभ में और रूप गोस्वामी ने श्री हरि-भक्ति रसामृत सिंधु तथा उज्ज्वल नीलमणि में भक्ति रस की प्रतिष्ठा की है और उसका विस्तृत विवेचन किया है। प्रस्तुत प्रबंध का विषय भक्ति-रस के रसत्व पर विचार करना नहीं है, अत: हम इस समस्या को नहीं उठायेंगे।

भक्ति-शास्त्र की दिशा में सबसे महत्वपूर्ण कार्य गौड़ीय वैष्णवों का है। हिन्दी के भक्त-कवियों ने उनसे विशेष प्रेरणा ली हो ऐसा प्रतीत नहीं होता। संभव है कि अल्पांश में वे उससे प्रभावित हुए हों। गौड़ीय संप्रदाय के जिन हिन्दी-कवियों का ज्ञान हमें है वे भी विशेष महत्वपूर्ण नहीं हैं, अतएव प्रभाव की दृष्टि से श्रृंगार के भक्ति-शास्त्रीय विवेचन का विशेष महत्व नहीं है। इसके अतिरिक्त कुछ थोड़ी सी भिन्नता के अलावा यह संपूर्ण विवेचन श्रृंगार के शास्त्रीय विवेचन का ही भक्ति परक रूप है। अतएव यहां उसका संक्षिप्त विवरण मात्र ही दिया जा रहा है।

भक्ति-शास्त्र में श्रृंगार की महत्ता को स्थापित करने वाले श्री रूप गोस्वामी हैं। आप गौड़ीय वैष्णव संप्रदाय के मह... थे और वृन्दावन में आपका निवास था। भक्ति-शास्त्र ... आपके दो ग्रंथ हैं--श्रीहरिभक्ति रसामृत सिंधु और ... इन दोनों ग्रंथों में आपने भक्ति-रस तथा उसके सभी अंगों का विस्तृत वर्णन किया है।

भक्ति-रस के विवेचन में रूप गोस्वामी का आधार ... काव्य-शास्त्र है। उसमें भी श्रृंगार रस को ... शब्दावली में उसे भक्तिपरक रूप दिया

३ भक्ति-रस

रूप गोस्वामी ने श्री हरिभक्ति रसामृत सिंधु में "भक्ति रस" ही एक मात्र रस माना है। अन्य समस्त रस इसकी विभिन्न विभूतियां और प्रभेद हैं। इसकी चार लहरियों में सामान्य, साधन, भावाश्रित और प्रेम भक्ति का विवेचन है। इनमें सर्वोत्तम प्रेम भक्ति है। यह भाव भक्ति की परिपक्वावस्था है। यह उस समय विकसित होती है जबकि भावभक्ति सांद्रात्मा, प्रेम में विकसित हो जाती है। यह वैधी अथवा रागानुग दोनों भावों से विकसित हो सकती है। इष्ट प्रसाद भी इसका कारण हो सकता है। इसके विकास की सरणि इस प्रकार है--श्रद्धा, साधुसंग, भजन-क्रिया, अनर्थ-निवृत्ति, निष्ठा, रूचि, आसक्ति, भाव, प्रेम।

४ भक्ति रस का स्थायी भाव

~~रूप गोस्वामी~~ भक्ति रस का स्थायी भाव भगवद्भक्ति है। मधुसूदन सरस्वती इसे "चित्त की भगवदाकारता" मानते हैं। यह रति विभावादि द्वारा आस्वाद योग्य हो जाती है। भक्त के हृदय में पूर्व संस्कारों के कारण अथवा इस जन्म के अनुभवों के कारण भक्ति रस की वासना विद्यमान रहती है। कविकर्णपूर्ण इसे "चित्रद्रव" मानते हैं।

५- भक्ति रस के रूप

भक्ति रस के पांच मुख्य और सात गौण रूप हैं।[२] इनके नाम, वर्ण और ~~वर्ण और~~ देवता निम्नलिखित हैं:-

मुख्य रस

| | | |
|---|---|---|
| १- शांत | श्वेत वर्ण | कपिल देवता |
| २- प्रीति(दास्य) | चित्र | माधव |
| ३- प्रेयस(सख्य) | अरुण | उपेन्द्र |
| ४- वात्सल्य | शोण | नृसिंह |
| | श्याम | कृष्ण |

गौण रस

| | | | |
|---|---|---|---|
| १- | हास्य | पंडर | बलराम |
| २- | अद्भुत | पिंगल | कूर्म |
| ३- | वीर | गौर | कालकिन |
| ४- | करुण | धूम्र | राघव |
| ५- | रौद्र | रक्त | भार्गव |
| ६- | भयानक | काला | वाराह |
| ७- | वीभत्स | नील | मत्सय |

६- भक्ति रस का आश्रय

भक्ति रस का आश्रय भक्त है। यह साधनावस्था के अनुसार साधक या सिद्ध हो सकता है। साधक प्रयत्न-शील है, सिद्ध भगवान को प्राप्त कर चुका है। इसके भी दो उपभेद हैं--संप्राप्त सिद्ध अर्थात् जिसे साधन या कृपा द्वारा पूर्ण सिद्धि मिल चुकी है, तथा नित्य सिद्ध जिसे इष्ट गुण स्वाभाविक रूप से प्राप्त हैं जैसे गोपादि।

७- भक्ति-रस के आलम्बन विभाव

भक्ति रस के आलम्बन विभाव कृष्ण, गोप, गोपिकाएं आदि हैं। कृष्ण की पूर्णता की दृष्टि से तीन रूप हैं--ब्रज में वे पूर्णतम हैं, मथुरा में पूर्णतर हैं और द्वारका में पूर्ण हैं। नायक की दृष्टि से वे धीरोदात्त, धीरोद्धत, धीरललित और धीर प्रशांत हैं। उनमें ६४ गुण हैं। उनमें आठो सात्त्विक गुण भी हैं। केवल गांभीर्य के स्थान पर 'मांगल्य' गुण उनमें है। अट्ठारहों दोषों से वे रहित तथा विरोधी गुणों से पूर्ण हैं।

८- भक्ति-रस के उद्दीपन विभाव

भक्ति रस के उद्दीपन विभाव चार प्रकार के हैं--(क) प्रथम प्रकार के उद्दीपन उनके गुण हैं। ये कायिक, वाचिक और मानसिक हैं। कायिक उद्दीपन में उनकी वयः, सौंदर्य, रूप और मृदुता है। ... नाम हैं--कौमार्य (५ वर्ष तक), पौगंड (१० व

तक), कैशोर (१६ वर्ष तक, जिसके अथ, मध्य और शेष तीन भेद हैं) तथा यौवन (१६ वर्ष के बाद)।

(ख) द्वितीय प्रकार के उद्दीपन उनकी चेष्टाएं हैं--रास, दुष्ट वध आदि

(ग) तृतीय प्रकार के उद्दीपन उनके प्रसाधन हैं--ये अनेक हैं। वस्त्र, आकल्प और मंडन (आभूषण)। इनके अनेक उपभेद हैं।

(घ) अन्य परिस्थितियां--इनमें प्रकृति संबंधी एवं शेष परिस्थितियों आदि की गणना है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण वंशी है। इसके तीन भेद वेणु, मुरली और वंशी होते हैं। वेणु १२ इंच लंबी, मुरली एक गज लंबी तथा वंशी १७ इंच लंबी होती है।

९- भक्ति रस के अनुभाव

इसमें आठ सात्विक भावों के अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य विशेष अनुभाव माने जाते हैं -- (१) नृत्य, (२) विलुठित (भूमि पर लेटना), (३) गति, (४) क्रोशन (उच्च स्वर में चिल्लाना), (५) तनु मोटन (शरीर को तोड़ना), (६) हुंकार, (७) जृंभ (८) श्वास भूमन, (६) लोकानपेक्षिता, (१०) लाल श्रव (मुख से फेन बहना), (११) अट्ठहास (१२) घूर्णा, (१३) हिक्का। सात्विकों का स्निग्ध, दिग्ध और रूक्ष रूप में नवीन वर्गीकरण है।

१०- भक्ति रस के संचारी भाव

इसमें ह रस शास्त्र के तैंतीसों संचारी भाव एवं १३ नवीन संचारियों की कल्पना की गई है किंतु वे सभी उक्त तैंतीसों में ही आ जाते हैं।

भक्ति रस के उपर्युक्त विवेचन में रूप गोस्वामी ने माधुर्य रस को सर्वोपरि माना है।[3] यही मुख्य और रसराज है। इसी का विस्तृत विवेचन उन्होंने "उज्ज्वल नील मणि" में किया है।

---

३- मुख्य रसेषु पुरा यः संक्षेपेणोदितो रहस्यत्वात्।
पृथगेव भक्ति रसराट् स विस्तरेणोच्यते मधुरः॥
उज्ज्वल नील मणि पृ ४

यह मधुर रस यथार्थ में साहित्य-शास्त्रियों का श्रृंगार रस है। इस मधुर रस का उज्ज्वल नीलमणि के आधार पर तनिक विस्तार से परिचय दिया जा रहा है।

११- उज्ज्वल या मधुर रस

आगे कहे जाने वाले विभावादिकों से आस्वाद्यमान मधुररति ही "मधुर" नामक भक्तिरस है।[४]

१२- स्थायी भाव

गोपी और कृष्ण के संभोग को प्रियता प्रदान करने वाली "मधुर रति" ही मधुर रस का स्थायी भाव है--मिथो हरेर्मृगाक्ष्याश्च संभोगस्यादिकारणम्। मधुरा पर पर्याया प्रियताख्योदिता रतिः।[५] जिन स्वाभाविक अथवा लौकिक परिस्थितियों के कारण माधुर्य रति उत्पन्न होती है, वे अपनी श्रेष्ठता के क्रम से इस प्रकार हैं:-

(क) अभियोग - सीधे या दूत द्वारा भावोत्पिपादि,

(ख) विषय - इन्द्रिय विषय, शब्द, स्पर्श, घ्राणादि आदि से,

(ग) संबंध - सौंदर्य, वंश आदि की श्रेष्ठता के भावद्वारा,

(घ) अभियान - अनेक रमणीय पदार्थों वा व्यक्तियों के होते हुए भी किसी एक ही की प्रार्थना वा अभिलाषा करने से,

(ङ) उपमा - पद-चिन्ह, गोष्ठ तथा प्रिय-सखादि। तदीय विशेष हैं। और सादृश्य से,

(च) स्वभाव - वाह्य कारणों पर आधारित नहीं होकर स्वभाव से।

नायिका या हरिवल्लभा को ध्यान में रखकर रति की तीन कक्षाएं -- साधारणी, समंजसा और समर्था हैं। ये क्रमशः कुब्जादि में, महिषियों में तथा गोकुल देवियों में होती हैं। ये क्रमशः मणि के समान नातिसुलभ, चिन्तामणि के समान सुदुर्लभ एवं कौस्तुभ मणि के समान अनन्य अलभ्य होती हैं।[६]

"साधारणी" रति हरि के साक्षात्-दर्शन से उत्पन्न होती है, अतिसान्द्र नहीं होती तथा संभोग की इच्छा से युक्त रहती है। संभोगेच्छा के ह्रास के साथ इसका भी ह्रास हो जाता है। यह प्रेम तक विकसित हो सकती है।

पत्नी भाव से पूर्ण, गुणादि के श्रवण से उत्पन्न कुछ तीव्र रति "समंजसा" कहलाती है। इसमें संभोग तृष्णा कभी-कभी संवलित भी होती है। यह अनुराग की स्थिति तक विकसित हो सकती है।

जब यह संभोगेच्छा विशेषता प्राप्त कर लेती है, कृष्ण-सुख की ही भावना रह जाती है तब यह समर्था रति कहलाती है। यह रति प्रौढ़ होकर भाव एवं महाभाव की स्थिति तक जाती है।

माधुर्यरति का एक अन्य वर्गीकरण अवस्था भेद से उत्पन्न उत्कर्ष की विशिष्टता के आधार पर भी किया गया है। इसके निम्नलिखित स्वरूप हैं--

(क) प्रेम- यह प्रेमका नष्ट न हो सकने वाला बीज है। यह प्रौढ़, मध्यम और मंद हो सकता है।

(ख) स्नेह-- यह प्रेम से ऊंचा है। इसमें चित्त द्रवित हो जाता है। इस द्रवण का कारण दर्शन, श्रवण है। इसके भी श्रेष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ तीन भेद हैं। यह दो प्रकार का होता है--घृत स्नेह जो कि घृत के समान ठोस तथा स्थायी है पर स्वयमेव अनास्वादनीय है तथा दूसरा मधुस्नेह जो कि तीव्र और आस्वादनीय है।

(३) मान - स्नेह का यह विशेष रूप है। घृत स्नेह रूप से उदात्त तथा मधु स्नेहरूप से ललित मान होता है।

(४) प्रणय

विस्रम्भ अर्थात् विश्वास के साथ यह मान वृद्धि पाकर प्रणय में बदल जाती है। उदात्त और ललित मान के संयोग से यह भी दो प्रकार का सुमैत्र और सुसख्य हो जाता है। मान और प्रणय एक

दूसरे के सहायक हैं और इनका एक दूसरे से संबंध इस प्रकार है--
स्नेह, मान, प्रणय, अथवा स्नेह, प्रणय, मान ।

५- राग

इसमें दुख भी सुख बन जाता है । यह राग दो प्रकार का होता है । नीलिमा एवं रक्तिम । इन दोनों के क्रमश: नीलीराग और श्यामराग एवं कौसुम्भ राग और मंजिष्ठ राग दो-दो भेद हैं । नीलीराग स्थायी और बाह्यरूप से अप्रकट होता है तथा श्यामराग धीरे धीरे विकसित तथा अप्रकट रहता है । रक्तिम राग में दोभेद कुसुंभ राग तथा निरंतर अपनी कांति को बढ़ाने वाला मंजिष्ठ राग स्थायी है । राधा और माधव में यही राग विद्यमान रहता है ।

६- अनुराग

सतत अनुभूत होते हुए जो प्रिय को नव-नव बना देता है, वह स्वयं भी नव-नव बनने वाला राग "अनुराग" है । इसके परस्पर वशी भाव और प्रेम वैचित्य दो भेद हैं । पहले के अन्तर्गत प्रिय से संबंधित अप्राणि रूप में जन्म लेने की लालसा तथा दूसरे में विप्रलंभ विस्फूर्ति अर्थात् कल्पना में वियोग का अनुभव होता है ।

७- भाव अथवा महाभाव

यह प्रेम का सर्वोत्तम स्वरूप है । यह स्वसंवेद्य दशा को प्राप्त अनुराग है । यह केवल ब्रज की गोपियों को ही प्राप्य है । ब्रज देवियों में यह महाभाव कहलाता है । महिषियों के लिए "महाभाव" दुर्लभ है क्योंकि संभोगेच्छा के कारण उनका मन कभी भी सम्यक्रूपेण प्रेमात्मक नहीं होता । इसके विपरीत ब्रज सुंदरियों की संपूर्ण मनोवृत्ति, मन इत्यादि सम्पूर्ण इन्द्रियां महाभाव रूप बन जाती हैं और गोपियां सभी प्रकार से कृष्ण के वश में हो जाती हैं । इसमें संभोग-विलास की अत्यंत चमत्कारी तरंगों का प्रादुर्भाव होता है । इसके दो रूप होते हैं--

(क) रूढ़

हो जाता है, (२) सभी वर्तमान लोगों को उत्तेजित कर देना (आसन्न जनताहृद्विलोडनम्), (३) कल्प का क्षण और क्षण का कल्प के समान बीतना (कल्पक्षणत्व), (४) सुख में भी दुख की कल्पना से खिन्न रहना तथा (५) मूर्च्छा के बिना भी अपने को तथा सभी वस्तुओं को भूल जाना।

(ख) <u>अधिरूढ़</u>

उपर्युक्त लिखित रूढ़ का भाव जब और भी विशेषता प्राप्त करते हैं तो उन्हें अधिरूढ़ कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। (१) मोदन- सात्विकों के उद्दीप्त रूप का सौष्ठव होता है। यह केवल राधावर्ग में ही प्राप्त है। वियोग में यह 'मोहन' हो जाता है जिसके कारण सात्विकों की कहीं अधिक उद्दीप्ति हो जाती है। इसके गुण हैं, प्रिय के अंक में ही मूर्छा आना (कान्ताश्लिष्टेऽपि मूर्च्छना) सुख की कामना के लिए अत्यंत दुख उठाना (असह्यदुःख-स्वीकारादपि तत्सुखकामना) संसार को दुखी कर देना (ब्रह्माण्ड क्षोभकारित्वं), पशुओं का रोना (तिरश्चामपि रोदनम्), मृत्यु की इच्छा करना (स्वभूतैरपि तत्संग तृष्णा मृत्युप्रतिश्रवात्) और दिव्योन्माद। इस दिव्योन्माद के भी उद्घूर्णा, चित्र जल्प आदि अनेक रूप हैं।

(२) <u>मादन</u>

जो प्रत्येक भाव के विकास के साथ सुखद और केवल राधा में ही प्राप्त है। इसके गुण अति ईर्ष्या जबकि ईर्ष्या के लिए कोई स्थान न हो तथा नायक से संबंधित प्रत्येक वस्तु का प्रत्येक अवसर पर उसके साथ स्मरण है। इसका सार आनन्द किंवा ह्लाद है। यह एक विचित्र योग है जिसकी गति मदन की तरह दुर्गम है तथा जिसमें सहस्त्रशः विलास-क्रीड़ाएं चला करती हैं।

स्थायी भाव के उपरांत विभाव का अध्ययन अपेक्षित है

१३ <u>विभाव</u>

मधुर रस में कृष्ण और उनकी वल्लभाएं ही आलंबन विभाव हैं। नायक कृष्ण के २५ गुण हैं। इनमें से कई उनके पूर्ण वर्णित

९६ गुणों में आ चुके हैं। नायक के शास्त्रीय विभेद धीरोदात्त आदि स्वीकृत हैं, किंतु कृष्ण पति और उपपति दोनों ही रूप में हो सकते हैं और उनके प्रेम का पूर्ण विकास उपपति रूप में ही होता है। कृष्णप्रकृत नायक से भिन्न हैं और इसलिए उपपति का उनका रूप निकृष्ट नहीं है। कृष्ण नायक रूप में ब्रज में पूर्णतम, मथुरा में पूर्णतर और द्वारका में पूर्ण है। शास्त्रीय नायक भेदानुसार पति या उपपति दक्षिण, अनुकूल, शठ और धृष्ठ हो सकता है। इस प्रकार कृष्ण के २×३×४×४ = ९६ रूप हैं।

नायिका भेद

रूप गोस्वामी ने शास्त्रीय नायिका भेद स्वीकार किया है किंतु भक्ति के दृष्टिकोण से सभी को हरिवल्लभा माना है। स्वकीया और परकीया इनके दो भेद हैं। कृष्ण की १६१०८ स्वकीया हैं जिनमें रुक्मिणी, सत्यभामा, जाम्बवती, अर्कनंदिनी, [illegible] तथा [illegible] १६१०८ [illegible] हैं।

ब्रज की गोपियाँ परकीया हैं यथार्थ में उनका कृष्ण से गंधर्व विवाह हो गया था इसलिए वे स्वकीया भी हैं किंतु कृष्ण की प्रकट लीला में वे परकीया ही हैं क्योंकि उनका प्रेम प्रच्छन्न है ब्रज के गोपादि अपनी पत्नियों से कृष्ण प्रेम के कारण इसलिए रुष्ट नहीं थे क्योंकि उनको सर्वदा अपनी पत्नी के स्वरूप की माया गोपियाँ प्राप्त रहती थीं। उनका ब्रजदेवियों से कभी संभोग भी नहीं हुआ था। इस प्रकार परकीयाएं भी यथार्थ में स्वकीयाएं ही हैं।

परकीयाओं की कन्यका एवं परोढ़ा दो कोटियाँ हैं। कन्याएं अविवाहित दुर्गा का व्रत करने वाली तथा मुग्धा के गुणों से युक्त हैं और परोढ़ाएं, गोपों से विवाहित होने पर भी, हरि के सदय संभोग की लालसा रखने वाली प्रपुत्रवती नारियाँ हैं। ये परकीयाएं पुनः साधनपरा, देवी एवं नित्यप्रिया इन तीन वर्गों में बांटी गई हैं। नित्य प्रियाएं कृष्ण के ही समान नित्य सौन्दर्य, वैदग्ध्य इत्यादि गुणों से युक्त हैं तथा इनमें राधा सर्वोत्कृष्ट हैं। ये नव वय वाली, विदग्ध उज्ज्वलशीला एवं महाभाव के उत्कर्ष की अभिलाषा

वाली कृष्ण की मुख्य प्रिया हैं। यह वर्गीकरण नवीन है।

नायिका -भेद प्रकरण में नायिकाओं को शास्त्रीय विधि से मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा इन तीन वर्गों में विभाजित किया है। मध्या और प्रौढ़ा इन तीन वर्गों में विभाजित किया है। मध्या और प्रौढ़ा मान के आधार पर धीरा, अधीरा और धीराधीरा होती हैं। अवस्था के अनुसार इनके पुन: आठ भेद होते हैं, अभिसारिका, वासक सज्जा, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, खंडिता कलहांतरिता, प्रोषितपतिका, स्वाधीनपतिका। ~~नायिका।~~ नायक के प्रेम के अनुसार ये उत्तम, मध्यम और कनिष्ठा हो जाती हैं।

राधा

वृंदावनेश्वरी या कृष्ण की आदि शक्ति रूपिणी राधा प्रमुख प्रेमिका हैं। संपूर्ण एक प्रकरण उन्हीं पर है। इसमें वे तैत्रों की ह्लादिनी महाशक्ति के रूप में चित्रित हैं। उनके गुणों की एक लंबी सूची है। कृष्ण की भांति ही उनके गुण वर्णनातीत हैं। राधा का उल्लेख हाल सप्तशती से पूर्व यद्यपि प्राप्त नहीं है किंतु उनकी प्राचीनता नवनिर्मित गोपाल तापनी उपनिषद्, ऋक् परिशिष्ठ तथा पद्मपुराण के द्वारा सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है।

सखी

राधा की सखियां पांच प्रकार की हैं। सखी, नित्यसखी, प्राणसखी, प्रियसखी और परमश्रेष्ठ सखी। इनकी व्याख्या विश्वनाथ चक्रवर्ती ने उज्ज्वल नील मणि किरण में इस प्रकार से की है:- कृष्ण की ओर अधिक झुकी, सखी। अपने प्रेम में राधा की ओर अधिक झुकी, नित्य सखी। नित्य सखियों में मुख्य प्राण सखी है तथा इनमें मुख्य परम-श्रेष्ठ सखी हैं। प्रिय सखी की परिभाषा नहीं दी गई है। प्रिय सखियों में मुख्य ही परम श्रेष्ठ सखी हैं।

अपने सौभाग्य (प्रेम) के अनुसार नायिका अधिक, समा और लघ्वी होती हैं। अपने स्वाभावानुसार वे प्रखर, मध्य और मृद्वी

होती हैं। अपने प्रतिद्वंदियों की ओर के रुख के अनुसार नायिकाएं स्वपक्ष, सुहृत-पक्ष, तटस्थ या विपक्ष की हो सकती हैं। इनमें दूसरी और तीसरी रसोत्पादन योग्य नहीं हैं। उनका उल्लेख प्रासंगिक रूप में इसलिए है क्योंकि वे या तो इष्ट साधक या अनिष्ट बाधक होती हैं। इसके अतिरिक्त इष्ट-हर या अनिष्टकर भी होती हैं। यह वर्गीकरण सखियों पर भी उनके कृष्ण या राधा की ओर झुकने के आधार पर लागू है।

नायक के सहायक

नायक के सहायकों में चेट, विट, विदूषक, पीठमर्द और प्रिय नर्म सखा हैं।

नायिका के सहायक

दूती नायिका की सहायता करती है। यह स्वयं दूती भी हो सकती है अथवा आप्त। आप्त दूती के तीन भेद, अमितार्थी, निसृष्टार्थी तथा पत्रहारीका हैं। ये दौत्यकर्म शिल्पकारी, दैवज्ञ लिंगिनी, परिचारिका, धात्रेयी, वनदेवी और सखी कर सकती हैं।

१४- उद्दीपन विभाव

उज्ज्वल नील मणि में उद्दीपन विभाव का बहुत विस्तृत वर्णन नहीं है यद्यपि जटिल वह भी है। इसमें कृष्ण तथा गोपियों के गुणों की परिभाषा आदि तथा वसंत, मेघ, चन्द्र आदि तटस्थ उद्दीपनों की चर्चा रहती है। हरिभक्ति रसामृत सिंधु में कृष्ण के गुणों का विशेष वर्णन हो चुका है, इसलिए इसमें उनकी प्रेमिका का ही विशेष वर्णन है।

कृष्ण [illegible] के गुण कायिक, मानसिक और वाचि[illegible] हो सकते [illegible] और वाचिक गुणों का संक्षिप्त [illegible]

[illegible]ग जैसे रूप, लावण्य, मार्दव आदि में

इसके साथ वय:संधि का भी उल्लेख है। इसके अतिरिक्त नाम, चरित, लीला, गोदोहन आदि गुणों का भी वर्णन है। वृंदावन आदि अन्य सन्निहित वस्तुओं का भी उल्लेख है। तटस्थ उद्दीपन में प्रकृति आदि परंपरागत वस्तुएं हैं। कृष्ण-मुख से निकली हुई मुरली ध्वनि सभी उद्दीपनों से श्रेष्ठ है।

१५-अनुभाव

अनुभावों को चित्तस्थ भावों के बोधक बताते हुए भी उन्हें 'चरित' नामक उद्दीपन का एक भेद बताया गया है। नायिका के सत्वज अलंकारों को अनुभावों की श्रेणी में गृहीत कर 'उद्भास्वर एवं' 'वाचिक' नामक दो अन्य प्रकार के अनुभाव भी कहे गये हैं। नीवी, उत्तरीय, केश स्रंसन, अंगड़ाई इत्यादि उद्भास्वर तथा आलाप, विलाप संदेश इत्यादि वाचिक हैं। सात्विकों के विवेचन में कोई नवीनता नहीं है। हरिभक्तिरसामृत सिंधु के अनुसार इनका पुन: वर्गीकरण धूमायित, ज्वलित, दीप्त और उद्दीप्त में किया गया है।

१६- व्यभिचारी भाव

इसमें परंपरागत ३३ व्यभिचारी स्वीकृत किए गए हैं। उग्रता और आलस्य, जो कि शृंगार में सामान्यत: नहीं आ सकते, उन्हें अपवाद स्वरूप माना है। विभिन्न भावों से इनके उद्दीप्त होने का उल्लेख है। भावोत्पत्ति, भाव संधि, भावशबलता और भाव शांति का भी संक्षिप्त उल्लेख है।

१७- मधुररस के भेद

मधुर रस को दो भेद हैं--संभोग और विप्रलंभ हैं। इस विप्रलंभ के पूर्वराग, मान, प्रेम वैचित्य तथा प्रवास चार भेद हैं। उन्होंने करुण-विप्रलंभ की जगह प्रेम वैचित्य तथा प्रवास को माना है पर यह प्रेम वैचित्य शास्त्रीय करुण विप्रलंभ से भिन्न है।

पूर्वराग -

इसके प्रौढ़, समंजस तथा साधारण तीन भेद हैं। प्रौढ़ पूर्वराग की दस दशाएँ लालसा, उद्वेग, जागरण, तानव (दुर्बलता), जड़िमा, वैयग्र्य, व्याधि, उन्माद मोह और मृत्यु हैं। समंजस

छ: दि दशाएं अभिलाषा से विलाप तक हैं ।

मान

इसके दो भेद सहेतु और निर्हेतु या कारणाभास हैं ।

प्रेम वैचित्य

यह वियोग की वह दशा है जो कि प्रिय के निकट होने पर भी भय के कारण हो जाती है ।

प्रवास

इसके भूत, भविष्य और वर्तमान तीन रूप हैं । कृष्ण लीला में यथार्थ में प्रवास कभी नहीं होता क्योंकि उनका सम्मिलन स्थायी है । प्रकट-लीला में ही यह प्रवास है ।

संभोग

इसके मुख्य और गौण नामक दो प्रकार हैं । जागृतावस्था का मिलन मुख्य और स्वप्नावस्था का गौण है । मुख्य संभोग के चार प्रकार संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न और समृद्धमान हैं । इन भेदों के कारण उत्पन्न अगणित विलास हैं । जैसे संदर्शन, जल्प, स्पर्श, रास, नौका विहार, चुंबन, आलिंगन, संभोग आदि ।

१८- शृंगार और भक्ति-रस की समानता

भक्ति और मधुर रस के प्रस्तुत संक्षिप्त परिचय से शृंगार और भक्ति रस की समानता स्पष्ट हो गई होगी । यथार्थ में संपूर्ण भक्ति रस शृंगार रस के आधार पर और उसी की पारिभाषिक शब्दावली पर निर्मित किया गया है । इस समानता का संकेत हम स्थान-स्थान पर करते आए हैं । यहां एक स्थान पर उसे देख लेना उचित होगा ।

आदि-रस

जिस प्रकार अधिकांश साहित्य शास्त्री आदि रसों में शृंगार की गणना करते आये हैं उसी प्रकार भक्ति-रस को भी मूल रस या आदि रस माना गया है । जिस प्रकार शृंगार से ही अन्य रसों का

विकास हुआ है उसी प्रकार भक्ति शास्त्र में भक्ति रस से ही समस्त रसों का विकास माना गया है।

रसों की संख्या

दोनों शास्त्रों में बाह्य रूप से रसों की संख्या में विभिन्नता होते हुए भी मूल रूप में एकता है। साहित्य शास्त्र में दास्य, सख्य और वात्सल्य को भाव तक की ही स्थिति प्रदान कर इनको श्रृंगार रस के अंतर्गत माना गया है। भक्ति रस में इनको स्वतंत्र रस की संज्ञा प्रदान की गई है।

श्रृंगार और भक्ति रस का सीमित अर्थ

मूल रूप में आदि रस माने जाने पर भी जिस प्रकार श्रृंगार का प्रयोग सीमित अर्थ में स्त्री-पुरूष-रति से विकसित रस के लिए होता है उसी रूप में भक्ति शास्त्र में राधा-कृष्ण रति से विकसित रस के लिए 'मधुर रस' का प्रयोग किया जाता है। इसी रूप में दोनों का विशेष विकास हुआ है और इस सीमित अर्थ में ही दोनों में बड़ी समानता है।

रंग और देवता

दोनों ही शास्त्रों में इनका रंग श्याम है। साहित्य शास्त्र में श्रृंगार के देवता विष्णु हैं तो भक्ति-शास्त्र में कृष्ण। अपनी कृष्णाधार भूमि के कारण यह अंतर है अन्यथा दोनों ही समान हैं।

स्थायी भाव

दोनों के स्थायी भाव रति है। कृष्ण तक ही सीमित रहने के कारण मधुर रस में यह रति कृष्ण और उनकी वल्लभाओं के बीच की है। इस रति की मधुर रस में अनेक स्थितियाँ हैं जिनका उल्लेख श्रृंगार रस में नहीं किया गया है। किंतु इनके विकास की स्थितियाँ दोनों में लगभग समान है। मधुर रस में एक सातवीं स्थिति भाव या महाभाव की मानी गई है जो कि श्रृंगार रस में नहीं है

आलम्बन विभाव

शृंगार रस में आलम्बन विभाव नायक-नायिका हैं और मधुर रस में कृष्ण तथा हरिवल्लभाएं । दोनों के अनेकानेक भेद और वर्गीकरण साहित्य शास्त्र और भक्ति शास्त्र में प्राप्त हैं । भक्ति शास्त्र में इनके वर्गीकरण तथा इनके गुणादि का अत्यधिक विस्तार है । नायक-नायिका सहायुथ में भी दोनों में पर्याप्त साम्य है । ध्यान रखने योग्य है कि भक्ति शास्त्रियों ने अपने विवेचन में, सर्वग्राही, अधिकाधिक विस्तार और वर्गीकरण की भावना के कारण रस के सभी अंगोपांगों को स्वीकार करना चाहा है ।

उद्दीपन विभाव में भी विस्तृत वर्गीकरणादि हैं । इसमें नायक-नायिका के गुण क्रिया कलाप आदि तथा तटस्थ उद्दीपनों की चर्चा है जो कि शृंगार रस के ही समान हैं ।

अनुभाव

अनुभाव के वर्गीकरण में भी मधुर रस में नवीनता लाई गई है । सात उद्भास्वर अलंकार ऐसे ही हैं किंतु यथार्थ में ये सब परंपरागत अलंकारों के अंतर्गत ही आ जाते हैं । वाचिक अनुभावों के १२ भेद माने गए हैं और सात्त्विकों को परंपरागत माना है । इस प्रकार अपनी वर्गीकरण प्रियता के अतिरिक्त इसमें भी विशेष नवीनता नहीं है ।

संचारी

परंपरागत ३३ माने हैं । उग्रता और आलस्य को अपवाद स्वरूप माना है ।

शृंगार के भेद

इसमें भी दोनों में समानता है । केवल करुण-विप्रलंभ के स्थान पर प्रेम वैचित्त्य को माना है जो नवीन है । इस प्रेम वैचित्त्य का भक्ति-साहित्य में यथेष्ट उल्लेख है । [illegible] और गौण भेद साहित्य शास्त्र में नहीं है पर ये महत्वपूर्ण भी नहीं हैं । [illegible] दि दोनों शास्त्रों में समान है ।

दोनों की तुलना के आधार पर कहा जा सकता है मधुर रस का संपूर्ण प्रासाद शृंगार रस के ढांचे पर ही खड़ा है जिसमें आलम्बन में कृष्ण और उनकी वल्लभाओं को स्वीकार कर उसी के अनुरूप संशोधन और विस्तार किया गया है। विस्तार, वर्गीकरण और सर्वग्राहकता का मधुर रस में विशेष दृष्टिकोण है।

(ख) <u>मनोवैज्ञानिक परिचय</u>

१६- शृंगार का प्रयोग सामान्यत: काम या रति के लिए होता है। यही रति ही शृंगार रस का स्थायी भाव है। इसकी स्थिति स्त्री और पुरूष में ही सामान्यत: संभव है। सामान्य शब्दावली में स्त्री-पुरूष की इस रति को प्रेम भी कहते हैं।

२०- <u>काम का स्वरूप</u>

काम या रति स्त्री-पुरूष के बीच का आकर्षण है। यह एक भाव माना जाता है किंतु यथार्थ में यह अनेक भावों के योग से निर्मित एक अनिर्वार्य (यौगिक) भाव है। इसके भौतिक आधारों में व्यक्तिगत सौंदर्य और उसके द्वारा उत्पन्न अनेक सुखात्मक विचार हैं जो कि स्वयं कामात्मक न होने पर भी कामात्मक-स्थिति से संबंधित हैं। इसके साथ स्नेह भावका भी इसमें मिश्रण है जो कि काम-भाव से भिन्न है, क्योंकि वह समलिंगी लोगों में भी होती है। काम से स्वतंत्र होते हुए भी उसके साथ मिलकर उसमें अति तीव्रता उत्पन्न करने वाला स्नेह है। श्रद्धा, आदर, महत्ता की भावना का भी इसमें सम्मिश्रण है। ये भावनाएं स्वयं भी यथेष्ट शक्ति शालिनी हैं। इनके साथ काम में एक निष्ठा की भावना भी है। इसी के कारण किसी वस्तु के प्रति संसार की अन्य सभी वस्तुओं से अधिक आदर, स्नेह, श्रद्धा, महत्ता आदि उत्पन्न होते हैं। काम में स्वाभिमान की भावना उसको यह संतोष देती है कि उसका प्रभाव और अधिकार प्रेमी पर है। अधिकार भावना प्रेमियों को परस्पर क्रिया की स्वतंत्रता प्रदान करती है। साहचर्यभावना के कारण एक दूसरे के साथ रहने में सुखानुभूति होती है काम के निर्माण में अधिकार और साहचर्य भावनाएं उपर्युक्त अन्य

भावनाओं की सीमारेखा को तोड़कर उसे अबाध प्रवाह देती हैं। इस प्रकार शारीरिक सौंदर्य के केन्द्र पर एकत्रित उपर्युक्त अनेक भावनाओं का जब अत्यंत उदात्त रूप होता है तो उसे काम या रति या प्रेम कहते हैं। इसका प्रभाव अत्याधिक है। यह स्त्री-पुरुष की शारीरिक भूख मात्र नहीं है।[७] यह एक अत्यंत जटिल, प्रभावशाली और व्यापक भाव है। इसके इतने विस्तृत रूप को ही साहित्य में स्वीकार किया गया है। इसका यह महत् रूप निस्संदेह केवल स्त्री-पुरुष में ही संभव है।

२१- <u>रति की काम के साधारण अर्थ से भिन्नता</u>

रति, काम के साधारण अर्थ से भिन्न है। जब शारीरिक भूख अपने उन्नयन में ऐसी स्थिति पर पहुंचती है जहाँ वह एक निष्ठ हो जाती है, वहीं उसका रूप 'रति' हो जाता है। काम शारीरिक भूख की तुष्टि तक ही सीमित है जबकि रति का संबंध उससे बहुत आगे तक है। यह एकनिष्ठा सामान्यतः मानव-जाति में ही अत्यंत प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध है। कुछ मनोवैज्ञानिक और दार्शनिकों (शापन-हावर और हर्टमैन) ने इस एक निष्ठा का कारण जानने का प्रयत्न किया किंतु वे असफल रहे। रिभट के अनुसार इस रति का मूलाधार 'काम' ही है जिसके द्वारा प्रकृति सृष्टि की रक्षा करती है।[८]

२२- <u>काम के विकास की अवस्थाएं</u>

अपनी निम्नतम श्रेणी अथवा मूलरूप में काम शरीर की एक भूख है जो कि अपनी जाति के विरोधी लिंग के सहयोग से तुष्ट होती है। यह भूख अदमनीय, अज्ञात् और स्वाभाविक है। इसमें एक निष्ठा की भावना नहीं है। अपनी प्रारंभिक अवस्था में किसी पुरुष के लिए कोई भी स्त्री और किसी स्त्री के लिये कोई भी पुरुष यथेष्ठ था। इसके विकास की दूसरी अवस्था में चुनाव, व्यक्तिगत रुचि और साथ

---

७- रिभट - साइकलाजी आफ इमोशन। पृ २५३-२५४ पर हर्बर्ट स्पेंसर का स्वीकृत मत

८- वही पृ २५५-२५६

ही साथ कमुक कोमलता की भावना आई होगी । धीरे-धीरे शारीरिक भूख और मानसिक भूख की तुष्टि में सामंजस्य हुआ होगा । यही काम की तीसरी अवस्था है जो कि मानव में प्राप्त है । इस समय काम में अनेक मनोवेग और भावनाएं आकर मिश्रित होती है और उनके "पाक" से काम के अद्भुत स्वरूप का विकास होता है । अनेक भावनाओं के मिश्रण से ही इसमें स्थायित्व, तीव्रता और प्रबलता आती है । इसका यह जटिल स्वरूप व्यक्त करना कठिन है ।

इसके बाद पुनः शारीरिक और मानसिक अंशों के संतुलन के भंग होने की स्थिति आती है । धीरे-धीरे शारीरिक महत्व गौण और मानसिक अंग महत्वपूर्ण हो जाता है । यह काम की प्राथमिक अवस्था का ठीक विलोम रूप है । तब शारीरिक अंश की महत्ता थी और अब मानसिक अंश की । यह काम का उदात्त, मानसिक स्वरूप है । पहले की अवस्थाओं में स्थूल कारणों से काम की उत्पत्ति होती थी और अब पहले मानसिक प्रक्रिया होती है । उसके फल स्वरूप काम का बाह्य रूप प्रकट होता है । और भी अधिक परिष्कार होने पर काम के आलम्बन का व्यक्त स्वरू भी नष्ट हो जाता है और उसके स्थान पर एक विचार या भावात्मक स्वरूप मात्र ही रह जाता है । यही आदर्श, कामरहित प्रेम है जिसकी स्थिति में अक्सर संदेह किया जाता है ।[१]

काम की विभिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करने वाली सभी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक स्थितियों को बता सकना असंभव है । फिर भी इसकी कुछ विशेषताएं है जो कि सभी परिस्थितियों में विद्यमान रहती है । ऐसी ही एक विशेषता इसकी उत्पत्ति की है । इसका संक्षेप में वर्णन नीचे किया जा रहा है । यह "रिबट" की पुस्तक "साइकालजी आफ इमोशन" के आधार पर है

२३- काम में अनुभावों का महत्व

काम की निम्नतम स्थिति में उसके अनुभावों की स्थिति महत्वपूर्ण है । भावनाओं के संबंध में जेम्स-लैंग-सिद्धांत का यह

---

१-वही पृष्ठ १८-१९

प्रमाण है। काम की किसी परिस्थिति में यदि उसके समस्त शारीरिक विकारों को दबा लिया जाय तो क्या शेष रह जाएगा ? आकर्षण का साधारण ज्ञान भी न होगा और यदि यह दमन की क्रिया बार-बार चलती रही तो काम की स्थिति भी नष्ट हो जाएगी। इसी कारण से रस के परिपाक में अनुभावों का महत्व है।

२४- काम का शारीरिक कारण

प्रेम या काम के अनुभाव में सर्वप्रमुख रक्त संचालन और श्वास-क्रिया है। इन दोनों क्रियाओं का प्रभाव शरीर की अन्य सभी क्रियाओं पर पड़ता है। पशुओं में भी काम का शारीरिक क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। काम की स्थिति में उनमें कुछ रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न हो जाते हैं। यथार्थ में इन रासायनिक परिवर्तनों के कारण ही उन्हें काम की अनुभूति होती है। यह परिवर्तन मानव में भी होता है। इन्हें करने वाली पिटयूथिरी, कूपर, बर्थोलिन ग्रंथियां हैं। इस परिवर्तन का प्रभाव प्रेम-क्रियाओं पर और प्रेम-क्रियाओं का प्रभाव इन ग्रंथियों की क्रियाओं पर भी पड़ता है। इसीलिए प्रेम में आलिंगन चुंबनादिकों का बड़ा महत्व है। यह परिवर्तन जननेन्द्रियों पर भी थोड़ा-बहुत प्रभाव डालते हैं चाहे हम उसका अनुभव कर सकें या नहीं। अचेतन मस्तिष्क की क्रियाएं इस रासायनिक परिवर्तन से प्रभावित होती हैं।

काम-क्रियाओं के संचालन में नाड़ी-संस्थान का हाथ विशेष नहीं है। नाड़ी केन्द्र प्रभाव ग्रहण और क्रिया संचालन करता है पर काम-क्रियाओं में इसका कितना हाथ है यह कहना कठिन है। अभी तक एक ही बात निश्चित हो पाई है कि सुषमणा में चतुर्थ कटि कशेरुका के निकट का स्थान संभोग-क्रिया का संचालन करता है। यह मस्तिष्क से स्वतंत्र है। यह क्रिया स्वभावज है तथा मस्तिष्क गोलार्द्ध (cerebral hemisphere) और लघु-मस्तिष्क (cerebellum) को हटा देने पर भी इसमें अंतर नहीं पड़ता है। बजक (Budges) और गोल्ट्ज (Goltz) के प्रयोगों से यह सिद्ध हो चुका है।

कुछ लोगों का अनुमान है कि कामात्मक-क्रियाओं का स्थान नाड़ी-ग्रंथि (Ganglia) के निकट होता है। इसका निश्चित पता अभी तक नहीं चल सका है। यदि यह अनुमान ठीक है तो काम-क्रियाओं के मनोविज्ञान का उद्घाटन हो सकेगा। इसके

अतिरिक्त अन्य अनुमान भी है किंतु निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है। अभी इतना ही ज्ञात है कि जनेन्द्रियों द्वारा प्रभाव पहले निम्न कशेरुका तक पहुँचता है जो कि प्रत्यावर्तक क्रियाओं द्वारा विभिन्न इंद्रियों का संचालन कराती है और यहाँ से यह प्रभाव मस्तिष्क में पहुँचता है जहाँ कि परिस्थितियों के अनुसार वह क्रिया सज्ञान रूप में होती है।

काम-संचालन के उपर्युक्त अनुमानित केंद्र यदि निश्चित रूप से जाने जा सकते तो काम की विभिन्न अवस्थाओं का ज्ञान संभव होता।

काम की तीन अवस्थाओं का वर्णन हम पीछे कर आए है। यदि हम इनमें से आदर्श-बौद्धिक काम पर विचार करें तो अनेक दार्शनिक और वनस्पतिशास्त्रियों का कहना है कि अनेक जीवों में यह प्राप्त है क्योंकि वे नाड़ी-संस्थान से हीन हैं। विकास की निम्न श्रेणी, जैसे वनस्पति में दो भिन्न लिंगी तत्वों का मिलन मानव मिलन की ही भाँति है। डिम्ब और शुक्राणु के आकर्षण के पीछे भी वही कारण है जो कि स्त्री-पुरुष के मिलन के पीछे है।[१०]

२५- रहस्यवादियों का प्रेम

रहस्यवादियों का प्रेम काम की ही एक अवस्था विशेष है। प्रेम के मूल में जिस भावना के मूर्त स्वरूप की सामान्यतः खोज होती है उसे ही रहस्यवादी पूर्णतः बौद्धिक बता कर अमूर्तरूप दे देते है। इस अमूर्त रूप का धार्मिक होना आवश्यक नहीं। इस स्थिति में ऐसे लोग (स्त्री और पुरुष) जीवन में विवाह को स्वीकार नहीं करते और संभोग का पूर्ण बहिष्कार कर देते है। यह सब होने पर भी उनके प्रेम का मूलाधार तो काम ही रहता है। पूर्णतः बौद्धिक प्रेम संभव नहीं है। वह अनुभव करने की वस्तु नहीं, केवल विचार की ही है। साधु संतों का बार बार काम का शिकार होना इस बात का प्रमाण है कि उस आदर्श से गिर जाना कितना सरल है। यदि इस प्रेम में काम के अनुभाव दृष्टिगोचर नहीं है तो उसका कारण भाव का पूर्ण-विकसित न होना है।

---

१०- वही पृ० १४८-१४९

२६- भक्तों का प्रेम

भक्तों के काम की स्थिति रहस्यवादियों के काम की स्थिति से भिन्न है। यदि हम हिंदी के भक्ति-साहित्य को देखें तो उसमें स्पष्ट पता चलेगा कि जिस काम का वर्णन भक्तों ने किया है वह उनके और इष्ट के बीच में नहीं है। वह तो नायक-नायिका के बीच का है जिसमें वे दोनों ही परस्पर आश्रय और आलम्बन है। उन नायक-नायिका (जैसे कृष्ण और राधा) के बीच में काम का जो स्वरूप व्यक्त हुआ है वह काम के विकास की द्वितीय अवस्था का है जिसमे शारीरिक और मानसिक तुष्टि, काम और एकनिष्ठा का सुंदर समन्वय है। भक्त तो इस प्रेम का दर्शक और गायक मात्र है। उसका आनन्द तो सखी का है जो कि अपने काम की तुष्टि स्वाभाविक रूप से न कर दूसरे की काम-क्रिया के दर्शन द्वारा करती है।

यही काम, शृंगार रस का मूल है, स्थायी भाव है। वह आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और संचारियों द्वारा पुष्ट होता है।

(ग) भक्ति में शृंगार-रस

२७ "भक्ति में शृंगार रस तथा शृंगाराभास दोनों को "मधुर-रस" की संज्ञा दी जाती है। काव्य-शास्त्र में मधुर भावादि की भक्ति के आनन्द को रस की संज्ञा नहीं दी गई, केवल भाव कोटि में ही इसे गिना गया है।"[११] उपर्युक्त परिवर्तन, अर्थात् इष्ट देव विषयक रति को 'रस' में स्वीकारकरना एक बड़े सामाजिक, साहित्यिक और धार्मिक परिवर्तन का संकेत करने वाला है। साहित्यिकों ने औचित्य को सदा महत्व दिया और इसीलिए देव, गुरु, मुनि विषयक इत्यादि को "रस" कोटि का नहीं माना। ध्वनिकार, मम्मट, विश्वनाथ, पंडितराज जगन्नाथ आदि सभी इसमें एक मत है। आनन्द वर्द्धनाचार्य ने ध्वन्यालोक में इस विषय पर विचार किया है कि श्रव्य-काव्य में उत्तम-नायक-नायिका का ग्राम्य संभोग वर्णन करना चाहिए या नहीं। पूर्व पक्ष में उन्होंने

११- दीनदयाल गुप्त-अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० ६१

लिखा है कि नाटकादि दृश्य- काव्यों का रंगशाला में अभिनय होता है, वे ग्राम्य- संभोग के विषय नहीं है । इसलिए इसका नाटकों में वर्णन नहीं होना चाहिए । श्रव्य-काव्य में निषेध नहीं है । सिद्धांत पक्ष में निर्णय किया है कि नाटक की भांति श्रव्य- काव्य में भी उत्तम प्रकृति वाले राजाओं का, उत्तम प्रकृति वाली नायिकाओं के साथ ग्राम्य संभोग- वर्णन माता-पिता के संभोग वर्णन की भांति ही असह्य है । इसी प्रकार देवताओं का भी ग्राम्य संभोग वर्जित है । कालिदास वर्णित शिव- पार्वती संभोग वर्णन की सभी आचार्यों ने निन्दा की है ।[१२] उसकी सामाजिक अस्वीकृति का प्रमाण इस श्रृंगार के फलस्वरूप उनका कुष्ठ रोग से पीड़ित होने की किंवदंती है ।

२८- कालान्तर में परिस्थिति बदल गई । अनेक धार्मिक आन्दोलनों ने धर्म के अन्दर सुप्त हुए श्रृंगार को उभाड़ा । उसको पुष्ट करने वाले अनेक पुराणादि ग्रंथ रचे गए और एक समय ऐसा आया जब कि कृष्ण के चरित्र में उनकी श्रृंगार लीलाएं ही सर्वस्व हो गईं । संस्कृत के कवियों ने इस रोचक आलम्बन को पकड़ा । उनके संभोग का खुल कर वर्णन किया । जिस समय भक्ति- रस की प्रतिष्ठा होने लगी तो कवियों के, साधुओं के, भक्तों के ये श्रृंगारिक वर्णन ही उसकी आधार भूमि बने । इस श्रृंगार वर्णन को साहित्य शास्त्रियों के प्रबल विरोध के फलस्वरूप "श्रृंगार रस" का पद प्रदान करना असंभव था । फलस्वरूप इसे भक्ति रस के अंतर्गत एक नवीन नाम देकर "मधुर रस" के रूप में स्वीकार किया गया । यथार्थ में यह देव- विषयक रति- वर्णन की स्वीकृति है और उसे विशेष प्रतिष्ठा दी गई । मधुसूदन सरस्वती ने साहित्य शास्त्रियों के देवविषयक रति- वर्णन के आक्षेप को केवल इन्द्रादि देवों के लिए सीमित माना । परब्रह्म को उससे मुक्त रखा-

> रतिर्देवादि विषया (विषक्त) व्यभिचारी तथोर्जितः ।
> भावः प्रोक्तो रसो नेति यदुक्तं रस कोविदै : ।।
> देवान्तरेषु जीवत्वात् परानन्दा प्रकाशनात् ।
> तद्योज्यम् परमानन्द रूपे न परमात्मनि ।। भक्ति रसायन २ पृ० ७५-७६

---

११- रामसेवक पांडेय - बाल्मीकि जी का श्रृंगार वर्णन, माधुरी वर्ष १२ खंड २ पृ० ६६१

यह परिवर्तन सामाजिक दृष्टिकोण का है जिसमें श्रृंगाराभास को " श्रृंगार रस " का आसन " मधुर रस " के रूप में दिया । यह परिस्थिति इतनी बदली कि कबीर[१३] के समय में जयदेव की गिनती भक्त रूप में होने लगी और उनका श्रृंगार प्रधान काव्य गीत गोविंद श्रृंगार ही नहीं भक्ति का ग्रंथ भी हो गया । साहित्य-शास्त्रियों ने इसका काफी बाद तक विरोध किया । यहां तक कि पंडितराज जगन्नाथ ने रस गंगाधर में जयदेव की निम्न शब्दों में भर्त्सना की :-

जयदेवादि भिस्तुगीत गोविन्दादि प्रबन्धेषु सकल सहृदय - सम्मतोऽयं समयो मदोन्मतमतंग जैरिव भिन्न: इति न तान्नि दर्शने नैदानीन्तनेत यथा वर्णयितुं साम्प्रतम् ।( अर्थात् जब जयदेव आदि ने गीत-गोविन्द प्रभृति प्रबंधों में सकल सहृदय सम्मत मर्यादा को मदोन्मत मतंग की भांति भंग कर डाला है । जयदेव को आदर्श मान कर वैसा वर्णन कवियों को उचित नहीं है [१४]।) फिर भी पंडित राज के विरोध का न तो भक्ति शास्त्र पर प्रभाव पड़ा और न ही साहित्य शास्त्र पर इष्ट देव का श्रृंगार वाल्मीकि के समय से ही होता रहा और भक्ति रस के अंतर्गत इसे हम लें या न लें, साहित्य में इसे श्रृंगार रस के अंतर्गत लेना ही चाहिए । प्रस्तुत प्रबंध में ऐसे वर्णनों को श्रृंगार रस के अंतर्गत स्वीकार किया गया है । इसी रूप में ही भक्ति काल में श्रृंगार रस प्राप्त है[१५] अन्यथा वह भाव या श्रृंगाराभास कोटि का ही है ।

---

१३ कबीर पदा० ३८७ तथा परिशिष्ट पद १३१

१४ राम सेवक पांडे - वाल्मीकि जी का श्रृंगार वर्णन, माधुरी १२-२-५

१५ भट्ट नायक ने भी ध्वनिकार के आधार पर इसी लिए सीतादि राम विषयक रति को रस की मान्यता नहीं दी है :

ननूक्तं भट्ट नायकेन- रसो यदा परगततया प्रतीयते तर्हि ताटस्थ्यमेव स्यात् न च स्वगतत्वेन रामादियरितमयात्का व्यादसौ प्रतीयते ।स्वात्मगतत्वेन प्रतीतौ स्वात्मनि रसस्योत्पत्ति देवाभ्युपगता स्यात् । सा चायुक्ता सीतायाः । सामाजिकं प्रत्यविभावत्वात् । कान्तात्वं साधारणं वासना विकासहेतुविभावतायां प्रयोजकमिति चेत्- देवतावर्णनादौ तदपि कथम् । ध्वन्यालोक लोचन पृ० १८०-१८१ ।

# तृतीय अध्याय

## हिन्दी भक्ति-काव्य में प्राप्त शृंगार की पीठिका

## हिन्दी भक्ति-काव्य में प्राप्त श्रृंगार की पीठिका

### भूमिका:-

भारतीय धर्म में श्रृंगार की स्वीकृति पिछले अध्यायों में दिखलाई जा चुकी है। धर्म में श्रृंगार की यह स्वीकृति भक्ति काल तक रही। अनुमान है कि इसका प्रभाव भक्ति में श्रृंगार की स्वीकृति पर पड़ा होगा। इस समय धर्म के विभिन्न क्षेत्रों में श्रृंगार की कितनी स्वीकृति रही और उसका आलोच्य साहित्य पर प्रभाव पड़ा यही बतलाना इस अध्याय का उद्देश्य है। इस अध्याय में कोई मौलिक मान्यता स्थापित नहीं की गई है और इसी लिए विस्तृत प्रमाण तथा अनावश्यक विस्तार से बचकर संक्षेप में ही यह विवरण दिया जा रहा है।

भक्ति काल के पूर्व की धार्मिकता मुख्यत: तीन धाराओं में प्रवाहित हो रही थी। प्रथम धारा सिद्धों और नाथों की थी। दूसरी सूफियों की और तीसरी धारा वैष्णवों की थी। संभावना है कि तीनों धाराओं का विभिन्न मात्रा में भक्ति-साहित्य पर प्रभाव पड़ा होगा। आलोच्य-साहित्य पर इन तीनों धाराओं के प्रभाव को जानने के लिए इनकी अति संक्षिप्त रूप रेखा और इनमें स्वीकृत काम के स्वरूप का विवरण जानना आवश्यक है। इसके बिना भक्ति-काल में प्रवाहित होने वाली श्रृंगार की धारा का विकास हृदयंगम नहीं हो सकेगा। प्रस्तुत अध्याय में यह रूप-रेखा पूर्णत: काल-क्रमानुसार नहीं दी जा रही है। उपर्युक्त कथित तीन धाराओं के अंतर्गत ही कालक्रम का यथासंभव ध्यान रखते हुए इस श्रृंगार का स्वरूप संक्षेप में नीचे दिया जा रहा है।

### २ सिद्ध और नाथ धारा

सिद्ध बौद्ध धर्म की परंपरा में आते हैं। उत्तर बौद्ध धर्म में हीनियान और महायान शाखाएं हो गई थीं। महायान शाखा आगे चलकर मंत्रयान और वज्रयान में विकसित हुई। इसी वज्रयान शाखा के प्रचारकों में " चौरासी सिद्धों " का नाम आता है। यहाँ तक पहुंच कर बौद्ध धर्म इतना विकृत हो गया था कि उसे पहचानना भी कठिन है। इस सिद्ध-साहित्य का विस्तृत अध्ययन डा० धर्मवीर भारती ने किया है। इन सिद्धों ने प्रज्ञा और उपाय द्वारा निर्वाण की उपलब्धि मानी है।

प्रज्ञा और उपाय के मिलन की अवस्था ` युगनद्ध ` कहलाती है और यह ` महासुख ` का प्रतीक है । आगे चलकर प्रज्ञा स्त्री का और उप पुरुष का प्रतीक बन गया तथा संभोग-सुख ही ` महासुख `माना जाने लगा । इस प्रकार सिद्धों में श्रृंगार की सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों रूपों में स्वीकृति थी । इन्होंने अपने पदों में इस महासुख का उल्लेख श्रृंगार रूपकों द्वारा किया है ।

३- नाथ संप्रदाय के कुछ आचार्यों की गणना सिद्धों में भी होती है । इसलिए कुछ लोग अनुमान करते हैं कि नाथ पंथ का विकास सिद्धों से हुआ है । किंतु नाथ-पंथ की मूल भावना सिद्धों से भिन्न है । ये शिव को आदि नाथ मान कर अपने विकास का सिद्धों से पृथक प्रोत प्रदर्शित करते हैं । इन नाथों में सिद्धों की सी अतिशय श्रृंगारिकता नहीं थी । इन्होंने नैतिकता का ध्यान रखा । इन्होंने हठयोग को अपनाया और सहस्रार में शिव तथा मूलाधार में शक्ति—कुंडलिनी की स स्थिति मानी । हिन्दी ज्ञानाश्रयी शाखा के संत कवियों पर इनका प्रभाव पड़ा । उन्होंने भी सामान्य रूप से श्रृंगार की अवहेलना की किंतु संभवत: सूफी और वैष्णवों के प्रभाव के कारण प्रेम को बड़ा महत्त्व दिया । इस प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए ज्ञानाश्रयी भक्तों ने श्रृंगार की शब्दावली ली है.पर आलंबन की निराकारिता तथा आध्यात्मिक मिलन- वियोग की अभिव्यक्त के कारण यह शब्दावली रूपक हो कर ही रह गई है । इसमें श्रृंगार रस के कुछ अवयव मिल सकते हैं पर श्रृंगार का वह विस्तृत विवेचन नहीं मिलता जो कि सूफी और वैष्णव कवियों में प्राप्त हैं । इन्होंने प्रिय मिलन के आनन्द-वर्णन में सिद्ध और नाथों की शब्दावली तो ली पर उसमें स्थूलता नहीं उत्पन्न होने दी । नाथों का कुछ प्रभाव सूफी भक्तों पर भी पड़ा जिसके कारण उनमें अनेक योग परक उल्लेख आ गए हैं सूफियों का प्रेमी अपने प्रेम-पंथ में योगी का रूप धारण करता है यह नाथों के प्रबल प्रभाव का द्योतक है ।

## ४ सूफी धारा

सूफी धारा का मूल स्रोत विदेशी है । यह इस्लाम

में अनेक प्रसिद्ध संत हो गए हैं जिन्होंने प्रेम के गीत गाये तथा अपने विचारों पर प्राणों का उत्सर्ग भी कर दिया । प्रेम के ऐसे गीत गाने वालों में " रबिया " का नाम बड़ा प्रसिद्ध है । यह बसरे की रहने वाली स्त्री थी । इसके अतिरिक्त मौलाना रूम, अत्तार हाफिज तथा जामी आदि भी ऊँचे दर्जे के सूफी कवि हुए हैं । कुछ लोग उमर खैयाम की रुबाइयों में व्यक्त सुरा-सुंदरी- प्रेम को भी सूफी भावनाओं से पुष्ट बताते हैं । इस प्रकार सूफी धर्म प्रेम की भित्ति पर खड़ा हुआ है और इसने इश्क मजाज़ी द्वारा इश्क हकीकी को व्यक्त करने का प्रयत्न किया[१]।

यह सूफी धारा मुहम्मद बिन कासिम के साथ भारतवर्ष आयी । यहां के दार्शनिक वातावरण में जिसमें अद्वैत, हठयोग, राजयोग और श्रृंगार की धाराएं प्रवाहित हो रही थीं, यह सूफी धर्म पनपा । अपनी सहिष्णुता के कारण ये भारतीय धार्मिक वातावरण को बड़े अंश में अपना सके और जन संपर्क के द्वारा भारतीय ग्रामीण जीवन के सभी अंगों को निकट से जान सके ।इन्होंने अपनी मसनवी काव्य शैली द्वारा भारतीय लोक जीवन की प्रिय प्रेम कथाओं को अलंकृत कर उन्हें भारतीयों के समक्ष रखा । अपने धार्मिक सिद्धांतों को व्यक्त, करने वाली ऐसी अनेक प्रेम मयी लोक कथाएं उन्हें मिल गईं जिन्हें उन्होंने अत्यंत सहानुभूति ढंग पर स्वीकार किया । ऐसी ही कहानियां पद्मावत, चित्रावली आदि में प्राप्त हैं ।

इस प्रकार सूफी संतों के लिए अपने साहित्य में श्रृंगार को स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं हुई । उनके अपने धर्म में इसकी स्वीकृति थी, भारतीय धार्मिक वातावरण भी इसके अनुकूल था तथा जिस माध्यम ( लोक कथाएं ) को उन्होंने अपनाया वह इससे ओतप्रोत था ।

### ३ वैष्णव धारा

यह भक्ति-काव्य को प्रभावित करने वाली सबसे महत्वपूर्ण धारा है।इस धारा ने सारे भारत वर्ष को विविध रूप में आप्लावित किया ।यह धारा भक्ति आंदोलन से संबंधित

है जिसपर हिन्दी में बहुत कुछ लिखा जा चुका है । अत: यहां भक्ति-आंदोलन की रूपरेखा में वैष्णव धारा के स्वरूप और इतिहास को न बतलाकर उसमें श्रृंगार की स्वीकृति कहां तक है, इसी का संकेत किया जाएगा ।

६- आल्वार भक्त

भक्ति का प्रादुर्भाव दक्षिण में माना जाता है । तमिल प्रांत में ईसा की दूसरी शताब्दी से ही भक्तगण भगवान के प्रति श्रृंगारिक भक्ति कर रहे थे । ये भक्त 'आड्वार' या 'आल्वार' कहलाते हैं । इनके प्रेम भक्ति परक गीतों का संग्रह 'प्रबंधम्' नाम से प्रसिद्ध है । इन आल्वारों की संख्या बारह है । इनके साहित्य और दार्शनिक सिद्धांतों का विस्तृत अध्ययन 'ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन फिलासफी'[२] में प्रो० दास गुप्त ने काफी विस्तार से किया है । इनके संबंध में नीचे लिखे विचार इसी ग्रंथ के आधार पर हैं ।

प्रो० दासगुप्त का मत है कि आल्वार विष्णु के परम भक्त थे । इनमें से अधिकतर कृष्ण स्वरूप के उपासक थे और कृष्ण-लीलाओं से वे पूर्णत: परिचित थे । उनकी भक्ति वात्सल्य, सख्य, दास्य और माधुर्य भाव की थी । इन आल्वारों की बड़ी विशेषता 'गोपी-भाव' की भक्ति थी । यथार्थ में इस भाव की भक्ति के प्रवर्तक ये ही कहे जा सकते हैं । 'गोपी-भाव' में भक्त अपना तादात्म्य यशोदा, कृष्ण के सखा और गोपियों से करते हैं । यही भावना बाद में चैतन्य के चरित्र तथा राधावल्लभ, हरिदासी संप्रदाय आदि में विकसित हुई । इसी प्रकार का रोचक तादात्म्य राजा कुल शेखर - जो कि स्वयं एक आल्वार थे - के संबंध में प्रचलित है । वे राम भक्त थे और रामकथा सुना करते थे । रामकथा सुनते- सुनते वे इतने भाव विभोर हो उठते थे कि जब राम-रावण युद्ध का प्रसंग आता तो वे अपनी सेना को राम के सहायतार्थ सुसज्जित करने का आदेश देने लगते थे । इनमें माधुर्य भक्ति की दृष्टि से अंदाल, शठकोप (नम्माल्वार) तथा तिरुमंगइय महत्वपूर्ण हैं । इन्होंने कृष्ण की प्रेमिकाएं - गोपियों से अपना तादात्म्य किया और कृष्ण प्रेम के, मिलन और विरह के हृदयस्पर्शी गीत गाए । कृष्ण प्रेम में ये इतने विभोर हो जाते थे कि समस्त सात्विक भावों का इनमें उदय हो जाता था । इस प्रकार आध्यात्मिक प्रेम को इन लोगों ने पूर्णत: मानवीय रूप में व्यक्त

किया है। यथार्थ में शठकोप ने ईश्वर द्वारा अपने प्रेम की तुष्टि को पूर्णत: मानवीय भौतिक धरातल पर माना है।[3]

यामुनाचार्य ने नम्माळ्वार और तिरुमंगइय आळ्वार के प्रेम के अंतर को 'भागवत्-रहस्यम्' में स्पष्ट किया है। तिरुमंगइय आळ्वार का प्रेम प्रिय से नित्य संयोग के अलौकिक आनन्द को अभिव्यक्त करने वाला है। नम्माळ्वार का प्रेम प्रिय को प्राप्त करने में प्रयत्नशीला नायिका का है। इसमें प्रिय मिलन की तीव्र अभिलाषा हृदय को निरंतर आलोड़ित करती रहती है। नम्माळ्वार ने इस प्रेम की संज्ञा 'तुवळिळ' अथवा 'निनहुकुमिलुमी' (Turalil or Ninyukumizume ) दी है।[4] शठकोप (नम्माळ्वार) ने इस प्रेम में एक और नवीनता की है। वह है दूती का प्रवेश। पुराणों में दूतियों का स्थान नहीं है। शठकोप ने दूती का प्रवेश कराया है जो कि कृष्ण के सौंदर्य और यौवन का उल्लेख कर नायिका के हृदय में मिलन की इच्छा उत्पन्न कर देती है। वह मिलन के लिए अभिसार करती है पर कृष्ण संकेत स्थल पर नहीं आते। ऐसी विप्रलब्धा नायिका के रूप में शठकोप ने अपने मनोद्गार प्रकट किए हैं।[5]

आळ्वारों का यह प्रेम एकांगी नहीं है। इष्टदेव भी उसकी ओर आकृष्ट हैं और उसे प्राप्त करने का निरंतर प्रयत्न करते हैं।[6] इस प्रकार भक्ति के मूल स्रोत में ही शृंगार की स्वीकृति है तथा गोपी-भाव और दूती-प्रसंग वे बीज थे जिनका विकसित रूप भक्ति कालीन काव्यों में प्राप्त है।

७- वैष्णव आचार्य

आळ्वारों के उपरांत भक्ति के क्षेत्र में शंकर और उनके अद्वैतवाद का विरोध करने वाले चार आचार्य रामानुज, मध्व, निम्बार्क और विष्णु स्वामी का प्रवेश होता है। इन्होंने वैष्णव आन्दोलनों को पुष्टदार्शनिक आधार प्रदान किया और इनके शिष्य-वर्ग इस धारा को उत्तर में लाए। इनमें शंकर ने अद्वैतवादी होकर भी अपने कुछ स्तोत्रों में शृंगारिक रचनाएं की हैं जो कि अत्यल्प हैं। रामानुजाचार्य ने राम भक्ति का प्रचार किया

---

३- वही पृ ७२
४- वही पृ ७८-
५- वही पृ ७५
६- वही पृ ७८ (नम्माळ्वार का एक गीत उद्धृत किया गया है।

वे आलवारों के बड़े भक्त थे।[७] उन्होंने लक्ष्मी नारायण की उपासना चलाई और कृष्ण की पौराणिक लीलाओं की उपेक्षा की। उनकी भक्ति दास्य मिश्रित वात्सल्य भाव की थी। कहा जाता है कि इनके शिष्य पराशर भट्ट ने राम की 'दामाद' रूप में उपासना की और अयोध्या के इस दिव्य रूप का वर्णन किया जो राम की भोग भूमि है।[८] मध्व, निम्बार्क और विष्णुस्वामी ने कृष्ण की भक्ति स्वीकार की और उनकी पौराणिक लीलाओं को मान्यता दी। इन लीलाओं में उनकी राधा एवं गोपियों के साथ की लीलाएं महत्त्वपूर्ण हैं। इस प्रकार दार्शनिक स्वीकृति के साथ श्रृंगार को धर्म का अंग बना दिया गया जिसके कारण इन संप्रदायों से संबंधित काव्यों में श्रृंगार के आगमन का मार्ग पूर्णतः मुक्त हो गया।

८- पुराण

हिन्दी भक्ति काव्य पर रामायण, महाभारत और पुराण का सबसे अधिक प्रभाव प्रतीत होता है। यथार्थ में वर्तमान हिन्दू धर्म के लोकरंजक अंग के यही स्रोत हैं। इनमें महाभारत और रामायण में श्रृंगार के संकेत हम पीछे कर आए हैं। डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने अपने शोध प्रबंध में रामायण के श्रृंगार पूर्ण स्थलों को एकत्र कर उनमें रसिक भावना का दर्शन कराया है।[९] अतः हम इनकी यहां पुनरुक्ति नहीं करेंगे।

रामायण और महाभारत से कहीं अधिक विस्तार में हिन्दू देवी-देवताओं की श्रृंगारिक लीलाएं पुराणों में प्रकट हुई हैं।[१०] इन पुराणों का समय निश्चित नहीं है पर आलोच्य काल के पूर्व ये सभी महत्त्व प्राप्त कर चुके थे इसमें संदेह नहीं। हिन्दी भक्ति-

---

७- वही भाग २ पृ ७६२

८- राम भक्ति में रसिक संप्रदाय - डॉ० भगवती प्रसाद सिंह (२०१४) पृ ७९

९- वही पृ ६७-७१

१०- चंद्रमा-मत्स्य पुराण २३, बुध-वही ११, सूर्य-वही ११, ब्रह्मा-वही ४, देवयानी-शर्मिष्ठा-ययाति-वही २६,३०,३१, पुरूरवा-उर्वशी-वही २४, शिव १५४,१५५,१५७,१५८, मित्र-वरुण २०२ आदि अन्य पुराणों में भी ये तथा अन्य लीलाएं हैं।

साहित्य ने इनसे प्रेरणा ली है ।

आलोच्य साहित्य में राम चरित में जितनी श्रृंगारिकता है उसका आधार रामायण और कुछ अन्य ग्रंथ हैं जिनका संकेत हम आगे करेंगे । अन्य देवी-देवताओं के श्रृंगार का विस्तार इस काल के साहित्य में नहीं है, अतः उनकी कथाएं इतने अंश में ही महत्वपूर्ण हैं कि वे भक्ति में श्रृंगार वर्णन की स्वीकृति देती रहीं । इस साहित्य में मुख्य रूप से कृष्ण की श्रृंगार लीलाएं है और इन लीलाओं पर पुराणों के कृष्ण चरित का बड़ा प्रभाव पड़ा ।

६- पुराणों में 'कृष्ण चरित और उसका विकास' एक अत्यंत विस्तृत विषय है अतः विस्तार में इसका अध्ययन यहां संभव नहीं है । किंतु आलोच्य काव्यों में इन लीलाओं की महत्ता के कारण इनका संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक भी है । अतएव विभिन्न पुराणों में प्राप्त कथा की श्रृंगारिक लीलाओं को संक्षिप्त रूप में नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

महाभारत के अध्ययन से पता चलता है कि यद्यपि उसमें कृष्ण की बाल लीलाओं का यथेष्ट उल्लेख है किंतु गोपी-कृष्ण की लीलाओं का नितांत अभाव है । इसका कारण संभवतः यह है कि महाभारत की रचना के समय तक गोपीकृष्ण की प्रेम-कथाओं का निर्माण नहीं हुआ था अन्यथा युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के अवसर पर शिशुपाल ने जो कृष्ण के दोष गिनाए थे उनमें गोपियों के संबंध का उल्लेख अवश्य होता । महाभारत के बाद पुराणों में उनका उल्लेख प्राप्त होता है ।

१०- <u>विष्णु पुराण</u>

अपने प्राचीनतम रूप में प्राप्त पुराणों में संभवतः विष्णु पुराण का स्थान सर्व प्रथम है । इसमें रास लीला आदि का भी उल्लेख है । इसके पंचम खंड में कृष्ण लीलाओं का विस्तृत उल्लेख

इसमें कृष्ण को विष्णु का अंशावतार माना गया है।[११] विष्णु के दो केश, श्वेत और श्याम ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया जिनमें से एक कृष्ण हैं।[१२] गोपियां देवांगनायें हैं जिन्हें विष्णु ने अपने विहारार्थ इस धरा पर अवतीर्ण करवाया।[१३]

कृष्ण गोप - गोपियों के प्रिय हैं, किंतु इसके पीछे मुख्य कारण उनकी वीरता और परोपकार वृत्ति है। प्रारंभिक स्थलों में केवल एक स्थल पर इस बात का संकेत प्राप्त है कि कृष्ण गोपियों के प्रिय मात्र ही नहीं है वरन् उनका संबंध स्त्री-पुरुष रूप में भी है। कालिय दमन के प्रसंग में विलाप करती हुई गोपियां कहती हैं 'सूर्य के बिना दिन कैसा? चन्द्रमा के बिना रात्रि कैसी? सांड़ के बिना गौएं क्या? ऐसे ही कृष्ण के बिना ब्रज में भी क्या रक्खा है?[१४] इसमें 'बिना वृषेण का गावो' उपमा मात्र ही नहीं है। इसके

---

११- गते सनातनस्यांशे विष्णोस्तत्र भुवो दिवम्। तत्याज सानुजो राज्यं धर्म पुत्रो युधिष्ठरः।।४।२४।११० (सनातन पुरुष भगवान् विष्णु के अंशावतार के चले जाने पर भाइयों सहित धर्म पुत्र युधिष्ठर ने अपना राज्य छोड़ दिया। अंशावतारो ब्रह्मर्षे योऽयं यदुकुलोद्भवः। विष्णोस्तं विस्तरेणाहं श्रोतुमिच्छामि तत्वतः।। (अब हे ब्रह्मर्षे। यदुकुल में जो भगवान विष्णु का अंशावतार हुआ था, उसे मैं विस्तार पूर्वक यथावत् सुनना चाहता हूं।।)- ५।१।२

१२- एवं संस्तूयमानस्तु भगवान्परमेश्वरः। उज्जहारात्मनः केशौ सित कृष्णौ महामुने।।५।१।५९ उवाच च सुरानेतौ मत्केशौ वसुधातले। अवतीर्य भुवो भारक्लेशहानिं करिष्यतः।।५।१।६० वासुदेवस्य या पत्नी देवकी देवतोपमा। तत्रायमष्टमो गर्भो मत्केशो भविता सुर।।५।१।६३ (हे महामुने! इस प्रकार स्तुति किये जाने पर भगवान् परमेश्वर ने अपने श्याम और श्वेत दो केश उखाड़े।।५९।। और देवताओं से बोले मेरे ये दोनों केश पृथ्वी पर अवतार लेकर पृथ्वी के भाररूप कष्ट को दूर करेंगे'।।६०।।xxx।। वासुदेव जी की जो देवी के समान देवकी नामकी भार्या है उसके आठवें गर्भ से मेरा यह केश अवतार लेगा।।६३)

पीछे यह स्पष्ट संकेत है। कृष्ण केवल परोपकार के नाते ही प्रिय नहीं है, बल्कि जिस प्रकार से गाय बिना साँड़ के कामार्त रह जाती है, उसी प्रकार गोपियों कामाग्नि शांत करने वाले एकमात्र कृष्ण ही हैं और उनके बिना यह अग्नि शांत नहीं हो सकेगी तथा उनका जीवन व्यर्थ, चला जायगा । कृष्ण और गोपियों के काम संबंध की यह स्पष्ट स्वीकृति है ।

विष्णु पुराण में गोपियों के साथ श्रृंगार क्रीड़ा का केवल एक अध्याय-तेरहवां है ।

तेरहवें अध्याय में इन्द्र द्वारा कृष्ण का अभिषेक होने के उपरांत गोप गण कृष्ण के प्रभाव का वर्णन करते हैं ।इसी में चौदहवें श्लोक से रास का प्रकरण आरंभ होता है ।

" तब श्री कृष्ण चन्द्र ने निर्मल आकाश शरच्चन्द्र की चन्द्रिका और दिशाओं को सुरभित करने वाली विकसित कुमुदनी तथा वन-खण्डी को मुखर मधुकरों से मनोहर देखकर गोपियों के साथ रमण करने की इच्छा की । उस समय बलराम जी के बिना ही श्री मुरली मनोहर स्त्रियों को प्रिय लगने वाला अत्यंत मधुर, अस्फुट एवं मृदुल पद ऊंचे और धीमे स्वर से गाने लगी । इनकी उस सुरम्य गीत ध्वनि को सुनकर गोपियां अपने अपने घरों को छोड़ कर तत्काल जहां श्री मधुसुदन थे वहां चली आयीं ।

" वहां आकर कोई गोपी तो उनके स्वर में स्वर मिलाकर धीरे धीरे गाने लगी और कोई मन-ही-मन उन्हीं का स्मरण करने लगी । कोई " हे कृष्ण, हे कृष्ण " ऐसा कहती हुई लज्जावश संकुचित हो गई और कोई प्रेमोन्मादिनी होकर तुरंत उनके पास जा खड़ी हुई । कोई गोपी बाहर गुरु जनों को देखकर अपने घर में ही आंख मूंद कर तन्मय भाव से श्री गोविन्द का ध्यान करने लगी ।। तथा कोई गोपी जगत के कारण परब्रह्म स्वरूप श्री कृष्ण चन्द्र का चिन्तन करते करते ( मूर्च्छावस्था में ) प्राणायाम के रूक जाने से मुक्त हो गई । क्योंकि भगवद्ध्यान के विमल आह्लाद से उसकी समस्त पुण्य राशि क्षीण हो गयी और भगवान की अप्राप्ति के महान् दुःख से उसके समस्त पाप लीन हो गए थे । गोपि"

' उस समय कृष्ण के अन्यत्र चले जाने पर कृष्णचेष्टा के अधीन हुई गोपियां यूथ बनाकर वृन्दावन के भीतर विचरने लगीं । कृष्ण में निबद्ध चित्त हुई वे व्रजांगनाएं परस्पर इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं -' मैं ही कृष्ण हूं , देखो, कैसी सुन्दर चाल से चलता हूं, तनिक मेरी गति तो देखो ! दूसरी कहने लगी-' कृष्ण तो मैं हूं, अहा ! मेरा गाना तो सुनो कोई अन्य गोपी भुजाएं ठोंककर बोल उठी-' अरे दुष्ट कालिय ! मैं कृष्ण हूं, तनिक ठहर तो -' ऐसा कहकर वह कृष्ण के सारे चरित्रों का लीला पूर्वक अनुकरण करने लगती ।(किसी और गोपी ने कहा- )' अरे गोपगण ! मैंने गोवर्धन धारण कर लिया है, तुम वर्षा से मत डरो, निश्शंक होकर इसके नीचे आकर बैठ जाओ ।। ' कोई दूसरी गोपी कृष्ण लीलाओं का अनुकरण करती हुई कहने लगी- मैंने धेनुकासुर को मार दिया है, अब यहां गाएं स्वच्छन्द होकर विचरें ' ।

" इस प्रकार समस्त गोपियां श्री कृष्ण चन्द्र की नाना प्रकार की चेष्टाओं में व्यग्र होकर साथसाथ अति सुरम्य वृन्दावन में विचरने लगीं ।। खिले हुए कमल जैसे नेत्रों वाली एक सुन्दरी गोपांग सर्वांग में पुलकित हो पृथ्वी की ओर देख कर कहने लगी - ' अरी आली । ये लीला ललित गामी कृष्णचन्द्र के ध्वजा, वज्र, अंकुश और कमल आदि की रेखाओं से सुशोभित पद चिन्ह तो देखो । अरी देखो, उनके साथ कोई पुण्यवती मदमाती युवती भी गयी है, उसके ये घने छोटे-छोटे और पतले चरण-चिन्ह दिखायी दे रहे हैं । यहां निश्चय ही दामोदर ने ऊंचे होकर पुष्प चयन किया है, इसी से यहां उन महात्मा के चरणों के केवल अग्रभाग ही अंकित हुए हैं । यहां बैठ कर उन्होंने निश्चय ही किसी बड़भागिनी का पुष्पों से शृंगार किया है, अवश्य ही उसने अपने पूर्वजन्म में सर्वात्मा श्री विष्णु भगवान् की उपासना की होगी । और यह देखो, पुष्प बन्धन के सम्मान से गर्विता होकर उसके मान करने पर श्री नन्द नन्दन उसे छोड़ कर इस मार्ग से चले गये हैं । अरी सखियों । देखो, यहां कोई नितम्ब भार के कारण मन्दगामिनी गोपी कृष्ण चन्द्र के पीछे पीछे गयी है वह अपने गन्तव्य स्थान को तीव्रगति से गयी है, इसी से उसके चरणचिन्हों के अग्रभाग कुछ नीचे दिखायी देते हैं । यह

चरण चिन्ह पराधीन से दिखलायी देते हैं। देखो, यहां से उस मन्दगामिनी के निराश होकर लौटने के चरण चिन्ह दीख रहे हैं। मालूम होता है, उस धूर्त ने न केवल कर स्पर्श करके उसका अपमान किया है। यहां कृष्ण ने अवश्य उस गोपी से कहा है, "तू यहीं बैठ मैं शीघ्र ही जाता हूं (इस वन में रहने वाले राक्षस को मारकर) पुन: तेरे पास लौट आऊंगा।" इसीलिए यहां उनके चरणों के चिन्ह शीघ्र गति के दीख रहे हैं। यहां से कृष्ण चन्द्र गहन वन में चले गये हैं, इसी से उनके चरण-चिन्ह दिखलायी नहीं देते, अब लौट चलो, इस स्थान पर चन्द्रमा की किरणें नहीं पहुंच सकतीं।।

` तदनन्तर वे गोपियां कृष्ण-दर्शन से निराश होकर लौट आयीं और यमुना तट पर आकर उनके चरित्रों को गाने लगीं। तब गोपियों ने प्रसन्न मुखारविन्द त्रिभुवन रक्षक आक्लिष्ट कर्मा श्रीकृष्णचन्द्र को वहां आते देखा।। इस समय कोई गोपी तो श्री गोविन्द को आते देखकर अति हर्षित हो केवल ` कृष्ण। कृष्ण। कृष्ण।।। इतना ही कहती रह गई और कुछ न बोल सकीं।। कोई (प्रणय-कोप-वश) अपनी भ्रूभंगी से ललाट सिकोड़ कर श्री हरि को देखते हुए अपने नेत्र रूप भ्रमरों द्वारा उनके मुख कमल का मकरन्द पान करने लगी। कोई गोपी गोविन्द को देख नेत्र मूंदकर उन्हीं के रूप का ध्यान करती हुई योगारूढ़-सी भासित होने लगी।।

` तब श्री माधव किसी से प्रिय भाषण करके, किसी की ओर भ्रूभंगी से देखकर और किसी का हाथ पकड़ कर उन्हें मनाने लगे। फिर उदारचित श्री हरि ने उन प्रसन्न चित्त गोपियों के साथ रास मंडल बनाकर आदर पूर्वक रमण किया। किन्तु उस समय कोई भी गोपी कृष्णचन्द्र की सन्निधि को नहीं छोड़ना चाहती थी, इसलिये एक ही स्थान रहने के कारण रासोचित मंडल न बन सका। तब उन गोपियों मे से एक एक का हाथ ... श्री हरि ने रास मंडल की रचना की। उस समय उनके कर प्रत्येक गोपी की आंखें आनन्द से मुंद जाती थीं।

" तदनन्तर रास क्रीड़ा प्रारंभ हुई । उसमें गोपियों के चंचल कंकणों की झनकार होने लगी और फिर क्रमशः शरद्वर्णन संबंधी गीत होने लगे । उस समय कृष्ण चन्द्र चन्द्रमा, चन्द्रिका और कुमुदवन - संबंधी गान करने लगे, किन्तु गोपियों ने तो बारंबार केवल कृष्ण का नाम ही गान किया । फिर एक गोपी ने नृत्य करते - करते थककर चंचल कंकण की झनकार करती हुई अपनी बाहुलता श्री मधुसूदन के गले में डाल दी । किसी निपुण गोपी ने भगवान के गान की प्रशंसा करने के बहाने भुजा फैलाकर श्रीमधुसूदन को आलिंगन कर चूम लिया । श्री हरि की भुजाएं गोपियों के कपोलों का चुंबन पाकर उन ( कपोलों ) में पुलकावलि रूप धान्य की उत्पत्ति के लिए स्वदेरूप जल के मेघ बन गयीं ।।

"कृष्णचन्द्र जितने उच्चस्वर से रासोचित गान गाते थे । उससे दूने शब्द से गोपियाँ " धन्य कृष्ण । धन्य कृष्ण ।।" की ही ध्वनि लगा रही थीं । हरि के आगे जाने पर गोपियां उनके पीछे जातीं और लौटने पर सामने चलतीं, इस प्रकार वे अनुलोम और प्रतिलोम गति से श्री हरि का साथ देती थीं । श्री मधुसूदन भी गोपियों के साथ इस प्रकार रासक्रीड़ा कर रहे थे । कि उनके बिना एक क्षण भी गोपियों का करोड़ों वर्षों के समान बीतता था । वे रास रसिक गोपांगनाएं पति, माता- पिता और भ्राता आदि के रोकने पर भी रात्रि में श्री श्याम सुन्दर के साथ विहार करती थीं । शत्रुहन्ता अमेयात्मा श्री मधुसूदन भी अपनी किशोरावस्था का मान करते हुए रात्रि के समय उनके साथ रमण करते थे । वे सर्वव्यापी, ईश्वर, भगवान, कृष्ण तो गोपियों में, उनके पतियों मे तथा समस्त प्राणियों में आत्मस्वरूप से वायु के समान व्याप्त थे । जिस प्रकार आकाश, अग्नि, पृथ्वी, जल, वायु और आत्मा समस्त प्राणियों में व्याप्त है उसी प्रकार वे भी सब पदार्थों में व्यापक है ।[१५]"

रास के प्रसंग के बाद दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रसंग कृष्ण का मथुरा प्रस्थान है । इस समय गोपियों के विरह और उनके प्रलाप का यथेष्ठ उल्लेख अट्ठारहवें अध्याय में हुआ है । " दूसरे दिन निर्मल प्रभात काल होते ही महातेजस्वी राम और कृष्ण को अक्रूर के साथ मथुरा चलने की तैयारी

करते देख जिनकी भुजाओं के कंकण ढीले हो गये हैं वे गोपियां नेत्रों मे आंसू भर कर तथा दुखार्त होकर दीर्घ निःश्वास छोड़ती हुई परस्पर कहने लगीं - " अब मथुरा पुरी जाकर श्री कृष्ण चन्द्र फिर गोकुल में क्यों आने लगे ? क्योंकि वहां तो वे अपने कानों से नगर नारियों के मधुर आलाप रूप मधु का ही पान करेंगे । नगर की (विदग्ध ) वनिताओं के विलास युक्त वचनों के रस पान में आसक्त होकर फिर इनका चित्त गंवारी गोपियों की ओर क्यों जाने लगा? आज निर्दयी दुरात्मा विधाता ने समस्त व्रज के सारभूत ( सर्वस्व स्वरूप ) श्री हरि को हर कर हम गोप नारियों पर घोर आघात किया है । नगर की नारियों में भावपूर्ण मुस्कान मयी बोली, विलास,ललित गति और कटाक्षपूर्ण चितवन की स्वभाव से ही अधिकता होती है । उनके बिलास - बन्धनों से बंधकर यह ग्राम्य हरि फिर किस युक्ति से तुम्हारे ( हमारे ) पास आवेगा ? देखो, देखो, क्रूर एवं निर्दयी अक्रूर के बहकाने में आकर ये कृष्ण चन्द्र रथ पर चढ़े हुए मथुरा जा रहे हैं । यह नृशंस अक्रूर क्या अनुरागी जनों के हृदय का भाव तनिक भी नहीं जानता ? जो यह इस प्रकार हमारे नयनानन्द-वर्धन नन्दनन्दन को अन्यत्र लिये जाता है । देखो, यहअत्यन्त निठुर गोविन्द राम के साथ रथ पर चढ़कर जा रहे हैं, अरी । इन्हें रोकने में शीघ्रता करो ।"

(इस पर गुरूजनों के सामने ऐसा करने में असमर्थता प्रकट करने वाली किसी गोपी को लक्ष्य करके उसने फिर कहा -- ) " अरी । तू क्या कह रही है कि अपने गुरूजनों के सामने हम ऐसा नहीं कर सकतीं?' भला अब विरहाग्नि से भस्मीभूत हुई हम लोगों का गुरूजन क्या करेंगे ? देखो यह नन्दगोप आदि गोपगण भी उन्हीं के साथ जाने की तैयारी कर रहे हैं । इनमें से भी कोई गोविन्द को लौटाने का प्रयत्न नहीं करता । आज की रात्रि मथुरा वासिनी स्त्रियों के लिए सुन्दर प्रभात वाली हुई है, क्योंकि आज उनके नयन- भृंग श्री अच्युत के मुखार विन्द का मकरन्द पान करेंगे । जो लोग इधर से बिना रोक- टोक श्री कृष्ण चन्द्र का अनुगमन कर रहे हैं वे धन्य हैं, क्योंकि वे उनका दर्शन करते हुए अपने रोमांच युक्त शरीर का वहन करेंगे । " आज श्री गोविन्द के श्री - प्रत्य [illegible] नेत्रों को अत्यंत महोत्सव

स्वतंत्रता पूर्वक श्री अधोक्षज को निहारेंगी ? अहो ! निष्ठुर विधाता ने गोपियों को महानिधि दिखलाकर आज उनके नेत्र निकाल लिये । देखो ! हमारे प्रति श्री हरि के अनुराग में शिथिलता आ जाने से हमारे हाथों के कंकण भी तुरंत ही ढीले पड़ गये हैं । भला हम जैसी दुखिनी अबलाओं पर किसे दया न आवेगी ? परन्तु देखो, यह क्रूर-हृदय अक्रूर तो बड़ी शीघ्रता से घोड़ों को हांक रहा है ! देखा, यह कृष्णचन्द्र के रथ की धूलि दिखलायी दे रही है, किंतु हा ! अब तो श्री हरि इतनी दूर चले गये कि वह धूलि भी नहीं दीखती ।[१६]"

विष्णु पुराण में कुब्जा का प्रसंग भी है पर अत्यंत संक्षेप में[१७]। कृष्ण कुब्जा का निमंत्रण स्वीकार करते हैं पर ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी पूर्ति कभी नहीं हुई ।

चौबीसवें अध्याय में बलराम का ब्रजागमन है । उनसे गोपियाँ भी मिलीं । किसी ने प्रणय कुपित वचन कहे और किसी ने उपालंभ किये । किसी गोपी ने पूछा- " चंचल एवं अल्प प्रेम करना ही जिनका स्वभाव है, वे नगर -नारियों के प्राणाधार कृष्ण तो आनन्द में हैं न ? वे क्षणिक स्नेह वाले नन्द नन्दन हमारी चेष्टाओं का उपहास करते हुए क्या नगर की महिलाओं के सौभाग्य का मान नहीं बढ़ाया करते ? क्या कृष्णचन्द्र कभी हमारे गीतानुयायी मनोहर स्वर का स्मरण करते हैं ? क्या वे एक बार अपनी माता को भी देखने के लिये यहां आवेंगे ? अथवा अब उनकी बात करने से हमें क्या प्रयोजन है, कोई और बात करो । जब उनकी हमारे बिना निभ गयी तो हम भी उनके बिना निभा ही लेंगी । क्या माता, क्या पिता, क्या बन्धु, क्या पति और क्या कुटुम्ब के लोग ? हमने उनके लिए सभी को छोड़ दिया , किंतु वे तो अकृतज्ञों की ध्वजा ही निकले । तथापि बलराम जी ! सच-सच बतलाइये क्या कृष्ण कभी यहां आने के विषय में भी कोई बात चीत करते हैं हमें ऐसा प्रतीत होता है कि दामोदर कृष्ण का चित्त नागरी नारियों में फंस गया है, हम में अब उनकी प्रीति नहीं है, अतः अब हमें तो उनका दर्शन दुर्लभ ही जान पड़ता है ।[१८]

---

१६ विष्णुपुराण - ५।१८।१२-३१

१७ विष्णुपुराण ५।२०।१-१३

वैष्णव भक्तों द्वारा लिए गए (समस्त/लगभग) प्रसंग विष्णु-पुराण में है किन्तु उनका वर्णन अत्यन्त संयमित है। रासादि के वर्णन को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि रचयिता इस बात से परिचित है कि उसके वर्णन सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कर रहे हैं और यही कारण है कि समस्त संभावित नियंत्रण का उसने उपयोग किया है। परन्तु जहाँ कहीं गोपियों के विरह का प्रसंग है उसकी गोपियाँ न केवल यथेष्ठ मुखर ही हैं वरन् कृष्ण प्रेम में इस तरह पग चुकी है कि मर्यादाओं को जानते हुये भी उनका अतिक्रमण करने से वे चूकती नहीं। उनके उपालंभ हृदय पर सीधा आघात करने वाले हैं और उनकी पीड़ा से सभी प्रभावित होते हैं।

चीर हरण का विष्णु- पुराण में नितांत अभाव है।

११- हरिवंश पुराण -

विष्णु पुराण के बाद रास लीला का उल्लेख हरिवंश पुराण मे है। यह पुराण महाभारत का परिशिष्ठ माना जाता है। कुरु और यदु वंश की विस्तृत वंशावली होने केकारण (जिनका महाभारत और विष्णुपुराण में अभाव है) यह अनुमान किया जाता है कि यह विष्णु पुराण के बहुत बाद का है। इसके बीसवें अध्याय में रास-लीला का निम्नलिखित संक्षिप्त उल्लेख मात्र है।

" और कभी समय के जानने वाले श्रीकृष्ण रात्रि के समय गोप युवतियों को अपने वश में कर किशोर अवस्था को प्राप्त हो उनके साथ प्रसन्न होते। वह मनोहर गोपों की स्त्री उन श्रीकृष्ण का मनोहर मुख रात्रि में नयनों द्वारा पान करतीं, मानों चन्द्रमा ही पृथ्वी में आ गया है। हरिताल के समान पीले और रेशमी कुसुंभी वस्त्र धारे वही श्रीकृष्ण अत्यन्त मनोहर दीखते थे। वह श्रेष्ठ बाजू बाँधे बनमाला से चित्र विचित्र शोभा से शोभित हो व्रज को शोभित करने लगे। घोष में उनके अनेक प्रकार के विचित्र चरित्र देखकर गोप कन्या उनको दामोदर नाम से पुकारती थीं। वे गोपी ऊँचे पयोधर और पृथु जघाओं से श्रीकृष्ण को पीड़ित करती हुई और नेत्रों में कटाक्षों वाले मुख से उन्हें निहारती थीं यद्यपि उनको पति, भ्राता, माता पिता निवारण करते थे। परन्तु वे रति प्रिय अंगना रात्रि में कृष्ण को खोजती थी। और वे कन्याएँ

नाच कर कृष्ण को चरित्र गाती हुई परस्पर दो-दो मिलकर मध्य में श्री कृष्ण को कर विहार करने लगीं कृष्ण की ही लीला करते हारी वे वरांगना तरुणी कृष्ण की ही गति की इच्छा करती थीं। वनों में ताली बजाकर कूदती हुई वे गोपी वन में श्री कृष्ण के चरित्र गान करती विचरने लगीं। वह उनका नृत्य, गीत और विलास मनोहर मुस्कान युक्त देखना मनोहर थे। वे प्रसन्न हो कृष्ण की लीला का अनुकरण करती क्रीड़ा करती थीं। भाव से गंभीर और मधुर वे व्रज वनिता गाती थीं और व्रज में जाकर भी दामोदर में मन लगाये सुख से विचरती थीं। करसी की धुरी से युक्त अंग वाली वे चारों ओर से कृष्ण को घेरने लगीं और हथिनियां जैसे हाथी से रमण करती हैं इस प्रकार रमण करती थीं। कोई दूसरी गोप रात्रि के भावों से प्रफुल्ल हुए नेत्रों से हँसमुख और कमल नेत्र वाली वे अंगना कृष्ण के मुख को अतृप्त हो पान करने लगीं। कमल के समान कान्तिमान, श्री कृष्ण के मुख को वे गोपी रात्रि में भोग के अन्तर्गत रस की लालसा से पान करने लगीं। जिस समय वह श्री कृष्ण हा प्रिये। हे राधे(?)।। हा चन्द्रमुखी (।।) ऐसा कहते थे उस समय वह अंगना बड़ी प्रसन्न होती थीं और इन्हीं दामोदर की उच्चारण की हुई वाणी को वह ग्रहण करती थीं। उनके गुथे हुए केश रति के कारण खुलकर सुन्दरता पूर्वक स्तनों पर बिखर के शोभित होने लगे। इस प्रकार वह श्री कृष्ण चक्रवाल से शोभित उन शरद ऋतु की रात्रियों में गोपियों के संग क्रीड़ा करते बहुत प्रसन्न हुए।[१६]

हरिवंश में कुब्जा प्रसंग का भी संक्षिप्त उल्लेख है। इसके अतिरिक्त भविष्य में कृष्ण गोवर्द्धन आते हैं तथा नंद यशोदा से कुशल समाचार पूछते है किन्तु गोपियों के संबंध में हरिवंश पुराण मौन है।[२०]

हरिवंश का वर्णन बहुत संक्षेप में है पर दो एक स्थान पर गोपी-कृष्ण के संबंध में का यथेष्ट स्पष्ट उल्लेख है। फिर भी यह उल्लेख मात्र ही है और उस संबंध की बारीकियों में न जाने के कारण विशेष संयत भी है।

---

१६- हरिवंश- विष्णु पर्व अध्याय २०, श्लोक १८-३५

१२- पद्म पुराण:-

पद्म पुराण के उत्तर खण्ड में कृष्ण लीला का संक्षिप्त उल्लेख है। इस पुराण में कृष्ण के प्रारंभिक जीवन की श्रृंगारिक लीलाओं ( चीरहरण, रास आदि ) का नितांत अभाव है। गोपियों का कहीं कहीं अल्प उल्लेख मात्र है। अक्रूर के आगमन के समय कृष्ण गोपियों से घिरे थे।[२१]

कुब्जा प्रसंग भी अत्यन्त संक्षिप्त है। मथुरा में भी कृष्ण का सौन्दर्य और उसका प्रभाव अक्षुण्ण रक्खा गया है। रंग-मंच पर स्त्रियों ने उन्हें साक्षात् कामदेव रूप में देखा।[२२]

उपर्युक्त अल्प प्रसंगों में श्रृंगारिकता का नितांत अभाव है। राधा तथा गोपियों के उस संबंध का भी उल्लेख नहीं है जोकि अन्य पुराणों मे प्राप्त है।

इसके पाताल खण्ड में अवश्य वृन्दावन, तथा कृष्ण और राधा के माहात्म्य का वर्णन है। विंटरनित्ज़ के अनुसार ये अंश बाद में जोड़े गए हैं।[२३] " वृन्दावन ही भगवान का सबसे प्रियतम धाम है। वह गुह्य से भी गुह्य उत्तम से उत्तम और दुर्लभ से भी दुर्लभ है। तीनों लोकों मे अत्यन्त गुप्तस्थान है।[२४] कृष्ण ने गोपीजनों का चित्त चुराकर लिया है।[२५] उनकी प्रियतमा उनकी प्राणवल्लभा श्री राधा है, वे ही आद्या प्रकृति कही गयी है।[२६] भगवान श्रीकृष्ण श्री राधा के साथ सुवर्ण सिंहासन पर विराजमान है। + +। वे गोपियों की आंखो के तारे है। ललिता आदि प्रधान- प्रधान सखियां भी श्री कृष्ण की बहुत प्रिय है। उनका प्रत्येक अंग भगवन्मिलन की उत्कंठा तथा रसावेश से युक्त रहता है। ये ललिता आदि सखियां प्रकृति की अंश भूता है। श्री राधिका ही इनकी मूल प्रकृति है। चन्द्रावली, वृन्दावन की अधीश्वरी भी कृष्ण को अत्यंत प्रिय है। आठ सखियां ( ललिता, श्यामलाधन्या, हरिप्रिया, विशाखा, शैव्या, पद्मा, भद्रा ) श्री कृष्ण

२१- संक्षिप्त पद्मपुराण - कल्याण (१९४४-४५) पृ० ९०१

२२- वही - पृ० ९०४

२३- इंडियन लिटरेचर भाग १ पृ० ५४४

२४- संक्षिप्त पद्म पुराण - पृ० ५९६

२५- वही - पृ० ५९७

२६- वही - पृ० ५९८

को प्रिय लगने वाली सब परम पवित्र आठ प्रधान प्रकृतियाँ है। सभी गोपियाँ किशोरावस्था वाली हैं। वे सब की सब श्याम मय अमृतरस में निमग्न रहती हैं। उनके हृदय में श्रीकृष्ण के ही भाव स्फुरित होते हैं। वे अपने कमलवत् नेत्रों के द्वारा पूजित श्रीकृष्ण चरणारविन्दों में अपना - अपना चित्त समर्पित कर चुकी हैं।[२७]

श्री राधा और चन्द्रावली के दक्षिण भाग में श्रुति कन्यायें रहती हैं। इनकी संख्या सहस्त्र अयुत है। इनकी मनोहर आकृति संसार को मोहित कर लेने वाली है। इनके हृदय मे केवल श्रीकृष्ण की लालसा है। ये नाना प्रकार के मधुर स्वर और आलाप आदि के द्वारा त्रिभुवन को मुग्ध करने की शक्ति रखती हैं तथा प्रेम से विह्वल होकर श्रीकृष्ण के गूढ़ रहस्यों का गान किया करती हैं। इसी प्रकार श्री राधा आदि के वाम भाग में दिव्य वेश धारिणी देव-कन्याएं रहती हैं, जो रसातिरेक के कारण अत्यंत उज्ज्वल प्रतीत होती हैं। वे भांति भांति की प्रणय चातुरी में निपुण तथा दिव्य भाव से परिपूर्ण हैं। उनका सौन्दर्य चरम सीमा को पहुंचा हुआ है। वे कटाक्षपूर्ण चितवन के कारण अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं। उनके मन में श्रीकृष्ण के प्रति तनिक भी संकोच नहीं है, वे उनके अंगों का स्पर्श प्राप्त करने के लिए सदा उत्कंठित रहती हैं। उनका हृदय निरन्तर श्रीकृष्ण के ही चिन्तन मे मग्न रहता है। वे भगवान की ओर मंद-मंद मुसकाती हुई तिरछी चितवन से निहारा करती हैं।[२८] यही गोपियाँहै। मुक्ति हेतु तप करने वाले व तपस्वी ही ग्वाल वाल हैं।

द्वारका से वृन्दावन कृष्ण आए तथा गोपांगनाओं के साथ उन्होंने तीन रात तक सुखपूर्वक निवास किया, इसका भी उल्लेख इसी प्रकरण में है।[२९]

इसी खण्ड मे राधा को कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति, महालक्ष्मी आदि माना गया है। इन्हीं को सब कुछ समर्पण करना चाहिये

---

२७- वही - पृ० ५२९

२८- वही - पृ० ५२९, ५३५

( गोपीजन वल्लभ चरणान् शरणं प्रपद्ये ।)[30] आगे स्वयं महादेव जी को अपने युगल रूप का दर्शन कराकर श्री कृष्ण कहते हैं - " जो दूसरे उपायों का भरोसा छोड़कर एक बार हम दोनों की शरण में आ जाता है और गोपी भाव से मेरी उपासना करता है, वही मुझे पा सकता है । जो एक बार हम दोनों की शरण में आ जाता है अथवा अकेली मेरी इस प्रिया की ही अनन्य भाव से उपासना करता है, वह मुझे अवश्य प्राप्त होता है । जो एक बार भी शरण में आकर " मैं आपका हूँ" ऐसा कह देता है, वह साधन के बिना भी मुझे प्राप्त कर लेता है - इसमें संशय नहीं है । इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके मेरी प्रिया की शरण ग्रहण करनी चाहिये । रूद्र ! मेरी प्रिया का आश्रय लेकर तुम भी मुझे अपने वश में कर सकते हो । यह बड़े रहस्य की बात है, जिसे मैंने तुम्हें बता दिया है । तुम्हें यत्नपूर्वक इसे छिपाये रखना चाहिये । अब तुम भी मेरी प्रियतमा श्रीराधा की शरण क लो और मेरे युगल- मंत्र का जप करते हुए सदा मेरे इस धाम में निवास करो ।[31]

उपर्युक्त के अवलोकन से स्पष्ट है कि पद्म पुराण में कृष्ण की श्रृंगार लीलाओं को कोई भी स्थान नहीं मिला है । चतुर्थ- खंड ( पाताल खण्ड ) में गोपी, राधा तथा कृष्ण की लीलाओं का अत्यंत महत्त्व स्थापित करने के बाद भी पंचम खंड ( उत्तर खण्ड ) में उनका नितांत अभाव निरन्तर की धारणा को पुष्ट करता है कि पाताल खंड बाद में मिलाया गया है, तथा मूल पद्मपुराण में राधा का अस्तित्त्व नहीं है ।

१३- <u>भागवत</u> -

भागवत में कृष्ण के प्रेम स्वरूप ने पूर्ण महत्त्व प्राप्त कर लिया है । पुराने पुराणों के संक्षिप्त प्रसंगों का यहां विस्तार से वर्णन किया गया है तथा अनेक नए प्रसंगों की उद्भावना की गई है यही कारण है कि समस्त वैष्णव सम्प्रदायों का यह सर्वश्रेष्ठ प्रमाण

---

३०- वही पृ०- ५४१
३१- वही पृ० -५४८

ग्रन्थ माना गया है ।

गोपियों का कृष्ण के प्रति आकर्षण बचपन ही से था, किंतु काम भाव कृष्ण के ६ वर्ष की अवस्था के पूर्व नहीं है । श्रृंगार का स्वरूप सर्व प्रथम धेनुकासुर प्रसंग में स्पष्ट होता है । कृष्ण के लौटने पर गोपियों की उस समय की क्रियाएं केवल वात्सल्य ही नहीं मानी जा सकतीं - " गोपियों ने अपने नेत्र रूप भ्रमरों से भगवान के मुखारविन्द का मकरन्द - रस पान करके दिन भर के विरह की जलन शांत की । और भगवान ने भी उनकी लाज भरी हंसी तथा विनय से युक्त प्रेम भरी तिरछी चितवन का सत्कार स्वीकार करके व्रज में प्रवेश किया ।[३२] शरद् ऋतु की शीतल वायु सभी की जलन शांत करती है, परन्तु गोपियों की जलन और भी बढ़ जाती, क्योंकि उनका चित्त उनके हाथ में नहीं था, श्रीकृष्ण ने उसे चुरा लिया था।[३३]

भागवत् में कृष्ण से संबंधित श्रृंगारिक प्रसंग वेणुगीत,[३४] चीरहरण,[३५] रास,[३६] युगल गीत,[३७] कृष्ण का मथुरागमन,[३८] कुब्जा प्रसंग,[३९] भ्रमरगीत,[४०] + और कुब्जा के घर जाना है ।[४१]

वेणुगीत में गोपियां कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुन कर उनके रूप, गुण और वंशी ध्वनि के प्रभाव का वर्णन करती हैं । वंशी ध्वनि सुनते ही उन्हें कृष्ण की याद हो आती है और वे उनके ध्यान में मग्न हो जाती हैं । गोपियां कृष्ण के रूप पर मुग्ध होने वाले सभी लोगों की प्रशंसा करती है ।

अध्याय बीस में चीर हरण का प्रसंग है । गोपियां नन्द-नंदन को पति रूप में प्राप्त करने के लिए कात्यायनी व्रत करती हैं ।

---

३२- भागवत १०।१५।४३
३३- " १०।२०।४५
३४- " १०।२१
३५- " १०।२२
३६- " १०।२९-३३
३७- " १०।३५
३८- " १०।३९
३९- " १०।४२

एक दिन जब वे यमुना में नग्न स्नान कर रहीं थीं, तभी कृष्ण ने उनके वस्त्र उठा लिये और कदम्ब के वृक्ष पर चढ़ कर गोपियों से परिहास करने लगे ।

कृष्ण की बातें सुनकर गोपियों का हृदय प्रेम से भर गया और तनिक सकुचा कर वे सब एक दूसरे की ओर निहारने लगीं । वस्त्र माँगने पर कृष्ण ने उनको स्वयं वस्त्र आकर ले जाने को कहा । तब अपने गुप्ताङ्गों को दोनों हाथों से छिपाकर वे वस्त्र लेने आईं । यमुना में नग्न स्नान के अपराध के परिमार्जनार्थ उन्होंने कृष्ण के कहने पर प्रणाम किया और कृष्ण ने उन्हें उनके वस्त्र दिये । गोपियाँ कृष्ण के इस व्यवहार से अत्यंत प्रसन्न हुई और वस्त्र आदि पहनने के बाद भी वहाँ से एक पग भी न चल सकीं । अपने प्रियतम के समागम के लिए सजकर वे उन्हींकी ओर लजीली चितवन से निहारती रहीं ।[४२] कृष्ण ने शरद रात्रि में रास करने का वचन दिया तथा उनसे कहा कि मुझे अपने को समर्पित कर देने के कारण तुममें काम विकार नहीं उत्पन्न हो सकता है, जिस प्रकार भुने या उबाले बीज से अंकुर नहीं निकलता :

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिता क्वथिता धानाप्रायो बीजाय नेष्यते ।।१०।२२।२६

भागवत में रास-लीला का विस्तृत वर्णन २९ से लेकर ३३ तक के पाँच अध्यायों में है ।

प्रथम अध्याय में रास-लीला के लिए कृष्ण का शरद ऋतु की पूर्णिमा में वंशी बजाना है । वंशी की ध्वनि सुनते ही सभी कार्यों को छोड़ कर गोपियाँ पागल की भाँति दौड़ती हैं । जो गोपियाँ किन्हीं कारणों से घर से न निकल सकीं उनका वहीं ध्यान लग गया, ध्यान में ही उन्होंने कृष्ण का आलिंगन किया । जार भाव होते हुए भी स्वयं परमात्मा का ध्यान होने के कारण वे मुक्त हो गईं ।[४३]

---

४२- परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसंगमसज्जिताः ।
गृहीतचित्ता नो चेलुस्तस्मिंल्लज्जायितेक्षणाः ।।भागवत-१०।२२।२२

४३- तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्यापि संगताः ।।

यद्यपि इस तथा आगे के अनेक प्रकरणों में यह निरन्तर बतलाने का प्रयत्न किया गया है कि गोपियाँ कृष्ण के पर-ब्रह्म स्वरूप से परिचित थीं किन्तु इसी स्थल पर परीक्षित् के प्रश्न से स्पष्ट है कि गोपियाँ कृष्ण के यथार्थ स्वरूप से अपरिचित थीं। वे कृष्ण को केवल अपना परम प्रियतम ही मानती थीं। उनका उनमें ब्रह्म भाव न था। उनकी आसक्ति कृष्ण में प्राकृत गुणों के ही कारण थी। ऐसी स्थिति में संसार से उनकी निवृत्ति कैसे सम्भव हुई ?

" कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ।
गुण प्रवाहो परमस्तासां गुणधियां कथम् ।।१०।२९।१२

परीक्षित् के इस सन्देह निवारण के लिए शिशुपाल का उदाहरण दिया जाता है। कहा जाता है कि कृष्ण से संबंध मात्र होना चाहिए, वह चाहे काम, क्रोध या भय आदि का हो।[४४] किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि परीक्षित् को इतने ही से संतोष जब नहीं हुआ और वक्ता के पास समझाने के समस्त साधन समाप्त हो गए तब अंत में वे कहते हैं - " तुम्हारे - जैसे परम भागवत्, भगवान का रहस्य जानने वाले भक्तों को श्रीकृष्ण के संबंध में ऐसा सन्देह नहीं करना चाहिए।[४५]

गोपियों के आने पर कृष्ण उनसे परिहास करते हैं। उन्हें घर की याद दिला कर लौट जाने का उपदेश देते हैं। कृष्ण के इस उपदेश से गोपियाँ अत्यन्त दुखी होती हैं और उन्हें ही अपना सर्वस्व बतलाती हैं, तथा उनके ईश्वरत्व की ओर भी संकेत करती हैं जो सम्भवतः परीक्षित् के प्रश्न के फलस्वरूप है।[४६] इसके बाद कृष्ण

---

४४- कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ।
नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ।।१०।२९।१

४५- न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यजे ।

उनके साथ विविध विधि से क्रीड़ा करने लगे । हाथ फैलाना, आलिं-गन करना, हाथ दबाना, चोटी, जांघ, नीवी, और स्तन आदि उन सभी अंगों का स्पर्श करना, ( जहां काम निवास करता है और जिनका स्पर्श एवं मर्दन स्त्री को संभोग के लिए तैयार करने में आवश्यक है), नखक्षत करना, विनोदपूर्ण चितवन से देखना और मुसकराना-इस प्रकार से काम रस को उत्तेजित कर कृष्ण उनके साथ क्रीड़ा करने लगे ।[४७] गोपियों को कृष्ण प्रेम का गर्व हो गया तथा वे मान करने लगीं । इस गर्व को नष्ट करने के लिए तथा उनके मान को दूर करने के लिए कृष्ण वहीं उनके बीच में ही अन्तर्धान हो गए ।

तीसवें अध्याय में गोपियों का विरह वर्णन है । कृष्ण को न देकर व्रज युवतियों की वैसा ही दशा हो गई, जैसे यूथपति गजराज के बिना हथिनियों की होती है । उनका हृदय विरह की ज्वाला से जलने लगा । वे प्रेम में मतवाली होकर कृष्ण की विभिन्न चेष्टाओं का अनुकरण करने लगीं । गाढ़ावेश होने पर वे कृष्ण की विभिन्न लीलाएं करने लगीं । इसी समय उन्हें कृष्ण तथा एक गोपी के पद दिखलाई पड़े । वे कहती है - " जैसे हथिनी अपने प्रियतम गजराज के साथ गयी हो, वैसे ही नन्दनन्दन श्यामसुन्दर के साथ उनके कंधे पर हाथ रख कर चलने वाली किस बड़भागिनी के चरण चिह्न हैं? अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्ण की यह " आराधिका" होगी । इसीलिये इस पर प्रसन्न होकर हमारे प्राण प्यारे श्याम-सुन्दर ने हमें छोड़ दिया है और इसे एकान्त में ले गये हैं ।[४८] उनके चरण चिह्नों के आधार पर वे विभिन्न कल्पनाएं करती हैं, तथा बीच बीच में कृष्ण के ईश्वरत्व का भी उल्लेख करती हैं जो कि सम्भवतः इससे अधिक अस्वाभाविक और कोई बात हो ही नहीं सकती । शुकदेव भी पुनः परीक्षित को कृष्ण में काम के अभाव को बतलाते हैं ।[५०]

---

४७- बाहुप्रसार परिरम्भकरालकोरु नीवी स्तनालभननर्मनखाग्रपातैः ।
क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रज सुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ।-
१०।५९।४६

४८- कस्याः पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना ।
सन्धन्य [illegible] रेणोः करेण्वा यथा ॥
[illegible] न हरिरीश्वरः ।

उधर कृष्ण उस विशेष गोपी के साथ एकांत में जाते हैं। उस गोपी को गर्व हो जाता है और वह कृष्ण के कंधों पर चढ़ने के लिए कहती है। कृष्ण तैयार हो जाते हैं पर जैसे ही वह (गोपी) चढ़ना चाहती है कि कृष्ण अन्तर्धान हो जाते हैं। कृष्ण के वियोग में वह भी विलाप करने लगती है। उसी समय अन्य गोपियों को वह मिल जाती है। इस प्रकार से विरही गोपियां कृष्ण के गुणों को गाती हुई रमण रेती लौट आती हैं।

इक्कीसवें अध्याय में गोपिका गीत है। कृष्ण के विविध गुणों का गान करते हुए वे कृष्ण की याद करती हैं। स्थान- स्थान पर अपने विरह का उल्लेख कर उनके प्रकट होने की प्रार्थना करती हैं। इस अध्याय में कृष्ण के माहात्म्य का गोपियां कई स्थलों पर उल्लेख करती हैं। वे कृष्ण के ईश्वरीय स्वरूप से पूर्ण परिचित प्रतीत होती हैं।

बत्तीसवें अध्याय में कृष्ण प्रकट होते हैं। गोपियों का विरह दूर होता है। कृष्ण को घेर कर वे विविध प्रकार की प्रेम क्रियाएं करती हैं। यहीं पर पुनः परीक्षित् को कृष्ण के ईश्वरीय रूप का स्मरण कराया जाता है।[५१] इसके बाद यमुना तट पर गोपियों के साथ कृष्ण बैठ जाते हैं। गोपियां तीन प्रकार के लोगों का वर्णन कर कृष्ण से पूछती हैं कि तुम किसको अच्छा समझते हो। सबके विषय में अपना मत बताकर कृष्ण कहते हैं कि अपने प्रति प्रेम को और भी सुदृढ़ करने के लिए ही मैं छिप गया था। तुम्हारे प्रेम से मैं उऋण नहीं हो सकता।[५२]

इसके बाद तैंतीसवें अध्याय में महारास प्रारंभ होता है। कृष्ण के साथ मंडलाकार गोपियां नृत्य करती हैं। देव पत्नियां आदि सभी उसे देखने वहां आ जाती हैं। रास में थक जाने के बाद कृष्ण गोपियों के साथ यमुना के जल में प्रवेश कर क्रीड़ा करने लगे। जल विहार के उपरांत वे पुनः बाहर आकर विचरण करने लगे। प्रातःकाल होने पर रास समाप्त हुआ।

---

५१- वही १०।३२।१०
५२- वही १०।३२।१५-२२

इस वर्णन के बीच में बार- बार वक्ता परीक्षित् को कृष्ण के यथार्थ रूप का स्मरण कराते रहे । यह भगवान् की चिन्मयी लीला है, इसमें काम भाव नहीं है ।[५३] इसको रास के बाद भी स्पष्टतः कह देने पर भी परीक्षित् संतुष्ट नहीं हुए । वे प्रश्न करते है -"भगवान् श्रीकृष्ण सारे जगत के एकमात्र स्वामी हैं । उन्होंने अपने अंश श्री बलराम जी के सहित पूर्णरूप में अवतार ग्रहण किया था । उनके अवतार का उद्देश्य ही यह था कि धर्म की स्थापना हो और अधर्म का नाश ।। ब्रह्मन् । वे धर्म मर्यादा के बनाने वाले, उपदेश करने वाले और रक्षक थे । फिर उन्होंने स्वयं धर्म के विपरीत परस्त्रियों का स्पर्श कैसे किया । मैं मानता हूं कि भगवान श्री कृष्ण पूर्णकाम थे, उन्हें किसी भी वस्तु की कामना नहीं थी, फिर भी उन्होंने किस अभिप्राय से यह निन्दनीय कर्म किया ? परम् ब्रह्मचारी मुनीश्वर । आप कृपा करके मेरा यह सन्देह मिटाइये ।[५४]"

इसके उत्तर में शुकदेव जी कहते हैं -"सूर्य, अग्नि आदि ईश्वर (समर्थ) कभी- कभी धर्म का उल्लंघन और साहस का काम करते देखे जाते हैं । परन्तु उन कामों से उन तेजस्वी पुरुषों को कोई दोष नहीं होता । देखो, अग्नि सब कुछ खा जाती है, परन्तु उन पदार्थों के दोष से लिप्त नहीं होती । जिन लोगों में ऐसी सामर्थ्य नहीं है, उन्हें मनसे भी वैसी बात कभी नहीं सोचनी चाहिये, शरीर से करना तो दूर रहा । यदि मूर्खतावश कोई ऐसा काम कर बैठे, तो उसका नाश हो जाता है । भगवान् शंकर ने हलाहल विष पी लिया था, दूसरा कोई पिये तो वह जलकर भस्म हो जायगा । इसलिये इस प्रकार के जो शंकर आदि ईश्वर हैं, अपने अधिकार के अनुसार उनके वचन को ही सत्य मानना और उसी के अनुसार आचरण करना चाहिये । उनके आचरण का अनुकरण तो कहीं- कहीं ही किया जाता है । इसलिये बुद्धिमान् पुरुष को चाहिये कि उनका

---

५३- वही १०।३३।३, १५, १७, २०, २६
एवं शशांकांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोऽनुरता बलागणः
सिषेव आत्मन्य वरुद्धसौरतः सर्वा शरत्काव्यकथारसाश्रयाः ।।

५४- संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च । अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः ।।२७ सकथं धर्म सेतूनां वक्ता कर्ताभिरक्षिता । प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ।। २८ आप्त कामो

जो आचरण उनके उपदेश के अनुकूल हो उसी को जीवन में उतारे । परीक्षित । वे सामर्थ्यवान पुरुष अहंकारहीन होते हैं, शुभकर्म करने में अनर्थ नहीं होता । वे स्वार्थ और अनर्थ से ऊपर उठे होते हैं । जब उन्हीं के संबंध में ऐसी बात है तब जो पशु, पक्षी, मनुष्य, देवता आदि समस्त चराचर जीवों के एक मगात्र प्रभु सर्वेश्वर भगवान् हैं, उनके साथ मानवीय शुभ और अशुभ का संबंध कैसे जोड़ा जा सकता है । जिनके चरण कमलों के रज का सेवन करके भक्तजन तृप्त हो जाते हैं, जिनके साथ योग प्राप्त कर के उसके प्रभाव से योगीजन अपने सारे कर्म बन्धन काट डालते हैं और विचारशील ज्ञानी जन जिनके तत्त्व का विचार करके तत्त्व- स्वरूप हो जाते हैं तथा समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त होकर स्वच्छन्द विचरते हैं, वे ही भगवान् अपने भक्तों की इच्छा से अपना चिन्मय विग्रह प्रकट करते हैं; तब भला, उनमें कर्मबन्धन की कल्पना ही कैसे हो सकती है । गोपियों के, उनके पतियों के और सम्पूर्ण शरीरधारियों के अन्तःकरण में जो आत्मा- रूप से विराजमान हैं, जो सबके साक्षी और परमपति हैं, वही तो अपना दिव्य- चिन्मय श्री विग्रह प्रकट करके यह लीला कर रहे हैं । भगवान् जीवों पर कृपा करने के लिए ही अपने को मनुष्य रूप में प्रकट करते हैं और ऐसी लीलाएं करते हैं, जिन्हें सुनकर जीव भगवत्परायण हो जायें । ब्रज वासी गोपों ने भगवान् श्री कृष्ण में तनिक भी दोष बुद्धि नहीं की । वे उनकी योगमाया से मोहित हो कर ऐसा समझ रहे थे कि हमारी पत्नियां हमारे पास ही हैं[५५] अंत में फलश्रुति वर्णन करते हुए वे कहते हैं कि भगवान् श्री कृष्ण के इस चिन्मय रास विलास का श्रद्धा के साथ जो बार- बार श्रवण और वर्णन करता है, उसे भगवान् के चरणों में परा भक्ति की प्राप्ति होती है और वह बहुत ही शीघ्र अपने हृदय के रोग- काम विकार से छुटकारा पा जाता है । उसका काम भाव सर्वदा के लिए नष्ट हो जाता है ।[५६]

पैंतीसवें अध्याय में गोपियां आपस में तथा यशोदा से कृष्ण की रूप माधुरी, उनके प्रभाव आदि का वर्णन करती हैं ।

---

५५- वही १०।३३।३७-३८

५६- वही १०।३३।३९-४०

उन्तालीसवें अध्याय में बलराम- कृष्णा का मथुरागमन तथा गोपी विरह है। जिस समय गोपियों ने सुना कि अक्रूर दोनों भाइयों को ले जाने के लिए ब्रज आए हैं, तब उनके हृदय में बड़ी व्यथा हुई। वे व्याकुल हो गईं। वे अपनी सुध-बुध भूल गयीं तथा कृष्णा के ध्यान में लीन हो गईं। कृष्णा विरह के भय से वे कातर भी हो गईं तथा एकत्रित हो कर अपने प्रेम का वर्णन तथा विधाता को दोष देने लगीं। उन्हें इस बात का और भी दुख है कि जिन कृष्णा के लिए उन्होंने घर द्वार, स्वजन- संबंधी, पति- पुत्र आदि छोड़े वही आज उनकी ओर देख तक नहीं रहे हैं।[५७] उन्हें मथुरा की स्त्रियों के भाग्य पर ईर्ष्या है और यह भय भी है कि चतुर नागर युवतियों में कृष्णा फंस जाएंगे। फिर वे गंवारिन ग्वालिनों के पास क्यों लौटने लगे? वे सखियों से कृष्णा को चलकर रोकने को कहती हैं। फिर वे कृष्णा के पास जा कर ज़ोर ज़ोर से रोने लगीं। कृष्णा ने लौट कर आने का आश्वासन दिया और वे जब तक आंखों से ओझल नहीं हो गये वे उन्हें देखती रहीं।

बयालीसवें अध्याय में कुब्जा प्रसंग है। तथा ४८वें अध्याय में वे कुब्जा को दिए गए वचन को पूरा करते जाते हैं और उन्होंने उसके यहां रह कर क्रीड़ा की।[५८]

सर्व प्रसिद्ध भ्रमर गीत का प्रसंग छियालीसवें तथा सैंतालीसवें अध्याय में है। गोपियों के प्रेम का वर्णन कर उनको सान्त्वना देने के लिए तथा माता-पिता को आनन्दित कराने के लिए कृष्णा उद्धव को नन्द गांव भेजते हैं।

नन्द गांव में उद्धव नंद जी से मिलते हैं। उद्धव का उचित सत्कार कर, कृष्णा के गुणों का गान कर नंद जी पूछते हैं कि "क्या कृष्णा- बलराम कभी नंद गांव आएंगे? क्या उन्हें जीवन की याद आती है?" नन्द की बातें सुनते समय [illegible] नेत्रों से निरंतर अश्रु प्रवाह हो रहा था। कृष्णा के [illegible] का वर्णन करते हुए उद्धव कहते हैं कि वे व्रज अवश्य [illegible]

---

५७- वही १०।३९ ??

५८- [illegible]

प्रातः काल गोपियों ने उद्धव के रथ को देखा और उसके विषय में सोचने लगीं । इसी समय उद्धव को उन्होंने देखा । कृष्ण के समान वस्त्रा भूषण धारण करने वाले उद्धव के परिचय के लिए वे उत्सुक हो गई । यह पता चलने पर कि यह कृष्ण का सन्देशा लाए है, वे शर्मा गई और एकांत में ले जाकर आसन पर बैठाकर उनसे कहने लगीं । कृष्ण को वे विभिन्न प्रकार से उलाहना देने लगीं । इसी समय एक गोपी के पास एक भ्रमर आगया मानो इनको मनाने के लिए कृष्ण का दूत आया हो । - वे उसके मिस कृष्ण पर व्यंग्य करने लगीं । कभी उनका कुशल समाचार पूछती तो कभी अपना दुखड़ा रोतीं । उद्धव उनकी महिमा का वर्णन करते है । वे कहते हैं कि गोपियों ने सर्वोत्तम भक्ति प्राप्त कर ली है । उनको सुख देने के लिए ही कृष्ण का सन्देशा लेकर वे आए हैं । कृष्ण का संदेशा बतलाते हुए वे कहते हैं " मैं तुमसे दूर इसी कारण से रहता हूं जिससे तुम मन से मेरी सन्निधि का अनुभव कर सको ।" अंत में गोपियां उद्धव से पूछती हैं कि क्या वे मथुरा की स्त्रियां सेभी वे गोपियों की तरह प्रेम करते हैं? वे जानना चाहती हैं कि उनकी बात कृष्ण कभी करते है या नहीं ? वे कभी यहां लौटेंगे? इस प्रकार अनेक प्रेम से भरे हुए प्रश्न कर रहीं थी । उद्धव जी के संदेश से उनकी विरह-व्यथा शांत हो गई थी ।

उद्धव जी वहां कई मास तक रहे । वे बराबर गोपियों के भाग्य की सराहना किया करते थे । उनकी इच्छा होने लगी कि मैं ब्रज की लता- गुल्म आदि बन जाऊं जिससे कि गोपियों की चरण-रज प्राप्त कर सकूं । कुछ दिनों बाद वे मथुरा लौट आए । इस प्रकार भ्रमर गीत प्रसंग समाप्त होता है ।

सूर्य ग्रहण के अवसर पर कुरुक्षेत्र में गोपियों की भेंट कृष्ण से होती है । कृष्ण गोपियों से पूछते हैं कि वे उन्हे याद करती है या नहीं । इसके बाद आत्म ज्ञान का उपदेश देते है जिसके कारण गोपियों का जीवकोश नष्ट हो गया, वे भगवान् से एक हो गयीं । कृष्ण के निरन्तर ध्यान की वे कामना करती हैं ।[1]

उपर्युक्त पर्यवेक्षण से स्पष्ट है कि भागवत में आने वाले

कृष्ण लीला में अनेक नए प्रसंग आ गए हैं । इन नए प्रसंगों में यदि शृंगारिकता पहलों से अधिक है तो साथ ही साथ भागवत्-कार का उतना ही अधिक प्रयास कृष्ण के ईश्वरीय रूप की स्थापन करने का भी है । शृंगारिकता के कारण सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण स्वाभाविक है । इसके अतिरिक्त कृष्ण की ऐसी ही लीलाओं का अधिकाधिक उल्लेख है जो कि नैतिकता की दृष्टि से उचित नहीं है । भागवत् कार स्वयं भी उनके अनौचित्य को जानता है जो कि परीक्षित् के प्रश्न के रूप में बार बार व्यक्त हुआ है । तथा जिसका समाधान स्वयं भागवत् कार के लिए अत्यन्त कठिन रहा है । उसी स्थल पर जब वे समाधान करनेमें असमर्थ रहे तो अंत में बुद्धि के स्थान पर हृदय का आश्रय लेकर कहते हैं कि कृष्ण के भक्त होने के कारण परीक्षित् को संदेह नहीं करना - चाहिए । इसके बाद प्रत्येक स्थल पर न केवल स्वयं वल्कि गोपियों के मुख से भी इन्हें बार बार कृष्ण के ईश्वरत्व का ज्ञान कराना पड़ा है ।

अपने हृदयस्पर्शी और मनोहर गुण तथा रोचक शैली और शृंगारिक प्रसंगों की भरमार के कारण ही भागवत् वैष्णवों का मुख्य ग्रन्थ हो गया तथा इसकी इतनी महत्ता मानी गई कि वेदों से भी अधिक इसे महत्त्व दिया गया । समस्त वैष्णव साहित्य पर भागवत् की स्पष्ट और गहरी छाप है ।

१४- ब्रह्म वैवर्त पुराण-

आधुनिक वैष्णव सम्प्रदायों में ब्रह्मवैवर्त का विशेष मान है । राधा को महत्त्व देने वाले ( जिनमें लगभग सभी संप्रदाय आ जाते हैं ) सम्प्रदायों में तो इसका और भी महत्त्व है । यद्यपि प्रकट रूप में सर्वाधिक लोकप्रिय और प्रमाण कोटि में भागवत् पुराण का ही स्थान है । शृंगारात्मक वैष्णवता अपने खुले हुए रूप में इसी पुराण में आई है । और ऐसा अनुमान किया जाता है कि १५ शताब्दी के कुछ ही पूर्व की यह रचना है ।

ब्रह्मवैवर्त के प्रथम खण्ड में गोकुल का वैभवशाली वर्णन

है । गोकुल त्रिलोक से परे, नित्य है ।[६०] कृष्ण परब्रह्म हैं, वे गोकुल में रहते हैं,[६१] उनकी वयस किशोर है,[६२] वे रास के मध्य में रहने वाले शांत रासेश्वर हैं ।[६३]

गो, गोप और गोपी भी नित्य हैं । सृष्टि के भी पूर्व और प्रलय के बाद भी इनकी स्थिति है ।[६४]

सृष्टि उत्पन्न करने के उपरांत जिस समय कृष्ण वैभवशाली रास मंडल में गए उसी समय कृष्ण के वाम पार्श्व से एक कन्या का आविर्भाव हुआ । वह कन्या दौड़ कर फूल ले आई और उसने प्रभु के चरणों में अर्घ्य दिया । गो लोक में रास के समय उत्पन्न होते ही दौड़ने के कारण ही उस कन्या का नाम राधा पड़ गया ।

आविर्बभूव कन्यैका कृष्णस्य वामपार्श्वतः ।
धावित्वा पुष्प मानीय ददावर्घ्यं प्रभोः पदे ।।२५

रासे संभूय गोलोके सा दधाव हरेः पुरः ।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तमः ।।२६

प्राणाधि-ष्ठातृ देवी सा कृष्णस्य परमात्मनः ।
आविर्बभूव प्राणेभ्यः प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।।२७ [६५]

राधा के सौन्दर्य एवं नख शिख का लगभग १० श्लोकों के विस्तृत वर्णन है । वह षोड़शी नव यौवना, पीन पयोधरी, बंधूक पुष्पों को भी जीतने वाले लाल औष्ठों वाली, मुक्ता पंक्ति, से भी सुन्दर दंतावलि वाली, साक्षात् सुन्दरता की सीमा, कमलनयनी, आभूषणादि तथा विविध शृंगारादि से विभूषित, सुन्दर केश वाली, सुन्दर जंघ तथा बृहत् नितम्ब वाली है ।[६६] उसके लोमकूप से गोपियां उत्पन्न हुई और कृष्ण के लोम कूप से गोप उत्पन्न

---

६०- तेषामुपरि गोलोकं नित्यमीश्वरवद् द्विज ।। ब्र० वै० १।२।१
६१- वही १।२।१४-२०
६२- वही १।२।२१
६३- वही १।२।२३
६४- वही १।५।२
६५- वही १।५।२५-२७
६६- वही १।५।२८-२९

हुए ।[६७]

राधा की उपर्युक्त उत्पत्ति और अर्थ ब्रह्मवैवर्त की अपनी कल्पना है और अन्य पुराणों में इसका अभाव है ।

जन्म खंड में राधा - कृष्ण के जन्म का कारण दिया हुआ है । इसके पीछे एक विस्तृत कथा है :

कृष्ण का विरजा नामक एक गोपी पर प्रेम था । एक दिन राधा को छोड़कर वे विरजा के साथ विहार कर रहे थे । राधा को इसकी सूचना मिली और वे तत्काल विरजा के यहाँ अपने दिव्य रथ पर बैठ कर चलीं । विरजा के यहाँ द्वारपाल रूप में श्री दाम थे । इनके रोकने पर भी वे बलपूर्वक अन्दर चली गईं । अन्दर पहुँच कर उन्होंने क्या देखा कि कृष्ण अन्तर्धान हो गए हैं एवं विरजा भय के कारण नदी बन गई । राधा लौट आई । कृष्ण का विरजा पर प्रेम था अतः उनके द्वारा उसे पुनः स्त्री रूप प्राप्त हुआ । कृष्ण ने उसके साथ संभोग किया । ऋतुमती होने के कारण कृष्ण के वीर्य से उसके सात पुत्र हुए ।[६८] एक बार छोटे पुत्र के कारण उसका कृष्ण से वियोग हुआ । वह अतृप्त रह गई । क्रोधवश उसने छोटे पुत्र को लवण-सागर होने का तथा अन्य पुत्रों को अन्य प्रकार के सागर होने का शाप दिया । इसके बाद कृष्ण आए और दोनों ने खूब संभोग किया । कृष्ण ने विरजा को वर दिया कि वे नित्य आकर संभोग करेंगे । राधा को यह सूचना मिली । रूष्ट होकर वे कोप भवन में चली गईं । कृष्ण उन्हें मनाने आए । राधा ने कृष्ण की भर्त्सना की और मानुषी योनि में भारत में जाकर जन्म लेने का शाप दिया :

> शश्वते मानुषाणां च व्यवहारस्य लंपट ।
> लभतां मानुषी योनि गोलोकाद्व्रज भारतम् ।।६२ ।।[६९]

इतना कह कर वे सखियों से धूर्त कृष्ण को महल से निकालने की आज्ञा देतीं हैं । श्रीदाम, जो कि कृष्ण के साथ थे रूष्ट हो जाते हैं । राधा को कृष्ण का यथार्थ स्वरूप बतलाकर

---

६७- ब्रह्मवैवर्त २।५।४०-४२

६८- नाना प्रकार श्रृंगारं विपरीतादिकं विभुः ।
रहसि प्रेयसीं प्राप्य चकार च पुनः पुनः ।।१
विरजा सा रजोयुक्ता धृत्वा वीर्यममोघकम् ।
सद्यो बभूव तत्रैव धन्या गर्भवती सती ।।१७ ।।वही ४।२।१६-

क्षमा माँगने को कहते हैं । राधा इस पर श्रीदामा से भी रुष्ट होकर इन्हें भी शाप देती है :-

> गोप व्रजासुरीं योनिं गोलोकाच्च बहिर्भव ।।
> मया च शप्तो मूढस्त्वं कस्त्वां रक्षितुमीश्वरः।।१००।।[७०]

इस पर श्रीदाम भी राधा को मनुष्य की भांति कोप करने के कारण मानवी होने तथा कृष्ण से १०० वर्ष तक के वियोग का शाप देते हैं ।[७१] राधा के शाप से श्रीदामा शंख चूड़[७२] और श्रीदामा के शाप से राधा वृषभानु नंदिनी हुईं ।[७३]

कृष्ण की लीलाएं:-

ब्रह्मवैवर्त में राधा कृष्ण की लीलाओं का विस्तृत उल्लेख है । अनेक नई लीलाएं हैं । स्थान- स्थान पर दोनों के देवत्व का स्पष्ट उल्लेख है तथापि उनकी सांसारिकता एवं स्थूलता में कोई भी कमी नहीं है ।

कृष्ण की अवस्था उस समय तीन वर्ष की थी । एक दिन नंद उनको लेकर गायें चराने गए । इसी बीच मायावी कृष्ण ने नभ को मेघाच्छन्न कर दिया । भयंकर आंधी आई । वर्षा होने लगी । नंद भयभीत हो गए । एक और गायों को छोड़कर जाते नहीं बनता था तो दूसरी ओर कृष्ण की चिन्ता थी । इसी समय कृष्ण रोने लगे । उन्होंने नंद का कंठ पकड़ लिया । नंद बड़े संकट में थे । इसी समय समस्त शृंगार से विभूषित, "कामास्त्रसार भूभंग योगीन्द्र वित्त मोहिनी" कठोर उरोज, गंभीर नाभि वाली, साक्षात् स्थल पद्म स्त्री नवयौवना नंद को दिखलाई पड़ी । नंद विस्मय में पड़ गए, फिर प्रणाम कर के कहते हैं कि गर्गाचार्य के मुख से मैंने सुना है कि तुम हरि की प्रिया हो । ये हरि विष्णु हैं, निर्गुण है । मैं

---

७०- ब्र०वै० ४।३।१००
७१- " ४।३।१०६
७२- " ४।३।११३
७३- " ४।३।११६

मानव हूं, भ्रमित हूं अत: तुम इसे ले लो और अपनी इच्छा पूरी करने के बाद मेरे पुत्र को लौटा देना । इस प्रकार कहते हुए भयभीत होकर नंद ने कृष्ण को राधा को दे दिया । बालक को ले कर राधा हंसी और नन्द से इस रहस्य को गोपनीय रखने को कहा, तथा वर मांगने का आग्रह किया ।देवताओं के लिए भी दुर्लभ वर देने का उन्होंने आश्वासन दिया । नंद चरणों में भक्ति मांगते हैं और राधा प्रदान करती हैं ।

वर देने के बाद राधा कामार्त होकर कृष्ण को छाती से चिपका लेती हैं तथा चुंबन करती हैं । चुंबन से पुलकित होकर वे रास मंडल का स्मरण करती हैं । इसी बीच मार्ग में उन्हें एक अत्यंत वैभव शाली रत्न-मंडप दीख पड़ा । मंडप में जाकर वे क्या देखती हैं कि एक सुन्दर शैय्या पर एक किशोर सो रहा है । अपनी गोद की ओर देखती हैं तो गोद का बालक गायब है । वे विस्मय में पड़ जाती हैं, पर साथ ही साथ उस युवक को देख कर कामार्त हो जाती हैं तथा उसे अपलक देखने लगती हैं । कृष्ण (युवक) उठकर उन्हें गो लोक की याद दिलाते हैं । दोनों का अभेद बताते हैं तथा कहते हैं कि बिना राधा के वे सृष्टि करने में असमर्थ हैं । राधा आधार भूत हैं और कृष्ण बीज रूप । इस प्रकार अभेद बता कर राधा कोनिमंत्रित करते हैं । इसी बीच में ब्रह्मा आकर दोनों का विवाह कराते हैं ।

फिर दोनों का संभोग प्रारंभ होता है । कृष्ण राधा को चबाया हुआ पान देते और राधा अपना खाया हुआ पान कृष्ण को खिलाती हैं । कृष्ण राधा का मुख पकड़ कर चुंबन करते और छाती से लगा कर वस्त्रों को शिथिल करते । कृष्ण ने राधा का चतुर्भज चुंबन कर रति प्रारंभ की । रति युद्ध में क्षुद्र घंटिका विच्छिन्न हो गई है कबरी खुल गई, आलक्त आदि विपरीत दिशा में लग गए । इस प्रकार नूतन संगम से पुलकित राधा कामाधिक्य के कारण मूर्छित हो गईं । पुन: रति प्रारंभ हुई । अंग से अंग का समागम हुआ । कृष्ण ने आठ प्रकार का श्रृंगार किया और कटाक्षपात करते हुए सस्मित राधा को दबा कर नख और दंत से सर्वांगीण क्षत्-विक्षत् कर दिया । संभोग के कारण कंकण-किंकिणि, मंजरी आदि की ध्वनि होती रही । कृष्ण ने राधा को फिर खींच कर शैय्या पर लिटा कर कबरी से मुक्त तथा वस्त्र रहित कर [illegible] ाम-शास्त्र विशारद कृष्ण ने

खींच लिया । इस प्रकार काम-युद्ध समाप्त होने पर सस्मित, वक्र-लोचना राधा कृष्ण को मुरली दे देती हैं और कृष्ण भी दर्पण लौटा देते हैं । कृष्ण राधा का पूर्ण श्रृंगार करते हैं जो कि बहुत ही सुंदर होता है । राधा भी कृष्ण का श्रृंगार करने के लिए तैयार होती हैं कि क्या देखती हैं कि कृष्ण किशोरावस्था छोड़ कर नंद पुत्र रूप में होकर क्षुधा से व्याकुल रोने लगते हैं । राधा भयभीत हो गई । इधर उधर देखकर कहती हैं कि तुम मुझ पर अपनी माया क्यों करते हो । वह रोने लगती हैं तथा रोते रोते गिर पड़ती हैं । कृष्ण भी रोने लगते हैं । इसी बीच आकाशवाणी होती है " राधे क्यों रोती हो ? कृष्ण के पद-कमलों का स्मरण करो । रास मंडल तथा प्रतिरात्रि आकर यहां हरि के साथ तुम रति करोगी । अब बालक रूप अपने प्राणेश को लेकर घर जाओ । " राधा कृष्ण को लेकर नन्द के यहां आती हैं । बालक को देते हुए कहती हैं कि गोष्ठ में स्वामी ने इस बालक को मुझे दिया था । इसके कारण मुझे बहुत कठिनाई हुई । पसीने से वस्त्र भीग गए, आकाश में बादल हैं , रास्ता फिसलने वाला है । तुम इस बालक को दूध पिला कर प्रसन्न करो ।

इस प्रकार भूलोक में राधा कृष्ण की प्रथम भेंट विवाह और संभोग होता है ।[74]

चीर हरण लीला

भागवत की चीर हरण लीला कुछ भिन्नता के साथ ब्रह्म वैवर्त में भी है ।

हेमंत में कामार्त होकर कृष्ण की कामना के कारण हविष्यान्न खा कर गोपियां पार्वती की उपासना करती हैं ।

एक मास तक व्रत रखने के बाद व्रत समाप्ति के दिन यमुना किनारे वस्त्रादि उतार कर, अन्दर जा कर वे क्रीड़ा करने लगीं। उनके वस्त्र बहुमूल्य और रत्न जटित हैं । उनका मन कृष्ण की ओर लगा रहता है । कृष्ण उनके वस्त्रों तथा द्रव्यों को गोपों के साथ लेकर दूर जा कर खड़े हो गए । तथा बाद में कुछ वस्त्रों को लेकर कदंब वृक्ष पर चढ़ गए । वहां से वे गोपियों की नग्न स्नान के लिए भर्त्सना करते हुए उन्हें विनष्ट कर्मा कहते हैं । वे कहते हैं कि शायद नग्न स्नान के कारण वरुण अप्रसन्न हो गए और उनके अनुचर वस्त्रादि उठा ले गए । फिर वे उनकी पूजा पर उपहास

करते हुए कहते हैं कि जो देवी उनके वस्त्रों की रक्षा नहीं कर सकती वह उसका फल कैसे दे सकती है । वस्त्रों को न देख कर गोपियां चिंतित और दुखी हो गईं । वे आपस में पूछने लगीं कि वस्त्र कहां गए । बाद में अनुमान से गोपियां कहती हैं कि तुम्हीं हमारे वस्त्र ले गए हो । हमारे व्रत कैसे वस्त्र दे दो । भोजन चाहें तुम कर लो । इसी बीच श्रीदामा उन्हें वस्त्र दिखला देते हैं । वस्त्र देखते ही गोपियां कुपित हो जाती हैं । राधा उन्हें वस्त्र छीन कर लाने की आज्ञा देती हैं अपने गुप्तांगों को छिपा कर वे श्रीदामा के पीछे भागती हैं । श्रीदामा भी भागकर वस्त्र कृष्ण को दे देते हैं । वस्त्रों को डालों पर लटका कर कृष्ण परिहास करते हुए कहते हैं, " ओ नग्न गोपियां तुम क्या कर रही हो । यदि वस्त्र चाहती हो तो स्वयं और तुम्हारी स्वामिनी हाथ जोड़ कर यांचा करें अन्यथा मैं नहीं दूंगा । वह हमारा क्या कर सकती हैं । " क्रुद्ध गोपियां वक्र दृष्टि से देखते हुए राधा के पास गईं । काम पीड़ित राधा कृष्ण के ऐसे वचनों को सुन कर हंसी । उसने सोचा कि मैं उसके पास लज्जा के कारण कैसे जा सकती हूं । अत: योग ध्यान द्वारा कृष्ण के पदाम्बुजों के दर्शन किए तथा उनकी स्तुति करने लगी । स्तुति में उनके ईश्वरीय रूप का वर्णन है । ध्यान-मग्न होते ही वे कृष्ण को देखती हैं । इसी समय उनकी दृष्टि यमुना तट पर जाती है तो क्या देखती हैं कि तट पर वस्त्र और द्रव्य आदि सभी वस्तुएं हैं । वे सोचने लगती हैं कि मैं स्वप्न देख रही थी या सत्य । वस्त्रों को धारण कर वे घर जाती हैं । इस प्रकार चीरहरण लीला समाप्त होती है ।[75]

## रास

ब्रह्म वैवर्त में रास का अत्यंत विस्तृत वर्णन है । त्रयोदशी के दि समस्त आभूषणों से आभूषित होकर प्रसन्न वदन कृष्ण रासमंडप में पहुंचे कामुक गोपियों के काम-वर्धन के लिए उन्होंने कौतुक करने का विचार किय वे वंशी बजाने लगे । वंशी की ध्वनि सुनते ही राधा कामातुर हो कर जड़वत् हो जाती हैं । कुछ समय बाद उन्हें ध्यान आता है । वे काम से मोहित होने के कारण, कुलधर्म छोड़ कर कृष्ण के पास आती हैं । उनके पीछे अनेक गोपियां आती हैं । कामाधिक्य से राधा बार बार मूर्च्छित हो जाती हैं । राधा की मूर्च्छा जैसे ही दूर होती है, कृष्ण उनके पास जाते हैं, उन्हें हृदय से लगा कर उनका चुंबन करते हैं और उन्हें लेकर अत्यंत

---

७५ ब्रह्म वैवर्त ४।२७

भव्य रति मंदिर में ले जाते हैं । दोनों एक दूसरे को पान देते हैं । राधा कृष्ण-चर्वित पान खाती हैं पर अपना चर्वित पान मांगने पर भी कृष्ण को नहीं देती हैं । वे कृष्ण के चरणों पर गिर पड़ती हैं । कृष्ण ने काम - प्रस्तुत राधा को शैय्या पर लिटा कर अष्ट प्रकार के विपरीत आदि श्रृंगार(संभोग), काम शास्त्र के अनुसार गोप्य आठ प्रकार के चुंबन, नख तथा दंत-क्षत आदि ~~कामिनियों~~ कामशियों को मनोहारी रति क्रीड़ा की । कामातुर होकर अंग से अंग सटा कर दोनों काम शास्त्रियों में रति युद्ध चलता रहा । कृष्ण ने सभी गोपियों के साथ भोग किया । गोपियों के केश बिखर गये थे, वेश-भूषणादि विच्छिन्न हो गये थे, वे नग्न थीं तथा कंकण, किंकिणी, नूपुर आदि की ध्वनि हो रही थीं ।

स्थल क्रीड़ा करने के बाद उन लोगों ने जल क्रीड़ा की । फिर वस्त्र पहनें, दर्पण में देख कर श्रृंगार किया । पर अभी तृप्ति नहीं हुई थी । गोपियां बल पूर्वक कृष्ण की वंशी खींच लेती हैं । कोई वस्त्र खींच कर उन्हें नग्न कर देती है । कोई चुंबन करती है, कोई कटाक्ष करती है । कोई अपने उन्नत उरोज तथा पुष्ट श्रोणि स्थान दिखलाती हैं वे अपनी कबरियों में मोर पंख, गुंज माल आदि भी लगाती हैं । वे बार बार कृष्ण को नंगा कर देती हैं । राधा सखियों को नंगा कर कृष्ण की गोद में ढकेल देती हैं । कृष्ण भी किसी के वस्त्र खींच कर उसे नग्न कर उसके वस्त्र दूसरे को दे देते हैं । फिर राधा का आलिंगन कर वे उसका श्रृंगार करते हैं । चुंबन लेते हैं । स्तन तथा श्रोणि प्रदेश में नख क्षत का बार बार प्रहार करते हैं । तदुपरांत नीवी ढीली कर, कबरी को खोल कर, क्षुद्र घंटिका हटा कर नौविधि आलिंगन, आठ विधि चुंबन और सोलह विधि श्रृंगार(संभोग) करते हैं । इसी प्रकार १२ प्रकार का प्राकृत श्रृंगार रसिकेश्वर ने किया जिसका निरूपण काम शास्त्रियों ने किया ।

काम शास्त्रियों के अनुसार क्रीड़ा के आदि मध्य व अवसान में संयोग करना चाहिए, पर कृष्ण ने इससे भी अधिक किया । इस प्रकार रास पूर्ण हो जाने पर सभी देवता रास-मंड

---

में पहुंचे । वे दिव्य रथों पर बैठे थे । काम से पीड़ित थे । काम पीड़ा के कारण देव, यक्ष, मुनि आदि ने स्थल पर रति कर जमुना जल में स्नान किया । कृष्ण भी राधा के साथ जल में गए । दोनों ने एक दूसरे को तीन-तीन अंजलि जल दिया । कृष्ण ने राधा का वस्त्र पकड़ लिया । वह नग्न हो गई । उन्होंने राधा की कबरी खोल दी, माला तोड़ दी, सिन्दुर, काजल धुल गया । जल में नग्न राधा का आलिंगन करते हुए उन्होंने स्नान किया । नग्नकर तथा गोपियों को दिखा कर राधा को जल के बाहर किया । राधा ने वेग से निकलकर वस्त्र पहना , कृष्ण की मुरली ले ली और उनका वस्त्र खींच कर उन्हें नंगा कर दिया । उनकी व माला तोड़ दी और उस पर जल फेंका । फिर हरि को खींचकर आलिंगन किया । कृष्ण ने गंभीर जल में निमज्जन किया तथा बाह आकर राधा को नग्न कर आलिंगन किया । इस प्रकार यमुना तट पर नग्न होकर उन्होंने विचित्र - विचित्र प्रकार की लीलाएं कीं । राधा ने वस्त्र मांगा । कृष्ण ने ~~न~~ वस्त्र दिया । राधा ने भी वस् और मुरली दी । इसके उपरांत दोनों ने श्रृंगार किया ।

फूले हुए कमलों को देख कर राधा ने गोपियों को माला बनाने की आज्ञा दी । अनेक गोपियों को विविध कर्मों में नियुक्त किया । गोपियां गायन वादन करने लगीं । इस प्रकार रास में रति करके, निर्जन स्थान, मनोहर स्थान, पुष्पोद्यान, श्मशान तथा भांडीर, कदली, चंपक, श्री वन, कंदब, तुलसी आदि वनों में कौतुक से दोनों ने रमण किया । फिर भी उनका मन संतुष्ट नहीं हुआ क्योंकि कामिनियों का काम संभोग से उसी प्रकार नहीं घटता है जैसे घी से अग्नि नहीं घटती है । देवताओं ने रास मंडल की प्रशंसा की तथा घर गए । किंतु राधा की काम तुष्टि नहीं हुई ।[77]

~~ह~~ इसके उपरांत गोपियां कृष्ण के साथ विभिन्न प्रकार की क्रीड़ाएं करती रहीं । वे उन्हें बार - बार नग्न कर संभोग के लिए आकर्षित करती थीं । इसी समय कृष्ण राधा के साथ अंतर्धान हो गए । निर्जन वन में, स्थान - स्थान पर उन्होंने संभोग किया । फिर राधा का वेश बना कर मलयद्रोणी में

विपरीत रति की । अत्यंत सुख के कारण राधा मूर्च्छित हो गईं । कृष्ण उन्हें चेतना में लाते हैं । पुनः नग्न कर संभोग करते हैं । राधा के बाल आदि सब बिखर जाते हैं । फिर सरोवर में जाकर जल क्रीड़ा की । जलक्रीड़ा के बाद शृंगार कर चले। मार्ग में एक विशाल वट वृक्ष के नीचे विश्राम किया । वहीं पर अष्टावक्र आकर कृष्ण के चरणों में देह त्याग करते हैं । और मुक्त हो जाते हैं ।[७८] कृष्ण राधा को अष्टावक्र आदि की कथाएं सुनाते हैं ।[७९]

अनेक कथाएं सुना चुकने के बाद कृष्ण को गोपियों की याद आती है । वे वृन्दावन चलने के लिए राधा से आग्रह करते हैं । राधा गर्व के कारण कहती हैं कि मैं नहीं चल सकती । तुम मुझे कंधे पर बैठा कर ले चलो । इसी समय कृष्ण अंतर्धान हो जाते हैं । विरह से पीड़ित, रोती हुई राधा चन्दन वन में पहुंचती हैं । उन्हें वहां गोपियां दिखाई पड़ती हैं । सब रो रही हैं । इसी समय कृष्ण प्रकट हो जाते हैं । गोपियां दौड़ कर उन्हें पकड़ लेती हैं । कोई मुरली कोई वस्त्र छीन लेती हैं । कोई कृष्ण का शृंगार करती हैं कुछ चुंबन और भर्त्सना भी करती हैं । अपने विरह को कृष्ण से कहती हैं । वे कृष्ण को रास मंडल में ले गईं और उन्हें स्वर्णपीठ पर बैठाती हैं । कृष्ण विभिन्न रूप बना कर उनके साथ क्रीड़ा करते हैं, फिर राधा को लेकर विश्वकर्मा निर्मित रति मंडल में जाते हैं । वहां काम शास्त्र विशारद कृष्ण नाना प्रकार का शृंगार करते हैं ।

कृष्ण फिर जलक्रीड़ा करते हैं । भांडीर वन में आकर कृष्ण गोपियों को विदा करते हैं और वे विरहातुर अपने अपने गृह जाती हैं । कृष्ण राधा के साथ विविध वनों में जाकर विभिन्न प्रकार से संभोग करते हैं । फिर राधा का शृंगार कर उसे आसव पिलाते हैं । इसी समय ९० सौ करोड़ गोपियां अनेक शृंगार के प्रसाधन लिए हुए इनके पद-चिन्हों को देखती आती हैं । वे इनकी सेवा में लग जाती हैं । कृष्ण राधा के साथ एक-एक क्षण में सभी सुख करते हैं । इस प्रकार निर्गुण, स्वतंत्र, स्वेच्छा मय, प्रकृति से परे की रास ~~लीला~~-स- क्रीड़ा समाप्त होती है ।[८०]

---

७८ ब्रह्म- वैवर्त ४।२९

७९ ,, ,, ४। २९।३०

८० ब्रह्म- वैवर्त पुराण - ४ । ५२-५३

इसी प्रकार आनन्द से ११ वर्ष बीत जाते हैं। एक दिन सुख -संभोग से क्लान्त हो कर राधा सो गईं। उन्होंने एक भयानक स्वप्न देखा। भयभीत होकर वह कृष्ण को बुलाती हैं और दीन होकर कहती हैं, " पता नहीं क्या होने वाला है ? पता नहीं ब्रह्मा क्या करेंगे ?" वे अपना स्वप्न कहती हैं।" मैं एक रत्नसिंहासन पर बैठी थी। मेरा रत्न जटित छत्र एक ब्राह्मण ने आकर छीन लिया। वह मुझे घोर कज्जलमय सागर में ले गया। मैं धारा में शोकार्त बहती रही। वहां मगर थे। डर कर मैंने तुम्हें पुकारा पर तुम न थे। तब मैं देवताओं की प्रार्थना करने लगी। इसी समय मैं क्या देखती हूं कि सूर्य, चन्द्र, आकाश आदि खंड - खंड होकर पृथ्वी पर गिर रहे हैं तथा एक ही समय में सूर्य, चंद्र दोनों को राहु ग्रस लेता है। मेरे क्रोड़ में सुधा का जो घट था उसे एक ब्राह्मण छीन कर कुवाक्य कह रहा है। मेरे आभूषणादि छिन्न -भिन्न हो गए हैं। उल्कापात हो रहा है।" यह कहते -कहते राधा रोने लगती हैं और कृष्ण के चरणों में गिर पड़ती हैं। कृष्ण आध्यात्मिक योग से इस स्वप्न का अर्थ बतलाते हैं तथा शोक छोड़ने के लिए कहते हैं।

राधा को बोध देने के लिए कृष्ण जलक्रीड़ा करने जाते हैं। दोनों एक दूसरे के बाहुपाश में आबद्ध रहते हैं। राधा अपना प्रेम प्रकट करती हैं तथा कहती हैं कि तुम्हारे बिना मैं कैसे जीवित रहूंगी। कृष्ण पुन: आध्यात्मि योग से बोध देने का प्रयत्न करते हैं। शाप की याद दिलाकर करहते हैं कि वियोगि के बाद संयोग होगा और हम लोग गोलोक चल कर रहेंगे। अपने यथार्थ स्वरूप को बताते हुए आपस का अभेद बतलाते हैं। राधा से व्रज जाने को कहते हैं तथा जाने की आज्ञा मांगते हैं। अक्रूर के आगमन का विचार कर कृष्ण जाने को उद्यत होते हैं। इस पर राधा रोने लगती है। वे कहती है, मैं यहां से कहीं नहीं जाऊंगी। रो रोकर अपना शरीर त्याग दूंगी। मेरा भाग्य ही मुझसे रूठ गया है। मेरे मनोरथ चूर्ण -चूर्ण हो गए हैं। यदि तुम मुझे छोड़कर जाओगे तो स्त्री हत्या का कलंक तुम्हें लगेगा और तुम्हारे पत्र -पौत्र ब्रह्म -कोपानल से नष्ट हो जाएंगे।" इतना कह कर वह कोप से पृथ्वी पर लेट गईं और उन्हें मूर्च्छा आ गई। कृष्ण सान्त्वना देते हैं। उनके साथ सरोवर में क्रीड़ा करते हैं। तब वह

संभोग सुख से मूर्च्छित राधा सो जाती हैं। कृष्ण उनका चुंबन लेते शृंगार आदि करते हैं। इसी समय ब्रह्मा आदि आकर कृष्ण की स्तुति करते हैं, उन्हें शाप की याद दिला कर वृन्दावन छोड़ने के लिये कहते हैं। वे कहते हैं कि आप मथुरा जाकर शंभु का धनुष तोड़िये, कंस को मारिये, रुक्मिणी हरण कीजिए, नरकासुर को मारिये तथा १६००० स्त्रियों का वरन करिए। जब तक राधा नहीं जागती तब तक आप चले जाइए।

ब्रह्मा की बात सुन कर, राधा को बारंबार देखते हुए कृष्ण चुपचाप चले जाते हैं। जागने पर कृष्ण को न पाकर राधा विलाप करने लगती हैं। इसी समय अनेक गोपियां आकर राधा को बोध देने लगती हैं। थोड़ी ही देर बाद कृष्ण भी आ जाते हैं सबको हटा कर वे राधा का आलिंगन, शृंगार करते हैं। रत्नमाला नामक सखी कृष्ण से राधा का विरह वर्णन करती है। कृष्ण उसे शाप की बात बताते हैं और उससे प्रार्थना करते हैं कि राधा को समझाए। यह कह कर कृष्ण नन्दालय की ओर चले जाते हैं। वह राधा को बोध कराने लगती है।

कृष्ण माता के पास जाते हैं। अक्रूर आते हैं और कृष्ण उनके साथ चले जाते हैं।

कृष्ण को रथ पर जाते देख कर राधा द्वारा प्रेरित गोपियां आकर रथ को अपने पदाघातों द्वारा चूर - चूर कर देती हैं। कृष्ण को वे अपने वक्षस्थल से लगा लेती हैं। कोई उनकी भर्त्सना करती हैं, तो कोई उन्हें वस्त्रों से बांधती हैं। कोई उन्हें नग्न कर देती हैं तो कोई अक्रूर को वाद -विवाद कर देती हैं। कृष्ण ऐसी परिस्थिति में राधा और अक्रूर को आध्यात्म योग से समझाते हैं। इसी समय आकाश से एक रथ आता है। कृष्ण मथुरा न जाकर घर लौट जाते हैं। राधा के साथ रमण करते हैं और उसके सो जाने पर चुपचाप मांगलिक कृत्य करा कर मथुरा चले जाते हैं।

कुब्जा प्रसंग

मथुरा में मार्ग में उन्हें एक अतिजरा लकड़ी के सहारे चलने वाली, वक्राकार स्त्री कस्तूरी, चंदन अंगराग आदि प्रसाधन लेकर जाती हुई दिखलाई पड़ी। कृष्ण को देख कर प्रसन्न वदन होकर उसने चंदनादि लगाया, और प्रदक्षिणा कर प्रणाम किया। कृष्ण की

वर्ष की युवती हो गई । उसने मन ही मन कृष्ण का वरण किया कृष्ण ने उसे आश्वासन दिया । कृतार्थ होकर वह अपने घर को गई । जो महल में बदल चुका था । वहां समस्त शृंगार कर, शैय्या तैयार कर वह कृष्ण की प्रतीक्षा करने लगी । रात्रि में कृष्ण आए पर वह सो चुकी थी । कृष्ण उसे जगा कर संभोग की याचना करते हैं। उसके पूर्वजन्म की कथा बता कर कहते हैं कि तुम शूर्पणखा थी । अब मेरे साथ संभोग करो और गोलोक जाओ । कृष्ण उसका आलिंगन कर उसे नग्न कर देते हैं । नूतन संग से लज्जित विहंसते हुए उसने भी चुंबन किया । फिर भांति-भांति से रति की । रात्रि समाप्त होने पर वीर्य धारण किया और मूर्छित हो गई । प्रात: होने पर स्वर्ग से आए रथ पर चढ़ कर गोलोक चली गई और वहां चन्द्र मुखी नामक गोपी हो गई ।[८१]

उद्धव प्रसंग:

मथुरा में एक दिन कृष्ण उद्धव से वृन्दावन जाकर गोपियों को आध्यात्मिक योग से सांत्वना देने के लिये कहते हैं । प्रभात होने पर उद्धव वृन्दावन जाते हैं वहां रोहिणी, यशोदा, नंद आदि कृष्ण का समाचार पूंछते हैं । समाचार बतलाकर उद्धव कहते है कि कृष्ण आएंगे । फिर सब लोग रास- मंडल में जाते हैं । वहां अत्यंत निर्जन स्थान में राधा का आश्रम था । राधा उद्धव को अन्दर ले जाती हैं । विरह से उनकी देह कृश हो गई है , मुख विवर्ण है । वह निरंतर रोती रहती हैं ।

उद्धव राधा के ऐश्वर्य स्वरूप की स्तुति करते हैं । राधा परिचय प्राप्त कर कृष्ण-बलदेव की कुशल तथा उनके आने की बात पूंछती हैं । उद्धव बतलाते हैं कि कृष्ण आएंगे । राधा विलाप करते-करते मूर्छित हो जाती हैं । उद्धव पुन: उन्हें प्रबोध कर श्रीदामा के शाप की बात कहते हैं । बार बार कृष्ण के आने की बात कहते हैं । राधा उद्धव को अनेक आभूषणादि उपहार में देते हैं । राधा बार बार कृष्ण के आने के संबंध में प्रश्न करती हैं और अंत में मूर्छित हो जाती हैं ।

उद्धव जगत् को व्यर्थ समझने लगते हैं । राधा की चेतना में लाने का प्रयत्न करते हैं । कृष्ण और राधा का अभेद बतलाते हैं उस समय सखियां कृष्ण को उपालंभ देने लगती हैं । तब रत्नमाला नामक सखी उनके ऐश्वर्य स्वरूप का वर्णन करती है । दूसरी श्रीदाम और सनत्कुमार के शाप की बात बतलाती है । थोड़ी देर बाद रा

चेतना में आती हैं। उद्धव को मथुरा जाने का आदेश देती हैं। कहती हैं, "मुझे कोई क्या प्रबोध देगा ? कृष्ण के बिना मेरा जीवन बेकार है। मेरे समान दुखित संसार क्या त्रैलोक्य में भी कोई नहीं है। कल्पवृक्ष प्राप्त कर भी मैं दरिद्र की दरिद्र रह गई। मैं उनको कैसे भूलूं।"

उद्धव जाने को तत्पर होते हैं। उसी समय माधवी नामक गोपी उन्हें रोक कर राधा से निगूढ़ ज्ञान प्राप्त करने के लिए कहती है। राधा कर्म, फल, विराट पुरूष, काल निरूपण आदि कर कृष्ण का भजन करने को कहती हैं। उद्धव के जाने पर राधा विलाप करती हैं और रोने लगती हैं।

मथुरा पहुंच कर उद्धव कृष्ण को एकांत में बैठे देखते हैं। कृष्ण राधा, यशोदा, नंद आदि के संबंध में प्रश्न करते हैं। सब समाचार देकर उद्धव कृष्ण से व्रज जाने के लिए कहते हैं। कृष्ण स्वप्न में जाने का वचन देते हैं। विरहाकुल गोकुल में कृष्ण जाते हैं। स्वप्न में राधा को सांत्वना और ज्ञान तथा यशोदा का स्तन पान कर सांत्वना देते हैं।[८२]

पुन: भेंट

१०० वर्ष बाद गणेश पूजा के अवसर पर सिद्धाश्रम में राधा-कृष्ण की भेंट होती है। कृष्ण राधा के पास जाते हैं। उच्च रत्न-सिंहासन पर बैठी वह स्थिर-यौवना द्वादश वर्षीय कन्या की भांति थी। ३० करोड़ गोपियां सेवा में संलग्न थीं। कृष्ण राधा के साथ संभोग करते हैं। राधा पूछती हैं कि तुम किस रानी को सबसे अधिक प्यार करते हो ? फिर वह रोने लगती हैं। मूर्छित हो जाती है। गोपियों ने यह सब झरोखे से देखा। वे पूछती हैं कि क्या राधा मर गई तथा विलाप करते हुए कृष्ण से उसे जीवित करने को कहती हैं। कृष्ण राधा को जीवित करते हैं, प्यार करते हैं और अपनी अभेदता बतलाते हैं। वे बतलाते हैं कि तुम्हीं सीता थीं। द्रौपदी तुम्हारी छाया है। तुम्हारे ही समान मैं भी अनेक रूप धारण करता हूं। फिर कृष्ण काम शास्त्र में वर्णित १६ विधियों से संभोग, नखक्षत आदि

---

८२- ब्रह्म वैवर्त पुराण ४।९९-९८

करते हैं। राधा वृंदावन में चलकर जल, स्थल में क्रीड़ा करने की लालसा प्रकट करती हैं। कृष्ण इच्छा पूरी करते हैं। स्थान-स्थान पर रमण करते हैं। राधा को सब कुछ नूतन प्रतीत होता है।

इस प्रकार १४ वर्ष तक भोग करने के बाद कृष्ण भांडीर वन में संसार का यथार्थ स्वरूप बताकर, कलियुग का वर्णन करते हु. गोलोक से विशाल रथ मंगवा कर सबको गोलोक भेज देते हैं।

कृष्ण भी ब्रह्मा आदि द्वारा बतलाने पर गोलोक जाते हैं और राधा के साथ रमण करते हैं।[८३]

इस प्रकार ब्रह्म वैवर्त में राधा-कृष्णकी लीलाएं अत्यंत विस्तार से हैं।

पुराणों में कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं के उपर्युक्त पर्यवेक्षण से कुछ महत्वपूर्ण निष्कर्ष निकलते हैं।

सर्व प्रथम कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाएं क्रम से प्राचीन पुराणों से नवीन में अधिकाधिक विस्तृत होती गई हैं।

द्वितीय - क्रम से कृष्ण अंशावतार से पूर्ण ब्रह्म का रूप प्राप्त करते गए हैं।

तृतीय - कृष्ण की श्रृंगारिक लीलाओं में यदि एक ओर स्थूलता बढ़ती गई है तो दूसरी ओर उनके ऐश्वर्य स्वरूप का उल्लेख भी बार बार होने लगा है।

चतुर्थ - राधा का स्पष्ट उल्लेख प्राचीन पुराणों में नहीं है। उसकी एक प्रमुख गोपी आगे चलकर राधा का रूप ही नहीं लेती वरन आद्य शक्ति भी बन जाती है।

पंचम - राधा के परकीया संबंध को ब्रह्मा द्वारा विवाह संपन्न करा कर वैध बनाने का प्रयत्न बाद के पुराणों में है।

इनके अतिरिक्त लगभग सभी प्रसंगों में (चीर हरण, रास, कुब्जा, भ्रमरगीत तथा पुन: भेंट) थोड़ा-बहुत अंतर सभी पुराणों में होता रहा है।

---

८३- ब्रह्म वैवर्त पुराण ४।१२८-१२९।

आलोच्य काल के काव्य पर पुराणों में से दो पुराणों का सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। कथा-स्वरूप और रचना-क्रम की दृष्टि से भागवत पुराण ने इस साहित्य को प्रभावित किया। इसका कारण आचार्यों द्वारा भागवत की अतिशय मान्यता है। भागवत को मानते हुए भी कृष्ण लीलाओं में शृंगार की अधिकता, स्थूलता, विलासिता और राधा की महत्ता के पीछे ब्रह्म वैवर्त पुराण का प्रभाव प्रतीत होता है।

१५- सहजिया वैष्णव और उनका परकीया तत्व

जिस समय नाथ योगी पश्चिम में सिद्धों के विरुद्ध अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे उसी समय पूर्व काल में सहजिया वैष्णवों और उनकी परकीयोपासना का प्राबल्य हो रहा था। बारहवीं शताब्दी में राजा बल्लभ सेन ने इसी के प्रभाव के कारण एक चाण्डालिनी स्त्री 'पद्मिनी' को पटरानी का स्थान प्रदान किया। श्री दिनेश चन्द्र सेन ने 'चैतन्य एंड हिज़ एज' नामक अपने ग्रंथ में इसी संदर्भ में अभिराम गोस्वामी का भी उल्लेख किया है जिन्होंने मालिनी नाम की एक स्त्री रखी थी। इस स्त्री की बड़ी प्रशंसा अभिराम तत्व, अभिराम पटल और अभिराम लीलामृत नामक ग्रन्थों में है। उक्त लेखक ने राजा लक्ष्मण सेन के दरबार की राजनर्तकी, जो कि पुरी के मंदिर की देवदासी थी, का भी उल्लेख करते हुए बतलाया है कि जयदेव ने इसकी बड़ी प्रशंसा की है।[८४] इस परकीयोपासना का विस्तृत उल्लेख श्री एम० एन० बोस तथा श्री शशि भूषण दास गुप्त ने अपने ग्रंथ क्रमश: 'पोस्ट चैतन्य सहजिया कल्ट' और[८५] 'आब्स्क्योर रिलीजस कल्ट्स' में[८६] में किया है।

इन लेखकों के अनुसार परकीया भाव का विकास वैष्णवों में राधा कृष्ण के संबंध को लेकर हुआ। सामान्यत: यह विचार है कि राधा आयण, अहिमा अथवा अभिमन्यु की विवाहिता पत्नी थीं

---

८४ - पृ ६-११

८५- (१९३०) कलकत्ता विश्वविद्यालय

८६- (१९४६) कलकत्ता विश्वविद्यालय

राधा कृष्ण से प्रेम करती थीं और लौकिक दृष्टि से यह प्रेम परकीया का था । राधा-कृष्ण के ईश्वरत्व के साथ-साथ उनके बीच का यह प्रेम भी अनादि और अलौकिक हो गया । किंतु इस प्रेम की अभिव्यक्ति लौकिक प्रेम के रूपक द्वारा ही संभव है । इस लोक में राधा-कृष्ण के प्रेम की तीव्रता की अभिव्यक्ति करने वाला प्रेम परकीया का ही हो सकता है । स्वकीया का प्रेम, प्रेम की उस उच्च स्थिति तक नहीं पहुंच सकता क्योंकि निरंतर संपर्क, नैकट्य एवं परस्पर की अधिकार भावना के कारण उसकी तीव्रता मंद पड़ जाती है । इसके अतिरिक्त धार्मिक, सामाजिक और वैधानिक स्वीकृति उसकी सरसता कम कर देती है । अत: वह प्रेम के उच्चादर्श को व्यक्त करने में असमर्थ है । इन सहजियों के अनुसार प्रेम का सर्वोच्च आदर्श तो उन स्त्री-पुरुषों के बीच में होता है जो हानि-लाभ, मान-मर्यादा, यश-अपयश और पाप-पुण्य की अवहेलना कर प्रेम के लिए सर्वस्व न्योछावर कर देते हैं । परकीया प्रेम में ही यह संभव है और इसीलिए अलौकिक प्रेम के स्वरूप को व्यक्त करने में यही समर्थ है ।[८७]

परकीया प्रेम की श्रेष्ठता का एक अन्य कारण भी बतलाया जाता है । इन लोगों के अनुसार स्वकीया 'सकाम प्रेम' का आदर्श और और परकीया 'निष्काम प्रेम' का । स्वकीया में आत्म तुष्टि, स्वार्थ या काम प्रधान रहता है और यह काम बंधन में डालने वाला है । परकीया प्रेम में प्रिय सुख, आत्मसमर्पण और निस्वार्थ की भावना रहती है । जिस प्रकार निष्काम कर्म श्रेष्ठ और मोक्ष दायक है वैसे ही परकीया भी श्रेष्ठ है । स्वकीया में ऐश्वर्य प्रधान है परकीया में माधुर्य ।[८८]

इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर राधा को सदैव अन्य गोप की विवाहिता स्त्रीरूप में स्वीकार किया गया । इस परकीया भाव में प्रिय का निरंतर चिंतन, मिलन की उत्कट उत्कंठा, दोष-दृष्टि का सर्वथा अभाव तथा निस्वार्थ समर्पण रहता है । प्रेम की यही तीव्रता वैष्णवों में स्वीकृत है । कृष्ण ने राधा के इसी प्रेम और सुख का

---

८७ - पोस्ट चैतन्य पृ २२
८८ - वही पृ ८६
८९ - वही पृ २२

अनुभव करने के लिए ही चैतन्य रूप में जन्म लिया था ।[८६]

१६- वैष्णव संप्रदायों में परकीया की स्वीकृति

परकीया की महत्ता और राधा में परकीयात्व की उपर्युक्त तथा अन्य तर्कों के आधार पर स्थापना करने पर भी परवर्ती समाज और वैष्णव संप्रदायों ने उसे स्वीकार नहीं किया । इसका कारण परकीया की समाज-विरोधिनी स्थिति है । फलस्वरूप चैतन्य संप्रदाय को छोड़कर शेष सभी वैष्णव संप्रदायों में राधा आदि का परकीयात्व स्वीकार नहीं किया गया । उन्होंने राधा आदि को स्वकीयात्व प्रदान कर दिया । यह कार्य चैतन्येतर संप्रदायों तक ही सीमित न रहा । वृंदावन के चैतन्य संप्रदायी आचार्यों ने भी गंधर्व विवाह द्वारा गोपियों को स्वकीया बना दिया ।[९०] इस स्वकीयात्व को प्रदान करने में वैष्णव संप्रदाय कहां तक सफल हुए हैं और भक्त कवियों में राधा आदि का कौन सा रूप प्राप्त है, इसका विचार हम नायिका के स्वरूप के अंतर्गत करेंगे । यहां पर तो इतना कहना ही अभीष्ट है कि वैष्णवों में परकीया भाव की भक्ति स्वीकृत थी तथा इसका प्रभाव आलोच्य साहित्य पर पड़ा ।

१७- अन्य धार्मिक साहित्य

"रामभक्ति में रसिक संप्रदाय" नाम ग्रंथ में डा० भगवती प्रसाद सिंह ने राम साहित्य की श्रृंगारिक परंपरा का विस्तृत उल्लेख किया है । जिन ग्रंथों में यह परंपरा मिलती है वे वाल्मीकि रामायण रघुवंश, उत्तर राम चरित, जानकी हरण, हनुमन्नाटक, कंचन रामायण, प्रसन्न राघव, मैथिली कल्याण, हंसदूत, उदार राघव आदि हैं ।[९१]

कृष्ण शाखा की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रंथ जयदेव कृत गीतगोविंद है जिसमें राधा-कृष्ण की श्रृंगारी लीला बड़े ही मनोहर और उन्मुक्त रूप में प्रकट हुई है । इस ग्रंथ का हिन्दी

---

९०- उज्ज्वल नीलमणि- हरिवल्लभा ५ पृ ५०

९१- पृ ६७-७५

काव्य पर कितना प्रभाव पड़ा है यह आंकना सरल कार्य नहीं । इस शृंगारिक काव्य का महत्व इतने से ही समझा जा सकता है कि जयदेव की गणना श्रेष्ठ भक्तों में होने लगी । यदि कबीर का निम्नलिखित उद्धरण अप्रामाणिक नहीं है तो कबीर स्वयं उन्हें बड़े एवं उल्लेखनीय भक्तों में समझते थे ।

जागे सुक उधव अक्रूर
हणवंत जागे लै लंगूर
संकर जागे चरन सेव
कलि जागे नामां जै देव ।।[६२]

इस प्रकार ज्ञानी कबीर तक इन्हें शुकदेव, उद्धव, अक्रूर और हनुमान जी की श्रेणी का भक्त स्वीकार करते थे । यह जयदेव की रचनाओं के प्रभाव का बड़ा भारी प्रमाण है । कवि व्यास जी ने भी नारद, शुकदेव आदि की ही श्रेणी में जयदेव की गणना की है और उन्हें अनन्य रसिक भक्त गिना है ।[६३] चैतन्य देव ने इसे प्रमाण कोटि में स्वीकार किया है ।[६४] इनकी रचना और इनकी परंपरा ने संपूर्ण कृष्ण काव्य को शृंगार परक रचना की प्रेरणा प्रदान की है।

१८- अपभ्रंश साहित्य

हिन्दी भक्ति काव्य की पृष्टभूमि रूप में अपभ्रंश साहित्य का उल्लेख भी आवश्यक है । अपभ्रंश साहित्य का हिन्दी साहित्य पर प्रभाव का अध्ययन डा० रामसिंह तोमर नें अपने शोध प्रबंध में किया है । डा० तोमर के अनुसार पुष्पदंत कृत महापुराण में सीता तथा कृष्ण के नखशिख वर्णन हैं । पूर्वराग का प्रारंभ चित्र तथा प्रत्यक्ष दर्शन दोनों ही रूपों में इस काव्य में दिखलाया गया है ।[६५] नागकुमार चरित, भविसत्त कहा (धनपाल कृत), सुंदसणचरिउ (नयनन्दि कृत), जिनदत्त चरिउ (लालूकृत), सनत्कुमार चरित (हरिभद्र)

---

६२- कबीर ग्रंथावली ~~पृ २५~~ परिशिष्ट १३१ तथा पद. ३८७
६३- व्यास जी ६ और ६
६४- डा० राकेश-नायिका भेद (अप्र०) पृ २१५-१६
६५- डा० तोमर (अप्र०) पृ ११५

पउमसिरी चरिउ (धाहिल कृत) आदि में धार्मिक आवरण के भीतर रोचक प्रेम कथायें दी गई हैं जिनमें नायिका का नखशिख वर्णन, कहीं कहीं उत्तान श्रृंगार वर्णन तथा अन्य श्रृंगारी वर्णन प्राप्त हैं।[९६] ये कथायें हमारा ध्यान बरबस प्रेमाश्रयी शाखाओं की सूफी प्रेम कथाओं की ओर आकर्षित करती हैं। इस प्रकार भक्तिकाल के पूर्व ही धार्मिक आवरण में प्रेमकथा या इसका विलोम प्रेम कथा के आवरण में धार्मिक संदेश की पुष्ट परंपरा प्रचलित थी। संभव है कि प्रेमाश्रयी शाखा की रचनाओं की रचनाविधि के पीछे इस साहित्य की प्रेरणा रही हो। कृष्ण काव्य पर इस साहित्य के प्रभाव का संकेत करते हुए डॉ० तोमर ने कहा है कृष्ण काव्य का जो रुप हिन्दी के भक्ति युग में मिलता है अपभ्रंश के कुछ अंशों को पढ़कर कभी कभी उसका स्मरण हो आता है। गाथा सप्तशती के कुछ पद्यों में राधा, कृष्ण और गोपियों (गाथ सं० ३.१४, २. १२ १.८६, ५.४७) आदि ) के उल्लेख मिलते हैं वह जिस मुक्त और स्वच्छंद ढंग से यह उल्लेख मिलते हैं वह मुक्त वातावरण संस्कृत साहित्य में प्राप्त कृष्ण चरित्र में नहीं मिल सकता। ---- स्वयंभू, पुष्पदंत, हेमचंद्र के पद्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि कृष्ण की मर्यादित कथा के अतिरिक्त गोपी-गोपालों के प्रिय कृष्ण की कथा का भी एक रुप लोक और अपभ्रंश की धारा में प्रचलित था और उस धारा का हिन्दी के कृष्ण साहित्य पर बहुत प्रभाव पड़ा होगा। जो मुक्त वातावरण सूरदास की कविता में मिलता है उसकी एक फलक स्वयंभू, पुष्पदंत और हेमचन्द्र के पद्यों में मिलती है। ९७

## १६ निष्कर्ष

हिन्दी भक्ति-काव्य की पूर्व पठिका के इस संक्षिप्त अवलोकन से निम्नलिखित निष्कर्ष स्पष्ट होते हैं :-

(१) भक्ति काल के पूर्व धार्मिक और साहित्यक दोनों ही क्षेत्रों

---

९६- डा० तोमर (अप्र०) पृ० ११५-१६२

९७- वही पृ० २६५

शृंगार की स्वीकृति थी तथा उसकी अभिव्यक्ति उच्च कोटि के साहित्य में थी ।

(२) यह शृंगार सांकेतिक या मर्यादित रूप में न व्यक्त होकर उत्तान शृंगार रूप में व्यक्त हो रहा था ।

(३) ऐसे शृंगारिक कवियों को भक्तों का गौरव प्राप्त हो चुका था ।

(४) फलस्वरूप आलोच्य काल के कवियों के लिए इष्टदेव के शृंगार-वर्णन में होने वाली स्वाभाविक हिचक न्यून थी ।

(५) अपने आलंबन की निराकारिता के कारण ज्ञानाश्रयी शाखा में यह शृंगार न्यूनतम मात्रा में उपलब्ध है । अन्य शाखाओं में इसकी मात्रा को प्रभावित करने के लिए यथेष्ट सामग्री थी ।

इस सामग्री से अनुप्राणित होकर भक्तकवि निश्शंक रूप में शृंगारिक रचना में संलग्न हो सके जिसका रूप आगामी अध्यायों में स्पष्ट किया गया है । भक्ति शृंगार का विशाल प्रासाद इसी पीठिका पर खड़ा है ।

----0----

## चतुर्थ अध्याय

## हिन्दी भक्ति-काव्य में प्राप्त प्रेम का स्वरूप

## हिन्दी भक्ति काव्य में प्राप्त प्रेम का स्वरूप

### भूमिका

प्रस्तुत अध्याय में हिन्दी भक्त कवियों की रचनाओं में प्रेम का जो स्वरूप उपलब्ध है उसी का विवेचन किया गया है। इस संदर्भ में स्पष्ट कर देना है कि "प्रेम" का प्रयोग उसी व्यापक अर्थों में किया गया है, साहित्य शास्त्रियों की "रति" के एक अवस्था विशेष के अर्थ में नहीं।

हिन्दी के सभी भक्त - कवियों ने प्रेम की महिमा, उसका स्वरूप, उसकी अनिर्वचनीयता, उसके मार्ग की दुरूहता आदि के गुण गाए हैं। अपनी मात्रा में यह इतना विस्तृत है कि उसका पूर्ण विवरण देना संभव नहीं। इसकी तीव्रता और विकास की मान्यता शृंगार में अनिवार्य है। नीचे भक्ति की प्रत्येक शाखा में प्राप्त इसके विभिन्न रूपों का संक्षिप्त वर्णन किया जा रहा है।

### 2 ज्ञानाश्रयी शाखा

#### प्रेम की महिमा -

ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर ने प्रेम की बड़ी महिमा गाई है। इसकी महिमा को स्पष्ट करने के लिए कवि ने चुनरी का रूपक लिया है। भक्त रूपी प्रेमिका के लिए प्रेमी भगवान द्वारा संवारी यह चुनरी मामूली चुनरी नहीं है। इस चुनरी को धारण करने की शक्ति भी साधारण नहीं है। प्रिय - भगवान ही जिस पर प्रसन्न हों, जिस पर यह चुनरी स्वयं ही डाल दें, वही पा सकता है। वही इसे पहन सकता है। भगवान की प्रेम रूपिणी यह चुनरी प्राप्त करना सौभाग्य है पर इसको संभाल कर रखना हिम्मत का काम है। यह फूलों की सेज नहीं कांटों का जंगल है। इस प्रकार कबीर ने प्रेम की महिमा गाई है[1]।

#### प्रेम का स्वरूप

कबीर का प्रेम एक दीर्घवती भावना है। भगवान की रहस्य-केलि की एक पुकार ही भक्त के हृदय में मिलन की आकुलता और विरह

में झाँई पड़ जाती है। पपीहे की तरह पिउ, पिउ, रटने पर भी राम नहीं मिलते। यथार्थ में प्रिय तो रोने से ही मिलते हैं। इस रोने में कितनी पीड़ा और मिलन की उत्कंठा है, इसका वर्णन कबीर ने किया है :-

अंखड़िया झाईं पड़ी, पंथ निहारि निहारि ।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि ।।
नैना नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम ।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौं, कबरू मिलहुगे राम ।।
अंखड़ि प्रेम कसाइयाँ, लोग जाणैं दुखड़ियाँ ।
साँईं अपणैं कारणैं, रोइ रोइ रतड़ियाँ ।।
हँसि हँसि कन्त न पाइये, जिनि पाया तिन रोइ ।
जौ हाँसै ही हरि मिलै, तौ न दुहागिनि कोइ ।।– कबीर ग्रं०

कबीर हँसणां दूरि करि, रोवण सौं करि चित्त ।
बिन रोये क्यूँ पाइये प्रेम पियारा मित्त ।। कबीर ग्रं० २

निष्ठुर प्रिय की इस निष्ठुरता को सहन करना सरल नहीं है। इसीलिए कबीर ने प्रेम का आदर्श सती और सूरमा को माना है। यथार्थ में यह प्रेम शूर के संग्राम और सती के आत्म बलिदान से भी बढ़ कर है। भगवान् - प्रेमी साधु सती और सूरमा तीनों ही जान के ऊपर खेल जाते हैं फिर भी एक रस प्रेम का निर्वाह सती-सूरमा के व्रत-निर्वाह से कहीं अधिक कठिन है :-

साधु सती औ सूरमा, इन पटतर कोउ नाहिं ।
अगम पंथ को डग धरै, डिगैं तो कहाँ समाहिं ।
साधु सती औ सूरमा, कबहुं न फेरैं पीठ ।
तीनों निकसि जो बहुरैं, ताको मुंह नहि दीठ ।।
टूटै बरत अकास सौं, कौन सकत झेल ।
साधु सती अरु सूरमा, जानी ऊपर खेल ।। तथा
आगि आंच सहना सुगम खंग की धार ।
नेह निबाहन एक रस महा कठिन व्यवहार ।।

– सन्त कबीर की साखी, वेंकटेश्वर प्रेस
प्रयाग (सं० १९७७) पृ० २२०

बावरा है जो यह ठीक नहीं है । यथार्थ में वह सुल्तान है । इस विरह से हीन प्राणी तो मृतक तुल्य है :-

> बिरहा बुरहा मत कहौ, बिरहा है सुल्तान ।
> जिहि घट बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान ॥

इस प्रकार संक्षेप में साधना तत्व, भक्ति भावना, त्याग-तपस्या-अनन्यता-युक्त, विरह- दुःख से परिपूर्ण, मृत्यु की सीमा को पार कर प्रिय से मिलाने वाला, स्वाभाविक तत्व और सहज रस यह प्रेम होता है । यही भक्तों का साध्य है ।

## 3 प्रेमाश्रयी शाखा

प्रेमाश्रयी शाखा में प्रेम की महिमा सर्वोपरि है । यह प्रेम सौंदर्य से युक्त और भावुक है । अलौकिक सौंदर्य - भावना ही इस प्रेम का मूल कारण है । यह प्रेम तर्क के नियमों से परे और स्वयं प्रमाण है । इस तथ्य का उद्घाटन जलालुद्दीन रूमी ने निम्नलिखित शब्दों में किया है :-

" हृदय की पीड़ा प्रेमी के प्रेम की अभिव्यक्ति कर देती है । इस हृदय की वेदना से किसी अन्य वेदना की तुलना नहीं की जा सकती है । प्रेम एक अलग ही रोग है जिसमें दैवी अनुभूतियों की अनुभूति होती है । यही प्रेम हमें आगे ले जाता है । इसकी अभिव्यक्ति और व्याख्या तर्क के सहारे नहीं की जा सकती । प्रेम स्वयं ही अपना व्याख्याकार होता है । वह ठीक उसी तरह से है जिस तरह से सूर्य होता है । सूर्य अपना प्रमाण स्वयं है । प्रेम भी स्वयं प्रमाण स्वरूप है । "

( - रूमी-निकलसन पृ० ४३ )

## प्रेम का स्वरूप

प्रेम हिंदी प्रेमाश्रयी कवियों ने अपने ग्रंथों में प्रेम के दिव्य स्वरूप [illegible] । उनका यह विवेचन बहुत कुछ मौलिक

(२) भाँति मनुष्य लागि [illegible] संसारा, मन [illegible] बोलि [illegible] आई बारा ।
    [illegible] जो [illegible] सो न मैं मारा, जानहु लोक एक उँजारा ।। चित्रा०
    १८०

(३) जनि कष्ट हुँ सोरहु लागिहै, ऐसि बात निकुंज जन कोहै ।
    मधु पृ० ३०

<u>प्रेम और सौंदर्य की एकता</u>

सौंदर्य से प्रेम की उत्पत्ति होती है पर मूलतः दोनों एक हैं । इस संसार में प्रेम को छोड़ कर और कुछ भी सुंदर नहीं है -

तीन लोक चौदह खंड सबै परैं मोहि सूझि ।
प्रेम छाँड़ि किछु और न लोना जौं देखौं मन बूझि ।। पद्मा० ६६

यथार्थ में प्रेम और रूप में ऐसा संबंध है कि जहाँ रूप है वहीं प्रेम भी है । रूप और प्रेम में शशि और किरण, हिम और जन्म का संबंध है । इस संसार में जहाँ भी रूप का प्रसार है वहीं उससे प्रेम का व्यवहार है । यदि ब्रह्मा ने रूप दिया तो उसने नैनों को प्रेम - चकोर भी बना दिया । ब रूप दीपक की बत्ती है तो प्रेम उसका उजाला है जिस पर प्रेम - पतंग अपने को जला देता है । रूप का निवास केतकी कलिका में होता है तो प्रेम के वशीभूत भ्रमर उस पर अपने प्राणों को न्योछावर कर देता है

प्रेम किरन ससि रूप जेउं, पानि प्रेम जिमि हेम ।
एहि विधि जहँ तहँ जानियहु, जहाँ रूप तहँ प्रेम।। चित्रा २६

<u>प्रेम और विरह</u>

प्रेम और विरह का भी नित्य संबंध है । विरह ही प्रेम का सार अंश है -

(१) प्रीति बेलि संग बिरह अपारा । सरग-पतार जरै तेहि झारा।।
    पद्० २५४

(२) पेमहिं माँहँ बिरह औ रसा। मैन के घर मधु अंब्रित बसा।। १६६

(३) जहाँ प्रेम तहँ बिरहा जानहु, बिरह बात जनि लघु करि मानहु।।

है –

रूप प्रेम निरखा जात, मूठ दृष्टि के अन्त। चित्रा ३१

<u>विरह अग्नि शरीर को कुंदन करने वाली</u>

जो मैल विरहाग्नि में ताप उससे मल्ल मय उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे स्वर्ण के अग्नि में तपने पर। वह व्यक्ति विरहाग्नि से कुंदन के समान चमकता हुआ निकलता है –

कंचन करत मलिन जारि मथजा, विरह अग्नि जारि कुंदन करजा।। चित्रा २९७

तथा विरह अग्नि जारि कुंदन होई, निरमल तन पावै पै सोई।। चित्रा २७६

<u>प्रेम का मार्ग कठिन है</u>

इस संसार में प्रेम करना सरल नहीं है। इसका मार्ग अत्यंत कठिन है। त्याग और बलिदान इसके अनिवार्य अंग हैं। यह पंथ छुरों के बीच से है। खड्ग की धार से तीक्ष्ण है। इस मार्ग में सिर देना पड़ता है। इसका फंदा एक बार पड़ने पर छूटता नहीं है और जिसकी गर्दन में यह फंदा पड़ जाता है, वह प्राण देना चाहता है[3]। प्रेम की स्थिति मृत्यु से भी कठिन होती है, क्योंकि उसमें न तो प्राण जीता है और न ही मृत्यु होती है[4]। प्रेम पहले तो मीठा लगता है पर खाने पर खाने पर प्राण देने पड़ते हैं। आकाश में दृष्टि रखने से सुमेरु पर पहुँचा जा सकता है पर प्रेम दृष्टि में नहीं आता, यह आकाश से भी ऊँचा है। आकाश के ध्रुव से ऊँचे पर प्रेम का ध्रुव उगता है। जो पहले सिर को देकर पीछे इस मार्ग में पैर देता है, वही प्रेम के ध्रुव को छू सकता है[5]। इस प्रेम पंथ के मर्म को भ्रमर जानता है जो अपने प्राण देता है और फिर भी नहीं छूटता[6]। इस प्रेम के पर्वत पर वही चढ़ सकता है जो सिर के बल चढ़ता है। उस मार्ग में सूलियाँ

---

३ – पद० ६७ ,

४ – वही ११६ । मधु: [illegible] की त्रिसु सनक निरखा है, यह रे विरह किन लिखा है। [illegible]

५ – वही १२२ चित्रा : मधु ४६, मधु ७१ चित्रा ७६

[illegible] प्रेम और अलौकिक है । हरिदासी संप्रदाय के ललित किशोरी जी की वाणी में इसका स्वरूप अत्यंत स्पष्ट रूप में व्यक्त हुआ है -

> जहाँ काम तहँ प्रेम है जहाँ प्रेम तहँ काम ।
> मन मोहन की रीति में मिलत [illegible] ।
> निकुंज केलि सु प्रेम है कोटि कलानि [illegible] ।
> रस सागर किशोर रसिक रीझि रीझि अभिराम ।।
> अद्भुत सु लखिये प्रेम रस परम केलि सुख धाम ।
> और स्वरूप अलौकिक नित रीझ रीझि अभिराम ।।[77]

<u>प्रेम और नेम</u>

सामान्यत: प्रेम और नेम का विरोध है । प्रेम पंथ का पथिक समस्त नियमों को त्याग कर आगे बढ़ता है । लगभग सभी संप्रदायों ने यही माना है । वल्लभ और गौड़ीय संप्रदायों में गोपियों तथा राधा ने समस्त लोक-मर्यादाओं का त्याग किया था । जिन संप्रदायों में नित्य विहार की कल्पना है उनमें भी सामान्यत: प्रेम को नेम से परे बताया है । [illegible]कार ने तो इस प्रेम-पंथ को नेम-प्रेम से भी परे बताया है -

> निगम निगम आगम अगम लखि न सके गुन ग्रंथ ।
> नेम प्रेमते पर कह्यौ परम परा कौ पंथ।। सिद्धांतसुख १०

प्रेम में नेम न रहने की बात बिहारिनदास के निम्नलिखित पद में अत्यंत स्पष्ट है -

> मन प्रेम तौ नेम रहै न पिया ।
> यम संयम निषेध कै व्रत तौ लगि जौ परस्यौ न हिया ।
> पुनि पावत ही सुख स्वाद कछू बिसरे सुख देह किया न किया ।
> श्री बिहारिनदास मनोहर कौ सुख सर्वस लै हित हाथ दिया ।
> कोउ कैसिये कोटि कहौ कुल की मन प्रेम तौ नेम रहै न पिया।।[78]

---

77- संप्रदाय की वाणियों का निजी संग्रह पृ० १
78- विहारिनदास की वाणियों का निजी संग्रह पृ० ४३

राधावल्लभ संप्रदाय में इस नेम का प्रेम के साथ समन्वय किया गया है। यह समन्वय विहार-परक प्रेम और नेम में है, साधन परक प्रेम और नेम में नहीं है। विहार की स्थिति में प्रिया-प्रियतम की क्रीडाएं ही "नेम" हैं। प्रिया-प्रियतम की आत्म विभोर की स्थिति "प्रेम" है। दूसरे शब्दों में प्रेम शाश्वत, त्रिकालातीत और सदा एक रस रहने वाला तत्व है। नेम विहार की स्थिति में आदि अंत युक्त एक ऐसा धर्म है जो प्रेम को व्यवहार्य बनाता है। जिन क्रियाओं द्वारा प्रेम पहचाना जाता है वे सब नेम हैं।[७९] प्रेम-नेम की यह व्याख्या इसी ही संप्रदाय में प्राप्त है। इस स्थिति में धर्म अधर्म का भेद ही नहीं मिट जाता बल्कि धर्म अधर्म और अधर्म धर्म तक बन जाता है।[८०]

प्रेम में तत्सुख भाव -

प्रेम में तत्सुख भाव की प्रमुखता है। तत्सुख का अर्थ है अपने सुख के स्थान पर प्रिय के सुख का ध्यान। उसी के सुख में संतोष और तुष्टि। इस प्रकार राधा और कृष्ण को एक दूसरे के सुख का ही विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस स्थिति में स्वार्थ और अहंकार का स्थान नहीं है। वल्लभ संप्रदाय में इस अहंकार नाश का उल्लेख रास प्रसंग में हुआ है। गौड़ीय संप्रदाय के माधुरी जी प्रिय सुख को न हो इस लिए प्राण देने तक को तैयार है-

> प्राण गए की कछु नहीं, भति प्रीतम दुख होय।
> यही समझि मन में सदा, छीजत नैनन रोय।।
> -- उत्कंठा माधुरी ५६

राधावल्लभ संप्रदाय का तो यह मूलाधार ही है। "हितचौरासी" का प्रथम पद इसी भाव का द्योतक है तथा ध्रुवदास ने भी प्रेमलता लीला (पृ० २५४) तथा सिद्धांत विचार लीला में इसका

---

७९- स्नातक, राधावल्लभ पृ० १५४-५५ आदि

८०- अधरम धरम धरम जहां अधरम ऐसी कछुक रसिकता आहि।
वल्लभ रसिक पृ० ७१

उल्लेख किया है। हरिदास संप्रदाय में भी तत्सुख की ही महत्ता है। हाँ, यहाँ राधा की जगह कृष्ण अपने समस्त अहंकार को नष्ट कर प्रिया के प्रेम की आकांक्षा करते हैं और प्रीति की रीति जानने वाली प्रिया उन्हें उनके सामर्थ्य के अनुकूल रस का पान कराती हैः-

आधी आधी अखियनि री चितवत चितु चोरति।
सुरत अंत अलसात गात तुतरात बात कहि आवत भावत री
लालन मन जब जंभात कर मोरति।
यौंही नित सहज सुभाव श्याम तन रहिरी मान न करि बार बार
मनुहार करत हौं पाइनि परैं निहोरति।
श्री विहारनिदासि सुख देत निरंतर छिन छिन प्यारी पिय इहि
विधि रति जोरति।।[८१]

प्रेम-पंथ

कृष्ण भक्ति शाखा के वल्लभ संप्रदाय में सामान्यतः प्रेम के पंथ को ईश्वर-प्राप्ति का सरलतम मार्ग कहा गया है। सूरदास ने इसे राजपंथ तथा सीधा मार्ग कहा है।[८२] संपूर्ण भ्रमरगीत की रचना ही योगमार्ग से प्रेम-मार्ग की श्रेष्ठता तथा सरलता सिद्ध करने के लिए की गई है। हृदय-पक्ष की प्रधानता के कारण इसकी सरलता असंदिग्ध मानी गई है फिर भी कहा गया है कि इसको निवाहना सरल कार्य नहीं। इसीलिए परमानंद दास ने इसे अतिकठिन मार्ग बतलाया है जिसमें पैर रखते ही तन छीजने लगता है।[८३] व्यासजी ने इसे तलवार की धार के तुल्य माना है। अन्य कवियों ने इसके स्वरूप का उल्लेख कर परोक्ष रूप में इसकी कठिनता व्यक्त की है।[८४] इस प्रेम की चोट बाण से भी अधिक गंभीर होती है।[८५]

---

८१- विहारनिदास का निजी संग्रह पृ० ७२ देखे माधुरी वाणी, वंशीवट माधुरी २३३

८२- सूर ४५०८

इस प्रेम में विरह मिला हुआ है।[८६] इस विरह के कारण व्याकुलता उत्पन्न होती है। प्रकृति दुखदायी लगने लगती है। प्रेमी बिना संसार सूना तथा प्राण बेकार लगने लगते हैं।[८८] प्रेम में मरना भी नहीं सुहाता[८९], प्रेमी से मिले बिना पीड़ा कम नहीं होती।[९०] यह नित्य बढ़ता रहता है। इसे रोकना बूते की बात नहीं है।[९१] इसकी पीड़ा या तो वही जानता है जिस पर बीतती है।[९२] अथवा प्रिय ही जानता है।[९३] इसका छूटना कठिन है।[९४] इसलिए प्रेम होने पर इसकी पीड़ा किसी से नहीं कहनी चाहिए। गूंगे बालक की तरह इसे सहना चाहिए।[९५] इसीलिए तो प्रेमियों ने पुकार-पुकार कहा है कि प्रेम कोई न करे।[९६] प्रेम कर सुख नहीं प्राप्त हो सकता है।[९]

प्रेम की चाल भी तो अटपटी है। बिना मिले तो वियोग है ही किंतु मिलने पर प्रतीत नहीं होती।[९८] मिलन की चाह बढ़ती ही जाती है:-

---

८६- माधुरी बाणी, उत्कंठा माधुरी १३-१९, सूर ४०३१,४६०४
८७- सूर-चंद्रोपालंभ- ३९६९ आदि- ३८२८ आदि, १३५८ आदि
८८- सूर १६४५, ४२१६
८९- सूर ३९०८
९०- सूर ४२९४
९१- सूर ४५३४
९२- सूर ४५२३, ४५६७, परमानंद ३५५, ध्रुवदास, ब्यालीस
लीला, ब्रजलीला ७२-७३
९३- माधुरीबाणी, वंशीवट, माधुरी २४६
९४- परमानंद ४२२ सूर
९५- परमानंद ४४६
९६ सूर ३९०४, ३९०९, परमानंद ५५ ५
९७- सूर ३९०६, परमानंद ५५५
९८- माधुरी बाणी, बंसीवट माधुरी २३,

स्याम तन मन गौरे गात मैं गसत री ।
जदपि हुती न न्यारी कहत हा हा री प्यारी ।
,विचित्र बिहारी बाहु बंद सौं कसत री ।।
प्रान प्रानन सौं सींर बाँटत होत अधीर ।
एक ही सुर स्वांस विस्वांस ह्वै हंसत री ।।
श्री बिहारिन दासि रोम रोमनि कहाँ लौ व्यौरौ ।।
ताफदा की मौज अति ताहूं ते लसत री ।
चोली सी अमोली पीत ऐसे सुख मैं सभीत ।
स्याम तन मन गौरे गात मैं गसत री ।।[९९]

इस मिलन के प्रत्येक क्षण में विरह और संयोग होता रहता है-[१००]

विरह संजोग छिनहि छिन माँही ।जदपि ग्रीवनि मेले बाँही ।

यह ऐसा अटपटा विरह है जिसे सुन कर विस्मय होता है । इसमें प्यास जल न पीकर जल ही प्यास को पी रहा है , प्यास ही जल हो गई है-

अटपटी भाँति को विरह सुनि, भूलि रह्यौ सब कोइ ।।
जल पीवत है प्यास कौ, प्यास भयौ जल सोइ ।।[१०१]

इस प्रकार कृष्ण-भक्ति साहित्य में प्रेम के स्वरूप की विस्तृत अभिव्यक्ति हुई है जिसकी एक झलक मात्र ऊपर प्रस्तुत की गई है ।

यह विलक्षण, आश्रय की ओर से एकनिष्ठ, सम, संयोग -वियोग से परिपूर्ण, नित्य नूतन और बर्द्धमान है । इसका स्वरूप और इसकी महिमा अकथनीय है ।

---

९९- विहारिन दासि का निजी संग्रह- पृ० ५५
१००- ध्रुवदास, ब्यालीस लीला, रहस्यमंजरी लीला ४२ तथा [illegible] लीला

६- रसखान-

प्रेम की विशद अभिव्यक्ति करने वाले कवियों में रसखान का विशेष स्थान है । उन्होंने प्रेम का जैसा संप्रदाय मुक्त- शास्त्रीय वर्णन किया है वहअन्य कृष्ण भक्त कवियों में दुर्लभ है अतएव प्रेम संबंधी उनके विचारों का तनिक विस्तृत अध्ययन लाभ प्रद होगा ।

प्रेम का लक्षण-

रसखान ने कृष्ण-प्रेम को न लेकर प्रेम मात्र को ही लिया है। इसका लक्षण देते हुए उन्होंने कहा है कि प्रेम वही है जो गुण, यौवन, रूप, धन की चाह नरखता हो और स्वार्थ तथा कामना से रहित हो । प्रेमी अपने प्रिय से किसी प्रकार की आशा नहीं रखता, वह समस्त कामनाओं से रहित होता है-

> बिनु गुन जो बन रूप धन, बिनु स्वारथ हित जानि ।
> शुद्ध कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि।। प्रेमवाटिका-१५

मित्र, पुत्र, बंधु में सहज स्नेह होता है किंतु यह शुद्ध प्रेम नहीं है ।[१०२]

प्रेम का स्वरूप

प्रेम के समान स्वरूप को स्पष्ट करते हुए रसखान इसकी एकनिष्ठा का विशेष रूप से उल्लेख करते है । प्रेम एकांगी होता है । सदा एकरस और समान रहता है तथा अपने प्रिय को ही सर्वस्व समझता है ।[१०३] यह कभी पथ-भ्रष्ट नहीं होता है और निरंतर वर्द्धमान रहता है ।[१०४] यह काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, मात्सर्य, भय, द्रोह आदि से परे है ।[१०५] प्रेम श्रुति, स्मृति, पुराणादि सभी का सार है । इसी प्रेम पर ही विषयानन्द और ब्रह्मानंद आश्रित है ।

---

१०२- प्रेमवाटिका २०
१०३- " २१
१०४- " ८

इस प्रकार यह लौकिक और पारमार्थिक दोनों ही आनन्दों का मूलाधार है।[१०६]

## प्रेम और ज्ञान

प्रेम के विना ज्ञान का गर्व वृथा है। प्रेम के विना ज्ञान, कर्म, उपासनादि सब अहमन्यता के ही मूल हैं।[१०७] प्रेम का न जानना कुछ भी न जानने के समान है और प्रेम को जान लेने के बाद कुछ भी जानना शेष नहीं रह जाता है।[१०८] बिना प्रेम का ज्ञान व्यर्थ है।

## प्रेम और ईश्वर

प्रेम और ईश्वर में कोई अंतर नहीं है। प्रेम ईश्वर का स्वरूप है और ईश्वर प्रेम-स्वरूप है। दोनों सूर्य और धूप के सदृश्य हैं:-

प्रेम हरी कौ रूप है, त्यौं हरि प्रेम स्वरूप।
एक होइ द्वै यौं लसैं, ज्यौं सूरज अरु धूप।।प्रेमवाटिका २४

इतना ही नहीं प्रेम हरि से भी श्रेष्ठ है क्योंकि सृष्टि को अपने आधीन रखने वाले हरि भी इसके आधीन रहते हैं।[१०९] यह प्रेम ऐसा है कि इसको प्राप्त कर लेने पर बैकुण्ठ क्या हरि तक की चाह नहीं रहती है।[११०] इसी से सभी प्रकार की मुक्तियों से प्रेम श्रेष्ठ है।[१११]

## प्रेम की अकथनीयता

ईश्वर और प्रेम दोनों ही समझ के परे तथा अकथनीय है।[११२]

---

१०६- प्रेमवाटिका ११
१०७- " १२
१०८- " १८ तथा ९, १३, २५, २६
१०९- " ३६
११०- " ९८
१११- " ३५
११२- " १०

इसको अनेकानेक प्रकार से समझाने की चेष्टा की जाती है । प्रेम सागर के समान अगम, अनुपम, अनित है । यह उस मदिरा की भांति है जिसे पी कर वरूण जल के स्वामी तथा शंकर विष पीकर गिरीश होगए । यह एक दर्पण है जिसमें अपना रूप भी कुछ अजीब सा दिखलाई पड़ता है ।[११३] कोई इसे फांसी, तलवार, नेजा, भाला, तीर या ढाल कहता है । इसकी मार की मिठास रोम-रोम में भर जाती है जिसके कारण मरता हुआ प्राणी पुनर्जीवित हो जाता है । यह विचित्र खेल है जिसमें दो दिलों का मेल होता है और प्राणों की बाजी लग जाती है ।[११४] यथार्थ में प्रेम ही बीज, अंकुर, जल, डाल-पात, फल-फूल सभी कुछ है । कार्य-कारण, कर्ता, कर्म, क्रिया, करण भी प्रेम ही है । संसार में इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।[११५]

प्रेम और नेम

प्रेम में नेम का कोई स्थान नहीं है । साधारण लौकिक नियमों की बात कौन कहे, धार्मिक वैदिक नियमादि भी इसके सामने धरे के धरे रह जाते हैः-

लोक बेद मरजाद सब, लाज काज संदेह ।
देत बहाये प्रेम करि, विधि निषेध को नेह ।।प्रेमवाटिका ७

प्रेम के भेद

रसखान ने प्रेम के दो भेद माने है - विषयानन्द या लौकिक प्रेम तथा ब्रह्मानन्द या भगवत् प्रेम ।[११६] यह दूसरे प्रकार का भगवत् प्रेम ही उच्च कोटि का है । विषयानन्द भी प्रेम ही है पर वह निम्नकोटि का है । इनका शुद्ध प्रेम दंपति-सुख तथा विषयरस से परे है ।[११७]

उपर्युक्त दो भेदों के अतिरिक्त रसखान ने प्रेम के दो अन्य

---

११३- प्रेमवाटिका ३-५
११४- " २९-३०
११५- " ४३-४७

भेद भी माने है - शुद्ध प्रेम तथा अशुद्ध प्रेम । शुद्ध प्रेम के मूल मैं सहजता और स्वाभाविकता होती है जब की अशुद्ध प्रेम के मूल मैं स्वार्थ रहता है ।[११८] शुद्ध प्रेम का हृदय के विकारों से बड़ा विरोध है । किसी एक भी विकार के रहते हुए हृदय में शुद्ध प्रेम नहीं टिक सकता है । इसके साथ ही एक बार शुद्ध प्रेम स्थापित हो जाने पर फिर कोई विकार पास नहीं फटक सकता है ।[११९] समस्त विकारों से रहित प्रेम होता है, इसे सभी मुनिवरों ने कहा है । मनुष्य को अपना शरीर सबसे प्यारा होता है पर हम शरीर से भी अधिक प्यारा प्रेम कहलाता है ।[१२०]

## प्रेम की कसौटी

रसखान ने शुद्ध प्रेम की कसौटी बतलाई है । जिस प्रेम को प्राप्त कर बैकुंठ या ईश्वर की इच्छा भी न रह जाए उसे शुद्ध प्रेम समझना चाहिये । इसके अतिरिक्त यह प्रेम अपने प्रेमी से सदा भयभीत रहता है, कुछ भी इच्छा नहीं करता है, सब कुछ सहता है और फिर भी एक रस रहता है ।[१२१] प्रेम की कसौटी दो मनों का मिलना मात्र नहीं है । सर्वोत्तम प्रेम वही है जब दो तन एक हो जायें -

दो मन इक होत सुन्यो, पै वह प्रेम न आहि ।
होइ जबै द्वै तनहुं इक, सोई प्रेम कहाहि ।। प्रेमवाटिका ३१

## प्रेम का आदर्श

प्रेम के आदर्श रूप में उन्होंने दो उदाहरण प्रस्तुत किए है एक तो लैला-मजनूं है दूसरी गोपियां है-

अकथ कहानी प्रेम की, जानत लैली खूब
दो तनहूं जहं एक भे, मन मिलाइ महबूब ।।प्रेमवाटिका ३३

---

११८- प्रेमवाटिका ४०-४१
११९- " १५
१२०- " २७
१२१- " २८,२९,३२

तथा

जदपि जसोदा नंद अरु, गुवाल बाल सब धन्य ।
पै या जग मैं प्रेम कौ, गोपी भई अनन्य ।। वही ३८

इस प्रेम की कुछ माधुरी प्राप्त करने वाले ऊधो ही हुए हैं, दूसरे और कोई नहीं है ।[१२२] नारद-पाँचरात्र का इस पर स्पष्ट प्रभाव है ।

प्रेम-पंथ

रसखान ने प्रेम-पंथ को सीधा और टेढ़ा दोनों ही कहा है । यह कमल नाल से भी क्षीण और खड़ग की धार से भी पैना है ।[१२३] इस प्रेम पंथ का सीधापन और कमलनाल सी क्षीणता इसके प्रारंभ और विकास की सरलता के कारण ही है । श्रवण , कीर्तन और दर्शन से यह सरलता से उत्पन्न होकर विकसित हो सकता है । इस प्रेम को प्राप्त करने के लिए किसी भी प्रकार के ज्ञान या साधन की आवश्यकता नहीं है । इस प्रेम का मार्ग कठिन इस अर्थ में है कि एकांगी, सहज तथा स्वाभाविक प्रेम होना दुर्लभ ही नहीं है बल्कि उसका अंत तक निर्वाह भी अत्यंत कठिन है । एक बार पथ भ्रष्ट होने के बाद फिर सँभलना सरल नहीं है । फिर प्रेम होने के बाद उसकी पीड़ा सहनी पड़ती है जो कि प्राणान्तक वेदना से परिपूर्ण होती है ।[१२४] इसमें मर कर ही जिया जा सकता है ।[१२५] इसमें प्राणों की बाजी दाँव पर लगाई जाती है । सिर कटने, हृदय छिदने और शरीर के टुकड़े- टुकड़े होने पर भी हँसना पड़ता है ।[१२६] इसी से इस पंथ पर चलना तलवार की धार पर चलने के सदृश्य है ।

इस प्रकार रसखान के काव्य में प्रेम की अभिव्यक्ति अत्यंत विशद, सूक्ष्म और शास्त्रीय हुई है । उनके प्रेम निरूपण में भारतीयता के साथ सूफियों के प्रेम की सर्वव्यापकता और लौकिक- अलौकिक प्रेम की एक रूपता भी परिलक्षित होती है ।

---

१२३-प्रेम वाटिका ३९
१२४- वही ६
१२५- " १३
१२६- " १६

७ मीरां

मीरां का प्रेम अन्य भक्त कवियों के प्रेम से भिन्न है। अन्य कवियों ने जहां राधा-कृष्ण के प्रेम का वर्णन किया है वहां मीरां ने अपने अनुभूत प्रेम के गीत गाए हैं। कबीर के प्रेम से भी यह प्रेम विलक्षण है। कबीर के प्रेम में जहां साधना, ज्ञान और कल्पना का मिश्रण है, मीरां के प्रेम में वहीं स्वाभाविकता, सरलता और अनुभूति है। मीरां स्वयं कृष्ण से प्रेम करती थीं और इस प्रेम का चित्रण उन्होंने अपने पदों में किया है। उनका उद्देश्य प्रेम के स्वरूप को बतलाना नहीं था। उनके पद तो उनकी आत्माभिव्यक्ति हैं। इसीलिए उनके पदों में प्रेम की महिमा एवं स्वरूप का प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है। जो भी उनके प्रेम का स्वरूप है वह उनकी प्रेमाभिव्यक्ति के आधार पर निर्मित किया गया है।

प्रेम का स्वरूप

मीरां का प्रेम मूलतः स्वकीया का है। बार-बार उन्होंने कृष्ण को अपना पति कहा है।[१२७] अपने इस प्रेम को जन्म-जन्मांतर का वे मानती रही हैं।[१२८] फिर भी यत्र-तत्र परकीया प्रेम की झलक भी मिलती है। इसी कारण लोक-लाज तोड़ने, बदनामी सहने आदि का उल्लेख उन्हें करना पड़ा है। यथार्थ में उनके प्रेम का स्वरूप बाह्य जगत के लिए परकीया नारी का और अंतर्जगत के लिए स्वकीया नारी का है। उनका एक पद स्पष्टतः परकीया भावना को व्यक्त करने वाला है-

छांड़ो लंगर मोरी बहियां गहो ना।
मैं तो नार पराये घर की मेरे भरोसे रहो ना।।[१२९]

---

१२७- थाने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी।
ओढ़ी चूनर प्रेम की, म्हारो गिरधर जी भरतार।।
-पद्मावली शबनम-मीरां बृहद का संग्रह ९
अब नहिं मानूं राणा थारी, मैं बर पायो गिरधारी। वही १९
माई, म्हाने सुपणे में परण गया जगदीस।। वही २
बरजी नांही रहूंगी, म्हारो स्याम सुंदर भरतार।। वही २५
१२८- वही ३६४, ११३, २४७
१२९- वही ४१४

किंतु यही पद चन्द्रसखी के नाम से भी प्रचलित है। अतः संभव है कि यह उनका न हो।

मीरां का प्रेम पूर्वराग, मिलन और विरह से समन्वित है। रूपासक्ति से प्रारंभ होकर, पूर्वराग जन्य विरह से परिपुष्ट होकर, मिलन के कुछ क्षणों की स्मृति से उद्दीप्त होकर उसकी परिणति विरह में होती है। इसका विस्तृत उल्लेख आगे यथा स्थान किया गया है।

प्रेम और लोक-लज्जा

मीरां ने जिस प्रेम का वर्णन किया है, वह इस संसार से बहुत ऊंचा है। उसमें लोक लाज का कोई स्थान नहीं है-

राणा जी मैं तो सांवरे रंग राची।
साजि सिंगार बांध पग घुंघरू, लोक लाज तजि नाची।[१३०]

प्रेम का अमिट रंग

मीरा के अनुसार प्रेम का प्रभाव अमिट होता है। इसका रंग एक बार भी जिस पर चढ़ जाता है फिर छूटता नहीं। कठिन परीक्षा होने पर भी यह नहीं छूटपाता।

यो तो रंग धत्ता लग्यो ए माय।
पिया पियाला अमर रस का, चढ़ गई घूम घुमाय।
पिया पियाला नाम का रे, और न रंग सोहाय।
मीरां कहै प्रभु गिरधर नागर, काचो रंग उड़ जाय।।[१३१]

प्रेम का घाव और उसकी पीड़ा

प्रेम का घाव आंतरिक होता है। बाहर से कुछ भी नहीं दिखलाई पड़ता पर इसकी पीड़ा रोम-रोम से फूट पड़ती है-

---

१३०- मीरा बृहद् पद संग्रह ३०१, २४५ आदि
१३१- मीरांबाई की पदावली-परशुराम चतुर्वेदी (२०११) पद ४४

बाहरि घाव कछू नहि दीसै, रोम रोम दी पीर ।
जन मीराँ गिरधर के ऊपर, सदकै करूँ सरीर ।[१३२]

इस पीड़ा को वही जानता है जिसके यह होती है या जिसने दी होती है-

लागी सोही जाणै, कठण लगण दी पीर ।
विपति पड्याँ कोइ निकट न आवै, सुख मैं सब को सीर ।[१३३]

तथा

हेरी मैं दरद दिवाणी होइ, दरद न जाणै मेरो कोइ ।
घायल की गति घाइल जाणै, की जिण लाई होइ ।[१३४]

इस पीड़ा में कभी चैन नहीं मिलती । दिन में भूख और रात्रि में नींद समाप्त हो जाती है ।[१३५] यथार्थ में यह दुखों का मूल ही है ।[१३६]

प्रेम-पंथ

प्रेम के पंथ की सूक्ष्मता तथा दुरूहता का मीराँ ने वर्णन किया है । इसकी राह रपटीली है, ऊँची-नीची है । बड़े यत्न से पैर रखने पर भी पैर डिग ही जाता है । रास्ते में अनेक चोर-डाकू-लुटेरे आदि हैं ।[१३७] यह पंथ प्रिय के देश को जाता है ।[१३८] वहाँ प्रिय का निवास है पर उसकी सेज गगन मंडल पर सूली के ऊपर है अतः उससे मिलन सरल नहीं है ।[१३९]

प्रेम का रूप

प्रेम का रूप बाण, कटार, सर्प और मदिरा तुल्य है । यह बाण जिसके लगता है वह बराबर तड़पता रहता है । उसे कल नहीं पड़ती ।[१४०] यह सर्प की भाँति भी है । जब विरह सर्प

---

१३२- ६ मीराँ बाई की पदावली- परशुराम चतुर्वेदी १९१
१३३- ७ वही
१३४- ८ वही ७२
१३५- ९ वही २२
१३६- १० वही ५८
१३७- ११ वही १९३
१३८- १२ वही १९२
१३९- १३ वही ७२
१४०- १४ वही ९१, १५५, १५६

डसता है तो शरीर में विष की लहर आ जाती है और व्याकुलता बढ़ जाती है।[१४१] यह प्रेम की कटारी जिसके लगती है उसका भी यही हाल होता है।[१४२] यह प्रेम नशा अमरत्व प्रदान करने वाल है। कोटि उपाय से भी नहीं उतरता है। इसके नशे में प्रेमी मतवाला रहता है-

यो तो रंग धत्ता लग्यो ए माय।
पिया पियाला अमर रस का, चढ़ गई घूम घुमाय।
यो तो अमल म्हांरो कबहुं न उतरे, कोट करो उपाय।[१४३]

तथा

राती माती प्रेम की, विष भगत को मोड़
राम अमल माती रहे, धन मीरां राठौड़।[१४४]

प्रेम का आदर्श

मीरां ने प्रेम के आदर्श का स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है पर अपने विरह की तुलना उन्होंने जिन जीवों से की है, उन्हें ही उनके प्रेम का आदर्श माना जा सकता है। ऐसे जीवों में मीन, चकवी,[१४५] चकोर और पतंग [१४६] को उन्होंने उल्लेख किया है। इनका प्रेम परंपरा-प्रसिद्ध है और मीरां ने उसे ही स्वीकार किया है।

समग्र रूप में मीरां का प्रेम अन्य भक्त कवियों से भिन्न स्वानुभूत है। उसमें प्रेम के स्वरूप की उतनी चर्चा नहीं है जितनी कि उसके प्रभाव की। इसीलिए उनमें विरहाभिव्यक्ति की बहुलता है। उनका यह प्रेम सूक्ष्म, आंतरिक, मादक और व्यथित करने वाला है।

---

१४१- ~~४५~~ वही ९१

१४२ मीरांबाई की पदावली, परशुराम चतुर्वेदी १७५,१७६

१४३- वही ५४

१४४- वही ४७

१४५- वही ~~१३६~~ १२८

१४६- वही १७६

## ९ निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर भक्ति-साहित्य में अभिव्यक्त प्रेम के स्वरूप के संबंध में निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं:-

(१) भक्ति की सभी शाखाओं में प्रेम की स्वीकृति है। भक्ति शृंगार-काव्य का मूलाधार यही है। सभी शाखाओं में इसके स्वरूप का उल्लेख स्वल्पाधिक रूप में प्राप्त है। मात्रा की दृष्टि से कृष्णाश्रयी शाखा में इस प्रेम के स्वरूप का उतना उल्लेख नहीं है जितना अन्य शाखाओं में है।

(२) इस संबंध में निर्गुण और सगुण धाराओं के प्रेम की मौलिक भिन्नता द्रष्टव्य है। निर्गुण शाखा में व्यक्त प्रेम ईश्वर-जीव, भगवान-साधक और प्रिय-प्रिया का है। इनमें कोई अंतर नहीं है। सगुण शाखा की स्थिति भिन्न है। इसमें कोई साधन परक प्रेम और इष्टदेव तथा उनकी प्रिया के बीच का प्रेम पूर्णतः भिन्न वस्तुएं हैं। साधक का प्रेम किसी भी स्थिति में राम-सीता अथवा राधा-कृष्ण के प्रेम के रूप का नहीं हो सकता।

(३) प्रेम-पंथ की दुरूहता को सामान्यतः सभी शाखाओं में मान्यता मिली है। कृष्णाश्रयी शाखा में सूर ने इस मार्ग को सरल और राजपथ बतलाया है। संपूर्ण भ्रमर गीत में ज्ञान और योग मार्ग से इसकी सरलता की अभिव्यक्ति है। फिर भी यह मार्ग सरल नहीं है, यही विचार सर्वत्र प्रतिभासित होता है। सामान्यतः यह दुरूहता साधन-परक प्रेम को लेकर कही गई है। राम और सीता तथा कृष्ण और राधा के प्रेम की सहजता और शाश्वतता के कारण उसमें दुरूहता का प्रश्न ही नहीं उठता है।

(४) सामान्यतः प्रेम को काम से भिन्न माना गया है। यथार्थ में प्रेम काम का नाशक है। फिर भी प्रेमाश्रयी तथा कृष्णाश्रयी शाखाओं में काम की स्वीकृति है। प्रेमाश्रयी शाखा में एकनिष्ठ और सती स्त्री का काम साधारण काम न रह कर प्रेम ही हो जाता है। दोनों में कोई अंतर नहीं रहता। इसीलिए उसमें काम-क्रीड़ा को भी स्थान दिया गया है। कृष्णाश्रयी शाखा में राधा-कृष्ण के संबंध में लौकिक काम न होते हुए भी काम है ऐसी मान्यता

है । यह अलौकिक प्रकार का है ।

(५) प्रेम में नेम नहीं है । ऐसा सभी का मत है । राधावल्लभ संप्रदाय में नेम की नवीन व्याख्या दे कर उसे प्रेम के अभिव्यक्त रूप में स्वीकार किया गया है । प्रेम हृदयस्थ भाव है और उसको व्यक्त करने वाली सभी क्रियाएं नेम हैं । यह व्याख्या अन्य शाखाओं और संप्रदायों में स्वीकृत नहीं हैं ।

(६) प्रेम में विरह की महत्ता किसी न किसी रूप में सभी शाखाओं में मान्य है । इसे प्रेम का सार तत्व कहा गया है । कृष्णाश्रयी शाखा के जिन संप्रदायों में विरह को सैद्धांतिक रूप में अस्वीकार कर दिया गया है उनमें भी सूक्ष्म विरहकी विलक्षण कल्पना कर इसे स्वीकार किया गया है ।

(७) प्रेम के आदर्श सामान्यतः परंपरागत हैं जिनमें मीन, चातक और सारस मुख्य हैं । कबीर ने समाज से शूर तथा सती को लेकर उन्हें भी आदर्श माना है।

(८) प्रेम की कसौटी में सर्वत्र एक निष्ठता, अनन्यता, निस्वार्थता, नित्य वर्द्धमानता आदि मानी जा सकती है। भक्ति श्रृंगार काव्य के सभी नायक-नायिका इस कसौटी पर खरे है और स्वयं आदर्श है ।

----

## पंचम अध्याय

## हिन्दी भक्ति-काव्य में नायक का स्वरूप

## हिन्दी भक्ति- काव्य में नायक का स्वरूप

### भूमिका -

इस अध्याय में भक्ति- काव्य की विभिन्न धाराओं में मिलने वाले नायकों की प्रकृति पर विचार किया जा रहा है। यह विचार श्रृंगार रस के आलम्बन और आश्रय के रूप में नायक के उपलब्ध स्वरूप को ध्यान में रखते हुए किया गया है।

हिन्दी भक्ति- काव्य में नायक के स्वरूप का उतना विस्तार और वर्गीकरण नहीं है जितना कि नायिका का है। सामान्य रूप से यह साहित्य- शास्त्रीय मान्यताओं के अनुरूप त्याग भावना से पूर्ण, सुकृती, कुलीन, उच्चकुलोद्भव, बुद्धि- वैभव शाली, रूप - यौवन - संपन्न, उत्साही, उद्योग- शील, तेजस्वी, चतुर और सुशील है। भक्ति की विभिन्न शाखाओं में उपलब्ध इसके रूप नीचे दिये जा रहे हैं।

### १- ज्ञानाश्रयी शाखा -

ज्ञानाश्रयी शाखा में भक्त की आत्मा के प्रिय राम हैं। वे दशरथ के पुत्र नहीं हैं। उनका स्वरूप निर्गुण और निराकार है। वे परब्रह्म हैं। निराकार होने के कारण वे केवल कल्पना और भावना में ही उपलब्ध हैं। अतएव सामान्य नायक की परिधि में उनका स्थान नहीं है।

### २- प्रेमाश्रयी शाखा-

सारा प्रेमाश्रयी काव्य श्रृंगार की भित्ति पर खड़ा है। और उसमें नायक का महत्वपूर्ण स्थान है। इस शाखा के नायक पूरे पूरे मानव हैं और इस दृष्टि से नायक - भेद में उनका अध्ययन संभव है।

उसी के लिए वे अपना सर्वस्व त्याग बैठते हैं । इसी मार्ग में उन्हें अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । प्रेम के लिए वे इन कष्टों और कठिनाइयों को सहर्ष सहते हैं । इस प्रकार इन नायकों को मुख्य रूप से धीर ललित नायकों की कोटि में रखना चाहिए । साथ ही इनमें गंभीरता, विनय और क्षमा गुण भी अपनी पराकाष्ठा में प्रदर्शित होते हैं अतः इन्हें धीरोदात्त भी कहा जा सकता है । रत्नसेन की स्थिति कुछ भिन्न है । वह चितौड़ का राजा है और पद्मिनी के प्रेम में योगी होकर चल देता है । इस प्रकार उसे अपने राजकीय कर्तव्यों से अधिक अपनी प्रेम- यात्रा की चिन्ता है । सिंहल द्वीप में भी वह पद्मिनी के प्रेम में अपने राजपाट तथा पत्नी नागमती को भूलकर भोग- विलास में डूब जाता है । अतः उसे भी धीर ललित की ही संज्ञा देना अधिक उपयुक्त होगा । इसके साथ-साथ वीरता, धीरता, गंभीरता, त्याग, क्षमाशीलता आदि गुण भी उसमें यथेष्ट मात्रा में हैं और इस रूप में धीरोदात्त नायकों की कोटि में भी उसे रखा जा सकता है । निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्रेमाश्रयी काव्य के नायक मुख्यतः धीर ललित हैं किंतु उनमें धीरोदात्त नायकों के सभी गुण भी हैं ।

नायक के श्रृंगारिक भेद अनुकूलादि की दृष्टि से प्रेमाश्रयी शाखा के नायकों के अनुकूल और दक्षिण दो ही रूप उपलब्ध हैं ।

अनुकूल नायक -

शुद्ध अनुकूल नायक - इस शाखा में अनुकूल नायक के दो रूप मिलते हैं । प्रथम तो पूर्ण अनुकूल नायक है जिनका ध्यान और प्रेम केवल एक नायिका पर ही केन्द्रित है । उसे छोड़कर उन्होंने और किसी ओर दृष्टि ही नहीं फेरी । ऐसे नायकों में मधुमालती का नायक मनोहर है । उसकी एक ही प्रेमिका है और वह उसकी पत्नी भी हो जाती है । और कहीं उसका न तो ध्यान जाता है और न ही किसी को परिस्थिति वश वह स्वीकार करता है

इसे शुद्ध अनुकूल की संज्ञा दी जा सकती है ।

संकर अनुकूल नायक :- दूसरे प्रकार के अनुकूल नायक वे हैं जो कि एक से अधिक पत्नी वाले हैं । इनमें पद्मावत के रत्नसेन और चित्रावली के सुजान हैं । रत्नसेन अपनी पत्नी को छोड़कर पद्मावती को प्राप्त करने चला जाता है । पद्मावती को प्राप्त करने के बाद से नागमती के संदेश प्राप्त करने तक की स्थिति में वह पद्मावती के प्रति अनुकूल नायक है । संदेश मिलते ही वह चित्तौड़ के लिए चल देता है । यहीं से उसका दक्षिणत्व प्रारंभ हो जाता है किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका पद्मावती के प्रति प्रेम कम हो गया । इसका प्रमाण वह प्रसंग है जहां लक्ष्मी ने उसकी परीक्षा ली है । ऐसी ही स्थिति सुजान की भी है । चित्रावली के प्रेम के कारण सुजान ने कौलावती के साथ पूरी तरह से सोहाग-रात नहीं मनाई । चित्रावली से विवाह के उपरांत वह उसी में पूर्णतः रम गया । इस स्थान तक चित्रावली की दृष्टि से सुजान अनुकूल नायक की श्रेणी में आएगा । कौलावती के संदेश के बाद उसका भी दक्षिणत्व प्रारंभ होता है । इन नायकों को संकर अनुकूल कहा जा सकता है ।

दक्षिण नायक - ऊपर हम बता आए हैं कि रत्नसेन और सुजान में - दक्षिणत्व कहां से प्रारंभ होता है । रत्नसेन का यह रूप चित्तौड़ में बिलकुल स्पष्ट हो जाता है । नागमती और पद्मावती दोनों को ही वह समझाता है, " जिन्होंने एक बार पति का मन समझ लिया है, वे एक दूसरे से क्यों जूझेंगी? सच्चा ज्ञान इस प्रकार है । कोई उसे मन में नहीं जानता । कभी रात होती है, कभी दिन होता है । धूप और छांह दोनों ही प्रियतम के रंग हैं । दोनों एक साथ मिल कर रहो । लड़ना छोड़ो और दोनों समझो । सेवा करो और सेवा से ही कुछ प्राप्त करो । तुम दोनों गंगा जमुना के समान हो । तुम्हारे लिए परस्पर योग या संगम लिखा है । दोनों मिल कर सेवा का

और सुख भोग करो ।"[१] सुजान भी " कौलावती -गवन खंड " में चित्रावली को समझाते हुए कहता है " ए मेरी प्राणप्यारी सुन्दरी ! तुम्हारे बिना शरीर में प्राणों का रहना कठिन हो रहा है । मुझे तुम्हारे बिना कोई दूसरा प्रिय नहीं है पर उस बेचारी ने मेरे विरह में बड़ा दुख पाया है । तुम उसे सौत जान कर मत दुखी हो । वह तुम्हारी आज्ञाकारिणी होगी ।"[२] इस प्रकार समझा कर सुजान कौलावती के पास जाता है । इस प्रकार रत्नसेन और सुजान दोनों ही पूर्णतः और सफल दक्षिण नायक है ।

७- प्रेमी, उपपति और पति

शृंगारी नायकों का एक अन्य भेद पति और उपपति है । सभी नायकों का विवाह अपनी प्रेमिकाओं से हो जाता है । अतः विवाहोपरांत सभी नायक पति की श्रेणी में आएंगे । विवाह के पूर्व इन नायकों का रूप विचारणीय है । इसके लिए विवाह के पूर्व के इनके स्वरूप को देख लेना लाभप्रद होगा ।

पद्मावत का नायक रत्नसेन अपनी पत्नी को छोड़कर पद्मावती के रूप पर मुग्ध होकर उसे प्राप्त करने सिंहल द्वीप जाता है । वहाँ उसे उसके प्रति पद्मावती के अनुराग का पता चलता है और पूजा के बहाने उसकी प्रेयसी उसे दर्शन देने

---

१- चलि राजा आवा तेहि बारी । जरत बुझाई दूनौं नारी ।।
एक बार जिन्ह पिउ मन बूझा। काहे कौं दोसरे सौं जूझा ।।
ऐस ज्ञान मन जान न कोई । कबहूं राति कबहूं दिन होई ।।
धूप छाँह दुइ पिय के रंगा । दूनौं मिली रहहु एक संगा ।।
जूझब छाँडहु बूझहु दोऊ । सेव करहु सेवा कछु होऊ ।।
तुम्ह गंगा जमुना दुइ नारी लिखा मुहम्मद जोग ।।
सेव करहु मिलि दूनहु और मानहु सुख भोग ।। पद्मावत-४४१

२- कहिसि कि सुन्दरि प्रान पियारी, तोहि बिनु प्रान होई-घट बारी।
मो कहं तुम्ह बिनु आन न भावा । वै मोहिं बिरह बहुत दुख पावा ।।
चित्रा०४९९
सौति जानि जनि होहु दुखारी। वह तुम्हारि अस आज्ञा-

भी आती है किंतु मुच्छा के कारण यह भेंट सफल नहीं हो पाती अनेक प्रयत्नों के उपरांत रत्नसेन पद्मावती से विवाह करने में सफल होता है और दोनों का मिलन होता है ।

चित्रावली का नायक सुजान और नायिका परस्पर आकर्षित होकर एक दूसरे को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं । इस प्रयत्न के फलस्वरूप दोनों एक दूसरे के दर्शन करने में सफल होते हैं पर मिलन नहीं हो पाता । इसी समय दोनों का वियोग होता है और अनेक कठिनाइयों के बाद नायक सुजान नायिका चित्रावली से विवाह करने में सफल होता है और दोनों का मिलन होता है ।

मधुमालती के नायक का प्रेम मिलन से ही प्रारंभ होता है । नायिका के आग्रह पर एक " सुरत " को छोड़कर अन्य सभी भोग दोनों करते हैं ।[३] इसके बाद दोनों मे वियोग होता है और नायक अपनी प्रेयसी की खोज में जोगी हो जाता है । कुछ परिस्थितियों वश वह नायिका की सखी के संपर्क में आता है और वह दोनों का मिलन कराती है । इस मिलन के अवसर पर पुनः नायिका "सुरत " के अतिरिक्त अन्य सभी भोग करने की स्वीकृति देती है ।[४] इसके उपरान्त पुनः दोनों का वियोग होता है और अन्त में विवाह के बाद पूर्ण मिलन होता है ।

उपर्युक्त प्रसंगों के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि तीनों ही नायिकाएं पर वश है । मधुमालती, जो कि अपने प्रिय से मिलने में दो बार सफल हुई है वह भी अपनी परवशता और अपने मिलन के अनौचित्य से अवगत है । ऐसी स्थिति में तीनों क ही नायिकाएं नायिका भेद के अनुसार " परकीया कन्यका " नायिका" के अंतर्गत आएंगी । अब प्रश्न है कि इनके प्रेमी

---

३- कहेसि कुंअर एक कर्म न कीजै, माता पितहिं अकलंक न दीजै ।।
मधुमालती पृ० ३९-४१

नायक - भेद के दो भेद पति और उपपति में से किसके अंतर्गत आएँगे ? विवाह के पूर्व वे पति हो नहीं सकते अतः उपपति के अंतर्गत ही उन्हें स्थान देना समीचीन होगा । साधारण शब्दावली में इन नायकों के लिए प्रयुक्त शब्द "प्रेमी" है ।

नायकों का काम- शास्त्रीय भेद-
---

"चित्रावली" में " काम- शास्त्र खंड " में नायक के कामशास्त्रीय भेदों की गणना कराई गई है । इसके अंतर्गत शश, वृष और अश्व पुरुषों के भेद बताए गए हैं किंतु चित्रावली का नायक किस जाति का पुरुष है इसका उल्लेख कहीं नहीं है । उपर्युक्त तीन भेदों में शश पुरुष सुरूप तथा सर्वोत्तम होता है और इस प्रकार अनुमान लगाया जा सकता है कि सुजान शश - वर्ग का नायक है ।[५] पद्मावत में राघव- चेतन ने बादशाह से स्त्री-भेदों का वर्णन किया है पर नायक के काम-शास्त्रीय भेदों का नहीं ।[६] किंतु सुजान की ही भाँति अन्य नायकों के संबंध में भी यही अनुमान किया जा सकता है कि वे शश वर्ग के नायक हैं ।

नायक के अन्य गुण-
---

नायक के इन भेदों के साथ ही उसके कुछ गुणों को भी बतला देना उचित होगा । सभी नायकों में नायकोचित श्रेष्ठ गुण हैं । इसके अतिरिक्त वे युद्ध-निपुण, द्यूत-निपुण, रति -निपुण और संगीत निपुण भी हैं ।
युद्ध-निपुण- रत्नसेन, सुजान और मनोहर । रत्नसेन ने अलाउद्दीन से युद्ध किया और देवपाल से युद्ध करते हुए मारा गया । सुजान ने अपनी वीरता से सोहिल सेन को युद्ध में पराजित किया मनोहर ने राक्षस को मार कर प्रेमा की रक्षा की । इस प्रकार तीनों ही नायक वीर और युद्ध निपुण हैं ।[७]

---

५- चित्रावली काम शास्त्र खंड- ससा सरूप सुनहु नरनाहाँ, उत्तिम जाति सो पुरुषन्ह माँहा - वही - ५५९

६- पद्मावत - ४६२,४६७

७- पद्मावत- राजागढ़ छेंका खंड । चित्रावली -सोहिल खंड मधुमालती-राक्षस मार पेमहि लै चला खंड ।

द्यूत-निपुण-

रत्नसेन और सुजान- द्यूत- निपुण है । इनकी द्यूत-क्रीड़ा विवाहोपरांत अपनी अपनी पत्नियों से होती है ।[८]

रति- निपुण-

सभी नायक रति- क्रिया मे पारंगत है । रत्नसेन, सुजान और मनोहर की रति- निपुणता के संकेत यत्र-तत्र मिलते है ।[९]

योगी- नायक -

नायक का एक अन्य रूप जो कि प्रेमाश्रयी शाखा में महत्त्वपूर्ण है वह उसका योगी रूप है । अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए नायक योगी हो जाते हैं । उनकी रूप सज्जा का वर्णन भी मिलता है । रत्नसेन, सुजान और मनोहर तीनों अपनी प्रेमिकाओं का खोजने के लिए यह वेश धारण करते है

प्रेमाश्रयी शाखा में नायक के येही विविध रूप उपलब्ध है ।

३- रामाश्रयी शाखा-

इस शाखा मे शिव, राम और लक्ष्मण ही शृंगार के नायक है । इनमे भी शिव और लक्ष्मण गौण हैं । केवल राम ही मुख्य है । इस शाखा के नायकों में नायक भेद की दृष्टि से विशेष विविधता नहीं है। उनका अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

नायक भेद के प्रथम वर्गीकरण के अनुसार सभी नायक धीरोदत्त हैं । सभी परिस्थितियों में वे गंभीर, क्षमाशील

---

९- पद्मावत वही तथा ११६ आदि- चित्रावली- ४०९ तथा ५३[illegible] [illegible] ५९७, [illegible] मधुमालती जोगी खंड, ब्याह खंड ।

स्वाभिमानी और विनीत है।

नायक - भेद के द्वितीय वर्गीकरण के अनुसार तीनों नायक अनुकूल है। वे एक पत्नी-व्रत- व्रती है।

तृतीय और चतुर्थ भेदानुसार तीनों ही नायक पति और उत्तम श्रेणी के है।

इस संपूर्ण शाखा मे नायक के श्रृंगारी रूप का विशेष वर्णन नहीं है। जो कुछ अल्प वर्णन प्राप्त है वह दो शीर्षकों के अंतर्गत देखा जा सकता है। प्रथम प्रेमी तथा संयोगी रूप है। इस रूप मे शिव, लक्ष्मण तथा राम तीनों का ही उल्लेख है। राम चरित मानस मे शिव के संयोगी रूप का संकेत है। इसमें उनके विविध प्रकार से पार्वती के साथ भोग- विलास करने का उल्लेख है। वे नित्य नवीन विहार करते थे।[१०] इस प्रकार इसमें उनकी क्रीड़ा- विहार - कुशलता का संकेत है। लक्ष्मण के संयोगी रूप का संकेत गीतावली के एक पद में है।[११] इसमें उर्मिला और लक्ष्मण दोनों के परस्पर देखने का उल्लेख मात्र है तथा केलि- भवन में जाते समय उनके शील, शोभा और स्नेह का संकेत है। राम का उल्लेख दो रूपों मे है। प्रथम मे उनका प्रेमी रूप प्रकट हुआ है। सीता जी के कंकण, किंकिणी और नूपुर की ध्वनि उन्हें कामदेव की दुंदुभी प्रतीत होती है। अपने मन की यह स्थिति वे अपने भाई लक्ष्मण से प्रकट भी करते है। इस कथन के साथ ही साथ उनका सीता से साक्षात्कार होता है। रूप-लुब्ध राम अपलक दृष्टि से सीता के सौंदर्य का पान करने लगते हैं। सीता जी के उस सौंदर्य को व्यक्त करने के लिए उन्हें समस्त उपमाएं जूठी लगने लगीं। उस रूप से उनका हृदय क्षुब्ध होगया। हृदय में स्नेह का अंकुरण हुआ और सीता जी के मुख से सम्मुख चन्द्रमा का रूप तुच्छ लगा।[१२] राम का यह प्रेमी रूप है।

---

१०- करहिं विविध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं - कैलासा।
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल- चलि गयऊ।। मानस-बा० । १०३-२

११- गीता० बाल- १०७

१२- मानस बाल० २३०।१-४, २३०, २३१।२, २३७।४, २३७, २३८।१-२

राम ने बड़े धैर्य से अपने प्रेम को हृदय मे ही छिपा रखा । राम का दूसरा रूप संभोगी नायक का है । इसका उल्लेख गीतावली के उत्तर कांड मे है । इसमें राम के प्रातः कालीन रूप के द्वारा रात्रि में उनके संयोग का संकेत किया गया है । उनका श्याम शरीर प्रिया के प्रेम रस मे पग कर आलस्य के कारण अंगड़ाने लगा । उनके कुछ उनींदे से मनोहर नेत्र तथा मुख की प्रतिभा और श्रृंगार देखकर अनेकों कामदेव भी हार मान कर भाग गए ।[१३] इस वर्णन में रति - शैथिल्य का मनोहर संकेत है । राम के इसी संयोगी रूप के अंतर्गत उनकी फाग-क्रीड़ा के समय का रूप आएगा । वे अपने सखा और भाइयों के साथ फाग खेल रहे है और जानकी जी अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा कर रही है ।[१४] इसके अतिरिक्त राम के रूप सौंदर्य का यथेष्ट वर्णन है पर वह उनके नायक - रूप पर प्रकाश डालने वाला नहीं है । राम के संभोगी रूप के एक आध अन्य संकेत भी उपलब्ध है जिनमे उनकी पुष्पाभूषण बनाने की निपुणता तथा सीता के श्रृंगार करने का उल्लेख है ।[१५]

नायकों का दूसरा वियोगी रूप है । यह रूप केवल शिव और राम को ही प्राप्त है । लक्ष्मण के वियोग का कहीं उल्लेख नहीं है । सती के सती होने के बाद शिव किस प्रकार विरह दुख मे पागल हो जाते है । इसका स्पष्ट उल्लेख आलोच्य साहित्य में नहीं है ।[१६] किंतु उनके मरने के बाद शिव के हृदय मे वैराग्य आगया इसका उल्लेख उपलब्ध है । सती के वियोग में वे सदा रघुनाथ का नाम जपने लगे और जहां- तहां उनके गुणों की कथाएं सुनने लगे ।[१७] वियोगी राम का चित्रण अधिक विस्तार से हुआ है । सीता हरण के बाद का उनका विलाप उनके विरहा-

---

१३- भोर जानकी जीवन जागे ।
स्यामल सलोने गात, आलस बस जंभात प्रिया प्रेम रस पागे ।
उनींदे लोचन चारु, मुख-सुखमा-सिंगार हेरि हारे मार भूरि-
भागे ।।-गीता-उत्तर

१४- वही उत्तर२१

१५- मानस - किष्किं० १।२

धिक्य को सूचित करने वाला और उनकी उन्माद दशा का द्योतक है। उनका यही वियोगी रूप सीता के वस्त्राभूषण प्राप्त करने पर तथा हनुमान द्वारा उनके संदेश और चूड़ामणि को प्राप्त करने पर प्रकट हुआ।[१८] इतना सब होते हुए भी द्रष्टव्य यह है कि उनके सभी स्वरूपों में सर्वत्र वीरत्व और कर्तव्य-परायणता है।

४- कृष्णाश्रयी शाखा-

कृष्णाश्रयी के नायक कृष्ण के स्वरूप में यथेष्ट विविधता है। नायक - भेद के अधिकतम रूप इसी शाखा में प्राप्त है। कृष्ण में श्रेष्ठ नायक के सभी गुण है। वे सुलक्षण, तरुण, बलवान, मधुरभाषी, धीर, विदग्ध, प्रेमी तथा नारियों को मोहने वाले है। पर साथ ही साथ घर का भार न होने के कारण, नित्यआनन्द - विहार में मग्न रहने के कारण वे धीर ललित कहे जा सकते हैं। धीर शांत और धीरोदत्त वाला उनका रूप शृंगार का आलंबन नहीं है।

शृंगारी नायक के अनुकूलादि सभी भेद कृष्ण के चरित्र मे उपलब्ध है। उनका शृंगारी स्वरूप इतना विस्तृत है तथा विविध है कि उसमें दक्षिण, अनुकूल और धृष्ट लगभग रूप आ जाते हैं।

अनुकूल कृष्ण-

कृष्ण का अनुकूल नायक का रूप हरिदास तथा राधावल्लभ संप्रदाय में सबसे अधिक है। यथार्थ में वहां इसके अतिरिक्त दूसरा रूप प्राप्त ही नहीं है। कृष्ण सदा स्वामिनी जी का मुंह जोहते, रहते है तथा उनका अन्यत्र ध्यान नहीं जाता ही

---

१८- मानस- अरण्य० ३०।३-८, ३७।१-५, ३७(क)(ख), ३८।१-६
किष्किं०- ५।३
सुन्दर० १५।१-४, ३१।१, ३२।१
गीतावली -अरण्य-९-११, किष्किं० १, सुन्दर० ४, २१
रामचन्द्रिका- १३।३८ आदि, ६१, १३।८८

नहीं है । इन संप्रदायों में राधा जी की प्रतिद्वंदिनी भी कोई नहीं है अतः अन्य रूपों के विकास का अवकाश नहीं है । वल्लभ- संप्रदाय तथा चैतन्य संप्रदाय मे कृष्ण की ब्रज-लीला का विस्तार होने से कृष्ण की प्रेमिकाओं में राधा, चन्द्रावली, ललिता आदि अनेक गोपियां आ जाती हैं । अतएव इन संप्रदायों में कृष्ण के अनेक रूपों के चित्रण का अवसर है तथा कवियों ने उनके विविध रूपों के चित्र अंकित भी किए हैं । यहां कृष्ण कभी अनुकूल, कभी दक्षिण और कभी धृष्ट रूप में चित्रित किए गए है । चैतन्य संप्रदाय में कृष्ण का शठत्व स्वीकृत है पर हिन्दी भक्ति साहित्य में यह रूप सम्भवतः उपलब्ध नहीं है । नहीं है ।

इस संबंध में द्रष्टव्य है कि वल्लभ और चैतन्य सम्प्रदायों में कृष्ण का अनुकूलत्व क्षणिक और एक परिस्थिति मे ही है । अनेक गोपियों से प्रेम होने के कारण तथा इन्हें तृप्त करने के प्रयत्न करने के कारण सच्चा अनुकूलत्व इस साहित्य में उपलब्ध नहीं हो सकता । अनुकूल कृष्ण की यह सीमा स्मरणीय और महत्वपूर्ण है ।

नीचे हित हरिवंश और सूरदास की रचनाओं से उदाहरण स्वरूप कृष्ण के अनुकूल रूप के दो उदाहरण दिये जा रहे है जिनमें उनका दोनों प्रकार का अनुकूलत्व प्रकट हो जाता है:-

जोई जोई प्यारो करै सोई मोहि भावै ।<br>
भावै मोहि जोई सोई सोई करै प्यारे ।।<br>
मोको तो भावती ठौर प्यारे के नैननि में,<br>
प्यारो भयो चाहै मेरे नैननि के तारे ।।<br>
मेरे तन मन प्राण हू ते प्रीतम प्रिय,<br>
अपने कोटिक प्राण प्रीतम मोसों हारे ।<br>
जै श्री हित हरिवंश हंस हंसनी सांवल गौर ।<br>
कहौ कौन करै जल तरंगनि न्यारे ।। हित चौरासी १

तथा-

नवल किसोर नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम- भुज ऊपर, स्याम - भुजा अपनैः उर धरिया ।।
क्रीड़ा करत तमाल- तरुन - तर स्यामा स्याम उमँगि रस भरिया।
यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया ।।
उपमा काहि देउँ, को लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया ।।
सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नंद-कुंवर बृषभानु - कुंवरिया।।

सूर- १३०६

दक्षिण-नायक- कृष्ण -

कृष्ण का संपूर्ण चरित लेने पर उनका दक्षिणात्व दो स्थानों पर प्रकट होता है । एक तो ब्रज में, विशेष कर रास-लीला में तथा दूसरा द्वारका में अपनी विवाहित पत्नियों के बीच। हिन्दी कृष्ण साहित्य में द्वितीय रूप महत्वपूर्ण नहीं है । प्रथम रूप में रास तथा चीरहरण लीला के प्रसंग में वे सभी नायिकाओं के साथ लगभग समान व्यवहार करते हुए भी राधा को महत्ता देते है । इसी प्रकार ललिता, चन्द्रावली आदि के प्रेम का प्रतिदान करते हुए भी उन्होंने राधा के प्रेम को यथोचित मान दिया है तथा उसको कभी ठेस पहुंचाने की कोशिश नहीं की है । अतः ऐसे स्थलों पर वे दक्षिण नायक के रूप मे प्रकट हुए है । इसका एक उदाहरण देना ही यथेष्ट होगा ।

मैं जानी पिय - मन की बात ।
धरनी पग - नख कहा करोवत, अब सीखे ये घातैं ।।
तुम जानत जिय हमहिं सयाने, अरु सब लोग अयाने ।
रैनि बसत कहुं, भोर हमारैं आवत नहीं लजाने ।।
वह चतुराई पढ़ी ताहि पै, सो गुन हम तै न्यारो ।
धनि धनि सूरदास के स्वामी, काहै हम न बिसारौ ।। सूर [illegible]

धृष्ट कृष्ण

कृष्ण के धृष्ट नायक का रूप सामान्यतः खंडिता की उक्ति के माध्यम से व्यक्त होता है । दूसरी तरुणी [illegible] संभोग के चिह्न होने पर भी वे झूठ बोलते है:-

स्याम सुंदर । रैनि कहाँ जागे ?
देखियतु बिन - गुन माल, अधर अंजन,
भाल जावक लग्यौ, गाल पीक पागे ।।
चाल डगमगी, अति सिथिल अंग - अंग सब,
तोतरे बोल, उर नखनि दागे ।
गड्यौ कंकन पीठि, निपट विह्वल दीठि,
सर्वरी लाल। नहिं पलक लागे ।।

कहिए साँची बात, काहे जिय सकुचात ? कौन त्रिय जाके अनुराग-
रागे ।

"दास- कुंभन " लाल गिरिधरन एते पर करत झूठी सौंह मेरे-
आगे - कुंभन ३३२

स्वल्पाधिक मात्रा में यह रूप सभी संप्रदायों में मिल जाता है
पर वल्लभ संप्रदायमेंही इसकी अधिकता है ।

शठ कृष्ण -

कृष्ण का शठ नायक वाला रूप भक्ति साहित्य में
उपलब्ध नहीं है । साहित्य दर्पण कार ने शठ नायक की
परिभाषा में नायक का दो नायिकाओं से प्रेम संबंध होना
बतलाया है जिसमें से एक से प्रेम - संबंध और दूसरे से बहिरनुराग
(नकली प्रेम- संबंध)होता है । बाहर से इस प्रकार का नायक दोनों
प्रेमिकाओं पर समान प्रेम दिखलाया करता है किंतु एक को हृदय
से चाहने के कारण दूसरी का छिपकर अप्रिय करना ही इसका
स्वभाव है ।[१९] कृष्ण अनेक नायिकाओं से प्रेम अवश्य करते हैं
पर सभी पर उनका प्रेम सच्चा है और किसी का अनिष्ट करने
की भावना उनमें नहीं है । फलस्वरूप उनका " शठ " स्वरूप
संभव नहीं है ।

नायक - भेद के दूसरे वर्गीकरण पति और उपपति दोनों
रूप कृष्ण-साहित्य में कृष्ण के प्राप्त है । कृष्ण-चैतन्य साहित्

---

१९- शठो ऽयमेकत्र बद्ध भावो यः ।
दर्शित बहिरनुरागो विप्रियमन्यत्र गूढमाचरित ।।२७
यः पुनरेकस्यामेव नायिकायां बद्धभावो द्वयोरपि नायिकयो
र्बहिर्दर्शितानुरागो ऽन्यस्यां नायिकायां गूढं विप्रियमाचरति

में उनका उपपति होना स्पष्ट रूप से स्वीकृत है और विद्यापति में भी इसका स्पष्ट उदाहरण सर्वत्र प्राप्त है। अन्य संप्रदायों के साहित्यों में से राधावल्लभ, हरिदास तथा निंबार्क में राधा-कृष्ण के दंपति स्वरूप की स्वीकृति के कारण उपपति रूप का प्रश्न ही नहीं उठता। वल्लभ संप्रदाय के साहित्य में कृष्ण का रूप मुख्यतः उपपति का है। राधा के प्रसंग में उस रूप को पतित्व प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है पर उसे प्रस्तुत अध्ययन में नहीं माना गया है। इस संप्रदाय की द्वारका लीला में कृष्ण रुक्मिणी आदि के संग में पति रूप में ही है। विभिन्न संप्रदायों में कृष्ण के रूप को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं।

| | |
|---|---|
| राधावल्लभ संप्रदाय<br>निम्बार्क संप्रदाय<br>हरिदास संप्रदाय | - पति |
| चैतन्य संप्रदाय | - उपपति। गोपियों और राधा के संबंध में |
| वल्लभ संप्रदाय | - उपपति। गोपियों के संबंध रूप में स्पष्टतः। राधा के संबंध में पतित्व प्रदान करने का असफल प्रयास।<br>- पति। रुक्मिणी आदि महिषियों के संबंध में। |

उत्तम, मध्यम और अधम कोटि की दृष्टियों से कृष्ण उत्तम कोटि के नायक गिने जाएंगे।

अन्य भेद-

इसके अतिरिक्त नायक कृष्ण के अन्य रूपों में रति नागर, रसिक शिरोमणि महत्वपूर्ण है। स्थान-स्थान पर उनकी रति-कला की निपुणता का विवेचन प्रस्तुत अध्ययन में उपलब्ध है। अतएव उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं।

इस प्रकार नायक कृष्ण के अनेक रूप भक्ति - साहित्य में उपलब्ध है।

५- हिन्दी भक्ति- काव्य में उपलब्ध नायक के स्वरूप के शास्त्रीय विश्लेषण के साथ - साथ उसके चरित्र का विश्लेषण भी आवश्यक है। इस विश्लेषण के आधार पर भक्ति की विभिन्न शाखाओं में उपलब्ध नायक के स्वरूप की भिन्नता और उसकी विशेषता प्रकट हो सकेगी।

६- ज्ञानाश्रयी शाखा-

इस शाखा में नायक का कोई संश्लिष्ट रूप सामने नहीं आता तथा उसके चरित्र का स्वरूप और विकास भी उपलब्ध नहीं है। वह निर्विकार, अविनाशी और आदि पुरुष है। यह आत्मा उसकी " बहुरिया " है। वह अपने प्रेम से आत्मा को आप्लावित किए रहता है तथा स्वयं प्रसन्न होकर उसे सोहाग देता है।[२०] किंतु निर्गुण ईश्वर और आत्मा की यह मिलन - स्थिति क्षणिक होती है। अतः नायक का सामान्य रूप निष्ठुर कृष्ण के अनुरूप ही रहता है।[२१] वह बधिक की भाँति नायिका की पुकार नहीं सुनता। नायिका की आतुरता में भी वह अत्यंत धैर्य से रहता है।[२२] इस प्रकार ज्ञानाश्रयी शाखा मे नायक का स्वरूप अस्पष्ट है। इस अस्पष्टता का कारण उसकी अमूर्तता है और इसी वजह से वह निष्ठुर प्रतीत होता है।

७- प्रेमाश्रयी शाखा-

इस शाखा के साहित्य में नायक के स्वरूप का

---

२०- मैं रनि रासी जे निधि पाई, हमहि कहा यह तुमहि बड़ाई।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हां, सखी सुहाग राम मोहि दीन्हां।
- कबीर ग्रंथावली पद १

२१- गोकुल नाइक बीठुला, मेरौ मन लागौ तोहि रे।
बहुत दिन बिछुरे भये, तेरी औसेरि आवै मोहि रे।।वही ५

२२- सुनहु हमारी दादि गुसाईं, अब जिन करहु बधीर।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामीं, काचै भांडै नीर।।वही ३०

अपने ढंग का और यथेष्ट प्रभावशाली चित्रण है । आलोच्य साहित्य में रत्नसेन, सुजान और मनोहर, तीन नायक हैं । इन तीनों का स्वरूप पृथक- पृथक नीचे दिया जा रहा है ।

रत्नसेन-

राजा रत्नसेन चितौड़ का राजा है । वह गुण-ग्राही है । इसीलिए जिस समय उसे हीरामन ऐसे गुणवान शुक का समाचार मिलता है उसी समय वह उसे मंगवाता है ।[२३] वह गुण को पहचानने वाला तथा उसका उचित मूल्य देने वाला है । इसी से उसने हीरामन को लाख रूपये में मोल ले लिया ।[२४]

राजा की रानी नागमती है । वह रूपगर्विता है तथा उसे अपने पति का प्यार भी उपलब्ध है । किंतु रत्नसेन का उसके प्रति एकनिष्ठ प्रेम नहीं है । रानी को भी उसके प्रेम पर विश्वास नहीं है । राजा की सौंदर्य लोलुपता तथा उसे प्राप्त करने के लिए सर्वस्व त्याग की मनोवृत्ति से वह परिचित है । रत्नसेन नागमती के सौंदर्य से ही बंधा हुआ है । यदि कहीं उससे भी कोई सुंदरी का पता रत्नसेन को लग जाता तो वह तत्क्षण नागमती को छोड़कर चल देता इसमें संदेह नहीं । इसी कारण से नाग-मती ने हीरामन की हत्या का प्रयत्न किया था ।[२५]

राजा रत्नसेन का स्वभाव क्रोधी और दृढ़ है । वह सुग्गे के लिए नागमती को अति कठोर आदेश सुनाता है ।[२६] नागमती के प्रति उसके न्यून प्रेम का यह द्योतक है । तभी तो रानी सोचती है," इतना सा अपराध करने से ही यदि प्रिय रूठ जाता है तो जो पति को अपना कहे उसका कहना झूठ है ।" २७

---

२३- पद्मावत ७९-८०

२४- वही ८१-८२

२५- जौ यह सुआ मंदिर महं रहई । कबहु कि होइ राजा सौ कहई ।
सुनि राजा पुनि होइ बियोगी । छाड़ै राज चलै होइ जोगी ।।
वही- ८५

२६- कै परान घट आनहु मती । कै चलि होहु सुआ संग सती ।।
वही -८८

२७- एतनिक दोष बिरचि पिउ रूठा। जो पिउ आपन कहै सो झूठा ।। वही ८९

नागमती के प्रति रत्नसेन का प्रेम एक निष्ठ न होते हुए भी उसके हृदय में प्रेम का सागर भरा है। पद्मावती का रूप सुनते ही वह उस पर लुब्ध हो जाता है।[२८] यह उसकी रूप-लोलुपता कही जा सकती है पर बाद में उसका प्रेम एकनिष्ठ और स्थायी हो जाता है। वह प्रेम मार्ग का सच्चा पथिक है और उसकी कठिनाइयों को न तो सुन कर[२९] और न बाद में अनुभव कर ही विचलित होता है।[३०] सर्वस्व त्याग की उसकी भावना भी उसकी सत्यता की सूचक है उसके प्रेम की दो बार परीक्षा भी ली गई और वह उनमें खरा उतरा।[३१] रूपाकर्षण से प्रारंभ उसके प्रेम में सच्चे प्रेम की दृढ़ता सदा रही है।

त्यागी, दृढ़व्रती और प्रेम में दीवाने रत्नसेन का रूप बड़ा ही प्रभावोत्पादक है। अपनी प्रिया की खोज में वह राजपाट, सुख- विलास, बंधु-बांधव सभी का त्याग करता है। उसके प्रेम पंथ से न उसकी माता का रुदन और न पत्नी की सिसकियां ही उसे रोक सकी हैं। माता और पत्नी को दिए गए उसके उत्तर उसके प्रेम की श्रेष्ठता और दृढ़ता के द्योतक हैं।[३२]

प्रेम पंथ में रत्नसेन ने अपने अहंकार का पूर्ण त्याग कर दिया। एक क्षण पूर्व का राजा अब वन- वन भटकने वाला योगी हो गया।[३३] अपनी प्रिया के नाम की रट उसे लगी है।[३४] यही उसे मार्ग की बाधाओं से निर्भय करती है। जीवन की अभिलाषा छोड़कर वह इस प्रेम पंथ में उतरा है इसलिए उसकी शक्ति अपरमित हो गई। मृत्यु का उसे भय नहीं रहा।[३५] वह

---

२८- वही ७९-८०

२९- वही ९७-९८, १२३-१२६

३०- वही १४८-१४९ ऊनरदि

३१- वही २१०-२११, ४१५-४१६

३२- वही १३० और १३२

३३- वही १२६

३४- वही १३४, १३९

ज्योतिषियों के यह कहने पर कि मुहूर्त शुभ नहीं है कहता है," प्रेम के पंथ में जाने वाला दिन और घड़ी नहीं देखता । † † † । जिसके शरीर में प्रेम है उसमें मांस कहां ? उसकी देह में न रक्त होता है न नेत्रों में आंसू । पंडित भूला रहता है, चलना नहीं जानता । प्राण लेते समय मृत्यु दिन नहीं पूछती । प्रेम में बौराई हुई सती क्या चिता पर चढ़ने का मुहूर्त पंडित से पूछती है और यदि मुहूर्त न हुआ तो क्या घर जाकर बर्तन-भांड़े समेटने लगती है ? जो गंगागति लेकर मरने चलता है, उसे दिन और घड़ी का मुहूर्त कब कोई बताता है? मैं घर-द्वार अपना कहां बना सका हूं ? जो घर और शरीर है वह अन्त में दूसरे का हो जाएगा । मैं पंख वाला पक्षी हूं । तुम सब अपने घर जाओ ।"[३६] सचमुच जिसने प्रेम - पंथ में पग धरा उसे फिर संसार के विधि-निषेधों में, मानापमान में और माया मोह में कौन बांध सकता है ? रत्नसेन भी न बंधा । रत्नसेन की धीरता और एकनिष्ठता देख कर हीरामन उसे पराक्रम में विक्रम, सत्यवादिता में हरिश्चन्द्र, योग में गोपीचन्द और वैराग्य में भर्तृहरि से श्रेष्ठ बतलाता है ।[३७]

रत्नसेन का योगी स्वरूप भी अति उत्कृष्ट है । पद्मावती का नाम रटता हुआ, उसके मार्ग पर दृष्टि दिए हुए वह उसी प्रकार उसका ध्यान करता रहा जैसे चातक और सीप स्वाति नक्षत्र के जल का ध्यान करते हैं ।[३८] सारे संसार से रत्नसेन का ध्यान हटकर अपने प्रिय में केंद्रित होगया था । वह सच्चे अर्थों में प्रेम-योगी था । विरह - दुःख में वह जला करता रहा और उसने सिंहल द्वीप में मंदिर के देवता की मनौती मनाई ।[३९] उसके स्वभाव में एक ही स्थान पर उग्रता दिखलाई पड़ती है जब वह देवता को अपशब्द कहता है ।[४०]

अपनी असफलता की निराशा में रत्नसेन एक बार धैर्य खोकर चिता में जल मरना चाहता है । किंतु महादेव उसे बचा -

---

३६- वही १९७
३७- वही १६०
३८- वही १३९
३९- वही १५५

लेते हैं।[४१] उनके उपदेश से पुनः उसमें अपनी पुरानी गंभीरता और धीरता आ जाती है। जिस समय गंधर्वसेन की सेना योगियों को घेरने के लिए आती है उस समय वह अपने साथियों को युद्ध न करने की तथा प्रेम - पंथ में मर मिटने की सीख देता है।[४२] पकड़े जाने पर भी वन निश्चिंत होकर प्रेम के गीत गाता है।[४३] और सूली के सम्मुख पहुंच कर वह हंस पड़ता है।[४४] राजपुरुषों ने सूली देते समय उससे कहा," जिसका स्मरण करना चाहते हो उसे स्मरण कर लो। अब हम तुम्हें केतकी का भौंरा बना देंगे।" उस समय उसका उत्तर उसके प्रगाढ़ प्रेम का द्योतक है। वह कहता है," मैं हर श्वास में उसी का स्मरण करता हूं- मरते और जीते दोनों अवस्थाओं में जिसका हो चुका हूं। मैं रामा पद्मावती का स्मरण करता हूं जिसके नाम पर मेरा यह जीव निछावर है। मेरी काया में जितनी रक्त की बूंदे हैं वे सब"पदमावती-पद्मावती" ही कहती हैं। यदि मैं जीवित रहा तो मेरे एक-एक बूंद रक्त में उसी पद्मावती का स्थान है। यदि सूली पर चढूंगा तो उसी का नाम ले- लेकर मरूंगा। मेरे शरीर का रोम रोम उसी से बिंधा है। प्रत्येक रोम कूप बेधकर जीव उसके द्वारा शुद्ध किया गया है। मेरी हड्डी- हड्डी में वही"पद्मावती" "पद्मावती" शब्द हो रहा है। मेरी नस- नस में उसी की ध्वनि उठ रही है। उसके विरह ने शरीर के भीतर की मज्जा और मांस की खान को खा डाला है। मैं तो एक सांचा (ठठरी) मात्र रह गया हूं। उसमें वह रूप बनकर समाई हुई है।"[४५] यह रत्नसेन के प्रेम की उच्चतम स्थिति है।

योगी रत्नसेन पद्मावती को प्राप्त कर संयोगी हो जाता है। उसके इस संयोगी रूप में उसका क्रीड़ा-विलास-नैपुण्य प्रकट होता है। वह केवल योगी ही नहीं भोगी भी है।

---

४१- वही २०५ आदि २१२-२१६

४२- वही २४३

४३- वही २४४

४४- वही २६०

४५- वही २६२

जिस समय पद्मावती उसके योगी - स्वरूप का आलम्बन लेकर उसका परिहास करती है उस समय वह भी अपने प्रेम - पंथ में निपुण होने का संकेत करता है ।[४५(क)] रत्नसेन से चौपड़ खेलने का प्रस्ताव कर पद्मावती उसकी परीक्षा लेती है और रत्नसेन भी उसी माध्यम से अपने प्रेम और गुणों को प्रकट करता है ।[४६] वह चौरासी आसनों का योगी कामकला - विशारद है तथा भोगी होकर षट्रसों का स्वाद लेने में चतुर है ।[४७] उसके ये गुण अनेक पदों में प्रकट हुए हैं और इसकी इस कुशलता से पद्मिनी संतुष्ट हो जाती है ।[४८]

राजा रत्नसेन विनयी और चतुर है । विदा के लिए आज्ञा माँगते समय उसने गंधर्वसेन से नागमती की बात न बतला कर राज्य- रक्षा की समस्या उठाई । उसके व्यवहार कुशल और नीतिज्ञ होने का यह प्रमाण है ।[४९]

चितौड़ आने पर रत्नसेन के दक्षिण नायक होने का प्रमाण मिलता है । वह नागमती और पद्मावती दोनों को परस्पर मेल- मिलाप से रहने का उपदेश देता है ।[५०]

इसके बाद का रत्नसेन का रूप राजा का अधिक श्रृंगार के आलम्बन नायक का कम है । वह वीर और तेजस्वी है । अपने भोलेपन के कारण अलाउद्दीन से छला जाता है तथा अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए देवपाल से युद्ध करता हुआ मारा जाता है ।

इस प्रकार रत्नसेन के चरित्र में श्रेष्ठ गुणों का समावेश है । वह एक निष्ठ प्रेमी, अपनी पत्नियों को संतुष्ट रखने वाला कुशल गृहस्थ, वीर योद्धा और आन के लिए मर मिटने वाला क्षत्रिय है ।

---

४५(क) वही ३०४- ३११

४६- वही ३१२-३१३

४७- वही ३१६

४८- वही ३१७, ३२४ आदि

४९- वही ३७४-३७५

सुजान-

चित्रावली का नायक राजकुमार सुजान है । वह समस्त गुणों में अल्पावस्था में ही पारंगत हो गया है । व्याकरण, वैद्यक, पिंगल, संगीत, ज्योतिष, भूगोल आदि विद्याओं में तथा व्यायाम- कुश्ती, धनुर्विद्या, अश्वारोहण, आखेट आदि में वह चौदह वर्ष की अवस्था में ही निपुण हो गया । इसी अवस्था मे उसने प्रेम-पंथ मे पग रखा ।

चित्रावली के चित्र दर्शन से सुजान के हृदय में प्रेम की चिन्गारी पड़ी, वह स्वयं भी कुशल चित्रकार था और उसने चित्रावली की चित्रसारी में अपना अपूर्व चित्र बना कर रख दिया था ।

सुजान के सामने अपने प्रेम पात्र को खोजने की समस्या रत्नसेन से कठिन थी । उसने स्वप्न सी स्थिति में चित्रावली का चित्र दर्शन किया था । उसका कोई अता- पता था नहीं किन्तु अपने परामर्शदाताओं की निपुणता उसके काम आई । उनके परामर्श के अनुसार वह उस मढ़ी में जा कर रहा जहां से देव उसे चित्रावली की चित्रसारी मे ले गए थे ।[५१] तथा वहां उसने धर्मसाल प्रारंभ कर दिया जिससे कि संसार में रमने वाले योगी- यतियों से उसे कुछ सूचना मिलने की संभावना रहे ।[५२] इसी विधि से वह चित्रावली द्वारा भेजे नपुंसक भृत्य के संपर्क मे आता है । यह सुजान की चतुरता और व्यवहार कुशलता है । विरह में दग्ध होते हुए भी इतना धैर्य ज्ञान और ध्यान रखना सरल नहीं है ।

इसी धरमसाल के माध्यम से चित्रावली के भृत्य के संपर्क में आकर तथा चित्रावली के रूप-वर्णन को सुनकर राजकुमार उसका शिष्य होकर अपनी प्रिया को प्राप्त करने को तत्पर हो जाता है ।[५३] सुजान का अभी तक का प्रेम रत्नसेन की भांति ही रूपवर्णन सुनकर प्रगाढ़ हुआ था । उसकी एकनिष्ठता की परीक्षा परेवा भृत्य ने

---

५१- चित्रावली १०४

५२- वही ११० आदि

५३- वही १७५-१०९

प्रेमपंथ की कठिनाइयों को बतला कर कुंवर के प्रेम की दृढ़ता देखकर परेवा उसे शिष्य बना लेता है। कुंवर भी अपना समस्त भार उस पर डालकर उसके मतानुसार योगी वेश धारण कर प्रेम-पंथ पर चलने को तत्पर हो जाता है।[५४] कुंअर के इस रूप में उसके प्रेम की दृढ़ता तथा एकनिष्ठा और त्याग की झलक मिलती है।

योगी कुंअर गुरु परेवा के साथ गंतव्य स्थान की ओर चल देता है रास्ते में समस्त आकर्षणों को तिलांजलि देते हुए गुरु की शिक्षानुसार कुंवर आगे बढ़ता है। प्रेम मार्ग में गुरु पर पूर्ण विश्वास लेकर उसने प्रवेश किया है।[५५] वह अपनी प्रिया का ही नाम निरंतर रटता रहता है और रूप नगर पहुंच कर मिलन के पूर्व उसी नाम की रटना प्रारंभ कर देता है।[५६] परेवा के प्रयत्न से कुंअर चित्रावली के दर्शन करता है पर उसका भाग्य विपरीत था और वह अनेकानेक कठिनाइयों में पड़ता रहता है। प्रिया के द्वार से वह दूर फेंक दिया जाता है। अपने विरह में दग्ध वह योगी रूप में चित्रावली को खोजता हुआ भटकता है। इसी समय उसके प्रेम की एक-निष्ठाकी कड़ी परीक्षा होती है। राजा सागर की पुत्री कौंलावती उसके रूपपर मुग्ध होकर छल से उसे बंदी बना लेती है और सखी द्वारा एकांत में उससे प्रेम- निवेदन करती है।[५७] पर अपने प्रेम में दृढ़ सुजान का ध्यान तो केवल चित्रावली में ही केंद्रित है। स्वयं कौंलावती अनेक बार रात्रि के एकांत में उसके पास गई पर चित्रावली के ध्यान मे उसने कभी उस ओर न देखा।[५८] प्रेम की यह दृढ़ता जिसमें एक सुंदरी स्वयं प्रेमनिवेदन करने आए और उसकी अव-हेलना कर दी जाए अपूर्व है।

प्रेम की इस दृढ़ता के साथ - साथ अबला की पुकार पर सुजान का पौरुष भी चमक उठता है। जिस समय कौंलावती की

---

५४- वही २१४-२२०

५५- वही २३१

५६- वही २३६,२६१

५७- वही ३२४ तथा ३४४

५८- वही ३४९

सखी कुमुदनी सागर गढ़ में आयोजित जौहर की सूचना लाती है तब सुजान वहाँ की रक्षा के लिए तत्पर हो जाता है।[५९] इस समय पुनः कौलावती उससे उसका परिचय और योगी रूप का कारण पूछती है तथा अपने प्रेम का निवेदन करती है।[६०] वह चित्रावली की चेरी होकर रहने को तत्पर है तथा रण के लिए प्रयाण करते सुजान से प्रेम की भीख माँगती है। सुजान चित्रावली की शपथ खाकर उसे आश्वासन देता है।[६१] सुजान के लिए उसका ईश्वर मन-प्राण सभी कुछ तो चित्रावली ही है अतः अपनी सत्यता की इससे श्रेष्ठ शपथ कौन हो सकती है। इसके द्वारा उसने कौलावती का प्रेम निवेदन स्वीकार किया और चित्रावली के प्रति अपने प्रेम की पुष्टि की। कौलावती के प्रेम की यह स्वीकृति सुजान के प्रेम और भारतीय परंपरा के पूर्णतः अनुकूल है।

सुजान की चारित्रिक सबलता और चित्रावली के प्रति उसके प्रेम की सघनता अद्वितीय है। कौलावती से विवाह करके भी वह अपने प्रेम को तब तक के लिए सुरक्षित रखता है जब तक कि चित्रावली न मिल जाए।[६२] इस प्रकार से सुजान अपने ब्रह्मचर्य को अपनी प्रेयसी के लिए सुरक्षित रखता है। वह पुनः अपनी प्रिया की खोज में एक बार फिर सब भोग विलास छोड़ कर चल देता है।[६३] नव-विवाहिता का प्रेम और राज्य सुख उसे उसके पथ से विरत नहीं कर सके। प्रेम की पुकार के पीछे वह सर्वस्व त्याग कर चल देता है।

किंतु अभी तो सुजान को अनेक कठिनाइयाँ उठानी है। उसका गुरू परेवा बंदी कर लिया जाता है और वह पुनः निराश्रित की भाँति मझधार में छूट जाता है। अपने विरह को रोकना अब उसके लिए असंभव है और वह रूप नगर के पथ पर पागल की भाँति "चित्रावली, चित्रावली" चिल्लाता है।[६४]

---

५९- वही ३८१-३८३

६०- वही ३८५

६१- वही ३८८

६२- हम तुम मानहिं सबै रस, बई लहु प्रेम सुभाउ।
एक पेम रस होइ तब, जब चित्रावलि पाउ।। वही ५०

सुजान को मरवाने के लिए " दल गंजन " नामक मतवाला हाथी छोड़ा जाता है। प्रजा भयभीत हो जाती है। मृत्यु पथ के पथिक प्रेमी सुजान को अपने प्राणों की चिंता नहीं है किंतु उसका क्षत्रियत्व उसे निरीह की भांति मरने से रोकने लगा। उसने अपने पराक्रम से उसे मार डाला। इस प्रकार सुजान के हाथ मृत्यु भी न लगी। चित्रावली मिलने की तो संभावना भी नहीं है। उधर राजा अपनी सेना के साथ उसको बंदी कर लेता है। पूछने पर भी वह अपने प्रेमिका के ध्यान में दत्तचित्त रहता है।[६५] इसी समय उसका परिचय पता चलता है और चित्रावली से उसका विवाह होता है।

कौलावती और चित्रावली से संयोग होने पर सुजान के रति- नैपुण्य का संकेत मिलता है। वह काम शास्त्र में पारंगत है और उसमें रुचि रखता है।[६६]

सुजान दक्षिण नायक है और दोनों नायिकाओं को सुखी रखता है।[६७]

इस प्रकार अपने प्रेम में सुजान सदा एकनिष्ठ, दृढ़ और गंभीर रहा। उसमें क्षत्रियत्व है। और उसने अपनी शक्ति का उपयोग आर्त-रक्षा के लिए किया। वह त्यागी, दक्षिण तथा रति कला - कुशल नायक है।

मनोहर-

मधुमालती का नायक मनोहर राजा सूरजभान का पुत्र है। सुजान की भांति यह भी अल्पावस्था में ही सभी गुणों में पारंगत होगया। बारह वर्ष की अवस्था में इसे युवराज पद दे दिया गया। उसी समय यह प्रेम के मार्ग में परिस्थितियों वश आकर खड़ा हो जाता है।

---

६५- वही ५०३

६६-        ,५३६,५५०,५९७

अप्सराओं द्वारा मनोहर मधुमालती के शयन-कक्ष में सोते समय पहुँचा दिया जाता है निद्रित राजकुमारी के रूप- सौंदर्य पर मनोहर लुब्ध हो जाता है। और मधुमालती के जागने पर अपनी वाक् पटुता द्वारा अपने प्रेम का निवेदन करता है। वह कहता है कि पूर्व जन्म के पुण्य कर्मों के कारण तेरे दर्शन कर रहा हूँ।[६८] वह अपनी प्रीति को जन्म जन्मांतर की दिखला कर अपना प्रेम निवेदन बड़े मुखर रूप में करता है।[६९] प्रेमाश्रयी शाखा के अन्य नायकों में नायिका के समक्ष प्रेम निवेदन की इस कला का इतना विकास नहीं हुआ है। इस रूप में मनोहर की गणना अत्यंत चतुर प्रणयी के रूप में की जा सकती है।

चतुर प्रणयी होने के साथ- साथ मनोहर में धैर्य और धर्म का यथेष्ट ज्ञान भी है। अपने आश्वासन के अनुरूप वह मधुमालती से समस्त रतिक्रीड़ा करके भी संभोग से अपने को बचा लेता है।[७०] इस तथा ऐसे ही अन्य अवसरों पर मनोहर के काम- कला - ज्ञान का स्वल्प संकेत भी मिलता है।

अन्य प्रेमाश्रयी नायकों की भाँति मनोहर में भी त्याग तथा प्रेम-पंथ में सर्वस्व लुटा कर योगी बनने की सामर्थ है। वह इस पंथ में अपने प्राणों को न्यौछावर करने को तत्पर है।[७१] अतः प्रिय की खोज में वह योगी बन जाता है।[७२]

मधुमालती की खोज में योगी मनोहर मधुमालती का नाम रटता रहता है तथा वन - वन उसे खोजता फिरता है इस विरह की स्थिति में उसका समस्त ज्ञान आदि नष्ट हो गया है।[७३]

मनोहर का प्रेम एक निष्ठ तथा उसका चरित्र उदात्त है। जिस समय वह प्रेमा को राक्षस के बंधन से मुक्त कर उसके माता-

---

६८- मधुमालती पृ० ३४

६९- वही पृ० ३६

७०- वही पृ० ३९-४१, ९९-१००

७१ वही पृ० ४७

७२- " " ५२

पिता को देता है उस समय वे लोग उससे प्रेमा का विवाह करना चाहते हैं किंतु मनोहर उसे अपनी बहन मान कर विवाह करना स्वीकार नहीं करता ।

मनोहर में पर दुख- कातरता और क्षात्र धर्म यथेष्ट मात्रा में है । इसी से प्रेरित होकर उसने प्रेमा की रक्षा की ।

मनोहर के विरही रूप का विशेष वर्णन नहीं है । जो स्वल्प उल्लेख है उसमें विरह में सिर पर धूल फेंकते हुए रोने का उल्लेख है ।[७४] यथार्थ में मनोहर के चरित्र का विस्तृत विकास इस काव्य में उपलब्ध नहीं है । समग्र रूप में हम कह सकते हैं कि मनोहर धीर,वीर, गंभीर, एकनिष्ठ प्रेमी और प्रणय निवेदन में चतुर नायक है ।

८- रामाश्रयी शाखा -

रामाश्रयी शाखा में राम के अतिरिक्त अन्य किसी नायक के श्रृंगार - स्वरूप का विकास नहीं है । राम का भी श्रृंगारी स्वरूप स्वल्प और मर्यादित है । सीता के रूप सौन्दर्य की ओर हुए सहज आकर्षण में भी उन्हें अपनी मर्यादा का ध्यान है और वे अपने इस प्रेम के औचित्य पर विचार करते हैं ।

राम के स्वरूप में धीरता और गंभीरता अपनी पराकाष्ठा में है । सीता पर मुग्ध होकर भी वे अपने प्रेम का प्रदर्शन नहीं करते । इतना ही नहीं रंगभूमि में भी वे सीता को प्राप्त करने के पहले ही धनुष भंग करने को नहीं उठते । इतना धैर्य और इतनी गंभीरता अन्यत्र दुर्लभ है ।

राम चरित्र में उनके संयोगी रूप के चित्र बहुत कम हैं । इनमें उनकी सीता के प्रति अनुकूलता, समय- समय पर उनके कष्ट को देख कर कातरता तथा कभी- कभी उनका श्रृंगार - अलंकरण-क्रिया के संकेत मिलते हैं ।

राम का वियोगी रूप अधिक विस्तृत, हृदयद्रावक और उदात्त है । सीता के वियोग में तो वे पागल से ही हो गए हैं किंतु इस स्थिति में भी सर्वत्र भक्त- वत्सलता, शरणागत की रक्षा

तथा कर्तव्य की महिमा उनके सामने रही रही है। वियोगी होकर भी उनका वियोग सदा चट्टान के नीचे छिपी सरिता की भांति प्रवाहित होता रहा जो कि कभी ही कभी अपने दर्शन देती है किंतु जिसकी निर्मलता और प्रवलता सर्वत्र एक अलौकिक आभा फैलाए रहती है। अपने नायक रूप में राम आदर्श और अन्य तम है।

९- कृष्णाश्रयी शाखा-

कृष्णाश्रयी शाखा में कृष्ण के चरित्र का बड़े विस्तार से और विविध रूप में विकास हुआ है। किंतु यह समस्त विविधता उनके प्रवास- पूर्व की लीलाओं मे ही है। मथुरा और द्वारका में श्रृंगार की दृष्टि से उनके चरित्र में एक बार जो परिवर्तन हो गया वह फिर न बदला। वहाँ पहुँच कर उनका जीवन निष्ठुर, कुब्जा प्रेमी तथा अपने राज- काज मे व्यस्त रहा। इस जीवन में भीउन्होंने गोपियों और राधा को एक क्षण के लिए भी नहीं भुलाया परसाथ ही साथ अनेक आश्वासन देने के बाद भी विरह सागरमें डूबती गोपियों को उबारने के लिए एक बार भी वे वृन्दावन न आए। कुरुक्षेत्र में गोपियां उनसे मिलीं पर उस समय तक उनका प्रेम अक्षुण्ण रहते हुए भी उसमें कितना अंतर आगया होगा यह कल्पना किया जा सकता है। दोनों का ही वह प्रेम जो वृन्दावन की गली- कुंजों में रूप-सौंदर्य और क्रीड़ा- विलास की भित्ति पर निर्मित हुआ था इस वियोग की आंच में पिघल कर सूक्ष्म मानसिक रूप ले लेता है जिसमें शारिरिक सुख की कामना का ह्रास हो जाता है और मानसिक धरातल पर प्रेम अति सूक्ष्म रूप धारण कर लेता है तथा शरीर के अंग- अंग में परिव्याप्त हो जाता है।

रह गया मथुरा- गमन के पूर्व का चरित्र। इसके मोटे रूप में दो भेद किए जा सकते है। प्रथम रूप तो राधावल्लभ, निंबार्क, हरिदास संप्रदाय में निकुंज लीला बिहारी कृष्ण का है। दूसरा रूप बड़ी मात्रा में वल्लभ - संप्रदाय तथा छुट पुट रूप में अन्य संप्रदाय में मान्य कृष्ण की वृन्दावन लीला का है। नायक कृष्ण के दोनों ही स्वरूपों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा

निकुंज लीला बिहारी कृष्ण-

कृष्ण का यह वह रूप है जिसमें वे अप्राकृत वृंदावन में, नित्य सहचरीगणों के साथ अपनी आद्या आह्लादिनी शक्ति राधा से नित्य लीला विहार में निमग्न रहते हैं । कृष्णा का यह रूप प्रकट लीला नायक कृष्ण से नितांत भिन्न है । इन कृष्ण को कुंज छोड़ने का अवकाश कहाँ ? ये सहचरीगणों से नित्य सेवित होकर प्रिया जी के प्रेम की आकांक्षा करते रहते हैं । इन्हें प्रिया का एक क्षण का वियोग भी सह्य नहीं है तथा सदा उनका मुँह जोहते रहते है । अपनी प्रिया के साथ विविध प्रकार के श्रृंगार, भोग-विलास, क्रीड़ा- विलास में निमग्न इनका रूप है । ये रतिपति, रतिलंपट, कोक-कला- विशारद है तथा अपनी रति, विपरीत, रतिरण आदि क्रियाओं से निकुंजेश्वरी राधारानी को मुग्ध किये रहते है । वियोग की इनकी कभी स्थिति ही नहीं होती, किन्तु संयोग में ही वियोग- विचार अथवा प्रेम वैचित्य की स्थिति में इन्हें सूक्ष्म वियोग होता है जिसकी पीड़ा वर्णनातीत है । नायक के इस रूप में चरित्र विकास का स्थान नहीं । उनका स्वरूप एक रस और नित्य है ।

वृंदावन बिहारी कृष्ण

कृष्ण के इस रूप का विकास मुख्यतः वल्लभ संप्रदाय में और उनमें भी सूरदास में हुआ है । सूर ही ऐसे प्रमुख कवि हुए है जिन्होंने कृष्णा के संपूर्ण जीवन को लिया है तथा उनकी बाल, संभोग और वियोग लीलाओं का संतुलित और समान उत्कृष्ट वर्णन किया है । नीचे दिया जा रहा रूप मुख्यतः सूरसागर के आधार पर है । कृष्णा के इन स्वरूपों के लिए प्रमाणों का उल्लेख नहीं दिया जा रहा है क्यों कि उनसे संबंधित कृष्ण की लीलाओं का स्वरूप सर्वज्ञात है ।

बालक कृष्ण में ही उनका श्रृंगारी नायक का रूप प्रकट होने लगा है । वे अत्यंत चतुर और गोपियों के परिहास क्रीड़ा करने में अत्यंत दक्ष है । जिस समय वे पाँच वर्ष के ही थे कि उन्होंने गोपियों की अंगियों को फाड़ना । कुचों को पकड़ना तथा

नख क्षतादि देना प्रारंभ कर दिया । गोपियों के साथ ऐसी क्रियाएं करके भी वे यशोदा के सम्मुख एक दम अबोध बने रहते । उनकी इन लीलाओं में उनका मायावी अथवा अलौकिक रूप प्रकट होता है ।

कुछ बड़े होते ही उनकी उपर्युक्त मनोवृत्ति अनेक रूप में प्रकट होने लगती है। वे गोपियों का मक्खन चुराने, दही की मटकी फोड़ने लगे हैं तथा साथ ही साथ उनकी छेड़- छाड़ और भी अधिक प्रकट होने लगी । अब वे घाट- कुघाट, कुंज और वन में गोपियों को रोक कर दान मांगने लगे हैं । इस दान में वे काम के संकेत प्रकट करते तथा अपने मित्रादि द्वारा गोपियों को बाध्य करते । इसी समय की उनकी चीरहरण लीला भी है । इस प्रकार चतुरता, कुशलता, क्रीड़ा आदि के द्वारा उन्होंने गोपियों का मन मोह लिया है । इनकी इन लीलाओं में काम का प्रथम स्पष्ट उन्मेष है तथा श्रृंगारी नायक का स्वरूप प्रस्फुटित होने लगा है ।

इसी समय उनका राधिका से परिचय होता । बाल-साहचर्य प्रेम में परिणत होने लगता । अपनी वंशी, अपनी नित नवीन चतुरता तथा काम कला- निपुणता के द्वारा वे राधा का मन मोह लेते हैं । वे राधा को अनेक प्रकार के बहाने करने की प्रेरणा देते हैं । इस रूप में उनका पूर्ण श्रृंगारी नायक का स्वरूप प्रस्फुटित हो उठता है । राधा के साथ- साथ अन्य अनेक गोपियाँ भी उनकी ओर आकृष्ट होती हैं । चतुर नायक किसी को निराश नहीं करते तथा सभी की इच्छा पूरी करते । रास इसका एक सरल माध्यम था, किंतु रास के अतिरिक्त भी वे अपनी सभी प्रियाओं का ध्यान रखते हैं । फलस्वरूप कहीं वे अपने वचनानुसार नहीं पहुंच पाते हैं तो कहीं किसी नायिका के यहां पकड़े जाते हैं । खंडिता और मान की ऐसी स्थितियों में रतिनागर कृष्ण अपनी प्रियाओं के मान- मोचन में सभी उपायों का उपयोग करते हैं । इस प्रकार उनका सारा जीवन श्रृंगारिक क्रीड़ा- विलास में डूबे हुए बहु-प्रेयसियों वाले नायक का है । वे राधा वल्लभ और गोपी वल्लभ दोनों हैं ।

मथुरागमन के बाद के नायक रूप का उल्लेख पीछे किया जा चुका है । इन श्रृंगारी रूपों के अतिरिक्त उनके अन्य रूप गो-गोपाल- रक्षक, इंद्र- गर्व- भंजक आदि हैं

इस प्रकार कृष्ण का स्वरूप कृष्णाश्रयी शाखा में मुख्यतः श्रृंगारी नायक का है। इस श्रृंगार में प्रेम का अबाध प्रवाह है, मिलन की सरल योजनाएं हैं, प्रेम और कलह है पर नायक को इसे प्राप्त करने के लिए त्याग, तपस्या और कष्ट सहन नहीं करना पड़ता है।

## १०- भक्ति- काव्य में नायकों के स्वरूप की तुलना

भक्ति- काव्य की विभिन्न शाखाओं के नायकों की तुलना में ज्ञानाश्रयी शाखा को एक दम छोड़ना पड़ेगा। शेष शाखाओं के नायकों में अपनी- अपनी शाखागत विशेषताएं दिखलाई पड़ती हैं। प्रत्येक शाखा का नायक दूसरी शाखा के नायक से भिन्न है। उसका चरित्र, प्रेम और उसकी परिस्थितियां सभी अपने- अपने प्रकार के हैं।

प्रेमाश्रयी तथा रामाश्रयी शाखा के नायकों में यथेष्ट मौलिक अंतर होते हुए भी कुछ समानताएं भी हैं। दोनों शाखाओं के नायक उदात्त- चरित्र, योद्धा और एकनिष्ठ प्रेमी हैं। दोनों का ही प्रेम- पथ संघर्ष-पूर्ण है और उन्हें अपने प्रेम- मार्ग में सफल होने के लिए अपने पौरुष का प्रमाण देना पड़ता है। दोनों के ही जीवन में त्याग और तपस्या है। इतनी समता होते हुए भी दोनों में अंतर है। प्रेमाश्रयी शाखा के नायक मूलतः प्रणयी हैं। वे प्रेम-पंथ में सर्वस्व लुटा देते हैं। उनका प्रेम प्रकट है और प्रिय को प्राप्त करने के लिए वे संघर्ष करते हैं। वे वाक् पटु और रति निपुण हैं। संयोगी तथा वियोगी दोनों ही रूप में उनका यह गुण प्रकट होता है। रामाश्रयी शाखा के नायक में गंभीरता तथा मर्यादा अधिक है। इन दोनों से भिन्न कृष्णाश्रयी शाखा का नायक है। उनके श्रृंगारी जीवन में संघर्ष, त्याग और तपस्या की आवश्यकता नहीं। वह उन्मुक्त प्रेम, क्रीड़ा विलास से परिपूर्ण पूर्णतः श्रृंगारी है।

## ११- निष्कर्ष

हिन्दी- भक्ति- काव्य में उपलब्ध नायक के स्वरूप के इस संक्षिप्त अवलोकन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष व्यक्त होते हैं।

(१) ज्ञानाश्रयी शाखा को छोड़ कर अन्य सभी शाखाओं में नायक का स्वरूप उपलब्ध है। नायक का यह रूप शास्त्रीय सीमा में रखा जा सकता है, किन्तु उसके स्वरूप में ऐसे अनेक भेद हैं जो कि शास्त्र- बद्ध रूप में व्यक्त नहीं हो सकते। ऐसे रूपों को शास्त्रीयता से परे रख कर देखना चाहिए। यह शास्त्र मुक्त रूप कृष्णाश्रयी शाखा में सबसे अधिक है।

(२) नायक भेद के शास्त्रीय रूपों में भक्ति- काव्य में धीरोदात्त एवं धीर ललित रूप प्राप्त हैं। राम और प्रेमाश्रयी शाखा के नायकों में धीरोदात्तता है। इसमें भी प्रेमाश्रयी शाखा के नायकों का झुकाव धीर ललित की ओर विशेष है। कृष्णाश्रयी शाखा के नायक में धीरोदात्तता का विशेष अवकाश होते हुए भी उनके धीर ललित रूप का ही विशेष वर्णन है।

(३) अन्य भेदानुसार रामाश्रयी शाखा के नायक राम सर्वदा अनुकूल हैं। प्रेमाश्रयी के नायक अनुकूल तथा दक्षिण दोनों ही प्रकार के हैं। कृष्णाश्रयी शाखा के नायक कृष्ण भी अनुकूल तथा दक्षिण दोनों हैं। वल्लभ आदि संप्रदाय में कृष्ण का अनुकूल और दक्षिण दोनों रूप उपलब्ध हैं। राधावल्लभ, हरिदास संप्रदाय में कृष्ण पूर्णतः अनुकूल हैं। वल्लभ संप्रदाय में कृष्ण के तथा धृष्ट रूप भी उपलब्ध हैं। इस प्रकार विविधता सबसे अधिक वल्लभ संप्रदाय में है।

(४) पति और उपपति की दृष्टि से पूर्व राग की स्थिति तक सभी शाखाओं के नायक उपपति माने जाने चाहिए। इन्हें प्रेमी भी कह सकते हैं। राधावल्लभादि संप्रदाय में उप पतित्व बिल्कुल नहीं है। राम और प्रेमाश्रयी शाखा में विवाह द्वारा नायक पतित्व प्राप्त कर लेता है। वल्लभ संप्रदाय में विवाह की स्थिति न मानने के कारण कृष्ण सदा उपपति ही रहते हैं, यद्यपि कवियों ने उन्हें पतित्व प्रदान करने का प्रयत्न किया है।

(५) सभी शाखाओं के नायक रूपवान हैं तथा उनके रूप का प्रभाव सर्वत्र पड़ता है। इस रूप का वर्णन प्रेमाश्रयी शाखा में अल्प, रामाश्रयी शाखा में सामान्य तथा कृष्णाश्रयी शाखा में अधिक मात्रा में हुआ है। इस रूप वर्णन के लिए सामान्य कथन प्रणाली और नखशिख प्रणाली अपनाई गई है। इनमें सामान्यतः परंपरागत उपमानों का व्यवहार हुआ है।

(६) सभी शाखाओं के नायक समस्त सात्विक गुणों से युक्त माने जा सकते हैं यद्यपि कवियों ने इन गुणों का विस्तृत उल्लेख नहीं किया है। इन गुणों में श्रृंगार से सबसे अधिक संबंधित गुण ललित है जो कि सभी नायकों में दृष्टिगोचर है।

(७) रूढ़ मुक्त दृष्टि से सभी शाखाओं के नायकों में आपस में कुछ समानता होते हुए भी काफी भेद है। प्रेमाश्रयी शाखा तथा रामाश्रयी शाखा के नायक एकनिष्ठ प्रेमी हैं किन्तु उनका प्रणयी स्वरूप प्रेमाश्रयी शाखा में ही प्रस्फुटित हुआ है। इस प्रेम के लिए वे सर्वस्व त्याग कर दर- दर भटकते हैं। कृष्णाश्रयी शाखा का नायक प्रेमी होते हुए भी वैसा एकनिष्ठ नहीं है जैसा कि प्रेमाश्रयी या रामाश्रयी शाखा के नायक हैं।

(८) प्रेमाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखा के नायकों में काम-कला ज्ञान अत्यधिक है जो कि रामाश्रयी शाखा के नायक में प्रस्फुटित नहीं हुआ है।

(९) कृष्णाश्रयी शाखा के नायक में प्रेम की जो उन्मुक्तता, क्रीड़ा- विलास की विविधता और बहुलता है वह रामाश्रयी शाखा में लगभग नहीं के बराबर है तथा प्रेमाश्रयी शाखा में थोड़ी ही है।

## षष्ठ अध्याय

## हिन्दी भक्ति-काव्य में नायिका का स्वरूप

(क) स्वकीया

(ख) परकीया

(ग) सामान्या

## हिन्दी भक्ति- काव्य में नायिका स्वरूप

### भूमिका -

शृंगार रस में नायिका का अत्यधिक महत्व है। वह शृंगार का आश्रय और आलम्बन दोनों है। उसके रूप का हिन्दी साहित्य में अनेक रूपी चित्रण हुआ है। यह कवियों का प्रिय विषय रहा है और भक्त कवि भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। भक्ति- काव्य की नायिकाओं का बहुत कुछ अध्ययन हो चुका है। भक्ति की किसी भी शाखा, कवि या संप्रदाय से संबंधित प्रत्येक अध्ययन में उस शाखा, कवि या संप्रदाय में प्राप्त नायिका के स्वरूप का विस्तृत अध्ययन प्राप्त है। अतएव प्रस्तुत अध्ययन में हम उन्हीं अंशों को विस्तार से लेंगे जिनकी उपेक्षा हुई है अथवा जिनके संबंध में कोई नई बात कहनी है।

### (क) स्वकीया

१- हिन्दी भक्ति काव्य में स्वकीया[1] नायिका का यथेष्ट चित्रण हुआ है। भक्ति की कृष्णाश्रयी शाखा को छोड़कर अन्य सभी शाखाओं में सामान्यतः स्वकीया रूप ही प्राप्त है। कृष्णाश्रयी शाखा में भी अनेक प्रकार से राधा को स्वकीयात्व प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है। किंतु इसमें सामान्यतः भक्तगण सफल नहीं हुए हैं। इसका उल्लेख परकीया- खंड में किया गया है। विभिन्न भक्ति - शाखाओं में प्राप्त स्वकीया नायिका का रूप नीचे दिया जा रहा है।

### २- ज्ञानाश्रयी शाखा -

ज्ञानाश्रयी शाखा में भक्तों ने आत्मा का स्वकीया रूप ही स्वीकार किया है। इस शाखा में इसी नायिका के प्रेम को महत्व दिया गया है। नायिका का जो स्वरूप इसमें प्राप्त है

---

१- विनयार्जवादियुक्ता गृहकर्मपरा पतिव्रता स्वीया। साहित्यदर्पण ३।५७

-- वह " प्रगल्भा"[२] नायिका की कोटि का है । अपने प्रिय के आगमन से नायिका फूली नही समाती ।[३] वह अपना प्रेम व्यक्त करने में चतुर और स्पष्टभाषी है । वह कहती है, " मोहन बीठुला, यह मन तुझसे लग गया है और कोई मुझे प्रिय नहीं है"।[४] " अब मंगलचार गाने का समय आ गया है । मेरे स्वामी राजा राम आ गए हैं । मैं " यौवन में माती " हूं । एक अविनाशी पुरुष से मेरा विवाह हो गया है ।"[५] नायिका पुनः अपने सौभाग्य का वर्णन करती हुई कहती है, कि " बड़े भाग्य से बहुत दिनों घर बैठे प्रीतम आए । मैं अपने प्रिय के पास सोई । रात्रि में प्रिय से जो निधि मुझे प्राप्त हुई है, उसे क्या कहूँ ? राम ने स्वयं मुझे सौभाग्य प्रदान किया है ।"[६] अब वह अपने राम को जाने नहीं देना चाहती । वह कहती है, कि " जैसे रहना चाहते हो रहो ।"[७] और अंत में अपने प्रेमी पर अधिकार जताती हुई वह कहती है, " मेरे नेत्रों के अंदर तुम आ जाओ । अपने नेत्रों को मैं बंद कर लूं और न मैं किसी और को देखूं और न तुम्हें ही देखने दूं ।"[८] नायिका की इन प्रेम अभिव्यक्तियों के कारण ही उसे प्रगल्भा नायिका की संज्ञा दी गई है ।

ज्ञानाश्रयी शाखा में भक्तों ने अपने को नायिका

---

२- स्मरान्धा गाढतारुण्या समस्तरतकोविदा ।
भावोन्नता दर व्रीडा प्रगल्भाक्रान्त नायका ।। वही ३।६०

३- कबीर ग्रन्थावली पद १-२

४- " ४-५

५- " १

६- " १

७- " १

८- वही. निहकर्मी पतिव्रता को अंग २

मान कर निर्गुण राम के प्रेम के पदादि कम ही लिखे है। ये संत अधिकतर पुरुष है अतएवइनके उल्लेखोंमें न तो नायिका के प्रेम का सहज कोमल और कृमिक विस्तार है और न संभोग क्रीड़ा की आनन्दानुभूति है इसलिए इनके स्वरुपों में मुग्धत्व और मध्यत्व का अभाव है। नायिका अपने प्रेम को स्पष्ट रूप से कहने में समर्थ है

अवस्थाभेदानुसार ज्ञानाश्रयी शाखा में प्राप्त नायिका स्वरूप को स्वाधीन पतिका[९] के अन्तर्गत रखा जायगा जिन स्थलों पर नायिका ने अपने विरहोद्गारों को व्यक्त किया है वहां उसका स्वरूप विरहोत्कंठिता का माना जा सकता है। अन्य भेद इस शाखा में प्राप्त नहीं है।[१०] यथार्थ में संपूर्ण ज्ञानाश्रयी शाखा में नायिका

---

९- स्वाधीनभर्तृका -

कान्तो रतिगुणाकृष्टो न जहाति यदन्तिकम्
विचित्रविभ्रमासक्ता सा स्यात्स्वाधीन भर्तृका ।।
साहित्य दर्पण ३।७४

(स्वाधीन भर्तृका वह नायिका मानी जाया करती है जिसका प्रणयी उसके प्रेम की डोर से बंधा हुआ उसे छोड़कर अन्यत्र कहीं नहीं जा सकत इसके अतिरिक्त इसकी यह भी विशेषता है कि ( नायक के प्रति ) इसके विविध विलास बड़े विचित्र और मनोरंजक हुआ करते हैं।)

१०- हो बलियां कब देखोंगा तोहि।
अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसी ब्यापै मोहि ।।
नैन हमारे तुम्ह कूं चाहै, रती न मानै हारि।
बिरह अगिन तन अधिक जरावै, ऐसी लेहु बिचारि ।।
सुनहु हमारी दादि गुसांई, अब जिन करहु अधीर।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामी, काचै भांडै नीर ।।
बहुत दिनन के बिछुरे माधौ, मन नहीं बांधै धीर।
देह छतां तुम्ह मिलहु कृपा करि, आरतिवंत कबीर ।।
पदावली ३०५

तथा-
वै दिन कब आवैंगे माई।
जा कारनि हम देह धरी है, [illegible] मिलिबौ अंगि लगाई।
कहै कबीर मिले वै साईं, मिलि करि मंगल गाई ।।वही ३०६

तथा-
बाल्हा आव हमारे ग्रेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अदेह रे।
एक मेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जीव जाई रे ।। वही ३०७

तथा-
मिलहु राम मनि पुरवहु आसा, तुम्ह बिछुरयां मैं सकल-
निरासा - रमैणी ४

भेद और उसके स्वरूप का विस्तार अत्यन्त गौण है ।

४- प्रेमाश्रयी शाखा -

इस शाखा में स्वकीया नायिका की स्वीकृति है । लगभग सभी ग्रन्थों में नायक- नायिका का विवाह हो जाता है और इस प्रकार स्वकीयात्व सभी नायिकाओं को प्राप्त होता है ।

इस स्वकीयात्व को प्राप्त करने के पूर्व सभी नायिकाओं की स्थिति " कन्यका - परकीया " मानी जानी चाहिए । वे अपने माता- पिता के अधीन थीं जो कि उनके मिलन में प्रारंभ में बाधक रहे । अतः इनका उल्लेख परकीया के अंतर्गत ही युक्ति युक्त होगा ।

स्वकीयात्व- प्राप्ति के बादसामान्यतः प्रेम-गाथा-काव्य समाप्त हो जाते हैं । फलस्वरूप नायिका के रूप- विस्तार का अभाव है। अपवाद रूप में पद्मावत और स्वल्पांश में चित्रावली है। पद्मावत में नागमती और पद्मावती दोनों के स्वकीया रूप का यथेष्ट विकास हुआ है । चित्रावली में कौलावती का स्वकीया रूप और अल्पमात्रा में चित्रावली का भी प्राप्त है । मधुमालती में विवाहोपरांत न मधुमालती और न प्रेमा की कथा ही कवि ने बढ़ाई है । इस प्रकार स्वकीया का जो कुछ स्वरूप उपलब्ध है वह पद्मावत और चित्रावली में ही है ।

मुग्धा नायिका -

पद्मावत, चित्रावली और मधुमालती में विवाहोपरांत मुग्धा[११] नायिका के वर्णन के लिए यथेष्ट अवकाश है किंतु इस अवसर का भरपूर उपयोग नहीं किया गया है । पद्मावत और चित्रावली में बहुत ही क्षणिक काल के लिए नायिका में मुग्धा

---

११- प्रथमावतीर्णयौवन मदन विकारा रतौ वामा ।
कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावती मुग्धा ।।

दिखलाई पड़ता है । विवाहोपरांत जब सहेलियां रत्नसेन को पद्मावती के आगमन की सूचना देती हैं और वह बाला को बांह पकड़ कर सेज पर लाता है, उसी स्थान पर ही नायिका का मुग्धा रूप प्रदर्शित हुआ है। वह मन में सकुचाती, डरती और झिझकती है । इसके बाद कवि ने एक झटके से उसके मुग्धत्व को नष्ट कर दिया ।[१२] वह रत्नसेन को " जोगी " कह जो कुछ कहती है वह उसे मध्या[१३] एवं प्रगल्भा नायिका की श्रेणी में बैठा देता है । चित्रावली में कुंवारी कौलावती को सोहागरात के दिन ही अपने पति को मनाना पड़ता है ।[१४] मुग्धा नायिका बनने का उसके पास अवकाश कहां ? हां चित्रावली के चरित्र में इसके लिए स्थान है और कवि ने इस अवसर ~~पर~~ का उपयोग भी किया है । प्रथम समागम से बाला डरती है और आगे पग रखने ~~में~~ से भयभीत है । मानों दोनों पैरों मे अर्गला पड़ गई हो। छल- बल से सखियां उसे सेज के पास ले आईं । वह पाटी के किनारे आकर खड़ी हो गई । अनेक प्रकार से सखियां उसे समझाती है पर वह समझती नहीं है । कुंवर अनेक प्रकार से उससे बिनती करता है पर वह -

---

१२- गोरख सबद सुद्ध भा राजा, रामा सुनि रावन होई गाजा ।
 गही बांह धनि सेजवां आनी । आंचर ओट रही छपि रानी
 सकुचै डरै मुरै मन नारी । गहु न बांह रे जोगि भिखारी ।।
 आदि । पद्मावत ३०४

१३- मध्या विचित्रसुरता प्ररूढस्मर यौवना ।
 ईषत्प्रगल्भवचना मध्यमव्रीडिता मता । साहित्य दर्पण -
 ३।५९

१४- चित्रावली ४०४-४०६

एक भी बात नहीं बबकि मानती ।[१५] इसके बाद कुँअर उठ कर उसकी बाँहें पकड़ता है। इसके बाद पद्मावत की ही भाँति चित्रावली भी कुँअर को जोगी कह कर जो कुछ कहती है वह उसके मुग्धत्व को भंग कर उसे मध्या एवं प्रगल्भा की श्रेणी में बैठा देता है।[१६] इस प्रकार चित्रावली में भी मुग्धा नायिका का संकेत मात्र ही मानना चाहिए। मधुमालती में नायिका का मुग्धा - रूप अधिक सहज और स्वाभाविक है। इसमें मुग्धा की स्वाभाविक मिलन- अभिलाषा, लज्जा और भय आदि सभी का वर्णन किया है। समस्त प्रेमाश्रयी काव्य में यह मुग्धा नायिका का सर्वोत्तम वर्णन हैः-

ले उठाई कुँअरहि गौ तहाँ, सुरति सैन सिंघासन जहाँ।
बहुरि सखी बाला फुसिलाई, सुरति सैन जौ लै बैसाई ।।
किछु आनन्द मिलन कै, किछु भै हिये धरेई।
प्रथम समागम बाल, दिस्टि न सौंह करेई ।।
कुँअर बाँह कामिनि गहि कहा, हिया सैरान जौ रै दुख रहा।
अबहूँ तज पाछिल निठुराई, परिहरि लाज लागु गीव कर धाई।
लाज छोड़ि कह रस सौ बैना, सौंह भये तब दुहुँ के नैना।
अहे जो लोचन आस तिसाये, दुनहु पिया रसरूप अघाये ।।

---

१५- कुँअरहि सेज सुरंग बैसाई, चित्रावलि पइ गई सवाई।
आस पास सब घेरै अलीं, सुंदरि कह कोहबर लै चली ।।
प्रथम समागम बाला डरई, कै सहुँ आगे पाव न धरई।
चित्रावलि जनु गज मतवारी, छुद्रावली घंट झनकारी ।।
आदू सकुचि पाव दुहुँ धरा, परगहिं परग होई अरगरा।
छलि आँखिन्ह अँधियारी मेली, झकारहिं गड़दार सहेली ।।
कल कल गई सेज जहँ अही, पाटी तीर ठाढ़ होई रही।
चित बहलावहिं निज सखी, औ समुझावहिं साथ।
सेज सुरंग जहँ नदि बहै, चित्रिनि छुवै न हाथ ।।
चित्रावली ५३१
और देखें ५३२

दग्धि दुनी के हिये बोतानी, मिलन नाव जे तपत सिरानी ।
नैन नैन ते लोभे, मन ते मन ~~असमान~~ 
दुइ हीवर जो एक भौ, औ भौ एक परान ।।

सौते पिअत रूप चर्खु, दोऊ, रवि ससि मिलि एक भौ दोऊ ।
मुख मुख सैन सौंह ना करई, प्रथम समागम डर थरहरई ।
कुंअर अधर अधरन्ह सौ जोरै, कुंअरि विमुख भै भै मुख मोरै ।

दीप भरम मुख फूंकै बाला, अधिकौ करै रतन उजीआरा ।
दुओ कर लै लाजन्ह मुख भापै, अधर दसन कै खंडित कांपै ।।
एक वीय परम पिआरी, औ भौ प्रीति समंग ।
तिसरे लाज व्यापैउ, ~~कब~~ पलकन्ह दुहुं रति रंग ।। [१७]

मध्या नायिका -

मध्या नायिका का स्वरूप केवल पद्मावत और चित्रावली मैं ही उपलब्ध है । यथार्थ मे इन ग्रन्थों मैं नायिका को जो रूप प्राप्त है वह मध्या और प्रगल्भा का अद्भुत मिश्रण है । सोहागरात मैं नायिका का प्रिय से संभाषण जिसमें वह उसे जोगी कह कर फटकारती है और फिर अनेक प्रकार से प्रेम चर्चा करती है, वह रूप मध्या की सीमा को पार कर प्रगल्भा की सीमा को छूने लगता है । किंतु बाद मैं पुनः इनका जो रूप प्रकट होता है वह मध्या के अंतर्गत ही आ सकता है । नायिका के उपर्युक्त भेदों का आधार रति क्रीड़ा मैं नायिका की अनभिज्ञता एवं यौवनादि का क्रमिकविकास तथा नायिका का नायक से लज्जामुक्त होना है । अतएव प्रगल्भा की स्थिति को प्राप्त नायिका को पुनः स्थिति पूर्व मैं लाना अनुचित होगा । इसी आधार पर पद्मावती और चित्रावली को प्रथम समागम के दिन नायक से मुखर होने पर भी प्रगल्भा नायिका नहीं मानना चाहिए । वे मध्या एवं प्रगल्भा की संधि-स्थल की ही नायिकाएं मानी जाएंगी । पद्मावती का रत्नसेन से प्रथम समागम के दिन वाद- विवाद एवं उसे॰ ~~चट्ख्~~ वर्णन

---

१७ प॰||।ह॰ ।

में संपन्न संभोग के स्वरूप को मध्या का चित्र मानना चाहिए ।[१८] चित्रावली का भी विवाहोपरांत प्रथम समागम के समय पति से वार्तालाप उसके स्वरूप को प्रदर्शित करने वाला है ।[१९]

मध्या के उपभेद धीरा, अधीराधीरा और अधीरा में प्रेमाश्रयी शाखा काव्य में दूसरा रूप धीराधीरा[२०] ही प्राप्त है । यह रूप पद्मावती और चित्रावली के साथ - साथ नागमती का भी है । इनके स्वरूप निम्नलिखित स्थलों पर स्पष्ट है :-

नागमती - न धीराधीरा मध्या नायिका

नागमती - वियोग - संदेश को सुन कर रत्नसेन चित्तौर लौट आया है । रात्रि को नागमती- रत्नसेन का मिलन होता है । नागमती अपने प्रेम का वर्णन और राजा की निष्ठुरता का उल्लेख रो रो करकरती है:-

> ग्रीखम जरत छाँड़ि जो जाई । पावस आव कवन मुख लाई
> जबहिं जरै परबत बन लागे । औ तेहि धार पंखि उड़ि -
> भागे ।
> बन साखा देखिअ औ छाहाँ, कवने रहस पसारिअ बाहाँ ।।
> कोउ नहि थिरकि बैठ तेहि डारा । कोउ नहिं करै -
> केलि कुरंबरा ।।
> तूं जोगी होइगा बैरागी । हौं जरि भई छार तोहिलागी
> काह हँससि तूं मो सौं किए जो और सौं नेहु ।
> तोहि मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरसै मेंहु । [२१]

पद्मावती -

नागमती से मिलन के उपरांत प्रातः राजा पद्मावती से मिला । उस समय पद्मावती ने राजा को अनेक उलाहने दि

---

१८- पद्मावत ३०४-३४०

१९- चित्रावल [illegible] ५।१-५३५

२० [illegible] धीरधीरा परुषोक्तिभिः ।साहित्य दर्पण ३।

जिनमें उसका धीरा धीरा मध्या रूप व्यक्त होता है:-

कही दुख कथा रैनि बिहानी । भौर भएउ जहँ पदुमिनि रानी ।
भान देख ससि बदन मलीनी । कँवल नैन राते तन खीनी ।
रैनि नखत गनि कीन्ह बिहानू । बिमल भई जस देखे भानू ।
सुरुज हँसा ससि रोई डफारा । टूटि आँसू नखतन्ह कै मारा ।
रहै न राखे होई निआँसी । तहँवरि जाहि जहाँ निसि बासी ।
है कै नेह आनि कुँव मेली । सीँचै लाग भुरानी बेली ।
भए वै नैन रहट की धरी । भरी ते ढारीं छूछीं भरीं ।
सुभर सरोवर हँस जल घटतहि गएउ बिछोई ।
कँवल प्रीति नहिं परिहरै सूखि पंक बस होई । [२२]

प्रगल्भा नायिका -

प्रेमाश्रयी शाखा में प्रगल्भा नायिका का अभाव है । उसमें मुग्धत्व और मध्यत्व ही प्राप्त है, यद्यपि यह सत्य है कि यह मध्यत्व कहीं- कहीं प्रगल्भा की सीमा को छून लगता है ।

स्वकीया के अवस्थानुसार अन्य भेद -

इस शाखा में स्वकीया के उपर्युक्त भेदों के अतिरिक्त अवस्थानुसार अन्य आठ भेदों में से स्वाधीन भर्तृका, खंडिता, प्रोषित-भर्तृका, वासकसज्जा रूप ही प्राप्त है । इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार से है :-

स्वाधीनभर्तृका -

" स्वाधीन भर्तृका नायिका के प्रेमी उसके प्रेम डोर से बँधा हुआ उसे छोड़कर अन्यत्र नहीं जा सकता," यदि इस लक्षण का आधार ले तो प्रेमाश्रयी शाखा में मधुमालती को ही स्वाधीनभर्तृका माना जाना चाहिए । विवाहोपरांत मनोहर की कथा समाप्त हो जाती है । अपनी पत्नी के अतिरिक्त उसका किसी अन्य से स्नेह रहा हो, इसकी संभावन नहीं । फलतः मधुमालती को

स्वाधीन भर्तृका नायिका का मान दिया जा सकता है। पद्मिनी और नागमती तथा चित्रावली और कौलावती इस पद की अधिकारिणि नहीं है। नागमती को छोड़ कर रत्नसेन पद्मावती की खोज में चला गया था और पुनः नागमती के प्रेम के कारण चित्तौर लौट आया। इसी प्रकार चित्रावली के कारण सुजान ने कौलावती को छोड़ा और कौलावती के कारण वह पुनः लौट आया। अतएव दोनों के प्रति नायक का प्रेम होते हुए भी एक से मिलन की स्थिति में दूसरे की खंडिता स्थिति अनिवार्य है और इसीलिए इन चारों नायिकाओं को स्वाधीन भर्तृका नहीं कहा ज जा सकता। हाँ, जिस समय नायक जिसके पास है उतने समय के लिए वह स्वाधीनभर्तृका कही जा सकती है।

खंडिता-

खंडिता नायिका की स्थिति भी केवल पद्मावत और चित्रावली में ही प्राप्त है। पद्मावती की खोज में जाने के कारण नागमती प्रोषित भर्तृका ही नहीं हुई वह खंडिता भी हुई।[२३] इसके बाद चित्तौर लौटने पर नागमती- रत्नसेन मिलन के अवसर पर पद्मिनी की स्थिति खंडिता नायिका की है।[२४] इसी प्रकार की कौलावती और चित्रावली की स्थिति भी है।[२५]

प्रोषितभर्तृका -

प्रेमाश्रयी शाखा में स्वकीया प्रोषित भर्तृका[२६] रूप नागमती एवं कौलावती का ही है। लक्ष्मी- समुद्र खंड में रत्नसेन पद्मावती का बिछोह हो जाता है किंतु उस स्थिति में पद्मावती को प्रोषितभर्तृका मानना समुचित नहीं होगा। शुद्ध प्रोषितभर्तृका की स्थिति उपर्युक्त दो प्रसंगों में ही उपलब्ध है जिनमें रत्नसे

---

२३- पद्मावत १२१, नागमती वियोग खंड ३४१-३७३ और संदेश

२४- वही ४३०

२५- चित्रावली

२६- नानाकार्य

पद्मावती की खोज में[२७] और सुजान चित्रावली की खोज[२८] में अपनी-अपनी विवाहिता पत्नियों को छोड़कर जाते हैं। इसके अतिरिक्त रत्नसेन- बंधन खंड से मोक्ष खंड तक में नागमती तथा पद्मावती दोनों प्रोषितभर्तृका हैं।[२९]

वासक सज्जा-

स्वकीया नायिका का वासक सज्जा[३०] रूप केवल चित्रावली में प्राप्त है। सुजान के कौलावती के संदेश को सुनकर लौट आने पर कौलावती का वासक सज्जा रूप है। कवि ने स्वयं इसको स्पष्ट कहा हैः-

> कंत आवा परतीति पर, सोरह साजि सिंगार।
> वासक- सेजा होइ रही, लाइ नैन दुइ बार।।[३१]

नायिकाओं का काम- शास्त्रीय- स्वरूप

काम शास्त्र के पद्मिनी, चित्रणी, शंखिनी और हस्तिनी रूपों में से सभी रूप प्रेम शाखा काव्य में प्राप्त नहीं हैं। नायिका भेद के इन रूपों में सर्वोत्कृष्ट पद्मिनी है और इसलिए जहाँ कहीं कवियों ने इस आधार का संकेत किया है वहाँ पद्मिनी नायिका का ही।

पद्मावत में पद्मावती पद्मिनी जाति की नायिका है।[३२]

---

२७- वही नागमती वियोग एवं संदेश ३४१-३७६

२८- चित्रावली हंस खंड से कौलावती गवन खंड तक पृ० २०८-२२९

२९- पद्मावत ५७४-६४४ तक

३०- कुरुते मंडनं यस्याः सज्जिते वासवेश्मनि।
सा तु वासकसज्जा स्याद्विदित प्रियसंगमा।। साहित्यदर्पण ३।८५

३१- चित्रावली ५९६

[illegible] गंध रुचि विधि औतारी

इसी प्रकार चित्रावली[३३] तथा मधुमालती[३४] भी पद्मिनी जाति की नायिका है। नागमती तथा कौलावती के संबंध में स्पष्ट उल्लेख नहीं है। यह ज्ञान मुख्यतः उनके शरीर की गंध से होता है।

रति की दृष्टि से नायिका के मृगी, बड़वा और हस्तिनी[३५] भेद का भी उल्लेख चित्रावली में है, किन्तु उसकी नायिका इनमें से किस वर्ग के अंतर्गत आती है यह कहीं नहीं कहा गया है। नायिकाओं के पद्मिनी होने के कारण तथा मृगी नायिका सर्वोत्तम मानी जाने के कारण यह अनुमानित किया जा सकता है कि सभी नायिकाएं मृगी हैं।

स्वकीया नायिका के अन्य भेद -

नायिका के अन्य भेदों में रूप गर्विता एवं ज्येष्ठा और कनिष्ठा का उल्लेख भी आवश्यक है।

रूपगर्विता नायिका -

नागमती और पद्मावती दोनों ही रूपगर्विता नायिका हैं। नागमती के रूपगर्विता होने का पता उस समय लगता है जब वह सुआ से पूछती है," क्या उसके समान कोई और सुन्दरी नारी है।"[३६]

उसका यह रूप गर्विता रूप सिंहलद्वीप से रत्नसेन के लौट आने पर पुनः प्रकट होता है। वह कहती है: " यद्यपि पद्मावती अत्यन्त सुन्दरी है, पर क्या वह रूप में मेरे बराबर हो सकती है।

---

३३- जोगी संवरि कहै पुनि बाता, वह चित्रावलि जेहि रंगराता।
बदन मयंक मलयगिरि अंगा, चंदन वास फिरहिं अलि संगा।
आदि चित्रावली १७

३४- वह जो अगत मलयानिल राउ, अति सुगन्ध जानहि केहि भाउ।
दिन एक कामिनि चिकुर छिंडाए, ठाढ़ भए तब निकट जो आ
तेहि दिन सौं जो भवो उदासा, पै अजहूं न गौ सुबास।
मधुमालती पृ० २७

३५- चित्रावली ५५८

जहाँ अप्सराओं के बीच में महासुन्दरी राधिका हो, वहाँ चन्द्रावली उसकी शोभा की तुलना नहीं कर सकती ।"[३७] पद्मावती को भी अपने रूप का गर्व है वह भी नागमती को कुछ नहीं गिनती । वह चितौर में रत्नसेन से कहती है," मैं सिंहल की पद्मिनी हूँ । जम्बू द्वीप की नागिनी मेरी बराबरी नहीं कर सकती मैं सुगंधित, निर्मल और उज्ज्वल हूँ । वह विष से भरी, डरावनी और काली है । मेरी सुगन्धि से आकृष्ट भौंरे संग लग जाते हैं । उसे देख कर मनुष्य डर से भाग जाते हैं ।"[३८]

अन्य नायिकाओं का यह रूप गर्विता स्वरूप व्यक्त नहीं है ।

ज्येष्ठा और कनिष्ठा नायिका -

नायक के प्रेम के आधार पर यह विभाजन है । नागमती और पद्मावती तथा चित्रावली और कौलावती के संबंध में ही यह प्रश्न उठसकता है । इसमें संदेह नहीं कि पद्मावत में पद्मावती तथा चित्रावली में चित्रावली ज्येष्ठा है । दक्षिण नायक होने के के कारण रत्नसेन और सुजान क्रमशः नागमती और कौलावती को संतुष्ट रखते हैं पर उनके स्नेह की पराकाष्ठा इनमें नहीं है ।

संभोग आनंदिता -

सभी नायिकाएं संभोग आनंदिता हैं । समागम के उपरांत उनका यह स्वरूप प्रकट होता है ।

---

३७- जौ पदुमावति है सुठि लोनी । मोरे रूप की सरवरि होनी ।
जहाँ राधिका गोपिन्ह माहाँ । चंद्रावलि सरि पूज न छाँहाँ ।।
वही ४२९

३८- हमु हौं सिंघल के पदुमिनी । सरि न पूज जंबु नागिनी ।
हौं सुगंध निरमरि उजियारी । वह बिख भरी डरावनि कारी ।
मोरें बास भंवर संग लागहिं । ओहि देखें मानुस डरि भागहिं ।

प्रेमाश्रयी शाखा में स्वकीया नायिका इन विविध रूपों में अभिव्यक्त हुई है। स्वकीया की इतनी विविधता भक्ति साहित्य की अन्य शाखाओं में उपलब्ध नहीं है।

५- रामाश्रयी शाखा

रामाश्रयी शाखा में मुख्यतः स्वकीया वर्णन है। यह वर्णन भी काफी संक्षिप्त है। इसका कारण यही है कि राम- काव्य श्रृंगार- काव्य नहीं है। श्रृंगार उसमें प्रासंगिक रूप में आया है। इस वर्णन में भी कवि का उद्देश्य नायिका- भेद नहीं था। अतएव इस काव्य की लगभग सभी नायिकाओं के स्वकीया होने पर भी उनका वर्गीकरण आदि नहीं किया जा सकता है और न इसकी आवश्यकता है।

इस काव्य की स्वकीया नायिकाओं के दो मोटे भेद किए जा सकते हैं। पहले में वे समस्त नायिकाएं आएंगी जिनके श्रृंगार- पक्ष का उल्लेख न होने से वे प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत नहीं आतीं। ऐसी नायिकाओं में दशरथ- पत्नियां कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी, तथा मंदोदरी, तारा आदि हैं। दूसरे प्रकार की वे नायिकाएं हैं जिनके श्रृंगार का थोड़ा- बहुत संकेत प्राप्त है। इसके अंतर्गत पार्वती, सीता, भरत- माण्डवी, उर्मिला और श्रुतकीर्ति हैं। इनमें भी माण्डवी और श्रुतकीर्ति के अपने पतियों को देख कर मन ही मन प्रसन्न होने मात्र का उल्लेख है। इस रूप में ये मुग्धा स्वाधीन पतिका नायिका की श्रेणी में रखी जा सकती हैं। यह विवाह के समय का वर्णन है :

अनुरूप वर दुलहिनि परस्पर लखि सकुच हियँ हरषहीं।
सब मुदित सुंदरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं ।। ३९

उपर्युक्त उल्लेख में अंतर्निहित होने के अतिरिक्त उर्मिला के श्रृंगार का एक अन्य उल्लेख केवल गीतावली में प्राप्त है। यह निम्न- लिखित है :

जैसे ललित लखन लाल लोने।
तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन- कोने ।।
सुखमासार सिंगार सार करि कनक रचे हैं तिहि सोने।

रूप प्रेम- परमिति न परत कहि, बियकि रही मति मौने ।।
सोभा- सील- सनेह सोहावनो, समउ केलि गृह गौने ।
देखि तियनि के नयन सफल भये, तुलसी दास हू के हौने ।।[४०]

इस पद के आधार पर केवल इतना ही कहा जा सकता है कि उर्मिला स्वाधीन भर्तृका नायिका है । क्योंकि यह ठीक विवाह के बाद का उल्लेख है और उर्मिला अपने प्रिय को लजा कर नेत्रों के कोनों से देख रही है इसलिए वे मुग्धा भी है ।

पार्वती

राम काव्य में सीता जी के बाद पार्वती का ही स्थान आता है । शिव जी से इनका विवाह हुआ था । अतएव ये स्वकीया नायिका है । मानस और पार्वती- मंगल में इसका विस्तार से वर्णन है । किन्तु विवाह के बाद का वर्णन संक्षिप्त, सांकेतिक और केवल मानस में ही प्राप्त है । अतः पार्वती का जो कुछ रूप नीचे चित्रित किया जा रहा है वह मानस के आधार पर है ।

स्वाधीन भर्तृका पार्वती

पार्वती नायिका भेद की दृष्टि से स्वाधीन भर्तृका नायिका है । उनके पति शिव का उनके अतिरिक्त और किसी पर अनुराग नहीं है । वे सदा पार्वती को अपनी प्रिया मानते है और उनका खूब आदर सत्कार करते है, इसीलिए उन्हें स्वाधीन भर्तृका मानना चाहिए :

जानि प्रिया आदरू अति कीन्हा ।
बाम भाग आसनु हर दीन्हा ।।[४१]

मुग्धा पार्वती

विवाहोपरांत पार्वती की स्थिति मुग्धा नायिका की होनी चाहिए । इसका उल्लेख नहीं है किन्तु अनुमान किया जा सकता है

---

४०- गीतावली, बाल १०७

४१- मानस, बाल ०। १

### मध्या- प्रगल्भा पार्वती

पार्वती के इस रूप का भी स्पष्ट उल्लेख नहीं है । कवि ने इतना मात्र कहा है कि शिव- पार्वती विविध प्रकार के भोग- विलास करते हुए अपने गणों सहित कैलास पर रहने लगे । वे नित्य नये विहार करते थे । इस प्रकार बहुत समय बीत गया :

> करहिं विविध बिधि भोग बिलासा । गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।
> हर गिरजा बिहार नित नयऊ । एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ ।।[४२]

उपर्युक्त उल्लेख में "बिबिध बिधि भोग- बिलासा" और "बिहार नित नयऊ" से पार्वती के मध्या और प्रगल्भा होने का अनुमान लगाया जा सकता है । नायिका भेद के अन्य रूप पार्वती में उपलब्ध नहीं है ।

### सीता

राम- काव्य की नायिका सीता है और इस दृष्टि से सारे राम काव्य में इन्हीं का सबसे अधिक उल्लेख है, किन्तु जैसा पीछे कहा जा चुका है यह उल्लेख मात्रा में काफी कम है । इसी के आधार पर सीता के विभिन्न स्वरूपों का यहाँ वर्णन किया जाएगा ।

### मुग्धा सीता

सीता के सबसे मनोहारी रूपों में उनका मुग्धा रूप भी है । उनका विवाह हो गया है । पति उन्हें पहले ही पसन्द आ गए है । उन्हें इतने पास देख कर वे बार- बार सकुचाती है ।[४३] उन्हें देखने का वे एक सुन्दर मार्ग निकाल लेती है । वे कंकण, अथवा हाथ की मणि में राम चन्द्र की छबि को एक टक निहारती रहती है ।[४४] उनकी यह मुग्धता बनवास तक मैं नहीं छूटी । भारतीय कुल बधुओं की भाँति वे भी अपने पति का नाम लेने में शर्माती है ।

---

४२- वही १०२, ४

४३- मानस बा० ३२४ छं० ४ तथा बा० ३२६

४४- [illegible] बा० १७

ग्राम बधूटियों की जिज्ञासा की शांति वे बड़े ही सुंदर ढंग से संकेत कर सकती है।[४५] उनका यह मुग्धा- नायिका का रूप हिन्दी साहित्य में अनूठा है।

सीता की मध्या या प्रगल्भा नायिका के रूप में कहीं भी चर्चा नहीं है।

प्रोषित- भर्तृका

बनवास के लिए राम को कटिबद्ध देख कर इस समाचार को सुन कर जब तक सीता को पति के साथ जाने की स्वीकृति नहीं मिली है, तब तक के उनके रूप को प्रोषित- भर्तृका कहा जा सकता है। इसमें भविष्य प्रवास की आशंका है।[४६] प्रोषित- भर्तृका का दूसरा रूप उनके वियोग का है। इस समय यद्यपि वे ही प्रवास में है किन्तु वह भी तो प्रिय का ही प्रवास हो जाता है। सीता हरण से लेकर राम- मिलन तक की उनकी स्थिति इसी भेद के अंतर्गत आएंगी।

स्वाधीन भर्तृका सीता

सीता स्वाधीन भर्तृका है। उनके पति उन्हीं को प्यार करते है। उनकी इच्छानुसार राम उन्हें कथा- वार्ता सुनाते हैं। वन में अपने हाथों से उनका श्रृंगार करते है जिससे उपर्युक्त बात स्पष्ट है।[४७]

---

४५- वही अ० ११६, १-४, कवितावली अ० २१
४६- वही अ० ५७, ६७
४७- मानस-

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं।
कहहिं पुरातन कथा कहानी।सुनहिं लखनु सिय अति सुख मानी।।
- अ० १४०, १

तथा- एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए।
सीतहि पहिराए प्रभु सादर।बैठे फटिक सिला पर सुंदर।। अर०

तथा- निज कर राजीवनयन पल्लव- दल- रचित सयन,
प्यास परस्पर पियूष प्रेम- पान की।
सिय अंग लिखै धातुराग, सुमननी भूषन- विभाग,
तिलक करनि का कहौं कलानिधान की।
माधुरी- विलास- हास गावत जस तुलसिदास,
बसति [illegible] की।। गीता० अ० ४४

राम का स्नेह प्रतिदिन बढ़ता हुआ वे देखती है ।[४८]

इन शास्त्रीय रूपों के अतिरिक्त सीता के निम्नलिखित अन्य रूप भी उपलब्ध है :-

पतिव्रता सीता

सीता के पातिव्रत को व्यक्त करने की कोई आवश्यकता नहीं । वे इसकी आदर्श है । वनवास के समय राम के साथ जाने के लिए उनके समस्त तर्कादि उनके पातिव्रत की घोषणा करने वाले है ।[४९]

पति के विचारों को समझने वाली सीता

सीता प्रिय के हृदयगत भावों को जानने वाली और तदनुसार कार्य करने वाली है ।[५०]

पति सेविका सीता

सीता अपने श्रम की चिंता न कर अपनी सेवा से पति के सभी श्रमों को दूर करने को कहती है :

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु छिनु चरन सरोज निहारी ।
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं । मारग जनित सकल श्रम हरिहौं ।।
पाय पखारि बैठि तरु छाहीं । करिहउं बाउ मुदित मन माहीं ।
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें । कहं दुख समउ प्रानपति पेखें ।।
सम महि तृन तरु पल्लव डासी । पाय पलोटिहि सब निसि दासी ।[५१]

---

४८- राम संग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी ।
छिनु छिनु पिय बिधु बदन निहारी । प्रमुदित मनहुं चकोर कुमारी ।।
नाह नेहु नित बढ़त बिलोकी । हरषित रहति दिवस जिमि कोकी ।।मानस अ० १३९। १-१

४९- प्रान नाथ करुनायतन सुंदर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु सुरपुर नरक समान ।। मानस अ०६४ आदि सु० ८- ९

५०- पिय हिय की सिय जाननिहारी । मनि मुदरी मन मुदित उतारी
वही १०१, १

५१- मानस अ० ६६, १-३

रामाश्रयी शाखा में नायिक- स्वरूप के इस अध्ययन से स्पष्ट है कि इसमें परंपरागत नायिका भेद का अवलंबन नहीं लिया गया है। अधिकतर नायिकाओं की उदात्त भावनाओं के चित्र ही विस्तृत रूप से दिए गए हैं। श्रृंगारिक भेद जो थोड़े बहुत हैं वे सांकेतिक ही हैं।

६- कृष्णाश्रयी शाखा

कृष्णाश्रयी शाखा के अष्टछापी कवियों में प्राप्त राधा के स्वरूप में स्वकीयात्व को प्रस्तुत अध्ययन में स्वीकार नहीं किया गया है। इस पर विस्तार से विचार परकीया के अध्ययन में किया गया है। गौड़ीय संप्रदाय में स्वकीया राधा का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि उसमें उनका परकीयात्व स्वयमेव मान्य है। शेष रहे राधावल्लभ, हरिदासी संप्रदाय आदि। इन संप्रदायों में राधा- कृष्ण का स्वरूप दोनों के सर्व प्रचलित स्वरूप से पूर्णतः भिन्न है। इन संप्रदायों में एवं इनसे संबद्ध कवियों ने राधा कृष्ण को निरंतर केलि-रता चित्रित किया है। इस प्रकार इनमें नायिका- स्वरूप की विविधता का विकास नहीं हो सका है। अल्प मात्रा में नायिका के कुछ अन्य रूप प्राप्त हैं। इन विविध रूपों की संख्या इतनी कम है कि प्रस्तुत अध्ययन में विभिन्न कृष्ण- भक्ति संप्रदायों में राधा के स्वरूप को अलग- अलग न ले कर उनका अध्ययन एक स्थान पर ही किया जा रहा है। नायिका के ये रूप निम्नलिखित उप शीर्षकों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं :-

मुग्धा

इस शाखा में मुग्धा राधा के दर्शन बहुत ही कम होते हैं। सामान्यतः वह इतनी कामकला कोविदा एवं कामकेलि रता है कि उसका मुग्धत्व प्रकट नहीं होता है। एक आध ही स्थलों पर, विशेषतः प्रथम समागम के समय इसका यह स्वरूप परिलक्षित होता है। इस अवसर पर नायिका नतग्रीव है, बारबार घूंघट संभालती है तथा लज्जा के कारण प्रिय को अपने अंगों को छूने नहीं देती।[५२]

---

५२- नमित ग्रींव छवि सींव रही, घूंघट पटहि संभारि।
चरनन सेवत चतुरई, अति सलज्ज सुकुंवारि ।।
जो अंग चाहत छुयौ पिय, कुंवरि छुवनि नहि देत।
चितवनि मुसकनि रस भरी, हरि हरि प्राननि लेत ।। आदि
ध्रुवदास ब्यालीस
रस रतनावली लीला १-

यह मुग्धत्व अल्पकाल तक ही रहता है । बाद में नायिका नायक की आकुलता देख कर स्वयं सक्रिय हो उठती है ।[५३]

मध्या और प्रगल्भा

नायिका के मध्या और प्रगल्भा वाले चित्र इस काव्य में अधिक उपलब्ध है । इसके अंतर्गत नायिका का प्रिय के लिए स्वयं सक्रिय होना[५४], विविध प्रकार से रति- क्रिया संपादित करना आदि के वर्णन आते हैं । प्रगल्भा का एक सुंदर उदाहरण केलिमाल में उपलब्ध है जिसमें नायिका नायक से कहती है कि तुम मेरा मद पियो ।[५५] इसी प्रगल्भा के अंतर्गत ही राधा का रति दृढ़ा स्वरूप[५६],

---

५३- आतुर पिय रस में विवस, उर अधीर अकुलात ।
कबहू गहत है पगनि कौ, कबहू हा हा खात ।।
यह गति देखत लाड़िली, भई कृपाल तेहि काल ।
हारेही रस पाईये, उलटी प्रेम की चाल॥आदि ।। वही ८ - सम्पूर्ण

५४- वही तथा हित चौरासी ३० आदि

५५- आव लाल ऐसें मद पीजै, तेरी भगा मेरी अंगिया भरि ।
कुचकी सुराही नैनन कौ प्यालौ, दारु चोलीयाँ अँकौ भरि ।
अधरनि चुवाइलै सबरस तन कौ, न जान दै इत उत ढरि ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी,
की सुहबत कौ असर जहाँ आपुन हरि ।। केलिमाल ७४

५६- हरिवंश, स्फुट वाणी १०

रति कला कोविदा[५७], रतिरणधीरा [५८] आदि रूप भी आएँगे। इन रूपों का उल्लेख राधावल्लभ, हरिदास एवं निंबार्क आदि सभी संप्रदाय के भक्तों ने किया है। प्रस्तुत अध्ययन में अनेक उदाहरण दिये जाएँगे, अतः उन्हें यहाँ देने की आवश्यकता नहीं है।

**१७- नृत्य कला प्रवीण -**

राधा का नृत्यकला - प्रवीण रूप भी इस साहित्य में यथेष्ठ वर्णित हुआ है। राधा कृष्ण की अनेक संभोग लीलाएँ नृत्यादि से आपूरित हैं। इन लीलाओं के केन्द्र राधा और कृष्ण है। दोनों ही इस कला में विशारद हैं।[५९]

नायिका के अवस्थाभेदानुसार स्वाधीन भर्तृका, अभिसारिका एवं स्वयंदूतिका रूप इस साहित्य में उपलब्ध है। राधा स्वाधीन भर्तृका है और उनकी कोई प्रतिद्वंद्विनी नहीं है। कृष्ण सदा उनके प्रेम के आकांक्षी रहते हैं। उनका यह रूप इस साहित्य में सर्वत्र व्याप्त है। इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

**स्वाधीन भर्तृका -**

ऐसी जीय होत जो जीय सौं जीय मिलै,
तनसौं तन समाई ल्यौंतौदेखौं कहा हो प्यारी।
तोही सौंहि लग आँखिनि सौं आँखैं,
मिली रहैं जीवत को यहै लहा हो प्यारी ।।

---

५७- हरिवंश, हित चौरासी - आज मेरे कहे चलौ मृग नैनी।
गावत सरस जुवति मंडल में पिय सौं मिलै भलै पिक बैनी ।।
परम प्रवीन कोक विद्या में अभिनय निपुन लाग गति लैनी ।।
आदि १६

देखें ध्रुवदास, हरिव्यास आदि की वाणियाँ।

५८- कुँवर दोउ सुरतिसमर रनधीर
मध्यसेज बिहार बिहरत् रही सुधि न सरीर। महावाणी सेवासमय

५९- सुघंग नाचत नवल किशोरी। हित चौरासी ७८
तथा- नवल [illegible] र [illegible]र कुँवरिसौं, कहत बदन तन जोहि।
[illegible] सिखवहु मोहि। ब्यालीस लीला
ध्रुवदास सभा मंडल लीला-

मोकौं इती साज कहांरी प्यारी हौं अति दीन,
तुम वस भ्रुवछेप जाय न सहाहौ प्यारी ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कहत राखिलै,
बांह बल हौं वपुरा काम कहा हौ प्यारी ।।[60]

तथा

सनमुख रुख लिये ललन चलत नव बाल के ।
एक आज्ञहिं अनुकूल आनंद उर रहत ज्यौं चहत त्यौं प्रान-
प्रति पालके ।।
दृष्टि - रस- वृष्टि करि पुष्ट अंग सकल सुष्ट संतुष्ट पद-
परसि निज भालके ।
श्रीहरिप्रिया सहज सुख सुखी सेवत सुरत जुरत जिय मैं न
इतनी धनी लाल के ।।[61]

अभिसारिका-
----------

इस साहित्य में अभिसारिका का उल्लेख स्वल्प है । इन संप्रदायों में सामान्यतः राधा-कृष्ण के वियोग की स्थिति को नहीं माना गया है । अतः सामान्यतः अभिसार का अभाव होना चाहिए । किंतु विषय के आकर्षण के कारण तथा कुंज-कुंज में राधा- कृष्ण की लीलाओं के विस्तार तथा स्वल्प मात्रा में मान की स्वीकृति के माध्यम से नायिका के अभिसारिका रुप का चित्रण हुआ है। इसका एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है:-

चलहि किन मानिनि कुंज कुटीर ।
कै श्री हित हरिवंश परम कोमल चित चपल चली पिय तीर ।
सुनि भयभीत वज्र को पंजर सुरत सूर रणवीर ।।[62]

तथा-

प्यारी जू आगैं चलि आगे चलि,
गहवर वन भीतर जहां वोलै कोइलरी ।

---

६०- हरिदास केलिमाल ३५ देखें अन्यत्र भी
६१- महावाणी, [illegible] सुख ४ आदि
६२- हित च[illegible] ।७ देखें अन्यत्र भी ४०,४४ आदि

अति ही विचित्र फूल पत्रन की सिज्या रचि,

रुचिर सँवारी तहाँ तुँब सौइलरी ।

छिन छिन पल पल तेरी ये कहानि, तुव मग जोइलरी ।

श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कहत, छबीली काम रस क भीइलरी।[६३]

स्वयं दूतिका -

नायिका के स्वयंदूतिका रूप का उल्लेख बहुत कम मिलता है । यथार्थ में स्वकीया नायिका के लिए स्वयंदूतिका रूप स्वाभाविक नहीं है और इसीलिए कवियों ने इसका विस्तार नहीं किया । स्वामी हरिदास ने ही इसका एक आध उल्लेख किया है । अन्य कवियों में भी यह रूप प्राप्त हो सकता है पर यह महत्वपूर्ण नहीं है । इसका एक उद्धरण नीचे दिया जा रहा है:-

तेरी मग जोवत लाल बिहारी ।

तेरी समाधि अजहू नहीं छूटति, चाहत नाहिने नैक निहारी ।

औचक आप है करसौं मूँदे नैन अरवराइ उठे बिहारी ।

श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा ढूंढत, बन में पाई पीया दिहारी।।[६४]

नायिका के उपर्युक्त स्वरूपों से स्पष्ट है कि कृष्णाश्रयी शाखा में स्वकीया नायिका के विविध रूपों का विस्तार नहीं है । अधिकतर, नायिका स्वाधीन भर्तृका और प्रिय के साथ रस-केलि में निमग्न रहने वाली है ।

### (ख) परकीया

हिन्दी - भक्ति - काव्य में नायिका का परकीया स्वरूप ही मुख्य रूप से प्राप्त है । पिछले अध्यायों में हम परकीया की आध्यात्मिक और शास्त्रीय स्वीकृति की चर्चा कर आए हैं । इस स्वीकृति के होते हुए भी समाज ने परकीया नायिका और परकीया प्रेम को सदा हेय ही समझा । धर्म अथवा काव्यशास्त्र में इसकी मान्यता सामाजिक व्यवस्था को असंतुलित करने वाली है । अतः भक्ति-

६३- हरिदास- केलिमाल २६

संप्रदायों ने परकीया को मानकर भी नहीं माना । यह कार्य- उन्होंने दो प्रकार से किया है । एक तो मानसिक परकीया की कल्पना द्वारा और इसे भी उन्होंने केवल अधिकारी भक्तों तक ही सीमित रखा है । दूसरी विधि परकीया को स्वकीया में बदल कर है । इसके लिए गांधर्व - विवाह आदि की असफल कल्पना की गई है । इसकी चर्चा हम यथास्थान करेंगे ।

इतना सब करने पर भी परकीया के एक रूप से बचना सभी भक्तों के लिए असंभव रहा है । इससे बचने की कवियों ने कोशिश क भी नहीं की है । यह रूप " कन्यका- परकीया " का है । विवाह के पूर्व माता- पिता के अधीन कन्या का प्रेम जब किसी पुरुष से हो जाता है तब विवाह के पूर्व तक उस नायिका का स्वरूप " कन्यका परकीया " का ही माना जाएगा । इस रूप का वर्णन रामाश्रयी और प्रेमाश्रयी दोनों शाखाओं में प्राप्त है । कन्यका - परकीया का विवाह जब नायक से हो जाता है उस समय उसे स्वकीयात्व प्राप्त हो जाता है । कृष्णाश्रयी में ऐसी परकीया का अभाव है । वह या तो शुद्ध स्वकीया है अथवा शुद्ध परकीया है जिसका परकीयात्व कवियों ने रास के समय गांधर्व विवाह द्वारा दूर करने का प्रयत्न किया है और जिसमें वे असफल रहे हैं । प्रस्तुत खंड में विभिन्न भक्ति शाखाओं में प्राप्त परकीया के सभी रूपों का हम अध्ययन करेंगे ।

८- ज्ञानाश्रयी शाखा-

इस शाखा [illegible] परकीया का नितांत अभाव है । उसका कन्यका स्वरू[illegible] [illegible]हीं मिलता है । वह एक दिव्य पूर्ण स्वकीया रूप [illegible] विदग्धा [illegible]सामने आती है ।

९- प्रेमाश्रय[illegible]ा -

प्रेमाश्रयी शाखा में " कन्यका परकीया " का [illegible] उल्लेख है । [illegible]की सभी मुख्य नायिकाएं, पद्मावती, चित्रावली, कौलावती [illegible] प्रारंभ में कन्यका ही है । बाद में विवाह द्वारा [illegible] होता है । इनमें पद्मावती को छोड़

कर अन्य का विवाहोपरांत स्वरूप विकसित नहीं हुआ। अतएव हम कह सकते हैं कि प्रेमाश्रयी शाखा में परकीया नायिका की ही प्रधानता है।

प्रेमाश्रयी शाखा में प्राप्त " कन्यका परकीया " का शास्त्रीय वर्गीकरण कठिन है। परकीया के मुग्धा, मध्या और प्रौढ़ा भेद सामान्यतः नहीं किए जाते हैं यद्यपि नंददास ने अपनी रस मंजरी में इन्हें स्वीकार किया है। फिर भी परकीया के गुप्ता, लक्षिता आदि जो भेद हैं वे इस शाखा में उपलब्ध नहीं हैं, क्योंकि नायिका अपना प्रेम कभी छिपा कर नहीं रखती, वह तो उस प्रेम के लिए मर मिटने को तैयार रहती है। अतएव इस क्षेत्र में शास्त्रीय वर्गीकरण का आधार हमें छोड़ना पड़ेगा। हाँ नायिका के अवस्थानुसार भेद हमें इनमें अवश्य मिलेंगे। उनको स्वीकार करते हुए भी इस क्षेत्र में हम किसी वर्गीकरण का प्रयत्न न कर नायिका के व्यक्ति रूप का ही संकेत करेंगे।

## प्रेम पीड़िता नायिका -

यह नायिका का नायक के प्रति प्रेम होने की प्रथम स्थिति है। यह पूर्वराग के प्रारंभ से मेल खाने वाली स्थिति है। प्रिय के प्रत्यक्ष दर्शन, स्वप्नदर्शन, गुण श्रवण, चित्रदर्शन आदि से नायिका के हृदय में नायक के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है। और वह उससे पीड़ित रहती है। पद्मावती, चित्रावली, कौलावती और मधुमालती इसके अंतर्गत आएँगी। इनका उल्लेख हम पूर्वराग के प्रसंग में करेंगे। अतएव यहाँ उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं है।

## क्रिया विदग्धा नायिका-

यह परकीया नायिका का शास्त्रीय भेद है। इसमें नायिका अपने प्रिय से मिलने के अनेक यत्न करती है तथा नायक अपना प्रेम वचन अथवा क्रिया द्वारा व्यक्त करती है। ...ाश्रयी शाखा में लगभग सभी नायिकाएं कुछ न कुछ अंश में क्रिया विदग्धाएं हैं। वे न केवल प्रिय से मिलने का संदेश ही भेजती है

वरन् उसे प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार का जाल भी रचती है।[६६] वे उसे चोर बनवा कर पकड़ लेती हैं। कभी वे उसे प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार से दूतादि को भेजती हैं।[६७] इस प्रकार क्रियाविदग्धा नायिकाओं की इस शाखा में बहुलता है।

अभिसारिका-

प्रिय से मिलन के लिए नायिका बहाने से उसके पास जाती है। पद्मावती का यह रूप " बसंत खण्ड " में व्यक्त हुआ जब वह महादेव के मंदिर में प्रिय से मिलने को जाती है।[६८]

मुदिता -

कन्यका नायिका का संभोग मुदिता रूप केवल मधुमालती में ही प्राप्त है। प्रथम मिलन में मनोहर और मधुमालती विविध प्रकार से केलि विलास करते हैं। इसी प्रेम क्रीड़ा में ही नायिका का मुदिता रूप प्रकट है।[६९]

स्वाधीन भर्तृका

परकीया नायिका के स्वाधीन भर्तृका होने में संदेह किया जाता है किन्तु पति या भर्ता का अर्थ प्रणयी ही

---

६६- चित्रावली, परेवा आगमन खंड, पृ० १००-१०४. कौलावती खंड पृ० १९८

६७- वही पृ० ४९, ९७( परेवा आगमन खंड ),

६८- पद्मावत १८३-१९५

६९- मधुमालती पृ० ४१

कबहीं पेम घा(व) मारि अडावै, कबहीं सुधारस सींचि जिआवै
कबहीं पेम रस अनंद हुलासा, कबहीं दुनौ बिओग तरासा।
कबहीं नैन रूप फुलवारी, कबहुं जिउ जोबन बलिहारी।
कबहीं पेम महारस लेई, कबहीं जिउ नेवछावरि देई।
कबहीं लाज समुझि कै भावा, कबहीं रहस हुलास बधावा।।भारि

ही मान्य है ।[७०] इस अर्थ को लेने पर कन्यका परकीया नायिका भी स्वाधीन भर्तृका हो सकती है । इस रूप में कौलावती को छोड़ कर शेष सभी परकीया नायिकाएं स्वाधी भर्तृका है क्योंकि उनके प्रेमियों का प्रेम उनके प्रति एकनिष्ठ रहा है ।

विरहिणी नायिका -

कन्यका परकीया नायिका का विरहिणी रूप में अने स्थलों पर चित्रण है । रत्नसेन के प्रेम मे पद्मावती विरहिणी है और उसके संकट को सुनकर अपने प्राण देने को तत्पर है ।[७१] कुटीचर द्वारा सुजान से वियोग होने पर चित्रावली विरहिणी है [७२] तथा विरहिणी मधुमालती का भी उल्लेख है [७३] इस प्रकार इस साहित्य में नायिका का यह रूप भी लगभग सर्वत्र प्राप्त है ।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर हम कह सकते है कि प्रेमाश्रयी शाखा में कन्यका परकीया की बहुलता है तथा उसके विविध रूप प्राप्त है । ये सभी परकीयाएं बाद मे स्वकीया हो जाती है ।

१०- रामाश्रयी शाखा -

रामाश्रयी शाखा में सीता जी का विवाह के पूर्व का सभी प्रसंग कन्यका परकीया के अंतर्गत आएगा । उनके अवस्था भेद उपलब्ध नहीं है । सर्वत्र उनका श्रीराम के प्रति दृढ़ अनुराग और उनको प्राप्त करने की मनोकामना प्रकट होती है । यह मनोकामना भी अत्यन्त मर्यादित रूप में है ।[७४] राम पर यह प्रेम प्रकट न करने के कारण उन्हें प्रेमिका मात्र भी कहा जा सकता है । उनके इस स्वरूप में कोमलता, तन्मयता और उत्कंठा का मधुर मिश्रण है

---

७०- दे० हिन्दी साहित्य दर्पण- डा० सत्यव्रत (१९५७)पृ० ११

७१- पद्मावत २५६

७२- चित्रावली १९५-२९९

७३- मधुमालती पृ० ४६,९२ आदि

७४- गौरी पूजन प्रसंग, मानस

विवाह के बाद वे भी स्वकीयात्व प्राप्त कर लेती है।

११- कृष्णाश्रयी शाखा-

कृष्णाश्रयी शाखा में ही परकीया नायिका अपने शुद्ध रूप में प्राप्त है। " शुद्ध परकीया " वह है जिसका परकीयात्व स्पष्ट है। परकीया का एक अन्य रूप भी इसमें प्राप्त है जिसे " संकर परकीया " कह सकते हैं। यह है तो यथार्थ में परकीया किंतु भक्त कवियों ने नैतिकता के आग्रह से इसे स्वकीयात्व प्रदान करने का प्रयास किया है। वल्लभ संप्रदाय में नायिका का यही स्वरूप प्राप्त है। परकीया के विभिन्न रूपों का अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

१२- विद्यापति -

हिन्दी कवियों में परकीया प्रसंग को विस्तृत रूप से उठाने वाले विद्यापति हैं। उनकी नायिका राधा शुद्ध परकीया है। वे शास्त्रीय परिभाषा में " परोढ़ा " हैं। उनके इस रूप को कवि ने स्पष्ट चित्रित किया है। उनके पति का नाम विद्यापति की पदावलियों में प्राप्त नहीं है, किंतु उसकी ( पति की) स्थिति में संदेह नहीं है।

विद्यापति की राधा परस्त्री है जो कि दूती द्वारा कृष्ण को साध्य हो सकी है। परकीया होते हुए भी राधा में मुग्धत्व भी है। इसके अतिरिक्त उसके अनेक भेदों का विद्यापति ने चित्रण किया है। कहीं वह कुशल नागरी है जिसे कृष्ण के ग्रामत्व पर खेद है। कहीं लोक- लाज आदि सभी बंधनों को तोड़ कर वह कृष्ण को प्राप्त करने के लिए अभिसार करती है। जब उसकी नंद आदि उस पर शंका करती है तो वह सुरत गोपना रूप में व्यक्त होती है।

विद्यापति अपने सजीव चित्रण में बेजोड़ है। उनके काव्य की नायिका रक्त-मांस मय है। उसका यौवन पूर्ण वेग पर है, वह कामांध है। उसमें मांस की उष्णता तथा प्रेम की मादकता

राधा की सजीवता एवं काम की तीव्रता अन्यत्र दुर्लभ है । यही कारण है कि विद्यापति का काव्य बड़ी मात्रा में लौकिक प्रतीत होता है । राधा- कृष्ण के ब्रह्मत्व की अतिक्षीण झलक ही उनमें देखी जा सकती है ।

विद्यापति की नायिका के विभिन्न रूपों में कुछ प्रमुख के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :-

## नागरी राधा

कृष्णा दूती द्वारा नायिका के पास संदेश भेजते हैं । दूती नायिका से कृष्ण- मिलन के लिए कहती है । कृष्ण ग्रामीण है, गोप है । उनकी केलि तो गोप रमणियों के संग होती है । वह विलास की कला को क्या जाने ? नागरी को पाकर वह क्या विलास करेगा । यहाँ राधा को अपनी काम- कला- कुशलता का गर्व है :-

गाए चरावए गोकुल वास | साजनि बोलहु कान्हु सओं मेलि ।<br>
गोपक संगम कर परिहास | गोप वधू संओ जन्तिका केलि ।।<br>
अपनहु गोप गरूअ की काज | गायक वसले वोलिअ ~~असकर~~ गमार ।।<br>
गुपतहि बोलसि मोहि बड़ लाज | नागरहु नागर बोलिअ असार ।।

वस बथान- सालि दुह गाए ।<br>
तन्हि की विलसब नागरी पाए ।।[७५]

## खिन्ना- राधा

राधा कृष्ण के पास जाती है पर वह मूर्ख तो कुछ भी समझ नहीं पाता । विधाता ने राधा को छल लिया । ग्रामीण को काम-कला के अवसर पर नींद आती है । बेचारी राधा अत्यंत खिन्न है । उस ग्रामीण को वह काम-कला सिखला भी तो नहीं सकती । उसे तो पूर्व और पश्चिम का भी ज्ञान नहीं है । ग्रामीण के हाथ पड़ कर राधा की ऐसी दुर्दशा हुई है :-

---

७५- विद्यापति पा: ३५१

कुटिल विलोकै तंत नहि जान । मधुरह बचने देइ नहि कान ।।
मनसिज भंगी वचन मजे जेओ । हृदय बुझाए बुझाए नहि सेओ ।।
कि सखि करब कओन परकार । मिलल कन्त मोहि गोप कुमार ।।
कपट गमन हमे लाडलि बेरि । बाहुमूल दरसन हसि हेरि ।।
कुच- युग वसन सम्भरिकहु देल । तइअओ न मन तन्हिक वहरि भेल ।।
विमुख होइते आवे पर उपहास । तन्हिक सेंगे कला सहवास ।।
कि कए कि करब हमे भखइत जाए । कह दहु अरे सखि जिवन उपाए ।[७६]

तथा,

गुन अगुन सम कय मानए । भेद न जानए पहू ।
निअ चतुरिय कत सिखाउबि हमहु भेलिहु लहू ।।
साजनि हृदय कहओं तोहि ।
जगत भरल नागर अछए विहि छललिह मोहि ।
काम कलारस कत सिखाउबि पुव पछिम जान ।
रभस बेरा निन्दे बेआकुल किछु न ताहि गेआन ।।[७७]

मुग्धा- भयातुर राधा

राधा मुग्धा है । सुकोमल है, उसे रति से भय है । नाथ कामाकुल है । वहाँ पहुँचने पर वह भय से रोने लगती है, शय्या पर आरूढ़ भी नहीं होती :

अहे सखि अहे सखि लए जुनि जाहे । हम अति बालिका आकुल नाहे ।।

+ + + +

तेहि अवसर पहु जागल अंत । चीर सँभारलि जिउ भेल अंत ।।
नहिं नहिं करए नयन ढर नीर । काँच कमल भमरा झिकझोर ।।
जइसे जगमग नलनिक नीर । तइसे डगमग धनिक सरीर ।। आदि ।।[७८]

---

७६- वही पद ३५२
७७- वही पद ३५३
७८- वही पद १७९

तथा,

धनी वेयाकुलि कोमल कंत । कोन परबोधब सखि परजंत ।।
सखी परबोधि सेज जब देल । पिया हरसि उठि कर धए लेल ।।
नहिं नहिं करय नयन ढरु नोर । सूति रहलि धनि सेजक ओर ।।
भनइ विद्यापति है जुवराज । सभ सयाँ बड़ थिक आँखिक लाज ।।[७९]

राधा का यह भय प्रथम- समागम के कारण प्रतीत होता है । किन्तु धीरे- धीरे उसका भय छूटता है । उसकी सहमति प्रकट होती है । प्रथम समागम होने के कारण सखी नायक को कोमलता की शिक्षा देती है[८०], किन्तु कामातुर नायक प्रचंड रति करता है । सारी रात्रि रति समाप्त ही नहीं होती । नायक पर अनुनय विनय का प्रभाव नहीं पड़ता ।[८१] धीरे- धीरे बाला प्रीति की रीति समझती है ।

देखलि कमल मुखी कोमल देह । तिला एक लागि कत उपजल नेह ।।
नूतन मनसित गुरुतर लाज । वेकत पेम कत करय बेयाज ।।
खन परितेजय खन आवय पास । न मिलय मन भरि न होय उदास ।।
नयनक गोचर थिर नहिं होए । कर धरइत मुख धरु गोए ।।
भनहि विद्यापति रहो रस गाढ़ । अभिनव कामिनि ठकुति बुझाव ।।[८२]

वामा नयन नयन बह नोर । काँप कुरंगिनि केसरि कोर ।।
एके गह चिकुर दोसरे गह गीम । तेसरे चिबुक चउठे कुच- सीम ।।
निवि बन्ध फोरफ नहि अवकास । पानि पचम के बाढ़लि आस ।।
राधा माधव प्रथमक केलि । न पुरल काम मनोरथ केलि ।।
भनइ विद्यापति प्रथमक रीति । दिन दिन बाला बुझति पिरीति ।।[८३]

---

७९- वही पद २८०
८०- वही पद २९७
८१- वही पद २८८
८२- वही पद २९१
८३- वही पद २८९
८४- वही पद ३१४

अभिसारिका राधा

राधा- अभिसार का विद्यापति ने विस्तृत वर्णन किया है । अधिकतर यह अभिसार दूती द्वारा सम्पन्न हुआ है पर कभी- कभी वह स्वयं अकेली जाने की तैयारी कर लेती है । उसकी सखी उसे देख लेती है ।[८४] कभी- कभी उसके मार्ग में कठिनाई आ जाती है । वह गुरुजनों के सोने की प्रतीक्षा कर रही थी कि चन्द्रमा उग आया । वह क्रुद्ध हो उठती पर सखी समझाती है ।[८५] अनेक प्रकार से अभिसार होता है । दोनों निर्भय होकर रमण करते हैं । दूती चिंतित है । वह पर- स्त्री लाई है । वह प्रार्थना करती है कि इसे छोड़ दो पर संकेत स्थल पर आ जाने पर उसे कौन छोड़ता है :-

परक पेयसि आनलि चोरी । साति अँगिरलि आरति तोरी ।
तोहि नहीँ डर ओहि न लाज । चाहसि सगरी निसि समाज ।।
राख माधव राखह मोहि । तुरित घर पठावह ओहि ।
तोहे न मानह हमर बाध । पुनु दरसन होइति साध ।।
ओह औ भुगुधि जानि न जान । संसअ पलल पेम परान ।।
तोहहु नागर अति गमार । हठे कि होइह समुद पार ।।[८६]

तथा-

आवे न लइति आइति भोरि । परे परतख लखवि चोरि ।
बेरा एक जीव राख कन्हाइ । परक पेयसि देह पठाइ ।।
चुँवनि लेपि काजर धार । अधर निरसि जे तोरलह हार ।।
नखक खत कुच जुग लागु । से कइसे होइति गुरुजन आगु ।।
भन विद्यापति रस सिंगार । संकेत अइलि तेजए के पार ।।[८७]

मुदिता राधा -

प्रथम रति के आनन्द से नायिका प्रसन्न है । रति में प्राप्त नख- क्षतादि को वह बार- बार देखती है:-

---

८४- वही पद ३९४
८५- वही पद ३९३
८६- [illegible] १९९

कुच कोरी फल नख- खत रेह । नव ससि छन्दे अंकुरल नव रेह । ।
जिव जैंथ जनि निरधने निधि पाए । खने हेरए खने राख भ्रपाए । ।
नवि अभिसारिन प्रथमक सँग । पुलकित होए सुमरि रति - रँग ।।
गुरुजन परिजन नयन निवारि । हाथ रतन धरि बदन निहारि ।।
अवनत मुख कर पर जन देख । अधर दसन खत निरखि निरेख ।।[८८]

लक्षिता राधा-

एक बार बाँध टूटने पर नित्य अभिसार होने लगे । सखियों से छिपा कर वह जाने लगी । एक दिन सखियों ने उसके स्वरूप से जान लिया कि वह कान्ह से रति करके आ रही है । वे उससे पूछती हैं :-

उधसल केस पास लाजे गुपुत हास रजनि उजागरे मुख न उजला ।
नख पद सुन्दर पीन पयोधर कनक सँभु जनि केसु पूजला ।।
न न न न कर सखि परिनत ससि मुखि सकल चरिततोर बुझल बिसेखी
अलस गमन तोर वचन बोलसि भोर मदन मनोरथ मोहगता ।।
जृम्भसि पुन मुन जासि अरस तनु आतपे छुइलि मणाल लता ।।
बास पिन्धु विपरित तिलक तिरोहित नयन कजर जले अधर भरु ।
एत सब लछन सँग विचछन कपट रहत कतखन जे धरु ।
भनै कवि विद्यापति अरे वर यौवति मधु करे पावलि मालति फुलली ।
हासिनि देवपति देवसिंह नरपति गरुड़ नरायन सँगे भुलली ।।[८९]

सुरत गोपना राधा -

राधा की नंदें उससे इस अद्भुत वेश का कारण पूछती हैं । वह बहाना बनाती है :-

जाहि लगि गेलि हे ताहि कहां लइलि हे ता पति वैरि पितु कांही ।
अछलि हे दुख कहह अपन मुखे भूषन गय ओलह जाहां ।।
सुन्दरि, कि कए बुझा ओव करै । जन्हि का जनम होइन हो है गे
लिहि अइलि हे तन्हिका अन्ते

---

८८- वही पद ३०१
८९- वही पद ३

जाहि लागि गेलाहुँ से चलि आएल तैं मोहि धए लाई नुकाई ।
से चलि गेल ताहि लए चललाहु ते पथ भेल अने आई ।
शंकर - वाहन खेड़ि खेलाइ ते मेदिनि वाहन आगे ।
ये सब आछलि संगे से सब चलिल भंगे उबरि अएलाहूँ अछ भागे ।
जाहि दुइ खोज करइछहि सासुन्हि से मिलु अपना संगे ।
भनइ विद्यापति सुन बर जउविति गुपुत नेह रति - रंगे ।।[१०]

तथा-

कुसुम तोरए गेलाहुँ जाहाँ । भ्रमर अधर खंडल ताँहाँ ।।
ते चलि अयलाहुँ जमुना तीर । पवन हरल हृदय चीर ।।
ए सखि सरूप कहल तोहि । आनु किछु जनि बोलसि मोहि ।
हार मनोहर बेकत भेल । उजर उगर [illegible] गेल ।
तैं धसि मजुरे जोड़ल भाँप । नखर गड़ल हृदय काँप ।।
भने विद्यापति उचित भाग । वचन - पाटवे कपट लाग ।।[११]

क्रिया और वचन विद्ग्धा राधा-

राधा में अब मौग्ध्त्व नहीं रह गया है । वह विद्ग्ध हो गई है । उसके वचन और उसकी क्रियाएं उसकी इच्छा को स्पष्ट करती हैः-

की कान्ह निरखेह भौंह विभंग । धनु मोहि सौंपि गेल अपन अनंग ।।
कंचने कामें गढल कुचकुम्म । भगइते मनव देइते परिरंभ ।।
चतुर सखीजन सारथि लेह । आसेप मोहि वाल्कससि रेह ।।
राहु तरास चान्द सन्त्रों आनि । अधर सुधा मनमथे धरू जानि ।।
जिव जन्त्रों राखन्त्रों रहयों मुग्मेधि । पिवि जनु हलह लागति मोंग्-
चोरि ।।
कैतव करथि कलावति नारि । गुणगाहक पहु बुझथि विचारि ।।[१]

तथा-

तुअ गुन गौरव सील सोभाव । सेहे लए चढ़लिह तोहरी नाव ..

---

१०- वही पद २५४
११- [illegible] २ ।।[
१२- वही पद ३१ [illegible] ८, ४९

हनु न करिअ कान्ह कर मोहि पार । सब तह बड़ थिक पर -
उपकार ।।
भल मन्द जानि करिअ परिणाम । जस अपजस दुइ रह गए ठाम ।
हमे अबला कत कहल अनेक । आइति पड़ले बुझिअ विवेक ।।
आइलि सखि सबे साथ हमार । से सबे भेलि निकहि विधि पार ।
हमरा भेलि कान्हु तोहरे ओ आस । जे अंगिरिअ तो न होइअ
उदास ।।
तोहें पर नागर हमे पर नारि । कांप हृदय तुअ प्रकृति विचारि ।।
भनइ विद्यापति गावे । राजा सिवसिंह रूपनारायन रससकल से
पावे ।।[९३]

उपर्युक्त के अतिरिक्त उत्कंठिता, विश्रव्धा, खंडिता आदि
के रूप में भी नायिका का यथेष्ट चित्रण है । इनमें से कुछ के
उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :-

कलहान्तरिता राधा-

छलिहु पुरुव भोरे न जाएव पिआ मोरे ।
पानिक सुतलि धनि कलहई ।
खने एके जागलि रोअए लागलि,
पिआ गेल निज कर मुरली दइ ।।
दिने दिने तनु खेख दिवस वरिस लेख
सुन कान्ह तोर बिनु जैसनि रमनी ।।
परक वेदन दुख न बुझए मुरुख
पुरुख निरापन चपल मती ।।
रभस पललि बोल सत कए तन्हि लेल ।
कि करति अनाइति पललि जुवति ।। [९४]

उत्कंठिता राधाः-

आजे तिमिर दह दीस छहला । आजे दिघर भए दिवस बढ़ला ।।

---

९३- वही पद ४१ तथा ६८९, ७५९, ५९६, ५६५

९४- विद्यापति पद ४४३ पृ० ३०५

आजे अकथ भेल परिजन कथा । आरति न रहए उचित बेथा ।
ए सखि ए सखि फललि सुबेला । निभर आएल पिआ लोचन मेला ।।
विरह दगध मन कत दुर अओला । मागल मनोरथ कओने सखि अओला
कत खन धरब जाइते जिव राखि । आसा बाँध पड़ल मन माखि ।।
भनइ विद्यापति सुन सजनी । बालुम सुन भेल महथि रजनी ।।[९५]

प्रोषित पतिका राधा -

मोहि तेजि पिया मोर गेलाह विदेस ।
कौनि पर खेपब पारि बएस ।।
सेज भेल परिमल फुल भेल बास ।।
कतय भमर मोर परल उपास ।।
सुमरि सुमरि चित नहीं रहे थिर ।।
मदन दहन तन दगध सरीर ।।
मनहिं विद्यापति कवि जय राम ।।
विकरत नाह दैव भेल वाम ।।[९६]

खंडिता राधा-

मनसिज बाने मोर हरल गेआने । बोललह तोहे मोरि दोसरि पराने ।
बचनहु चुकलासि आवे की छड़ा । समुह निहारसि साहस बड़ा ।।
कि तोहि वोलिवौं कान्ह कि वोलिबअे तोही। बेरि बेरि कत परि-
पंचसि मोही ।।
मांगिले भासा तो लिले आसा ।। अब कके करसि तोय मुख परगासा ।।
लाजक अपगये चीन्हली जाती । पेम करह अनतए गेलि राती ।
खंडित जुवति कवि विद्यापति भाने । पेयखि बचने लजाएल कान्हे ।।
रूप नराएन एहु रस जाने । राए सिवसिंघ लखिमा देइ रमाने ।।[९]

विप्रलब्धा राधा -

जागल जामिक जन चउदिस गरज घन सास नहि तेजए मेहा रे ।।

---

९५- वही पद ५५९ पृ० ३७४

९६- वही पद ५३१ पृ० ३५८

९७- वही पद ११९ पृ० ८९

तइओ से चलल बुधिवले कउसल एत बड़ तोहर सिनेहा रे ।।
ए हरि तोहर धरेज जत से सब कहब कत धनि गेलि सून संकेता रे ।।
जदि न अएलाहे तोहे धनि से कहलि कोहे थोइआ गेलि मालति माला
रे ।।
सगरि रयन जागि तुअ बरसन लागि तरुतर तितलि वाला रे ।।
मनइ विद्यापति सुन वर जौवति नीन्द जमाइत संदेहा रे ।।[९८]

(विप्रलब्धा )

उपर्युक्त कुछ उदाहरणों से विदित हो गया होगा कि विद्यापति में परकीया के न केवल लगभग सभी रूप प्राप्त हैं किन्तु ऐसे स्वरूप भी हैं जिनको किसी एक वर्ग में पूर्णतः नहीं रखा जा सकता है । यथार्थ में विद्यापति में श्रृंगार उन्मुक्त होकर अपने प्राकृत रूप में इस प्रकार प्रवाहित हुआ है जिसकी समानता कोई अन्य काव्य नहीं कर सकता । हिन्दी कवियों में परकीया का पूर्ण विकास यदि किसी कवि में हुआ है तो वह केवल विद्यापति में । उनकी राधा मूर्ति मती रति है जिसको अपनी जवानी के वेकार हो जाने का भय है तथा जो अपने उस पति के लिए सब प्रकार का त्याग कर सकती है । कहीं कहीं तो उसमें केवल काम वासना मात्र के दर्शन होते हैं । पथिक के द्वारा ही वह इसकी शांति करना चाहती है ।[९९] किंतु ऐसे स्वरूपों में राधा का स्पष्ट उल्लेख नहीं है । राधा के उल्लेख वाले पदों में काम की उद्दामता अवश्य है किं प्रेम की एकनिष्ठा भी है । किंतु फिर भी सूर की राधा के समा विद्यापति की राधा प्रेम जगत में ऊंची नहीं उठ पाई है ।

---

९८- वही पद १७० पृ० २६०

९९- कमल मिलल दल मधुप चलल घर विहग गइल निज ठामे ।
अरे रे पथिक जन थिर रे करिअ मन बड़ पांतर पुर गामे ।।
ननदि रूसिए रहु परदेस बस पहु सासुहि न सुझ समाजे ।
निठुर समाज पुछार उदासीन आभीर कि कहब वेआजे ।।
चन्दन चारु चम्प घन चामर अगर कुंकुम घरवासे ।।
परिमल लोभे पथिक नित संचर तँह नहि बोलप उदासे ।।
विद्यापति मन पथिक वचन सुन चिते बुझि कर अवधाने ।
राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिमा देई रमाने ।।

## १३ सूरदास

सूरदास के काव्य में भी परकीया का उल्लेख है । यह परकीया का उल्लेख दो रूपों में है । राधा के संबंध में यह उल्लेख रास के पूर्व - प्रसंगों में ही सीमित है । उसके बाद राधा को स्वकीयात्व प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है जिसमें कवि सफल नहीं हो सका । परकीया का स्पष्ट उल्लेख अनेक गोपियों के संबंध में है । दोनों ही के संबंध में अध्ययन अलग अलग करना ही मिन्न समीचीन होगा ।

### राधा का परकीयात्व

परकीया के दो सर्व सम्मत भेद हैं ' परोढ़ा ' और कन्यका '। परोढ़ा विवाहित होती है और उसका पति होता है । राधा इस कोटि में नहीं आती है । कवि ने उसके किसी अन्य व्यक्ति से विवाह का उल्लेख नहीं किया है ।

' कन्यका ' परकीया के संबंध में दो स्थितियां संभव है। प्रथम, उसका विवाह अपने प्रेमी से न हो कर किसी अन्य व्यक्ति से हो जाए, और इस प्रकार वह ' कन्यका ' परकीया के स्थान पर ' परोढ़ा ' परकीया बन जाए । द्वितीय स्थिति में कन्यका परकीया का विवाह उसके प्रेमी या नायक से ही हो जाए और परकीयात्व से उसे स्वकीयात्व प्राप्त हो जाए । यदि राधा-कृष्ण के विवाह[१००] को स्वीकार किया जाए तो सूर दास में राधा का दूसरा ही स्वरूप प्राप्त है । इस रूप को संप्रदाय में अनन्यपूर्वा रूप कहा गया है । किन्तु इस विवाह को स्वीकार करने में ही कठिनाई है जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे । नायक-नायिका के विवाह के पूर्व के ऐसे पदों को पूर्व राग के अंतर्गत रखने का भी भ्रम आग्रह किया जाता है । लेखक इस विचार से भी सहमत नहीं है । इसका विस्तृत विवेचन नीचे किया जा रहा है । इस विचार के पूर्व हमें राधा-कृष्ण के प्रेम के विकास को देखना होगा ।

---

१०० जाकों व्यास बरनत रास ।
 है गंधर्व विवाह चित दै, सुनो विविध विलास।। सूरसागर १६८९
तथा : छाए जु फूलनि कुंज-मंडप, पुलिन में वेदी रची।।
 बैठे जुस्यामा स्यामा बर, त्रैलोक की सोभा सची ।।
 ता परि पानि ग्रहन विधि कीन्ही ।
 तब मंडप भ्रमि भांवरि दीन्हीं ।।
 श्री लाल गिरिधर नवल दूलह, दुलहिनि श्री राधिका।। सूरसागर १६९०

## राधा-कृष्ण -प्रेम का विकास

राधा कृष्ण-प्रेम का विकास कवि ने अत्यंत स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक ढंग से किया है। हरि ब्रज- खोरी में खेलने निकले हैं और उन्हें वहाँ अचानक ही सुन्दर राधा दिखलाई पड़ जाती हैं। दोनों के नेत्र मिल जाते हैं और उनमें ठगोरी पड़ जाती है।[१०१] स्याम राधा से उसका परिचय पूछते हैं। "तुम कभी ब्रज की खोरी में दिखलाई नहीं पड़ी।" राधा भी खूब उत्तर देती हैं। " कानों से सुनती थी कि नंद का पुत्र माखन-चोरी करता रहता है", मानों कह रही हों कि आज उसी चोर को देख भी लिया। किंतु रसिक शिरोमणि कृष्ण ने ऐसी बात बनाई कि फिर दोनों में खेल होने लगा।[१०२] यहाँ तक बाल-स्नेह और मित्रता का स्पष्ट रूप है। किंतु अगले पद से ही कैशोर-प्रेम का विकास होने लगता है। इस परिवर्तन के बीच कितना समय बीत चुका, इसका उल्लेख नहीं। अब नेत्रों से बातें होती हैं, गुह्य प्रीत प्रकट करते हैं।[१०३] मिलने का बहाना बतलाते हैं। दोनों अपनी प्रीति को छिपा कर रखते हैं।[१०४] राधा दूसरे दिन बहाना बना कर

---

१०१ सूर १२९०

१०२ सूर १२९१

१०३ नैन-नैन कीन्ही सब बातैं। गुह्य प्रीति प्रगटान्यौ ।।-सूर १२९२

१०४ सैननि नागरी समुझाई।
खरिक अबहु दोहनी लै, यहै मिसु छल लाई ।।
गुप्त प्रीति न प्रगट कीन्हीं, हृदय दुहुनि छिपाई।
सूर प्रभु के वचन सुनि-सुनि, रही कुंवरि लजाई ।। वही १७९४

नंद की खरिक में जाती हैं। नंद कृष्ण को सौंप कर राधा से रखवाली करने को कहते हैं।[१०५] कृष्ण राधा की नीवी पकड़ते तथा कुच पर हाथ रखते हैं कि यशोदा आ जाती हैं। कृष्ण अपने कृत्य के काम-स्वरूप से पूर्णतः परिचित हैं। तत्क्षण वे गेंद खेलने का बहाना करते हैं। यशोदा उसे सत्य समझती हैं।[१०६] कृष्ण राधा को लेकर वृंदावन जाते हैं। कहते हैं कि अपने बीच कुछ भी अंतर नहीं रख सकूंगा। तुम्हारा तन-ताप एवं कामाग्नि शांत करूंगा। राधा भी काम से पीड़ित हैं। लज्जा किंतु स्वीकृति से मुख झुका लेती हैं। श्याम गगन में मेघ घटाएं छवा[१०७] देते हैं। आंधी आती है। नंद राधा से कृष्ण को संभालने के लिए कहते हैं। दोनों घोर वन में जाकर कामोन्मत्त हो कर विहार करते हैं। दोनों का प्रेम नवीन है। स्थान नवीन है, आभरण नवीन हैं। नव-यौवन से मस्त दोनों आनन्द लेते हैं।[१०८] काम की ज्वाला शांत होती है पर प्रेमोन्मत्तता के कारण दोनों एक दूसरे को छोड़ते नहीं हैं।[१०९] अपने बीच में हार का अंतर भी उन्हें बाधक है तथा मरकत मणि जिस प्रकार स्वर्ण में जड़ी हो, उसी प्रकार राधा-कृष्ण लिपटे हैं।[११०] राधा हठ कर मान करती हैं। कृष्ण पैर पकड़ते और मान-मोचन हो कर पुनः रति प्रारंभ होती है। कृष्ण रुचि के अंत होने पर रीझ कर संतुष्ट होते हैं। प्यारी को हर्ष से कंठ से लगाते हैं। राधा मुस्करा देती है। चुंबनादि के बाद रति समाप्त होती है और कृष्ण घर जाते हैं।[१११]

---

१०५ वही/-१२९९ (१२९६)

१०६ नीवी ललित गही जदुराई।
जबहिं सरोज धर्‌यौ श्री फल पर, जब जसुमति गई आइ ।।
ततछन रुदन करत मन मोहन, मन मैं बुधि उपजाई ।। आदि। वही १३००

१०७ बातनि लई राधा लाइ।
चलहु जैये विपिन वृंदा, कहत स्याम बुझाई ।।
तुव परस तन-ताप मेटौं, काम द्वंद गंवाइ।
चतुर नागरि हंसि रही सुनि, चंद-वदन नवाई।। आदि वही १३०१

१०८ वही १३०२-१३०३

१०९ ,, १३०४

११० ,, १३०५

अब राधा का कृष्ण के घर नित्य आगमन होने लगा। यशोदा से परिचय भी हो गया। यशोदा ने राधा से कृष्ण के साथ खेलने के लिए आते रहने को कहा। राधा आने लगी। राधा को देखते ही कृष्ण अपनी सुध-बुध भूल जाते हैं। गाय की जगह वृषभ को दुहने बैठ जाते। खूब हंसी होती।[११२] हास-परिहास परिहास बढ़ने लगा। दूध की धार कभी-कभी राधा पर भी कृष्ण मार देते।[११३] राधा बनावटी क्रोध करतीं। राधा अपना वियोग दुःख सखियों से प्रकट करती हैं।[११४] राधा बहाना करतीं। सखियां गारुड़ी कृष्ण को लाने का प्रबंध करती हैं। श्याम विष उतार देते हैं।[११५]

राधा-संबंधित उपर्युक्त पदों को डा० दीनदयालु गुप्त ने परकीया के अंतर्गत नहीं लिया है। उनके अनुसार "कृष्ण से माधुर्य भाव का प्रेम करने वाली दो प्रकार की गोपियां थीं। एक वे कुमारिकाएं थीं, जिन्होंने प्रारंभ से ही कृष्ण की रूप माधुरी और गुणों पर मुग्ध होकर उन्हें अपना पति माना था और उनमें से कुछ का उनसे वरण भी हो गया था। दूसरी, वे विवाहिता गोपियां थीं, जिन्हो पर-पुरुष कृष्ण से परकीय रूप में प्रेम किया था। अष्ट छाप भक्तों ने, जैसा कि अभी कहा गया है, बहुधा गोपियों को स्वकीया ही चित्रित किया है। यद्यपि कुछ गोपियों का उनसे विवाह नहीं हुआ था फिर भी वे लोक-लाज, कुल-कानि छोड़ कर कृष्ण से ही प्रेम करती थीं। परकीय -भाव वाले पद इनकी रचनाओं में बहुत कम हैं। जहां गोपियों के मान और खंडिता के भाव उन्होंने प्रकट किये हैं, वहां उन्होंने गोपियों को अनन्यपूर्वा अथवा स्वकीया ही रखा है।

---

११२ वही १३३३, १३३५, १३३८

११३ ,, १३५०, १३५१, १३५३ आदि

११४ ,, १३६०

११५ ,, १३६१- १३८१

इन स्थलों में उनका उपालंभ- सा तिया भाव से हुआ है ।"[११६]
आगे चलकर "पूर्वराग की अवस्था में आसक्त भक्त की दशा" प्रकरण में वे पुन: कहते हैं कि " पीछे कहा गया है कि अष्ट छाप काव्य में पूर्वराग अवस्था की आसक्ति का जो रूप हमें मिलता है वह अनन्य पूर्वा कुमारी गोपिकाओं का है , परकीयाओं का नहीं है ।"[११७]

उपर्युक्त मतानुसार राधा परकीया नहीं है । प्रस्तुत लेखक उपर्युक्त मत से सहमत नहीं है । यह निम्नलिखित तर्कों के आधार पर हुआ है ।

मू पूर्व राग का वर्णन श्रृंगार रस प्रकरण में करते हुए साहित्यदर्पण कार कहते हैं - विप्रलंभ और संभोग ये दो श्रृंगार रस के भेद हैं । जहां अनुराग तो अति उत्कट है, परंतु प्रिय-समागम नहीं होता उसे विप्रलंभ कहते हैं । वह विप्रलंभ १ पूर्वराग, २ मान, ३ प्रवास और ४ करुण, इन भेदों से चार प्रकार का होता है । सौन्दर्यादि गुणों के श्रवण अथवा दर्शन से परस्पर अनुरक्त नायक ह और नायिका की, समागम से पहले की दशा का नाम " पूर्वराग " है ।[११८] उज्ज्वल नील मणि में रूप गोस्वामी भी उपर्युक्त मत से सहमत हैं । उन्होंने विप्रलंभ के भेदों में करुण को स्वीकार न करउसके स्थान पर " प्रेम- वैचित्य " को स्वीकार किया है किंतु इस एक बात में दोनों एक मत हैं कि समागम के पूर्व की दशा का नाम पूर्वराग है -

> रतिर्या संगमात्पूर्वं दर्शन श्रवणादिजा ।
> तयोरुन्मीलति प्राशै: पूर्वराग: स उच्यते।। उज्ज्वलनील मणि

इस प्रकार पूर्वराग के दो लक्षण हुए :

(१) यह विप्रलंभ का अंग है ।

(२) समागम के पूर्व की वियोगावस्था को पूर्वराग कहते हैं अतएव समागम के बाद पूर्वराग की स्थिति नहीं रहती ।

---

११६ अष्ट छाप- और वल्लभ संप्रदाय, भाग २ पृ ६२५ - ६२६
११७ वहीं पृ ६२६
११८ साहित्य दर्पण ३।१८६-१८८

यदि हम नायिका -भेद प्रकरण को देखें तो दशरूपक में धनंजय लिखते हैं:-

अन्यस्त्री कन्यकोढा च नान्योढाऽगिरसेक्वचित्
कन्यानुरागमिच्छात: कुर्यादंगांगिसंश्रयम्।। २। २०

रस मंजरी में भानुदत्त लिखते हैं :-

परकीया विभजेत
साद्विविधा परोढ़ा कन्यकाच ।- पृ ४२

साहित्यदर्पण में विश्वनाथ लिखते हैं :

परकीया द्विधा प्रोक्ता परोढ़ा कन्यका तथा ।
यात्रादिनिरता न्योढा कुल्टा गलित त्र्या ।। ३।६६

तथा

उज्ज्वल नीलमणि में रूप गोस्वामी लिखते हैं

कन्यकाश्च परोढाश्च परकीया द्विधामता: ।

एवं अनूढ़ा: कन्यका: प्रोक्ता : सलज्जा: पितृ पालिता: ।
सखी के लिए विसुब्धा: प्रायोमुग्धा गुणान्विता: ।।
हरि वल्लभा १८ और २३

इन उद्धरणों से परकीया नायिका के निम्नलिखित लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं :-

(क) परकीया नायक-नायिका भेद में से नायिका का एक भेद है ।

(ख) इसके कन्यका और परोढा दो भेद हैं ।

(ग) कन्यका परकीया की स्थिति में समागमादि से कोई अंतर नहीं पड़ता ।

उपर्युक्त विश्लेषण से पूर्वराग और परकीया का अंतर स्पष्ट हो जाता है । स्वकीया, परकीया और सामान्या नायिका के भेद हैं और समस्त नायिकाएं इनके अंतर्गत आनी चाहिए । इस प्रकार राधा या तो स्वकीया हैं, अथवा परकीया हैं अथवा सामान्य विवाह के पूर्व राधा स्वकीया हो नहीं सकतीं और उनका सामान्य होने का प्रश्न ही नहीं उठता । अतएव उन्हें परकीया और उसके

अंतर्गत "कन्यका" होना चाहिए । यदि यह मान भी लें कि उनका बाद में कृष्ण से विवाह हो जाता है, तो भी विवाह के पूर्व वे परकीया ही मानी जाएंगी । विवाह के बाद उनका यह परकीयात्व स्वकीयात्व में बदल जाएगा। यह उसी प्रकार है, जिस प्रकार दो स्त्री, पुरुष बिना विवाह के यदि पति-पत्नी रूप में रहें तो उनका वैधानिक दांपत्य संबंध नहीं है किंतु यदि बाद में वे विवाह करने में समर्थ हो सके तो उनका संबंध सचमुच पति-पत्नी का हो जाएगा । यथार्थ में नायिका का स्वकीयादि भेद सामाजिक तत्त्व पर ही आधारित है और विवाह के पूर्व नायक से प्रेम करने वाली प्रत्येक नायिका परकीया ही गिनी जाएगी । परकीया के लक्षण में उसका किसी अन्य के वश होना आवश्यक है । यह अन्य माता-पिता-भाई आदि हो सकते हैं । राधा के संबंध में भी यही परवशता स्पष्ट है ।[११९] लोक-लज्जा का भय भी इसी परकीयात्व की पुष्टि करता है ।

रही पूर्वराग की बात, तो यह नायिकाओं का भेद नहीं है । यह तो नायिका की स्थिति का द्योतक है । हृदय में प्रेम प्रस्फुटित हो गया है किंतु समागम नहीं हो पा रहा है । इस अवसर के विरह को पूर्वराग कहते हैं । यह परकीया में ही हो सकता है, स्वकीया में नहीं । इस रूप में पूर्वराग की स्थिति की सभी नायिकाओं को परकीया के अंतर्गत लेना चाहिए । उनमें से जो स्वकीयात्व प्राप्त कर लेती हैं उनका परकीयात्व अस्थाई और संकर माना जा सकता है । जो स्वकीयात्व नहीं प्राप्त कर सकतीं वे शुद्ध परकीया ही रहती हैं । क्योंकि प्रस्तुत अध्ययन में राधा-कृष्ण विवाह को मान्यता नहीं दी गई है अतएव उन्हें शुद्ध परकीया के अंतर्गत रखा गया है ।

इसके अतिरिक्त राधा-कृष्ण में तो पूर्वराग की स्थिति भी अधिक देर नहीं रहती । राधा का कृष्ण से नित्य-मिलन होताहै । इतना ही नहीं उनका संभोग भी हो चुका है ।[१२०] ऐसी स्थिति में ये पद पूर्वरागान्तरगत नहीं रखे जा सकते । उन्हें परकीया के अंतर्गत ही लेना होगा ।

---

११९ सूर २१[illegible], २३२६ आदि

१२० वही १[illegible] [illegible] दि

परकीया के गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता, मुदिता, अनुशयाना और कुलटा इन छः उपभेदों में यहां राधा के चार स्वरूप प्रकट हुए हैं।

जिस समय नंद राधा को कृष्ण सौंपते हैं उस समय वह वाग्विदग्धा के रूप में सम्मुख आती है :

नंद बबा की बात सुनौ हरि।
मोहिं छांड़ि जौ कहूं जाउगे, ल्याउंगी तुमकौ धरि।।
भली भई तुम्हैं सौंपि गए मोहिं, जान न दैहौं तुमकौं।
बांह तुम्हारी नैकु न छाड़ौं, महर खीफिहैं हमकौं।।
मेरी बांह छांड़ि दे राधा, करत उपरफट बातैं।
सूर स्याम नागर, नागरि सौं, करत प्रेम की बातैं।। सूर १२६६

तथा सुरत के अवसर पर उनका क्रिया विदग्धारूप प्रकट होता है :

नवल गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे।
अंतर बन- बिहार दोउ क्रीड़त, आपु आपु अनुरागे।।
सोभित सिथिल बसन मन मोहन, सुखवत स्रम के पागे।
मानौं बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि प्रजारन लागे।।
कबहुंक बैठि अंस भुज धरिकै, पीक कपोलनि पागे।
अति रस-रासि लुटावत लूटत, लालचि लाल सभागे।।
नहिं छूटति रति- रुचिर भामिनी, वा रस मैं दोउ पागे।
मनहुं सूर कल्पद्रुम की सिधि, लै उतरी फल आगे।। सूर १३०४

तथा

उतारत हैं कंठिनि तैं हार
हरि हिय मिलत होत है अंतर, यह मन कियौ विचार।।
भुजा वाम पर कर-छबि लागति उपमा अंत न पार।
मनहुं कमल-दल नाल मध्य तैं, उयौ अद्भुत आकार।।
चुंबत अंग परस्पर जुग जुग, चंद करत हित-चार।
दसननि वसन चांपि सुचतुर अति, करत रंग विस्तार।।
गुन-सागर अरु रस-सागर मिलि, मानव सुख व्यवहार।
सूर स्याम स्यामा नव रस रमि, रीझे नंद कुमार।। सूर १३

नवल किसोर नवल नागरिया ।

अपनी भुजा स्याम-भुज ऊपर, स्याम-भुजा अपनैं उरधरिया ।।
क्रीड़ा करत तमाल -तरुन -तर स्यामा स्याम उमंगि रस भरिया ।
यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया ।।
उपमा काहि देउं, को लायक, मन्मथ कोटि वारनै करिया ।
सूरदास बलि-बलि जोरी पर, नंद कुंवर वृषभानु- कुंवरिया ।। १३०६

मुदिता का स्वरूप उपर्युक्त में भी प्रकट है । पर साथ ही साथ निम्नलिखित भी इसका उदाहरण है :

नयौ नेह, नयौ गेह, नयौ रस, नवल कुंवरि वृषभानु-
किसोरी ।
नयौ पितांवर, नई चूनरी, नई-नई बूंदनिभीजतिगोरी ।।
नये कुंज, अति पुंज नये प्रभु, सुभग जमुन-जल पवन हिलोरी
सूरदास प्रभु नव रस विलसत नवल राधिका जोवन-भोरी ।
सूर १३०३

सुरत गोपना के रूप में राधा का स्वरूप उस स्थान पर ही आता है जब वह अपने प्रथम समागम के उपरांत कृष्ण का पीतांवर पहन कर घर चली जाती हैं । पीतांवर को तो वह छिपा कर रखती हैं किंतु प्रथम समागम के हर्ष- और भय के कारण उसकी वाणी अटपटी हो गई है । मां के पूछने पर वह बतलाती है कि एक ग्वालिन को सांप ने काट खाया था । एक २. म बालक ने उसे अच्छा कर दिया । डर के कारण तभी से मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता । मां को अपनी पुत्री की चतुरता का क्या पता ?

सुंदरि गई गृह समुहाइ ।

दोहनी कर दूध लीन्हें, जननि टेरी बुलाइ ।।
प्रेम पीत निचोल हरि को, कहूं घरयौ छिपाइ ।
और की और कहति कछु, मातुमनहिं डराइ ।।
कुंवरि कौं कहुं दीठि लागी, निरखि कै पछिताइ
सूर तब वृषभानु- घरनी, राधिका उर लाइ ।।

तथा

जननी कहति कहा भयौ प्यारी ।

अबहीं खरिक गई तू नीकें आवत ही भई कौन बिथा री ।।
एक बिटिनियां संग मेरे ही, कारें खाई ताहि तहां री ।।
मो देखत वह परी धरनि गिरि, मैं डरपी अपनैंजिय भारी ।।
स्याम बरन इक ढोटा आयौ, यह नहिं जानत रहत कहां री ।
कहत सुनत्यौं नंद कौ यह बारौ, कछु पढ़ि कै तुरतहिं उहि
झारी ।।

मेरौ मन भरि गयौ त्रास तैं, अब नीकौं मोहिं लागत नारी ।
सूरदास अति चतुर राधिका, यह कहि समुझाई महतारी ।।
१३१५

राधा का प्रेम इस अवसर पर नहीं लक्षित होता है । दूसरी बार जब वह कृष्ण से गाय दुहा कर लौटती हैं तो सखी पूछती है" और अहिर सब कहां तुम्हारे, हरि सौं धेनु दुहाई ? " अपने प्रेम को खुलते देख राधा चकित हो जाती है । भय से मुरझा कर वह भूमि पर गिर पड़ती है । सखियों से कहती कि मुझे " कारें " ने खाया है । किंतु सखियां इतनी मूर्ख तो हैं नहीं । वे तुरंत उत्तर देती है कि"यह कारो सुत नंद महर को " है । अब अधिक छिपाने से क्या लाभ और राधा अपना प्रेम खोल देती हैं । सखियां " गारुड़ी लीला " द्वारा कृष्ण से राधा की भेंट करा देती हैं :

सिर दोहनी चली लै प्यारी ।

फिरि चितवत हरि हँसिनिरखि मुख, मोहन मोहनि डारी ।।
व्याकुल भई, गई सखियनि लौं व्रज कौ घाए कन्हाई कन्हाई ।
और अहिर सब कहां तुम्हारे, हरि सौं धेनु दुहाई ?
यह सुनि कै चकित भई प्यारी, घरनि परी मुरझाइ ।।
सूरदास सब सखियन उर भरि, लीनी कुंवरि उठाइ ।।

तथा

क्यौं री कुंवरि गिरी मुरझाई ?
[illegible] कही सखियनि आगैं, मौकौं कारैं खाई ।
[illegible]ं, धरहीं तन समुझा[illegible]

यह कारौ सुत नंद महर कौ, सब हम फूंक लगाई ।
सूर सखिन मुख सुनि यह बानी, तब यह बात सुनाई ।। सू१३५६

मौहि लई नैननि की सैन ।
श्रवन सुनत सुधि-बुधि सब बिसरी, हौं लुबधी मौहन-मुख-बैन ।।
आवत हुते कुमार सखि तैं तब अनुमान कियौ सखि मैन ।
निरखत अंग अधिक रुचि उपजी, नख-सिख सुंदरता कौ ऐन ।।
मृदु मुसुक्यानि हरयौ मन कौ मनि, तब तै तिल न रहति चित चैन ।
सूर स्याम यह बचन सुनायौ, मेरी धेनु कही दुहि दैन ।। सू०१३६७

कुल-कानि का भय

राधा को बरसाना छोड़कर ब्रज में गाय दुहाने आते देखकर ही सखी आश्चर्य चकित हो गई थीं । सखी से अपने प्रेम की चर्चा करते हुए राधा के नेत्र कुल की लज्जा छोड़कर कृष्ण के मुख की ओर बार-बार देखते हैं । (सूर: १३४७-१३४८)

राधा का विवाह प्रसंग

भागवत में राधा-कृष्ण के विवाह की बिलकुल चर्चा नहीं है । यों तो उसमें राधा का स्पष्ट उल्लेख ही नहीं है, किंतु यदि हम रास की समस्त गोपियों में उसे भी मान लें, तो भी रास को विवाह-प्रकरण में बदलने का वहां प्रयत्न नहीं है । चूंकि अष्टछाप संप्रदाय में परकीया उस रूप में (ऊढ़ा) स्वीकृत नहीं है जैसा कि चैतन्य संप्रदाय में है, इसलिए सूर ने रास के प्रसंग को श्रीकृष्ण विवाह प्रसंग में परिवर्तित कर दिया है ।[१२१] उन्होंने राधा-कृष्ण के पति-पत्नी होने का कई बार उल्लेख किया है ।[१२२] इस अवसर पर राधा-कृष्ण का गांधर्व-विवाह हुआ तथा व्याह की समस्त रीतियां भी प्रयुक्त हुई जैसे 'कंकण-छोरन' आदि ।[१२३]

---

१२१- सूरसागर १६८६
१२२- वही १६६०
१२३- वही १६६१, १६६४ आदि

यहाँ पर यह उचित होगा यदि हम गंधर्व-विवाह के लक्षण पर कुछ विचार कर लें। मनु-स्मृति आदि धार्मिक ग्रन्थों को यदि हम छोड़ भी दें तो काम मात्र से संबंधित कामसूत्र में न केवल इसका उल्लेख मात्र है वरन् इसके संबंध में कुछ महत्वपूर्ण बातें भी हैं। वात्स्यायन का स्वयं प्रयत्न करना--नायक २९वें प्रकरण के 'आभ्यन्तरोपचार' में कहते हैं: हाँ यदि उसको (नायिका) निश्चित हो जाय तब रतिक्रीड़ा करे और इस बात को संबंधियों में प्रगट कर दे कि उसने अमुक पुरूष के साथ गान्धर्व विधिना विवाह कर लिया है।[१२४] आगे चल कर विवाह योग प्रकरण में गंधर्व विवाह की पुन: चर्चा करते हुए कहते हैं कि इस प्रकार विवाह संस्कार हो जाने के बाद उसके माता-पिता को सूचना दें। विवाहोपरांत उसके साथ संभोग करके भार्यात्वेन उसे गृहण करे तथा अपने संबंधियों में इस बात की सूचना कह दे। लड़कों के संबंधियों में भी इस बात का प्रचार कर दे ताकि जब वे ऐसा सुनेंगे, तो दूसरे के साथ उस लड़की का विवाह नहीं कर सकेंगे और विवश होकर उनको उसी नायक के साथ उसका विवाह करना पड़ेगा। विवाहोपरांत-प्रेम व्यवहारों द्वारा लड़की के माता-पिता तथा अन्य संबंधियों को प्रसन्न करने का प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार गान्धर्व विधि से उसे गृहण करे।[१२५]

गान्धर्व विवाह का लक्षण

आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्व: समयान्मिथ:
राक्षसो युद्धहरणात्पैशाच: कन्यका छलात् ।।
याज्ञयवल्क स्मृति विवाह प्रकरण ६१

पारशर गृह्यसूत्र में इस लक्षण पर गदाधर भाष्य निम्नलिखित है :

गांधर्वादिष्वपि पति भावायपश्चाद्धोमादि सप्तपदी पर्यन्तं कार्यम् ।

(गांधर्व आदि विवाहों में प्रति भाव लाने के लिए --

---

१२४- वात्स्यायन कामसूत्र पृ १०३
१२५- वही पृ १०५-१०६

में होमादि सप्तपदी पर्यंत करना चाहिए ।)

यदि उपर्युक्त क्रियाएं नहीं होतीं तो कन्या (जात योनि अवस्थे) मानी जाएगी और उसका विवाह किया जा सकता है :-

गान्धर्वासुर पैशाचा विवाहो राक्षसश्च यः ।
पूर्वं परिग्रहस्तेषु पश्चाद्धोमो विधीयते ।।
इति परिशिष्टात् । होमाद्य भावे
वरान्तराय देया

( होमादि कार्यों के अभाव अभाव में कन्या दूसरे वर को दी जा सकती है ।)

पारस्कर गृह्यसूत्र- पृ
१५६ का १ के ८

इन दो उद्धरणों से स्पष्ट है कि गंधर्व विवाहोपरांत विवाह होने के तथ्य का उद्घाटन आवश्यक है । इसका कारण यह है कि समाज इस तथ्य से अवगत हो जाए कि अमुक स्त्री- पुरुषों ने अपने धार्मिक - एवं सामाजिक कर्तव्यों की पूर्ति के लिए एक -दूसरे के साथ रहना स्वीकार किया है ।विवाह में होने वाली तमाम धूम धाम का भी यही रहस्य है कि समाज जान जाए कि अमुक व्यक्ति पति पत्नी रूप में रहने जा रहे हैं तथा इस प्रकार इनका यौनात्मक संबंध सामाजिक हैं । यथार्थ में स्त्री-पुरुष के यौनात्मक संबंध की स्वीकृति देने के लिए ही विवाह होता है ।शकुन्तला तक ने दुष्यन्त से विवाह करने के बाद इस रहस्य को तत्काल कण्व पर प्रकट किया करदिया । इस तथ्य के प्रकट करने में लज्जा लज्जा का प्रश्न ही नहीं उठता । किंतु सूर ने जो गंधर्व विवाह कराया वह दूसरे प्रकार का है । यह सत्य है कि उस विवाह का संपादन ब्रह्मा ने किया तथा, सुर आदि वहां वंदीगण थे तथा सनकादिक, नारद, शिव आदि इस कृत्य पर प्रसन्न हुए[१२६] किन्तु इसकी चर्चा वृषभानु- पत्नी अथवा नंद और यशोदा से बिलकुल चर्चा नहीं की गई । फलस्वरूप राधा-कृष्ण के प्रेम का चर्चाव

---

१२६ (५२१) ३ सूर १६६०, १६६१

ब्रज में जोरों से चल पड़ता । और इस चवाव को करने वाली वही गोपियाँ हैं जो दोनों के ब्याह में बराती थीं।[१२७] माता, पिता गुरु भाई सभी कुपित हैं ।

स्याम यह तुमसौं क्यौं न कहौं ।

जहाँ तहाँ घर घर कौ घैरा, कौनी भाँति सहौं ।।
पिता कोपि करवाल गहत कर, बंधु वधन कौ धावैं ।
मातु कहै कन्या कुल कौदुल, जनि कोऊ जग जावैं ।।
विनती एक करौं कर जोरे, इलि वीथिनि जनि आवहु ।
जौ आवहु तौ मुरलि-मधुर-धुनि, मो जनि कान सुनावहु ।।
मन क्रम वचन कहति हौं साँची, मैं मन तुमहिं लगायौ ।
सूरदास-प्रभु अंतर जामी, क्यौं न करौ मन भायौ ।। सूर २३०२

वृषभान पत्नी राधा को समझाती है कि पर-धर क्षण-क्षण नहीं जाया जाता । ब्रज भर में राधा-कृष्ण, राधा-कृष्ण की ही चर्चा चल रही है ।[१२८] तू लड़कियों के साथ खेलो । ऐसा करने से क्या लाभ जिससे कुल की निन्दा हो[१२९] तू मेरी सीख क्यों नहीं सुनती ।[१३०]

---

१२७ * ता दिन तैं घर मारग जित तित, करत चवाय सकल गोपीजन- वही २२९९

१२८

काहे कौं पर-घर छिनु-छिनु जाति ।
घर मैं डाँटि देति सिख जननी । नाहिंन नैंकु डराति ।
राधा-कान्ह कान्ह-राधा ब्रज ह्वै रह्यौ अतिहि लजाति ।
अब गोकुल कौ जैबौ छाँड़ौ । अपजस हू न अघात । आदि सूर २३२६

१२९

सुता लए जननी समुझावति ।
संगबिटिनिअनि कैं मिलि खेलौ, स्याम-साथ सुनि-सुनि रिस पावति
जाते निंदा होई आपनी, जाते कुल कौं गारी आवति ।
सुनि लाड़िली कहति यह तोसौं, तोकौं यातैं रिस कवि धावति।।
वही २३२९

१३०

मेरी सिख सुवन काहैं न करति ।
अजहुँ मोरी मर्हे रैहैं । कहति तोसौं डरति।।

तू अब सयानी हो गई है ।[१३१] गांव की स्त्रियां अपनी बहुओं से कहती हैं कि यह करनी तुम लोग मत करना ।[१३२] राधा का संग करने से ब्रज में उपहास उड़ रहा है ।[१३३]

---

१३१ राधा अब तू भई सयानी ।

मेरी सीख मानि हिरदय धरि जहं-तहं डोलति बुद्धि बया।
भई लाज की सीमा तनु मैं सुनि यह बात कुंवरि मुसुकानी
हंसति कहा मैं कहति भली तोहिं सुनति नहीं लोगनि की बानी
आजुहिं तैं कहुं जान न देहों या तेरी कछु अकथ कहानी ।
सूर स्याम के संग न जैहो जा कारन तू मोहिं रिसानी।।
वही २३३४

१३२ तुम कुल-वधू निलज जनि होहै हो ।

यह करनी उनहीं कौं छाजै, उनकैं संग न जैहो ।।
राधा-कान्ह -कथा ब्रज-घर-घर, ऐसैं जानि कहवै हो ।
यह करनी उन नई चलाई, तुम जनि हमहिं हंसै हो ।।
तुम हो बड़े महर की बेटी, कुल जनि नाऊं धरैहो ।
सूरस्याम राधा की महिमा, यहै जानि सरमैहो ।। वही २५४१

१३३ सासु ननद घर त्रास दिखावैं ।

तुम कुल- बधू लाज नहिं आवति ,बार-बार समुझावैं ।।
कब की गई न्हान तुम जमुना, यह कहि कहि रिस पावैं ।
राधा कौ तुम संग करति हो, व्रज उपहास उड़ावैं ।।
वै हैं बड़े महर की बेटी, तो ऐसी कहवावैं ।
सुनहु सूर यह उनहीं फा बै, ऐसी कहति डरावैं।। वही २५३६

हम व्रजवासी अहीर हैं । हमें ऐसी चाल चलनी चाहिए कि कोई हंसी न करे । घर ही में समस्त सुखों का उपभोग करो ।[१३४] किंतु राधा पर इसका असर नहीं होता । वह अपना भोलापन प्रदर्शित करती हैं । किंतु अपने कृत्यों के प्रभाव एवं गंभीरता से भी वह परिचित है । वह कृष्ण से इस की चर्चा करती है । वह कहती है, कि माता-पिता को धिक्कार है । कुल-कानि लेकर हम क्या करेंगे । कोई कुछ भी कहे, बिना तुमको देखे तन-मन जीव दहता है ।

ब्रज बसि काके बोल सहौं ।

तुम बिना स्याम और नहिं जानौं, सकुचि न तुमहिं कहौं ।
कुल की कानि कहा लै करिहौं तुमको कहां लहौं ।
धिक माता, धिक पिता विमुख तुव, भावै तहां वहौं ।।
कोउ कछु करै, कहै कछु कोऊ, हरष न सोक गहौं ।
सूर स्याम तुमकौं बिनु देखे, तनु मन जीव दहौं ।। सूर २३०४

इतना ही नहीं राधा का कृष्ण से यह संबंध निरंतर चलता रहता है । स्थान-स्थान पर उसे अपनी प्रीति छिपानी पड़ती है । गुप्त नायिका के रूप में सूरसागर में राधा के अनेक चित्र भरे पड़े हैं । स्वकिया में इस स्थिति की संभावना शायद ही कभी होती हो । साथ ही साथ यदि हम राधा-द्वारा चवाव-चर्चा के बाद कृष्ण के उत्तर पर ध्यान दें तो इस पक्ष पर और भी प्रकाश पड़ता है । राधा के शिकायत करने पर कृष्ण अपने विवाह की चर्चा कर इस बदनामी की उपेक्षा नहीं नक- करते । वे इसका समाधान अपने और राधा के बीच के मित्र संबंध का उल्लेख करके करते हैं :

---

१३४

हम अहीर ब्रज-बासी लोग

ऐसैं चलौ हंसै नहिं कोऊ, घर मैं बैठि करौ सुख-भोग
दही मही, लवनी घृत बेंचौ, सबै करौ अपने उतजोग ।
सिर पर कंस मधुपुरी बैठ्यौ, छिनकहि मैं करि डारै सोग ।
फूंक-फूंक धरनी पग धारौं, अब लागी तुम करन अजोग ।
सुनहु सूर अब जानौगी तब, जब पैहौ राधा - संजोग ।। वही २५२०

व्रजहिं बसैं आपुहिं बिसरायौ ।

प्रकृति ~~पुरुष~~ पुरुष एकहि करि जानहु, बातनि भेद करायौ ।।
जल थल जहां रहौं तुम बिनु नहिं वेद उपनिषद गायौ ।
द्वै-तन जीव - एक हम दोउ, सुख -कारन उपजायौ ।।
ब्रह्म-रूप द्वितिया नहिं कोऊ, तब मन तिया जनायौ ।
सूर स्याम-मुख देखि अलप हसि, आनन्द-पुंज बढ़ायौ ।।सू० २३०५

राधा को अपने स्वरूप का ध्यान हो आता है । वह जान जाती है कि हमारे माता पिता कोई नहीं हैं । अब तक मैंने लोक-मर्यादा की, किंतु अब कोई आवश्यकाता नहीं है :

तब नागरि मन हरष भई ।

नेह पुरातन जानि स्याम कौ, अति आनंद-मई ।।
प्रकृति पुरुष, नारि मैं वै पति काहे भूलि गई ।
को माता, को पिता , बंधु को, यह तौ भेंट नई ।। आदि सूर २३०६

तथा

सुनहु स्याम मेरी बिनती ।

तुम हरता तुम करता प्रभु जू, मातु पिता कौनैं गिनती ।।
गय बर मेटि चढ़ावत रासम, प्रभुता मेटि करत हिनती ।
अब लौं करी लोक मरजादा, मानौ थोरे ही दिन ती।। आदि सूर २३०७

किंतु अपने दोनों के विवाह का उल्लेख करके उन्होंने इस संबंध की वैधानिकता नहीं सिद्ध की है । इससे स्पष्ट है कि न तो उन्हें ही उस विवाह की सत्यता में विश्वास है और नही राधा को । गोपियां भी उस विवाह को संभवत: बालकों का खेल मात्र समझ कर विस्मृत कर चुकी हैं और कृष्ण तथा राधा के माता पिता को भी वह अवगत नहीं है । दोनों का संबंध वैधानिक न हो कर प्रेम मात्र पर अवलंबित है और इससे वे अपरचित नहीं हैं । अतएव राधा का परकीयात्व स्वयं सिद्ध है । कवि ने विवाह का उल्लेख तो अवश्य करा दिया किंतु सपूर्ण सूरसागर में व्याप्त राधा में वे स्वकीयात्व भर सके । राधा कभी भी अपने को कृष्ण की पत्नी नहीं सोच सकी उन्होंने स्वयं सदैव को परकीया अनुभव किया है । उनके लिए वह

विवाह आपस के खेल के समान था जिसको जीवन में कोई स्थान नहीं दिया जा सकता ।

इस कथन पर एक आक्षेप यह हो सकता है कि राधा कृष्ण की प्रकृति हैं । अपने स्वरूप का ज्ञान उन्हें स्वयं पुरुष ने कराया है और दोनों के बीच की अभिन्नता से वे अवगत हैं, अतः उनमें परकीयात्व का प्रश्न ही नहीं उठता ।

इस आक्षेप का समाधान दूर नहीं है। सचमुच उपर्युक्त रूप में तो परकीया का प्रश्न ही नहीं उठता । राधा नित्य-स्वकीया हैं । और जैसा पीछे कहा जा चुका है यह तर्क परकीया की सामाजिक हेयता के शमन के कारण प्रस्तुत किया जाता है । किंतु हम भूल जाते हैं कि परकीया -स्वकीया संबंध का आधार ही सामाजिक है, आध्यात्मिक नहीं । समाज की दृष्टि में और नियमों के अनुसार विवाह सूत्र में बंधी नायिका ही स्वकीया है । यदि वह अविवाहित है और उसका प्रेम किसी पुरुष से है अथवा वह दूसरे से विवाहित है और किसी अन्य से उसका प्रेम है तो वह परकीया है । यदि हम राधा कृष्ण के उस गंधर्व विवाह को-जिसे उन लोगों ने स्वयं विवाह नहीं स्वीकार किया है और जो समाज द्वारा भी स्वीकृत नहीं है,को भी विवाह न मानें तो राधा अनूढ़ापरकीया हैं जिनमें अनूढ़ा परकीया के अनेक भेदों का विकास हुआ है । यदि उनके विवाह को मान लिया जाता है तो वह एक प्रकार से स्वकीया अवश्य हो जाती है किंतु उनके कार्य-कलाप स्वकीयात्व के बाहर के हैं । पर इस विवाह को मानने का कोई प्रबल तर्क नहीं है ।

## १६ गोपियां

गोपियों के परकीयात्व में विशेष शंका नहीं है । जहां तक उन गोपियों का प्रश्न है जो कि विवाहिता नहीं थीं और जिनका रास के समय कृष्ण से समप+- विवाह हुआ उनकी समस्या र. के ही समान है । वे कन्या परकीया हैं । कुछ ऐसी विवाहि- भी हैं जिन्होंने पर-पुरुष कृष्ण से परकीया रूप में प्रेम कि. कुछ ऐसी भी गोपियां थीं जिनका न तो उनसे विवाह ... किसी की पत्नी थीं । ऐसी स्त्रियां भी परकीया ... क्योंकि उन्होंने लोक-लाज-,कुल-कानि छोड़कर कृष्ण से ही प्रेम कि- था । ऐसे ही कुछ पद निम्नलिखित हैं :

मुरली सुनत भई सब बौरी । मनहुं परी सिर मोंक ठगौरी ।।
जो जैसें सो तैसैं दौरी । तन व्याकुल भई विवस किसौरी ।।

* + +

कोउ मनहीं मन बुद्धि विचारैं । कोउ बालक नहिं गोद सँमहारैं ।।

* + +

छुटि सब लाज गई कुल-कानी । सुत पति आरज-पंथ भुलानी ।।

+ + +

कोउ जैंवत पतिहि तन हेरैं । कोउ दधि मैं जावन पय फेरैं ।।
कोउ उठि चली जैसेंहीं तैसैं । फिरि आवहिं घरहीं मैं पैसैं ।।

+ + +

सूरदास प्रभु कुंज विहारी । सरद-रास- रस-रीति विचारी।।सूर १६०७

आजु बन बेनु बजावत स्याम ।

यह कहि-कहि चकित भई गोपी, सुनत मधुर सुर-ग्राम ।।
कोउ जैंवति, कोउ पतिहिं जिंवावति, कोउ सिंगार मैं वाम ।।

+ + +

सूर सुनत मुरली भई बौरी, मदन कियौ तन ताम।। वही १६११

सुनत मुरली भवन डर न कीन्हीं ।

स्याम पैं चित्त पहुँचाइ पहिलैं दियौ, आपु उठि चली सुधि मदन दीन्हीं

+ + +

जानि लायक भजीं, तरुनि सुत-पति तजीं, काहुं नहिं लजीं अति प्रेम धाईं
तज्यौ कुलधर्मं, गोधन, भवन-जन तते, पगी रस कृष्ण-बिनु कछु न भावैं।।
वही १६१[illegible]

माता पिता इस प्रकार से जाते देख कर व्याकुल होते हैं :-

चली बन धेनु सुनत जब धाइ ।
मातु पिता -बांधव अति त्रासत, जाति कहां अकुलाइ ।।
सकुचि नहीं, संका कछु नाहीं, रैनि कहां तुम जाति ।
जननी कहति दई कौघाली, काहे का इतराति ।।
मानति नहीं औरं रिस पावति, निकसी नातौ तोरि । आदि
वही १६२१

एक को पति ने रोक रखा तो वह शरीर छोड़ कर चली

मुरली- धुनि करी बलबीर ।

\+ + +

गई सोरह हरि पै, छांड़ि सुत-पति -नेह ।
एक राखी रोकि कै पति ,सो गई तजि देह ।। आदि-वही १६२५

उपर्युक्त उद्धरण से एक बात तो स्पष्ट है । यह तर्क कि गोपियों के पतियों को इस बात का पता नहीं चला कि उनकी पत्नियां उनके पास नहीं है ,ठीक नहीं है। उन्होंने न केवल अपनी पत्नियों को रोका ही किंतु कम से कम एक को तो वे रोक सकने में समर्थ तक हो गए । यह दूसरी बात है कि वह शरीर छोड़ कर गई जो कि उसके प्रेमाधिक्य का द्योतक है और जो कि एक परकीया में ही सम्भव है । इतना ही नहीं गोपियां अपनी स्थिति से अवगत हैं । प्रेम के क्षेत्र में वे काफी आगे बढ़ आयी हैं और वे जानती हैं कि बंधु-स्वजन आदि अब उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे । वे विधि-मर्यादा, लोक-लज्जा सभी तोड़ कर जो आई हैं ।

भवन नहीं अब जाहिं कन्हाई ।
स्वजन बंधु सें भई बाहिरी, वे क्यों करें बड़ाई ।। आदि
सूर० १६४२

तथा

सुनहु स्याम अब करहु चतुराई, क्यों तुम वेनु बजाइ बुलाई ?
वधि-मरजाद, लोक की लज्जा, सबै त्यागि हम धाई आई।।
सूर १६४३

गोपियों में परकीया के विभिन्न भेद गुप्ता, विदग्धा आदि का अभाव नहीं है । किंतु कवि द्वारा राधा को इतना अधिक महत्व दिया गया है कि संयोगावस्था में अन्य गोपियों का स्थान नगण्य है । वे अधिकतर सखी रूप में राधा-कृष्ण के सहायक रूप से व्यक्त हुई हैं । यही कारण है कि इनके परकीयात्व का पूर्ण विकास नहीं हुआ है । गोपियों का व्यक्तिगत महत्व तो विरह में ही प्रकट हुआ है ।

## १४ परमानंद दास

अष्टछाप के दूसरे कवि परमानन्द दास के काव्य का अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ है ।[१३५] विद्या भवन कांकरोली द्वारा इसके प्रकाशन की व्यवस्था हो रही है । डा० दीन दयालु गुप्त के पास भी इनके पदों का संग्रह है जिसके अनुसार आपने परकीया भाव के दो पद अष्टछाप और बल्लभ संप्रदाय में उद्धृत किए हैं । इन पदों में ऊढ़ा परकीया का स्वरूप है जिसने नंदलाल के प्रेम में लोक-परलोक, पति आदि सभी का परित्याग कर दिया अ है ।

> नन्द लाल सों मेरो मन मान्यो कहा करैगो कोई री ।
> हों तो चरन कमल लपटानी जो भावें सो होय री ।
> ग्रह पति मात पिता मोहि त्रासत हंसत बटाऊ लोगरी ।
> अब तो जिय ऐसी बन आई विधिना रच्यो संयोग री ।
> जो मेरो यह लोक जायगो और परलोक नसाय री ।
> नंद नंदन को तोऊ न छाडूं मिलूंगी निशान बजाय री ।
> यह तन घर बहुरयो नहिं पइये वल्लभ वैस मुरारि री ।
> परमानन्द स्वामी के ऊपर सर्वस्व डारौं वारि री ।

(अष्टछाप पृ० ६२८)

परमानन्द दास जी ने एक और पद में यह कहा है- " मैंने तो प्रेम कृष्ण से किया है । यदि लोग इसे पातिव्रत कहें तो अच्छा और यदि व्यभिचार कहें तो भी अच्छा है । "

> मैं तो प्रीति स्याम सों कीन्ही ।
> कोऊ निन्दो कोऊ बन्दो अब तों यह कर दीनी ।
> जो पतिव्रत तो यह ढोटा सों इन्हें समर्प्यो देह ।
> जो व्यभिचार नन्द नन्दन सों बाढ्यो अधिक सनेह ।
> जो व्रत गह्यो सो और न भायो मर्यादा को भंग ।
> परमानन्द लाल गिरिधर को पायो मोटो संग ।

अष्टछाप पृ ६२८

---

१३५ - अभी हाल ही में इसका प्रकाशन हुआ है । प्रस्तुत अध्ययन में

१४ परमानंद दास

अष्टछाप के दूसरे कवि परमानन्द दास के काव्य का अभी तक प्रकाशन नहीं हुआ है।[१३५] विद्या भवन कांकरौली द्वारा इसके प्रकाशन की व्यवस्था हो रही है। डा० दीन दयालु गुप्त के पास भी इनके पदों का संग्रह है जिसके अनुसार आपने परकीया भाव के दो पद अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय में उद्धृत किए हैं। इन पदों में ऊढ़ा परकीया का स्वरूप है जिसने नंदलाल के प्रेम में लोक-परलोक, पति आदि सभी का परित्याग कर दिया ब है।

नन्द लाल सों मेरो मन मान्यो कहा करेगो कोई री।
हौं तो चरन कमल लपटानी जो भावे सो होय री ।
म गृह पति मात पिता मोहि त्रासत हंसत बटाऊ लोगरी।
अब तो जिय ऐसी बन आई विधिना रच्यो संयोग री।
जो मेरो यह लोक जायगो और परलोक नसाय री।
नंद नंदन को तौऊ न छाडूं मिलूंगी निशान बजाय री।
यह तन धर बहुरयो नहिं पइये वल्लभ वेस मुरारि री।
परमानन्द स्वामी के ऊपर सर्वस्व डारों वारि री।

(अष्टछाप पृ० ६२८)

परमानन्द दास जी ने एक और पद में यह कहा है- " मैंने तो प्रेम कृष्ण से किया है। यदि लोग इसे पातिव्रत कहें तो अच्छा और यदि व्यभिचार कहें तो भी अच्छा है।"

मैं तो प्रीति स्याम सों कीनी।
कोऊ निन्दो कोऊ बन्दो अब तों यह कर दीनी।
जो पतिव्रत तो यह ढोटा सों इन्हें समर्प्यो देह।
जो व्यभिचार नन्द नन्दन सों बाढयो अधिक सनेह।
जो व्रत गह्यो सो और न भायो मर्यादा को भंग।
परमानन्द लाल गिरिधर को पायो मोटो संग।

अष्टछाप पृ ६२८

परमानंद दास ने लोक- लाज को तोड़ने का भी उल्लेख किया है। जो कि परकीया के अंतर्गत ही आता है।[१३६]

१५ नंददास

नंद-दास ने परकीया को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है। उन्होंने एक स्थान पर स्पष्ट रूप से परकीया प्रेम को ही प्रेम की चरम सीमा बतलाया है -

रस में जो उपपति-रस आही। रस की अवधि कहत कवि ताही।[१३७]

और इसी परकीया प्रेम पर ही संपूर्ण रूप मंजरी की कथा खड़ी की है। रूप मंजरी का विवाह लोभी विप्र के कारण कुबुद्ध, कुरूप राजकुमार से हो गया। सखी इंदुमती नहीं चाहती थी कि उसका अद्भुत रूप-सौन्दर्य यों ही निष्फल चला जाय।[१३८] अत: वह इसके लिए उपयुक्त नायक कृष्ण को ही समझती है। उनके प्रेम के लिए प्रार्थना करती। स्वप्न दर्शन के द्वारा वे प्राप्त हुए। अंत में पीड़ित रूप मंजरी की विरहावस्था के वर्णन के बाद स्वप्नावस्था में कवि उसे कृष्ण की प्राप्ति कराता है। इस प्रकार यह संपूर्ण खंड-काव्य ही परकीया की आधार शिला पर खड़ा है।

"रस मंजरी" उनका रस का ग्रंथ है जो कि संभवत: भानुदत्त के "रस मंजरी" के अनुकरण पर बना है। इस का विषय नायक-नायिका भेद है जिसमें परकीया को भी स्थान मिला है। परकीया के प्रथम तीन उदाहरण सुरतिगोपना, वचनविदग्धा तथा लक्षिता के दिये हैं।[१३९] इसके अतिरिक्त प्रोषितपतिका, खंडिता, कलहंतरिता, उत्कंठिता, विप्रलब्धा, वासक सज्जा, अभिसारिका, स्वाधीनि वल्लभा तथा प्रतिभगवनी और उसके भेदों के भी उदाहरण दिए हैं। उपर्युक्त उदाहरणों

---

१३६ मैं अपनों मन हरि सों जोरयो, हरि सों जोरि सबन सों तोरयो
नाच नच्यो तो घूंघट कैसो, लोक लाज डर फटकि पिछोरयो।
परमानंद प्रभु लोक हंसन दे लोक वेद ज्यों तिनका तोरयो।। अष्टछाप और पृ० ६३४

१३७ रूप मंजरी -शुक्ल पृ० ८, दे० भूमिका पृ० १०३

१३८ वही

में पूर्णत: नायक- नायिका भेद का स्वरूप प्रकट है । इनमें न तो कृष्ण राधा के प्रेम का रूप अथवा परकीयत्व है और न भक्ति । केवल भक्त नंददास की रचना होने मात्र के कारण चाहें इसे भक्ति- काव्य में स्थान दिया जा सके ।

गोपियों के परकीयात्व की ओर नंददास ने कई स्थानों पर संकेत किया है । ये स्थान रास से संबंध रखने वाले हैं । कृष्ण की मुरली की ध्वनि सुनकर जब गोपियां जाती हैं तो उनके माता, पिता पति, बंधु रोकते रह जाते हैं पर वे रुकती नहीं है । वे विवश हो गई थीं । यथार्थ में वे तो पतियों को छोड़-छोड़ कर नंद नंदन के लिए ही वृत आदि करती थीं। यद्यपि उनकी जार बुद्धि थी किंतु वे परमानंद- कंद - रस से भरी थीं। चीर-हरण प्रसंग में उन्होंने समस्त गोपियों के विवाहित होने का उल्लेख किया है । जब कि सूर में कन्या एवं विवाहित दोनों प्रकार की गोपियां थीं । नंददास के परकीया से संबंध रखने वाले निम्नलिखित उद्धरण हैं :

' कौउक तरुनि गुनमय सरीर, तिन-संग चलीं ढुकि ।
मात, पिता, पति, बंधु रहे फ़ुकि, नहिंन रहीं रुकि।।१४०
\+ \+ \+
या करि अर्थ, धर्म अरु काम, परिहरि चलति भई सब वाम ।
मात-तात- भ्रातन करि वरजी , पतिन अनेक भांति के तरजी।
\+ \+ \+ १४१
जदपि जार-बुद्धि अउसरी, परमानंद-कंद-रस भरी । १४२
\+ \+ \+
जदपि समस्त विवाहित आहि, नंद-सुवन के रूपहि चाहि ।
विवस भई पति परिहरि परिहरि, करत भई व्रत हिय हरि
धरि धरि १४३

---

१४० रास पंचाध्यायी- शुक्ल पृ० १६१
१४१ दशम स्कंध- शुक्ल पृ० ३२१
१४२ वही पृ० ३२२
१४३ वही पृ० २६७

लोक-लाज तोड़ने का नंद दास ने भी उल्लेख किया है। यह प्रसंग अनूढ़ा एवं ऊढ़ा दोनों ही परकीयाओं का हो सकता है।

अंखियां मेरी लालन संग अटकीं,
वह मूरति मो चित में चुभि-रही छूटत नहीं मो भटकी।
भौंह मरोरि हारि पिक बानी पिय हिय ऐसी घटकी।
नंद दास प्रभु की प्यारी लाज तजि हारी चली निकट की।[१४४]

१५ कुंभनदास आदि अष्टछाप के अन्य कवि

डा० दीनदयालु गुप्त अपने ग्रंथ में लिखते हैं कि कुंभदास कृष्ण दास और छीत स्वामी की श्रृंगारमयी रचनाओं में जार भाव को प्रकट करने वाले पद लेखक को उपलब्ध नहीं हुए। संभव है, इन्होंने उस प्रकार की भक्ति को स्वीकार ही न किया हो।[१४५]

प्रस्तुत लेखक के सम्मुख विद्याविभाग कांकरोली से प्रकाशित कुंभनदास- जीवनी, पद-संग्रह और भावार्थ, पुस्तक है। इस संग्रह में लेखक को परकीया भाव के कुछ पद प्राप्त हैं। जिनमें परकीयात्व स्पष्ट है ऐसे तो एकआध ही पद हैं किंतु ऐसे कई पद हैं जिनसे परकीयात्व की ध्वनि निकलती है। डा० गुप्त ने संभव है इनको पूर्वराग के अंतर्गत ही लिया हो अथवा ये पद उन्हें उस समय प्राप्त न हो सके हों।

राधा के संबंध में स्वकीयात्व- स्थापन का-मतैक्य भक्तों का सदैव प्रयत्न रहा है। कुंभन दास ने तो राधा का विधिवत विवाह ही करा दिया है। कन्या राधा के प्रेम के विकास का चित्रण न होने के कारण अनूढ़ा परकीयात्व उनके पदों में प्राप्त नहीं है। विवाह के उपरांत राधा के परकीयात्व का तो प्रश्न ही नहीं उठता रह गया गोपियों का प्रश्न ? इस संबंध में, जैसा कि लेखक पहले भी निवेदन कर चुका है कविगण स्वकीयात्व की स्थापना करने में असमर्थ रहे हैं और उन्होंने उन्हें परकीया रूप दिया है। [illegible] उल्लेख या तो माता-पिता भाई-बहन, सास, पति आदि [illegible] से पता चलता है अथवा लोक-लाज तोड़ कर कृष्ण से संबंध जोड़ने के द्वारा अनुमानित होता है। कृष्णदास और छीत स्वामी की विस्तृत

---

१४४ परिशिष्ट पृ० ४३८

१४५ अष्टछाप और [illegible]

रचना प्राप्त न होने के कारण कुछ कहा नहीं जा सकता । चतुर्भुजदास और गोविन्द स्वामी में डा० दीनदयालु गुप्त को स्वयं ही परकीया के पद प्राप्त हुए हैं जिनका उन्होंने उल्लेख भी किया है । इन कवियों के परकीया के कुछ पद दिए जाते है :

नयन भरि देखे नंद-कुमार ।
ता दिन तें सब भूलि गयी है बिसरे पति, परिवार
बिनु-देखे हौं विकल भई हौं अंग-अंग सब हारे ।
तामें सुद्धि है सांवरी मूरति लोचन भरि व निहारे ।।
रूप-रासि परमिति नहीं मानति कैसे मिलों कन्हाई ।
कुंभन दास प्रभु गोवर्द्धन-घर कों मिवहु री मेरी माई । [१४६]

मदन मोहन सों प्रीति करी मैं कहा भयो- जो कोउ मुख मोर्यो ।
वह व्रत तें हौं कबहुं न टरिहौं जानि सबनि सों नातोतोर्यो
सास रिसाउ, मात गृह त्रासों, हौं पति सों मानंहुघट फोर्यो ।
कुंभनदास गिरिधर सों मिलि हौं आरज-पंथ हौं सबनि सों कोर्यो [१४७]

कहा नंद के तू आवति- जाति ?
या भेद हौं जानति नांहिन ?
कहुरी? कवन, ग्वालि ; तोहि नाहि ।।
सांझ सवारें हौं रहि देखति हौं ।
ना जानों क्यों तोहि रैनि बिहाति ।
अब तो काज सकल बिसराए
गृह-पति तें नाहिन सकुचाति ।।
मदन मोहन सों तेरो मन अरुझानों
गृह नहिं चैन होत किहिं भांति ।
कुंभनदास लाल गिरधर को
रूप, नयन पीवित न अघाति ।। १४८

---

१४६ कुंभन दास पद २२८
१४७ वही पद २४२

मोहन मोहिनी पढ़ि मेली,

मुख देखत तन दसा हिरानी को घर जाय सहेली ।
काके मात तात अरु भ्राता को पति नेह नवेली,
काके लोक लाज अरु कुल व्रत को बन भावति अकेली ।
यहि ते कहति मूल मत तोसों एक संग नित खेली,
चतुर्भुज प्रभु गिरिधर रस अटकी श्रुति मर्यादा पेली । १४६

अब कहा करों मेरी आली री अंखियन लागेई रहत,
निस दिन फिरति रूप रस माती आवे नहीं ग्रह काज करत ।
जदपि माता पिता पति सुत ग्रह देखत तोहू न धीरज धरों मोहन बेनु सुनत
गोविंद प्रभु को हों जों लों न देखों आली, तोलों छिनु छिनु कैसे मेरे प्रान रहत ।। १५०

हिलगनि कठिन है या मन की ।

जाके लयें देखि मेरी सजनी । लाज जात सब तन की ।।
धर्म जाउ अरु हंसो लोक सब अरु, आवो कुल-गारि ।
सो क्यों रहै ताहि बिनु देखें, जो जाको हितकारी ।।
रस लुबधक एक निमिख न छांड़त ज्यों अधीन मृग गाने ।
कुंभनदास सनेह-मरमु इहिं गोवर्द्धन-धर जाने ।। १५१

बालिक कृष्ण दास सों अटकीं,

बार बार पनघट पर आवति सिर यमुना जल मटकी ।
मन मोहन को रूप सुधानिधि पीवित प्रेम रस गटकी ।
कृष्ण दास धन्य धन्य राधिका लोक लाज सब पटकी ।। १५२

---

१४६ अष्टछाप और० टिप्पणी पृ० ६२६

१५० वही

१५१ कुंभनदास पद : ११३

१५२ अष्टछाप और० पृ० ६३५

१७ व्यास जी

ब्रज-रस के अनन्य रसिक व्यास जी में परकीया के महत्व पूर्ण उल्लेख नहीं हैं रास तथा पनघट प्रकरण में ही परकीया का स्पष्ट उल्लेख है। रास के उल्लेख मुरली के प्रभाव को व्यक्त करने के लिए हुआ है जिसकी ध्वनि सुन कर माता -पिता पति द्वारा कोई नहीं रुक सका है :

स्यामहिं सूचित मुरली-नाद ।सुनिधुनि छूटे विषय सवाद ।
रास-रसिक-गुन गाइहों ।
मात, पिता, पति रोकी आनि, सही न पिय-दरसन की हानि
सब ही को अपमानि कै ।।१५३

परकीया का दूसरा उल्लेख पनघट लीला में है। यह परकीया कोई गोपी है जो कि वचन विदग्धा है। कृष्ण भी समझ कर उसकी मनोकामना पूरी करते है :

कान्ह ! मेरे सिर धर गगरी ।
यह मारी, पनिहारी कोउ न मनसा पुजवत सगरी ।।
राति परी घरु दूर, डर बाढ़्यो, मेरे सासुज नगरी ।
देहु पीत पति करहुं ईंडुरी, छाँड़ु छैल प्रचगरी ।।
अंचल गहि चंचल बन झगरत , नग झारत लट वगरी ।
विहरति व्यासदास के प्रभु सों, ग्वालिनि सुख लै डगरी।। १५४

तथा

भूली, भरन गई ही पानी ।
गैल बतावहि छैल छबीलो, तू न परति पहिचानी ।।
मेरी सासु त्रासु करिहै घर, मेरो पति अभिमानी ।
कुल की नारिहिं गारि चढ़ै , जो वन में ह्वै रैन बिहानी ।।

---

१५३ व्यास पृ० रास पंचाध्यायी पद ४-५ पृ० ४०१
१५४ वही पद ७१३

झलकति गागरि अलक सलिल भई, सारी स्वेद चुवानी ।
सीत-भीत तें कंपु बढ्यौ अति, विपति न जाति बखानी ।।
भागनि भेंट भई तोही सौं, मारनि चांद पिरानी ।
नैंकु उतारहि पौंह परत हौं तो तें कौन सयानी ।।
दीन वचन सुनि सदय हृदय के, निरखत मुख मुसिक्यानी ।
पूजी आस व्यास दासी की देखत आंखि सिरानी।। १५५

राधा के परकीयात्व को सिद्ध करने वाले पद व्यास में नहीं प्राप्त हैं। केवल एक ऐसा पद प्राप्त है जिसमें सुरतमदांध राधा सखी से सुख में व्याघात करने से मना करती है। क्योंकि इसी सुख के कारण ~~उसी~~ उसने लोक लाज छोड़ी। केवल इसी पद में परकीया का ~~अ~~ आभास मिलता है :-

जो भावै सो लोगनि कहन दै।

अवनि पिछौड़ौ पांव न दीजै, न्याव मेटि प्रीति निवहन दै।
हौं जोवन मदमाती सखी री, मेरी छतियां पर मोहन रहन दै।
नव-निकुंज पिय अंगसंग मिलि, सुरति-पुंज रस-सिंधु बहन दै।
या सुख कारन व्यास आस कै, लोक वेद उपहास सहन दै ।। १५६

## १८ अन्य वैष्णव कवि

भक्ति काल के अन्य वैष्णव कवियों में परकीया का उल्लेख नहीं है। इस का कारण प्रथम तो उनकी यह मान्यता है कि राधा-कृष्ण दंपति हैं और उनका विधिवत विवाह हुआ है। दूसरा कारण राधा के प्रेम का प्रारंभिक- विकास के चित्रण का अभाव है। इस ~~अ~~ अभाव के कारण राधा की मानसिक स्थिति का अध्ययन संभव नहीं है। उन्होंने अधिकतर भावों के स्थान पर स्थूल चित्रण ही किया है। तीसरा कारण गोपियों के परकीयात्व स्वरूप के अभाव का यह है कि भागवत में कृष्ण की वर्णित व्रज लीला को पूर्णत: न लेकर इन्होंने उनकी निकुंज लीला को ही अधिक

---

१५५ वही पद ७१६

अपनाया है । इसके अतिरिक्त इसका कारण इनके संप्रदाय की यह मान्यता भी हो सकती है कि कृष्ण एक-पत्नी व्रत है । तथा अन्य गोपियाँ राधा का स्थान लेने की कल्पना भी नहीं कर सकती हैं । वे तो उस निकुंज लीला मे प्रवेश को ही सर्वोत्तम स्थिति समझती है ।

फिर भी जो छुटपुट उल्लेख आए है वे भागवत के प्रभाव के कारण है। सब कुछ होते हुए भी कृष्ण का भागवत में वर्णित स्वरूप कभी कभी तो ध्यान में अवश्य आ जाता रहा होगा और इसके साथ आती होगी याद रास- पंचाध्यायी, पनघटलीला आदि इसी के फलस्वरू छुटपुट परकीया- उल्लेख आगए हैं । ये विशेष महत्व के नहीं है ।

सबसे अधिक आश्चर्य तो उन कवियों के संबंध में है जो कि सीधे चैतन्य संप्रदाय से संबंधित है । माधुरीजी, गदाधर भट्ट, सूरदास, मदन मोहन और वल्लभ रसिक की रचनाएं देखने पर पता चलता है कि यद्यपि संप्रदाय मे राधा का परकीयात्व सैद्धांतिक रूप मे स्वीकार था किंतु व्यवहार में उनपर स्वकीयात्व लाद दिया गया था । इसके कारण क्या हो सकते है इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। अतः इन कवियों ने प्रारंभ मे ही राधा कृष्ण का विवाह करा दिया है ।जैसा अन्य वैष्णव कवियों के संबंध में कहा जा चुका है वही परकीया के अभाव का कारण इनमें भी है । हाँ माधुरी जी की रचनाओं मे एक स्थान पर इसका संकेत मिलता है । यह संकेत भी संभवतः इस कारण आ सका है क्योंकि कवि यहाँ पर वर्णानात्मकता के स्थान पर भाव का चित्रण कर रहा है । वह स्थल निम्नलिखित है :-

जा कारन छोड़ी लोक सबै वेद कुल कानि ।
सो कबहूं नहिं भूलि कै देत दिखाई आनि ।।[157]

**मीरा-**

मीरा का प्रेम जैसा कि प्रसिद्ध है " गोपी भाव" का था

---

१५७- उत्कंठा माधुरी - माधुरी वाणी दोहा ४६ पृ०

गोपी - भाव और गोपियों के प्रेम में एक महान अन्तर है। गोपियों के सामने उनके कन्हैया हाड़- मांस रूप में थे। जिनसे इन्होंने प्रीति लगाई थी। गोपी- भाव के प्रेम में उस यथार्थ के स्थान पर कल्पना ही अधिक होती है। गोपी- कृष्ण का संबंध परकीयात्मक था जब कि गोपी- भाव का संबंध सांसारिक वाह्य दृष्टि से - मेरा अर्थ नैतिक और सामाजिक दृष्टि से - परकीयात्व की हेयता को प्राप्त नहीं करता। यही कारण है कि यदि एक गृहणी की प्रीति कन्हैया से जुड़ जाती है तो इसकी प्रीति यद्यपि परकीया- भाव की होती है किन्तु न तो उस पर समाज आक्षेप करता है और नहीं उसे हेय दृष्टि से देखता है। किन्तु यदि वही स्त्री आज किसी पुरूष को ही कृष्ण- स्वरूप समझ कर आत्म समर्पण करती है - जो कि अक्सर देखने में भी आता है तो न केवल समाज ही उस संबंध को हेय दृष्टि से देखता है वरन् गोपी- भाव के समर्थक भी उसे व्यभिचार से नामकरण करने में नहीं चूकेंगे। इसीलिए गोपी- भाव और गोपी प्रेम में बड़ा अन्तर है। गोपी के संमुख माता- पिता, भाई- बंधु, सास- नंद, पति और समाज का विरोध पूर्ण सत्यता के साथ था। वे उसकी भर्त्स्ना के लिए निरंतर तत्पर थीं। इसके स्थान पर गोपी भाव के प्रेम को समाज की वंदना ही अधिकतर प्राप्त होती है।

मीरा का विवाह हो चुका था। सामाजिक दृष्टि से उनका संबंध परकीयात्मक ही संभव था। वे अपने को चाहें कितना ही स्वकीया समझती रहें। इस परकीया संबंध के लिए उन्हें न तो समाज हेय दृष्टि से देखता और न सास नन्द। उनके पदों में जो सास आदि की भर्त्सना का उल्लेख है उसका कारण इनका कृष्ण के प्रति परकीया भाव नहीं है, वरन् राजमहल की मर्यादा का अतिक्रमण करके साधु- सन्तों के बीच में घूमना है। परकीया भाव की उपासना के लिए कृष्ण को साधु- सन्तों के बीच में खोजने जाना तो आवश्यक था नहीं ? वह तो राजमहल में ही विराज मान थे। दूसरा कारण उनके किसी " मानुषी कन्हैया " के प्रति प्रेम हो सकता है जिसकी ओर " शबनम " ने अपने ग्रन्थ " मीरा एक अध्ययन " में प्रथम बार संकेत किया है। किंतु इस संबंध से अभी तक कुछ निश्चित रूप में कह सकना असंभव नहीं है। यथार्थ में उनकी भावना में स्वीकीयात्व का बड़ा अंश

इसका कारण उनकी परिस्थिति है, जिससे बच सकना उनके लिए असंभव था ।

मीरा ने अपने अनेक पदों में गिरधर से अपने व्याह का भी उल्लेख किया है । यदि राधा के गंधर्व- विवाह से इसकी तुलना करें तो दोनों में एक महत्वपूर्ण विभिन्नता है । राधा ने अपने विवाह को ( सूर सागर में ) जहाँ सदैव एक खेल मात्र समझा, जिसको उन्होंने कभी प्रकट नहीं किया तथा स्वकीया की भाँति कृष्ण को अपना पति नहीं कहा, वहाँ मीरा ने स्वप्न में होने वाले गिरधर के साथ के अपने विवाह को पूर्ण सत्य समझा, उसको स्वीकार कर के उस विवाह की घोषणा की तथा उनको अपना पति समझाः-

मीरा - माई म्हाँने सुपने में, परण गया जगदीस ।
सोती को सुपना अविमाजी, सुपना विस्वा वीस ।
मा- गैली दीखे मीरा बावली, सुपना आल जंजाल ।
मीरा - माई म्हाँने सुपने मे परण गया गोपाल ।
अँग अँग हल्दी मैं करी जी, सुधे भीज्यो गात ।
छप्पन कोट जहा जान पधारे, दुल्हा श्री भगवान् ।
सुपने में तोरन बाँधियो जी, सुपने में आई जान ।
मीरा को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जनम के भाग ।
सुपने में म्हाँने परण गया जी, होगया अचल सुहाग ।। [१५८]

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई ।
जाके सिर मोर मुकट, मेरे पति सोई ।। आदि [१५९]

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर मीरा की भक्ति को गोपी भाव की संज्ञा देना अनुचित है । यह न तो गोपी भाव की और न राधा भाव की है ; जिसमें परकीयात्व प्रधान है तो अपने में निराली है जिसे " मीरा भक्ति " की ही संज्ञा दी जा

---

१५८- मीरा पदावली पद २७
१५९- वही १५

सकती है । उन्होंने लोक- लाज छोड़ने का वर्णन कई जगह किया है ।[१६०] किन्तु उनकी तो एक ही विवाह हुआ था और वह केवल कन्हैया से । यही कारण है कि उनकी तथा गोपियों की मानसिक स्थिति में विशेष अंतर था । इसीलिए उनके पदों में परकीया पदों का अभाव सा है ।

" मिलन - लीला " प्रसंग में अवश्य एक स्थान पर परकीया का रूप मिलता है जब वे कहती हैं, " हे लंगर मेरी बांह छोड़ो । मैं पराये घर की नारी हूं, मेरे भरोसे मत रहो ।[१६१] अन्यत्र उसमें परकीयात्व नहीं प्राप्त है ।

हिन्दी - भक्ति- काव्य में नायिका का स्वरूप

२०- (ग) सामान्या

नायिकाओं में वेश्या को सामान्या कहते हैं । इसकी प्रीति धन के लिए होती है । प्रेम का इसमें अभाव होता है ।

ऐसी सामान्या नायिका का श्रृंगार रस में स्थान अत्यन्त गौण है और भक्ति साहित्य में इसका अभाव है।चैतन्य संप्रदाय में हरिवल्लभाओं में सामान्या के अनरूप नायिका का एक भेद साधारणी है । यह केवल काम- वासना की परितृप्ति के लिए प्रेम करती है । इसका उदाहरण" कुब्जा " मानी जाती है । भक्ति - काव्य में कुब्जा का जो संक्षिप्त उल्लेख उपलब्ध है उसमें काम- वासनमय प्रीति स्पष्ट नहीं है अतः उसे सामान्या नायिका मानना चिंत्य है ।

२१- हिन्दी भक्ति- काव्य में उपलब्ध नायिका के के शास्त्रीय विवेचन के साथ- साथ उसके चरित्र और शील- रूप का संक्षिप्त अध्ययन भी आवश्यक है । यह अध्ययन नीचे

---

१६०- वही ३९,५५ आदि

परशुराम चतुर्वेदी पृ० १७३

प्रस्तुत किया जा रहा है ।

२२- ज्ञानाश्रयी शाखा

इस शाखा के कवियों ने अपनी आत्मा को ही ईश्वर की प्रिया माना है । आत्मा का परमात्मा से यह संबंध पत्नी और पति का है । इसी संबंध के कारण इस काव्य में नायिका का जो स्वरूप उपलब्ध है उसमें पत्नी का गौरव और स्वकीया की मर्यादा बड़े ही मनोहर रूप में व्यक्त हुई है । नायिका पूर्ण सुहागिनी है । उसे उसके प्रिय का प्यार प्राप्त है । उसका प्रेम भी एक निष्ठ है । अपने इसी प्रेम की तीव्रता में वह अपने प्रिय को नेत्रों में बंद कर लेना चाहती है । वह चाहती है कि न तो वह स्वयं किसी और को देखे और न ही अपने प्रिय को किसी को देखने दे । पूर्ण संतोष और अतिशय प्रेम की स्त्री में ही यह भावना परिलक्षित हो सकती है ।

ज्ञानाश्रयी शाखा की नायिका स्वकीया होने के कारण अपनी मर्यादा के अनुरूप ही अपने संयोगी जीवन के संबंध में अधिक मुखर नहीं है । जहां कहीं भी उसने कुछ कहा है उसने अत्यंत संयमित रूप में अपने सौभाग्य सुख के विषय में ही कहा है । उसने कहीं अपने श्रृंगारी जीवन का विस्तृत उल्लेख नहीं किया - यह किया जा भी नहीं सकता था क्योंकि नायक- नायिका के बीच में किसी तीसरे को स्थान ही नहीं है । जहां अन्य शाखाओं की नायिकाओं के जीवन की दर्शक अनेक सखियां रहती हैं वहां यह नायिका अपने प्रिय के प्रेम में विभोर एकाकिनी ही है । हां, विप्रलंभ की स्थिति में वह अधिक मुखर हो गई है ।[१६२] जिस नायिका को प्रिय का इतना प्रेम प्राप्त हो चुका हो यदि उसे वियोग हो तो उसका इतने मुखर और आत्म विस्मृत रूप में प्रेम- निवेदन करना स्वाभाविक है । वियोगिनी नायिका का रूप करुण और हृदय- द्रावक है । उसकी एक- एक पुकार हृदय को छूने वाली तथा उसकी तीव्र विरहानुभूति व्यक्त करने वाली है । विरहावस्था में यह एकनिष्ठता और भी अधिक घनीभूत हो जाती है और ऐसी स्थिति में संसार में उसकी पीड़ा कौन समझ सकता है ? बेचारी अपने प्रिय को छोड़ कर किससे अपना कष्ट निवेदन

---

१६२- कबीर ग्रंथा० पदावली २२४, २२५, ९८४, ९८७

करे ।[१६३] नायिका का यह विरहिणी रूप अत्यंत सात्त्विक और करुण है ।

ज्ञानाश्रयी शाखा की नायिका का पातिव्रत उसके समस्त उद्गारों में झलकता है । अपने जीवन का समस्त श्रृंगार, सुख और वैभव वह पति के प्रेम में ही जानती है । वह जानती है कि विरली ही ऐसी सुहागिनी होती है जो कंत को प्यारी होती है ।[१६४] इसी लिए वह समस्त श्रृंगार आदि से अधिक अपने पातिव्रत, पति- प्रेम और पूर्ण समर्पण को देती है ।[१६५] इस प्रकार ज्ञानाश्रयी शाखा में नायिका का जो स्वल्प रूप उपलब्ध है वह अत्यंत उत्कृष्ट, गौरव पूर्ण और महान् है ।

२३- प्रेमाश्रयी शाखा

प्रेमाश्रयी शाखा की सभी नायिकाओं का चरित्र बड़ी मात्रा में एक रूप होते हुए भी पर्याप्त विविध है । विभिन्न लोक- कथाओं के आधार पर इस साहित्य के निर्माण के कारण इस साहित्य में नायिकाओं की संख्या सबसे अधिक है तथा इन कथाओं के विकास-क्रम में मौलिक एकता होते हुए भी जो कथानक की विभिन्नता है उसी के अनुरूप इस शाखा की नायिकाओं का स्वरूप भी अल्पांश में भिन्न है । नीचे प्रत्येक नायिका के स्वरूप की रूप-रेखा अलग- अलग न देकर प्रेमाश्रयी शाखा में उपलब्ध नायिका की सामान्य रूप-रेखा के आधार पर सभी नायिकाओं का रूप दिया जा रहा है । इन नायिकाओं में पद्मावती, चित्रावली तथा मधुमालती मुख्य और नागमती तथा कौलावती गौण नायिकाएं है ।

नागमती को छोड़ कर प्रेमाश्रयी शाखा की सभी नायिकाएं प्रारंभ में अविवाहिता है । उनका प्रेम अपने- अपने नायकों से विभिन्न विधियों से होता है । प्रेमिका रूप में सभी नायिकाएं एकनिष्ठ, प्रेम के लिए सर्वस्व त्याग करने वाली और निर्भीक है । सभी नायिकाएं चतुर तथा अपने प्रेम को विश्वस्त व्यक्ति पर प्रकट करने वाली है तथा

---

१६३- वही २८७

१६४- वही ३७१

१६५- वही १३९

उसकी सहायता से प्रिय को प्राप्त करने का प्रयत्न करती है। पद्मावती हीरामन से अपने प्रेम को प्रकट कर उसकी सहायता स्वीकार करती है। चित्रावली अपने नपुंसक भृत्यों को अपने प्रिय की खोज में भेजती है। मधुमालती ने किसी ऐसे सहायक का उपयोग नहीं किया है। फिर भी वह अवसर आने पर प्रेमा और ताराचंद से अपने प्रेम को बतलाती है। इतना ही नहीं पक्षी रूप में वह स्वयं प्रिय की खोज में सर्वत्र भटकती है। कौलावती भी अत्यंत चतुर और अपनी सखियों की सहायता लेने वाली है। उसने वह सुजान को रोकने के लिए छल से उसके भोजन में अपना हार छिपवा कर उसे चोरी के अपराध में बंदी बनवा लेती है और कुमुदनी द्वारा अपना प्रेम निवेदन प्रेषित करती है। यह चतुरता तथा सहायता का गुण सभी मुख्य नायिकाओं में है तथा वे इसका उपयोग पूर्वराग की स्थिति में प्रिय मिलन के लिए करती हैं। पद्मावती अपने प्रिय से शिव के मंडप में मिलती है, चित्रावली दर्पण द्वारा प्रिय को अपना दर्शन कराती है तथा योगियों के भोज में उसे बुला कर उसका दर्शन करती है। कौलावती की चतुरता का उल्लेख किया ही जा चुका है। मधुमालती तथा प्रेमा इसका अपवाद है। नागमती विवाहिता तथा वियोगिनी होने के कारण इस प्रसंग में आती ही नहीं है।

नायक से अपने प्रेम- निवेदन में भी मधुमालती तथा नागमती को छोड़ कर शेष सभी नायिकाएं कुशल हैं। पद्मावती रत्नसेन के हृदय पर चंदन से लिख आती है तथा उसके बंदी होने पर अपने प्रेम की दृढ़ता "पाती" द्वारा प्रकट करती है। चित्रावली भी अपने भृत्य द्वारा सुजान को "पाती" भेजती है। कौलावती इनसे आगे है। अपनी सखी की असफलता पर वह स्वयं ही अपना प्रेम नायक से अभिव्यक्त करती है।

चारित्रिक दृढ़ता इन सभी नायिकाओं में है। सभी का प्रेम एकनिष्ठ है तथा नायक के उदासीन व्यवहारों से उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। रत्नसेन एक क्षण में नागमती को छोड़ कर चल देता है, सुजान कौलावती के बार- बार के प्रेम निवेदन को ठुकरा देता है तथा विवाह करके भीउसे कुमारी का कुमारी छोड़े चित्रावली की खोज में चल देता है फिर भी इनके प्रेम में रंच मात्र अंतर नहीं आया। चारित्रिक दृढ़ता का दूसरा रूप मधुमालती में तथा प्रेमा के प्रयास से हुए मि[illegible] दोनों [illegible]

अवसरों पर वह मनोहर से ऐसा कार्य नहीं करने के लिए कहती है जिससे कि माता- पिता को कलंक लगे । उन परिस्थितियों में उनकी जिस क्रीड़ा का उल्लेख है उसके साथ अपने को संयमित रख लेना नायक-नायिका दोनों की चारित्रिक दृढ़ता का द्योतक है ।

संयोगिनी रूप में सभी नायिकाएं काम-कला- विशारदा, पति को संतुष्ट करने वाली तथा संभोग- क्रिया में सक्रिय भाग लेने वाली हैं ।

नायिकाओं का वियोगिनी रूप भी अत्यंत गौरवशाली है । नागमती के वियोग में जो गार्हस्थिकता तथा वेदना का अत्यंत निर्मल और कोमल स्वरूप है उस पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है । अन्य नायिकाओं का विरह नागमती के विरह से मूलतः भिन्न है क्योंकि वह पूर्वराग का है पर वियोगिनी के रूप में सभी नायिकाएं समान हैं । विरह की अतिशय पीड़ा और मिलन की तीव्र आकांक्षा सभी में है ।

प्रेमाश्रयी शाखा की सभी नायिकाएं पतिव्रता है । नागमती और पद्मावती के पातिव्रत का रूप पद्मावत में प्रस्फुटित होकर उनके जौहर व्रत में आलोकित हुआ है । अन्य नायिकाओं के पातिव्रत की परीक्षा की ऐसी स्थितियां नहीं आई है पर उनके प्रेम के स्वरूप को देख कर इसका अनुमान किया जा सकता है ।

समग्र रूप में प्रेमाश्रयी शाखा की नायिकाएं प्रेमिका, चतुर, दृढ़, एकनिष्ठ, पतिव्रता और प्रिया है ।

२४- रामाश्रयी शाखा

रामाश्रयी शाखा की पार्वती और सीता दो प्रमुख नायिकाएं है । पार्वती का चरित्र वर्णन अत्यल्प है किन्तु उनके उस थोड़े से उल्लेख में ही उनके स्वरूप की स्पष्ट रूपरेखा प्रकट हो जाती है ।

पार्वती

पार्वती का चरित्र दो रूपों में व्यक्त हुआ है । एक सती रूप में और दूसरा पार्वती रूप में । सती रूप में वे स्त्रियों की

सहज जिज्ञासा, अविश्वास, उत्सुकता से परिपूर्ण और अपने अपराध पर आवरण डालने वाली नायिका के रूप में प्रकट हुई है। उनका यह रूप महत्वपूर्ण नहीं है।

पार्वती का पार्वती रूप ही महत्वपूर्ण है। वे एकनिष्ठ प्रेमिका हैं। अपने विचारों पर वे दृढ़ रहने वाली हैं। कोई बाधा, कोई आकर्षण उन्हें उनके इच्छित पथ से हटा नहीं सकता है। अपने प्रिय को प्राप्त करने के लिए वे कठोर तपस्विनी का जीवन व्यतीत करने वाली हैं। प्रिय प्रेम ही उनका इष्ट है जो उन्हें प्राप्त हुआ। वे आदर्श पतिव्रता नारी हैं तथा श्रृंगार की क्रियाओं में पारंगत हैं।

सीता

सीता का स्वरूप अधिक कोमल, अधिक मधुर और अधिक हृदय को आकर्षित करने वाला है। अपने कुमारी रूप में वे सलज्ज, मर्यादा का ध्यान रखने वाली, अपने प्रेम को हृदय के अंतरतम में छिपा कर, देवी- देवताओं की कृपा पर ही अपनी इच्छा को छोड़ने वाली सुकमारी हैं। अपने पिता के वचनों से बंधी हुई वे अपने प्रेम को हृदय में ही गोपन रखती हैं। यदि कोई राजा उनके पिता की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने में समर्थ होता तो भी शायद हृदय में राम के प्रति समस्त कोमल भावनाएं रखते हुए भी वे उसको जयमाला पहनाने में न हिचकती। तथा यदि राम उनके पिता की प्रतिज्ञा पूरी करने में समर्थ न होते तो भी निश्चित है कि हृदय में राम के प्रेम को संजोये हुए ही वे मौन रह जातीं और कभी भी अपने प्रेम को प्रकट न करती ऐसा निरीह और सरस उनका यह स्वरूप है जो सबका मन मोह लेता है।

अपने विवाहित रूप में सीता का पातिव्रत चमक उठा है। इसका प्रखरतम रूप रावण के सम्मुख अशोक वाटिका में प्रकट — सीता के लिए समस्त सुख, समस्त जीवन, समस्त धर्म और कर्म, सब कुछ अपने प्रिय राम की चरण सेवा में है। वे अपनी सास की अवहेलना करती हैं। मृत्युशैय्या पर पड़े श्वशुर को छोड़ती हैं तथा राम के उपदेशों को भी ठुकरा कर उनके चरणों की छाया नहीं

नहीं छोड़ना चाहतीं । वन के पर्वत उनके लिए अयोध्या के सैकड़ों राजमहलों के समान हो गए । वन देवी और वन देवता ही सास-ससुर बने तथा कंद-मूल फल ही अमृत के समान आहार बना । इस जीवन में वे समस्त कष्टों को सह कर भी पति के साथ रहने के कारण कितनी सुखी थीं । राम के संयोग में इस पातिव्रत ने उनके समस्त कष्टों को पारसमणि की भांति सुखों में परिणत कर दिया तो राम के वियोग में रावण की अशोक वाटिका में यह उनका रक्षक होकर एक अभेद्य कवच बन गया ।

सीता का संयोगिनी रूप बहुत ही कम मिलता है । वन- मार्ग में ही पति और देवर के साथ सुख की बिताई गई घड़ियों ही में उनका यह रूप प्रकट हुआ है । प्रिय का उन्हें अतिशय प्यार प्राप्त है । वे स्वयं अपने हाथों से उनका श्रृंगार करते हैं और वन के उस जीवन में सीता रस की सरिता प्रवाहित करती है ।

सीता का वियोगिनी रूप बड़ा ही हृदय द्रावक है । व्याध के हाथ में पड़ी हुई निरीह हिरनी की भांति सीता की स्थिति हरण के समय है । अशोक वाटिका में कृश वदना सीता, अधोमुखी, एक वेणी किए निरंतर प्रिय के ध्यान में मन लगाए बैठी है । उसके नेत्रों से सदा अश्रु प्रवाहित होते हैं । भीषण उनका विरह और दारुण उनका दुख है । फिर भी इनमें तेज कितना अधिक है यह उनके रावण को दिए गए उत्तरों में स्पष्ट है । नारी का यह तेजस्वी स्वरूप भक्ति- ~~काल~~ काव्य में दुर्लभ है ।

समग्ररूप में सीता का स्वरूप एकनिष्ठ, दृढ़ व्रता, तेजस्वी, पातिव्रत से परिपूर्ण, मधुर, मनमोहक और हृदय में स्थायी स्थान बनाने वाला है ।

२५- <u>कृष्णाश्रयी शाखा</u>

कृष्णाश्रयी शाखा की प्रमुख नायिका राधा और गौण नायिकाओं में ललिता, सुषमा, वृंदा, चंद्रावली आदि गोपियां हैं । इन नायिकाओं का स्वरूप दो रूपों में विकसित हुआ है । एक रूप में ये सभी स्वयं अलग- अलग स्वतंत्र नायिकाएं हैं तथा दूसरे रूप में [illegible] नायिका राधा है और शेष सभी उसकी सखियां

गोपियां

कृष्ण काव्य में नायिका रूप में गोपियां महत्वपूर्ण है । अपना अलग व्यक्तित्व न प्रकट करते हुए भी गोपी रूप में नायिकाओं का एक सामूहिक व्यक्तित्व है जिसके आधार पर उनके रूप की एक रूप- रेखा खींची जा सकती है । वह इस प्रकार है ।

गोपियां कृष्ण को अत्यधिक प्यार करने वाली ब्रज की ललनाएं है । वे प्रारंभ से ही, जबकि कृष्ण पांच वर्ण के है तब- तभी उनके रूप- लावण्य पर मुग्ध और उनके साहचर्य की आकांक्षिणी है । धीरे धीरे उनका यह प्रेम प्रगाढ़तर होता गया और इस प्रेम के लिए उन्होंने घर- द्वार, लोक- लज्जा सबका त्याग कर दिया । कृष्ण की विभिन्न लीलाओं, छेड़- छाड़ आदि से वे उनपर रीझती और खीजती हुई उनके अंग- संग की कामना करती है । उनमें से अनेक कात्यायनी व्रत रखती है । उनके प्रेम की चरम- परिणति रास के अवसर पर हुई जब कृष्ण ने उन सभी की इच्छाएं पूरी कीं ।

गोपियों का जीवन ईर्ष्या, प्रेम, हास- परिहास, छिपाव- दुराव सभी स्वाभाविक वृत्तियों से पूर्ण और अति आमोद- प्रमोद का है । उनमें अत्यंत जिन्दादिली है और क्रीड़ा- विलास की अनन्त सरिता में वे प्रवाहित होती रहती है । वे अपनी सखियों से अपने प्रेम को छिपाती है और उनके प्रेम के चबाव की चर्चा में रस लेती है । पर इतना होते हुए भी वे सहृदया है । राधा के प्रेम को देख कर वे उसकी सराहना करती है और उसकी सहायता करती है । कृष्ण के प्रेम- जीवन में राधा के प्रवेश के साथ- साथ अधिकतर गोपियां गौण स्थान ले कर प्रेमी- युगल की सखी रूप में स्थान ग्रहण कर लेती है ।

वियोगिनी रूप में गोपियों का स्वरूप अत्यंत [illegible] द्रावक है । निशि- दिन वे कृष्ण की स्मृति में डूबी हुई [illegible] दुर्भाग्य को तो कभी कृष्ण की निष्ठुरता और मथुरा की [illegible] को कोसा करती है । उनके जीवन में वैराग्य पूर्ण रूप से आ गया और उनका कृष्ण प्रेम सूक्ष्मतर होता हुआ अत्यंत पवित्र रूप धारण कर लेता है । जिस समय उद्धव कृष्ण [illegible] दिश ले कर आते है उस समय इनकी उत्सुकता, मुखरता, [illegible] मावेश और दयनीय रूप

इस स्थिति में भी अपनी पीड़ा से अधिक उन्हें राधा की पीड़ा है। उनका वियोगी रूप ऐसा अनुपम है कि उद्धव ऐसे ज्ञानी तक उनके प्रेम में रंग गए। तभी तो वे प्रेम की ध्वजा- स्वरूपिणी कहलाईं।

## ललिता, सुषमा आदि

ललिता, सुषमा आदि कुछ महत्वपूर्ण गोपियाँ हैं जिनको कृष्ण का प्रेम कुछ अधिक प्रकट रूप में मिला है। वे सामान्य गोपियों से इस रूप में भिन्न हैं कि कृष्ण उनके प्रेम का प्रतिदान करने उनके पास आते हैं किंतु कभी- कभी कृष्ण के बहुनायिकात्व और अपनी अवहेलना पर वे प्रगल्भा नायिका के रूप में कृष्ण की भर्त्सना करती हैं। इन नायिकाओं के स्वरूप का अधिक विकास नहीं मिलता। कालान्तर में ये भी राधा की सखियों में महत्वपूर्ण स्थान ले लेती हैं। गोपियों के स्वरूप से कोई अन्य विशेषता इनमें नहीं दिखलाई पड़ती।

## राधा

इस शाखा में राधा सबसे महत्वपूर्ण हैं। उनके स्वरूप का रूढ़- मुक्त विवेचन पीछे किया जा चुका है। अतएव उनके स्वरूप की रूप-रेखा मात्र ही यहाँ दी जा रही है।

राधा बालकपन से ही चतुर है। कृष्ण से प्रथम मिलन पर ही कृष्ण की चोरी पर व्यंग्य करना इस चतुरता का द्योतक है। किन्तु चतुर होते हुए भी वह अत्यंत भोली है। कृष्ण दो बातों में ही उसका मन हर लेते हैं। कृष्ण के साथ की उसकी क्रीड़ा शीघ्र ही प्रेम का रूप धारण कर लेती है। इस प्रेम- मिलन के लिए वह न जाने कितनी विधियों को अपनाती है। कभी उसे नाग डस लेता है तो कभी उसकी मोती की माला छूट जाती है। और भी न जाने कितने बहाने उसके पास हैं। सभी गोपियाँ उसकी चतुरता पर आश्चर्य करती हैं और उसका पार नहीं पातीं।

राधा का प्रेम एकनिष्ठ है। यह समवयस्कों का प्रेम जिसमें प्रेम का परस्पर आदान प्रदान है। राधा भी कृष्ण व एकनिष्ठता चाहती है। उसे कृष्ण के प्रेम पर विश्वास है। व

हृदय में संशय की तीव्र भावना है। फिर कृष्ण भी तो कभी-कभी भटक जाते हैं। ऐसी स्थिति में मानिनी राधिका का रूप बड़ा कठोर हो जाता है। विविध प्रकार से अनुनय- विनय करने पर भी उसका हृदय नहीं पसीजता पर वही एक क्षण में प्रेम की सत्यता के भान होने से द्रवित हो उठता है।

संयोगिनी राधा का रूप भी अत्यंत भव्य है। कृष्ण की ही भांति वह भी काम- क्रीड़ा में रस लेने वाली है। प्रिय की काम-कला पर वह मुग्ध है और प्रिय उसकी रति- निपुणता पर मोहित है। वह काम- कला- विशारदा है तथा विविध प्रकार की क्रीणाओं में प्रिय की सहयोगिनी बन कर रस लेने वाली है।

संयोगिनी राधा का रूप राधावल्लभ, हरिदास और निम्बार्क संप्रदाय में और भी अधिक विकसित है। इन संप्रदायों में उसका रूप पूर्णरूपेण संयोगिनी तथा निरंतर काम- क्रीड़ा में निमग्न रहने वाली नायिका का है। वह निकुंजेश्वरी है तथा अपनी रति- निपुणता से कृष्ण का पोषण किया करती है। इस स्थिति में उसकी कोई विरोधिनी या प्रतिद्वंदिनी नहीं है। उसको रति-क्रीड़ा के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं है। अन्य सभी सुख /सुविधाओं के लिए तो सखियों के यूथ के यूथ हैं। कृष्ण प्रेम में पगी, एक क्षणमात्र के लिए भी कृष्ण वियोग न सह सकने वाली, अपनी क्रीड़ाओं से उनका पोषण करने वाली अति विलासिनी नायिका का यह रूप है। वल्लभ संप्रदाय में राधा का यह रूप स्वल्प, संतुलित और उनके समस्त जीवन का एक अंग मात्र है किन्तु अन्य संप्रदायों में केवल यही रूप प्राप्त है। अंग के स्थान पर यह अंगी हो गया है। यथार्थ में उन संप्रदायों के अनुसार राधा का और कोई रूप है ही नहीं। वह तो नित्य किशोरी है। इस रूप में वह नित्य किशोर के साथ निरंतर विलास किया करती है।

वियोगिनी राधा का स्वरूप अत्यंत करुण है। जिस मात्रा में कृष्ण/ का प्रेम अन्य गोपियों से अधिक प्राप्त मात्रा में वियोग दुख भी उनका अन्य गोपियों से अधिक है। वि की स्थिति में तड़ित- जड़ित सी वह निश्चल हो गई है। उसके नेत्रों से अविराम अश्रुधारा प्रवाहित होती तथा वह सदा अधोमुख

कि प्रिय से मिलन का प्रत्येक स्थान, उनकी प्रत्येक वस्तु अब और भी अधिक प्रिय हो गई है। ये सभी वस्तुएं अब प्रिय-तुल्य हो गई है तभी तो वह प्रिय के प्रस्वेद से भीगी हुई अपनी साड़ी को धुलाने तक के लिए नहीं उतारती। वह साड़ी अत्यंत मैली हो गई है पर उसमें प्रिय का जो प्रस्वेद लग चुका है उसे वह कैसे धुला दे। अतः अति मलीन रूप में ही वह रहती है।

भ्रमर गीत प्रसंग में कृष्ण का निष्ठुर संदेश ले कर जब उद्धव आते हैं उस समय की उसकी दारुण स्थिति का कौन वर्णन कर सकता है? उद्धव द्वारा दिए गए संदेश और गोपियों के अनेकानेक उपालंभों के बीच वह एक दम शांत और निश्चल बैठी रही। उसका प्रेम और कृष्ण का यह संदेश - बेचारी क्या कहे? किन्तु उसके इस मौन ने उसकी पीड़ा को और भी अधिक प्रभावशाली ढंग से उद्धव को बतला दिया। कृष्ण से जाकर उद्धव ने राधा के प्रेम की ही सबसे अधिक सराहना की तथा उसके अतिशय दारुण कष्ट का निवेदन किया। अपने धैर्य में, विरहाग्नि में घुट कर रह जाने में राधा अन्यतम है।

राधा का कुरुक्षेत्र में कृष्ण- मिलन के समय का रूप भी अत्यंत करुण है। कितने वर्ष बीत गए। द्वारकाधीश कृष्ण अपनी रानियों के साथ आए हैं। उनसे ~~अत~~- आज भेंट होगी। इस मिलन में राधा अपना अस्तित्व ही खो बैठी। वह स्वयं मोहन रूप हो गई। वह मिलन का क्षणिक क्षण है जो अपने गर्भ में जीवन- पर्यन्त वियोग लिए है कितना सुखद और दाहक रहा होगा। कृष्ण ने राधा से विहंस कर कहा - "हममें और तुममें कुछ अंतर नहीं है"। यह कह कर उन्होंने राधा को लौटा दिया। यह मिलन, कृष्ण का यह विहसना, राधा की यह सरलता और प्रिय पर उसका विश्वास उसके स्वरूप को कुछ ऐसा रूप देता है जो कि अनिर्वचनीय है।

## २६- भक्ति- काव्य की नायिकाओं का तुलनात्मक रूप

भक्ति- काव्य की प्रत्येक शाखा की नायिकाओं का अ. अपना अलग व्यक्ति[illegible] है। एक दूसरी शाखा की नायिकाएं आपस

ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी तथा रामाश्रयी शाखा कि नायिकाएं पतिव्रता तथा गंभीर प्रेम वाली हैं। किन्तु अपने स्वरूप में ज्ञानाश्रयी शाखा की नायिका में को जो सौभाग्य-गर्व है, विरह की पुकार है वह प्रेमाश्रयी शाखा की नायिका में उपलब्ध नहीं है। प्रेमाश्रयी शाखा की नायिका का प्रेमिका रूप, प्रेम-पंथ पर अग्रसर होने का प्रयत्न तथा संयोग में उसका क्रीड़ात्मक और वियोग में विरहिणी का मुखर रूप उसकी अपनी विशेषता है। इन सबसे भिन्न रामाश्रयी शाखा की पार्वती का तपस्विनी रूप और सीता का निरीह, सरल तथा संयोग-वियोग में स मर्यादित स्वरूप है जो कि सबसे विलक्षण है। कृष्णाश्रयी शाखा की नायिकाएं भी पूर्णत: भिन्न हैं। जीवन के आरंभ में प्रकृति के मुक्त-वातावरण में क्रीड़ा - विलास युक्त प्रेम से पोषित और वियोग से दग्ध उनका रूप अतुलनीय है।

२७ <u>निष्कर्ष</u>

भक्ति -साहित्य में उपलब्ध नायिका के स्वरूप के इस संक्षिप्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं:-

(१) भक्ति साहित्य में नायिका के सभी रूप प्राप्त हैं। मात्रा की दृष्टि से सम सामान्या रूप लगभग नहीं है।

(२) स्वकीया और परकीया रूप मात्रा की दृष्टि से लगभग बराबर हैं। किन्तु सामाजिक नैतिकता के आग्रह से स्वकीया के महत्व को प्रकट रूप में स्वीकार किया गया है। इसी के फल-स्वरूप नायिका के परकीया रूप को भी विविध प्रकार से स्वकीयात्व प्रदान करने का असफल प्रयत्न किया गया है।

(३) नायिका का कन्यका परकीया रूप महत्वपूर्ण है। ज्ञानाश्रयी शाखा को छोड़कर शेष सभी में यह उपलब्ध है।

(४) नायिका के शास्त्रीय भेदों के अतिरिक्त अनेक अन्य भेद भी उपलब्ध हैं। इनका संबंध सामान्यत: नायिका की विविध क क्रियाओं आदि से है।

(५) ज्ञानाश्रयी एवं रामाश्रयी शाखाओं को छोड़ कर शेष में नायिका की काम-कला- कुशलता पर विशेष बल दिया गया है।

(६) सभी नायिकाएं पतिव्रता अथवा एक निष्ठ प्रेमिका हैं। वे अपने प्रेम- मार्ग पर दृढ़ रहने वाली हैं।

(७) सभी नायिकाओं के संयोगिनी और वियोगिनी रूप न्यूनाधिक्य मात्रा में उपलब्ध है। संयोगिनी रूप में ज्ञानाश्रयी शाखा में नायिका से सौभाग्य की गरिमा, रामाश्रयी शाखा में संभोग की मर्यादित सूक्ष्म संकेतिकता और शेष में उत्साह और उन्मुक्तता है। वियोगिनी रूप में ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी तथा कृष्णाश्रयी में नायिका के तीव्र विरह ने उन्हें मुखर कर दिया है तो रामाश्रयी शाखा में तथा कृष्णाश्रयी शाखा की राधा में इसने उन्हें मूक कर उनकी पीड़ा और घनीभूत कर दी है।

(८) सभी शाखाओं की नायिकाओं में बाह्य साम्य होते हुए भी उनके स्वभाव में यथेष्ट भिन्नता है।

(६) अपनी विविधता, मनोहरता और महत्ता के अनुसार यह भक्ति साहित्य की रीढ़ है और स्वतंत्र- अध्ययन की क्षमता रखने वाली है।

## सप्तम अध्याय

## हिन्दी भक्ति-काव्य में नायक-नायिका-सहायक

## सप्तम अध्याय

## हिन्दी भक्ति - काव्य में नायक-नायिका -सहायक

### भूमिका

प्रस्तुत प्रकरण में नायक-नायिका सहायक का अर्थ नायक-नायिका की श्रृंगार- क्रियाओं में सहायकों से है । साहित्य दर्पणकार ने नायक के ऐसे सहायकों में विट,चेट, विदूषक आदि -आदि को माना है ।" आदि" शब्द के अंतर्गत माली, धोबी, तमोली, गंधी आदि अन्य सभी ऐसे सहायक आ जाते हैं जिनका सब का विवरण देना अशक्य है ।[1] उसी ग्रंथ में नायिका के भावाभिव्यक्ति के उपायों को बतलाते हुए नायिका -सहायकों के रूप में दूती का उल्लेख है । यह दूती सखी, नटी, दासी, धाई की लड़की, पड़ोसिन, बालिका, संन्यासिनी,धोबिन, बढ़इन, नाइन, रंगरेजिन और स्वयं दूती आदि होती हैं ।[2] उज्ज्वल नीलमणि-कार ने चेट विट, विदूषक के अतिरिक्त पीठमर्द, प्रियनर्म सखा स्वयंदूती, आप्तदूती, वंशी की भी ऐसे सहायकों में परिगणना की है ।[3] यथार्थ में नायक -नायिका से संबंधित सभी व्यक्ति जो कि उसके कार्यकलापों में सहायक होते हैं इसके अंतर्गत आते हैं । प्रस्तुत अध्ययन में केवल उन सहायकों का ही उल्लेख किया जाएगा जो किआलोच्य साहित्य में मिलते हैं ।

---

१ श्रृंगारेऽस्य सहाया विट चेट विदूषकाद्याः स्युः ।
भक्ता नर्मसु निपुणाः कुपितवधूमान भंजनाः शुद्धाः ।। साहिय दर्पण ३।४० आदि शब्दान्मालाकार रजकताम्बूलिकगन्धि कादयः ।

२ दूत्यः सखी नटी दासी धात्रेयी प्रतिवेशिनी ।। वटी ३।[illegible] १२७
बाला प्रव्रजिता कारूः शिल्पिन्याद्याः स्वयं तथा । वही ३।१२६

३-४ देखो श्री एस० के० डे० का दि भक्ति रस शास्त्र आफ बैंगला वैष्णविज्म दि इंडियन हिस्टारिकल क्वाटर्ली भाग ८(१६३२) पृ० ६७३-६८८)

२ आलोच्य काव्य में विट, चेट, विदूषक, पीठ मर्द और प्रिय नर्म सखा का उल्लेख नहीं है । उज्ज्वल नील मणि कार ने इन सभी के उदाहरण दिये गये हैं पर वे संस्कृत भक्ति ग्रंथों के हैं । उनके अनुसार भंगुर, भृगार चेट आदि हैं । विट कडार, भारती बंधु आदि हैं । पीठ मर्द श्री दामा तथा विदूषक मधुमंगल हैं प्रिय नर्म सखा सुबल या अर्जुन हैं । हिन्दी भक्ति साहित्य में इन सखाओं के अभाव का कारण भक्ति कालीन हिन्दी काव्य का स्वरूप है । यह काव्य साहित्य शास्त्र से प्रभावित है पर उस रूप में श्रृंगारिक नहीं हैं जिस रूप में प्राचीन नाटक और शास्त्रीय ग्रंथ हैं । भक्ति- साहित्य में श्रृंगार का वह रूप प्राप्त है जिसमें सामान्यता नामक के अतिरिक्त अन्य पुरुष के लिये स्थान नहीं है । इसका एक ही अपवाद है " गुरु " और गुरु - सम साधु एवं पंडित । ये भी केवल ज्ञानाश्रयी और प्रेमाश्रयी काव्य में प्राप्त है, कृष्ण और रामाश्रयी शाखाओं में नहीं सबसे पहले इन्हीं के संबंध में विचार कर लेना उपयुक्त होगा ।

३ <u>गुरु आदि</u>

गुरु प्रेम के स्वरूप से परिचित तथानायक - नायिका का पथ निर्देशन करने वाला होता है । इस प्रकार गुरु नायक और नायिका दोनों का सहायक है । वह दोनों के हृदय में प्रेम का बीज बोता है और नायक - नायिका के परस्पर मिलन में सहायक होता है । ऐसे नायक - नायिका सहायय गुरु का वर्णन ज्ञानाश्रयी तथा प्रेमाश्रयी शाखा में ही प्राप्त है इसका कारण नायक या नायिका - ईश्वर - को निर्गुण मानना है निराकार ईश्वर के प्रति प्रेम सामान्यत: गुण श्रवण द्वारा ही हो सकता है । प्रिय के इस गुण को सुना कर हृदय में प्रेम की चिनगारी सुलगाने वाला इस निराकार के स्वरूप सेपरिचित ही कोई हो सकता है । यही व्यक्ति गुरु है । इस गुरु[४] का मारा हुआ बाण शरीर के भीतर जा कर अटक जाता है , सारे शरीर में दावाग्नि की फूट पड़ती है ।[५]

---

४ सतगुर लई कमांण करि, बांहण लागा तीर ।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतरि रह्या सरीर ।। साखी १ ।

५ सतगुर मार्‍या बाण भरि, धरि करि सूधी मूठि । वही-१।-

इसी गुरु[6] के बतलाए दांव पर ही तो यह प्रेम का खेल खेला जाता है । उस सतगुरु के रीझने पर ही प्रेम का बादल बरसता है जिससे संपूर्ण शरीर भीग जाता है ।[7] इस प्रकार ज्ञानाश्रयी शाखा में गुरु की महत्ता प्रिय से मिलाने वाले के रूप में गाई गई है । गुरु की महत्ता का उल्लेख इस शाखा में काफी है पर श्रृंगार की स्वल्पता के कारण गुरु का कार्य अधिक स्पष्ट नहीं है, किन्तु सहायक रूप में उसकी स्थिति असंदिग्ध है ।

प्रेमाश्रयी शाखा में इस " गुरु " या गुरु-सम " सहायक का अधिक विस्तार है । इसके दो रूप प्राप्त होते हैं ।एक तो ज्ञानाश्रयीशाखा की ही भांति गुण-कथन द्वारा नायक -नायिका के हृदय में प्रेम उत्पन्न कराने वाला रूप । पद्मावत में ही गुरु का यह रूप उपलब्ध है । यह राजा से पद्मावती की चर्चा अत्यंत चतुरता से करता है । जिस समय राजा हीरामन से पूछता है कि तुम अपनी कथा सत्य-सत्य कह कर बतलाओ कि किसका अन्याय है उस समय हीरामन कहता है, " हे राजा, सत्य कहने से चाहे प्राण चले जांय, मैं कभी अपने मुख से असत्य न कहूंगा । मैं सत्य का आश्रय ले इसी विश्वास से निकला हूं, नहीं तो सिंहल द्वीप में राजा के घर था । पद्मावती वहां के राजा की कन्या है । विधाता ने कमल की गंध और चंद्रमा के अंश से उसे रचा है । उसका मुख चन्द्रमा के समान और अंग मलयागिरि की गंध लिए है । वह बारह बानी एवं सुगंधित सोने से बनी है । सिंहल द्वीप में जो गंध -युक्त पद्मिनी हैं वे सब उसी की छाया हैं । मैं हीरामन उसी का पक्षी हूं । उसी की सेवा करते हुए मेरे गले में कंठ फूटा अर्थात् कंठे का चिन्ह पड़ा, और मुझे मनुष्य की भाषा मिली , नहीं तो मुट्ठी भर पंख का मैं कहां होता

---

६ पासा पकड़्या प्रेम का, सारी किया सरीर ।
सतगुर दाव बताइया, खेलै दास कबीर ।। १।३२

७ सतगुर हमसूं रीझि करि, एक कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ।। १। ३:

जब तक जीऊंगा, रात दिन उसका स्मरण करूंगा । मरण के समय भी उसी का नाम लेता रहूंगा । उसी ने मुझे मुख से रक्तवर्ण और शरीर से हरा वर्ण किया । इस सुर्ख रूई तथा हरियाली को मैं उस लोक में भी ले जाऊंगा ।[८] इस प्रकार अत्यंत चतुरता से सुआ राजा के मन में गुण-श्रवण द्वारा पद्मावती के प्रति प्रेम उत्पन्न करता है । इसी प्रकार यह सुआ पद्मावती के हृदय में भी रत्नसेन के प्रति प्रेम उत्पन्न करने का प्रयत्न अवसर मिलते ही करता है । रत्नसेन के सिंहल द्वीप पहुंचते ही सुआ पद्मिनी से रत्न सेन की चर्चा करता है । वह बतलाता है कि तुम्हारे प्रेम में वह जोगी बन कर यहां आ गया है ।[९] वह दोनों की जोड़ी की उपयुक्तता बतलाता है ।[१०] हीरामन के इन सब कथनों द्वारा पद्मावती का मन रत्नसेन में अनुरक्त हो जाता है ।[११] इस प्रकार हीरा मन गुणकथन द्वारा नायक तथा नायिका दोनों के हृदय में प्रेम उत्पन्न कराने वाला है ।

गुरु का दूसरा रूप पथ-प्रदर्शक का है । वह नायक का पथ प्रदर्शन कर उसे नायिका से मिलाने के लिये ले जाता है । किंतु इसके पूर्व वह नायक की परीक्षा लेता है और भली प्रकार विश्वास होने के बाद ही वह नायक को नायिका के पास ले चलने को तैयार होता है । हीरामन भी रत्नसेन की परीक्षा लेता है । वह प्रेम पंथ की कठिनाइयां बतलाते हुए कहता है, 'हे राजा, प्रेम की बात सुनकर मन को भुलावे में न डालो । प्रेम कठिन है, उसके लिए कोई सिर दे तो प्रेम उसे फबता है । जो प्रेम के फंदे में पड़ा फिर नहीं छूटा । अनेकों ने प्राण दे दिए पर फन्दा नहीं टूटा । जैसे गिरगिट अनेक रंग बदलता है, वैसे ही प्रेमी अनेक दुःख उठाता है । क्षण में लाल, क्षण में पीला, क्षण में श्वेत हो जाता है । प्रेम की पीड़ा मोर जानता है, जो उसके कारण वन में जा कर घूम रहा है । उसके रोम रों में प्रेम की नागफांसी के फंदे पड़े हैं । पंखों में भी घूम घूम कर वही फंदा पड़ा है जिसके कारण वह उड़ कर अब भी न[illegible] और उलझ कर बंदी बन गया है । रात दिन मुयों-मुयों [illegible] और इसी क्रोध में सांपों को पकड़-पकड़ कर खाता है । [illegible] सुग्गे के कंठ में वही चिह्न पड़ा है । जिसकी गर्दन में [illegible]

---

८ पद्मावत १.३
९ पद[illegible] १८

जाता है वह प्राण ही दे देना चाहता है। तीतर की गर्दन में जो वही फंदा है उसी के दोष से नित्य चिल्लाता रहता है और ( फंदे वाले को ) शक्ति भर पुकार कर फंदे में गर्दन डाल देता है कि कब वह फंदा प्राणान्त कर दे जिससे मोक्ष मिल जाय।[१२] रत्नसेन को सिंहल द्वीप चलने के लिए उद्यत देख कर हीरामन पुन: प्रेम पंथ की कठिनाई और उसके सुखमय जीवन की विषमता बतला कर उसकी और भी परीक्षा करता है। वह कहता है, "है राजा मन में विचारो। प्रीति करना कठिन काम है। अब तक तुमने घर की पोई हुई रोटियां खाई हैं। तुम उस भौंरे के समान हो जो कुमुदिनी पर बैठा है, कमल पर नहीं। वही भौंरा इस मर्म को जानता है, जो इस मार्ग में छूटा है। वह अपना प्राण देता है, और देने पर भी नहीं छूटता। ------। तुम राजा हो, सुख चाहते हो। योग और भोग इनमें मेल कहां? केवल इच्छाओं से सिद्धि नहीं प्राप्त होती जब तक तप न साधा जाय। इसे वही बिचारे जानते हैं जो अपना सि काट कर रख देते है।[१३] । दैव ने प्रेम का पर्वत कठिन बनाया है। वही उस पर चढ़ सकता है, जो सिर के बल चढ़ता है। उस मार्ग में सूलियों के अंकुर निकले हैं। या तो चोर उन सूलियों पर चढ़ते हैं या मनसूर चढ़ा था।"[१४] जब उसे राजा के प्रेम का दृढ़ विश्वास हो जाता है, तब राजा पूर्णरूपेण उसे गुरु मान लेता है तब वह उसका पथ प्रदर्शन करता है।[१५] चित्रावली में गुरु की स्थिति कुछ भिन्न है। मित्रावली और सुजान दोनों के हृदय में प्रेम चित्र दर्शन द्वारा हुआ था। दोनों ही नहीं जानते थे कि दूसरा कौन है। चित्रावली ने सुजान का पता लगाने के लिए अपने नपुंसक भृत्य चारों दिशाओं में भेजे जिनमें से एक का नाम परेवा था।[१६] इसे सुजान का पता मिला और अत्यंत चतुरता द्वारा चित्रावली की चित्र सारी और उसके चित्र का उल्लेख कर इसने सुजान के मन में पूर्वराग जाग्रत किया।[१७]

---

१२ वही ६७

१३ वही १२३

१४ वही १२४

१५ वही ६८, ११४, १५६

उसके पश्चात चित्रावली के सौंदर्य का संकेत संकेत कर अपना परिचय दिया ।[१८] कुंवर के हृदय में चित्रावली के प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है और वह चित्रावली के इस भृत्य को अपना गुरु मान लेता है ।[१९] किंतु परेवा भी हीरामन की ही भांति चतुर है । वह चित्रावली के नखशिख वर्णन द्वारा कुंवर का प्रेम उद्दीप्त करता है और जब कुंवर उसके चरणों पर पड़कर चित्रावली के दर्शन के लिए ले चलने की प्रार्थना करता है तो परेवा इस पथ की कठिनता विस्तार से बतलाता है ।[२०] इस पर भी जब कुंवर विचलित नहीं होता तथा जब परेवा उसके प्रेम की दृढ़ता देख लेता है तब गुरु बन कर उसे ले जाता है ।[२१]

गुरु के अन्य कार्यों का एक अन्य पक्ष भी है । नायक नायिका के मिलन में सहायक होने के साथ-साथ यह दोनों का विश्वास पात्र तथा संदेश वाहक होता है । पद्मावत में जिस समय रत्नसेन योगियों के साथ सिंहलगढ़ घेर लेता है और उसके दूत लौट कर नहीं आते हैं तब वह सुए के हाथ पद्मवती के पास पत्र भेजता है ।[२२] सुआ भी पद्मावती से उसके(राजा के) प्रेम का वर्णन कर उस पत्र को देता है ।[२३] और उसका उत्तर राजा के पास लाता है ।[२४] इसी प्रकार जिस समयबंदी रत्नसेन को सूली मिलने को होती है तब पद्मावती उसे बुला कर कहती है, हे गुरु सुग्गे, मुझे बताओ वह कौन सी करनी(कला) है जिससे परकाय प्रवेश होता है, आदि ।[२५]

---

१८ वही १७२-१७३

१९ ,, १७४

२० चित्रावली १९६-२१३

२१ वही २१४-२१६

२२ पद्मावत मसि नैना लिखनी बरुनि रोइ रोइ लिखा अकथ्थ ।
आखर दहै न कहुं कोइ गहै सो दीन्ह सुवा के हत्थ।। २२३

२३ वही २२७- २३०

२४ वही २३२-२३६

२५ कौन सो करनी कहु गुरु सोई । पर काया परवेस
जो होई ।। वही २५७

ऐसी स्थिति में सुग्गा उसे सांत्वना देता है । इस प्रकार दौत्य कर्म के साथ-साथ गुरु कठिन परिस्थिति में धैर्य धारण ~~करने~~- कराने वाला भी है । अतः नायक और नायिका दोनों के सहायक रूप में प्रेमाश्रयी शाखा में गुरु का महत्व पूर्ण स्थान है । मधुमालती में गुरु का उल्लेख नहीं है । गुरु का एक अन्य रूप भी है जिसमें रत्नसेन अन्य राजकुमारों का गुरु है ।[२६] यह महत्वपूर्ण नहीं है ।

<u>द्रष्टव्य</u>

इस संबंध में एक बात द्रष्टव्य है । रत्नसेन और पद्मावती समय-समय पर सुग्गे को गुरु कहते हैं । सुजान परेवा को गुरु कहता है । किन्तु सुग्गा और परेवा दोनों ही जानते हैं कि यथार्थ गुरु कौन है ।[२७] ईश्वर- पद्मिनी ही रत्नसेन की यथार्थ गुरु है । पद्मावती भी इस तथ्य से अभिज्ञ है तभी तो कहती है, 'वह उलट कर किस विधि से मार्ग चला कि चेला गुरु हो गया और गुरु चेला हो गया ।'[२८]

---

२६ गुरु हमार तुम्ह राजा हम चेला औ नाथ ।
जहां पांव गुरु राखै चेला राखैमाथ ।। वही १४७

२७ तुम्ह कहं गुरु मया बहु कीन्हा । कीन्हा अदेस आदि कहं दीन्हा
।। पद्मा० १८२

तथा वह सो गुरू हौं ओंकर चेला । वहिक नाउ हम मुंदरा मेला ।। चित्रा १७३

तथा गुरू कर बचन सुवन दुहुं मेला । कीन्ह सुदिस्टि बेगि चलु चेला ।।
जस तुम्ह कथा कीन्ह अगिडाहू । सो सब गुरु कहं भएउ अगाऊ ।।
पृ० २३६

२८ तथा सो पदुमावति गुरु हौं चेला । जोग तंत जेहि कारन खेला ।। व २४६

२८ पलटि सो पंथ कौन बिधि खेला । चेला गुरू गुरू भा चेला ।। वही २५६

इस स्थिति में पद्मावती को सांत्वना देते हुए सुग्गा कहता है कि रानी तुम्ह ही गुरू हो, वह चेला है।[२६] इस प्रकार इस काव्य में गुरू शब्द का प्रयोग दो अर्थों में हुआ है -- एक पथ प्रदर्शक और दूसरा इष्ट या साध्य के रूप में। इसके पीछे संभवत: यह विचारधारा है कि ईश्वर ही 'जगद्गुरू' है। संसार में गुरू उसका प्रतीक, उसका दर्शन कराने वाला तथा उस तक पहुंचाने वाला है। संसार में गुरू को अपने इस रूप को नहीं भूलना चाहिए। इसी तथ्य को जायसी ने पद्मावत में अत्यंत मनोरम रूप में व्यक्त किया है। किन्तु नायक-सहाय्य रूप में गुरू का हीरामन तोता या परेवा भृत्य वाला ही रूप मान्य है।

४ वंशी

कृष्णाश्रयी-शाखा में नायक-सहाय्य रूप में वंशी का स्थान भी भक्ति शास्त्रकारों ने माना है। यह उपयुक्त नहीं है। सामान्यत: आलम्बन की चेष्टाओं के अंतर्गत होने के कारण यह उद्दीपन है पर भक्ति शास्त्रकारों ने उसे एक प्रथक अस्तित्व प्रदान कर दिया है। कृष्ण की यह योग माया है। अपनी मधुर तान द्वारा यह गोपियों को कृष्ण की ओर आकर्षित करती है। गोपियों की उसके प्रति सौतिया डाह भी है। इस आधार पर उसे नायक सहाय्य माना जा सकता है। किंतु ऐसी स्थिति में तो आलंबन की सभी क्रियाएं, सभी गुण, सभी आभूषणादि भी नायक सहाय्य हो जाएंगे। यथार्थ में ऐसे ही नायक-सहाय्यों को उद्दीपन कहा गया है। प्रस्तुत संदर्भ में नायक सहाय्य का अर्थ है वे व्यक्ति जो नायक की श्रृंगारिक चेष्टाओं में सहायक होते हैं। व्यक्तित्व के अभाव में वस्तुओं और क्रियाओं को नायक-नायिका सहाय्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती।

---

२६ अनु रानी तुम्ह गुरू वहु चेला। मोहि पूंछहु कै सिद्ध नवेला
तुम्ह चेला कहं परसन भई। दरसन देइ मंडप चलि गई।।
रूप गुरू कर चेलैं डीठा। चित समाइ होइ चित्र पईठा।।
वही २५८

५ सखा

भक्ति-काव्य में नायक-नायिका सहायक रूप में सखा का बड़े अंश में अभाव है। ज्ञानाश्रयी और रामाश्रयी शाखा में इसके उल्लेख प्राप्त नहीं हैं। प्रेमाश्रयी शाखा में दो स्थलों पर इनकी कल्पना हो सकती है। जिस समय रत्नसेन जोगी बनकर सिंहलगढ़ के लिए प्रस्थान करता है उस समय उसके साथ अनेक सामंत-गण भी जोगी बनकर चल दिए थे। उन्होंने रत्नसेन को अपना गुरू माना था। सिंहल गढ़ को रत्नसेन ने उन्हीं की सहायता से छेंका था और वे सभी नायक रत्नसेन की सिद्धि में सहायक बने। इस रूप में इनकी स्थिति सखाओं में मानी जा सकती है। इस संबंध में दृष्टव्य है कि रत्नसेन-पद्मावती की ~~संयोग~~ शृंगारी लीलाओं में इनका प्रवेश नहीं था।

कृष्णाश्रयी शाखा में कृष्ण की अनेक शृंगारी लीलाएं हैं। इनमें से कुछ में कृष्ण के सहायक मित्र आदि अवश्य रहे होंगे। ऐसी एक लीला दान लीला और दूसरी पनघट लीला है। इन लीलाओं का स्वरूप ही ऐसा ही कि ये अकेले संभव नहीं हैं। अत: इन लीलाओं में कृष्ण के सखा अवश्य रहते रहे होंगे जिनका यत्र-तत्र उल्लेख भी मिलता है।[30] दोनों ही प्रसंगों में कृष्ण की उपर्युक्त क्रीड़ा में ये सहायक होते हैं। दानलीला के प्रसंग में सूरदास ने कुछ सखाओं का नामोल्लेख भी किया है। ये निम्नलिखित हैं--सुबल, सुदामा, श्रीदामा।[31] अन्य का नामोल्लेख नहीं है। कृष्ण इन सखाओं पर अपना राधा प्रेम भी प्रकट करते हैं[32] किंतु उनकी संभोग लीला, मान, अभिसार आदि में सखाओं का प्रवेश नहीं है। ये सभी नायक सहायक माने जा सकते हैं।

इस संबंध में उद्धव की स्थिति विचारणीय है।

---

३० सूरसागर पृ० ७४६-८६०

३१ नंद नंदन इक बुद्धि उपाई।
जे वै सखा प्रकृति के जाने, ते सब लए बुलाई।।
सुबल, सुदामा, श्रीदामा मिलि, और महर-सुत आए।
जो कछु मंत्र हृदय हरि लीन्हो, ग्वालनि प्रगट सुनाए।

भली बुद्धि यह रची कन्हाई, सखनि कह्यौ सुख पाइ।
सूरदास प्रभु-प्रीति हृदय की, सब मन गई जनाई।। सूरसागर २११०

३२ स्याम सखनि ऐसैं समुझावत।
ब्रज-बनिता ललितादिक, देखि बहुत सुख पावत।

उद्धव कृष्ण के सखा हैं। वे कृष्ण का निर्गुण-ब्रह्म वाला संदेश लेकर गोपियों के पास गए थे और अंत में उन्होंने कृष्ण से गोपियों के अद्भुत प्रेम का निवेदन भी किया, किंतु फिर भी वे कृष्ण के सहायक नहीं कहे जा सकते। इसके कई कारण हैं। प्रथम, कृष्ण ने उद्धव को अपना संदेश लेकर, दूत बना कर नहीं भेजा था। उनका उद्देश्य तो उद्धव के ज्ञान-गर्व को तोड़ना, उन्हें शिक्षा देना था। द्वितीय, जो संदेश उद्धव ले गए थे तथा जिस ज्ञान का उपदेश उन्होंने दिया था वह प्रेम का नहीं था, नायक-नायिका को मिलाने वाला नहीं था। वह तो दोनों को सदा के लिए विलग करने वाला था। इस प्रकार भी वे दोनों के सहायक नहीं थे। तृतीय, यद्यपि लौट कर उन्होंने कृष्ण से गोपियों के अद्भुत प्रेम का वर्णन किया है पर उस वर्णन का का कारण उनका संदेश वाहक या सहायक होना न होकर गोपियों के प्रेम से स्वयं विह्वल होना था। इस प्रकार यहां भी वे गोपियों के सहायक रूप में कृष्ण के पास नहीं आते। अतएव कृष्ण के सहायकों में उन्हें स्थान नहीं दिया जाना चाहिए।

६- उद्धारक-बंधु एवं भगनी

कभी-कभी किसी संकट में पड़े व्यक्ति का उद्धार करने वाला उसका घनिष्ट मित्र भी बन जाता है। यदि ये दोनों स्त्री-पुरुष हुए तो इनमें परस्पर प्रेम उत्पन्न होने की संभावना रहती है; किंतु कभी-कभी यह प्रेम भाई-बहन के पवित्र संबंध का रूप धारण कर लेता है, और ऐसा भाई अपनी बहन के दुख को दूर करने के लिए जी जान लगा देता है तथा ऐसी बहन भी भाई के सुख के लिए कुछ उठा नहीं रखती। इस रूप में विपत्ति-उद्धारक बंधु एवं भगनी परस्पर एक दूसरे के सहायक हो जाते हैं। भक्ति-काव्य में इसका उदाहरण मधुमालती में उपलब्ध है। मनोहर ने राक्षस के पंजे से प्रेमा का उद्धार किया। प्रेमा का पिता मनोहर से उसका विवाह करना चाहता था किंतु भाई-बहन के संबंध को मानकर प्रेमा यह विवाह नहीं करती तथा मनोहर को मधुमालती से मिलने में सहायता देती है।[33] इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप ही

---

३३ मा[illegible] - ११।

मधुमालती और मनोहर विवाह के पूर्व मिलने में समर्थ होते हैं। इसी के अनुरूप ताराचंद पत्नी-रूपणी मधुमालती को अपनी बहन बताता है और उसकी सहायता की प्रतिज्ञा करता है।[३४] मनोहर और मधुमालती भी अपने सहायक प्रेमा और ताराचंद के विवाह में सहायक होते हैं।[३५]

७- देवता आदि मनुवेतर प्राणी

कभी-कभी देवतादि मानवेतर प्राणी भी नायक-नायिका के सहायक हो जाते हैं। ऐसे रूप में प्रेमाश्रयी काव्य में उपलब्ध हैं। पद्मावत में महादेव तथा पार्वती[३६] रत्नसैन के सहायक होते हैं, फिर युद्ध में ब्रह्मा, कृष्ण आदि देवता भी[३७] रत्नसैन की सहायता करते हैं और लक्ष्मी[३८] भी रत्नसैन-पद्मावती की सहायता करती हैं। चित्रावली में सुजान और चित्रावली में पूर्वराग उत्पन्न दो देवों[३९] के कारण हुआ था जो कि सुजान को चित्रावली की चित्रसारी में रख आए थे। मधुमालती में दो अप्सराएं[४०] दोनों को प्रथम बार मिलाती हैं। इन मानवेतर प्राणियों के द्वारा नायक-नायिका का मिलन और प्रेम हुआ इन्हें भी सहायक की संज्ञा दी जा सकती है।

---

३४- येहि सुनि कुंअर कहा सुनु माता, बाचा मोहिं तोंहि बीच विधात
बाचा बहिनि मोरि दुहिता तोरी, जस जननी वोहि के तस मोरी
सुपुरूण बाचा प्रान संग जाई, जात जन्म तो रहत रहाई।
जो मैं बाचा किअ तोहिं सै, मोहि प्रतिया है सोई।
जो एहि मिलै मनोहर, तब हम के सुख होय ।। पृ ११८

३५- वही पृ १४१-१४६

३६- पद्मावत २११-२१७

३७- वही २६४

३८- वही ४१७

३९- चित्रावली ८१

४०- मधुमालती पृ २३

८- दूत

दूत उसे कहते हैं जिसे विविध कार्यों के लिए जहां-तहां भेजा जाया करता है । दूत तीन प्रकार के होते हैं-- (१) निसृष्टार्थ--यह दोनों के मन की बात जानकर स्वयं ही सभी प्रश्नों का समाधान किया करता है और जो भी कार्य हो उसे समीचीनतया संपादित कर सकता है । (२) मितार्थ थोड़ी बात करता है पर जिस कार्य के लिए भेजा गया हो उसे अवश्य सिद्ध कर आता है । (३) संदेशहारक दूत उतनी ही बात कहता है जितनी उसे बताई जाए ।[४१]

भक्ति काव्य में दूतों का उपयोग हुआ है । प्रेमाश्रयी तथा रामाश्रयी शाखाओं में ही ये दूत मिलते हैं । प्रेमाश्रयी शाखा में हीरामन, परेवा तथा हंस मिश्र ऐसे ही दूत हैं । हीरामन तथा परेवा के दौत्यकार्य का उल्लेख गुरू-प्रसंग में पीछे किया जा चुका है । हंस मिश्र चौदहों विद्याओं में सुजान था तथा कौलावती का विरह संदेश लेकर सुजान के पास गया था । चित्रावली के आदेश से उस नगर में 'कौलं' नाम लेने की मनाही इस भय के कारण थी कि कहीं सुजान को कौलावती स्मृति न आ जाए । अतएव चतुर दूत हंस मिश्र सुजान से काम शास्त्र की चर्चा के द्वारा मित्रता स्थापित करता है और एक दिन भ्रमर के गुंजार के माध्यम से कौलावती का संदेश सुनाता है और नायक के हृदय में उसके प्रति प्रीति उत्पन्न करता है ।[४२]

---

४१- साहित्य दर्पण ३।४८-४६

४२- हंस मिसिर कुल केर निधाना, चौदह विद्या पढ़े सुजाना ।

पैज बाँधि गौनी वहि देसा, लै पहुचावौं तोर संदेसा ।।

औ जोगी कुंवरहि लै आऊं, हंस मिसिर तौ नाऊं कहाऊं।।

चित्रा ५४८

तथा हंस मिसिर अस गुन परगासा, कुंवर हिए भीतर होए --

कहहिं कि अलि गुंजार नरेसा, आनि सुनाउ कहूंक --

तथा हंस बचन सुनि कुंवर सचेता, चढ़ेउ आइ हिय अंबुज हेता ।। ५७

दूत का नायक सहायक रूप में दूसरा उल्लेख रामाश्रयी शाखा में है जिसमें यह दौत्य-कर्म हनुमान जी करते हैं। वे राम का संदेश सीता के पास ले जाते हैं तथा सीता का संदेश राम को आकर सुनाते हैं। हनुमान के इस कार्य का मानस[४३] तथा गीतावली[४४] में काफी विस्तार है।

ये सभी दूत अपने कार्य में अत्यंत कुशल हैं। इनके संदेश इसके प्रमाण हैं। इनकी गणना निसृष्टार्थ दूतों में हो सकती है।

६- दूती :

भक्ति कालीन साहित्य में उपर्युक्त के अतिरिक्त जो अन्य सहायक हैं वे नायक-नायिका दोनों के अथवा कुछ केवल नायिका के ही हैं। अतएव उन सभी सहायकों का वर्णन यहाँ मिश्रित रूप में किया जा रहा है। ऐसे उभय सहायकों में दूती सबसे प्रमुख है। यह सामान्यत: नायिका की सहायिका होती है पर नायक भी इसके उपयोग से इष्ट सिद्धि करते हैं।

भक्ति काव्य में केवल कृष्ण साहित्य में ही दूती का विस्तृत उल्लेख है। यह दूती नायक तथा नायिका दोनों की सहायिका है। यह उल्लेख भी विशेष रूप से विद्यापति में प्राप्त है। अन्य भक्त कवियों ने दूतियों का विशेष वर्णन नहीं किया। कहीं कहीं सखी से ही दौत्य कर्म कराया है। केवल स्वयं दूती के कुछ उदाहरण प्राप्त हैं।

विद्यापति की दूतियाँ बड़ी कुशल, प्रगल्भ और ढीठ हैं। अनेक अवसर पर वे नायक की भर्त्सना करने से भी नहीं चूकतीं :-

---

४३- मानस, सुंदरकाण्ड १४-१५ तथा वही ३०-३१
४४- गीतावली, सुंदरकाण्ड ८, ११, १७, १८, १९, तथा रामचंद्रिका १३।८८-९५ तथा १४।२७-३१

माधव, इ नहि उचित विचारे ।
जनिक एहन धनि काम-कला सनि
से किअ कर व्यभिचारे । [४५]

अथवा

आरति आपु पबार न चिन्हह
घरह कत कुवानि ।
अपनि रमनि राग सन्तावह
परक पेयसि आनि ।।
कन्हा तोंअ बड़ लोक निसंक ।
हसि हसि सेहे करम करसि
जे हो कुल-कलंक ।।
जाहि जाहि तोहि गुरू निवारए
ताहि तोरा निरबन्ध ।
आंखि देखि जे काज न करए
ताहि पारे के अन्ध ।।
तथुह चीर समागम मागह
एत बड़ तोर लोभ ।
परक भूसने परक वैभवे
कत खन छहु सोभ ।।

दूतिक वचने कान्ह लजाएल
कवि विद्यापति भाने ।
जे भेल से भेल जेहि जेहि गेल
आवे कर अवधाने ।। [४६]

( तुम्हारी भोगासक्ति इतनी (प्रबल) है कि तुम अपने ही रत्न (प्रवाल) को पहचान नहीं सकते । कितनी बुरी बात करते हो, दूसरे की प्रयसी को लाकर अपनी रमणी को रामान्वित करके सन्तप्त करते हो । कन्हायी, तुम नितान्त भय हो, हंस हंस कर वही काम करते हो जिससे कुल कलंक हो ।

---

४५- विद्यापति ३८०
४६- विद्यापति

जिस-जिस के लिए तुम्हें गुरूजन निवारण करते हैं उसी के लिए जिद करते हो। जो आँख से देख कर कार्य नहीं करता, उससे बढ़कर अन्धा और कौन है ? वही दीर्घ समागम चाहते हो। तुम्हारा लोभ इतना बड़ा है, दूसरों के भूषण से, दूसरों के वैभव से कितनी देर शोभा पावोगे ? कवि विद्यापति कहते हैं, दूती के वचन से कन्हायी ने लज्जा पायी। जो कुछ भी हुआ सो हुआ, अब मनोयोग (सावधान)करो।

यथार्थ में संपूर्ण विद्यापति-साहित्य ही लगभग दूती की क्रियाओं से पूर्ण है। वह नायक और नायिका के संदेश ले जाती है। वह नायक के लिए तरह-तरह से नायिका को फंसा कर लाती है। मान के अवसर पर नायक और नायिका दोनों को ही मनाती है। दूती की ऐसी बहुरंगी सर्जना विद्यापति ने की है कि उसका वर्णन असंभव है। यह अन्य भक्तों की सखियों के समकक्ष है।

स्वयं दूती में भी विद्यापति ही सर्वप्रमुख है। यों तो सूरदास ने भी कृष्ण का नायिका रूप धारण कर राधा को मनाने और लुभाने जाने का चित्रण किया है पर वह सच्चे रूप में स्वयं दूती के अंतर्गत लिया जा सकता है इसमें संदेह है। स्वयं दूती का एक सुंदर उदाहरण विद्यापति से ही नीचे दिया जा रहा है:-

कमल मिलल दल मधुप चलल घर विहग गहल निज ठामे।
अरे रे पथिक जन थिर रे करिअ मन बड़ पांतर दुर गामे।।
ननदि रूसिए रहु परदेस बस पहु सासुहि न सुझ समाजे।
निठुर समाज पुछार उदासीन आओर कि कहब बे आजे।।
चन्दन वारू चम्प घन चामर अगर कुंकुम घरवासे।
परिमल लोभे पथिक नित संचर तंइ नहि बोल्य उदासे।।
विद्यापति मन पथिक वचन सुन चिते बुझि कर अवधाने।
राजा शिवसिंह रूपनारायण लखिया देई रमाने।।[47]

अन्य कवियों में प्राप्त स्वयं दूती रूप नायिका स्वरूप अंतर्गत दिया जा चुका है अत: यहां उसकी पुनरुक्ति अनावश्यक

---

४७- वही १६ देखें परमानन्द

१०- सखी

दूती के अंतर्गत तथा उनसे कुछ भिन्न स्थान सखी का है। दूती वह है जो दौत्य काम करती है। यदि वह नायिका की समवयस्का, समान सामाजिक स्तर की होती है तो उसे सखी कहते हैं। यदि वह नायिका की सखी नहीं होती तो उसे दूती मात्र कहते हैं। भक्ति साहित्य में नायिका-सहायुय रूप में सखी ही सबसे महत्वपूर्ण है। उसके मनोविज्ञान एवं स्वरूप के संबंध में नीचे विस्तृत विवरण दिया जा रहा है।

नायक-नायिका-सहायुय में सखी का विशेष महत्व है। वैष्णव संप्रदाय में तो यह और भी अधिक है। यथार्थ में वैष्णव भक्तों ने इष्टदेव की श्रृंगारिक लीलाओं में अपना तादात्म्य सदा सखी से किया है, इष्टदेवी से नहीं। किसी भी वैष्णव भक्त-कवि ने कृष्ण से संभोगेच्छा व्यक्त नहीं की है। उन्होंने तो सदा राधा-कृष्ण की प्रेम लीलाओं का दर्शक रूप में आनन्द लिया है अथवा उनकी लीला में विभिन्न प्रकार से सहायक हुए हैं। इस रूप में वैष्णव भक्तों का काम एक भिन्न धरातल पर है। इसे 'सखी-भाव' कहा जा सकता है। इस सखी-भाव का क्या कारण है? इसके रहस्य तथा भक्ति-साहित्य में प्राप्त 'सखी' के स्वरूप को जानने का प्रयत्न यहां किया जाएगा।

११- सखी-भाव का धार्मिक कारण

सखी-भाव की भक्ति का धार्मिक महत्व महाप्रभु चैतन्यदेव ने बतलाया है। राय रामानन्द से उन्होंने इसे भगवद्भक्ति प्राप्त करने की सर्वोत्तम विधि कहा है।[४८] इस महत्ता का कारण निम्न-लिखित है :-

सामान्य वैष्णव विचार धारा के अनुसार जीव कृष्ण की तटस्थ-शक्ति है। पुरूष रूप में अपनी प्रकृति के कारण इसमें पुरूषाभिमान रहता है। भगवान की स्वरूप-शक्तियों में वह अपना उपयुक्त स्थान प्राप्त कर सके इसके लिए आवश्यक है कि उसका यह पुरूषाभिमान नष्ट हो जाए। यह कार्य उसका स्त्री-रूप धारण

कर ही हो सकता है । यह स्त्री-रूप अपना इष्ट देवी से तादात्म्य कर अथवा उनकी सखी या दूती से तादात्म्य कर ही हो सकता है । भक्त जब प्रथम रूप ग्रहण करता है तब वह 'राम की बहुरिया' हो जाता है । सगुण भक्तों के लिए इष्ट देवी से यह तादात्म्य संभव नहीं है । उसके लिए सखी या दूती से ही तादात्म्य का मार्ग रहता है । इनमें सखी से तादात्म्य दूती से श्रेष्ठ है ।

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, पुरुष ने लीलानन्द के लिए अपने को पुरुष और प्रकृति या कृष्ण और राधा-रूप में विभक्त कर लिया । ये राधा-कृष्ण केवल दार्शनिकों और कवियों की कल्पना मात्र नहीं हैं । ये मूर्त, सत्य हैं तथा इनकी नित्य लीला अलौकिक वृंदावन में होती रहती है । पौराणिक राधा-कृष्ण की ब्रज-मंडलांतर्गत लीलाएं भी उसी अलौकिक पुरुष-प्रकृति की लीलाएं हैं जिनका उद्देश्य भक्तों को भी रसानन्द प्रदान करना था । पौराणिक राधा-कृष्ण की लीला द्वारा अलौकिक लीला का रहस्य भक्तों ने गाया है । इस लीला में प्रवेश ही जीव की मुक्ति है ।

राधा-कृष्ण की यह अप्राकृत लीला अनेक रसात्मक रूप में चलती रहती है । इस लीला के परिकर राधा, कृष्ण, वृंदावन और सखी-मंडल हैं । ये सभी अलौकिक हैं । इस लीला में सखियां विभिन्न प्रकार से राधा-कृष्ण की सेवा द्वारा आनन्द लेती रहती हैं । भक्त कवि भी इसी लीला का दर्शन या आनन्द लेना चाहता है । क्योंकि इस नित्य, अलौकिक लीला में प्रवेश केवल रूप-यौवन-संपन्न किशोरी सखियों को ही है, अतएव यदि भक्त इस लीला का आनन्द लेना चाहता है तो उसे भी इन्हीं रूप-यौवन-संपन्न किशोरी सखियों से अपना तादात्म्य करना होगा । यही तादात्म्य सखी भाव और भक्तों का मोक्ष है । इस तादात्म्य द्वारा अपनी साधना की स्थिति के अनुसार भक्त या तो साधारण सखी की भांति निकुंज-रंध्रों से इस लीला को देख सकता है अथवा विशेष सखियों की भांति प्रिय-प्रिया के विलास में सहायक हो सकता है । अपनी इसी स्थिति और आनन्द का वर्णन भक्त कवियों ने सखी रूप से किया है । इसी ही रूप में यह संभव है ।

१२- सखी-भाव का मनोवैज्ञानिक कारण

ऊपर हम बता आए हैं कि वैष्णव भक्तों के लिए पुरूषाभिमान मिटा देना आवश्यक है। पुरूष तो केवल एक ही, कृष्ण हैं और सभी तो स्त्री हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी संसार में पूर्ण पुरूष कोई नहीं है। स्त्री-पुरूष-गुणों का मिश्रण सभी जीव में होता है। कभी-कभी किसी व्यक्ति में बाह्य रूप से पुरूष या स्त्री होने पर भी उसमें मूल-भावनाएं विरोधी लिंग की अधिक होती हैं। ऐसे पुरूषों की प्रकृति स्त्रीमय होती है। कभी-कभी उनमें स्त्रियों के अनेक गुण भी प्राप्त होते हैं, जैसे लज्जा, पतली आवाज आदि। इसके विपरीत मर्दानी स्त्रियां भी होती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकतर भक्त बाह्य रूप में पुरूष होते हुए भी मूल रूप में स्त्री-तत्वों से पूर्ण थे। सखी और दूती का रहस्य संभवत: उनके इसी स्त्रीयत्व और स्त्री-मनोविज्ञान में है।

डा० हेलन ड्यूट्श के मतानुसार मनोविज्ञान और विशेषकर स्त्री-मनोविज्ञान में तादात्म्य की क्रिया बहुत ही अधिक महत्वपूर्ण है पूर्व तरूणावस्था में यह स्थिति अक्सर विकसित हो जाती है। ऐसा देखा गया है कि जो बालिका जितनी ही अधिक कोमल एवं भावुक होगी, वह उतना ही अधिक वयस्कों से अपना तादात्म्य करने का प्रयत्न करेगी जिससे कि वह अपने स्वभाव का संतुलन समाज से कर सके।

तादात्म्य की विकास सरणि बतलाते हुए डॉ० ड्यूटश का अनुमान है कि बाल्यावस्था में यह तादात्म्य माता-पिता से होता है। अवस्था के विकास के साथ बालिकाओं में पूर्व-तादात्म्य को छोड़कर नए तादात्म्य करने की प्रवृत्ति लक्षित होने लगती है। विद्यालय में पढ़ने वाली बालिकाएं यह तादात्म्य किसी वयस्क अध्यापिका आदि से करती हैं क्योंकि इससे उनके अहम् की तुष्टि होती है। संभव है कि इस प्रकार का वयस्क व्यक्ति या बालिका के अहम् की तुष्टि करने वाला आदर्श श्रेष्ठ हो पर सामान्यत: देखा जाता है कि यह तादात्म्य कामुक और कुख्यात व्यक्तियों से होना

दैनिक जीवन में भी इसकी सत्यता बड़े अंश में देखी जा सकती है। इस अवस्था में जो आदर्श शीघ्रता और सरलता से प्राप्त हो सके उससे तादात्म्य करने की प्रवृत्ति होती है। इस स्थिति बालिका के लिए अपने आदर्श का प्रत्येक शब्द, वाक्य और प्रतीक अत्यंत सजीव और महत्वपूर्ण हो जाता है।

तादात्म्य का यह संबंध मूलत: कामात्मक होता है। दोनों में किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रहता तथा विश्वास और एकनिष्ठता बहुत होती है। इस समय काम-संबंधी कार्यों में बालिका की रूचि बढ़ जाती है। कभी-कभी दोनों में काम-संबंध भी स्थापित हो जाता है पर यह सदा आवश्यक नहीं है। दोनों एक दूसरे से मन की बात कह देते हैं। बालिका के लिए इस समय सारा संसार कामात्मक स्वरूप लेने लगता है।

तरूणावस्था के आगमन के साथ ही दो लड़कियों की मैत्री एक भिन्न रूप लेने लगती है। प्रबल और स्वस्थ काम-स्वभाव की लड़की की रूचि अब युवकों की ओर होने लगती है। इस प्रकार अब दो के बीच में तीसरे का प्रवेश होने लगता है। इस समय एक त्रिभुजात्मक परिस्थिति उत्पन्न होती है जिसमें क्षयोनता रहती है। प्रबल और स्वाभाविक काम-शक्ति वाली लड़की का आकर्षण समलिंगी और असमलिंगी मित्रता के बीच हिचकोले खाता रहता है और धीरे-धीरे उसका आकर्षण असमलिंगी व्यक्ति में दृढ़ होता जाता है। प्रारंभ में इस समय के अनुभव क्रीड़ात्मक होते हैं और दोनों लड़कियां इन अनुभवों का परस्पर आदान-प्रदान करती हैं। प्रेम के विकास के साथ अनेक जटिलताएं विकसित होने लगती हैं और एक दिन प्रबल और स्वस्थ काम-शक्ति वाली युवती अपने पुराने बंधन को तोड़कर युवक से संबंध स्थापिक कर लेती है। कोमल, दुर्बल और निष्क्रिय युवती की मनोस्थिति इस समय बड़ी अजीब हो जाती है। उसकी सखी को एक युवक उससे छीन लेता है और सखी भी उसे छोड़ सा ही देती है। ऐसी स्थिति में उसके लिए दो ही मार्ग रहते हैं। या तो वह अपनी सखी से संबंध-विच्छेद कर ले जो कि सामान्यत: संभव नहीं होता अथवा इस परिस्थिति

से वह ऐसा समझौता करे जिसमें अपनी सखी से उस युवक का संबंध उसे ग्राह्य हो सके। यह समझौता वह अपनी सखी और उसके प्रिय के कार्यों में सहायिका अर्थात् सखी या दूती बन कर कर लेती है। इस समझौते के द्वारा वह दोनों के सुख में भाग और आनन्द लेने लगती है तथा अपनी सखी के वियोग से बच जाती है। इसमें कभी-कभी स्वपीड़न की मनोवृत्ति भी परिलक्षित होती है।[४६]

उपर्युक्त मनोविज्ञान के प्रकाश में भक्तों का सखीत्व और दूतीत्व अत्यंत स्पष्ट हो जाता है। भक्ति की अवस्था यद्यपि बाह्य दृष्टि से विशेष होती है पर मानसिक दृष्टि से वह बालक ही प्रतीत होता है। उसकी भावनाएं वैसी ही कोमल, तीव्र, कल्पनाशील और संवेदनात्मक होती हैं। यौनात्मक दृष्टि से भक्त पुरुष होने पर भी भावात्मक दृष्टि से स्त्री ही होता है। उसकी यह अवस्था लगभग १३ वर्ष की पूर्व युवती बाला की होती है।

अपने सामाजिक बंधन के कारण भक्त किसी युवती से अपना तादात्म्य नहीं कर सकता है। भक्त होने के पर्व उसकी यह स्थिति बड़ी कष्ट दायक होती रहती होगी क्योंकि उसका मनोविज्ञान स्त्री का रहता होगा।

भक्ति के क्षेत्र में प्रवेश करने पर वहां के वातावरण द्वारा प्रदत्त स्वतंत्रता के कारण उसे अपने मनोविज्ञान की तुष्टि का मार्ग मिल जाता है। उस समय भक्त तरुणी राधा से अपना मानसिक तादात्म्य कर लेता है तथा राधा के श्रृंगारिक जीवन में उसका प्रवेश हो जाता है। अपनी कल्पना - शक्ति द्वारा वह राधा की अनेक प्रकार से कल्पना कर के उससे ऐसा संबंध स्थापित कर लेता है जिसमें दोनों के बीच किसी भी प्रकार का भेद-भाव नहीं रहता।

इसी समय राधा के जीवन में कृष्ण का प्रवेश होता है अब भक्त या तो कृष्ण से या राधा से अपना संबंध स्थापित करे सांप्रदायिक मान्यताओं के कारण यह संभव नहीं है राधा का कृष्ण के प्रति प्रेम प्रगाढ़तर हो रहा है। ऐसी परिस्थिति में भक्ति के लिए अपनी स्थिति से सामंजस्य करने की सबसे अच्छी विधि राधा की सखी या दूती का रूप लेना है। इस प्रकार राधा

के श्रृंगारिक आनन्द को देख या कल्पना कर सरलता पूर्वक अपनी आत्म-तुष्टि भी कर सकता है। विशेषावस्था में वह दूती बन कर वह दोनों प्रेमियों को मिलाने में भी समर्थ होता है।

यही है सखी अथवा दूती का तथा इन भावों की भक्ति का मनोवैज्ञानिक रहस्य। इसी मानसिक स्थिति के कारण राधा की सखियां उनकी संभोग लीला में प्रवेश प्राप्त करती हैं तथा भक्त गण उनसे अपना तादात्म्य कर सरलता तथा स्पष्टता से और निःसंकोच राधा-कृष्ण की संभोग लीलाओं का अत्यंत सजीव वर्णन कर सकने में समर्थ होते हैं।

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार भक्तों की सखी भाव से राधा-कृष्ण के संभोग-दर्शन की इच्छा एक प्रकार की काम-विकृति है। इसे मिक्सोस्कोपी (mixoscopy ) कहते हैं।[५०] दूसरों को संभोग करते हुए देख कर एक प्रकार का कामात्मक आनन्द प्राप्त होता है। यह रुचि कुछ अंशों में स्वाभाविक है, किंतु जब स्वस्थ काम-सुख को छोड़कर दूसरों का संभोग-दर्शन-सुख ही महत्त्व प्राप्त कर लेता है तो यह एक विकृति हो जाती है। विदेश के अनेक वेश्यालयों (विशेषतः पेरिस) में ऐसे रंध्रों का प्रबंध रहता है जिनसे इस प्रकार के मनोविज्ञान वाले लोग अपनी काम-क्षुधा मिटा सकें।[५१] निकुंज-लीला-दर्शन का यह आधुनिक रूप सा प्रतीत होता है। भक्तों की निकुंज के रंध्रों से राधा-कृष्ण की लीला देखने की इच्छा के पीछे यही काम-प्रवृत्ति है जिसके मूल में भक्तों का सखी मनोविज्ञान है।

## १२- हिंदी-भक्ति-काव्य में सखी

नीचे हिंदी भक्तिकाव्य की विभिन्न शाखाओं में प्राप्त सखियों के स्वरूप की ओर संकेत किया जायगा। उनका उदाहरण हम इसलिए नहीं देंगे क्योंकि उनके अधिकतर उदाहरण पीछे आ चुके हैं तथा आगे के अध्यायों में आएंगे।

---

५०- एलिस स्टडीज़ इन दि साइकालजी आफ सेक्स - खंड १, भाग ३, पृ १८८

५१- वही

ज्ञानाश्रयी शाखा

इस शाखा में सखी का कोई महत्त्व नहीं है और उसका उल्लेख भी नहीं है ।

प्रेमाश्रयी शाखा

इस शाखा में भी सखियों का विशेष महत्त्व नहीं है । स्वल्प रूप में नायिका को प्रिय समागम के लिए तैयार कराने वाली, काम-शिक्षा देने वाली और प्रिय मिलन में सहायिका रूप में सखियों का चित्रण हुआ है ।[५२] संभोगोपरांत परिहास कर इनका आनन्द अनेक स्थलों पर कवियों ने व्यक्त किया है ।[५३] किंतु सखी भाव का पूरी निर्गुण धारा में अभाव है ।

रामाश्रयी शाखा

आलोच्य कालीन रामाश्रयी शाखा में तुलसी ही मुख्य कवि है । इस शाखा में विशेष रूप से श्रृंगार प्राप्त नहीं है । अतएव सखी का भी विकास संभव नहीं है । सीताजी की सखियों का फुलवारी प्रसंग में उल्लेख है । वे सीता को राम का दर्शन कराती हैं और विवाह के अवसर पर नव दंपति से स्वल्प परिहास भी करती हैं । वे चतुर तथा गूढ़ वचन बोलने वाली हैं ।

गीतावली के पद ' जैसे ललित लखन लाल लोने '[५४] को मधुर उपासना परक बतलाया जाता है । लक्ष्मण-उर्मिला की केलि देख कर सखियों के नेत्र सुफल हुए । इसके अतिरिक्त इसी ग्रन्थ के ' भोर जानकी जवन जागे[५५] तथा चित्रकूट प्रसंग [५६] और बरवै रामायण[५७]

---

५२- पद्मावत २९२, २९३, ३०३, चित्रा ५३०, ५३१, मधुमालती पृ१३२

५३- पद्मावत ३२२, ३२३ आदि, चित्रा ४१०, ५३७, ५९७, मधु० पृ० १३४, १४७

५४- गीतावली - बाल १०७,
५५- वही उत्तर २
५६- वही अयोध्या ४४

५७- बरवै ३, ४, १०, ११, १७, १८

के कुछ छंदों के आधार पर सखी की स्थिति स्पष्ट होती है। डॉ० भगवती प्रसाद सिंह इसी भावना के कारण अनन्य माधव गोस्वामी के आधार पर तुलसीदास को "तुलसी सखी" और उन्हें "वृन्दासखी" का अवतार मानने को तैयार हैं।[५८] इसके अतिरिक्त आपने स्वामी अग्रदास तथा नाभादास की सखी भावना का भी उल्लेख किया और इन्हें "अग्रअली" तथा "नाभाअली" संज्ञा से संबोधित कर अग्रदास जी को सीता की "प्रियसखी" चन्द्रकला का अवतार माना है।[५६]

रामभक्ति में रसिक संप्रदाय नामक अपने ग्रन्थ में डॉ० भगवती प्रसाद सिंह ने सीताजी की अष्ट सखियां, नित्यसखियां, श्रीरामचन्द्र जी की अष्ट सखियां, दंपति की सोलह मंजरी सेविकाओं, किंकरियों आदि आदि का उल्लेख विस्तार से किया है अत: उनकी पुनरुक्ति की यहां आवश्यकता नहीं है।[६०] राम-साहित्य में सखियों का यह विस्तार आलोच्य काल के बाद का है।

<u>कृष्णाश्रयी शाखा</u>

कृष्णाश्रयी शाखा में सखी का महत्वपूर्ण स्थान है। यथार्थ से लगभग संपूर्ण कृष्ण-साहित्य सखी भाव का ही साहित्य है। साम्प्रदायिक साहित्यों में इन सखियों का बहुत अधिक विस्तार है जो कि भारतीय वर्गीकरण की रूचि का द्योतक है। निंबार्क संप्रदाय के हरिव्यास देवाचार्य कृत महावाणी के "सिद्धांत सुख" में इन सखियों की विस्तृत सूची दी गई है। इसमें उनका स्थान, उनका कार्य, उनके मुख्य तथा गौण सहायिका आदि का उल्लेख है। इनके अनुसार मुख्य सखियां आठ हैं। इन मुख्य सखियों की अनुमति के बिना निकुंज लीला में किसी का प्रवेश नहीं हो सकता।[६१] इन सखियों का स्थान मोहन-महल के मोहन-मंडल के ऊपर जो

---

५८- रामभक्ति में रसिक संप्रदाय - डॉ० भगवती प्रसाद

५६- वही पृ ३०६

६०- वही पृ० ३००-३०३ तथा २६१-२६३

६१- अष्ट सहचरिन के बिना परिकर यहां और सहचरिन को नहिं है। ... सिद्धांत सुख ७

अष्टकोण का सिंहासन है उसके प्रत्येक कोण पर है । इनका नाम, स्थान, वर्ण, वस्त्र और सेवा की एक तालिका नीचे दी जा रही है :[62]

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| उत्तर | - रंगदेवी | कमल वर्ण | जवा रंग की सारी | आभूषण और सुगंध |
| ईशान | - सुदेवी | केसरी ,, | सुही रंग की सारी | |
| पूर्व | - ललिता | दामिनी,, | मोर पंख की भांति के वस्त्र | बीरी सेवा तथा वस्त्र |
| आग्नेय | - विशाखा | दामिनी,, | ,, | |
| दक्षिण | - चंपकलता | चंपक ,, | नील वस्त्र | भोजन - जलपान |
| नैऋत्य | - चित्रा | कुंकुम ,, | पीत ,, | |
| पश्चिम | - तुंगविधा | गौर (हरताल सी) ,, | पांडर वर्ण वस्त्र | नृत्यादि कामकला शिक्षा |
| वायुकोण | - इंदुलेखा | ,, ,, | अनार पुष्प वर्ण | |

उपर्युक्त आठों सखियों की आठ-आठ सहेलियां हैं । इन सहेलियों की पुन: आठ-आठ सहेलियां हैं । नीचे आठ प्रमुख सखियों की आठ-आठ सहेलियों के नामों की तालिका दी जा रही है :

रंगदेवी

कलकंठी, शशिकला, कमला, कंदर्पा, रति सुन्दरी, कामलता, प्रेम मंजरी, प्रेमदा ।

सुदेवी

कावेरी, मंजुकेशी, सुकेशी, कवराजु, हारकंठी, मनोहरा, महाहीरा, हारहीरा ।

ललिता

रत्नप्रभा, रतिकला, सुभद्रा, चन्द्रेखा, सुन्दरमुखी, घनिष्टा कलहंसी, कलापिनी ।

विशाखा

माधवी, मालती, चंद्रलेखा, चपला, हिरणी, कुंजरी, सुरभी, शुभानना ।

---

62- आंगन मोहन-महल के मोहन मंडल मंजु । ता ऊपर अठकौन कौ सुख सिंहासन रंजु ।।
कौन कौन पत्यैक इक पिय प्रमदागन संग । रुचि अनुसारे सेवहीं उर अनुराग अभंग ।।

चंपलता

मृगलोचनी, मनिकुंडला, सुभचरिता, चंद्रा, चंद्रलतिका, मंडली, कंदुकनयनी, समुंदिरा ।

चित्रा

तिलकिनी, रसालिका, वरवैनिका, सौरभसुगंधा, कमला, कामनागरी, नागरवेली, सुशोभना ।

तुंगविद्या

मंजुमेधिका, सुमेधिका, तनुमेधा, गुणचूड़ा, वरांगदा, मधुस्यंदा, मधुरा, मधु रेखा ।[६३]

इंदुलेखा

तुंगभद्रा, रसानुगा, रंगवाटी, चित्रलेखा, सुसंगता, चित्रांगी, मोदिनी, मदनालसा ।

राधावल्लभ संप्रदाय में भी इन सखियों और उनकी सखियों की उपर्युक्त ही सूची है ।[६४] इसके अतिरिक्त अन्य सखियों के नामों की भी एक विस्तृत सूची दी गई है ।[६५] सूरदास में सुषमा ।ललिता। वृंदा, चंद्रावली आदि सखियों का उल्लेख हुआ है ।

कृष्णाश्रयी शाखा में सखियों के दो रूप प्रकट होते हैं । इन्हें स्वतंत्र सखियां और सेविका (मंजरी) सखियां कहा जा सकता है । सखियों का यह स्वतंत्र रूप केवल वल्लभ संप्रदाय में ही प्राप्त है । अन्य संप्रदायों में इन स्वतंत्र सखियों को भी सेविका सखियों का स्थान प्रदान कर दिया गया है । ये सखिया राधा की समकक्षा हैं तथा इनका राधा से स्वतंत्र प्रेम-अस्तित्व है । ये कृष्ण से प्रेम करती हैं और इन्हें कृष्ण से अपने प्रेम का प्रतिदान भी मिलता है । ये राधा से हास-परिहास तथा उनकी सहायता भी करती हैं किंतु कृष्ण-संभोग की इनकी अपनी आकांक्षा भी रहती है

---

६३- वही १४

६४- ध्रुवदास सभामंडल लीला पृ १३१ तथा रस मुक्तावली लीला पृ १४८-१५२

६५- सभामंडल लीला पृ १३२-१३५

इस संभोग को प्राप्त करने पर राधा की खंडिता नायिका की स्थिति होती है और जब कृष्ण राधादि के यहां से रति कर आते हैं तब इनकी स्थिति खंडिता की होती है।[६६] सुषमा, वृंदा, ललिता, प्रमुदा आदि ऐसी ही सखियां हैं। दूसरे प्रकार की सखियां कृष्ण की अंक शायिनी बनने की आकांक्षा नहीं रखती हैं। उनका एक मात्र सुख किशोर-किशोरी की प्रेम लीला में सहायक होना तथा उनके विलास का दर्शन करना ही है।[६७] इनके द्वारा राधा के खंडिता होने का प्रश्न ही नहीं उठता। इन सखियों को दूसरे शब्दों में क्रमशः "स्वसुख सुखी" भाव की सखी तथा "तत्सुख सुखी" भाव की सखी भी कहा जा सकता है।

आलोच्य साहित्य में इन सखियों के उपर्युक्त वर्णित कर्मों का स्पष्ट रूप में पृथक-पृथक उल्लेख नहीं मिलता है। सामान्यतः विभिन्न क्रीड़ा-विलास में केवल "सखी" मात्र का उल्लेख या "ललितादिक सखियों" का उल्लेख मिलता है। ये सखियां रंध्रों से[६८] या चोरी से प्रिय-प्रिया की क्रीड़ा देखती हैं। कहीं-कहीं उनके विशिष्ट कर्मों का संकेत भी मिल जाता है जैसे ललिता का भींगते दंपति को पत्ते द्वारा बूंदों से बचाना[६९] या पांव पलोटना आदि[७०]

---

६६- सूरसागर ३२४८, आदि ३२६३ आदि ३३२२ आदि

६७- व्यास ५६१, ध्रुवदास - भजन द्वितीय श्रृंखला लीला पृ ६२, तृतीय श्रृंखला लीला पृ १०० आदि

६८- जै श्री हित हरिवंश रसिक ललितादिक लता-भवन रंध्रनि अवलोकत। --श्रीचतुरासी जी ७२

६९- दोऊ जन भींजत अटके बातन।
सघन कुंज के द्वारे ठाड़े अम्बर लपटे गातन।।
ललिता ललित रूप रस भींजीं बूंद बचावत पातन।।
--श्री स्फुटवाणी २३

७०- ललितादिक निज सहचरी, तहां पलोटति पाइ।।
ध्रुवदास - ब्यालीस लीला (सभामंडल लीला) पृ १४६

ऐसे उल्लेखों में ललिता की ही प्रधानता है ।

भक्तों की भक्ति सखी भाव की होने कारण संप्रदायों में भक्त-कवियों को एक न एक सखी का अवतार माना जाता है । इसकी साम्प्रदायिक मान्यता है जो कि संभवत: उन कवियों की भक्ति-सेवादि के आधार पर निर्मित हुई है । इसके संबंध में ठीक-ठीक कुछ कहना कठिन है । भक्त कवियों ने सामान्यत: अपने काव्यों में अपना किसी सखी से तादात्म्य किया हो यह पता नहीं चलता । किंतु अष्टछाप के कवियों के सखीरूप की एक तालिका डां० हरवंश लाल शर्मा ने अपने ग्रंथ "सूर और उनका साहित्य" (१६५४) में पृ ४०६ पर दी है । इसी प्रकार की मान्यता स्वामी हरिदास के संबंध में भी है कि वे ललिता सखी के अवतार थे । सखी से तादात्म्य के स्थान पर कुछ भक्तों ने अपना स्वतंत्र सखी रूप भी रखा है । ऐसे भक्तों में हित हरिवंश प्रमुख हैं जो कि "हित सखी" नाम से प्रसिद्ध है । कवि व्यास ने भी अपने संबंध में इतना ही कहा कि जिस निकुंज लीला में किसी अन्य का प्रवेश नहीं है वहां वे "पीकदानी" लिए युगलदंपति के सेवा में रहते हैं ।[७१]

इस संबंध में द्रष्टव्य है कि प्रत्येक संप्रदाय स्वतंत्र रूप में अपने महात्माओं को सखीत्व प्रदान करता है । इसलिए एक समय में ही एक सखी के कई अवतार संभव हैं ।

राधावल्लभ, निम्बार्क तथा चैतन्य संप्रदाय के ग्रन्थों में इन सखियों का युगल-दंपति-केलि में महत्वपूर्ण स्थान है । ये युगल-दंपति की सभी सुख सुविधा, श्रृंगार-प्रसाधन तथा क्रीड़ा-विलास का ध्यान रखती हैं और आयोजन करती हैं । युगल-दंपति-केलि की ये अनिवार्य अंग हैं ।

मीरा में सखी भाव न मिल कर दाम्पत्य भाव मिलता है जिसका उल्लेख हम पीछे कर आए हैं । वे कृष्ण की प्रेमिका हैं । यह उनकी अन्य कवियों से मिलता है । स्त्री होने के कारण उनके लिए यह भाव सरल और स्वाभाविक भी है ।

---

७१- पल न बिछुरत दोऊ, जात नहिं तहां कोऊ, व्यास महलन लियें पीकदानी । --व्यास ७५

निष्कर्ष

नायक-नायिका-सहायक के उपर्युक्त अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :-

(१) नायक-नायिका-सहायक का भक्ति साहित्य में उल्लेख है पर बहुत अधिक विस्तार नहीं ।

(२) इन सहायकों में पर्याप्त विविधता है । परंपरागत रूपों के अतिरिक्त गुरु एवं मुंह बोले भाई-बहन इसमें नवीन रूप हैं । इनका उल्लेख निर्गुण धारा और उसमें भी सूफी शाखा में ही है ।

(३) इन सहायकों में सखी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण है । सखी का विस्तार कृष्णाश्रयी शाखा में सर्वाधिक है तथा उनके अनेकानेक भेद आदि माने गए हैं ।

(४) सखी के दो मुख्य भेद स्वसुख सुखी अथवा स्वतंत्र सखी तथा तत्सुखसुखी या सेविका सखी माने जा सकते हैं । स्वतंत्र सखी केवल वल्लभ संप्रदाय में ही प्राप्त है ।

(५) कृष्णाश्रयी शाखा में सखी भाव की भक्ति प्राप्त है जिसमें भक्त का तादात्म्य सखियों से होता है । फलत: सभी भक्त कवियों को उनके संप्रदाय वाले किसी न किसी सखी का अवतार मानते हैं ।

(६) इस सखी भाव की धार्मिक पृष्ठ भूमि संप्रदायों ने प्रदान की ।

(७) सखी भाव के मनोवैज्ञानिक कारणों के अनुसार ये भक्त मूलत: स्त्री-प्रकृति के थे । इनकी मानसिक अवस्था पूर्व यौवना कुमारिकाओं की थी । इनकी काम-प्रवृत्ति तथा उसकी अपरिपक्वावस्था ने इन्हें सखी भाव की ओर मोड़ा । रामाश्रयी शाखा में भी सखी भाव की भक्ति है न्यून मात्रा में है ।

(८) निर्गुण शाखा में सखी भाव का अभाव है । इसमें सखी का वस्तुगत रूप ही उपलब्ध है ।

## अष्टम अध्याय

## हिन्दी भक्ति-काव्य में उद्दीपन

## हिन्दी भक्ति-काव्य में उद्दीपन

### भूमिका

किसी भी भाव के अंकुरित होने के लिए आलम्बन विभाव के साथ-साथ उद्दीपन विभाव[1] का भी होना नितांत आवश्यक है। केवल आलम्बन की स्थिति ही श्रृंगार रस की निष्पत्ति के लिए यथेष्ट नहीं है। आलम्बन तो हृदय में केवल बीज की भाँति है जो कि बिना उद्दीपन रूपी वायु, उष्णता और जल के अंकुरित नहीं हो सकता। श्रृंगार रस में इसी कारण से उद्दीपन का विशेष महत्व है और इसकी कवियों ने विस्तृत योजना की है।

### १- भेद

उद्दीपन के दो मुख्य भेद किए जा सकते हैं :-

(१) आलम्बन गत उद्दीपन- इसके अंतर्गत आलम्बन का रूप, गुण, अलंकार वस्त्राभूषण, विभिन्न क्रियाएं और चेष्टाएं आएंगी।

(२) अन्य उद्दीपन

इसमें वे सभी अन्य सहायक व्यक्ति और वस्तुएं आएंगी जो कि आलम्बन तथा आश्रय ~~तथा~~ से संबंधित होकर भाव को उद्दीप्त करने वाली होती हैं। इस प्रकार समस्त नायक-नायिका-सहायक और उनकी क्रियाएं तथा श्रृंगारानुकूल प्रकृति और परिस्थितियां इसके अंतर्गत आएंगी।

प्रस्तुत अध्याय में हम उद्दीपन का उपर्युक्त शीर्षकों के अंतर्गत अध्ययन करेंगे। इस संबंध में नायक-नायिका-सहायक का पुनः उल्लेख नहीं किया जाएगा क्योंकि पीछे हम उनकी चर्चा कर आए हैं। इस संबंध में यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि नायक-नायिका के परस्पर आश्रयालम्बन होने के कारण एक के अनुभाव दूसरे के लिए उद्दीपन हो सकते हैं। इनका उल्लेख यहां न करके अनुभावों के अंतर्गत किया जाएगा।

---

१- उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये। साहित्यदर्पण ३।१३१
   ते च - आलम्बनस्य चेष्टाद्या देश कालादयस्तथा। वही ३।१३२

इस साहित्य में प्रश्न ही नहीं उठता और इसका अभाव है ।

५-प्रेमाश्रयी शाखा

प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य का मूलाधार प्रेम है और इस प्रेम की भक्ति रूपाकर्षण पर खड़ी है । यह रूपाकर्षण नायक-नायिका में पारस्परिक है । इसीलिए नायिका के अलौकिक रूप के साथ-साथ नायक के रूप का भी प्रभावशाली उल्लेख है । नायक के इस रूप वर्णन में नायिका के रूप वर्णन से एक बड़ी भिन्नता यह है कि जहां नायिका का रूप जुद्र मानव शरीर की सीमा से उठ कर विश्व-प्रकृति के कण-कण में प्रतिभासित दिखलाई पड़ता है वहां नायक के रूप-वर्णन में इस अलौकिकता का आरोप नहीं है । दूसरी बड़ी विशेषता यह है कि नायिका का नख-शिख वर्णन जहां अत्यंत उत्साह के साथ इस शाखा के कवियों ने किया है वहां नायक के रूप के अभाव का ही उल्लेख किया गया है ।

नायक के नवजात रूप का वर्णन

प्रेमाश्रयी काव्य में रत्नसेन, सुजान और मनोहर ये तीन नायक हैं । इनमें से तीनों के जन्म का वर्णन दिया गया है । उसी प्रसंग में एक के रूपवान होने का संकेत है पर स्पष्ट उल्लेख नहीं है:-

पदिक पदारथ लिखी सो जोरी । चांद सुरुज जसि होई अंजोरी ।

पद्मावत-७३

शेष के जन्म के समय के रूप का उल्लेख नहीं है ।

तरुण नायक

नायक के तरुण रूप का स्पष्ट वर्णन नहीं है । तरुणा... में नायक-नायिका के पूर्वराग उत्पन्न होने की स्थिति के समय ना... के रूप का संकेत है । यह वर्णन भी संकेतात्मक रूप में है और इसकी अभिव्यक्ति कई प्रकार से की गई है ।

(क) नायिका के नायक के रूप-वर्णन द्वारा

यह विधि पद्मावत और चित्रावली में अपनाई गई है। पद्मावत में सुआ पद्मिनी से रत्नसेन के सौंदर्य का वर्णन इन शब्दों में करता है-- 'वह माता धन्य है तथा उस पिता को भी लोग धन्य कहते हैं जिसके कुल में ऐसा पुत्र आया। उसने अपने बत्तीस लक्षणों वाले शरीर से कुल को निर्मल किया। उसके रूप और कांति का वर्णन नहीं किया जाता ।। ... ।। उस रत्न को देखकर मेरे मन में आया कि यह रत्न तो हीरे (पद्मावती) के योग्य है। यही सूर्य निश्चित रूप से उस चन्द्रमा के योग्य है।'[2] चित्रावली में एक सखी सुजान के चित्र की प्रशंसा में उसके रूप का संकेत करती है।[3] इस प्रकार नायक के अपूर्व रूप का वर्णन हुआ है।

## (ख) अन्य दर्शक द्वारा नायक के रूप का वर्णन

मनोहर के रूप का वर्णन इसी भांति हुआ है। अप्सरा उसके रूप को देखकर उसके अनुरूप कन्या की खोज करती है तथा दोनों का मिलन कराती है। वे आपस में नायक के रूप की प्रशंसा करती हैं। इस रूप में वे कहती हैं कि यह रूप हमारे हृदय को हिलाने वाला है पर हम अप्सरा हैं और यह हमारे काम नहीं आएगा। इसके अनुरूप कन्या खोजनी चाहिए। गुजरात, सोरठ और सिंहल कहीं भी वैसी कन्या नहीं है। नायिका से वे नायक के रूप की तुलना करती हैं और कहती हैं कि दोनों का रूप समान है। कोई दूसरे से अधिक नहीं है।[4]

## (ग) कविद्वारा वर्णन

कवियों ने भी स्वतंत्र रूप से नायकों के रूपों का संकेत किया है। यह विस्तृत नहीं है।

---

२- पद्मावत १७७, १८०

३- चित्रावली १२१, २५५

४- मधुमालती पृ २३-२४

### (घ) नायिका की दृष्टि में नायक का रूप

नायिका को नायक कैसा लगा और उसके रूप का नायिका पर क्या प्रभाव पड़ा इस दृष्टि से भी नायक के रूप का वर्णन किया गया है। पद्मावती ने जैसा उसका वर्णन सुना था, वैसा ही उसे सहस्र किरणों वाले सूर्य के समान तेजस्वी पाया।[४] चित्रावली उसके रूप का वर्णन अपनी सखियों से इन शब्दों में करती है :

> ससिहर सुरनगरी जेहि रूपा, सूरज चाहि सो अधिक सरूपा।
> छपै न कैसहु जोग महं, प्रगट देखिये भूप ।।[५]

देखत रूप कुंवर कर, रही अचक होई ठाढ़ि ।
जम होइ हिये समाइगा, लीन्हेसि जिउ जनु काढ़ि ।।

> आनन देखि रही खिन खरी, पुनि मुरुछाइ पुहमि खसि परी ।।[६]

इस प्रकार प्रेमाश्रयी शाखा में नायक, तरुण, रूपवान, तेजस्वी रत्नस्वरूप हैं। उनके रूप का प्रभाव सभी पर पड़ता है।

### योगी-नायक

प्रेमाश्रयी शाखा में नायक के योगी रूप का बड़ा वर्णन है। अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए अधिकतर नायक योगी का रूप धारण करते हैं। उनका सौंदर्य इस रूप में भी अक्षुण्ण रहता है। इस रूप में नायक बाल बढ़ा लेता है। शरीर पर भस्म मल लेता है। मेखला बांधकर हाथ में सिंगी, चक्र और गोरखधंधा ले लेता है। वह कंथा पहनता है और डंडा लिए रहता है। कानों में मुंदरी और कंठ में जपमाल, हाथ में कमण्डल और कंधे पर बाघाम्बर, पैरों में खड़ाऊं, सिर पर छत्र, लालवेश पहने और हाथ में खप्पर लिए रहता है।[७] यह

---

४- पद्मावत १९५

५- चित्रावली २७८

६- चित्रा० ३१८, ३१९

७- पद्मावत १२६, चित्रा २०९, २१०, २२०, ६०१, ६०३, ६
मधुमालती पृ ५३ आदि

योगी वेश संभवत: तत्कालीन नाथ पंथियों का था जिससे जायसी आदि ने प्रेरणा ली थी ।

## नायक के अलंकार

नायक के अलंकार अथवा सात्विक गुणों की संख्या आठ है । इसके अंतर्गत शोभा, विलास, माधुर्य, गाम्भीर्य, धैर्य, तेज, ललित और औदार्य हैं।[८] प्रेमाश्रयी शाखा के नायक सामान्यता इन अलंकारों से विभूषित है । यथार्थ में नायक की मान्यता में ही ये समस्त गुण अंतर्भूत हैं । फलस्वरूप कवियों ने सचेष्ट होकर इन समस्त गुणों के प्रदर्शन का प्रयत्न नहीं किया है । यही कारण है कि प्रत्येक प्रेमकाव्य में नायक के उपर्युक्त समस्त गुणों की अभिव्यक्ति नहीं हुई है । इन गुणों को स्पष्ट करने वाले कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं ।

## शोभा

यह नायक का वह गुण है जिसके कारण उसमें वीरता, कुशलता, सत्यवादिता, सत्याचरण, महान् उत्साह, अनुरागिता, और छोटों पर दया किंवा बड़ों के प्रति प्रतिस्पर्द्धा प्रकट होती है ।[९] यथा रत्नसेन के निम्नलिखित उद्गारों में देखिए:-

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा । जानहुं दैव तड़पि घन गाजा ।
का मोहि सिंघ देखावसि आई । कहौं तो सारदूर लै खाई ।
भलेहं सो साहि पुहुमिपति भारी । मांग न कोइ पुरुख कै नारी ।
जौं सो चक्कवै ता कहं राजू । मंदिर एक कहं आपन साजू ।
आछरि जहां इंद्रपै रावा । औरु जो सुनै न देखै पावा ।
कंस क राज जिता जौं कोपी । कान्हहि दीन्ह कांहु कंहु गोपी
का मोहि तैं अस सूर अंगारा । चढ़ौं सरग औ परौं पतारा । ।[१०]

---

८ साहित्य दर्पण ३।५०

९ वही ३।५१ नीचे घृणाधिके स्पर्धा शोभायां शौर्यदक्षते ।
दशरूपक २।११

१० पद्मावत ४८६

११ चित्रावली ३८। और मैं मधुमालती पृ ८०

तथा सुजान का निम्नलिखित कथन भी इसे व्यक्त करने वाला है :-

> सोहिल हनि हौं कटक लुटाऊं, सागर नगरहिं फेरि बसाऊं ।
> ताहि मारि करि सगरहिं राजा, अब तो आई परेउ हम काजा
> कर गहि खरग करौं अब घाता, रासौं कटका कै करि आघाता ।[11]
> जदपि सोहिल सुख जूझ सवारा, हौं सुजान सरदूल पंवारा ।

विलास-

विलास का अभिप्राय नायक की उस सात्विक विशेषता से है जिसके कारण उसकी दृष्टि में धीरता, चाल में विचित्रता और बोल- चाल में मन्दहास की छटा छिटका करती है ।[12] पदुमावती के अपनी सखी से निम्नलिखित कथन में यह गुण प्रकट होता है :

पदुमावति धौराहर चढ़ी। दहुं कस रवि जाकहं ससि गढ़ी ।
देखि बरात सखिन्ह सौं कहा । इन्ह महं कौनु सो जोगी अहा ।
केहं सो जोग लै ओर निवाहा । भएउ सूर चढ़ि चांद वियाहा ।
कौन सिद्ध सो ऐस अकेला । जेहं सिर लाइ प्रेम सौं खेला ।
कासौं पिते बचा असि हारी । उतर न दीन्ह दीन्ह तेहि बारी ।
काकहं दैय ऐसि जै दीन्हा । जेहं जेमार जीति रन लीन्हा ।
धन्नि पुरुख अस नवे न नाएं । औ सुपुरुष होई देस पराएं ।

> को बरिबंड बीर असमोहि देखे कर चाउ ।
> पुनि जाइहि जनवासे सखी रे बेगि देखाउ ।। १३

तथा
राजा सागर के सुजान से निम्नलिखित कथन में यह गुण प्रकट है:
रतन-सागर-के

राजै सुनि संग्या मन बूझी, ज्ञान कि दिष्टि दूरि लौं सूझी ।
कहिसि कि तजहु जोग बैरागा, पहिरहु अब छत्री कर बागा ।
सिर धरि मुकुट सैल कर लेहू, सोहिल मारि मुकुट सिर देहू ।
जौं जै खरग देइ करतारा, छात पाट औ राज तुम्हारा ।
पुत्री नैन कौल पुनि मोरी, फारिहि पद पंकज कर जोरी ।
कुंवर कहा सुनु राज भुआरा, छात पाट मैं अपने छारा ।।
अस कैसे कहि आवै तोहीं, हौं जोगी तिय छाज न मोहीं ।

---

११ चित्रावली ३८२ और देखें मधुमालती पृ ८०

१२ [illegible] ३।[illegible] तथा गतिः सधैर्या दृष्टिश्च विलासे स वचः।। दशरूपक २।

छात्री सनि जौ न करै, तिय अरु गाय गोहारि ।
पुहमी कुल गारी चढ़ै, सरग होइ मुख कारि ।। [१४]

माधुर्य -

मन: क्षोभ के कारणों के रहते हुए भी मन की सुस्थता और शान्ति को माधुर्य कहते हैं । इसमें नायक में स्वल्प विकार दृष्टिगोचर होता है । [१५]

जैसे

सुना कुंवर राक्स की बाता, रिसन्ह जरा सिर पांव ते गाता ।
कहेसि छांडु राक्स बकताई, संगत मा काल तोर आई ।
तोहिं मरि मारि पै महिं ले जाऊं, ता रघुबंसी नाउं कहाउं ।
उठो सजग भै अब मनुसाई काया गरब न जाहु बुलाई ।
दहों-दिसि भुजा पसारि उपारों, पांचों माथ काटि भुइं पारों ।
अग्नि चिनगी रघुवंसी मैं, तैं जैस रुई का पहार ।
निमिखि मांह कै परिजारों दाहिन वहां करतार ।। [१६]

गाम्भीर्य-

गाम्भीर्य, उस सात्विक पौरुष-गुण का नाम है जिसे भय शोक, क्रोध, हर्ष आदि-आदि भावावेशों में आकृति की निर्विकारता कहा करते हैं [१७] यह माधुर्य से इस बात में भिन्न है कि प्रथम में स्वल्प विकार अवश्य रहता है जब कि दूसरे में विकार का सर्वथा अभाव रहता है । अपने सच्चे रूप में यह गुण दुर्लभ है । भगवान रामचन्द्र ही इसके उदाहरण हैं पर स्वल्प मात्रा में यह प्रेमाश्रयी काव्य के नायकों में भी मिल जाता है । यथा राजा गंधर्वसेन द्वारा समस्त योगियों को बंदी कर लेने पर रत्नसेन का

---

१४ चित्रावली ३६०

१५ साहित्य दर्पण ३।५२ तथा श्लक्ष्णो विकारो माधुर्यं संक्षोभे सुमहत्यपि । दशरूपक २।१२

१६ मधुमालती पृ ८०

१७ साहित्य दर्पण ३।५३ गांभीर्यं यत्प्रभावेन विकारो नोपलक्ष्यते।। दशरूपक २।१२

स्वरूप:-

राजैं छैकि घरे सब जोगी। दुख ऊपर दुखु सहैं वियोगी ।
ना जियं धरक धरत है कोई । ना जियं मरन जियन कस होई ।
नाग फांस उन्ह मेली गीवां । हरख न बिसमौ एकौ जीवां ।
जेहं जिउ दीन्ह सो लेउ निरासा । बिसरै नहिं जौ लहि तन स्वासा ।
कर किंगरी तिन्ह तंत बजावा। नेहु गीत बैरागी गावा ।
मलेहिं आनि गियं मेली फांसी । हिएं न सोच रोस रिसि नासी ।
मैं गियं फांद ओही दिन मेला। जेहि दिन पेम पंथ हैं हेला ।
परगट गुपुत सकल महि मंडल पूरि रहा सब ठाऊं ।
जहं देखौं ओहि देखौं दोसर नहिं कहं जाऊं।।१८

धैर्य

बड़े विघ्नों के पड़ने पर भी कर्तव्य - निश्चय से विचलित न होना धैर्य है।[१९] सुजान का कौलावती से अपने चित्रावली के प्रति प्रेम की अभिव्यक्ति में यही धैर्य प्रकट होता है।

कुंअर कहा सुनु राजकुमारी, हौं जोगी जस भंवर दुखारी ।
खोजत अहा जो केतकि बासा, बीचहिं बंबुज कीन्ह गरासा ।
जौ लहुं भौंर न केतकि पावै, कौल आस तौ लौं न पुरावै ।
तजि तोरे मोहिं काजु न आना महूं तोहिं आपन कै जाना
जो संतोख मानहु जिय बारी, तोहि सों भाखौं बात खारी ।
नैन कौल तुअ नैनन लावौं, अंक मैं गहि तब हिया सेरावौं ।।
मोहिं न अपन प्रेम रस चाऊ, तोहि लागि यह करौं सुभाऊ ।
हम तुम मानहिं सबै रस, जहं लहु प्रेम सुभाउ ।
एक प्रेम रस होइ तब, जब चित्रावलि पाउ ।। २०

इसी प्रकार पर्वती द्वारा रत्नसेन की परीक्षा लिए जाने पर उसका निम्न लिखित कथन भी धैर्य का उदाहरण है।

१------------------------------------------

१८ पद्मावत २४४

१९ साहित्य दर्पण ३।५३

२० चित्रावली ४०८

भलेहिं रंग तोहि आछरि राता । मोहि दोसरे सो भाव न बाता ।
मोहि ओहि संवरि मुएं अस लाहा । नैन सों देखसि पूछसि काहा ।
अबहीं तेहि जिउ देइ न पावा । तोहि असि आछरि ठाढ़ मनावा ।।
जों जिउ देहुं ओहि कि आसां । न जनों काह होइ कबिलासां ।।
हों कबिलास काह लै करउं । सोइ कबिलास लागि ओहि मरऊं ।
ओहि कै बार जीवनहिं वारों । सिर उतारि नेवाछावरि डारों ।
ताकरि चाह कहै जो आई । दुओ जगत तेहि देऊं बड़ाई ।
ओहि न मोरि कछु आसा हों ओहि आस करेऊं ।
तेहि निरास प्रीतम कहं जिउ न देऊं न का देउं ।।[२१]

तेज -

तेज वह सात्विक पौरुष गुण है जिसे किसी दूसरे के द्वारा किए गये आक्षेप अथवा अपमान का, प्राण-संकट पड़ने पर भी, सहन न करना कहा गया है । शोभा के उदाहरण में तेज गुण का भी उदाहरण पीछे दिया जा चुका है ।[२२]

ललित बह

ललित वह नायक -गुण है जिसे बोल-चाल, वेश-भूषा किंवा प्रेम-लीला में माधुर्य कहा गया है ।[२३] दशरूपक कारने इसे स्वाभाविक ने-इसे कोमलता से युक्त श्रृंगारपरक चेष्टाओं को कहा है ।[२४] श्रृंगारी नायकों में से सभी में यह गुण न्यूनाधिक्य मात्रा में उपलब्ध है ।

मनोहर का निम्नलिखित कथन उसके ललित गुण को प्रदर्शित करने वाला है :

---

२१ पद्मावत २१०
२२ साहित्यदर्पण ३ ।५४
२३ साहित्यदर्पण ३ । ५५
२४ दशरूपक २ । १४

सुनु बर नारि कहौं मैं तोहीं, सहज हेतु जौ पूछे मोहीं ।
नग्र कनैगिरि उत्तिम थाना, सुर्जभान पिता जग जाना ।
औ मोहिं कुंवर मनोहर नाऊं, राघोवंश कनैगिरि ठाऊं ।
खिनक नींद जौ नैनन्हि लागी, अबहीं देखु उठा मैं जागी ।
नहिं जानौं मोहि को लै आवा, जौ मोहिं तोहिं मौ दिस्टि मेरावा ।
तोरे रूप गड़े दोइ लोयेन, नहिं देखौं निसरंत ।
जौ जौ जग पर पंक मंह, तौ तौ अधिक गड़ंत ।।[२५]

औदार्य

यह वह नायक गुण है जिसमें नायक प्रिय भाषण पूर्वक दान किंवा शत्रु और मित्र के प्रति समदर्शिता का व्यवहार कहा जाया करता है ।[२६] दशरूपककार ने इसे और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा है कि जहां नायक प्रिय वचनों के द्वारा प्राण तक देने को प्रस्तुत हो, तथा सज्जन व्यक्तियों को अपने आचरण से अनुकूल बना ले, वहां उसमें औदार्य सात्विक गुण माना जाता है ।[२७] जिस समय गोरा-बादल ने राजा रत्नसेन को अलाउद्दीन के प्रति छल की नीति अपनाने का परामर्श दिया उस समय राजा का निम्नलिखित कथन उसके औदार्य का उदाहरण है :-

---

२५ मधुमालती पृ० ३४

२६ साहित्यदर्पण ३। ५५

२७ दशरूपक २ ।१४

सुनि राजा हियं बात न भाई । जहां मेरु तहं अस नहिं माई ।
मंदहि भल नो करै भलु सोई । अंतुहु भला भलै कर होई ।।
सतुरु जो बिख दै चाहै मारा । दीजै लौन जानु बिख सारा ।।
बिख दीन्है बिखर होइ खाई । लौन देखि होई लौन बिलाई ।।[२८] आदि

## नायक के आभूषण

प्रेमाश्रयी काव्य में नायक के अभूषणों का विस्तृत और स्पष्ट उल्लेख नहीं है । माधव को छोड़कर शेष सभी नायक राजपुत्र है अतएव उनका अनेक आभूषणों से आभूषित होना स्वाभाविक हैं, पर कवियों ने यदि कभी इन आभूषणों का उल्लेख किया तो अधिकतार मुकुट आदि का ही किया । है । इसमें मुकुट[२९], कुंडल[३०] मुद्रिका[३१], हार हमेल[३२] । इस प्रकार नायक के आभूषणों का इस काव्य में अल्प और साधारण उल्लेख है । प्रेमाश्रयी कवियोने आभूषणों का जहां अत्यल्प उल्लेख किया है वही नायक के योगी रूप का, जिसमें योगियों के आभूषण भी आये हैं, स्पष्ट वर्णन किया है इसका संकेत हम नायक के जोगी रूप प्रसंग में कर आए हैं ।

## (क) रामाश्रयी शाखा

## राम का रूप-वर्णन

राम साहित्य, विशेष रूप से रामचरित मानस में अनेक प्रकार राम के रूप का वर्णन अनेक प्रकार से उपलब्ध है । इनमें से प्रत्येक की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया जा रहा है ।

## सामान्य रूप-वर्णन -

इस वर्णन के अंतर्गत कवि तथा अन्यान्य लोगों द्वारा राम का रूप वर्णन आएगा । राम के इस रूप का वर्णन अनेकानेक

---

२८ पद्मावत ५५६
२९ पद्मावत २७६ चित्रा ५१७
३० पद वही, चित्रा० २२०
३१ मधुमालती पृ ४२
३२ चित्र ५१६

स्थलों पर तुलसी ने आत्मविभोर होकर किया है। बालक राम का रूप ही ऐसा है कि उसका वर्णन श्रुतियां तथा शेष भी नहीं कर सकते। उसे वही जान सकते हैं जिन्होंने कभी सपने में भी देखा हो।[33] राम के इस रूप का नख-शिख प्रणाली पर कविने वर्णन किया है जिसमें उनके शरीर के लगभग समस्त अंगों को सुंदर उपमानों से तुलना की गई है।[34] यह शोभा करोड़ों काम देवों की शोभा को हरने वाली है।[35] तुलसी ने राम के बाल रूप की तथा बालक्रीड़ा की शोभा का भी वर्णन किया है।

शिशु राम के साथ ही साथ कवि ने श्रृंगार के आलंबन योग्य किशोर राम के रूप का भी अत्यंत उत्साह से वर्णन किया है। विश्वामित्र के साथ जाते समय की उनकी शोभा का वर्णन कवि इन शब्दों में करता है-- उनके नेत्र अरूण हैं। छाती चौड़ी और भुजाएं विशाल हैं। नील कमल के समान उनका शरीर है। पीतांबर वे पहने हुए हैं तथा उनके हाथों में सुंदर धनुष बाण है।[36] इस रूप का विस्तृत वर्णन गीतावली में है। कवि कहता है, दोनों भाइयों के शरीर नीले और पीले कमलों के रंग के हैं तथा किशोर, अवस्था हैं। उनके हाथों में धनुष-बाण तथा कमर में पीताम्बर एवं तरकस शोभायमान हैं। उनके मनोहर कंठों में मणियों की माला है, शरीर में चंदन की खौर शोभायमान है तथा उनके मनोहर शरीर कमल जैसे नयन एवं मुख की छवि का वर्णन नहीं किया जाता। सिर पर नवीन पत्ते, पंख और पुष्प शोभायमान हैं। उनके वेष की सुंदरता का मैं किस प्रकार वर्णन करूं? मानों त्रिभुवन की सुंदरता ही मूर्तिमती होकर दो भागों में बंट गयी है।[37] इस सौंदर्य का भी कवि ने बार-बार वर्णन किया है।[38] मुनि पत्नियों और मुनिकुमारों से उन्होंने इस सौंदर्य का वर्णन कराया है।[39]

---

३३ रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुं जेहिं देखा।।
मानस बा १९९।६

३४ वही १९९।(१-६)

३५ रघुबर बाल छवि कहौं बरनि।
सकल सुख की सींव। कोटि-मनोज-सोभा-हरनि।।गीता-बा २

३६ मानस-बा- २०९।१

३७ गीता - बा० ५२

३८ वही - ५३, ५४, ५५

जनकपुर में राम का रूप-सौंदर्य

जनकपुर में राम के रूप का सौंदय-वर्णन कवि ने दो प्रकार से कराया है। प्रथम तो अज्ञात राज कुमारों के सौंदर्य के रूप में। धनुष-यज्ञ में जाने पर जनकपुर के स्त्री-पुरूष सभी उनके रूप से मुग्ध हो गए हैं।[४०] फुलवारी तथा यज्ञ-भूमि में भी जिसने उन्हें देखा वह ठगा सा रह गया है।[४१] इस प्रकार राम के रूप का सर्वव्यापी प्रभाव कवि ने दिखलाया है। उनका यह रूप किशोर राम का है तथा सीता के श्रृंगार का आलंबन है।[४२] सीता इन्हीं अज्ञात किशोर की पति रूप में याचना करती है[४३] तथा सभी नर-नारी इसी जोड़ी को उपयुक्त समझते हैं।[४४] राम का दूसरा रूप दूलह राम का है।[४५] धनुर्भंगोपरांत राम-सीता का विवाह होता है। विवाह के अवसर पर उनका वर रूप कैसा विमोहित करने वाला है, इसका विशद वर्णन कवियों ने किया है। इन दोनों ही वर्णनों में रूप-वर्णन के साथ-साथ उसके प्रभाव-वर्णन का कवि ने विशेष ध्यान रखा है।[४६] राम के इस रूप-वर्णन में भी नख-शिख प्रणाली अपनाई गई है।[४७] मानस में इस सौंदर्य का वर्णन निम्नलिखित रूप में है।[४८]

---

४० मानस बा० २२२।४, २२६।१-४, २२०।१-४ आदि गीता ६२-७० आदि

४१ मानस बा० २२८, २३२।३ आदि, गीता ७१

४२ मानस बा०वही २३२।४ आदि गीता वही

४३ वही २३६।२, गीता ७२

४४ मानस बा० २२३।१, गीता ७७ आदि कविता बा १४,१५,१६

४५ मानस बा० ३१६।१-२ आदि, गीता १०५, १०८ आदि

४६ जो सुख भा सिय मातु मन देखि राम बर बेषु।
सो न सकहिं कहि कलप सत सहस सारदा सेषु।। मानस ३१८।
कविता बा० १७

४७ राम चंद्रिका ६।४६-५८। गीता १०८, मानस बा० ३२७।१-

४८ मानस बा० ३२७।१-५, छ० १

श्री राम का सांवला शरीर स्वभाव से ही सुन्दर है। उसकी शोभा करोड़ों कामदेवों को लजाने वाली है। महावर से युक्त चरण कमल बड़े सुहावने लगते हैं, जिनपर मुनियों के मन रूपी भौंरे सदा छाये रहते हैं। पवित्र और मनोहर पीली धोती प्रात:काल के सूर्य और बिजली की ज्योति को हरे लेती है। कमर में सुंदर किंकिणी और कटि सूत्र हैं। विशाल भुजाओं में सुंदर आभूषण सुशोभित हैं। पीला जनेऊ महान् शोभा दे रहा है। हाथ की अंगूठी चित्त को चुरा लेती है। ब्याह के सब साज सजे हुए वे शोभा पा रहे हैं चौड़ी छाती पर हृदय पर पहनने के सुंदर आभूषण सुशोभित हैं।

"पीला दुपट्टा कांखा सोती (जनेऊ की तरह) शोभित हैं, जिसके दोनों छोरों पर मणि और मोती लगे हैं। कमल के समान सुन्दर नेत्र हैं, कानों में सुन्दर कुंडल हैं और मुख तो सारी सुन्दरता का खजाना ही है। सुन्दर भौंहें और मनोहर नासिका है। ललाट पर तिलक तो सुन्दरता का घर ही है। जिसमें मंगलमय मोती और मणि गुंथे हुए हैं। ऐसा मनोहर और माथे पर सोहता है। सुंदर मौर में बहुमूल्य मणियां गुंथी हुई हैं, सभी अंग चित्त को देखकर तिनका तोड़ रही हैं और मणि, वस्त्र तथा आभूषण निछावर करके आरती उतार रही और मंगलगान कर रही हैं। देवता फूल बरसा रहे हैं और सूत, मागध तथा भाट सुयश सुना रहे हैं।"

राम के दूल्हे रूप के वर्णन में कवि का मन विशेष रमा है तथा उसने उनके जनकपुर में के सौंदर्य का विशेष रमा है तथा उसने उनके जनकपुर में के सौंदर्य का विशेष विस्तार से वर्णन किया है। इस वर्णन में राम के रूप, आभूषणादि का परंपरागत रूप में प्रभावशाली वर्णन हुआ है। मात्रा में यह सबसे अधिक है।

### वनवासी राम का रूप-वर्णन

राम के वनवासी रूप का वर्णन ग्राम-वधूटियों द्वारा हुआ है।[४६] इस वर्णन में उनके रूप के उपांगों का उतना उल्लेख नहीं है जितना

---

४६ मानस १७२।१, गीता अ०१३ से ४२। कवित्त अ० १४-२५, रामचंद्रिका ६।३५

कि उसके हृदय ग्राही प्रभाव का । इन अज्ञात पथिकों की रूप माधुरी से सभी दर्शक न केवल मुग्ध हैं बल्कि उनके अन्दर आत्म-त्याग की भावना भी उदय होती है ।[५०]

वनवासी राम के रूप वर्णन में उनके अंगों की प्राकृतिक शोभा, वल्कल वस्त्र, जटा-मुकुट और धनुष बाण का वर्णन है ।[५१] उनके अंगों के सौंदर्य वर्णन के लिए परंपरागत उपमानों का प्रयोग हुआ है जिनमें कमल, जलज, मरकतमणि आदि प्रमुख हैं । उनका यह रूप करोड़ों कामदेवों के मन को मोहित करने वाला है ।[५२]

## शूर्पणखा द्वारा वर्णित राम का रूप सौंदर्य और उसका प्रभाव

शूर्पणखा द्वारा राम का सौंदर्य-वर्णन अत्यल्प है । मानस में उसने राम के सौंदर्य का संकेत अपनी सुंदरता के अनुरूप उन्हें बतला कर किया है । उनसा सुन्दर व्यक्ति त्रैलोक्य में नहीं है, इसका संकेत भी उसने किया ।[५३] रामचंद्रिका में उसने अधिक विस्तार से इस रूप का बखान कर स्वयं राम से उनका परिचय पूछा । इस प्रश्न में ही उनके लोकोत्तर सौंदर्य का संकेत कर दिया है--

किन्नर हौ नर रूप विचच्छन जच्छ कि स्वच्छ सरीरन सोहैं ।
चित्त चकोर के चंद किधौं मृगलोचन चारु विमानन रोहौ ।।
अंग धरे कि अनंग हौ केशव, अनेकन के मन मोहौ ।
बीर जटान धरे धनुबान लिये बनिता बन में तुम को हौ ।।[५४]

---

५० शुक्ल -- शील साधना और भक्ति

५१ मानस अ०११५।३-४ गीतावली अ० १५ आदि,

५२ तरुन तमाल बरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन मनु मोहा ।।
मानस अ० ११५।३

५३ तुम सम न पुरुष न मो सम नारी । यह संजोग विधि रचा बिचारी ।
मम अनुरूप पुरुष जग माहीं । देखेउं खोजि लोक तिहु नाहीं ।।
तातें अब लगि रहिउं कुमारी । मनु माना कछु तुम्हहि निहारी ।
मानस अरण्य १७।४-५

५४ रामचंद्रिका ११।३३

उपर्युक्त तथा एक-आध अन्य उक्तियों में इस प्रसंग में वर्णित राम-सौंदर्य का प्रभाव व्यक्त हुआ है । राम को देखते ही शूर्पणखा विकल हो जाती है । वह काम से उसी प्रकार द्रवित हो रही है जैसे सूर्य-दर्शन से सूर्यकान्त मणि द्रवित होती है ।[५५] इसी काम से प्रेरित होकर उसने राम के संमुख प्रेम-प्रस्ताव रखा है । इस प्रकार राम के कामोत्तेजक सौंदर्य का संकेत कवि ने प्रस्तुत किया है ।

केशव दास ने राम के शरीर की सुगंध का वर्णन इस प्रसंग में किया है जिससे बंधी हुई शूर्पणखा खिंच आई थी ।[५६] उसका तन मन काम से मथ रहा था और उसने सौंदर्य-वर्णन में बतलाया कि वह लोगों के नेत्रों में बसने वाला है । इस प्रकार राम के रूप का प्रभाव कवि ने व्यक्त किया है ।

खरदूषण-युद्ध के समय राम का रूप और उनका शत्रुओं पर प्रभाव

खरदूषण के आक्रमण के लिए तत्पर राम के रूप और उसके प्रभाव का वर्णन तुलसी ने मानस में किया है । 'कठिन धनुष चढ़ाकर सिर पर जटा का जूड़ा बांधते हुए उस समय राम ऐसे सुशोभित हो रहे हैं जैसे मरकत मणि के पर्वत पर करोड़ों बिजलियों से दो सांप लड़ रहे हों । कमर में तरकस कसकर, विशाल भुजाओं में धनुष लेकर और बाण सुधारकर प्रभु श्री राम राक्षसों की ओर देख रहे हैं मानों मतवाले हाथियों के समूह को देखकर सिंह उनकी ओर ताक रहा हो ।[५७]

राम के वीर रूप का यह वर्णन है पर इसका प्रभाव खरदूषण पर भिन्न प्रकार का पड़ता है । वह राम की रूप माधुरी देखकर स्तंभित रह जाता है । अपने साथियों से वह कहता है कि नाग, सुर-असुर, नर-मुनि कहीं भी ऐसी सुंदरता हमने नहीं देखी ।

---

५६ सहज सुगंध शरीर की दिसि विदिसन अवगाहि ।
दूती ज्यों आई लिये केशव सूर्पनखाहि ।। रामचंद्रिका ११।३१

५७ कोदंड कठिन चढ़ाइ सिर जट जूट बांधत सोह क्यों ।
मरकत सयल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों ।।
कटि कसि निषंग बिसाल भुज गहि चाप बिसिख सुधारि कै ।
चितवत मनहुँ मृगराज प्रभु गजराज घटा निहारि कै ।।
मानस अरण्य १८।छं०

यद्यपि उन्होंने खरदूषण की बहन को कुरूप कर दिया था पर फिर भी उनका मन रामका वध करने का नहीं चाहता था ।[५८] इस वर्णन द्वारा कवि ने राम के रूप के विश्वविमोहन प्रभाव को स्पष्ट किया है । भयंकर शत्रु भी उन्हें युद्ध के लिए तत्पर देखकर भी उनके प्रति कोमल हो जाता है । ऐसा आकर्षक और अद्भुत उनका सौंदर्य है ।

राजाराम का रूप-वर्णन

लंका विजयोपरांत राम के रूप का संकेत मानस में राज्याभिषेक के बाद तुलसी ने किया है । वे कहते हैं कि श्रीराम के शरीर में अनेक कामदेवों की छवि शोभा दे रही है । नवीन जल युक्त मेघों के समान सुन्दर श्याम शरीर पर पीताम्बर देवताओं के मन को भी मोहित कर रहा है । मुकुट, बाजूबंद आदि विचित्र आभूषण अंग-अंग में सजे हुए हैं । कमल के समान नेत्र है, चौड़ी छाती है और लंबी भुजाएं हैं, जो मनुष्य उनके दर्शन करते हैं वे धन्य हैं ।[५९] गीतावली में यह रूप-वर्णन कुछ अधिक विस्तार से हुआ है । इसमें राम के प्रातः कालीन रूप का वर्णन भी है जिसमें संभोग जनित आलस्य का संकेत है[६०] इसके अतिरिक्त उनके राज्यसिंहासन पर आसीन रूप[६१] तथा सौंदर्य का वर्णन कवि ने नख-शिख प्रणाली पर किया है । इसमें उनके प्रत्येक अंग की सुंदरता की शोभा बतलाई गई है तथा उन अंगों के आभूषणों का संकेत भी है ।[६२] इन वर्णनों द्वारा कवि ने राम के सौंदर्य के अलौकिक आकर्षण की ओर पाठक का ध्यान खींचा है । इनमें परंपरागत उपमान और आभूषणों की योजना है ।

---

५८ मानस अरण्य १९।१-३

५९ मानस, उत्तर १२

६० स्यामल सलौने गात, आलस बस जंभात प्रिया प्रेम रस पा

गीता उत्तर २

६१ वही ६

६२ वही १७ आदि

इस प्रकार राम के रूप वर्णन द्वारा कवि ने उनकी अलौकिक शोभा का चित्र प्रस्तुत किया है ।।

राम का नख-शिख वर्णन

राम का नख शिख-वर्णन उनके तीन रूपों का मिलता है । एक तो शिशु राम, दूसरे तरूण राम और तीसरे राजा राम का है । बालक राम का नख शिख वर्णन मानस में उपलब्ध है । इसमें राम के शरीर के अनेक अंगों के सौंदर्य तथा आभूषणों का उल्लेख किया गया है । इसमें उनके केश, मुख, नासिका, नेत्र, भौंहें, चिबुक, दसन, श्रवणा, ग्रीवा कटि, बाहु, शरीर, चरण और चरण चिह्नों आदि के सुंदर होने का उल्लेख है तथा कुछ की परंपरागत उपमानों से तुलना की गई है, जैसे शरीर नील कमल या श्याम मेघ के समान है । यह नख-शिख वर्णन क्रमिक नहीं है अर्थात् यह न तो नख से और न ही शिर से क्रम क्रमिक रूप से चला है ।[६३]

दूसरा नखशिख वर्णन तरूण राम का है । यह जनकपुर में फुलवारी आदि[६४] के रंगमंच[६५] तथा विवाह[६६] अवसरों पर हुआ है । इस नखशिख वर्णन के दो भेद किये जा सकते हैं । एक तो संक्षिप्त नखशिख वर्णन जिसमें कुछ अंगों की शोभा का उल्लेख कर दिया गया है तथा दूसरे विस्तृत जिसमें अधिक अंगों की सुंदरता व्यक्त की गई है । इन नखशिख वर्णनों में भी बालरूप के नखशिख-वर्णन की पद्धति ही अपनाई गई है जिसमें कुछ अंगो की सुन्दरता का उल्लेख मात्र है और कुछ के परंपरागत उपमान दिए गए हैं ।

---

मानस बा० १९९।१-९ गीता बा २५,२६,२७

६४ वही बा २३३।१-४, २३३, गीता बा० ६३

६५ गीता-बा ७३, ९०

६६ वही बा० १०८, मानस ३२७।१-९

तीसरा नखशिख वर्णन राम के राजा होने के बाद का है यह भी दो प्रकार का है।[67] एक में तो राजसिंहासनारूढ़ राम का नख शिख वर्णन है तथा दूसरे में सरयू में स्नान करने के उपरांत का उनका सौंदर्य वर्णन है।[68] द्वितीय प्रकार के नखशिख वर्णन में उपर्युक्त नखशिख प्रणाली का पालन करते हुए भी विभिन्न अंगों के लिए रूपकों की आयोजना की गई है। यह आयोजना मुख के अंगों के लिए ही विशेष रूप से हुई है जैसे - देखो, इनके नेत्र कमल, कुटिल केश, कुंडल, भृकुटि और सुन्दर ललाट पर तिलक शोभा के सार हैं। मानों कामदेव प्रभु के रूप पर मोहित हो जाने के कारण अपनी ध्वजा के मकर, धनुष और बाण भूल कर चला गया हो।[69] आदि

समग्ररूप से राम के रूप-वर्णन का अवलोकन करने पर दृष्टिगत होगा कि कवियों ने उन्हें अतिशय सुंदर चित्रित किया है। उनका रूप बालक, वृद्ध, वनिता, मित्र और शत्रु सभी को मोहित करने वाला है। उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। इनका आकर्षण प्रबल है किंतु सीता एवं शूर्पणखा को छोड़ कर अन्य किसी के प्रति वह श्रृंगार का आलम्बन रूप नहीं रहा है।

## नायक के अलंकार

रामाश्रयी शाखा में राम का चरित्र धीरोदात्त नायक का है। इस चरित्र का विकास जीवन की विस्तृत पृष्ठभूमि पर हुआ है। फलस्वरूप इस काव्य में राम के सात्विक अलंकारों की अभिव्यक्ति सरलता से हो सकी है। इन अलंकारों की अभिव्यक्ति करने वाले अनेकानेक प्रसंग

---

६७ वही- उत्तर ६, ७, आदि

६८ वही - उत्तर० ३, ४, ५

६९ गीता - उत्तर १०, तथा १२, १३, १६, १७ आदि

और राम के इन गुणों से सभी इतने परिचित हैं तथा इतने सर्वज्ञात हैं कि इनके सभी के उदाहरणों का देना अनावश्यक है । अत: इन सब गुणों में से कुछ को ही ~~उल्लेख~~ यहाँ उद्धृत किया जा रहा है ।

शोभा -

रचि कै बैठ यज्ञ कुल बैठ बीर सावधान ।
होन लाग होम के जहाँ तहाँ सबै विधान ।
भीम भाँति ताड़का सुभंग लागि करन आय
बान तानि राम पै न नारि जानि छाँड़ जाय ।। ७०

विलास

काल कराल नृपालन्ह के धनुभंगु सुनै फरसा लिएं धाए ।
लक्खनु राम बिलोकि सप्रेम महारिसतें फिरि आँखि दिखाए।।
धीर सिरोमनि बीर बड़े बिनयी बिजयी रघुनाथु सुहाए । ७१
लायक हैं भृगुनायकसे, से धनु-सायक सौंपि सुभाय सिधाए ।।

ललित

फिरि फिरि राम सिय तनु हेरत ।
तृषित जानि जल लेन लखन गए, भुज उठाइ ऊँचे चढ़ि टेरत।। ७२

रामकाव्य में गौण नायक शंकर जी का चरित्र इतना स्वल्प है कि उनके सभी गुणों का प्रदर्शन संभव नहीं । इसके अतिरिक्त उनका चरित्र समग्ररूपेण दिव्य है । श्रृंगार की दृष्टि से काम-रहित होते हुए भी विवाहोपरांत शिव- पार्वती-श्रृंगार वर्णन में ललित नायक का रूप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है ।

---

७० रामचंद्रिका ३।५
७१ कवितावली - बाल २२
७२ गीता - अ० १४

करहिं बिबिध बिधि भोग विलासा । गनन्ह समेत बसहिं कैलासा।
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ । एहि बिधि बिपुल काल चलि गय[७३]

नायक के आभूषण

रामकाव्य में मुख्य नायक राम और गौण नायक शिव, दोनों के ही आभूषणों का संकेत है । ये संकेत इनके रूप-वर्णन में यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं । कहीं भी इनके आभूषणों का एक ही स्थान पर पूरा-पूरा उल्लेख नहीं है । अनेकानेक स्थलों पर इतना ही मात्र उल्लेख है कि अंगों के अनुरूप ही आभूषण हैं ।[७४] फिर भी जिन आभूषणों का स्पष्ट उल्लेख है वे निम्नलिखित हैं--मुकुट,[७५] मणिमाला,[७६] मोती माला,[७७] गुंजमुक्ता माला,[७८] कुंडल,[७९] कर्णफूल,[८०] केयूर,[८१] पहुंची,[८२] कंकण,[८३] मुद्रिका,[८४] करधनी[८५] और नूपुर[८६] । इनमें विविध प्रकार की मालाओं और कुंडल का सर्वाधिक उल्लेख हुआ है ।

शिवजी के आभूषणों का उल्लेख उनके विवाह के अवसर पर हुआ है । ये आभूषण शिव के अनुरूप ही व्यालादि के हैं ।[८७]

---

७३- मानस-बा० १०३।३

७४- भूषन बसन अनुहरत अंगनि, उमगति सुंदरताई।।गीता० बाल ५५

७५- गीता बा० १०८, उत्तर ६ आदि

७६- मानस बाल ।२३२-४, गीता० ५२, ६२, ६३ आदि

७७- रामचंद्रिका ६।५६

७८- वही तथा गीता - उत्तर ८

७९- मानस-बा २३३।२ गीता-बा ६३,६० ।रामचंद्रिका ६।४६

८०- मानस-बा- २१६।४

८१- गीता - उत्तर १७

८२- वही

८३- गीता - उत्तर ६

८४- गीता-सुंदर १, १७, मानस किष्कि २३।५

८५- गीता - बा १०८

८६- वही

८७- सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा । जटा मुकुट अहि मौरु संवारा
[illegible] तिमति पट केहरि छाला ।।

## ७- कृष्णाश्रयी शाखा - नायक का रूप वर्णन

कृष्णाश्रयी शाखा की नींव कृष्ण का रूप है। इसी के ऊपर संपूर्ण-कृष्ण-काव्य निर्मित हुआ है। फल स्वरूप इस काव्य के कृष्ण के रूप का विशद् वर्णन उपलब्ध है। कृष्ण की रूप माधुरी का प्रभाव उनके जन्म से ही परिलक्षित है और उनकी वयस् के साथ बढ़ता गया। इसी रूप माधुरी की ठगौरी में गोपियां बिक गईं। इस रूप का अध्ययन दो शीर्षकों के अंतर्गत हो सकता है। प्रथम शिशु और बालकृष्ण का रूप सौंदर्य और द्वितीय कृष्ण का रूप सौंदर्य। कृष्ण की मथुरा और द्वारका लीला में उनके राजसी रूप के दर्शन होते हैं। मात्रा की दृष्टि से यह अल्प है और प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से उसका महत्व गौण है।

### शिशु और बाल कृष्ण

शिशु और बाल कृष्ण का विस्तृत वर्णन केवल वल्लभ संप्रदाय में ही उपलब्ध है। इनमें भी सूर ने ही इस रूप को विशेष महत्व दिया है। कृष्ण के शिशु-सौंदर्य और उनकी बाल लीलाओं का उन्होंने विस्तृत, सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक और विशद वर्णन किया है। उसकी समता का साहित्य अन्यत्र दुर्लभ है।

### शिशुकृष्ण

कृष्ण का शिशु रूप वात्सल्य का उत्प्रेरक है। उनका शरीर नील जलद के समान है। बंधूक पुष्प से लाल उनके चरण हैं।[८८] बाल आभूषणों से वे युक्त हैं। वे सर्वांग सुंदर हैं। उनपर कोटि कामदेव और सूर्य तथा शतकोटि चन्द्रमा वारे जा सकते हैं इस रूप वर्णन में कहीं-कहीं स्वल्प मात्रा में नखशिख प्रणाली आ

---

८८ सूर ७१७, ७२२ आदि

८६ परमानन्द ३०

गई है । उपमान परंपरा गत हैं । शरीर के गौण अंगों के लिए उपमानों की आयोजना न कर उनके सुंदर होने का उल्लेख मात्र कर दिया गया है ।[६०] कृष्ण का यह रूप श्रृंगार का आलंबन नहीं है । अपने सौंदर्य से पवित्र आकर्षण का केन्द्र मात्र है ।

बालकृष्ण

इस रूप का भी विस्तृत वर्णन विशेषत: सूर सागर में उपलब्ध है । बालों को जटाजूट रूप में बांधे वे शिव समान सुंदर लग रहे हैं । उनके इस रूप को देखकर देवता और मुनिगण भी चकित रह जाते हैं ।[६१] उनकी क्रीड़ाएं मनोहर और विविध प्रकार की होने लगी हैं । जो भी उन्हें देखता वही मोह जाता । उनका सौंदर्य भी अब युवतियों को आकर्षित करने वाला हो गया है और वे उनका आलिंगन करती हैं[६२] तथा कृष्ण भी ग्वालिनों के सौंदर्य पर रीझने लगे हैं ।[६३] प्रकट रूप में इस समय कृष्ण यद्यपि पांच वर्ष के ही हैं किंतु गोपियों से केलि-क्रीड़ा में उनका रूप और व्यवहार किशोर अथवा तरुण नायक का होता है ।[६४]

इस रूप का सुंदर वर्णन सूर दास ने अपने एक पद में किया है । इसमें भी परंपरागत उपमानों की हीनता दिखा कर कृष्ण के अंगों की श्रेष्ठता सिद्ध की गई है :

खेलत स्याम अपनैं रंग ।
नंद लाल निहारि सोभा, निरखि थकित अनंग ।
चरन की छबि देखि डरप्यौ,अरुन, गगन छपाई ।
जानु करभा की सबै छबि, निदरि, लई, छड़ाई ।
जुगल जंघनि खंभ-रंभा, नाहिं समसरि ताहि ।

---

६० सूर ६७३
६१ सूर ७८७
६२ वही ६१६ आदि
६३ वही ६१७
६४ वही ६२४, ६२५, ६२६, ६५४

कटि निरखि केहरि लजाने, रहे बन-घन चाहि ।
हृदय हरि नख अति बिराजत, छबि न बरनी जाइ ।
मनौ बालक बारिघर नव, चंद दियौ दिखाई ।
मुक्त-माल बिसाल उर पर, कछु कहौं उपमाइ ।
मनौ तारा-गननि वेष्ठित गगन निसि रह्यौ छाइ ।
अधर, अनूप नासा, निरखि जन-सुखदाइ ।
मनौ सुक फल बिंब कारन लैन बैठ्यौ आइ ।
कुटिल अलक बिना बपन के मनौ अलि सिसुजाल ।
सूर प्रभु की ललित सोभा, निरखि रहीं ब्रज-बाल ।।[९५]

इसी शोभा के अंतर्गत गोचारण लीला के समय के पदों में वर्णित रूप भी आएगा । इस शोभा के अनेकानेक पद उपलब्ध हैं ।[९६] इसके अतिरिक्त ब्रज प्रवेश शोभा[९७], कालीय दमन के समय की शोभा,[९८] को बाल कृष्ण की शोभा के अंतर्गत लिया जाएगा । इनमें भी कृष्ण के विभिन्न अंगों और आभूषणों की शोभा के आकर्षण का हल्का संकेत सा होने लगा है किंतु वह अभी स्पष्ट नहीं हुआ है । अत: इन्हें बाल कृष्ण के रूप के अंतर्गत लेना ही ठीक होगा ।

## किशोर अथवा तरूण कृष्ण का रूप

कृष्ण का यही रूप श्रृंगार का आलंबन है । इस समय उनकी अवस्था आदि यद्यपि बालक की ही है । अर्थात् पांच वर्ष से लेकर १२ वर्ष के बीच की है पर गोपियों की दृष्टि में उनका रूप किशोर एवं तरूण नायक का है । उनकी लीलाएं भी वैसी ही हैं । उनका यह रूप नारियों को मोहित करने वाला है । इस रूप का अनेकानेक स्थानों पर कवि ने विस्तृत वर्णन किया है ।[९९]

---

९५ वही ८५२
९६ सूर १०३५, १०६६, १०९१, १०९३, १०९४ -१०९७, ११११
९७ वही ११२४, ११२५, १२३४
९८ वही ११८२, ११८३
९९ वही १२४३, १२४४, १२४५

यह वर्णन एक पद में नख शिख प्रणाली, सामान्य उल्लेख मात्र तथा विभिन्न अंगों पर अलग-अलग पद के रूप में हुआ है। इसमें कृष्ण के विभिन्न अंग, उनके आभूषण तथा इस सौंदर्य का प्रभाव वर्णित है। यही प्रभाव गोपियों के आकर्षण का कारण तथा राधा के प्रेम का जनक है।[१००] अलग-अलग गोपियाँ अलग-अलग अंग पर मोहित होती हैं।[१०१] इनमें विभिन्न अंगों के वर्णन के लिए परंपरागत उपमानों का ही प्रभावशाली ढंग से प्रयोग किया गया है और उनके माध्यम से कृष्ण का अति आकर्षक रूप खड़ा किया गया है। टिप्पणी में दिए गए स्वल्प उदाहरणों के अतिरिक्त इस रूप वर्णन के इतने उदाहरण सर्वत्र उपलब्ध हैं कि उनका कथन अनावश्यक विस्तार होगा।

अन्य संप्रदायों में कृष्ण के तरूण रूप का संकेत ही अधिक है वर्णन कम। उनमें तो अधिकतर केलि की ही चर्चा हुई है जिसके कारण रूप वर्णन का विस्तार नहीं है। परंतु रूप की अद्भुत माधुरी की स्वीकृति सर्वत्र है।

कृष्ण का खंडिता प्रसंग का रूप

इस रूप में कृष्ण के अंगों के अन्यत्र संभोग के चिह्नों के उल्लेख हैं। वल्लभ सम्प्रदाय में ऐसे उल्लेख अपेक्षाकृत अधिक हैं। इनमें खंडिता नायिका व्यंग वचनों द्वारा नायक के संभोग चिह्न से युक्त रूप का वर्णन करती है। ऐसा ही एक पद नीचे दिया जा रहा है --

ऐसी कही रंगीले लाल।
जावक सौं कहं पाग रगाई, रंगरेजिनी मिली कोउ बाल।
बदन रंग कपोलनि दीन्हीं अंजन अधर भए स्याम रसाल।

---

१०० वही १२८८, १२६०, परमा० ४४१, ४४७ आदि
१०१ वही १२५२, १२६५ आदि
१०२

जिनि तुम्हरी मन-इच्छा पुरई, धनि-धनि पिय, धनि-धनि वह बाल ।
माला कहाँ मिली बिनु गुन की, उर छत देखि भईं बेहाल ।
सूर स्याम छवि सबै बिराजी, यहै देखि मोकौं जंजाल ।[१०२]

मथुरा में कृष्ण का रूप

कृष्ण बालक रूप में मकराकृत कुंडलादि आभूषण पहने मथुरा-पुरी में प्रवेश करते हैं । उनका यह रूप परंपरागत ही है तथा मथुरा मथुरा के अनजान लोग भी इस रूप को देखकर मुग्ध हो जाते हैं ।[१०३] मथुरा वासिनी स्त्रियाँ उनके रूप का वर्णन करती है ।[१०४] रंगभूमि में भी उनका ऐसा ही रूप है ।[१०५]

रूक्मिणी पति कृष्ण का रूप

रूक्मिणी से विवाह के लिए जाते हुए कृष्ण की शोभा का वर्णन एक लम्बे पद में नखशिख प्रणाली पर सूर ने किया है । यहाँ भी उनके अंग और आभूषणों का परंपरागत वर्णन कर उनकी शोभा का चित्र चित्रित किया गया है । इस चित्र में कृष्ण अश्वारूप हैं ।[१०६]

कृष्ण का नखशिख वर्णन

कृष्ण के रूप-वर्णन के प्रसंग में हम ऊपर कह आए हैं कि यह वर्णन अनेक स्थलों पर नखशिख प्रणाली में हुआ है । यह भी दो रूप में है । एक तो एक ही पद में विभिन्न अंगों के सौंदर्य का सामान्य अथवा आलंकारिक वर्णन[१०७] तथा दूसरे एक-एक अंग का एक एक पद में विस्तृत वर्णन[१०८] कृष्ण का यह नखशिख वर्णन सूर में अतिविस्तृत रूप में तथा अन्यत्र न्यूनाधिक रूप में प्राप्त है । इस

---

१०२ सूर ३१०३ आदि, व्यास ७२६-७३८, गोविंद २४५ आदि, परमा० ७१६ आदि
१०३ सूर ३६४४
१०४ सूर ३५८०
१०५ सूर ३६६६
१०६ सूर ४८०४
१०७ सूर मदन मोहन १०२ गदाधरभट्ट पृ३।२४-३६ आदि सूर १२४३

नखशिख वर्णन में सर्वत्र परंपरागत उपमानों का व्यवहार हुआ है तथा सुंदर उपमा, उत्प्रेक्षाओं आदि के द्वारा सुन्दर रूप चित्र प्रस्तुत किए गए हैं किंतु सामग्री की दृष्टि से उनमें विशेष नवीनता नहीं है ।

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर दो बातें स्पष्ट हुईं । प्रथम तो यह कि कृष्ण का सौंदर्य सभी संप्रदायों में स्वीकृत होते हुए भी उसका विस्तार वल्लभ संप्रदाय में ही सर्वाधिक हुआ है तथा द्वितीय यह कि इस सौंदर्य वर्णन में नखशिख प्रणाली का विशेष प्रयोग हुआ है । यही सौंदर्य कृष्ण काव्य का मूलाधार है ।

कृष्णाश्रयी शाखा- नायक के अलंकार

कृष्णाश्रयी शाखा के नायक कृष्ण की नायक-भेद के अंतर्गत परिगणना 'धीर ललित' नायक के रूप में होती है । उनका चरित बहुमुखी है एवं उसमें नायक के अलंकारों की अभिव्यक्ति के लिए विशेष अवकाश है । परंतु उनका यह बहुमुखी चरित्र मूलत: दो खंडों में विभाजित है । उनकी ब्रजलीला में मुख्यता ललित गुण की है तथा मथुरा-द्वारका लीला में अन्य गुणों की ब्रज लीला में भी स्थान-स्थान पर उनके अन्यान्य गुण प्रस्फुटित हुए हैं पर वे सामान्यत: बाल-लीला के अंतर्गत आ जाते हैं । उनके श्रृंगारी रूप में अवश्य अन्यान्य गुणों का आरोप किया जा सकता है पर वह समीचीन नहीं होगा ।

यह तो हुई उन संप्रदायों की बात जिनमें कृष्ण की ब्रज, मथुरा और द्वारका लीला, तीनों ही स्वीकृत हैं । जिन संप्रदायों में कृष्ण का 'निकुंज बिहारी' रूप ही स्वीकृत है उनमें कृष्ण के अन्यान्य गुणों को खोज सकने पर भी खोजना अन्याय होगा । नीचे उनके ललित गुण के ही दो एक उदाहरण दिये जा रहे हैं ऐसे उदाहरण सर्वत्र खोजे जा सकते हैं ।

ललित

साध नहीं जुवतिनि मन राखी ।
मन बांछित सबहिनि फल पायो, बेद-उपनिषद साखी ।।

हाव-भाव नैननि-सैननि दै, वचन-रचन मुख भाषी ।।
सुक भागवत प्रगट करि गायौ, कछू न दुविधा राखी ।
सूरदास वृजनारि संग हरि, बाकी रही न काखी ।। [१०९]

तथा

पाछै बैठे मोहन जू मृग नैनी की बैनी गुहत,
सोभा न कही परै, देखत नैन सिरात ।
नख-छबि रवि जानि पानि-कमल फूले,
निकसि चली अलि सैनी अधरात ।।
मानहुं बारिज बिधु सौं रिपु-मति तजि,
सदल सुधा पीवत न अघात ।
स्याम-भुजंगिनि कै डर डोरी बांधत,
व्यास की स्वामिनी को सुंदुर अकुलात ।। [११०]

तथा

खेलत खेल्यौ लाल चाहत रवन ।
रचि-रचि अपने हाथ संवारयौ निकुंज भवन ।।
रजनी शरद मंद सौरभ सौं शीतल पवन ।
तो बिनु कुमरि काम की वेदन मेटव कवन ।।
चलहि न चपल बाल मृगनैनी तजिव भवन ।
जै श्री हित हरिवंश मिलव प्यारे की आरति दवन । [१११]

कृष्ण के आभूषण

कृष्णाश्रयी शाखा के विभिन्न संप्रदायों में नायक के आभूषणों के संबंध में कोई विशेष प्रवृत्ति दृष्टिगोचर नहीं होती । सभी सं

---

१०९ सूरसागर १७९०

११० व्यास ३३३

१११ हित चौरासी ३६

दायों में कृष्ण के सौंदर्य-उल्लेख में उनके आभूषणों का भी उल्लेख है। ऐसे उल्लेख राधावल्लभ संप्रदाय में न्यूनतम हैं तथा शेष संप्रदायों में साधारण मात्रा में। अधिकतम उल्लेख सूरदास में हैं जो कि रचना की मात्रा के अनुपात में स्वाभाविक ही है। कहीं-कहीं आभूषणों के उल्लेख कृष्ण के नख-शिख-वर्णन वाले पदों में हैं।[११२] कृष्ण के जिन आभूषणों का उल्लेख कृष्ण-काव्य में मिलता है उसकी सूची निम्नरूप में है-- मोर-मुकुट[११३], कुंडल[११४], मुक्तामाल[११५], मणिमाल[११६] बनमाल[११७], मोतीमाल[११८], बैजंती माल[११९], कौस्तुभ माल[१२०], हंसुली, हैम, हमैल[१२१], गुंजामाल[१२२], नाक में मुक्ता[१२३], केयूर[१२४], किंकिणी[१२५],

---

११२- सूरदास मदन मोहन पद १०२ पृ ३६-३७, गदाधर भट्ट पृ३ तथा पृ ५५

११३- परमानन्द २१६, ४४८, सूर १२४२ आदि, व्यास ६० आदि

११४- परमानन्द १४१, २१२ आदि गोविन्ददास ५५, सूर १२४४, १८३३ आदि, हितहरिवंश स्फुटवाणी २२।

११५- प० १४१, गोविन्द १२६, सूर १२४६, १८२२ आदि, हितहरिवंशस्फुट वाणी २२

११६- परमा० १४२, २१२

११७- परमा० २१२, २२४, ३०१ आदि, गोविन्द ५५, सूर १२४८, २३७२ आदि

११८- परमा० २२७, श्री भट्ट ३७, सूर २३७३ आदि

११९- परमा० ३४८, नंददास ग्रंथा० पृ २६१।१६ पंक्ति, माधुरी वाणी, २५३

१२०- परमा० ६१४, सूर १२४३

१२१- परमा ३०१

१२२- परमा ४४१, ६५५ आदि, नंददास पृ २५०।२०, व्यास ५६७

१२३- सूर १८२२

१२४- सूर १२४३

१२५- किंकिणी- परमा० ५६५, गोविंद १२६, महावाणी, सेवासुख ७२, सूर १२४३ आदि।

नूपुर,[१२६] मुद्रिका,[१२७] और मंजीर ।[१२८]

के अतिरिक्त पुष्पों के आभूषणों

इन आभूषणों का भी उल्लेख कहीं-कहीं पर है । सामान्यत: इन आभूषणों का नाम नहीं गिनाया गया है ।[१२९] कहीं-कहीं इनमें से कुछ का नामोल्लेख है ।[१३०] माधुरी वाणी में कमल के आभूषणों की विशेष चर्चा है ।[१३१]

कृष्ण के आभूषणों के उपर्युक्त प्रकार के उल्लेख होते हुए भी कवियों की प्रवृत्ति मुख्यत: राधा के आभूषणों की चर्चा की ही ओर रही है । कृष्ण के आभूषणों का उल्लेख प्रसंग रूप में अधिक हुआ है ।

---

१२६- परमा० ५६५, सूर १२४३

१२७- सूर १२४३

१२८- वल्लभ रसिक-गुलाब कुंज की मांफ पृ३६

१२९-माधुरीवाणी-केलिमाधुरी ४४-५०

१३०- वही-वंशीवट माधुरी, २१३-२१७, कंठमाल, पहुंची, माला

१३१- वही

## (ख) नायक की विभिन्न चेष्टाएं

### ज्ञानाश्रयी शाखा

ज्ञानाश्रयी शाखा में नायक की कुछ चेष्टाओं का वर्णन है। इसमें मुख्य रूप से ईष्ट द्वारा प्रेम बाण मारने की चर्चा की है।[१३२] कहीं कहीं यह बाण सतगुर भी मारती है।[१३३] इसी को यदि हम चाहें तो उद्दीपन कह सकते हैं।

यथार्थ में निर्गुण और निराकार ब्रह्म में आकर्षण की क्रियाओं का आरोप कठिन है। हां, कभी कभी उसकी ज्योति स्वयं आ कर ज्ञानी भक्त के मन को बेध देती है अथवा कभी सतगुरु अपने बाण से भक्त के मर्मस्थल में चोट कर उसके हृदय में इष्ट का प्रेम उत्पन्न करता है। इनसे अधिक चेष्टाओं की योजना नहीं है।

### २- प्रेमाश्रयी शाखा

प्रेमाश्रयी शाखा में नायक की कुछ ऐसी चेष्टाएं प्राप्त हैं जो कि नायिका के हृदय में स रति भाव को उद्दीप्त करने वाली हैं। ये क्रियाएं संभोग और विप्रलंभ दोनों भावों को उद्दीप्त कर सकती हैं। इनके निम्नलिखित रूप प्राप्त हैं :-

(क) नायक का नायिका के प्रेम में योगी होना- रत्न सेन का

---

१३२ जबहूं मारया खैंचि करि, तब मैं पाई जांणि
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छांणि ।। कबीर ग्रंथा १
श्याम सुन्दर पृ० ८
तथा जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या
तिहि सरि अजहू मारि, सर विन सच पाऊं नहीं। वही पृ०

१३३- सतगुर सांचा सूरिवां, सबद जु बाह्या एक।
लागत ही मैं मिल गया, पड़या कलेजै छेक। वही पृ
तथा सतगुरु लई कमाण करि, बाहण लागा तीर।
एक जु बाह्य प्रीति सूं, भीतरि रह्या सरीर। पृ० १

पद्मावती के प्रेम में योगी होकर अनेक कष्ट सहते हुए सिंहल द्वीप आना पद्मावती के मन में प्रेम उत्पन्न करता है। उसके सच्चे प्रेम त्याग और तपस्या से वह प्रभावित होती है।[१३४] चित्रावली पर भी सुजान का योगी होना प्रभाव डालता है।[१३५]

(२) नायक का दूसरे के प्रेम में योगी होकर जाना - नागमती के विरह में प्रिय का योगी रूप में पद्मावती के लिए गमन विशेष उद्दीपक है।[१३६]

(३) प्रिय का प्रेमिका का नाम रटना - विरह में विदग्ध प्रिय का प्रेमिका का नाम रटना प्रेमिका के हृदय में रति भाव उद्दीप्त करने वाला होता है।[१३७]

(४) प्रिय का पत्र- पत्र द्वारा प्रेम का उद्दीप्त होना बड़ा स्वाभाविक है। प्रिय के विरह में पाती प्रिय मिलन के तुल्य[१३८] सुखद होती है। पर साथ ही साथ तीव्र विरह की ज्वाला को भी उद्दीप्त कर देती है। ये पत्र प्रेमी की प्रेम ज्वाला से जल जाते हैं। रक्त के आसुओं से लिखे ऐसे पत्र क्यों न विरह के उद्दीपन हों।[१३९]

(५) प्रिय का संदेश- प्रिय का संदेश जिसमें प्रेम का निवेदन या अपनी असमर्थता या अपने प्रेम एवं विरह की अभिव्यक्ति होती है वह प्रेम को उद्दीप्त करने वाला होता है। रत्नसेन तथा सुजान के संदेश ऐसे ही हैं।

१०- रामाश्रयी शाखा-

रामाश्रयी शाखा में नायक की श्रृंगारिक चेष्टाएं कम हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम राम और महासती सीता के प्रेमांकुरण के लिए

---

१३४- पद्मावत १६७

१३५- चित्रावली २५८

१३६- पद्मावत १३१

१३७- पद्मावत १६७

१३८- पद्मावत २३४: आधी भैंट प्रीतम के पाती।

१३९- वही २२३

इसकी विशेष आवश्यकता भी नहीं है। उनका प्रेम तो जन्म-जन्मान्तर का है। प्रथम दर्शन में ही वह प्रीति उमड़ आती है। अतः इस साहित्य में प्रेम-चेष्टाएं कम हैं। उनकी जो ऐसी चेष्टाएं हैं वे नीचे दी जा रही हैं।

(क) प्रिय का कठिन कर्म में संलग्न होना- प्रिय को कठिन कर्म में प्रवृत्त देख कर प्रिया के मन में उत्सुकता, संशय आदि भावों का उद्दीप्त होना स्वाभाविक है। यदि इस कार्य की सफलता पर ही प्रिय-प्रिया का मिलन निर्भर है तब तो यह और भी उद्दीप्त होगा। इस भावना के मूल में श्रृंगार ही की स्थिति है। इसी श्रृंगार के कारण जब सीता धनुषयज्ञ में राम को धनुर्भंग के लिए तत्पर देखती हैं तो उनके मन संशय आदि भाव उत्पन्न होते हैं तथा वे प्रियकी सफलता के लिए देवी-देवताओं को मनाने लगती हैं।[१४०] इस प्रकार प्रिय का यह कार्य श्रृंगार का उद्दीपक है।

(ख) प्रिय का वन न चलने का उपदेश - सीता ऐसी पतिव्रता नारी को जब रामचन्द्र ने बनवास की कठिनाइयाँ आदि बतला कर वन जाने से विरत करना चाहा तो उनका यह उपदेश सीता के प्रेम का उद्दीपक हुआ और वे अनेक प्रकार से तर्क देकर चलने को तैयार होती हैं।[१४१]

(ग) प्रिय द्वारा प्रिया का श्रृंगार आदि- ऐसे चित्र दो-एक ही उपलब्ध हैं। राम चन्द्र चित्रकूट में अपने हाथों अपनी प्रिया सीता के अंग-प्रत्यंगों पर धातुओं से पत्र रचना करते हैं तथा फूलों के आभूषण बनाते हैं।[१४२] अरण्य काण्ड में भी ऐसी श्रृंगार रचना का उल्लेख है।[१४३] प्रिय की ये क्रियाएं उद्दीपन कारी हैं।

(घ) प्रिय का संदेश- वियोग की स्थिति में प्रिय का संदेश सांत्व- देने वाला तथा विरहाग्नि को और भी अधिक भड़काने वाले -

---

१४०- मानस- बा० २५७।१-४, २५८।१-४

१४१- मानस अ० ६१-६७ गीता- अ० ५-९

१४२-गीतावली अ० ४४

१४३- मानस- अरण्य० १।२

मानस में हनुमान द्वारा जानकी को दिया गया संदेश और उसका उत्तर ऐसे ही उद्दीपन कारी है। [१४४]

११- कृष्णाश्रयी शाखा

कृष्ण का प्रेम उन्मुक्त और क्रीड़ा-रूप में विकसित हुआ। इसलिए उसमे नायक की विविध क्रीड़ाओं और क्रियाओं के लिए विशेष अवसर है। कृष्ण का नायक रूप भी इन क्रीड़ाओं से परिपूर्ण है। उनकी मोहनी सूरत, उनकी नटखट शरारते, उनका भोलापन मिश्रित धूर्तता, उनकी प्रत्येक छेड़-छाड़, उनकी धृष्टता, उनकी काम-कला कोविदता आदि सभी तो गोपियों के मन को आकर्षित कर लेती है। उनके इन्हीं रूपों की क्रियाओं को नीचे दिया जा रहा है। मात्रा में ये इतनी अधिक है कि सभी की परिगणना संभव नहीं है।

(क) कृष्ण की माखन चोरी- कृष्ण गोपियों के निकट संपर्क में माखन चोरी द्वारा आते हैं। ब्रज-युवतियां, जिनके हृदय में कृष्ण-रति पूर्व से ही है, उनके हृदय में इस प्रसंग द्वारा यह आशा बंधती है कि वे इस प्रकार हमारे घर आवेंगे। वे चाहती हैं कि इस प्रकार उन्हें चोरी करते पकड़ने पर वे उन्हें हृदय से लगा सकने में सफल हो सकेंगी। [१४५]

(ख) माखन चोरी के अवसर पर गोपियों का आलिंगनादि- चतुर कृष्ण माखन-चोरी के प्रसंगों मे अक्सर गोपियों का आलिंगनादि कर उनके हृदय में काम उद्दीप्त कर देते हैं। इस प्रकार की उनकी क्रियाएं बड़ी ही उद्दीपन कारी होती है। [१४६] कृष्ण और गोपियों का परस्पर एक दूसरे को इन क्रियाओं के लिए दोष देना और भी अधिक शृंगार का वर्द्धक है। [१४७]

---

१४४- मानस- सुंदर १४,१५

१४५-सूरसागर ८९०,८९१, परमानन्द ९६,१४७ आदि

१४६- वही ९१६,९१९

१४७- वही ९२२, ९२५ आदि, १३००, १३१९

(ग) कृष्ण की काम चेष्टाएं - कृष्ण की गोपियों के साथ बहु प्रकार की काम चेष्टाएं भी अत्यंत उद्दीपन कारी है। इनमें आलिंगन, चुंबन, नखक्षत, चोली फाड़ना आदि है। [१४८] इनका उल्लेख संभोग-शृंगार वर्णन के अंतर्गत भी होने के कारण यहां संकेत मात्र किया जा रहा है।

(घ) कृष्ण की मधुर बातें- कृष्ण की बात करने की चतुरता भी अत्यंत उद्दीपन कारी है। इनके द्वारा न केवल वे राधिका को अपनी ओर आकर्षित ही करते है बल्कि उस आकर्षण को छिपाने के लिए छल भी बतलाते है। [१४९]

(ड) गोदोहन- इस अवसर पर दूध की धार को प्यारी के मुख पर फेंकना आदि क्रियाएं अतीव उद्दीपन कारी होती है। [१५०]

(च) चीरहरण- गोपियों की पीठ मलना, उनके वस्त्रादि को चुराना, उनको नग्न देखने के लिए नमस्कार कराना आदि-क्रियाएं भी उद्दीपन है। [१५१]

(छ) ~~चीरहरण~~- रास लीला में कृष्ण का उपदेश - लोक-लज्जा, कुलकानि को तोड़ कर प्रेमडोर में बंधी हुई अपना सर्वस्व समर्पण करने को जो गोपियां आई थी उनको लोक मर्यादा का उपदेश देना उनके प्रेम को और भी अधिक प्रज्जवलित करने वाला हुआ। [१५२]

(ज) कृष्ण का नृत्य- रास नृत्य में संगीत और नृत्यादि क्रियाएं उद्दीपनकारी है। [१५३]

---

१४८- सूरसागर ~~वही~~ ~~तथा~~ ९२३, ९४५, ९५४ आदि कुंभन १५३ आदि
१४९- सूरसागर १२९१, १२९४ आदि, परमानंद ३८५, कुंभन, १४० आदि
१५०- वही १३५९, १३५४
१५१- वही १३८६, १३८७ आदि
१५२- वही १६३३, १६३४ आदि परमानन्द २२७, नंददास ~~व्यास~~ पंचाध्यायी पंक्ति १७१ आदि व्यास-रास पंचाध्यायी ७-८
१५३- वही १६५८, १६७०, १६७४, १६७६ आदि- परमानन्द २२३ आदि-गोविंद ५२, ५३ आदि व्यास, रासपंचाध्यायी २२, व्यास ६३४ आदि।

(झ) कृष्ण का अंतर्धान होना- रास के मध्य में कृष्ण का एकाएक अंतर्ध्यान होना विप्रलंभ श्रृंगार का उद्दीपक है। [१५४]

(ञ) वंशी-वादन - उद्दीपनों में वंशी सबसे महत्व पूर्ण है। कृष्ण का वंशीवादन ही गोपियों को सर्वाधिक आकर्षित करने वाला है। उनके हृदय में इसकी ध्वनि काम की सरिता बहा देती है। इसीलिए इसे योग माया का अवतार माना जाता है तथा रूपगोस्वामी ने इसे नायक सहाय में स्थान दिया है। गोपियां भी कृष्ण की इस वंशी पर मुग्ध हैं। कृष्ण का इसके प्रति प्रेम देख कर इससे सौतिया डाह करती हैं। सूरसागर में इस भाव का विस्तृत वर्णन है। [१५५] पर इसे नायक-सहाय्य के स्थान पर उद्दीपन कहना ही अधिक उचित होगा।

(ट) पनघट लीला- कृष्ण का गोपियों को पनघट पर रोकना, उनकी गगरी को फोड़ना, बीच-बीच में उनकी सहायता करना आदि उनकी सभी क्रियाएं उद्दीपन कारी है। [१५६]

(ठ) दानलीला- पनघट लीला की ही भांति उनका गोपियों से दान मांगना और उसके बहाने अनेकानेक प्रकार से काम संकेत करना अभी उद्दीपन है। [१५७]

(ड) कृष्ण का मथुरा गमन- यह वियोग श्रृंगार का उद्दीपन है जिसके कारण कृष्ण गोपी जीवन में वियोग की स्थिति आई। इसी के कारण गोपियां चिरविरहिणी बनी। [१५८]

---

१५४- वही १७२० आदि परमानन्द २३५ आदि नंददास, रासपंचाध्यायी पंक्ति, २६२

१५५- वही १२३८, १२६६, १६०८-१६२७ आदि, १९१४,१९१५ आदि परमानंद २१० आदि गोविंद ३४४-३४७। कुंभन ३०,३१ आदि नंददास-स्यामसगाई-पंक्ति १०२, रासपंचाध्यायी पंक्ति १०९ आदि।

१५६- वही २०२१,२०२२, २०२७ आदि, व्यास ७१३ आदि

१५७- वही २०७८ आदि २०८३,२०८७,२०९३ आदि परमानन्द १५०, १५१ आदि गोविंद २४,२५,४२,४५ आदि कुंभन १३ आदि, व्यास ७११सु ७१२

१५८- सूर ३६०३ आदि परमा० ४७५ आदि कुंभन ३३४, ३३५ आदि

(ढ) कृष्ण का उद्धव द्वारा संदेश भेजना - कृष्ण का यह कर्म गोपियों के हृदय में एक बाढ़ सा लाने वाला हुआ जिसमें उद्धव की ज्ञान-गठरी बह गई। भ्रमरगीत के मधुर प्रसंग का यह जनक है। इसकी कृष्ण काव्य मे बड़ी प्रचुरता है। इसका अध्ययन बड़े विस्तार से हो चुका है। और इस पर कुछ अधिक लिखना अनावश्यक है।[१५९]

(ग) नायिका का रूप- नख-शिख एवं आभूषण वर्णन

१२- नायिका के स्वरूप में ही कुलीनता, रूप-गुण शीला एवं यौवनवती आदि सामान्य गुणों की परिगणना होती है। इस प्रकार सभी नायिकाएँ रूपवती एवं सुलक्षणा होती है। इनके रूप का वर्णन भक्ति श्रृंगार काव्य में विस्तार से हुआ है क्योंकि यह नायक की दृष्टि से श्रृंगार रस का आलंबन है। प्रेम मे सर्वप्रथम आकृष्ट करनेवाली वस्तु रूप है इस लिए सभी कवियों अपनी नायिकाओं के रूप का अत्यंत विस्तृत वर्णन किया है।

नायिका के रूप का अध्ययन तीन उपशीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है। प्रथम तो उसका सामान्य रूप वर्णन। इसमें अधिकतर रूप के प्रभाव का वर्णन होता है अथवा शरीर के कुछ अंगों, विशेषतः भुजादि के सौष्ठव, आकर्षण आदि का संकेत रहता है। दूसरा उपशीर्षक नखशिख- वर्णन का है। अपनी नायिकाओं के प्रत्येक अंग की सुघराई का वर्णन करने के लिए कविगण इस पद्धति को अपनाते हैं। इसमें नायिका के नख से लेकर शिख तक अथवा शिख से नख तक के प्रत्येक अंग का वर्णन रहता है। तीसरा उपशीर्षक अलंकारों का है। इसमें नायिका के सात्विक एवं यौवन- संबंधी अलंकारों के अतिरिक्त उनके सौंदर्य प्रसाधन तथा वस्त्राभूषणादि भी आते है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रत्येक शाखान्तर्गत इन्हीं शीर्षकों के अन्दर नायिका का रूप एव नखशिख वर्णन का विवेचन होगा।

१३- ज्ञानाश्रयी शाखा-

ज्ञानाश्रयी शाखा में नायिका के रूप का वर्णन नहीं है

---

१५९- सूर ४०४९ आदि परमा - ५३६,५३७ आदि। नंद -भंवरगीत

इस काव्य में आत्मभिव्यक्ति की प्रधानता होने के कारण तथा नायिका का आश्रय रूप मे चित्रण होने के कारण उसके रूप वर्णन का अभाव है ।

१४- प्रेमाश्रयी शाखा-

रूप वर्णन की दृष्टि से यह म शाखा विशेष समृद्ध है । इस शाखा के कवियों ने नायिक का आलंबन रूप में वर्णन किया है, अतएव उनके रूप का उल्लेख स्थाथ- स्थान पर अत्यंन्त विस्तार से और प्रभाव शाली रूप में हुआ है । प्रेमाख्यानकों की कथा-योजना में ही यह रूप वर्णन आवश्यक है । सामान्यतः नायक-नायिका के रूप में पर ही मुग्ध होकर उसे प्राप्त करने के लिए विविध प्रयत्न करता है । इस आकर्षण को इतना प्रबल बनाने के लिए कि राजकुमार नायक गण उसके पीछे राज-पाट, धन-वैभव, सुख-सुविधा सभी त्याग दें कवियों ने नायिका के रूप का अनेकानेक स्थानों पर वर्णन किया है । इस प्रभाव को उत्पन्न करने में वे बड़े सफल हुए हैं और पद्मावती के रूपपरलुब्ध होकर रत्नसेन, चित्रावली पर मुग्ध होकर सुजान और मधुमालती पर मोहित होकर मनोहर ने क्या क्या कष्ट नहीं सहे ।

सामान्य- रूप - वर्णन और उसका प्रभाव-

पद्मावती, चित्रावली, मधुमालती और कनकदला अवर्णनीय रूप वती नायिका है । उनके रूप के सम्मुख सूर्य और चन्द्रमा की कलाएं भी घट कर है ।[१६०] वह ऐसी अपूर्व सुंदरी है कि उसका चित्र- दर्शन ही मन को भ्रमित करने वाला होता है । ऐसा रूप मानवों में नहीं होता है ।[१६१] वह रूप ऐसा है कि उसे जिस

---

१६०- जानहु सुरज किरिन हुति काढ़ी । सुरुज करा घाटि वह बाढ़ी
भा निसि माँह तिन क परगासू । सब उजिआर भएउ कबिलासू
अतैं रूप मूरति परगटी । पूनिउँ ससि सो खीन होइ घटी ।।
पद्मावत ५१

१६१- जग न होइ मानुष अस रूपा । को पावै अस रूप सरूपा

ने देखा वह एक क्षण मूर्छित होता है और वह दूसरे क्षण होश आने पर वह व्याकुल हो जाता है।[१६२] समस्त-धर्म- कर्मों के फलस्वरूप इस रूप के दर्शन होते हैं।[१६३] त्रैलोक्य में उस सौंदर्य की उपमा नहीं होती है।[१६४]

वयः संधि - सौंदर्य- रूप के इस सामान्य कथन और प्रभाव के अतिरिक्त नायिका के वयः संधि के सौंदर्य का उल्लेख भी जायसी और मंझन ने किया है।[१६५] बारह वर्ष की अवस्था से वयः संधि को मान सकते हैं। इसी अवस्था में माता- पिता को कन्या के युवती होने का भान होने लगता है। वे उसे विवाह के योग्य सयानी हुई समझने लगते हैं।[१६६] इस समय शरीर में लड़कपन भी रहता है। अभी उसके कुच विकसित नहीं हुए रहते हैं। उसमें रंग और रोष अल्पमात्रा में रहता है। वह प्रेम सुरा को नहीं जानती। अभी उसे चोली पहनना नहीं आता है। उसके अधरों में अमृत पूरा- पूरा नहीं भरा, नैनों में बांकापन नहीं है अभी काम जागा नहीं है[१६७] धीरे- धीरे वह बाला यौवन से झुक जाती है। उसके अंग- अंग

---

१६२- जो जो देखु रूप सिंगारा। खन मुरछै खन जा बिकरारा ।।
मधुमालती पृ० २६

१६३- कै वहि जन्म पुन्य कुछु कीन्हा। तेहि परसाद दरस इन्ह दीन्हा।
कै बेनी सिर करवट सारा। कै कासी तन तप महं जारा ।।
कै मथुरा बसि हरि जस गावा। ताहिपुन्य यह दरसन पावा ।।
चित्रावली ८४

१६४- रूप सरूप बरनि नहि जाई। तीनिहुं लोक न उपमा पाई ।।
वही १५३

१६५- पद्मावत ५५
मधुमालती पृ० ६२

१६६- बारह बरिस मांह भइ रानी। राजैं सुना संजोग सयानी ।।
पदमावत ५४

१६७- अजहूं रंग रोस तिन्ह थोरा। अजहूं न उभरे कनक क्चोरा ।।
अजहूं न जोबन क्ली न मोली। अजहूं सहज ब दुलारे बोली ।।
अजहूं सरीर न छांडै, लरिकाई कर भाउ।
अजहूं अमोलि न जानौं, पेम सुरा कर चाउ ।।
अजहूं पहिरि न जानी चोली, अजहूं पेम रस भाव अमोली
अजहूं अधर अमी रस ढाके, अजहूं न भये ब लोयेन बांके ।।
अजहूं नाह [illegible] गात न लागे। अजहूं सुरति काम न जागे

में नवीन शोभा फूटने लगती है । उसके अंगों की सुगन्धि जगत में भिद जाती है और चारों ओर से भौंरे आकर लुभायमान होने लगते है । उसके मलय गिरि रूपी पीठ कर वेणी नागिनी लहराने लगती है मस्तक पर द्वितीया के चन्द्रमा की कांति प्रकाशित हो जाती है । वह भौंह रूपी धनुष कर कटाक्ष- बाण संधान करने लगती है उसके नेत्र भूली हिरनी की तरह देखते हैं । नासिका तोते की भांति और मुख कमल जैसा सुशोभित हो जाता है । अधर माणिक्य और दांत हीरे जैसे हो जाते हैं । हृदय सुनहले जंभीरी- निबुओं के समान दोनों कुचों से हुलसने लगता है कटि प्रदेश सिंह तथा गति हाथी सदृश्य हो जाती है । उसके इस रूप के आगे देवता और मनुष्य सभी मुग्ध हो जाते हैं । योगी, यति, संयासी सभी उसे पाने की आशा से तप करते हैं । ऐसा अद्भुत वयः संधि का रूप होता है ।[१६८]

विरहिणी नायिका का रूप वर्णन-

प्रेमाश्रयी काव्य में विप्रलंभ का विस्तृत वर्णन है । यह विप्रलंभ नायिका के विरह - वर्णन द्वारा व्यक्त हुआ है । इसी विरह-वर्णन में विरहिणी नायिका के रूप की झलक मिलती है । यह वर्णन झलक मात्र ही है । और इसमें विस्तार नहीं है । इसमें वियोगिनी नायिका की विरह- जनित शारीरिक स्थिति का वर्णन

---

१६८- भइ औनंत पद्मावति बारी । धज धीरैं सब करी सँवारी ।।
जग बेधा तेइ अंग सुबासा । भंवर आइ लुबुधे चहुं पासा ।।
बेनी नाग मलैगिरि पीठी । ससि माथे होइ दुइजि बईठी ।।
भौंह धनुक साधि सर फेरी । नैन कुरंगिनि भूलि जनु हेरी ।।
नासिक करि कँवल मुख सोहा । पद्मिनि रूप देखि जग मोहा ।।
मानिक अधर दसन जनु हीरा । हिअ हुलसै कुच कनक जंभीरा ।।
केहरि लंक गवन गज हरे । सुर नर देखि माथ भुइं धरे ।
जग कोइ दिस्टि न आवै आछहिं नैन अकास ।
जोगी जती सन्यासी तप साधहिं तेहि आस ।। पद्मावत ५

होता है विरह में किस प्रकार वह कृश हो गई है।[१६९] उसका शरीर पीला पड़ गया है।[१७०] नित्य- प्रति आँसू गिरते रहते है।[१७१] वह बराबर लम्बी साँस लेती रहती है।[१७२] शरीर मे माँस अब है ही नहीं।[१७३] विरहाग्नि में जल कर उसका रंग काला पड़ गया है।[१७४] अपने प्रिय के ध्यान मे ही वह सदा मग्न रहती है।[१७५]-नायिका की इन स्थितियों के वर्णन द्वारा

---

१६९- हाड़ भए झुरि किंगरी नसैं भई सब ताँति ।। पद्मावत ३६१
तथा -पद्मावति बिनु कंत दुहेली । बिनु जल कँवल सूखि जसि बेली।।
वही ५८१
तथा- यह कहि कौल कली कुँभिलानी, भा रवि अस्त सूखि गा पानी
चित्रा० २९६
तथा- बदन पिअर और खीन सरीरा, प्रगट तेहिं पेम की पीरा ।।
मधुमालती ९२
१७०- वही तथा-तन जस पियर पात भा मोरा । विरह न रहै पवन होइ झोरा ।।पदम० ३५२
तथा-कौल आइ दिनकर पहिचाना, भारतनार बदन पियराना ।।
चित्रा- ३३२
१७१- पदम० ३४५,३४६,३५६ आदि लोयन जल जनु घन बरषाई-
चित्रा- १३८
तथा- बारह मास रकत मैं रोवा, मरना भला न यह रे बिछोवा ।।
मधु० पृ० ६५
१७२- उरध उसास पौन परचारा । धुकि धुकि पंजर होय अंगारा ।।
चित्रा-२४८ तथा ३१९
तथा - आह जो मारी विरह की आगि उठी तेहि हाँक ।
हंस जो रहा सरीर मँह पाँख जरे तन थाक ।। पदम० ३४२
१७३- रकत ढरा माँसू गरा हाड़ भए सब संख ।पद्मा० ३५०
तथा - दहि कोइल भै कंत सँनेहा । तोला माँस रहा नहिं देहा ।।
वही - ३५७
तथा- माँसु न कया हाड़ भौ काँती । मधुमालती - पृ० ६५
१७४- हृदै दहि भइ स्याम नदी कालिंदी । विरह कि आगि कठिन आँसि मंदी -पदमा० ३५५
करिया भयो रूप संगराती - चित्रा - ४३०
१७५- पदमा-३४१-३६९ चित्रा-२४३-२५० आदि ,मधुमालती विरा

कवि उसके विरहिणी रूप का निर्माण पाठक के हृदय में करने में बड़े अंश में सफल होता है।

नखशिख वर्णन-

नायिकाओं के रूप- वर्णन में सबसे अधिक अपनाई गई प्रणाली नख-शिख वर्णन की है। सभी कवियों ने जहाँ भी नायिका के रूप का वर्णन करना चाहा है, वहीं पर यह प्रणाली अपनाई है। इसमें नायिका के एक एक अंग को लेकर उनके सौंदर्य अलंकार और प्रभाव का वर्णन कर नायिका के भव्य रूप का निर्माण किया है। यह वर्णन नख से प्रारंभ होकर शिख तक अथवा विलोम रूप में शिख से प्रारंभ हो कर नख तक का होता है। प्रेमाश्रयी कवियों ने यह दूसरा रूप शिख से नख के वर्णन का अपनाया है।

प्रेमाश्रयी काव्य में जिन नायिकाओं का नखशिख वर्णन है वेनिम्नलिखित है :- पद्मावती, सिंहल द्वीप की पनिहारियाँ तथा वेश्याएं, चित्रावली, कौलावती, मधुमालती, प्रेमा ~~और कामकंदला~~। इनमें प्रमुख नायिकाएं पद्मावती, चित्रावली, मधुमालती ~~और कामकंदला~~ है। अतएव इनके नख- शिख वर्णन अधिक विस्तृत, पूर्ण और प्रभावशाली हैं। इनमें से पद्मावती और चित्रावली के एक से अधिक नखशिख वर्णन है। अन्य नायिकाओं के नखशखि वर्णन स्वल्प और संक्षिप्त है।

मुख्य नायिकाओं के नख-शिख की सामान्य विशेषताएं-

प्रेमाश्रयी काव्यों की नायिकाओं के नख-शिख वर्णन के विस्तार में विविधता होते हुए भी इनमें मूलरूप से एकरूपता है। इसी एकता को इस वर्णन की सामान्य विशेषताओं के अन्तर्गत रखा जा सकता है। ये निम्नलिखित हैं :-

(१) रूप का अत्यंत उल्लसित भाव से वर्णन- नायिकाओं के नख-शिख का वर्णन जहाँ कहीं भी आया है वह अत्यंत उल्लसित भाव से किया गया है। कवि का मन जितना विरह वर्णन में लगा है

उससे किसी भी अंश में कम मन नख शिख वर्णन में नहीं लगा है ।[१७६]

(२) सौंदर्य के आदर्श रूप की कल्पना - नायिका का सौंदर्य सर्वत्र अपने आदर्श रूप में वर्णित हुआ है । उसे सुंदरता की सीमा कहा जा सकता है । उसके इस सौंदर्य वर्णन के लिएकवियों ने सुंदरतम उपमानों की संयोजना की है ।[१७७]

(३) रूप वर्णन में अलौकिकता का आरोप- प्रेमाश्रयी कवि अपनी नायिकाओं के सुंदरतम रूप का वर्णन करके ही नहीं रुक गए । उन्होंने इस रूप के अलौकिक होने का विशेष वर्णन किया है । इसका प्रभाव सृष्टि व्यापी है और निखिल संसृति इसके आभास से प्र प्रोद्भासित है । इसी रूप की स्पर्श-दीप्ति से जगत प्रकाशमान है । इस रूप को पद्मावत में " पारस - रूप" की संज्ञा दी गई है । सारा संसार अपना रूप इसी रूप से प्राप्त करता है । जिस पर भी इस रूप की दृष्टि पड़ी वह उसी में लीन हो कर सर्वत्र उसी रूप के दर्शन करता है ।[१७८]

---

१७६- हीरामन शुक द्वारा राजा रत्नसेन से तथा राघव चेतन द्वारा अलाउद्दीन से पद्मावति का सौंदर्य वर्णन-पद्मावत ९९-११८, ४६८-४९८ । परेवा का सुजान से १७६-१९९ चित्रावली- कवि- द्वारा मधुमालती का नखशिख वर्णन पृ० २६-३२

१७७- वही ।

१७८- पद्मावत ९९-११८, उन्ह बानन्ह अस को जो न मारा ।
बेधि रहा सगरौं संसारा ।।
गगन नखत जस जाहिं न गने । सब बान ओहि के हने ।आदि -१०४

मधुमालती-छिटका चीर ह सोहागिनी , जगत भा अन्धकाल ।
जनु बिरही विधि कारन, मनमथ रोपा जाल ।पृ०२७

तथा-
निकलंकी ससि दुइज लिलारा, नौ खंड तीन भुअन उँजियारा।
वही

चित्रावली- एही धनुष जुध मनमथ लीता, कै परनाम काम तन जीता।
भौंह धनुष लखि इन्द्र सँकाना, सब जग जीति सरग कहँ

इस अलौकिकता के आरोप का मूल कारण धार्मिक है। सौंदर्य और प्रेम यों भी अलौकिक होते हैं। किंतु जहाँ उनका उद्देश्य धार्मिक भी हो जाए तो उनकी सृष्टि में अलौकिकता का प्रवेश अनायास हो ही जाता है। फिर प्रेमाश्रयी शाखा के कवि तो इस सौंदर्य के द्वारा अनंत सौंदर्य की झलक दिखलाना चाहते हैं, इश्क मजाज़ी से इश्क हकीकी की ओर हमें ले जाना चाहते थे, इसलिए इस सौंदर्य में अलौकिकता का आरोप स्वमेव हो गया।

(४) नख शिख वर्णन में सामान्यतः सादृश्य मूलक उपमानों का विधानः- नायिका के सौंदर्य वर्णन में इन कवियों ने सादृश्य मूलक उपमानों का ही विशेष रूप से उपयोग किया है। ये उपमान रूप, वर्ण, गुण और क्रिया की सादृश्यता पर आधारित है। किंतु इन कवियों ने इन उपमानों द्वारा केवल साधारण धर्म को ही नहीं बतलाया है बल्कि उसके लोक व्यापी प्रभाव का भी संकेत किया है।[१७९]

ये सादृश्य मूलक उपमान तीन स्त्रोतों से गृहीत है। इनमें से प्रथम तो परंपरा गत है जो भारतीय साहित्य से सदा से स्वीकृत रहे हैं। फलस्वरूप उनके माध्यम से व्यक्त सौन्दर्य अनायास स्पष्ट हो उठता है। कहीं - कहीं इस वर्णन में अति-

---

१७९- तेहि पर तिल सो देइ अस सोभा, मधुकर जानु पुहुप पर लोभा।

कै बिधि चित्र करत कर धरे, करत डरेह बूंद खसि परे॥

बदन सिंगार सोभ जो पावा, रहेउ न दिन पुनि सो न उचावा॥

वह तिल जाहि दिष्टि खल परा, भयो स्याम तस तिल-तिल जरा॥

नहिं चीन्हत कोउ काहु कहँ, जो जग माहिं न होति।

परछाहीं तिल एक की, सब नैनन्ह महँ जोति॥

वही० १८३

शयोक्ति भी है ।[१८०] दूसरे प्रकार के उपमान फारसी साहित्य के प्रभाव से प्राप्त हैं । इनमें मांस, खून आदि की चर्चा रहती है और इनके द्वारा प्रस्तुत चित्र न तो मनोरंजन होते हैं और न ही भाव व की परिपुष्टि और इस निष्पत्ति में ही सहायक होते हैं ।[१८१] सौभाग्य वश इन की संख्या अल्प ही है । तीसरे प्रकार के उपमान लोक गृहीत एवं मौलिक हैं । प्रेमाश्रयी कवियों का संबंध भारत की मिट्टी से बहुत अधिक था । उन्होंने भारत के ग्रामीण जीवन के सच्चे स्वरूप का निकट से निरीक्षण और दर्शन किया था । उन्होंने अनेक उपमान इसी निरीक्षण से प्राप्त किये थे । लोक व्यवहार में ये उपमान प्रचलित थे । ये उपमान मौलिक भी प्रतीत

---

१८०- भंवर केस वह मालति रानी । बिसहर लुरहिं लेहिं अरधानी ।

पद० ९९ आदि ।

दसन जानु हीरा निरमरे, बदन आनि मुख संपुट धरे ।।

चित्रा० १८६ आदि ।

रोमावलि नागिनि बिसभरी, बैबैरहु ते गिरि अनुसरी ।

नाभि कुंड महं जो/परी आई । घूमि रही पै निसरि न जाई ।

मधु० पृ० ३१ ह आदि

तथा-

पुनि तिहि ठाउं कुकु परी तिरि रेखा, घूंटत पीक लीक सब देखा ।

पद्म० १११ ।

का धनि कहौं जैसि सुकुवारा । फूल के छुएं जाइ बिकरारा ।

पंखुरी लीजहिं फूलन्ह सैती । सो नित डासिअ सेज सुँपेती

फूल समूच रहै जो पावा । व्याकुलि होइ नींद नहि आ-

पद्म० ४८५

१८१- कर पल्लौ जो हथोरिन्ह साथां । वै सुठि रक्त भरे

देखत हिए काढ़ि जिउ लेहीं । हिया काढ़ि लै जाहिं

पद० ४८२

बिरही जन जहवां लगि मारे । तिन्ह के रक्त दिहे

मधु० पृ०

जेहि जेहि पंथ चरन ते चले । कैते हिये पांय तर मले ।

गा । जानिहं लोग महाउर रंगा

होते हैं इनके द्वारा भी कवि कहीं कहीं रूप वर्णन की अभि-व्यंजना में अत्यन्त सफल हुआ है।[१८२]

प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों के ये उपमान अधिकतर प्रकृति से गृहीत हैं। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, कमल, भ्रमर, आदि ऐसे ही उपमान हैं। इसके अतिरिक्त सांसारिक वस्तुओं से भी उपमानों का संग्रह किया गया है। खंभ, कटोरा, लड्डू, चौगान के गेंद आदि ऐसे ही उपमान हैं। इनमें से प्रथम की संख्या अधिक है। दूसरे प्रकार के उपमान इन कवियों के मौलिक उपमान हैं जो कि सामान्यतः परंपरा में प्राप्त नहीं है।

(५) सीमित नख- शिख - वर्णन-

प्रेमाश्रयी कवियों ने सामान्यतः सिर से जांघ तक के अंगों का ही वर्णन किया है। नीचे के उपांगों का वर्णन कम है। यह वर्णन सिर से प्रारंभ हुआ है। मंझन ने स्पष्ट रूप में कहा है:-

गुरजन लाज चित महं माना। तौ नहिं मदन भंडार बखाना।

पृ० ३१

नायिका के रूप- वर्णन में यह शील - संकोच सभी कवियों में है। उसमान ने काम- शास्त्र की चर्चा में नारियों के चारों भेद का वर्णन करते समय उनके " मदन- सदन" का उल्लेख किया है, पर नायिका के वर्णन में वे उसे बचा गए हैं।

---

१८२- सेंदुर रेख सो ऊपर राती, बीर बहुटिन्ह की जनु पांती।।

पद्म० ४७१

हिया थार कुच कनक कचौरा। साजे जनहुं सिरीफल जोरा

एक पाट जनु दूनौं राजा। स्याम छत्र दूनहुं सिर साजा।।

जानहु लटू दुऔ एक साथां। जग भा लटू चढै नहिं हाथां।

रोमावलि ऊपर लट झूमा। जानहुं दुऔ स्याम औ रूमा।

अलक भुवंगिनि तेहि पर लोटा। हैंगुरि एक खेल दुइ गोटा

पदा० ४८३

[illegible] पेट कहैं का कोई। जनु बांधी ईगुर की ता लोई

मनहु महाउर दूध सौ पागा। खेलत रहै पीठि सौ लागा

गौण नायिकाओं के नख - शिख की सामान्य विशेषताएं

प्रेमाश्रयी शाखा की गौण नायिकाएं नागमती, कौलावती और प्रेमा है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य संक्षिप्त, सांकेतिक वर्णन भी है जैसे सिंहल द्वीप की पनिहारियों और वेश्याओं आदि का। इन सभी वर्णनों में मुख्य- नायिकाओं के नख- शिख वर्णन की ही विशेषताएं प्राप्त है। अपवाद केवल इतना ही है कि इनके वर्णनों में सौंदर्य का वह विश्व-व्यापी प्रभाव कवि ने नहीं दिखलाया है जो मुख्य नायिकाओं के सौंदर्य- वर्णन में दिखलाया गया है। ये वर्णन संक्षिप्त है।

रूप वर्णन- तथा नख- शिख वर्णन में शरीर के विभिन्न अंगों-उपांगों के उपमान-

नख-शिख- वर्णन में शरीर के विभिन्न अंगों और उपांगों के लिए विभिन्न स्थलों पर अनेकानेक उपमानों का प्रयोग हुआ है: उन प्रयोगों को समष्टि रूप मे नीचे दिया जा रहा है :-

१- केशराशि-

(अ) नाग- नागन्ह झांपि लीन्ह अरधानी। पद्० ६१
बिसहर लुरहिं लैहि अरधानी ।। वही ९९
नाग चढ़ा मालति की बेली ।। वही ४७०
पन्नग जनों मलयगिरि लोभा ।। चित्रा १७७
ता पर कच बिखधर विखसारे, लौटे सेज सहज बिकरारे।।
मधु - २६

(आ) नागिन- नागिन झांपि लीन्ह चहुं पासा।
तेहि पर अलक भुअंगिनिडसा ।। पद्०

(इ) कस्तूरी- प्रथम सीस कस्तूरी केसा ।। पद्० ९९

(उ) राहु- ससि के सरन लीन्ह जनु राहां ।।वही० ६१

(ऊ) भ्रमर- भंवर केस वह मालति रानी ।। वही ९९
कै जनु अलि लुबुधे फुलवारी ।। चित्र०१७७

(ए) मेघ माला - केस मेघावरि सिर ता पाई । - पद० ३२

(ऐ) प्रेम-अर्गला- सिंकरी पेम चहहिं गियँ परीं ।।वही ९९

(ओ) मनमथ-जाल- जनु बिरही विधि करन, मनमथ रोपा जाल-।।
मधु०पृ० २७

(औ) यमुना की लहर- लहरैं देइ जानहु कालिंदी ।। पद०४७०

(अं) तम- सिमिहि सुमेरु पाछु तम छुपा ।। चित्रा-१७७

(२) माँग

(क) सूर्य किरण- सुरुज किरिन जसगगन बिसेखी । पद०१००
- सुरुज किरनि जग माहँ सोहाई ।।मधु०पृ० २६
- सूर किरन करि बालहि धारा ।। चित्रा०१७८

(ख) खड्ग पंथ अथवा धार- - खरग पंथ जो विकट चढाऊ ।।मधु०२६
- खरग धार जे रकत बुझाई ।। मधु०२६
- खाँडै धार रुहिर जनु भरा ।। पद० १००

(ग) गगन हाट- माँग न आहिं गगन कै हाटा ।। मधु०पृ० २६

(घ) अमृत नदी - कै जनु अमिअ नदी बहि आई ।। मधुपृ० २६

(ङ) विकट आकाश- पंथ अकास विकट जग जाना ।। चित्रा०१७८
पंथ

(च) दीपक- सूर समान कीन्ह बिधि दीया ।। वही -
बिन सेंदुर अस जानहु दिया ।। पद० १००

(छ) विद्युत- जनु घन महँ दामिनि परगासी ।। वही

(ज) कंचन रेखा - कंचन रेख कसौटी कसी ।। वही

(झ) वक- पंक्ति- जनु बग बगरि रहे घन स्यामा ।। वही

(ञ) यमुना -सरस्वती- जमुना माँझ सुरसती माँगा ।। वही

(ट) बीर बहूटी - बीर बहुटिन्ह की जनु पाँती ।। "

(ठ) राहु का आरा- ससि पर करवत सारा राहू ।। " ४७२

(ड) प्रज्ज्वलित नक्षत्र- नखतन्ह मेरा दीन पर दाहू ।। "

(ढ) आरक्त वसंत- जनु बसंत राता जग देखा। पद० ४७१

३- ललाट - दुइज लिलाट अधिक मनि करा ।।पद० ४७२

(क) द्वितीया का - पुनि लिलाट जस दूजि क चंदा ।।चित्रा० १७९
चन्द्रमा-

( निकलंकी ससि दुइज लिलारा ।। मधु० २७

(ख) सूर्य से अधिक- सहस करां जो सुरूज दिपाई । देखि लिलाट-
ज्योति सोउछपि जाइ ।। पद० १०१

(ग) पारस ज्योति- पारस जोति लिलाटहि ओती । दिस्ट जो क
युक्त- होई तेहि जोती ।। पद० ४७२

(४) भौंह -

(क) धनुष- कुटिल भौंह जानौ धनु ताना ।। चित्रा० १८०
भौहैं स्याम धनुख जनु चढ़ा ।। पद० ४७३

(ख) काम-कमान- एही धनुष जुध मनमथ लीता ।। चित्रा० १८०

(५) नेत्र-

(क) खंजन- चपल बिसाल तीख जो बांके, खंजन पलक पंख-
ते ढांके ।। मधु० २७
सरद चंद मंह खंजन जोरी ।।पद० ४७४

(ख) कमल पत्र पर - राते कंवल करहिं अलि भवां ।। वही १०३
भ्रमर- राते कौल मधुप तेहि माही ।। चित्रा० १८१

(ग) तुरंग - उठहिं तुरंग लेहिंनहिं बागा ।। पद० १०२

(घ) माणिक्य भरे- सुमर समुंद अस नैन दुइ मानिक भरे तरंग ।।
समुद्र- पद० १०१

(ङ) कुरंग - नैन कुरंगिनि भूल जनु हेरी ।। पद० ५५

(च) अहेरी - भौंह धनुष तंह नैन अहेरी ।। पद० ३८
जग मंह ऐसन पारधी, दूसर काहु न देख
चित्रा० १८२ मधु० पृ० २८

(छ) शशि युक्त कमल- कौल देखि ससिहर कुम्हिलाने ।
ससि सँग सदा बिगसाने ।।चित्रा० १८१

(ज) लड़ते मृग - के दुइ मिरिग लरत सिर नीचे ।। चि०१८१

(झ) समुद्र- दोउ समुद्र जनु उठहिं हलोरा ।। " १८१

(न) मीन - तीछे हेर जाहिं चखु आछे, चली मीन जनु-
आगें पाछे ।। वही

६- बरुनी -

(क) बाण- बरुनी बान तीख अरु घने ।। चित्रा० १८२
बरुनि बान सब ओपहैं बेधे रन बन ढंख ।।
पद० १०४

(ख) विष बुझा- बरुनी बान बिसह बुझाई । मधु० पृ०२८
बाण-

(ग) छुरी- जब रे बरुनी सौं बरुनी मेरावै,
जानहु छुरी सौ छुरी लरावै ।। मधु०वही

(घ) राम-रावण-
की सेना - जरी राम रावन कै सैना । पद० १०४

(ङ) संधान किया गया- बड
बाण- साँधे बानु जानु दुइ अनी ।। वही

(७) कटाक्ष-

(क) बाण- भौंहैं धनुक साँधि सर फेरी। पद० ५५
मारहिं बान सान सौं फेरी । पद० ३८

(ख) कटार- बाँक नैन जनु हनहिं कटारी ।। पद ३२

(८) नासिका -

(क) खड्गधार - खरग धार कहि आवै हाँसी , कौन खरग-
जेहि उपमा नासी ।।- चित्रा०१८४
कीर ठोर जो खरग कि धारा- ।मधु०पृ०२८
नासिका खरग देउँ केहि जागू ।।पद०१०५
नासिका खरग हरे धन कीरू।।पद०१०५

(ख) शुक- नासिका देखि लजानेउ सुआ ।पद्० १०५
कीर ठौर जो खरग की धारा ।। मधु०पृ० २८

(ग) सेतुबन्ध- सेतु बंध बांधेउ नल नीरू ।। पद्० ४७५

(घ) तिलपुष्प- तिलक फूल मैं बरनि न पारा ।। मधु २८

(ङ) तिलक पुहुप अस नासिक तासू ।। पद्० ४७५
वह कौंवलि तिल पहुप संवारी ।।पद्०१०५
तिलक फूल कवितन्ह चित धारा ।। चित्रा० १८४

(९) अधर -

(क) दुपहिरिया का फूल- फूल दुपहरी मानहु राता ।। पद्० १०६

(ख) बिंबाफल- बिंब सुरंग लाजि बन फरे ।। पद्० १०६

(ख) बिंब अरुन सो सरि न तुलाना ।चित्रा० १८५

(ग) विद्रुम- हीरा गहै सो विद्रुम धारा ।। पद्० १०६
विद्रुम अति कठोर औ फीके ।।चित्रा० ७२

(घ) माणिक्य- मानिक अधर दसन नग हेरा । पद्० ४७६ तथा ५५

(ङ) सूर्य - जनु परभात रात रवि देखा । वही

(च) रुधिर भरी-तलवार- परगृह देखिय खरग जनु, रुहिर भरा हथियार।। चित्रा० २७३

(छ) दो चन्द्रमा- जानहुं बिंबु भयंकम धरे ।। मधु० पृ० २८

(ज) कमल - बिगसे बदन कंवल जनु देखा ।। पद्० ४७६

(१०) दांत-

(क) हीरा- दामिन दंत दिए जनु हीरा ।। माधव पृ०१८८
दसन जानु हीरा निरभरे ।। चित्रा० १८
दसन चौक बैठे जनु हीरा ।। पद्० १०७

(ख) विद्युत - बीज चमक जस निसि अंधियारी ।। पद्० ४०७

(ग) दाडिम- दारिउसरि जो न कै सका फाटेउ हिया दरकि

(घ) स्याम मकोय - जस दारिंउं औ स्याम मकोई ।। पद० ४७७

(ङ) कमल-भंवर- बिहंसत कंवल भंवर अस ताके ।। वही

(च) नीलम -हीरा- स्याम हरि दुहुं पांति बईठी ।। वही

(छ) मंगल,शुक्र,गुरु- मंगर शुक्र गुर अस्वनि चारी ।
अश्विनी(चौका- चौका दसन भई कुमारी ।। मधु०पृ० २९
के लिए )

(११) हंसी -

(क) विद्युत - जानहुं सरग सौदामिनि हंसी ।।मधु पृ०२९
बीज चमक जस निसि अंधियारी ।।पद०४७७

(ख) ज्योति- इक दिन विहंसी रहसि कै, जोति गई जग
छाइ। चित्रा० १८६

(ग) कमल पर भ्रमर- विहंसत कंवल भंवर अस ताकै । पद० ४७७

(१२) रसना -

(क) अमृत कौंप- अम्रित कौंप जीभ जनु लाई ।। पद०४७८

(ख) सरस्वती की जीभ- जीभ सुरसती काह । वही
से अधिक-

(ग) सरस्वती के समान- भावसती व्याकरन सरसुती पिंगल पाठ पुरान।।
पद० १०८

(घ) सुधा समान- सुधा समान जीभ मुखकाला ।। मधु०पृ० २९

(ङ) रसाल- अति रसाल रसना मुख हंसी । वही

(च) कमल पंखुरी- कौल पांखुरी अमिरित भरी । चित्रा०१८७

(१३) वचन-

(क) अमृत सम- अंम्रित बचन सुनत मन राता ।। पद० १०८
बोलत सो जनु अमिरित बानी।। चित्रा०१८७
सुनत बचन अंम्रितरस बानी ।। मधु०पृ०२९

(ख) चातक-कोकिल- हरे सो सुर चात्रिक कोकिला ।।पद०१०८
सम तब बढ़ी जनु कोइल बोली ।।चित्रा०१८८

(घ) स्वाति बूंद तुल्य- बोल सेवाति बुंद जेउ परहीं ।। पद ४७८

(ङ) बीणा और बंशी- बीन बंसि वह बैनु न मिला ।। पद १०८

(च) मोती- जल सुत बचन लागि विधि खोला ।। चित्रा १८९

(१३) कपोल-

(क) नारंगी- एक नारंग के दुऔ अमोला ।। पद १०९
जनु नारंग बसनारि कपोला ।। चित्रा १८३

(ख) सुरंग खिरौरा- पुहुप पकं रस अंब्रित साधे । कैईं ये सुरंग खिरौरा बाधे ।। पद १०९

(ग) सुरंग गेंद- सुरंग गेंदु नारंग रतनारे ।। पद ४८०

(घ) कमल- कंवल कपोल ओहि अस छाजे ।। पद ४८०

(१४) तिल-

(क) विरह चिनगारी- सो तिल विरह चिनिगि कै करौ ।। पद ४८०

(ख) भ्रमर- जानहुं भंवर पदुम पर टूटा ।। पद ४८०
मधुकर जानु पुहुप पर लोभा ।। चित्रा १८३

(ग) घुंघची का काला मुख- जनु घुंघची वह तिल करमुहाँ ।। पद १०९

(घ) अग्नि बाण- अगिनि बान तिल जानहुं सूफा ।। पद १०९

(ङ) नेत्र का तिल- देखत नैन परी परिछाहीं ।। पद १०९
परछाहीं तिल एक की, सब नैनन्ह महं जोति
चित्रा १८३

(च) ध्रुव- सो तिल देखि कपोल पर गगँन रहा गाड़ि ।। पद १०९

(छ) रात्रि की छाया- तिल न होत रैनि की छाया ।। -

(१५) श्रवण-

(क) सीप- स्रवन सीप दुइ दीप सँवारे ।। पद ६१

सिंधु सुता सम सवन अमोला ।।चित्रा० १८९

(ख) नक्षत्र खचित चन्द्र-सूर्य- दुहुँ दिसि चाँद सुरुज चमकाँही, नखतन्ह-भरे निरखि नहिं जाहीं - पद० ११०

(ग) कुंदन सीपी- सुवन सुनहु जो कुंदन सीपी- पद० ४७९

(१६) मुख-

(क) चन्द्रमा- बदन मयंक मलयगिरि अँगा ।। चित्रा० १७६
बदन मयंक जगत उँजियारा ।। चित्रा० १८५
बदन चाँद तो अभी सेराई।। मधु० २६
ससि मुख अँग मलयगिरि वासा ।। पद०

(१७) ग्रीवा-

(क) विश्वकर्मा का-चक्र बिधि कर चाक भंवाई चढ़ाई ।चित्रा० १९०
कै बिसकरमै चाक भंवाई ।। मधु० पृ० ३०

(ख) कंबु- संख न सम भा साँफ सँकारा ।। चित्रा० १९०

(ग) क्रौंच पक्षी बरनौं गींव कूंज कै रीसी ।। पद० १११

(घ) शीशी में लगी - कमल नाल- कंज नार जनु लागेउ सी सी ।। वही

(ङ) मयूर - हरी पुछारि ठगी जनु ठाढ़ी ।। वही
नाचत मोर गींव सर जीवा ।
तबहीं सीस पाइ धरि रोवा ।। चित्रा० १९०

(च) कबूतर- जनु हिय काढ़ि परेवा ठाढ़ा ।। पद० १११
केलि समै कौतर की रीसा ।। चित्रा० १९०

(छ) घोड़े की गर्दन- बाग तुरंग जानु गहि लीन्हा ।। पद० १११

(ज) कुक्कुट- गिउ मँजूर तँवचुर जो हारा ।। वही

(झ) सुराही- गींव सुराही कै असि भई ।। वही

(न) सूर्य-ज्योति - सुरुज क्राँति करा निरमली ।। वही

(१८) भुजा-

(क) कनक दंड- कनक दंड दुइ भुजा कलाई ।। पद० ११२
(ख) कु... नहुँ जोरी ।। पद० १...

| | |
|---|---|
| (ग) कमल-नाल - | डौड़ी कंवल फेरि जनु लाई ।। पद० ४८२ |
| | दुहु पौनाल सोऊ सर नाहीं ।। चित्र० १९१ |
| (घ) चन्दन गाभ- | चन्दन गाभ की भुजा संवारी ।। पद० ४८२ |

(१९) हथेली-

| | |
|---|---|
| (क) कमल- | औराती औहि कंवल हथोरी।। पद० ११२ तथा ४८२ |
| | कौल पांखुरी ईगुर बोरी ।। चित्रा० १९१ |
| (ख) स्फटिक- | फटिकसिला जोई गुर थोरी ।। मधु० ३० |

(२०) उंगली-

| | |
|---|---|
| (क) रक्त भरी- | हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथां ।। |
| | रकत भरी अंगुरी तेहि साथा ।। पद० ११२ |
| (ख) विद्रुम बेलि- | विद्रुम वेलि सौ अंगुरी दीसी ।। चित्रा० १९१ |
| (ग) मूंगफली- | वह कठोर यह मूंगफली सी । चित्रा० १९१ |

(२१) उरोज-

| | |
|---|---|
| (क) कंचन लड्डू- | हिया थार कुच कंचन लाडू ।।पद० ११३,४८ |
| (ख) सोने के कटोरे- | कनक क्चोर उठे करि चाडू ।। पद० ११३ |
| (ग) | कनक कटोरी दुइ गुन भरी ।। पद० १९२ |
| (घ) कनक बेलि पर स्वर्ण श्रीफल- | कुंदन बेलि साजि जनु कूंदे ।। पद० ११३ |
| (ङ) श्रीफल- | दुओ अनूप श्रीफल नये ।। मधु पृ० |
| | साजे जनहु सिरीफल जोरा ।। |
| (च) नारंगी- | अस नारंग दहु का कहं राखे ।। |
| | एक डारि दोइ नारंगि फरे ।। |
| (छ) केतकी पुष्प- | बेधे भंवर कंट केतुकी ।। पद० ११३ |
| (ज) अग्नि बाण- | अगिनि बान दुइ जनहु सांधे ।। |

(झ) जंभीरी नींबू- उनंग जंभीर होइ रखवारी।। वही

(ञ) अनार- दाखिं दाख फरे अन चाखे ।। वही

(ट) कमल कली- जनु भीतर द्वै कंवल कली सी ।। चि० १९२

(ठ) चकवा- चकवा छवा बिछुरि जनु बैसी।। वही

(ड) छत्रपति - जनु द्वै वीर छत्रपति होने ।। वही
एक पाट जनु दूनौ राजा ।। पद० ४८२

(ढ) डंका दुई जनु डंका उलटि के धरी ।। चि० १९२

(ण) गोट- हैं गुरि एक खेल दुइ गोटा ।। पद० ४८६

(२२) कुचाग्र-

(क) श्याम छत्र- स्याम छत्र दूनहु सिर साजा ।। पद० ४८३

(ख) भ्रमर- बेधे भंवर कंट केतुकी ।। पद० ११४

(ग) अंगूर- दारिवं दाख फरे अनचाखे ।। वही

(२३) पेट-

(क) चन्दन-पत्र- पेट पत्र चंदन जनु लावा ।। पद० ११४

(ख) पूरी- पातर पेट आहि जनु पूरी ।। वही ४८६

(ग) लोई- पातर पेट कटै का कोई । जनु बांधी-
ईंगुर की लोई ।। चित्रा० १९५

(२४) रोमावलि-

(क) श्याम भुजंगिनी- स्याम भुअंगिनि रोमावली ।। पद० ११४

(ख) भ्रमरावलि- जनहुं चढ़ी भंवरहिं कै पाती ।। पद० ११४

(ग) यमुना- कै कालिन्द्री विरह सताई ।। वही

(घ) पिपीलिका-पंति- उर जनु चढ़ी पपील क पांती ।। वि

(छ) सीमा रेखा- रतिपति आनि लीक जनु काढ़ी ।।

(ज) हदीस की रेखा- खैंची लीं हदीस की, विधना हिये -
विचार ।। वही

(झ) बारि- राजत रोमावली सोहाई, कुंदन को विदार

(न) मृगमद-रेखा- कनक खंभ मृगमद की रेखा ।। माधव-पृ०१८९

(२५) पीठ-

(क) मलयगिरि- मलयगिरि कै पीठि सँवारी ।। पद०११५

(२६) नाभि-

(क) कुंड - नाभी कुंडर मलै समीरू-।।पद०११७ चित्रा-१९४

(ख) समुद्र की भंवर- समुंद भंवर जस भँवै गंभीरू ।।वही चित्रा० -१९४ मधु०पृ०३१

(२७) कटि-

(क) सिंह- केहरि कहौं न ओहि सरि ताहू ।। पद०११६
अपने थल भूखे केहरि, कोउ कहै कटि तिन्ह-की हरी ।। चित्रा १९६

(ख) बर्र- बसा लंक बरनै जग झीनी, तेहि तें अधिक लंक वह खीनी ।। पद०११६
देखि लंक भृंगी कटि टूटी ।। चित्रा० १९६
पद ४८४

(ग) कमल-तन्तु- जानहुँ नलिनि खंड दुइ भई । दुहुँ बिच तार-रहि गई । पद० ११६

(२८) नितम्ब-

पर्वत- जनु संगम दुइ परवत अहहीं ।। चित्रा०१९७

(२९) त्रिवली-

दृढ़-बंधन- जौ न होत दिढ़ बंधन, त्रिवल्ली त[illegible] अपार।। मधु० पृ० ३१
मनु कटि राखे बाँधि कै,त्रिवली [illegible]
चित्रा०- १९५

(३०) जंघा-

गज- शुंड- | केरा खांभ फेरि जनु लाए ।। पद० ११८
विपरीत बन केदली । औ गज सुंड सुभाउ ।।
मधु० पृ० ३१ ~~माधव~~ पृ० १८९

(३१) <u>चरण-</u>

(क) | कंवल चरन **बरनि** अति रात विसेखे ।। पद० ११८
चरन कंवल पर मन बलिगए ।। चित्रा० १९८

(३२) नाभी गुह्यांग- केवल जायसी ने इसका संकेत किया है । मंझनने गुरु लज्जा के कारण इसका वर्णन नहीं किया - गुर जन लाज चित महं माना, तौ नहि मदन भंडार बखाना । उसमान ने इसका उल्लेख नहीं किया ।

कुरंग-पग-चिह्न- | चंदन- मांझ कुरंगिनि खोजू ।। पद० ११७

(३४) <u>गति-</u>

गजगति - | औ गज गवन देखि मन लोभा ।। पद०
हंसगति- | हंस लजाई मानसर खेले ।

(३५) <u>चिबुक-</u> | चिबुक का वर्णन केवल उसमान ने किया है ।
(क) आम- | आंब सूल सम ठौढ़ी भई ।। चित्रा०- १८८
(ख) कूप- | चिबुक कूप अति नीर गंभीरा ।। वही
(ग) अमृत कुंड- | अमिरित कुंड अमम औगाहा ।। "

नख- शिख के उपमानों की इस विस्तृत चर्चा से स्पष्ट है कि प्रेमाश्रयी कवियोंने इसका विस्तार से वर्णन किया है । उन्होंने परंपरागत, लोक - प्रचलित एवं मौलिक उपमानों की भी योजना की है । ऐसा विस्तृत नख- शिख वर्णन अन्य किसी ... में उपलब्ध नहीं है ।

सोलह श्रृंगार

श्रृंगार की संख्या १६ मानी गई है । ये शरीर के ...न अवयवों में से चार दीर्घ-

चार भरे हुए- कपोल, नितम्ब, जांघ, कलाई और चार पतले कटि, पेट, नाक और अधर होते है ।[183]

प्रथम केस दीरघ सिर होहीं । औ दीरघ अंगुरी कर सोहीं ।
दीरघ नैन तिक्ख तिन्ह देखा । दीरघ गीवं कंठ तिरि रेखा ।
पुनि लघु दसन होहिं जस हीरा । औ लघु कुच जस उतंग बं जंभीरा ।
लघु लिलाट दुइज परगासू । औ नाभि लघु चंदन बासू ।
नासिका खीन खरग कै धारा । खीन लंक जेहि केहरि हारा ।
सुमर कपोल ढेहिं मुख सोभा । सुभर नितम्ब देखि मन लोभा ।
खीन पेट जानहुं नहिं आंता । खीन अधर विद्रुम रंग राता ।
सुमर बनी भुअडंड कलाई सुभर जांघ गज चालि ।
ये सोरहौ सिंगार बरनि के करहिं देवता लालि ।।[184]

नायिका के आदर्श वर्णन में ये १६ श्रृंगार हैं । इन अंगों के लिए जिन श्रृंगार का उपयोग होता है उसका उल्लेख प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों में है पर उनकी गणना श्रृंगार के अंतर्गत न कर १२ आभरणों के अंतर्गत की गई है । परंपरागत नायिका के निम्नलिखित १६ श्रृंगार माने जाते है - (१) उबटन (२) मंजन (३) मिस्सी (४) नहाना (५)वस्त्र (६) केश-संबर्धन(७) काजल (८) मांग- भरना (९) महावर (१०) बिन्दी (११) ठोढ़ी पर तिल (१२) मेंहदी (१३) गंध-द्रव्य लेपन (१४) आभूषण (१५) फूलमाला (१६) पान । जायसी ने पद्मावत में सोलह श्रृंगार का नाम लिखा है और उसके साथ १२ अंगों के १२ आभरणों की गणना कराई है । इन्हीं आभरणों में १६ श्रृंगार के अनेक अंग आ जाते हैं । जो नहीं आते है उनकी पूर्ति वर्णि द्वारा की है । इस शाखा के अन्य कवियों ने , जैसे उसमान ने भी बारह स- सोलह का उल्लेख किया है ।[185] इससे अनुमान है कि प्रयोग भीजजयसी के प्रयोग के अनुरूप ही है। नायिका के ह

---

१८३- पुनि सोरह सिंगार जस चारिहु जोग कुलीन ।
दीरघ चारि चारि लघु चारि सुभर चहुं खीन ।। पद

१८४- पद॰४५७

१८[illegible] आठो अंग बतीसों पाए ।। चि

के १२ आभरण निम्नलिखित है :- (१) मज्जन (२) वस्त्र (३) मांग-भरना (४) तिलक (५) काजल (६) कुंडल (७) नाक का फूल (८) पान (९) गले का हार (१०) कंगन (११) छुद्र- घंटिका (१२) पायल ।

प्रथमहिं मंजन होइ सरीरू । पुनि पहरै तन चंदन चीरू ।
साजि मांग पुनि सेंदुर सारा । पुनि लिलाट रचि तिलक सँवारा ।
पुनि अंजन दुहु नैन करेई । पुनि कानन्ह कुंडल पहिरेई ।
पुनि नासिका भल फूल अमोला । पुनि राता मुख खाई तंमोला ।
गियँ अभरन पहिरै जहँ ताई । औ पहिरै कर कंगन कलाई ।
कटि छुद्रावलि अभरन पूरा । औ पायल पायन्ह भल चूरा ।
बारह अभरन एइ बखाने । ते पहिरै बरहौ असथाने ।।[१८६]

जायसी द्वारा १२ आभरणों की सूची में १६ श्रृंगारों के अनेक कार्य सम्मिलित है तथा कुछ एक का उल्लेख नहीं है । ऐसे छूटे हुए कार्यों में मिस्सी, केश-संवर्धन, महावर, तिल, मेंहदी तथा गंध-द्रव- लेपन नहीं है । उबटन, मंजन, तथा नहाना तीनों जायसी के मज्जन के अंतर्निहित हैं । इनके स्थान पर जायसी ने विभिन्न अंगों में पहले जाने आभूषणों की गणना भी कराई है, जो सभी १६ श्रृंगार के अंतर्गत १४वें श्रृंगार आभूषण में ही आ जाते हैं ।

यथार्थ में बारह- सोलह प्रयोग शरीर की शुचिता, उसके अवयवों के सौंदर्य - वर्धन- क्रियाओं तथा आभूषणों के लिए होने लगा, दोनों की अलग अलग गणना नहीं की गई ।

उपर्युक्त रूप में नायिका के विभिन्न आभूषण, श्रृंगार- प्रसाधन एवं शारीरिक शुचिता संबंधित सभी क्रियाएं श्रृंगार के अंतर्गत आएंगी । इनका उल्लेख कवियों ने नायिका के आदर्श रू में किया है । इनका संकेत पीछे के पृष्ठों में दिया जा चुका है । वर्णन नायिका के रूप-वर्णन, नखशिख-वर्णन आदि प्रसंगों में अ इनमें से प्रत्येक के उपलब्ध उल्लेखों का संक्षिप्त विवरण नीचे जा रहा है ।

---

१८६- पदक- २९६

(क) शारीरिक शुचिता संबंधिनी क्रियाएँ-

इन क्रियाओं का वर्णन केवल जायसी ने ही स्पष्ट रूप में किया है । अन्य कवियों ने इसका उल्लेख नहीं किया है । इसका अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि इसके बिना अन्य श्रृंगार निरर्थक हो जाते हैं ।

जायसी ने मज्जन का उल्लेख किया है । इसके अंतर्गत उबटन लगाना, दांत- मांजना और सुगंधित जल से स्नान तीनों हैं ।

प्रथमहिं मंजन होइ सरीरू । पुनि पहरै तन चंदन चीरू ।।[१८७] अन्य स्थान पर उन्होंने मज्जन और स्नान के अंतर को भी बतलाया है - कै मंजन तब किएहु अन्हानू ।[१८८]

(ख) श्रृंगार प्रसाधन अथवा सौंदर्य - बर्द्धन क्रियाएं -

इनमें से अधिकतर क्रियाएं प्रेमाश्रयी कवियों की नायिकाओं में प्राप्त हैं । सभी नायिकाओं के श्रृंगार वर्णन में इनका उल्लेख मिल जाएगा । नख शिख वर्णन के प्रसंगों में इनके उदाहरण आ चुके हैं । अतएव उनका पुनः उल्लेख अनावश्यक है ।

(ग) आभूषण-

आभूषण रूप सज्जा के अनिवार्य अंग हैं । शरीर के विभिन्न अंगों के लिए ये भिन्न- भिन्न प्रकार के होते हैं । नारी शरीर का शायद ही कोई अंग होगा जिसके लिए आभूषणों की कल्पना न कर ली गई हो । प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों ने भी नारियों के सभी अंगोंके आभूषण अपनी नायिकाओं को पहनाएं हैं । जहां कहीं भी उन्होंने अपनी नायिकाओं का रूप वर्णन किया है वहीं इन आभूषणों का भी उल्लेख आया है । [illegible] अंगों के लिए जिन गहनों का उल्लेख इन कवियों ने किया है, एक तालिका नीचे दी जा रही है ।

---

१८७. पद ७१११

(१) मांग के लिए - मोती[१८९], शीश फूल

(२) नाक- बेसर[१९०]

(३) कान- कुंडल[१९१]

तरौना[१९२]

खूंट[१९३]

खुम्मी[१९४]

(४) गला- कंठमाला, कंठहार[१९५]

(५) वक्ष- मुक्ताहल[१९६]

~~कटाही~~[१९७]

(६) भुजा- भुजबंध[१९८]

टड्डे[१९९]

(७) कलाई- कंगन[२००]

चूड़ी[२०१]

(८) ~~बबूली~~-
उंगली- अंगूठी[२०२]

(९) कटि- छुद्रघंटिका[२०३]

---

१८९- पद०१००, चित्रा ३५,२७३

१९०- पद०१०५, चित्रा १८४,२७३

१९१- पद०११०,४७९

१९२- मधु पृ० २९ चित्रा २७३

१९३- पद०११० चित्रा १८९,२७६

१९४- पद०११० चित्रा १८९

१९५- मधु पृ० १३३

१९६- चित्रा १९२, चित्रा- २७६

~~१९७- माधव पृ० १८९~~

१९८- पद०२९९

१९९- पद०११२, चित्रा १९१

२००- पद०११०,४७९ चित्रा २७६

२०१- [illegible]

(१०) पैर - पायल[२०४]
- चूड़ा[२०५]
- अनवट[२०६]
- बिछिया[२०७]

उपर्युक्त सूची से तत्कालीन स्त्रियों के आभूषणों का सामान्य ज्ञान होता है और यह प्रकट होता है कि नायिका के अलंकारों में प्रेमाश्रयी कवियों की विशेष रुचि रही है।

प्रेमाश्रयी शाखा में प्राप्त नायिका का रूप उपर्युक्त विविध रूपों में व्यक्त हुआ है।

१५- रामाश्रयी शाखा-

रामाश्रयी शाखा में नायिका रूप में केवल पार्वती, सीता और स्वल्प मात्रा में शूपर्णखा की गणना की जा सकती है। इन तीनों का ही रूप वर्णन प्रसंगों के अंतर्गत हुआ है पर यह वर्णन रूप के प्रभाव को अधिक व्यंजित करने वाला है। अंग - प्रत्यंग के सौंदर्य का विश्लेषण करने वाला नहीं। कहीं कहीं कुछ अंगों के सौंदर्य भ की अभिव्यक्ति के लिए अनेक उपमानों का प्रयोग हुआ है। पर इसमें नखशिख प्रणाली का पूर्णतः अभाव है। इनमें से प्रत्येक के रूप वर्णन का पृथक - पृथक उल्लेख करना अधिक समीचीन होगा।

पार्वती का रूप-

पार्वती का रूप देवताओं को भी मोहित करने वा... है। उसका वर्णन कोई भी कवि नहीं कर सकता।[२०८] वे सौंदर्य

---

२०४-पद॰११८

२०५- पद॰११८

२०६- पद॰११८ चित्रा १९९

२०७- पद॰११८

२०८- बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाई। करि सिंगारु सखी लै
देखत रूप सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कवि ...
मानस - बा॰ १००

की सीमा है । करोड़ों मुख से भी उनके रूप का वर्णन नहीं किया जा सकता ।[२०९] उनके शरीर में विद्युत की कांति है । नेत्र मृग-शावक और खंजन के समान और मुख चन्द्रमा के समान तथा करोड़ों कामदेव एवं रति को लज्जित करने वाला है ।[२१०]

शूर्पणखा

शूर्पणखा का श्रृंगार के आश्रय रूप में उल्लेख पंचवटी प्रसंग में है । राम पर मोहित होकर उसने सुन्दर- स्वरूप धारण कर लिया है ।[२११] इतना मात्र उल्लेख ही उसके रूप का है ।

---

२०९- सुंदरता मरजाद भवानी । जाइ न कोटिहुं बदन बखानी ।।

वही १००- ४

तथा- कोटिहुं बदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा ।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मंदमति तुलसी कहा ।।वही बा० १००

२१०- तड़ित गर्भांग सर्वांग सुन्दर लसत, दिव्य पट भव्य भूषण विराजैं
बाल मृग- मंजु खंजन- विलोचनि, चन्द्रवदनि लखि कोटि रतिमार लाजैं ।।
रूप- सुख- शील सीमा सि- - - ।। विनय पत्रिका १५

तथा- सखी सुवासिनि संग गौरि सुठि सोहति ।
प्रगट रूपमय मूरति जनु जग मोहति ।।
भूषन बसन समय सम सोभा सी भली ।
सुखमा बेलि नवल जनु रूप छलति फली ।।
कहहु काहि पटतरिय गौरि गुनरूपहि ।
सिंधु कहिय केहि भांति सरिस सर कूपहि ।। पार्वती मंगल १२४-

२११- रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई । --- मानस । अरण

सीता

रामाश्रयी शाखा का संपूर्ण साहित्य सीता रूपी धुरी के चारों ओर घूमता है। नारी पात्रों में एकमात्र वे ही महत्वपूर्ण हैं। उनके रूप का अनेकानेक स्थलों पर उल्लेख है। उस रूप की समता कोई कर नहीं सकता।[२१२] ब्रह्मा ने अपनी सारी चतुरता उनके निर्माण में लगा दी है।[२१३] उनकी शोभा अलौकिक है।[२१४] सुन्दरता को भी सुन्दर करने वाली है।[२१५] पार्वती, सरस्वती, रति और लक्ष्मी का सौंदर्य उनके सन्मुख नगण्य है।[२१६] ऐसा अद्भुत उनका सौन्दर्य है। उनके रूप के सम्मुख सभी उपमान हेय हैं।[२१७] फिर भी उस सौंदर्य की एक झलक दिखलाने के लिए कवि ने उनके अंग- प्रत्यंगों का स्वल्प वर्णन किया है।

सीता के रूप- वर्णन में उसकी प्रभावशीलता के अतिरिक्त उनके मुख, नेत्र, दंत, अधर तथा गति आदि का ही वर्णन किया गया है। शरीर के अन्यान्य अंगों को वे बचा गए हैं।

सीता का रूप- वर्णन तीन प्रकार का है। राजकुमारी

---

२१२- जौं पटतरिअ तीय सम सीया। जग असि जुबति कहाँ कमनीया।।
मानस, बा० २४७।२

२१३- जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई।।
मानस, बा० २३०।३

२१४- जासु बिलोकि अलौकिक सोभा - वही २३१।१

२१५- सुंदरता कहुँ सुंदर करई। छबि गृहँ दीपसिखा जनु बरई।।
वही २३०। ४

२१६- गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति
बिषु बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही
वही २४७।३

२१७- सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहिं पटतरौं बिदेहकुमारी
मानस बा० २३०।४

उपमा सकल मोहि लघु लागीं। प्राकृत नारि अंग अनुरागीं।
सिय बरनिअ तेइ उपमा देई। कुकवि कहाइ अजसु को लेई।।
वही २४७।१-२

सीता का रूप वर्णन धनुष- यज्ञ एवं विवाह प्रसंग में है। इस रूप में सीता के सौंदर्य की पराकाष्ठा कवि ने बड़े ही सुन्दर ढंग से दिखलाई है :

जौ छबि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई ।।
सोभा रजु मंदरु सिंगारू । मथै पानि पंकज निज मारू ।।
एहि विधि उपजै लच्छि जब सुंदरता सुख मूल ।
तदपि सकोच समेत कवि कहहिं सीय समतूल ।। मानस- बाल २४७
तथा केशव- राम० ९।३-७

सीता के इस रूप वर्णन में उनके तन की गुराई के लिए विद्युत की उपमा का प्रयोग अक्सर किया गया है जो कि अत्यंत समीचीन है :

स्याम- सरोज जलद- सुंदर बर, दुलहिनि तड़ित- बरन तनु गोरी।।
गीता-बा० १०५

तथा
घन- दामिन बर बरन, हरन- मन, सुंदरता नखसिख निबही री ।।
वही १०६

रामचन्द्र जी के सांवले रूप के साथ यह कितनी सार्थक उपमा है। इनका मुख मंडल चन्द्रमा सदृश[२१८], नेत्र मृग- शावक के से[२१९] और गति गज की सी है। वे शोभा की सीमा हैं तथा उनका सौंदर्य अवर्णनीय है।[२२०]

---

२१८- अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा ।
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ।। - मानस, बा० २३०।२

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा ।
सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा ।। - वही २३७।४

२१९- चितवति चकित चहूं दिसि सीता । कहं गए नृप किसोर
जहं बिलोक मृग सावक नैनी । ~~नैन-~~ जनु तहं बरिस कमल सित
श्रेनी ।। - वही २३२।

२२०- राम सीय सोभा अवधि --- वही ३०९
तथा
सिय सुंदरता बरनि न जाई । लघु मति बहुत मनोहरताई
वही ३[illegible]

और मीन सदृश्य है।[२२३]

सीता का तीसरा रूप वियोगिनी का है। इस अवस्था में उनका सतीत्व जाज्वल्यमान है तथा वे प्रिय के वियोग में समस्त श्रृंगारादि छोड़ कर अवनत मुख साक्षात् करुणा की मूर्ति बनी हुई प्रिय का नाम रटती हुई बैठी है।[२२४] लता तुल्य उनका कृश शरीर

---

२२३- सीता नयन चकोर सखि, रवि वंशी रघुनाथ ।। - वही ४३
तथा
श्री रघुबर के इष्ट, अश्रु बलित सीता नयन ।
साँची कही अदृष्ट झूठी उपमा मीन की ।। - वही ४५

२२४- कृस तनु सीस जटा एक बेनी । जपति हृदयं रघुपति गुन श्रेनी ।
- मानस- सुं० ८।४

तथा- धरे एक बेणी मिली मैल सारी । मृणाली मनो पंक तैं काढ़ि डारी । सदा राम नमै ररै दीन बानी ।।- रामचंद्रिका १३।५३

तथा- कृस सरीर सुभाय सोभित, लगी उड़ि उड़ि धूलि ।
मनहु मनसिज मोहिनी- मनि गयो भोरे भूलि ।। -गीता,सुंदर २

तथा- "हे सौमित्रि- बंधु करुनानिधि ।" मन महँ रटति, प्रगट नहि कहति ।
निज पद- जलज बिलोकि सोकरत नयननि बारि रहन न एक छन ।
मनहु नील नीरज ससि- संभव रवि- वियोग दोउ स्रवत सुधाकन ।।
- गीता सुं० १७

तथा- रघुकुल तिलक । वियोग तिहारे ।
मैं देखी जब जाइ जानकी, मनहु बिरह- मूरति मन मारे ।।
चित्र से नयन अरु गढ़े से चरन- कर, मढ़े से स्रवन, नहि सुनति पुकारे ।
रसना रटति नाम, कर सिर चिर रहै, नित निज पद- कमल निहारे ।। - वही १८

है । वह भी विरहाग्नि में जल रहा है ।[२२५] इस प्रसंग में भी रूप का विशेष उल्लेख नहीं । विरहाधिक्य और सीता की दयनीय स्थिति का ही विशेष संकेत है ।

वियोग के प्रसंग में एक स्थान पर केशव ने सीता के संबोधन में उन्हें अनेक सुअंगो वाली कह कर संबोधित किया है । वे सुन्दर गति, केश, नेत्र, मुख, दंत और कटि वाली हैं :

सुगति सुकेशि सुनैनि सुनि, सुमुखि, सुदंति, सुश्रोनि ।
दरसावैगी बेगिही तुमको सरसिर- योनि ।। - राम चंद्रिका १३।९४

## दासियों का नखशिख वर्णन :

रामाश्रयी साहित्य में यद्यपि पार्वती एवं सीता का नख-शिख वर्णन नहीं है पर केशव ने अपनी राम चंद्रिका में सीता जी की दासियों का नख- शिख वर्णन राम के सम्मुख उनके अंतरंग सखा शुक द्वारा रखा है । इस वर्णन में केश, कवरी, नेत्र, नासिका, दंत, मुखवास, मुसकान, वाणी, अलक, मुख, ग्रीवा, बाहु, हाथ, कुच, रोमावली, कटि, नितंब, जंघा और चरणों का वर्णन है । इन अंगों के लिए केशव ने परंपरागत अनेकानेक उपमानों की योजना की है[२२६] इन दासियों के सौंदर्य के माध्यम से उनकी महारानी सीता के सौंदर्य का संकेत दिया गया है ।

## नायिका के आभूषण

नायिकाओं के आभूषणों का संकेत भी इस साहित्य में है किन्तु उनका भी विस्तृत वर्णन नहीं । आभूषणों में कंकण, किंकिणी, नूपुर आदि है ।[२२७] वियोगिनी सीता के पास सर्वाधिक महत्वपूर्ण आभूषण चूड़ामणि है जो उन्होंने हनुमान द्वारा राम के पास भेजा था । केशव ने दासियों के नख शिख वर्णन में शिरोभू-

---

२२५- अपनी दसा कहौं दीप दसी सी देह ।
जरत जाति बासर निसा केशव सहित सनेह ।।
- राम चंद्रिका १३।९३

२२६- केशव, राम चंद्रिका २१ प्रकाश

२२७- कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि
- मानस बा० २३०।

ग्रीवा भूषण, ताटंक, कर भूषण, केंचुकी और महावर का उल्लेख किया है । उन्होंने इन आभूषणों के उपयोग पर अनेकानेक कल्पनाएँ की हैं ।[२२८] इसी नख शिख वर्णन में अन्य श्रृंगारों का भी संकेत है ।

---

२२८- केशव राम चंद्रिका २१।७- ११, १४, २४, २७, ३५, ३६

१६-कृष्णाश्रयी शाखा

कृष्णाश्रयी शाखा में नायिका के रूप-वर्णन का विशेष उल्लेख है। नायिका में मुख्य राधा और गौण गोपियां हैं। गोपियों के रूप-सौंदर्य तथा श्रृंगार में बड़े अंश में समानता है। उनके रूप में दही-मथती गोपी का रूप प्रभावशाली है। इस छवि को देखकर कृष्ण में काम उद्दीप्त होता है और वह उसका आलिंगन करते हैं। इस रूप की एक झलक इस प्रकार है। गोपी यौवन से मदमाती, इतराती हुई दही मथ रही है। वह गोरे रंग की है। वह नीली साड़ी पहने है। उसके सिर से आंचल हट गया है। उसका तन हिल रहा है। ढीली बाहों को वह चला रही है। उसकी कटि पर गिरी हुई वेणी इधर-उधर डोलरही है। उसके मुख-चंद्र पर अलकावलि ऐसी सुशोभित हो रही है जैसे शशि के अमृत को पीने के लिए सर्प उड़-उड़ कर लग रहे हैं। उसके अंग व इधर-उधर मुड़ते हुए झुकते हैं। उसकी छवि की उपमा कही नहीं जा सकती। ऐसा प्रतीत होता है मानो कामदेव ने उसे सांचे में भर कर निकाला है। उसके इस

रूप को देखकर श्याम रीझ कर मुग्ध हो गए हैं।[२२६]

गोपियों के रूप-सौंदर्य का वर्णन रास-प्रसंग में भी अल्प मात्रा में उपलब्ध है। यह सौंदर्य राधा के अनुरूप है। यथार्थ में भक्त कवियों ने राधा के माध्यम से ही गोपियों के रूप का भी संकेत कर दिया है। एक ऐसे ही वर्णन में कवि कहता है कि ब्रज-युवतियों की छवि देखकर कृष्ण लज्जित होते हैं। उन्होंने विविध भांति से मांग की पाटी काढ़ कर वेणी की रचना की है। भाल पर वे चन्द्रमा को भी लज्जित करने वाली बेंदी लगाए हैं

---

२२६ मथति ग्वालि हरि देखी जाइ।
गए हुते माखन की चोरी, देखत छवि रहे नैन लगाइ।
डोलत तनु सिर-अंचल उघरयौ, बेनी पीठि डुलति इहिं भाइ।।
बदन इंदु पय-पान करत कौं, मनहुं उरग उड़ि लागत धाइ।
निरखि स्याम अंग-अंग-प्रति-सोभा, भुज भरि धरि, लीन्हो उर लाइ।।
चितै रही जुवती हरि कौ मुख, नैन-सैन दै, चितहिं चुराइ।।
आदि --सूर ६१६

तथा

दधि लै मथति ग्वालि गरबीली।
रूनुक-फुनुक कर कंकन बाजै, बांह डुलावत ढीली।
भरीगुमान बिलोवति ठाढ़ी, अपनैं रंग रंगीली।
छबि की उपमा कहि न परति है, या छबि की जु छबीली।
अति विचित्र गति कहि न जाइ अब पहिरै सारी नीली। आदि
--सूर ६१७

तथा देखी हरि मथति ग्वालि दधि ठाढ़ी।
जौवन मदमाती इतराती, बेनि दुरति कटि लौं छबि बाढ़ी।
दिन थोरी, भोरी, अति गोरी, देखत ही जु स्याम भए चाढ़ी
करषति है दुहुं करनि मथानी, सोभा-रासि सुमन बाढ़ी।
इत-उत अंग मुरत भकझोरत, अंगिया बनी कुचनि सौं माढ़ी।
सूरदास प्रभु रीझि थकित भए मनहुं काम सांचे भरि काढ़ी।।
--सूर ६१८

कानों में वे तार्टंक पहने है। उनके सुन्दर नैत्र और नासिका खंडन तथा कीर को लज्जित करने वाले हैं। उनके अधर विद्रुम के समान, दांतों की शौभा दामिनी सी और बेसर की शौभा कामदेव को लज्जित करने वाली है। चिबुक के नीचे कंठ में मौतियों की माला सुशौभित है तथा उनके ऊंचे उरौज हेम-गिरि को लज्जित करने वाले हैं।[२३०]

गौपियों के विरहिणी रूप का उतना अधिक उल्लेख नहीं है जितना उनकी विरह दशा का। फिर भी उद्धव ने गौपियों का जो रूप कृष्ण को बतलाया वह विरह का उद्दीपक है।[२३१] वे कहते हैं कि गौपियों ने गृह के समस्त व्यवहार भुला दिए हैं।[२३२] उनके नैत्रों से आंसुओं की सरिता प्रवाहित होती रहती है। वे तन और मन से क्षीण हो गई हैं। अब उनके लौचन और श्रवण नहीं रहे हैं। वे तुम्हारे विरह में बावली हैं और तुम्हारी चर्चा छौड़कर अन्य कोई चर्चा नहीं करती हैं।[२३३] इस प्रकार कृष्ण के वियौग में ये गौपियां कृशगात, निरंतर अश्रु प्रवाहित करती हुई खिन्न-मना, कृष्ण-ध्यान-रता उन्मादिनी सी हैं।

गौपियों से बहुत अधिक विस्तार से राधा के रूप का वर्णन है। राधा ही कृष्ण की यथार्थ प्रिया हैं और कवियों ने उसके सौंदर्य का राशि-राशि वर्णन किया है। उसके रूप-वर्णन में सर्वत्र अतिशय प्रभावशीलता, अंग-प्रत्यंग की अनिर्वचनीय सुघड़ता और सौम्यता का वर्णन है। यह वर्णन साधारण रूप-कथन, संक्षिप्त नख-शिख अथवा अंग-प्रत्यंगों की शौभा का वर्णन अथवा विस्तृत नख-शिख वर्णन द्वारा हुआ है। इसके अतिरिक्त राधा के संयौगिनी और वियौगिनी रूप का वर्णन भी है।

---

२३० सूर १६६०

२३१ ,, ४७१४

२३२ ,, ४७१५

२३३ ,, ४७१६-४७२१

सामान्य रूप-वर्णन

राधा के सामान्य रूप वर्णनों में उसके गोरे रंग, नीली साड़ी, विशाल नैत्र आदि का वर्णन कर उसकी शोभा की अद्वितीयता बतलाई जाती है। उसके सौंदर्य के आगे रमा, गौरी, उर्वशी, रति और शची आदि का सौंदर्य नगण्य है।[२३४] इस सौंदर्य का वर्णन करने वाला एक पद उदाहरण स्वरूप दिया जा रहा है। इस पद में उनके रूप का उद्दीपन बड़ा ही स्पष्ट है :

बनै न कहत राधा कौ रूप।
बिहँसि विलोकि बिमाह्यौ मौहन, वृंदावन कौ भूप ।।
अंगनि कोटि अनंग सौमकुल, एक अंग कौ कूप।
नख-सिख भोग भोगवत नागर, अधर-सुधा-रस तूप ।।
लेत उसास बास मुख महकत, मनहुं अगर कौ धूप।
मानंहु चंपे कौ बन फूल्यौ, गोरी गात अनूप ।।
वाम पयोधर राजन मानंहु, सुरत-जग्य कौ जूप।
'व्यास' स्वामिनी सौं बिहरत ही, मौहन ~~[illegible]~~ व्यार लगत सरूप ।।४३०

संक्षिप्त नख-शिख-वर्णन

राधा के रूप-वर्णन में संक्षिप्त नखशिख-प्रणाली बहुत अपनाई गई। संक्षिप्त नख-शिख-प्रणाली का अर्थ एक पद में कुछ महत्वपूर्ण अंगों के सौंदर्य के उल्लेख द्वारा संपूर्ण रूप के सौंदर्य का बिंब उपस्थित करना। इन वर्णनों में मुख, नैत्र, अधर, कैश, कुच आदि शरीर के उर्ध्व अंगों का ही अधिकतर उल्लेख होता है। इन वर्णनों में शरीर के अंगों के लिए परंपरागत उपमानों का ही प्रयोग अधिकतर होता है। राधा के इस रूप का उल्लेख लगभग सभी कवियों में प्राप्त है। उदाहरण के लिए ऐसे दो दिए जा रहे हैं :

---

२३४ सूरसागर १२६०, १२६१, १३२४ तथा ध्रुवदास-ब्यालीस लीला- पदावली ४० आदि

राजत बदनारबिंद लसत चिबुक चारू बिंदु निरखि सरस हास मंद
हियौ सिरांतरी ।
भूषण दुति अंग अंग मनहु रूप दधि तरंग अधरनि तैं भये सुरंग
दस्न पांतरी ।
छूं गूंथित अति रूचिर केश लटकत बेनी सुदेस सुंदर छबि सहज वेश कहि
न जातिरी ।
चंचल लोचन विशाल कुंडल मणि जटित लाल गंडति पर बनी रसाल
तरल कांतिरी ।
झलकत आनंद रूप नासा छबि जलज भूप डोलत अतिहीं अनूप
रूचिर मांतिरी ।
हित ध्रुव अलि लाल नैन पायौ सुख कमल ऐन बसत अहरू रैन होत
छिन न हांतरी ।।

--ध्रुवदास-व्यालीस लीला--पद्यावली ३३

नीलाम्बर पहिरै तनु भामिनि, जनु घन दमकति दामिनि ।
सेस, महेस, गनेस, सुकादिक, नारदादि की स्वामिनि ।।
ससि-मुख तिलक दियौ मृग मद कौ, खुभी जराइ जरी है ।
नासा-तिल-प्रसून बेसरि-छबि, मौतिनि मांग भरी है ।।
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत चित, गूंथे सुमन रसालहिं ।
कबरी अति कमनीय मंग सिर, राजति गोरी बालहिं ।।
सकरी-कनक, रतन-मुकामय लटकन, चितहिं चुरावै ।
मानौ कोटि कोटि सत मोहिनि, पांइनि आनि लगावै ।।
काम कमान-समान भौंह दोउ, चंचल नैन सरोज ।
अलि-गंजन अंजन रेखा दै, बरसत बान मनोज ।।
कंबु कंठ नाना मनि भूषन, उर मुकुता की माल ।
कनक-किंकिनी-नूपुर-कलरव, कूजत बाल मराल ।।
चौकी हेम, चंद्र-मनि-लागी, रतन जराइ खचाई ।
भुवन चतुर्दस की सुंदरता, राधे मुखहिं रचाई ।।
सजल-मेघ-घन-स्यामल-सुंदर, बाम-अंग अति सौ है ।
रूप अनूप मनोहर मोहै, ता उपमा कहि को है ।।
सहज माधुरी अंग-अंग-प्रति, सुबस किये-धनी ।
अखिल-लोक-लोकेस बिलोकत, सब लोकनि कै मनी ।।

कबहुंक हरि संग नृत्यति स्यामा, सुकल हैं राजत माँ ।
मानहुं अघर सुधा के कारन, ससि पूज्यौ मुका सौं ।।
रमा, उमा, अरू सची अरूंधति दिन प्रति देखन आवैं ।
निरखि कुसुमगन बरषत सुरगन, प्रेम मुदित जस गावैं ।।
रूप-रासि, सुख रासि राधिके, सील महा गुन-रासी ।
कृष्ण-चरन ते पावहिं, जे तुव चरन उपासी ।। आदि

-- सूर १६७३

विस्तृत नख-शिख वर्णन

विस्तृत नख-शिख-वर्णन का अर्थ शरीर के सभी अंगों के सौंदर्य वर्णन से है । कृष्णाश्रयी शाखा में यह वर्णन काफी मात्रा में उपलब्ध है । इसमें राधा के अंगों के सौंदर्य का वर्णन विभिन्न उपमानों से अति उत्साहपूर्वक ढंग से किया जाता है । इस नख-शिख वर्णन में क्रमिक रूप से एक-एक अंग को लेकर उनका विस्तार से सौंदर्य-वर्णन किया जाता है यह वर्णन कई पदों में या एक लम्बे पद में हो सकता है । इस काव्य में ऐसा नखशिख वर्णन पहले की अपेक्षा अल्प है । इन्हीं के अंतर्गत रूपकातिशयोक्ति रूप में किए गए नखशिख वर्णन भी आएंगे । सूरदास का "अद्भुत एक अनूपम बाग" इसी के अंतर्गत आएगा । कई पदों में विस्तृत नख शिख-वर्णनों का ध्रुवदास का "श्रृंगार सत लीला की तीन श्रृंखला" में वर्णित नख शिख वर्णन महत्वपूर्ण है । इसमें उनके नीलाम्बर, नैत्र, चूड़ी, अंगिया, हार, बैंदी, माला, हंसी, नख, उंगली चरण, चितवन, छबि, बेसर, नैत्र, काजल, मुस्कान हार आदि का बड़ा प्रभावशाली वर्णन है ।[२३५]

राधा के रूप-वर्णन का अध्ययन निम्नलिखित दो शीर्षकों के अंतर्गत भी हो सकता है--संयोगिनी राधा तथा वियोगिनी राधा ।

---

२३५ ध्रुवदास-ब्यालीस लीला-भजन श्रृंगार सत लीला पृ ७८-८६ में भी देखें:- हित चौरासी २६,४३,४५, गदाधर भट्ट पृ २८-३०, महावाणी-उत्साह सुख २३, सेवा सुख ३८, व्यास ३७० आदि, ३३१-३६७ आदि, सूर १८२२ आदि बल्लभ रसिक-पृ ५८, ६२

## संयोगिनी राधा

राधा के शरीर में नव यौवन प्रवेश से लेकर उनकी अनेक क्रीड़ा-विलास आदि की लीलाओं में उनके शरीर के अंग अंग की सुंदरता, नवीनता, कोमलता एवं सुघड़ता का सभी कवियों ने अपने अपने प्रकार से वर्णन किया है। उनके सौंदर्य की प्रभावशीलता अनुपम है और सभी उपमान उसके प्रभाव की अभिव्यक्ति के लिए कवियों ने जुटाए हैं। विद्यापति, सूर, नंददास, परमानन्ददास, ध्रुवदास, हितहरिवंश, हरिव्यास आदि सभी में इनका विस्तृत उल्लेख है। यदि इनका विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाए तो वह अत्यंत विशाल होगा और उसकी उपयोगिता संदिग्ध होगी। अनेकानेक कृष्णभक्ति संप्रदायों के अध्ययनों में इस रूप-सौंदर्य का उल्लेख है और उसकी पुनरुक्ति से विशेष लाभ की संभावना नहीं है। अतएव इतने से ही संतोष किया जाता है कि संयोगिनी राधा सर्वांग सुंदरी, अत्यंत लावण्य मयी, अलौकिक रूपवती, समस्त उपमानों को पराजित करने वाली हैं। उनकी समता कोई कर नहीं सकता। उनका समस्त सौंदर्य इसी रूप में प्रकट हुआ है।

## वियोगिनी राधा

वियोगिनी राधा की मूर्ति सभी का हृदय खींचने वाली है। उसके रूप वर्णन में कवियों ने उसके शरीर की पीत वर्णनता, मलीनता, कृशता आदि का वर्णन किया है। संयोगिनी राधा की भांति यह वर्णन उसके अंग प्रत्यंगों को लेकर नहीं चला है। कवियों का उद्देश्य उसके वियोगी रूप का बिंब ग्रहण कराना रहा है अतएव वे विश्लेषण और परिगणना से दूर रहे हैं। यही कारण है कि यह रूप हृदयद्रावक होते हुए भी संक्षेप में ही वर्णित है। राधा की एक ऐसी करूणोत्पादक मूर्ति का अंकन उद्धव ने कृष्ण से किया है।

परम वियोगिनी सब ठाढ़ी ।
ज्यौं जलहीन दीन कुमुदिनि बन, रबि-प्रकास की डाढ़ी ।।
जिहिं बिधि मीन सलिल तैं बिछुरै, तिहिं अति गति अकुलानी ।
सूखे अधर न कहि आवै कछु, बचन रहित मुख बानी ।।
उलत स्वास बिरह बिरहातुर, कमल बदनि कुम्हिलानी ।
निंदति नैन निमेष छिनहिं छिन, मलिन कठिन जिय जानी ।।
बिनु बुधि बल विचित्र कृत सौमित, चलि न सकी पचि हारी ।
सूरदास प्रभु अवधि लागि नतु प्रान तजति ब्रजनारी ।। सूर ४७५५

तथा

तब तैं इन सबहिनि सचु पायौ ।
जब तैं हरि संदेस तुम्हारौ, सुनत तांवरौ आयौ ।।
फूले व्याल दुरे ते प्रगटे, पवन पेट भरि खायौ ।
खौले मृगनि चौक चरननि कै, हुतौ जु जिय बिसरायौ ।।
ऊंचे बैठि विहंग सभा मैं, सुक बनराइ कहायौ ।
किलकि-किलकि कुल सहित आपनैं, कौकिल मंगल गायौ ।।
निकसि कंदराहू तैं केहरि, पूंछ मूंड़ पर ल्यायौ ।
गहवर तैं गजराज आइकै, अंगहि गर्व बढ़ायौ ।।
अब जनि गहरू करहु हौ मोहन, जौ चाहत हौ ज्यायौ ।
सूर बहुरि ह्वै राधा कौं, सब बैरिनि कौ मायौ ।। सूर ४७५६

## आभूषण और श्रृंगार

कृष्णाश्रयी शाखा में आभूषणों और सोलहों श्रृंगार के भी अनेकानेक उल्लेख हैं । स्थान-स्थान पर राधा के श्रृंगार और उनके आभूषणों की चर्चा है । ये आभूषण तत्कालीन समाज में उसी प्रकार प्रचलित थे जैसे आज भी गांवों में बड़े वंशों में हैं । ये आभूषण कंकण, किंकिनी, नूपुर, नकबेसर, बुटिला, हमैल, कंठसिरी, दुलरी, तिलरी, हार, बहूंटा, मुद्रिका, वलय, जेहरि आदि हैं ।[२३६] लगभग सभी कवियों ने इन आभूषणों का उल्लेख किया है ।[२३७] इन आभूषणों के अतिरिक्त फूलों के आभूषणों

२३६ ब्रजेश्वर वर्मा - सूरदास (१९५०) पृ ४८९

की भी चर्चा है .

श्रृंगार में नवसत श्रृंगार या सोलहों श्रृंगार की चर्चा भी है। सुन्दरी राधिका समग्र श्रृंगार से सुशोभित और अनेकानेक आभूषणों से भूषित रहती हैं। इन सोलहों श्रृंगारों के वर्णन में आभूषणों का भी उल्लेख है। इनके दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

रुचिर राजत बधू कानन किशोरी।
सरस षोडश किये, तिलक मृगमद दिये, मृगज लोचन, उबटि, अंग
शिर खोरी।
गंड पंडरि मंडित, चिकुर चंद्रिका मैदिनी कवरि गूंथित सुरंग डोरी
श्रवन ताटंक कै, चिबुक पर बिंदु दै कसूंभि कंचुकि दुरै उरज फल कोरि
बलय कंकन दोति, नखनि जावक जोति, उदर गुन रेख, पट नील कटि
थोरी।
सुभग जघनस्थली, क्वनित किंकिनि भली, कोक संगीत रस सिंधु झकझोरी
विविध लीला रचित रहसि हरिवंश हित, रसिक सिर मौर राधा-
रमन जोरी।
भृकुटि निर्जित मदन, मंद सस्मित वदन, किये रस-बिवस घनश्याम
पिय गोरी ।।२३८

आजु बनी वृषभानु दुलारी।
अंग राग भूषन पट रचि रुचि, मोहन अपनै हाथ सिंगारी ।।
चिकुरनि चंपकली गुहि बैनी, डोरी रोरी मांग संवारी।
मृगज बिंदु जुत, तिलक इंदु छबि, झलकत अलक, मनहु बलिहारी ।।
स्रवननि खुटिला खुभी झलमली, नैननि अंजन-रेख अन्यारी।
नासापुर लटकनि नकबेसरि, भौंह तरंग भुजंगनि कारी ।।
मंदहास बसि बलि दामिनि, जलधर-अधर कपोल सुढारी।
कंठ पोत, उर-हार, चारू कुच, गुरू नितंब जंघीन अति भारी ।।
गजमोतिन के गजरा, हाथनि चारू चुरी, पहुंचिन पर बारी।

---

२३८ माधुरी वाणी - केलि माधुरी ४७, वंशीवट माधुरी-२
२३९ हित चौरासी ६७ देखें सूर २३२१

नील कंचुकी, लाल तरौटा, तनसुख की तन झूमक सारी ।।
नखशिख कुसुम - बिसिख, रस बरषत, रोमनि कोटि सोम उजियारी ।
व्यास स्वामिनी पर तृन तोरत, रसिक निहोरत जय-जय प्यारी ।।[१४०]

-१४०

समग्र रूप में कृष्णाश्रयी शाखा में नायिका के रूप, श्रृंगार और आभूषणों का बड़ा ही विस्तृत वर्णन है इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि अनेक स्थलों पर नायिका के साथ नायक का भी युगल रूप में नखशिख, रूप और श्रृंगार वर्णन है । यह वर्णन परंपरागत होते हुए भी मनमोहक एवं प्रभावशाली है ।

### (घ) नायिका की चेष्टाएं

१७- नायक के लिए नायिका की अनेक चेष्टाएं कामोद्दीपन करने वाली होती हैं । इनमें नायिका का वाणी-विलास, क्रीड़ा-विलास, गति, कटाक्ष आदि सभी क्रियाएं आती है । नायिका की इन चेष्टाओं का भक्ति-काव्य में काफी वर्णन है । उसी का संकेत नीचे किया जा रहा है ।

१८- ज्ञानाश्रयी शाखा-

इस शाखा की नायिका यथेष्ट मुखर और अपने प्रेम को व्यक्त करने वाली है, किंतु उसकी इन क्रियाओं को उद्दीपन रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि उनके प्रभाव का संकेत उपलब्ध नहीं है ।

१९-२०- प्रेमाश्रयी शाखा-

इस शाखा की नायिकाएं मुखर और क्रियाविदग्धा है । उनकी अनेक श्रृंगारी चेष्टाएं है जो कि नायक के लिए उद्दीपन है । इन चेष्टाओं के संबंध में स्मरणीय है कि ये सदैव प्रेम के उद्दीपन के लिए सचेत होकर नही की जातीं । कभी - कभी तो अप

---

१४०- व्यास ३६८ तथा ५९५ आदि

दुःख कथन आदि को बतलाने के लिएही ये की जाती है । किंतु जब इन क्रियाओं से नायक के हृदय में रति- उद्दीप्त होती है तो इन्हें इन्हें उद्दीपन के अंतर्गत लेना पड़ता है । प्रेमाश्रयी शाखा में इनके निम्नलिखित रूप प्राप्त हैं -

(१) प्रिय का पत्र -

पत्र का उद्दीपन रूप में उल्लेख नायक के प्रसंग में किया जा चुका है । इसी प्रकार नायिका के पत्र भी नायक में प्रेम को उद्दीप्त करने वाले होते हैं । पद्मावती के पत्र को प्राप्त कर रत्नसेन के शरीर में प्राण लौट आए थे ।[२४१] चित्रावली भी अपने विरह का निवेदन पत्र द्वारा करती है । इस पत्र के उद्दीपन कार्य का उसमान ने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है । यह वर्णन पाती का पावस-नदी से रूपक बांध कर किया गया है:-

पुनि दीन्हेसि चित्रावलि पाती, खोलि कुंवर लाई लै छाती ।
सुलगत काठ लागु जनु लूका, दुहूं आगि मिलि उठा भभूका ।।
\+ \+ \+ \+
पाती पावस सलिता भई, दूनहूं कंवल दुःख जल मई ।
आखर मगर गोह घरिआरा, अरथ भंवर परि कठिन निसारा ।।
भंवर अनेक पैठि मन तरा, एक तें निकसि ऐक महं परा ।
पाती जनु पावस नदी, मन तकि पार तराई ।
चित्रावलि दुख अगम जल, बूड़ि बूड़ि तंह जाइ ।।४६८

(२) प्रिया की लिखावट-

पत्र की ही भांति नायिका के अंक और लिपि भं नायक के विरह को उद्दीप्त करने वाले होते हैं । ऊपर के उदाहरण में यह स्पष्ट है । इस प्रसंग में पद्मावत का उदाहरण दृष्टव्य है। पद्मावती ने मूर्छित रत्नसेन के वक्षस्थल पर जो अक्षर

---

२४१- पदमावत १३२-१३७

लिख दिए थे उन्होंने उसे अग्नि या सराग की भाँति दाग दिया ।[२४२]

(३) प्रिया का संदेश -

संदेश में अपने प्रेम की दृढ़ता, विरह की तीव्रता और मिलन की आकांक्षा व्यक्त रहती है । प्रिया का संदेश हृदय में विस्तृत भावनाओं को जगा कर नवाकर्षण उत्पन्न कर देता है । नागमती और कौलावती के संदेश ऐसे ही हैं । इन संदेशों का इतना तीक्ष्ण प्रभाव पड़ता है कि नायक अपनी पूर्वप्रिया की स्मृति में नवीन तक को भूल जाता है जिसके कारण उसे अनेक कष्ट सहने पड़े थे । वह सब कुछ छोड़ कर प्रिया के संदेश से बँधा घर लौटने के लिए आतुर हो जाता है । संदेश का यह प्रभावशाली रूप इस शाखा के काव्य में बहुत ही सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है ।[२४३]

(४) ~~कटाक्ष~~ कटाक्ष- आदि-

संभोग में प्रिया के कटाक्ष, आलिंगन, चुम्बन आदि सभी क्रियाएं प्रेम की उद्दीपक है । इनका विस्तृत उल्लेख संभोग श्रृंगार के अंतर्गत किया जा रहा है अतः इनका पिष्ट-पेषण उचित नहीं है ।

२१- रामाश्रयी शाखा

रामाश्रयी शाखा में श्रृंगार की स्वल्प मात्रा और मर्यादित रूप के कारण नायिका की चेष्टाओं का भी विस्तार नहीं है । सीता अपने प्रेम को निरंतर छिपाए रखने का प्रयत्न करती है अतएव ~~सीता~~ विवाह के पूर्व ऐसी किसी विशेष चेष्टा का उल्लेख नहीं है जो कि उद्दीपन कारी हो । अपवाद रूप में पुष्प-वाटिका ~~का~~ प्रसंग में सीता का अनेक बहानों से रुक कर प्रिय को देखना है । नायिका की प्रिय को देखने की ऐसी चेष्टाएं बड़ी ही हृदयग्राही ~~होती~~ होती है । सीता भी मृग-पक्षी और वृक्षों को देखने के बहाने बार-बार राम की छवि को देखने को घूम जाती है:-

देखन मिस मृग विहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ।[२४४]

सीता की उद्दीपन गत चेष्टाओं में उनका हनुमान से भेजा हुआ संदेश है । इस संदेश में अपनी दयनीयावस्था, प्रेम की एकनिष्ठा, राम के अजियत्व की दुहाई आदि सभी वस्तुएँ इस सुंदर रूप में मिश्रित हुई है कि यह संदेश अत्यंत उद्दीपनकारी हो गया है । उस संदेह को सुन कर रामचन्द्र के कमलनयनों में आंसू भर आए ।

२२- कृष्णाश्रयी शाखा-

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है कृष्णाश्रयी शाखा का प्रेम उन्मुक्त वातावरण में विकसित हुआ है । इस रूप के कारण इसमें क्रीड़ा-विलास का विशेष स्थान है । अतः नायिका की जितनी भी क्रीड़ाओं की यदि तालिका बनाने का प्रयत्न किया जाए तो उनकी एक लम्बी सूची बन सकती है । उस अनावश्यक विस्तार में न जाकर उनकी कुछ प्रमुख चेष्टाओं का ही संकेत किया जा रहा है ।

(१) नायिका का दही-मथना-

बालक कृष्ण का प्रथम आकर्षण दही मथती हुई ग्वालिनों से ही होता है । दही मथते समय उनकी भुजाओं का लहराना, कटि का थिरकना और बेणी का नर्तन कृष्ण के मन को मोहने वाला है । ऐसी ग्वालिनी का वे जा कर आलिंगन कर लेते है । इसका उदहारण पीछे दिया जा चुका है ।

(२) नायिका का प्रिय पर अधिकार जताना-

बालक कृष्ण को जब नंद राधा के हाथ में देते हैं उस समय राधा कहती है ,"नंद बाबा की बात सुनो । मुझे छोड़ कर यदि तुम कहीं जाओगे तो तुम्हें पकड़ कर ले आऊंगी । अच्छा हुआ कि वे तुम्हें सौंप गए । अब मैं तुमको नहीं

---

२४४- मानस-बाल २३१

जाने दूँगी । तुम्हारी बाँह को तनिक भी नहीं छोड़ूँगी ।" राधा की इस अधिकार भावना को सुन कर कृष्ण बाँह छुड़ाने लगते है और राधा से प्रेम वार्ता प्रारंभ हो जाती है । [२४५]

(३) नायिकाओं की नायक से छेड़-छाड़ -

नायिकाओं की नायक से यह छेड़-छाड़ दान-लीला में विशेष रूप से प्रकट होती है । कृष्ण जहाँ गोपियों से अंग-अंग का दान माँगते है वहाँ गोपियाँ भी उन्हें अनेक भाँति से खिजाती है । उनकी ये सभी क्रियाएँ उद्दीपन कारी है ।

(४) नायिका की नृत्य-कुशलता-

नायिकाओं की नृत्य कुशलता रास के प्रसंग में प्रकट हुई है । राधा की नृत्य कुशलता तो और भी मनमोहक है । इसके अनेक वर्णन सभी कवियों ने किए हैं । इस नृत्य में भ्रु-भंग, कटाक्ष आदि अनेक चेष्टाएँ आ जाती है । उदाहरण स्वरूप इसका एक पद दिया जा रहा है:

नाँचति नव रंग संग, अंग छबिन माई ।
गावति मन भावति, गति देसी दिखराई ।।
सनमुख रुख स्याम-गौर, गातनि महँ भाई ।
विकसित बदनारुबिंद, सौभा अधिकाई ।
चरन पटकि, नैन मटकि, बंक भ्रुव चलाई ।
हस्तक चल, मस्तक कल, कुच बर सुखदाई ।।
कौतिक-निधि राधा को गुन-गन कह्यो न जाई ।
काम-बिबस स्याम "व्यास" स्वामिनी उर लाई ।व्यास ४६५

(५) नायिका की काम-कला कुशलता-

नायिका की काम कला-कुशलता नायक के मन में रति को अत्यंत उद्दीप्त करने वाली होती है । इस काम-कला-कुशलता का वर्णन कृष्ण-साहित्य में अत्यधिक है । वल्लभ-संप्रदाय को

---

२४५- सूरसागर १२९९

छोड़ कर शेष में तो इसी काम-क्रीड़ा में ही राधा निरंतर निम्गन रहती है तथा अपने काम से कृष्ण का पोषण करती है। इस गुण का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है।

रति विपरीति सुरीति सुहाई। रसना हरसि कहत लुभ्याई।
छैल छकी छर हरी छबीली। लफि-लफि लहलहात अखीली।
सहज मुरति विथुरनि अलकनि की।शोभा खेद विंदु झलकनकी
गोल कपोल तंबोल झलक छबि।नथ मोतिन की ज्योति रही
फबि ।।
रति प्यारी प्यारी कहर करति सुरति विपरीति।
रति पति की मूरति भई लई दुहुनि मन प्रीति।
मतवारी हारी नहीं प्यारी रति विपरीति।
झुकि उरसों उर लाइ कैं लेति अधर रस मीत।
वल्लभ रसिक पृ० ५६

(६) <u>नायिका का नेति-नेति वचन-</u>

रसिक नायकों के कामोद्दीपन में नायिका का नेति-नेति वचन महत्वपूर्ण स्थान रखता है। नायिका का ऐसा कथन स्वाभाविक है। इसका सुंदर वर्णन व्यास जी ने किया है। उसका एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है:

विहरत नवल रसिक राधा संग।
रचित कुसुम सयनीय, भामिनी-कमल बिमल, हरि-भृंग।
अधर-पान-परिरंभन-चुंबन, बिलसत कर जुग उरज उतंग
नीवी बंधन मोचत, सोचत, नेति वचन सुनि अधिक उमंग।।
नैन सैन, परिहास-वचन कहि, हंसत लसत पुलकित भ्रुव-भंग।
कबहुंक प्यारी मुरली बजावति, मोहन अधर धरत मुख चंग।
नवनिकुंज रति पुंजनि बराजत, सुख सूचत, नखसिख अंग-अंग।
बीच-बीच पंचम सुर गावत, सुनि धुनि विथकित "व्यास"
कुरंग ।। ५५८

(७) <u>नायिका संदेश</u>- नायिका के विरह का संदेह सदा उद्दीपनकारी होता है। इस शाखा के वल्लभ संप्रदाय के "भ्रमरगीत-प्रसंग" के अंतर्गत गोपियाँ उद्धव के द्वारा अपना संदेश भेजती हैं। यह संदेश

अपने विरह का उतना नहीं है जितना कि ब्रज की बेहाल दशा का। अपनी मनोवैज्ञानिकता में आर्तिपूर्ण होने के कारण इसने कृष्ण को विरह को उद्दीप्त किया। उद्धव के पूर्व भी गोपियां अनेक संदेश भेज चुकी थीं पर उनके मथुरा पहुंचने का गोपियों का विश्वास नहीं। तभी तो वे उद्धव से कहती है- "संदेसन मधुबन कूप भरे।" उद्धव द्वारा लेगए संदेश के कारण कृष्ण के प्रज्जवलित विरह ज्वर को व्यक्त करने वाला एक पद नीचे दिया जा रहा है:

सुनि ऊधौ मोहिं नैकु न बिसरत वे ब्रजबासी लोग।
तुम उनकौ कछु भली न कीन्हीं, निसि दिन दियौ वियोग।।

वै उत रहत प्रेम अवलंबन, इत तैं पठयौ जोग।
सूर उसांस छांड़ि भरि लोचन, बढ़यौ विरह ज्वर सोग।।

-सूर ४७७३

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से भक्ति-काव्य में आलम्बन गत उद्दीपन की बहुलता और महत्ता स्पष्ट है।

इ- तटस्थ उद्दीपन

आलंबनगत उद्दीपनों के अतिरिक्त उद्दीपनों की एक दूसरी श्रेणी मे भी है। इन उद्दीपनों का उद्गम आलंबन में न होकर उससे बाहर होता है। ऐसी सभी वस्तुएं और परिस्थितियां इसके अंतर्गत आएंगी। इन्हें तटस्थ उद्दीपन कहते हैं। इन उद्दीपनों की कोई संख्या निश्चित नहीं की जा सकती है। मोटे रूप में इसके दो उपविभाग किए जा सकते हैं। प्रथम के अंतर्गत प्रकृति का उद्दीपन रूप आता है और दूसरे के अन्तर्गत शेष अन्यान्य उद्दीपन आते हैं। तटस्थ उद्दीपनों का अध्ययन इन्हीं दो शीर्षकों के अंतर्गत किया जा रहा है।

२४- ज्ञानाश्रयी शाखा-

इस शाखा में तटस्थ उद्दीपनों का अभाव सा ही है। प्रकृति का इस काव्य में यथेष्ट उल्लेख है पर कहीं भी- न संयोग और न ही वियोग मे वह उद्दीपन रूप में प्रस्तुत की गई है। इसी प्रकार अन्य उद्दीपनों का भी अभाव है। इस अभाव का कारण संतों की ईश्वर की कल्पना तथा प्रेम के विकास का व

२५- प्रेमाश्रयी शाखा-

इस साहित्य में तटस्थ उद्दीपनों का विस्तृत वर्णन है । यह वर्णन प्रकृति गत तथा अन्यान दोनों ही प्रकार के उद्दीपनों का है । इन दोनों रूपों का अध्ययन नीचे दिया जा रहा है ।

प्रकृति गत उद्दीपन-

प्रकृति स्वयं तटस्थ रहते हुए भी अत्यंत उद्दीपन कारी है । श्रृंगार के दोनों रूप - संयोग और वियोग इसके द्वारा उद्दीप्त होते हैं । हिन्दी काव्य में प्रकृति के विविध रूपों कों विस्तृत अध्ययन हो चुका है । जिसके अंतर्गत उसका उद्दीपन का रूप भी आता है । अतः इस का संक्षिप्त अध्ययन ही किया जाएगा ।

प्रकृति को श्रृंगार के उद्दीपन रूप में व्यक्त करने की दो प्रणालियाँ प्रचलित हैं । प्रथम में प्रकृति के संश्लिष्ट रूप को लेकर उसका उद्दीपन- स्वरूप अभिव्यक्त किया जाता है । इसके अंतर्गत षट्ऋतु वर्णन तथा बारह मासे की प्रणालियां आती हैं । द्वितीय रूप में फुटकल प्रकार से प्रकृति के किसी रूप अवयव आदि का उद्दीपन रूप व्यक्त किया जाता है । प्रेमाश्रयी शाखा में प्रकृति का इन दोनों ही रूप में प्रयोग हुआ है किंतु प्रथम रूप में सौंदर्य सर्वाधिक निखरा है ।

षट्ऋतु-

षट्ऋतु में क्रमशः छः ऋतुएं किस प्रकार नायक अथवा नायि- के सुख या विरह को उद्दीप्त करती है इसका उल्लेख रहता है इसका प्रयोग सामान्यतः संभोग श्रृंगार के लिए किया जाता प्रिय मिलन की स्थिति में समय जल्दी बीत जाता है । व[illegible] में प्रत्येक ऋतु नित्य नवीनता लाती है और मिलन के सुख उद्दीप्त कर देती है । मिलन में समय की इस त्वरा गति करने के लिए षट्ऋतु प्रणाली ही उपयुक्त है । जायसी और पद्मावती के संभोग श्रृंगार का रूप षट्ऋतुओं में कितन

मोहक है इसका वर्णन किया है । वसंत ऋतु में प्रकृति नव शृंगार करती है । चारों ओर परिमल गंध भर जाती है । भ्रमर और कलिकाओं का क्रीड़ा विलास चलने लगता है । प्रकृति के इस मादक समय में संयोगिनी नायिका भी नव- उत्साह से भर कर शृंगार प्रसाधन करती है । पुष्प- भ्रमर मिलन नायिका - नायक मिलन का प्रेरक है । वसंत ऋ में होने वाले फाग और चांचर उनके जीवन में उल्लास भरने वाले हैं तथा होली मानों उनके समस्त दुखों को ही भस्म करने वाली है । इस प्रकार वसंत की ऋतु संयोगिनी को सभी प्रकार से आनन्ददायिनी और प्रिय होती है । वसंत ही क्या सभी ऋतुएं जो अन्य परिस्थिति में दुखदायी होती है इस सुख के अवसर पर उसे औरभी उद्दीप्त करने वाली होती है । ग्रीष्म में भी प्रिय के निकट होने के कारण तपन का नाम नहीं होता और नायक- नायिका विविध प्रकार से सुख करते हैं । यथार्थ में भाग्य- --वान संयोगी प्रेमी को छहों ऋतुएं सुखद होती हैं । इस प्रत्येक ऋतु के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन कर कवि उसके सुखद होने का उल्लेख करता है । सामान्यतः जो ऋतुएं दुखदाई होती हैं वे भी इस मिलन की स्थिति में सुखद हो जाती है । प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा कवि प्रत्येक ऋतु में उपलब्ध सभी सामग्री फल-फूल, धन-धान्य, पशु -पक्षी का उल्लेख कर उनके सुखद होने का उल्लेख करता है । [२४६]

उसमान ने जायसी के विपरीत चित्रावली के विरह का वर्णन -षट्ऋतु पद्धति में भी किया है । वियोगिनी चित्रावली को प्रत्येक ऋतु और भी अधिक दुख देने वाली है । वह वसंत ऋतु में प्रकृति के सुखद रूप को देखकर तथा अपनी स्थिति से उसकी तुलना कर अपनी दुरावस्था पर और भी अधिक रोती है । ... और कलिकाएं वसंत ऋतु में मिल रहे हैं पर चित्रावली का ... है ? उसके बिना इस वसंत में भी चित्रावली को सर्वत्र दुख ... अंधकार ही दीख रहा है । बेचारी निरीह नायिका की ... देह को वसंत नृपति कामदेव बिरद पर चढ़ कर विध्वंस ... रहा है । इस वर्णन उससे देखा नहीं जा सकता । ऐसा ...

---

२४६- पद्मावत - ३३९-३४०

होता है जैसे दशों दिशाओं में दावाग्नि लगी हो । पुष्पों की सुवास अंग पर चाँटे सी लगती है और फूल अंगारे तथा कलियाँ काँटों के सदृश्य है । वसंत ऋतु में बोलने वाले कोयल और पपीहे बोली क्या बोलते हैं हृदय में साँग ही मारते हैं । इस प्रकार मदन गज द्वारा अपने जीवन को विध्वंस होते देख कर उसे अपने शार्दूल प्रिय की याद आती है जो कि उसकी रक्षा कर सकता है ।[२४७] ग्रीष्म की ऋतु तो और भी दुखदायिनी हो जाती है । बाहर ग्रीष्म की भीषण गर्मी और हृदय में विरह की दावाग्नि । बेचारी नायिका बाहर और भीतर दोनों ओर से जल रही है । उसे कहीं छाँह नहीं है ग्रीष्म में तृषित व्यक्ति की भाँति वह पानी-पानी रटती रहती है पर उसकी प्रेम- प्यास को बुझाने वाला प्रिय कहाँ है? वह क्या पानी पिए ।[२४८] वर्षा ऋतु में एक तो प्रकृति ही भयभीत करने वाली है ऊपर से अब तो सर्वत्र जल भर जाने के कारण सभी पंथ बंद हो गए । अब कोई पथिक नहीं आता जो बेचारी विरहिनी को प्रिय का संदेशा ला देता। शरद और हेमन्त दोनों ही और भी कष्टदायक है । कंत के बिना इस दुख से उबारना असंभव है । जो संदेश वाहक गए थे वे भी लौट कर न आए । बाला के हृदय में मदन- अँगीठी जलने लगती है और विरह की सलाख में उसका कलेजा भुन- भुन कर आँसू रूप में चुआ जा रहा है । शिशिर में शीत नहीं सहा जाता तथा होली पर तो और भी विकट स्थिति है । बेचारी चित्रावली कुल कानि और प्रेम के बीच फंसी है । उसके हृदय में तो रुदन भरा है पर होठों पर उसे हँसी लानी पड़ती है । विरह की अग्नि अब तक नायिका ने बहुत छिपाई पर अब तो यह प्रकट ही होना चाहती है । अब नायिका अपने प्रिय को खोजने के लिए तन में ही होली लगा कर छार हो जाएगी और चौरों दिशाओं में मारुत के संग प्रिय को खोजती फिरेगी ।

---

२४७- चित्रा० २४४

२४८- वही २४५

अब तन होरी लाइ के, होइ चहौं जर छार ।
चहुं दिस मारुत संग होइ, ढूंढ़ौं प्रान अधार ।। चित्रा २४९

चित्रावली के इस कथन में नायिका की जो तीव्र अभिलाषा व्यक्त हुई है वह इसी से मिलते हुए नागमती के कथन में नहीं है । नागमती का विरह एक निरीह गृहिणी का है जिसमें आत्मसमर्पण है जब कि चित्रावली का विरह एक सक्रिय प्रेमिका का है जो कि किसी भी प्रकार से अपने प्रिय को खोज लेना चाहती है । विरह की तीव्रता और अनुभूति की गंभीरता में दोनों ही कथन समान है ।

उसमान का यह षट्ऋतु वर्णन संक्षिप्त होते हुए भी अपनी अनुभूति की तीव्रता और संवेदना की सघनता में नागमती के बारह-मासे के समकक्ष का है ।

षट्ऋतु के इन दोनों ही वर्णनों में प्रकृति का उद्दीपन कारी रूप अत्यन्त स्पष्ट है ।

बारहमासा -

बारह मासे की पद्धति जन जीवन के अधिक निकट है । धीरे धीरे किस प्रकार एक- एक मास खिसकता जाता है पर प्रिय से मिलन नहीं हो पाता, इसका वर्णन जितनी भावुकता से बारह मासे में किया जा सकता है वह षट्ऋतु में संभव नहीं । बारह मास की अवधि, एक एक मास का ध्यान, प्रिय- मिलन की आकांक्षा का ऐसा क्रमश विकास करता है कि यह सहृदय का मन मोह लेता है । विरह का निवेदन और विरह का वर्णन दोनों ही इसमें सरलता से हो सकता है । शायद यही कारण है कि विप्रलंभ में ही बारह-मासे का प्रयोग अधिकतर कवि करते हैं ।

हिन्दी साहित्य में " नागमती का विरह " जो बारह मासे में व्यक्त हुआ है अत्यंत प्रसिद्ध है । उस पर हिन्दी के सभी आलोचक की कलम चली है और उसकी स्वाभिकता एवं गार्हस्थिकता पर सभी मुग्ध हुए है । निसन्देह हिन्दी साहित्य की यह अनुपम निधि

है ।[२४९] इस पर कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं है ।

जायसी के बारहमासे सी ख्याति न मिलते हुए भी " चित्रावली "[२५०]और " मधुमालती "[२५१] के बारहमासे की महत्ता कम नहीं होती । इन बारहमासों में नागमती के विरह की सी गार्हस्थिकता न होते हुए भी स्वाभाविकता और प्रेम की पीर की मर्मस्पर्शिनी व्यंजना है ।

चित्रावली के विरह से सृष्टि का कोना- कोना पीड़ा से व्याकुल है । वह कहती, " यदि प्रिय प्रकृति में तुम होते तो तुम्हें अवश्य ही हमारा चेत होता । तुम किस रूप में हो"-

बरन बरन कहं जानिये,जगत सिष्टि सब भारि ।
कौन बरन मंह साईं तुम्ह, जेहि नहि चेत हमारि ।।[२५२]

चैत्र में विरह की अग्नि उसी तरहलग गई है जैसे मरघट की आग होती है । अब जीवन और शरीर उसी प्रकार नष्ट हो जाएगा । जैसे चिता में शव । प्रिय के जाने में ही प्राण प्रयाण कर गए है । अब बिना प्रिय के यह शरीर शव तुल्य ही तो है । तभी तो यह विरहाग्नि मरघट की आग बन गई है ।

बिछुरत गयो प्रान तजि देही, पिय बिनु परी पुहुमि तजि खेही ।।
बिरह जो आह घात कंह लागा, आइ ज्यों मरघट -आगा ।।[२५३]

वैशाख के महीने में विरह की पीड़ा की मर्मस्पर्शिनी व्यंजना है । " वज्राग्नि पृथ्वी पर पड़ कर सृष्टि को ~~पीड़ा~~ जला रही है । हे प्रिय तुम्हारे बिना मेरी छाती शीतल कौन करे ? अब प्रिय मैं जल कर छार हो गई हूं । हे प्रिय अब आ मेरी राख ही बटोर लो ।चैत मास में निष्प्राण होने के व तथा मरघट की अग्नि शरीर में प्रज्ज्वलित होने से अब

---

२४९– पद्मावत ३४१–३६३,

२५०– चित्रावली ४४३–४५५

२५१– मधुमालती पृ० १२१–१२७

छार तो रह गया ।" चित्रावली चाहती है कि अंत्येष्टि क्रिया-की अंतिम विधि तो प्रिय आकर पूरी करे । इसी बहाने वह उसके स्पर्श का सुखानुभव कर सकेगी ।

हौं जोगिन जोगी भई, तौ पिउ खेह अंडार ।
अब तिय बिरहा जरि जरी, आनि समेटहु छार ।।[२५४]

नागमती के समान ही अपने समस्त ऐश्वर्य को भूलकर चित्रावली कहती है कि वर्षा ऋतु में सभी अपना घर छा रहे है । पक्षी तक भी गृह बसा रहे है । सबों के घर में सजावट हो रही है । पर मेरा घर प्रिय की अनुपस्थित में कौन छायेगा । आज भी मेरे बैरी मित्र आजा -

अजहूं आइ सँभारु रे, बैरी कहउं कि मिंत ।
भोगी होइ तु सँवरइ, जागिहि का की चिंत ।।[२५५]

" भाद्रमास मे सर्वत्र जल ही जल है । सर्वत्र अंधकार हो जाता है । पति के विरह मे चित्रावली के नेत्र भी नदी की भांति उमड़े पड़ रहे है । इस विरहाग्नि में डूबती सेज घड़ो पर बना क्षणभंगुर बेड़ा है । गंभीर विरह समुद्र में है प्रिय कौन मुझे किनारे लगाएगा । मैं भंवर में पड़ी हूं । विकराल लहरियां सर्वत्र निगलने को दौड़ रही है । ऐसे में प्रिय तुम तीर पर निश्चिंत इस प्रकार बैठें हो मानों मेरे दुख को जानते ही नहीं "[२५६]

" एक एक कर नौ महीने बीत गए पर प्रिय न आए । मेरे प्रिय तुम तो राम के समान वीर थे । राम ने अपनी सीता की सुधि हनुमान से ली थी किंतु प्रिय तुमने राम की भांति ... मेरी सुरति नहीं की । उन्होंने भी योगी होकर रावण को ... और सीता को छुड़ाया । तू भी तो योगी है पर पता न... कैसा । मुझे लेना नहीं चाहते । अंत में व्याकुल होकर वह ... है " हे कंत अब मेरी रक्षा करो । विरह और जाड़ा दोनों मिल गए है । बिना स्वामी के शीत प्रबल है । उसके भय से मैं

२५४- चित्रावली पृ० ४४४
२५५- वही पृ० ४४७
२५६- वही पृ० ४।३

प्राण घट में दुबके फिरते हैं । अब तो विरह दैत्य कुरंग का रूप धारण कर मेरे जीवन की फुलवारी ही चरे जा रहा है । मेरे प्रिय तुम क्यों नहीं राम होकर उसे मारते हो:"

अगहन सकल गहन की धरी, धन सीता रावन जेहि हरी ।
विरह असोक सोक फल फरा, तेहि की छांह धूप जिउ जरा।।
राम कि हनुवंत से सुधि लीन्हा, तू पिय निठुर सुरत नहीं -
कीन्हा ।
उहो जोगि हुत जे सुधि पाई, रावन हनि सिय जाइ छोड़ाई ।।
तू जोगी कस लेसि न चाही, जानि बूझि तैं बरबस बाही ।
अजहूं आइ संभारहु कंता, विरह जाड़ भए एकमन्ता ।।
सीव सजान भयो विनु नाहां, दबका फिरै जीउ घट माहां ।।

विरह दैत कुरंग होए, चरै सकल सुख वारि ।
आइ दिवस एक राम होइ, कस न जाहु पिय मारि ।।[२५७]

प्रस्तुत उद्धरण में कवि ने बड़ी ही कुशलता से नायक सुजान की वीरता, उसके पूर्व-पुरुषों की शक्ति आदि का वर्णन कर उसे पुकारा है । जिस प्रकार सीता रावण की अशोक वाटिका में राक्षसियों के बीच अकेली थी वैसे ही आज वह भी विरह और शीत के बीच में व्याकुल है । जिस प्रकार राम ने कपट कुरंग का वध किया था ऐसे ही आज तुम विरह दैत्य का वध करो । इस प्रकार अपने प्रिय के पौरुष को एक ओर याद करती हुई चित्रावली उसे उसके कर्तव्य का ध्यान दिलाती है और दूसरी ओर स्त्री सुलभ स्वाभाविकता से वह विरह से पीड़ित होकर बार बार उसे पुकारती है । सच है उसका और कौन है । वह और किसे पुका[रे] प्रिय के सिवाय उसकी रक्षा और कौन कर सकता है ।

चित्रावली प्रेम के आवेश में स्वयं योगिनी बनने [illegible] उसे राज- ऐश्वर्य नहीं चाहिए । जब प्रिय ही नहीं तो [illegible] सुख- सामग्री किस काम की । वह कहती है," हे मेरे यो[illegible] योगी हो, तो मैं योगिनी हूं । तुम आकर मुझे कांथर[illegible] वह प्रिय कांथरी ही मेरे विरह को दूर करने वाली है

इस प्रकार इस बारह मासा में कवि ने नायिका के की तीव्र विरह पीड़ा और मिलन- आकांक्षा का बड़ा ही हृदय-ग्राही वर्णन किया है । भारतीय नारी किस प्रकार अपने पति पर पूर्णरूप से आश्रित रहती है । इसका मधुर उल्लेख है । समस्त सांसारिक सुख योग से भी अधिक सुखद प्रिय की निकटता है । उसके बिना राज- पाट, धन- धान्य, यश - ऐश्वर्य, भोग-विलास सभी दुखद हैं । उसके साथ दरिद्रता का जीवन भी सर्व सुखों - को प्रदान करने वाला है । संयोगिनी के इस सुख का वर्णन अन्यत्र कहाँ उपलब्ध होगा । इसी सुख का वर्णन रहीम ने भी अपने प्रसिद्ध बरवै में किया है ।

टूट ठाट घर टपकत खटियौ टूट ।

पिय कै बाँह उसिसवाँ सुख के लूट ।।

इसीलिए चित्रावली भी अपने जोगी प्रिय की कांथरी की ही आकांक्षा रखती है । संपूर्ण रूप में यह बारह मासा भी अत्यन्त उत्कृष्ट है ।

मधुमालती का विरह कम हृदय- विदारक नहीं है । फाल्गुन में वह देखती है कि उसी की तरह सारी प्रकृति भी विरह से दग्ध है । तरुवरों में पत्ते नहीं हैं । सारी फुलवारी झाड़- झखाड हो गई है । उसी के समान सभी वृक्ष अकेले हैं, सभी पक्षी गण वैरागी हो गए हैं । ~~उसी के सब०~~ ढाक के सिर पर तो आग लगी है । संसार में ऐसा कोई वृक्ष नहीं है जिससे लग कर वह न रोई हो ।[२५९]

प्रकृति से अपना इतना अधिक तादात्म्य अन्यत्र संभव है ।

मधुमालती की पीड़ा तो और भी कठोर थी ; रूप में उसे कौन पहचानता । उसकी पिय- पिय की पु- को कौन समझता । एक तो वियोग, दूसरा बनवास, दम अकेली और उसके पास अपना मानवीय रूप भी तो

---

२५९- मधुमालती १२२

इस प्रकार चारों ओर से वह भारी हुई है । फिर मृत्यु तक भी हाथ नहीं आती है । हृदय का चीत्कार इसमें कितना अधिक मुखर हो उठा है:-

> एक वियोग दुसरे बनवासा, तिसरे कोइ न साथ ।
> चौथे रूप बिहूनी, मरौं तो मिृतु न हाथ ।।[२६०]

इस प्रकार सूफी कवियों ने अत्यन्त भावुक पद्धति अपना कर नायिकाओं का विरह वर्णन किया है जिसमें प्रकृति का उद्दीपनकारी रूप अत्यन्त स्पष्ट और प्रभावशाली है ।

इसके प्रकृति के सौंदर्य, वन, उपवन, चन्द्र, समीर कोपल आदि सभी विविध रूपों में उद्दीपन करने वाले हैं और उनका वर्णन भी कवियों ने किया है और जिस पर कुछ अधिक लिखना उचित नहीं होगा ।

अन्य उद्दीपन - प्रकृति गत उद्दीपनों के अतिरिक्त अन्य उद्दीपन में वे सभी वस्तुएं आती हैं जो कि किसी न किसी प्रकार संयोग में आनन्दवर्द्धक और वियोग में दुख को तीव्रतर करने वाली होती है । एक ही वस्तु संभोग और वियोग शृंगार में उद्दीपन कर सकती है संभोग शृंगार में जो - जो वस्तुएं सुखद और ग्राह्य होती हैं वे ही वस्तुएं विप्रलंभ में विरह को और अधिक उद्दीप्त करने वाली होती है । ऐसी वस्तुओं में प्रिय की वस्तु, शैय्या-शृंगार, वस्त्र, शृंगार[२६१] प्रसाधन, संगीत, नृत्य, त्यौहार विशेष कर फाग आदि है[२६२] इनके अतिरिक्त प्रिय के कष्ट में पड़ने का समाचार जैसे रत्नसेन का बंदी होना, प्रिय की वार्ता आदि भी उद्दीपन कारी हैं ।

इस प्रकार समस्त सूफी-साहित्य में उद्दीपनों की विस्तृतललित और अनेक प्रकार की योजना है ।

---

२६०- मधुमालती पृ० १२३

२६१- पद्मावती १००,३३५,३४६,चित्रा २४०,२४१,२४२
मधु पृ० ९९,१२१ ।

२६२- वही ३३९,३४५,३४८,३५२, चित्रा २४९,४५४,४५५

२६ रामाश्रयी शाखा

रामाश्रयी शाखा में प्राप्त श्रृंगार के अनुपात में ही उद्दीपन की मात्रा भी है।यह प्रकृति और अन्यान्य दोनों प्रकार का है ।

प्रकृति गत उद्दीपन

राम-काव्य की संपूर्ण श्रृंगार योजना प्रकृति की पृष्ठ भूमि में है अत: इसमें सर्वत्र प्रकृति अनायास ही आ जाती है । राम और सीता का प्रथम दर्शन पुष्प-वाटिका में ही हुआ । उसके बाद राज्याभिषेक के पूर्व का जीवन अधिकतर वन में ही बीता । उसकी सुंदरता, शोभा, वहां के पक्षी और पशु, सरित और झरने सभी समय समय पर उद्दीप्त कारी होते रहे । मंदाकिनी के तीर पर स्फटिक शिला, तरु-लता - गुल्मादि का समूह पशु-पक्षियों का क्रीड़न और कलरव, झरनों का निर्झरण आदि संपूर्ण प्रकृति उद्दीपन कारी है । ऐसे अवसर पर राम ने अपने हाथों से नवीन पल्लवों की शय्या रची क्योंकि प्रिया-प्रीतम को परस्पर प्रेम-रस पान की प्यास है । राम सीता जी के अंग-प्रत्यंगों पर रचना करते और फूलों के आभूषण बनाते हैं । इस प्रकार इस वर्णन में प्रकृति का अति मनोहर उद्दीपन कारी

---

रूप उपलब्ध है ।[२६३] प्रकृति के संयोग की स्थिति में ऐसे उद्दीपन कारी रूप अत्यल्प हैं ।[२६४]

---

२६३ फटकि सिला मृदु बिसाल, संकुल सुरतरु-तमाल
ललित लता-जाल हरति छबि बितान की ।
मंदाकिनि-तटनि-तीर, मंजुल मृग-बिहग-भीर,
धीर मुनिगिरा गभीर सामगान की ।।
मधुकर-पिक-बरह मुखर, सुंदर गिरि निरफर फर,
जल-कन घन-छांह, छन प्रभा न भान की ।
सब ऋतु ऋतुपति प्रभाउ, संतत बहै त्रिबिध बाउ,
जनु बिहार-बाटिका नृप पंचवान की ।
बिरचित तहं परनसाल, अति विचित्र लषन लाल,
निवसत जहं नित कृपालु राम-जानकी ।
निजकर राजीव नयन पल्लव-दल-रचित सयन,
प्यास परसपर पियूस प्रेम-पान की ।
सिय अंग लिखैं धातुराग, सुमननि भूषन- विभाग,
तिलक-करनि का कहौं कलानिधान की ।
माधुरी- बिलास-हास, गावत जस तुलसीदास,
बसति हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की ।।- गीतावली-
अयोध्या ४४

२६४ वही ४७-४८

वियोग में प्रकृति का उद्दीपन कारी रूप और भी तीव्र हो जाता है। विरही राम और विरहिणी सीता दोनों को प्रकृति दुखदायी है। राम प्रकृति से सीता का अता-पता पूछते हैं।[२६५] उन्हें सीता के अंग-प्रत्यंग रूप की प्रकृति उनके दुख में प्रसन्न हो कर उनकी पीड़ा को बढ़ाने वाली लगती है।[२६६] प्रकृति में मृग-मृगी का निरशंक विचरण उन्हें अपने पर परिहास करता प्रतीत होता है।[२६७] इसी प्रकार सीता नक्षत्रों से, अशोक से अपने दुख को पूरा करने को कहती है। उन्हें नूतन किशलय अनल के समान दुखदायी लगते हैं।[२६८] इस प्रकार इस काव्य में जितना भी श्रृंगार है उसमें उद्दीपन रूप में प्रकृति का महत्वपूर्ण योग है।

राम -साहित्य में प्रकृति का वर्णन बारहमासा या षट्ऋतु-वर्णन रूप में नहीं हुआ है।

<u>अन्य उद्दीपन</u>

इस साहित्य में श्रृंगार के अन्य उद्दीपनों की संख्या भी उपर्युक्त उद्दीपनों से कम नहीं हैं। ये अत्यंत विविध हैं। इसके अंतर्गत निम्नलिखित रूप आते हैं :-

(क) प्रिय का सौंदर्य, आभूषण एवं उसका रब आदि।[२६९] इनका वर्णन हम नायक-नायिका-स्वरूप में कर आए हैं।

(ख) <u>प्रिय का प्रतिबिंब</u> -

जानकी जी कंकण के नग में प्रिय की परिछाईं देख कर जड़वत हो गईं थीं।[२७०]

(ग) <u>प्रिय का कष्ट</u> -

प्रिय के कष्ट को देख कर हृदय में प्रेम और भी अधिक -

---

२६५ मानस-अरण्य ३०।५,गीता अरण्य ११,रामचंद्रिका १२।३८

२६६ वही तथा ३८।१-६,गीता - अरण्य १०

२६७ वही ३७।२-४

२६८ मानस -सुन्दर १२।४-६

२६९ ,, मानस - बाल २३०।१

२७० [illegible]

आता है । वन के मार्ग में सीता के ऐसे कष्ट को ही देख कर राम के नेत्रों में आंसू आ गए थे।[२७१] यह कष्ट भी श्रृंगार का उद्दीपक है ।

(घ) प्रिय का संकेत -

जन्मजन्मान्तर की सुप्त प्रीति को जगाने वाला संकेत भी उद्दीपनकारी होता है । नारद के गूढ़ वचनों ने पार्वती के हृदय में ऐसे ही प्रेम उत्पन्न किया था । २७२

(ङ०) प्रिय के प्रेम-पथ से विरत करने का प्रयत्न -

सच्चे प्रेम की स्थिति में यदि प्रिय के अवगुणादि का कथन कर किसी को उसके प्रेम-पंथ से विरत करने का प्रयत्न किया जाता है तो यह प्रयत्न और भी अधिक प्रेम को दृढ़ करने वाला होता है । इस रूप में इसकी गणना उद्दीपन में होगी । सप्तर्षियों ने पार्वती जी को उनके पथ से इसी प्रकार शंकरजी के अवगुणों को कहकर विरत करना चाहा था ।२७३

(च) प्रिय-प्रेम का श्रवण -

प्रिय के प्रेम की दृढ़ता हृदय में और भी अधिक प्रेम को उद्दीप्त करने वाली होती है । पार्वती की इस दृढ़ता का श्रवण कर शंकर जी स्नेह से मग्न हो गए । २७४

(छ) प्रिय के वस्त्राभूषण आदि चिह्न -

यहां पर इनका प्रयोग आभूषणों से युक्त नायक के रूप के समय की स्थिति के अर्थ में नहीं हुआ है । उस अर्थ में तो ये उद्दीपन होते ही हैं जिनकी चर्चा हम पीछे कर आए हैं । यहां इनका प्रयोग की स्थिति में प्रिय की स्

---

२७१ कवितावली अ० ११

२७२ मानस -बा० ६८।४

२७३ वही बा० ७९-८०

२७४ वही बा० ८२।१

दिलाने वाले चिह्नादि के अर्थ में हुआ है । राम काव्य में इस रूप में इनका प्रचुर प्रयोग हुआ है । सुग्रीव के यहाँ सीता के वस्त्राभूषण अवलोक कर राम प्रेम विह्वल हो उठते हैं । २७५ अशोक वाटिका में राम की मुद्रिका भी सीता के प्रेम को अत्यधिक उद्दीप्त करने वाली है । २७६ उनकी चूड़ामणि ने भी ऐसे ही राम के प्रेम को उद्दीप्त किया था । २७७

मानसादि ग्रंथों में इस रूप में इनका यथेष्ट सुंदर वर्णन है । इस प्रकार रामाश्रयी शाखा में उद्दीपनों का यथा स्थान प्रयोग किया गया है ।

२७ कृष्णाश्रयी शाखा

प्रकृतिगत उद्दीपन

कृष्ण-काव्य में तटस्थ उद्दीपनों की विस्तृत योजना है । इनमें भी प्रकृतिगत उद्दीपन का विशेष विस्तार है । यथार्थ में समस्त कृष्ण लीला की योजना ही प्रकृति की पृष्ठभूमि पर ही हुई है । कृष्ण लीला के चार तत्वों में एक नित्य विहार स्थली वृंदावन है । उसमें प्रवाहित होती यमुना और उसका तट, वृन्दावन के तमाल और करील के कुंज वहाँ के वन- पर्वत, चंद-चंद्रिमा, ऋतुएं आदि सभी कृष्ण के विहार और वियोग में ऐसे पगे हैं कि उन्हें कृष्ण की लीला से विलग नहीं किया जा सकता है । वे कृष्ण की क्रीड़ा-स्थली हैं और संयोग की स्थिति में रस-विलास को उद्दीप्त करने वाले अतिसुखकर प्रसाधन हैं तो वियोग में असह्य तथा दुखदायक हैं । कृष्ण काव्य में प्रकृति के उद्दीपन रूप का यथेष्ट अध्ययन हो चुका है, अतएव उसकी पुनरावृत्ति न करते हुए प्रकृति के इस उद्दीपन रूप का संक्षिप्त अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है ।

---

२७५ गीता-किष्किंधा १, मानस- किष्किंधा ५।३, रा०

२७६ ,, सुंदर ३,४ मानस-सुंदर १३।१-२ रामचंद्रिका १३।७८-८७

षट्ऋतु और बारहमासा

कृष्ण काव्य में संश्लिष्ट रूप में षट्ऋतु और बारह मासे का अभाव न होते हुए भी इनका स्वल्प वर्णन है । षट्ऋतु का वर्णन संयोग श्रृंगार में ध्रुवदास ने तथा विप्रलंभ में नन्ददास ने किया है । विद्यापति ने भी विप्रलंभ में षट्ऋतु का संक्षिप्त रूप प्राप्त है ।

संभोग की स्थिति में सभी ऋतुएं क्रम से एक-एक कर आती हैं । उनके आने से प्रकृति की सुंदर शोभा नायक-नायिका के हृदय में और भी अधिक उमंग बढ़ाती है । प्रत्येक ऋतु के अनुकूल सखियां राधा-कृष्ण की केलि की सज्जा करती हैं । इस प्रकार दंपति को सभी ऋतुएं सुखदायक तथा रति को उद्दीप्त करने वाली होती हैं । वसंत ऋतु में ऐसा प्रतीत होता है मानों नव युगल के सुख के लिए वृंदावन ने श्रृंगार किया हो । फूली हुई लताएं तरुओं से लिपटी ऐसी प्रतीत होती हैं मानों स्त्री ने प्रिय से रति मानी हो । शुक और पिक की वाणी काम-कहानी सी सुखद प्रतीत होती है । बड़ा वृक्ष ऐसा प्रतीत होता है मानो वितान तना हो । वसंत के इस उद्दीपन कारी रूप में दोनों प्रिय-प्रिया सुरत हिंडोरे पर फूलते रहते हैं । बंसत भी दोनों की रुचि के अनुसार अनन्त प्रकार से फूलों से फूलता है ।२७८

इसी प्रकार ग्रीष्म की ऋतु जान कर सखियों ने कपूर की कुंज बनाई । शरीर को शीतल करने वाले, सभी प्रसाधन प्रस्तुत किए गए । भीने वस्त्रों में दोनों के शरीर की झलक एकदूसरे को मुग्ध करने वाली है । गुलाब, चंदन, कपूर, हार-माला सभी में शीतलता व्याप्त है और रस विहार में आनन्द प्रवाहित होता है । ऋतुओं में पावस सबसे सुखद है । चारों दिशाओं से उमड़ घुमड़ कर घटाओं का आना, बिजली की चमक से प्यारी का प्रिय के हृदय से लिपट जाना, रिमझिम बूंदों से हिंडोला आदि सभी आनन्द को उद्दीप्त करने वाले हैं । वर्षा के ...

---

---- ध्रुवदास -रसहीरावली लीला-बयालीस लीला पृ १६२-१६३

ही कुंवरि का रूप प्रतिदिन बरसता रहता है पर चातक की भांति प्रिय कभी नहीं अघाता । हिम और शिशिर की शीतलता में आलिंगन का सुख और भी अधिक तीव्र हो उठा है ।[२७६] यथार्थ में सभी ऋतुएं अत्यंत सुखद हैं -

> बरषा ग्रीषम नैन सुख, सरद बसंत बिलास ।
> लपटन कौ सुख हिम सिसिर, प्रेम सुखद सब मास ।। २८०

नंद दास ने रूप मंजरी में षट् ऋतु के माध्यम से विरह-वर्णन किया है । विरह में प्रकृति अति दुखदायी हो जाती है । बेचारी नायिका पावस ऋतु में बादलों को देख कर भयभीत हो जाती है । उनमें प्रिय की कुछ उनहारि है इस लिए बेचारी उन्हें देखने जाती है। बक पंक्ति उसे प्रिय के वक्षः की कामदल -माल सी लगती है और विद्युत की दमक में उसे प्रिय के पीताम्बर का रूप दिखलाई पड़ता है । किंतु ये बादल उमड़-घुमड़ कर इस प्रकार आते हैं मानों कामदेव के गज लड़ते हों । उनसे भयभीत होकर बाला नीचे भाग आती है ।[२८१] इस प्रकार इस वर्णन में प्रकृति के दो रूपों का कवि ने बड़ा ही सुंदर समन्वय किया है । एकओर जहां नायिका को प्रिय का स्वरूप प्रकृति में परिलक्षित होता है और उसके कारण उसे कुछ शांति मिलती है तो दूसरी ओर शीघ्र ही प्रकृति उसके इस क्षणिक सुख को भी नहीं रहने देती । विरहिणी नायिका को प्रकृति भयभीत कर देती है । पावस के दिन तो किसी तरह बीत भी जाते हैं पर रात्रि की भयानकता तो अकथनीय है । बादलों की गर्जना, पवन के झकोर, दादुर-झींगुर का रव, पट बीजनों का घटाओं से चिनगारी की भांति छूट-छूट कर गिरना और इन सब के ऊपर पपीहे की पिय-पिय की पुकार उसको मारे डालती है । बेचारी बिना अग्नि के जलने वाली, विरहिनी पपीहे से कहती है कि तनिक तो चुप रह ।

---

२७६ वही पृ १६३-१६७

२८० वही पृ १६७

२८१ रूपमंजरी- नंददास ग्रंथावली पृ १६

शरद ऋतु में भी प्रिय के न आने पर नायिका बेचारी की बुरी दशा है । द्वितीया का चंद्र उसे काम-कटारी लगता है । टूटते तारे अंगारे मालूम पड़ते हैं । पूर्णचंद्र कामदेव को परशु सा लगता है । नायिका पूछती है कि यह कैसा समय आ गया है कि सारी रात चन्द्रमा से अग्नि बरसती रहती है । विरहिणी नायिका अपने प्रिय की कुशलता का ध्यान रखकर कहती है कि सखी प्रिय ने अच्छा ही किया जो इन दिनों नहीं आए । स्त्री स्वभावानुसार नायिका शशि को कोसते हुए कहती है कि राहु इस दुष्ट को बार-बार ग्रस कर पुनः क्यों छोड़ देता है ? इस शरद ऋतु-वर्णन में नायिका के प्रिय- प्रेम तथा प्रकृति के उद्दीपन रूप की सुंदर व्यंजना है । इसी प्रकार एक के बाद एक हेमंत, शिशिर, वसंत और ग्रीष्म ऋतुएं आकर नायिका के विरह को उद्दीप्त करती हैं । प्रत्येक ऋतु और उस ऋतु में नायिका के विरह को शमित करने के साधन उसके दुख को और अधिक उद्दीप्त करने वाले हैं, यथा -

> चंदन चरचे अति परजरै, इंदु किरन घृत बुंद सी परै ।
> घनसारहि दिखि मुरझाति ऐसैं, मृगीवंत जल दरसै जैसैं ।
> हार के मुतिया उर झर माहीं, तचि-तचि तरक लवा है जाहीं ।
> दिखि दिख इंदुमती अरबरै, थोरे जल जिमि मछरी फिरै ।[२८२]

षट्ऋतु का एक संक्षिप्त रूप विद्यापति में मिलता है । इसमें अत्यंत संक्षेप में प्रत्येक ऋतु के दुखदायी स्वरूप का संकेत कर नायिका अपनी विरह वेदना व्यक्त करती है । विद्यापति का यह पद नीचे दिया जा रहा है -

---

२८२ वह- रत्नमंजरी - नंददास ग्रंथावली पृष्ठ २४

ऋतु पति नव पर वेश । तब तुहुं छोड़लि देश ।।
ताहे यत विविध विलाप ।कहइते हृदि माहा ताप ।।
तब घरि बाउरि भेल। गिरिस समय बहि गेल।।
वरिसा भेल चारि मास। ना छिल जिवन-अभिलाष ।।
ताहे यत पाओल दूख। कहइति बिछुरत्रे बूक ।।
शारदे निरमल चन्द । ताक जिवन लेइ दन्द ।
पुरबक रास- विलास। सँरिते ना रहये श्वास ।।
हीम शिशिर्रेहु शीत । दिने दिने उनमत चीत ।।
अब भेल बहुत निदान । नव कवि शेखर भान ।। विद्यापति

७२३

इस प्रकार से कृष्णाश्रयी शाखा में प्रेमाश्रयी शाखा ही के अनुरूप षट्ऋतु-वर्णन संयोग और वियोग दोनों के उद्दीपन रूप में हुआ है ।

बारह मासा

इस काव्य में बारह मासा का विरह वर्णन में प्रयोग विद्यापति और नंददास ने किया है । विद्यापति ने अपने एक लम्बे पद में नायिका को कष्ट देने वाले बारहों मास का वर्णन किया है[२८३]। प्रिय से लिग विरहिणी प्रत्येक मास में प्रिय आगमन की आशा लगाती है पर प्रियतम नहीं आता । वह प्रकृति के परिवर्तित होते हुए रूप को देखती , पशु- पक्षियों और अन्य स्त्रियों का सुख-विलास देखती हैं और अपनी करुण स्थिति देख कर रो पड़ती है । वसंत में भी प्रिय को न आया देख कर वह और दुखी होती है । इस समय भ्रमर घूम-घूम कर मधुपान करते हैं पर प्रिय नागर होकर भी अचतुर हो गया । उसे इस मास में तो आना ही चाहिए था , इस प्रकार से नायिका प्रकृति से उद्दीप्त बारहों मास के अपने दारुण दुख को व्यक्त करती हैं ।

नंददास का बारहमास विस्तृत है ।यथार्थ में संपूर्ण विरह मंजरी ही बारहमासे रूप में हैं । इसमें नंददास ने अधिक विस्तार से नायिका की पीड़ा और उसकी अभिलाषा का वर्णन किया है । यह बारह मासा चैत्र से प्रारंभ होता है । जो मदन संयोग में सुखद

था वह अब विरह में बैरी हो गया है-सुखद जु हुतौ तिहारै संग अब वह बैरी भयौ अनंग ।[२८४]

वैशाख में नायिका का मन गिरिधारी के साथ वन-विहार का होता है । इस समय वन कुसुम और मधुपों से भरे पड़े हैं । नायिका चाहती है कि पहले की ही भांति नायक आकर उसे गूंथ-गूंथ कर मालती-माल्य पहनावे तथा ललित लवंग लताओं की छांह में हंस-बोले और गलबाहीं डाल कर घूमें । इस समय प्रकृति नायिका को अकेली देख कर हंसती है ।[२८५] प्रिय के ध्यान में वही परिरंभन चुंबन नायिका को ध्यान आ जाते हैं । पर शीघ्र ही भीषण दुख की उसकी दशा हो जाती है । उसकी यह दशा लुहार की सड़सी सी है जो एक क्षण तो पानी में रहती है पर दूसरे क्षण अग्नि में डाल दी जाती है ।

इहि विधि बलि बसाख यह, बीत्यौ सुख-दुख लागि ।
सड़सी भई लुहार की, छिन पानी छिन आगि ।।[२८६]

नायिका की विरहावस्था में स्मृति जन्य क्षणिक सुख और तत्क्षण वियोग जन्य महादुख की व्यंजना करने की इससे सुंदर अभिव्यक्ति मिलनी कठिन है ।

विरह में प्रिय की एक-एक छबि आंखों के आग नाचती रहती है और नायिका की अभिलाषा उस छबि के अवलोकन के लिए अति तीव्र हो जाती है । क्वांर में गोचारण से लौटते साय की प्रिय की छवि पुन: दिखाने की प्रार्थना नायिका करती है । वह कहती है कि उस छवि को देखे बिना नैत्र दुखी और महाविरह में जलते हैं । अपनी इस विरहाग्नि की तुलना पानी में लगी हुई आग से करती हुई वह कहती है और ठौर की आग तो पानी पाकर बुझ जाती है पर पानी में लगी कैसे ठंढी हो -

और ठौर की आगि पिय, पानी पाइ बुझाइ ।
पानी में की आगि बलि, काहे लागि सिराइ ।।[२८७]

---

२८४ विरह मंजरी-नंददास ग्रंथावली पृ ३०

२८५ द्रुम लपटी जु प्रफुल्लित बेली, जनु मुहिं हंसति सु देखि अकेली वही प ३१

सच है नेत्रों के आँसुओं में जो विरहाग्नि प्रज्वलित हुई है उसे कौन बुझा सकता है ? इसी प्रकार से प्रिय-मिलन की तीव्र अभिलाषा की अभिव्यक्ति कवि ने इस बारह मासे में स्थान-स्थान पर की है। नायिका अब प्रिय वियोग सह नहीं सकती यदि इस फागुन में भी प्रिय फाग खेलने नहीं आए तो नायिका या तो स्वयं उसके पास जाएगी अथवा उसके प्राण ही जाएंगे।

जो इहि फागुन पीउ, फागु न खेलो आइ ब्रज।
कै हौं, कै यह जीउ, कौउक तुम पैं आइहै।। २८६

ठ इस प्रकार इस बारह मासे में प्रकृति के उद्दीपनकारी रूप का वर्णन करते हुए कवि ने नायिका के विरह की विलक्षणता और उसकी आतुरता का सुंदर चित्रण किया है।

<u>ऋतुओं के स्फुट उल्लेख</u>

ऋतुओं के उद्दीपन कारी इन संश्लिष्ट वर्णनों के अतिरिक्त उनके स्फुट उल्लेख कृष्ण-काव्य में बड़ी मात्रा में मिलते हैं। इन स्फुट उल्लेखों में पावस शरद और वसंत ऋतुओं का ही उल्लेख है। संयोग की स्थिति में सबसे अधिक सुखदेय ऋतुएं अब विरह की स्थिति में प्राणों को ही लेने आती हैं। संयोग में यही वर्षा सभी की आस पूजने वाली है -

मानो माई कुंजन पावस आयो।
स्याम घटा देखत उनमद हो, मोरन सोर मचायो।।
दामिनि दमकति,चमकति कामिनि, प्रीतम उर लपटायो।
निसि अंधियारी, दिसि नहिं सूझति, काजु भयो मन-भायो।।
डोलत बग बोलत घन-धुनि सुनि, चातक बदन उठायो।
बरषत धुरक सीतल बूंदनि, तन-मन-ताप- बुझायो।।
कुसुमित-धरनि तरनि- तनया तट, चंद बदन सुख पायो।
व्यास आस सब ही की पूजी, सरिता सिंधु बढ़ायो।। - व्यास
६८१

---

२८६ ~~द्रुम लपटी जु प्रफुल्लित बेली~~, आदि पृ ३७

यही वर्षा ऋतु विरह में नायिका को अबला जान कर सदल-बल चढ़ आती है । इस समय सिवाय प्रिय के कौन रक्षा कर सकता है । इसीलिए विरहिणी प्रिय को इस अवसर पर रक्षार्थ बुलाती है -

ब्रज पर सजि पावस दल आयौ ।
धुरवा धुंध उठी दसहूं दिसि, गरज निसमन बजायौ ।।
चातक मोर, इतर पैदर गन, करत अवाजें कोयल ।
स्याम-घटा गज, असनि बाजि रथ, छिति बगपंति संचोयल ।।
दामिनि कर करवाल, बूंद सर, इहि विधि साजे सैन ।
निधरक भयौ चल्यौ ब्रज आवत, अग्र धौजपति मैन ।।
हम अबला जानियै तुमहिं बल, कहौ कौन विधि कीजै ।
सूर स्याम अबकैं इहिं अवसर, आनि राखि ब्रज लीजै ।। सूर ३९२२

इसी प्रकार से शरद ऋतु जिसमें रास की योजना हुई थी वियोग की स्थिति में अत्यंत दुखद हो जाती है । बसंत तो ऋतुपति ही है । संयोग में सबसे अधिक सुखद यह ऋतु वियोग में अपने समस्त साज-श्रृंगार के साथ विरहिणी नायिका के विरह को सहस्त्र गुना कर देती है । इन ऋतुओं के उदाहरण कृष्ण काव्य में सर्वत्र मिल जाएंगे अतः इनका उदाहरण देकर विस्तार करना अनावश्यक होगा ।

प्रकृति के अन्य रूप

ऋतुओं के साथ-साथ और स्वतंत्र भी प्रकृति के अन्य रूप भी उद्दीपन कारी हैं । इनमें सबसे प्रमुख वृंदावन है । वृंदा॰ के सौंदर्य पर अनेक भक्त कवियों ने लिखा है और उसके उद्दीपन रूप के अंतर्गत उसकी यमुना ताल-तमाल, निकुंज, कुसुम-शैय्या, त्रिगुण समीर सभी आते हैं । संयोग और वियोग दोनों में इसके उद्दीपनकारी रूप का वर्णन मिलता है । संभोग में उद्दीपन रूप का एक उदाहरण दिया जा रहा है -

मदन गोपाल बलैये लेहौं ।
वृन्दा विपिन तरनि तनय तट चलि ब्रजनाथ आलिंगन देहौं ।।

सघन निकुंज सुखद रति आलय नव कुसुमीन की सेज बिछैहौं ।
त्रिगुन समीर पंथ पग बिहरत मिलि तुम संग सुरति सुख पैहौं ।।
अपनी चौंप ते जब बोलहुगे तब गृह छाँड़ि अकेली ऐहौं ।
परमानन्द प्रभु चारु बदन कौं उचित उगार मुदित ह्वै लैहौं ।परमानन्द

३६०

प्रकृति के अन्य उद्दीपन कारी रूपों में मोर, वक, कोकिल, पपीहा आदि पक्षीगण, कुंज, पवन, सुगंधि, भ्रमर, चंद्र, पुष्प आदि है । इन उद्दीपनों का उपयोग अत्यधिक हुआ है । इनमें चंद्रमा का उद्दीपनकारी रूप अत्यंत प्रसिद्ध है । संयोगिनी का प्रिय और वियोगिनी का शत्रु, इसने न जाने कितनी प्रशंसा और भर्त्सना पाई है । सूरदास ने तो चंद्रोपालंभ पर अनेकानेक पद लिखे हैं जो कि सर्वज्ञात हैं । अतएव प्रकृति के इन उद्दीपनों के विस्तार की आवश्यकता नहीं है ।

अन्य उद्दीपन

इसके अंतर्गत श्रृंगार, वस्त्र, चंदन-चोवा, मृगमद, कुंकुम, अरगजा आदि प्रसाधन, प्रिय का समाचार, संदेश, रूप-गुण-श्रवण और कथन तथा मुरली है । इन उद्दीपनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण मुरली और संदेश हैं । कृष्ण की मुरली की गणना सर्वश्रेष्ठ उद्दीपनों की जाती है । यह कृष्ण की योग माया है । और इसका प्रभाव अकथनीय है । रास का माध्यम यही है । इसी के द्वारा कृष्ण ने गोपियों का आह्वान शरद-पूर्णिमा की रात्रि को किया था । कृष्ण की यह सदासंगिनी है और गोपियों के लिए तो इसका अपना एक व्यक्तित्व है । इस मुरली के प्रतिगोपियों की सौतिया डाह और उपालंभ इतने प्रसिद्ध हैं कि उनपर कुछ लिखना अनावश्यक होगा । महत्वपूर्ण उद्दीपन कृष्ण का संदेश है । यह संदेश उद्धव लाए थे । संदेश ने गोपियों के विरह को जितना उद्दीप्त किया उतना ... अन्य उद्दीपन ने नहीं । इसी उद्दीपन के फल स्वरूप कृष्ण का सरसतम प्रसंग "भ्रमरगीत" विकसित हुआ जिसका विस्तृ... हो चुका है । अतः इस पर भी कुछ लिखना अनावश्यक होगा ।

इस अध्ययन के आधार पर तटस्थ उद्दीपनों की दृष्टि से कृष्णाश्रयी शाखा अत्यंत संपन्न मानी जा सकती है ।

व्यक्त होते हैः-

(१) भक्ति काव्य में उद्दीपनों का विशेष प्रयोग हुआ है। मात्रा की दृष्टि से यह, प्रेमाश्रयी और रामाश्रयी शाखा में कृष्णाश्रयी शाखा से क्रमशः कम होता गया है। ज्ञानाश्रयी शाखा में इसका लगभग अभाव है।

(२) उद्दीपन में सबसे महत्वपूर्ण नायक-नायिका के रूप, गुण और आभूषण आदि है। नायक से अधिक नायिका का रूप वर्णन हुआ है। नायिका का रूप वर्णन नखशिख और स्वतंत्र दोनों रूप में प्राप्त है। रामाश्रयी शाखा में यह रूप-वर्णन कम है और ज्ञानाश्रयी शाखा में इसका अभाव है।

(३) प्रकृति के उद्दीपन रूप का भी इस साहित्य में बड़ी मात्रा में प्रयोग हुआ है। इसकी मुख्यतः तीन पद्धतियाँ है षट्ऋतु वर्णन, बारहमासा और सामान्य स्फुट वर्णन। षट्ऋतु का उपयोग संयोग और वियोग दोनों + स्थिति में हुआ है जबकि बारहमासा का केवल वियोग में हुआ है। ये दोनों पद्धतियाँ प्रेमाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखा में ही प्राप्त है। प्रेमाश्रयी शाखा में इनका सुंदरतम विकास हुआ है।

(४) प्रकृति का सामान्य उद्दीपन रूप कृष्णाश्रयी शाखा में सबसे अधिक और मोहक रूप में है।

(५) अन्य उद्दीपनों का भी उपयोग सभी साहित्यों में हुआ है। इनमें सबसे महत्वपूर्ण उद्दीपन कृष्णश्रयी शाखा में, "बंशी" और "प्रिय का संदेश" है। प्रेमाश्रयी शाखा में "पाती" और "संदेश" का महत्वपूर्ण स्थान रामाश्रयी शाखा में प्रिय की "सहदानि" सबसे महत्वपूर्ण है।

(६) उद्दीपन और उसमें भी प्रकृतिगत उद्दीपनों का संतुलित और रमणीय रूप प्रकट हुआ है। वे यह उद्दीपन सदा पृष्ठभूमि में ही रहे है, कहीं भी ये इतने महत्वपूर्ण नहीं हो गए है कि को दबा कर स्वयं साध्य बन गए हों।

(७) हिन्दी भक्ति काव्य में उपलब्ध उद्दीपन अत्यंत रमणीक, सरस और मोहक है।

---o---

## नवम् अध्याय

## हिन्दी भक्ति-काव्य में अनुभाव और व्यभिचारी भाव

(क) अनुभाव

(ख) व्यभिचारी भाव

# हिन्दी भक्ति-काव्य में अनुभाव और व्यभिचारी भाव

## (क) अनुभाव

### भूमिका:-

भक्ति कालीन श्रृंगार-साहित्य में अनुभावों की विस्तृत और भावपूर्ण योजना है। इसके अंतर्गत नायिकाके २८ यौवनालंकार, ८ सात्विक भाव और रत्यादि के प्रभाव से उत्पन्न नायक-नायिका की सभी चेष्टाएं आती है। इन सभी की परिगणना असंभव सी है अतएव भक्ति की प्रत्येक शाखा में उपलब्ध अनुभवों की विशेषताओं का उद्घाटन करने का ही प्रयत्न किया जा रहा है।

### १- ज्ञानाश्रयी शाखा-

इस शाखा में अनुभावों की विस्तृत योजना नहीं है नायिका के यौवनालंकारों में धैर्य, तपन, मद आदि कुछ ही अलंकार मिलते हैं। सात्विक अलंकारों में स्तंभ, अश्रु मिलते है। इसके अतिरिक्त नायिका का विरह-कथन, सौभाग्य-कथन आदि भी अनुभाव के अंतर्गत ही आएँगे। इनके उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं-

धैर्य-

मेरी अँखिया 'जाँन सुजाँन भई।
देवर भरम सुसर संग तजि करि, हरि पीव तहाँ गई।।
बालपनैं के करम हमारे, काहे जानि दई।
पानी की बूंद थैं जिनि प्यंड साज्या, ता संगि अधिक-करई।
दास कबीर पल प्रेम न घटई, दिन दिन प्रीति नई।।

-कबीर पद ३०४

तपन-

वै दिन कब आवैंगे माई
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाई।।
हौं जानूं जे हिल मिल खेलूं, तन मन प्रांन समाइ।
या कांमनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांम राई।।

माँहि उदासी माधौ चाहै, चितवत रैनि बिहाइ ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ।।
यहु अरदास दास की सुनिये , तन की तपन बुझाइ ।
कहै कबीर मिलै जे साईं, मिली करि मंगल गाई ।।वही ३०६

मद-

दुलहनीं गावहु मंगल चार ।
हम घरि आये हो राजा राँम भरतार ।।
तन रत करि मैं मन रत करिहूं, पंचतत बराती ।
राँम देव मोरै पाँहुनै आये, मैं जोबन मैं माती ।।वही १

स्तंभ-

हंसै न बोलै उनमनीं, चंचल मेल्हया मारि
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि ।। वही
साखी-१।९

अश्रु-

रात्यूं रुनी बिरहनीं, ज्यूं बंचौ कूं कुंज ।
कबीर अंतर प्रजल्या, प्रगट्या बिरहा पुंज ।।वही साखी
३।१

वैवर्ण्य-

पीलिक दौड़ी साइयां, लोक कहै पिंड रोग ।
छाँनै लंघण नित करै, राम पियारे जोग ।।वही साखी
२९।१०

विरह -निवेदन- अनिद्रा, अभिलाषा-

बल्हा आव हमारे ग्रेह रे, तुम्ह बिनदुखिया देह रे ।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अदेह रे ।।
एक मेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे ।
आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे ।।
ज्यूं काँमी कौं काँम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ।।
है कोई ऐसा परउपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे ।
ऐसे हाल कबीर भये है, बिन देखे जीव जाइ रे ।।
- कबीर पद ३०

३- प्रेमाश्रयी शाखा-

प्रेमाश्रयी काव्य में संभोग और विप्रलंभ दोनों श्रृंगार की विस्तृत अयोजना है । इस आयोजन में श्रृंगार के सभी अंगों के समान अनुभावों की भी चर्चा है । श्रृंगार के दोनों रूप, संभोग और विप्रलंभ में ये अनुभाव मिलते हैं पर इनका विशेष विस्तार नहीं है । एक प्रकार सेकहा जा सकता है कि अनुभावों की योजना कम है प्रेमाश्रयी शाखा- काव्य में श्रृंगार प्रधान होते हुए भी स्तंभ, प्रस्वेद, रोमांच, आदि का उल्लेख कम है । केवल अश्रुओं की ही बहुलता है । वैवर्ण्य आदि थोड़े से सात्विकों का कहीं-कहीं आभास मिल जाता है ।

प्रेमाश्रयी शाखा का सर्वाधिक ध्यान आकर्षित करने वाला अनुभाव " मूर्च्छा" है । संभोग और वियोग दोनोंमेंही इसकी विस्तृत चर्चा है । कभी- कभी तो यह मूर्च्छा ही संयोग में बाधक होती है । प्रिय का रूप वर्णन सुनते ही अथवा प्रत्यक्ष दर्शन करते ही यह मूर्च्छा आ जाती है, यथा-

रूप श्रवणजनित मूर्च्छा-

सुनतहि राजा गा मुरूछाई ।
जानहुं लहरि सुरूज कै आई ।।। पद्मावत ११९

तथा-

दुहु हथ गहि सीस उठावा, पूंछत बात बकुर नहिं आवा।
सांप डसा जनु विष छहराना, घूमत रहै सुनै नहिं काना
दिष्टी भुअंग बंद जनु कीन्हीं, ते पढ़ि, मंत्र खोलि-
जनु दीन्हीं ।।

तब जोगी कर नीर लै, मुख छिरकेसि करि हेत ।
पहर एक बीते भयौ, बहुरि कुंअर चित चेत ।।चित्रा०१६४

भए सुनत चित्रावलि बरना, कुंअर नैन पर्वत के झरना ।
गयौ चेत चित रह्यौ न गयाना, जनु एहि सागर बच्छ हेराना

।। चित्रा० २०१

दर्शन जनित मूर्च्छा-

जोगीं दिस्टि दिस्टि सौ लीन्हा, नैन रूप नैनन्ह जिउ-
दीन्हा ।
जो मधु चढ़त परा तेहि पालें, सुधि न रही ओहि एक -
पियालें ।
परा मांति गोरख का चेला । जिउ तन छाँड़ि सरग कहँ -
खेला ।।

- पद्मावत १९४

दरपन माँह कुँअर देखि छाया । गयौ मुरछि सुधि रही न काया ।

- चित्रावली २७७

परा जोगि खसि पुहुमी माँही , चेत न आपु सम्हारै काहीं ।।

- चित्रावली २८०

जौ जौ देखु रूप सिंगारा, खन मुरछै खन जा बिकरारा ।।

- मधु० पृष्ठ २६

पाछू होत ताराचंद राऊ, धरत पौरि भीतर दौउ पाऊ ।
गै दिस्टि पेमा पर परी, पौधत आहि पेम बर खरी ।
झूलत उर आंचर बिहराने, देखत कुँअर चित चेत हेराने ।
परत दिस्टि जिउ लै गौ हरी, बिनु जिउ कया पुहमि खसि परी ।
सैन जो अहै उठत उर ऊभे, बरबस नैन कुँअर के चूमे ।
जीवै परबस भा धरती, परा अहै बिसंभार ।
जस कोइ सांप डंस बिसंभर, बकति न सकै पुकार ।।

-मधु० पृष्ठ १४०

इस मूर्च्छा की परिगणना सात्विक अनुभाव प्रलय के अंतर्गत की जा सकती है । अन्य अनुभावों में से कुछ के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं --

अश्रु-

सँवरि रकत नैनन्ह भरि चुवा । रोइ हँकारा मांझी सुवा ।
परे सो आंसु रकत के टूटी । अबहुँ सो राती बीर-बहूटी ।।

-पद्मावत २२३

तथा-

रोइ गँवाएउ बारह मासा । सहस सहस दुख एक ए

तथा-

भा बैसाख आंसु चख दूना, भा तन जान पान कर चूना ।।

-चित्रा० ४४४

तथा-

येह सुनि रुधिर भै नैना, रोइ रोइ कहै कुंअर सौं बैना ।।

- मधु० पृ० ११०

वैवर्ण्य-

चंप सुदरसन भा तोहि सोई । सोन जरद जसि केसरि होई ।

- पद्म ३२६

प्रस्वेद-

होइगा अंग भंग नव साता । अति परसेद सिथल भइ गाता ।

- चित्रा० ५९७

कंप-

खिनहिं कैफ कै बानन्हि मारा । कंपि कंपि नारि मरै -
बिकरारा ।

-पद्म २४९

मन मथ दाब जांघ पुनि कांपी ।। चित्रा० ५९७

रुदन-

आवत जगत बालक जस रोवा ।उठा रोइ हा ग्यान सो -
खोवा ।।

-पद्म १२१

रोइ गंवाएउ बारह मासा । सहस सहस्र दुख एक एक सांसा ।

-पद्म ३५७

कृशता-

तन तिनुवर भा झूरों खरी । मैं बिरहा आगरि सिरपरी।।

- पद्म ३५६

संभोग में अनेकसात्विकों का वर्णन एक स्थल पर चित्रावली में सुंदर रुप में है -

सेद, थंभ, रोमांच, तन, आसु पतन सुरभंग ।
प्रथम समागम जो कियो, सितल भा सब अंग ।।चित्रा० ५३६

प्रेमाश्रयी शाखा में नायिका के अलंकारों का अधिक [illegible]
है । हाव, भाव आदि के संकेत तो यत्र-तत्र मिल सकते हैं किंतु

उनका विकास नहीं दिखलाया गया है । नायिका के ऐसे कुछ अलंकारों के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं ।

भाव-

भइ औनंत पदुमावति वारी । धज धौरें सब करी संवारी ।
जग बेधा तेइ अंग सुबासा । भंवर आइ लुबुधे चहुं पासा ।
बेनी नाग मलैगिरि पीठी । ससि माँथे होइ दुइजि बईठी ।
भौहें धनुक साँधि सर फेरी । नैन कुरंगिनि भूलि जनु हेरी ।
नासिक करि कँवल मुख सोहा । पदुमिनि रूप देखि जग मोहा
मानिक अधर दसन जनु हीरा । हिअ हुलसै कुच कनक जंभीरा।
केहरि लंक गवन गज हरे । सुर नर देखि माथ भुईं धरे ।
जग कोइ दिस्टि न आवै आछहिं नैन अकास ।
जोगी जती सन्यासी तप साधहिं तेहि आस ।। पद॰५५

प्रगल्भता-

गहु न हाथ रे बाबर जोगी, तासों लागु होइ तोरे जोगी ।
जाके छांह छुए नहिं पावसि, एकहिं बार हाथ किमि लावसि।
- चित्रावली ५२३

किलकिंचित

साते पिअत रूप चख दोऊ, रवि ससि मिलि एक भौ दोऊ।
मुख मुख सैन सौंह ना करई, प्रथम समागम डर थहहरई ।
कुंअर अधर अधरन्ह सौं जोरे, कुंअरि बिमुख, भै भै मुख मोरे
दीप भरम मुख कूकै बाला । अधिकौ करै रतन उजीआला ।।
दुओ कर लै लाजन्ह मुख झांपै, अधर दसन के खंडित कांपै ।
एक वोय परम पिआरी, औ भौ प्रीथि सभंग ।
निसरे लाज व्यापेउ, पलकन्ह दुहु रति रंग ।।मधु॰ १३३

४- रामाश्रयी शाखा-

रामाश्रयी शाखा में श्रृंगार के मर्यादित और सीमित होने के कारण अनुभावों के प्रकाशन का भी अवसर कम ही है ।

जो थोड़े- बहुत अवसर आए हैं उन पर राम भक्त कवियों ने अनुभावों द्वारा रसाभिव्यक्ति मनोरंजक ढंग से की है ।

संभोग के स्थलों पर स्तंभ, पुलक, अश्रु, चंचलता, आदि अनुभाव उलपलब्ध है । ये वाटिका-प्रसंग, वन मार्ग और वन-प्रसंग तथा राज्याभिषेक उपरांत मिलन के प्रसंगों में प्राप्त हैं । इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जाते हैं । अनेक सात्विकों की अभिव्यक्ति करने वाले पुष्प-वाटिका के निम्नांकित अंश है -

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता । कँह गए नृप किसोर मनु चिंता ।।
जँह बिलोक मृग सावक नैनी । जनु तंह वरिस कमल सित श्रेनी ।।
लता ओट तब सखिन्ह लखाए । स्यामल गौर किसोर सुहाए ।।
देखि रूप लोचन ललचाने । हरसे जनु निज निधि पहिचाने ।।
थके नयन रघुपतिछबि देखें । पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ।।
अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।।
- मानस, बा० २३११।१-३

विवाह के समय राम के रूप को अपने कंकण में देख कर सीता को स्तंभ सात्विक हुआ । इसकी ये पंक्तियां हैं -

निज पानि मनि महुँ देखि अति मूरति सुरूप निधान की ।
चालति न भुजवल्ली विलोकनि विरह भय बस जानकी ।।
- मानस, बा० ३२७।छं०१

तथा-

राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछांही ।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं ।।
- कवितावली - बा० १७

इसी प्रकार अश्रु, रोमांच और प्रलय की अभिव्यक्ति उस समय होती है जब सीता जी गौरी की पूजा करती है । यथा -

पूजि पारवती भले भाय पांय परिकै ।
सजल सुलोचन, सिथिल तनु पुलकित,
आवै न वचन, मन रह्यो प्रेम भरिकै-।।-गीतावली, बाल०७९

कटाक्ष, लज्जा के वशीभूत होकर कनखियों से प्रिय की ओर देखना भी अनुभावों के अंतर्गत है । संभोग में इसका वर्णन मिलता है -

जैसे ललित लखन लाल लौने ।
तैसिये ललित उरमिला, परसपर लखत सुलोचन कौने ।।
- गीतावली, बाल० १०७

बहुरि बदनु बिधु अंचल ढांकी । पिय तन चितइ भौंह करि-
बांकी ।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सिय
सयननि ।।
- मानस, अयोध्या० ११७

तिरछे करि नैन, दै सैन, तिन्हैं समुझाई कछू, मुसुकाइ चली ।।
- कवितावली, अयोध्या २२

कष्ट मय स्थिति में प्रिय के प्रेम को देखकर आनन्द के अश्रु और रोमांच का होना स्वाभाविक है । वन मार्ग में सीता के पैरों से राम कांटे निकालते हैं । प्रिय के इस प्रेम को देखकर जानकी को रोमांच होजाता है और नेत्रों में आनन्दाश्रु भर जाते हैं -

तुलसी रघुवीर प्रियाश्रम जानि कै
बैठि बिलंब लौं कंटक काढ़े ।
जानकी नाहको नेहु लख्यो,
पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े ।। कवितावली -
अयोध्या - १२

वियोगावस्था में रुदन, प्रलाप, उन्माद, स्तंभ, अश्रु आदि अनेक अनुभाव है । इसके अंतर्गत प्रिय का कुशल समाचार पूछना, यह जानने का प्रयत्न करना कि प्रिय को मेरी स्मृति है या नहीं, संदेश कथन आदि आते हैं । जानकी- हनुमान से हुए वार्तालाप तथा संदेश कथन में उपर्युक्त प्रकार के अनुभाव व्यक्त हुए हैं । रुदन प्रलाप, अश्रु आदि के पीछे तथा आगे ऐसे अनेक उदाहरण आए है तथा आएंगे कि उनका पुनः देना आवश्यक है । प्रिय की वस्तु के

दर्शन होने पर अनेक अनुभावों को अभिव्यक्त करने वाला एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है -

भूषन -बसन विलोकत सिय के ।
प्रेम-बिबस मन, कंप, पुलक तनु, नीरज नयन नीर भरे पियेके ।
- गीतावली, किष्कि० १

नायिका के अलंकार रूप में इस काव्य में अनुभावों की विस्तृत योजना नहीं है । नायिका के अलंकारों में से कुछ ही का विकास इस काव्य में हुआ है । नायिका के इन अलंकारों में भाव और हाव, हेला ही है और वे भी अल्प मात्रा में

भाव-

मज्जन करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरि निकेता।
पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग बरु मांगा।
-मानस- बाल २२८

हाव-

पुनि पुनि रामहि चितव सिय सकुचति मन सकुचै न ।
हरत मनोहर मीन छबि प्रेम पिआसे नैन ।।-मानस-बाल० ३७६

हेला-

चितवति चकित चहूं दिसि सीता, कंह गए नृप किसोर मनु-
चिंता ।।

थके नयन रघुपति छबि देखें । पलकन्हिहूं परिहरीं निमेषें ।।
अधिक सनेह देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।
लोचन मग रामहि उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ।।
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी । कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ।
- मानस . बाल २३२

शोभा-

जानकी की शोभा का बहुत वर्णन है । यह शोभा -

है । उसके सम्मुख सभी उपमाएँ हेय है -

देखि सीय शोभा सुख पावा । हृदयँ सराहत बचनु न आवा ।
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई । बिरचि बिस्व कँह प्रगटि-
देखाई ।।
सुंदरता कहुँ सुंदर करई । छबि गृहँ दीपसिखा जनु बरई ।।
सब उपमा कवि रहे जुठारी । केहिं पटतरौं बिदेह कुमारी ।।
-मानस, बाल० २३०

माधुर्य-

उभय बीच सिय सोहति कैसें । ब्रह्म जीव बिच माया जैसें ।
बहुरि कहउँ छबि जसि मन बसई । जनु मधु मदन मध्यरति-लसई।
उपमा बहुरि कहउँ जियँ जोही।जनुबुध बिधु बिच रोहिनि-
सोही।।
-मानस-अयोध्या-१२३

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक अलंकार भी नायिका सीता में उपलब्ध हैं । तुलसी का उद्देश्य उन अलंकारों को विस्तार देना नहीं था । जो स्वाभाविक रूप से आ सके है वे ही आए हैं ।

५- कृष्णाश्रयी शाखा-

इस शाखा के साहित्य का अधिकांश श्रृंगार से भरा है । इसके दोनों ही पक्ष संभोग और वियोग में अनुभावों का बड़े विस्तार के साथ प्रयोग हुआ । सभी परंपरागत सात्विक एवं अनेकानेक कायिक अनुभावों का इसमें भंडार है जिनकी परिगणना करना भी सरल नहीं हैं । सात्विक अनुभावों में स्तंभ, प्रस्वेद, कंप, वैवर्ण्य, स्वरभंग, अश्रु, रोमांच और प्रलय है । इनमें सबसे अधिक प्रयुक्त अश्रु और कंप अथवा वेपथु हैं । इनके अनेक उदाहरण इस प्रबंध में स्थान-स्थान पर उपलब्ध है अतएव उदाहरण स्वरूप ही कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है ।

वेपथु-

बेपथु जुत क्यों बनै विवेचित आनन्द बढ़यो न थोर ।
- हित चौरासी ।

देह दसा की सुधि नहिं काहू, नैन नैन मिलि अँटके । सूर २६१३

बाज तौ कहत कहि गई अब कठिन परी बिहारी ।
तनतौ नाहीं प्रान अस्तविस्त भये कहौं कहा प्यारी ।।
- हरिदास, केलिमाल ११

स्वेद

तुमहि जु चाहति कानति डौली
देखि गोपाल अवस्था मेरी श्रम जल भीजी चौली ।। परमानन्द ३५१

अति मलीन वृषभानु कुमारी ।
हरि श्रम-जल भींज्यौ उर-अँचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी
-सूर ४६९१

आज बन बिहरत जुगल-किसोर ।
सुरत रास नाचे सब रजनी, बिछुरत नाहिंन भोर ।
कामिनि कुटिल तमकि तन भूलति, रति बिपरीति हिलोर ।
कामी करत बयारि, सुमित प्यारी बसनाँचल-छोर ।।
- हरिव्यास ५७७

श्रम-जल-शिथिल सकल अँग अँगनि आवनि उचटि चुकी की ।
-महावाणी, सुरत सुख ८४

सहज गुरनि बिथुरनि अलकनि की । शोभा स्वेद बिंदु भलकन की
- वल्लभ रसिक पृ० ५६

दिन डफतार बजावत गावत भरत परस्पर छिनु छिनु सैरी
अति सुकुमार बदन श्रम बरषत, भलैमिलै रसिक किशोर किशोरी।
- हरिदास, केलिमाल १९

रोमांच

रोम रोम पुलकित चकित थकित नैन सुख मार ।
- वल्लभ रसिक ५६

हरष सौं फूल्यौ तन तरकी कंचुकी तनि चरवत चलत सौं सिंगार
हार सकल्यौ ।- माधुरी वाणी-दान माधुरी ३१

इततै राधा जाति जमुन-तट, उततै हरि आवत घर कौं ।
रोम पुलक, गदगद बानी कही, कहाँ जात चोरे मन कौं ।।
- सूर २५४८

विहरत दोउ ललना-लाल ।
ज१नि परस पुलकावलि बेपथ, कल कूजति नव गाल ।। १°

जघनि परस पुलकावलि बेपथु, कल कूजित नव बाल ।।

-हरी व्यास ५६८

चाहत उरजनि छुयौ जब, उठत नवल कर काँपि ।।

- ध्रुवदास, ब्यालीस लीला
पृ० २२५

सौभा सरस हिय मैं बसी ।
मृगज नैनी लाल सन्मुख चितै, छबि सौहसी ।
कंप अंग अंग जानि नागरि कुंज मंदिर धसी ।
अंक भरि पिय सेज ऊपर खोंभि कंचुकि कसी ।।-दामोदर
स्वामी

- निजी संग्रह पृ० १६

पठयौ मीत जु सीत हर तूँलहि लपटूयौ बास ।
तूँ लहि लपट्यौ उर कँपै काँपि रुकि है हास ।।

-वल्लभ रसिक पृ ४८

पौंछत पलकत पीक कपोलनि । डग मगात करे नैन सलौलनि ।

-माधुरी वाणी-केलि
माधुरी ३२

प्यारे के परस हौत उपज्यौ सरस रस स्वरभंग वै पथ प्रस्वेद
अंग ढरक्यौ ।।

-माधुरी वाली-दान माधुरी
३१

प्रलय-

श्री हरि प्रिया सुरत सकैर स धीरैं शरीर न चीर सम्हारि सकत
कहुँ अटक रहे हठ अटकि सहेलि ।

- महावाणी पृ० १४१

गौपाल लाल सौं नीकैं खेलि ।
विकल भई सँभार न तनकी सुन्दरि छूटे बार सकेलि ।।

- परमानन्द २३१

जब नंद लाल नैन भरि देखै ।
एक टक रही सँभार न तनक की मौहन मूरति पेखै ।।

- परमानन्द ४४५

परत श्रम-बूँद टप टपकि आनन-बाल, भई बेहाल रति-मौह भारी।

-सू २६५१

रीझै स्याम नागरी-छबि पर ।
प्यारी एक अंग पर अँटकी, यह गति भई परस्पर ।।

देह दसा की सुधि नहिं काहू, नैन नैन मिलि अँटके । सूर २६१३

बात तौ कहत कहि गई अब कठिन परी बिहारी ।
तनतौ नाहीं प्रान अस्तविस्त भये कहाँ कहा प्यारी ।।
- हरिदास, केलिमाल ११

स्वेद

तुमहि जु चाहति कानति डौली
देखि गौपाल अवस्था मेरी श्रम जल भीजी चौली ।। परमानन्द
३५१

अति मलीन वृषभानु कुमारी ।
हरि श्रम-जल भींज्यौ उर-अँचल, तिहिं लालच न धुवावति सारी
-सूर ४६९१

आज बन बिहरत जुगल-किसौर ।
सुरत रास नाचे सब रजनी, बिछुरत नाहिंन भौर ।
कामिनि कुटिल तमकि तन भूलति, रति बिपरीति हिलौर ।
कामी करत बयारि, सुमित प्यारी बसनांचल-छौर ।।
- हरिव्यास ५७७

श्रम-जल-शिथिल सकल अँग अँगनि आवनि उचटि चुकी की ।
-महावाणी, सुरत सुख ८४

सहज गुरनि बिथुरनि अलकनि की । शौभा स्वेद बिंदु झलकन व
- वल्लभ रसिक पृ० ५६

दिन डफतार बजावत गावत भरत परस्पर छिनु छिनु सैरी
अति सुकुमार बदन श्रम बरषत, भलैमिले रसिक किशौर किशौरी
- हरिदास, केलिमाल १९

रौमांच
-----

रौम रौम पुलकित चकित थकित नैन सुख मार ।
- वल्लभ रसिक ५६

हरष सौं फूल्यौ तन तरकी कंचुकी तनि चरवत चलत सौं सिंगार
हार सरक्यौ ।- माधुरी वाणी-दान माधुरी ३१

इततैं राधा जाति जमुन-तट, उततैं हरि आवत घर कौं ।
रौम पुलक, गदगद बानी कही, कहाँ जात चौरै मन कौं ।।
- सूर २५४८

विहरत दौउ ललना-लाल ।
जघनि परस पुलकावलि वैपथ, कल कूजति नव बाल ।। हरि व्यास

स्तंभ-

पुतरिन की सी पाँति रह गई इकटक ठाढ़ी ।

- नंददास, शुक्ल पृ० १६३

जब नन्दलाल नयन भरि देखे ।

एकटक रही सँभार न तनकी मोहन सूरति पेखे ।।-परमानन्द १४१

कहा करौं पग चलत न घर कौं ।

नैन विमुख-जन देखे जात न, लुबँधे अरून अधर कौं ।।- सूर-२८१६

प्यारी तेरौ वदन अमृत की पंक तामैं बीँधे नैन द्वै ।।

- हरिदास- केलिमाल ७

स्वर भंग-

तब बोली ब्रजबाल लाल मोहन अनुरागी ।

सुंदर गदगद गिरा गिरधरहिं मधुर लागीं ।।

- नंददास शुक्ल, १६३

हरि मोसौं गौन की कथा कही ।

मन गह्वर मोहि उतर न आयौ, हौं सुनि सोचि रही ।

- सूर ३५८६

राधे चलिरी हरिबोलत कोकिला अलापत,

सुरदेत पंछी राग बन्यौ ।

\+ \+ \+

श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी की,

अटपटी बान औरैं कहत कछू औरै भन्यौ ।।

- हरिदास-केलिमाल १४

अश्रु-

अनल तैं बिरह-अगिनि अतिताती ।

माधव चलन कहत मधुबन कौं, सुनि तपति अति छाती ।।

\+ \+ \+

ढारति नीर नयन भरि-भरि सब, व्याकुलता मदमाती ।।सूर ३५८१

उरध स्वास समीर सौं, सीतल है गई देह ।
तन मन डूबो जात है, इन नैनन के मेह ।।माधुरी वाणी-उत्कण्ठा-
माधुरी ४९

ग्वालिनी अनमनी सी ठाढ़ी ।
दारुन पीर बिरह की बाढ़ी मदन गोपाल अकेली छांड़ी ।।

+ + +

लोचन सजल प्रेम अति आतुर सूखे अधर वंद मुख गौ घटि ।
परमानंद बिरहिनी हरि की, पिउ पिउ करत अनाथ रही लटि ।।
- परमानंद २३८

वैवर्ण्य-

जब पिय कहृयो घर जाउ अधिक चिंता चित बाढ़ी ।
दुख सौं दबि छबि सींच ग्रीव नै चली नाल सी बूढ़ै ।।
- नंददास शुक्ल पृ० १६३

बिनु माधौ राधा तन सजनी, सब विपरीत भई ।
गई छपाइ छपाकर की छबि, रही कलंकमई ।। -सूर ४०२२

काहे ते आजु अटपटे से हरि ।
लटपटी पाग अटपटे से वन्द, अटपटी देति आगे सरि ।।
अटपटे पाय परत मैं परखे जब आवत है इत ढरि ।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा जानि, हौं पाये आजु लाल औरै-
परि ।।
- हरिदास- केलिमाल ३८

कृष्ण काव्य मे सात्विकों की ही भांति कायिक अनुभावों की भी भरमार है । पद-पद और पंक्ति-पंक्ति में ये अनुभाव देखे जा सकते है । इनका वर्गीकरण असंभव है । इन कायिक अनुभावों में हास और कटाक्ष सबसे अधिक महत्वपूर्ण है । इनके अतिरिक्त आलिंगन, चुंबन, अनुनय-विनय, रीझना-खीजना, हास-परिहास, नृत्यादि भी इसी के अंतर्गत हैं जिनका उल्लेख हम अन्यत्र कर आए है । अतः उनकी अनुरुक्ति से कोई लाभ नहीं । कतिपय कायिक अनुभावों के स्थाली-पुलाक-न्याय से कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे है :-

आज निकुंज कुमंजु मैं खेलत नवल किशोर नवीन किशोरी ।
अति अनुपम अनुराग परस्पर सुनि अभूत भूतल पर जोरी ।।
विद्रुम फटिक विविध निर्मित धर नव कर्पूर पराग न थोरी ।
कोमल किशलय शयन सुपेशल तापर श्याम निवेशित गोरी ।।
मिथुन हास परिहास परायन पीक कपोल कमल पर झोरी ।
गौर श्याम भुज कलह मनोहर नीवी-बंधन मोचत डोरी ।।
हरि उर मुकुर विलोकि अपनपौ विभ्रम विवल मान जुत भोरी ।
चिबुक सुचारु प्रलोइ प्रबोधित पिय प्रतिबिंब जनाय निहोरी ।।
नेति नेति वचनामृत सुनि सुनि ललितादिक देखत दुरि चोरी ।
जै श्री हित हरिवंस करत करधूनन प्रणय कोप मालावलि तोड़ी ।।

– हित चौरासी ७

हंसत खेलत बोलत मिलत देखौ मेरी आंखिन सुख ।
बीरी परसपर लेत खवावत ज्यौं दामिनि ।
घन चमचमात शोभा बहु भांतिन सुख ।
श्रुति धरि राग केदारौ जम्यो अधरात निसारोरौं सुख ।
श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुंजबिहारी कैं ।
गावत सुरत देत मोर भयौ परम सुख ।।

– हरिदास- केलिमाल ३२

रूपे संग्राम रति खेत नीके ।
एक तै एक रन वीर जोधा प्रबल, मुरत नहिं नैकु अति सबल जी के ।।
भौंह को दंड, सर नैन, धानुषि काम, छुटनि मौनौं कटाच्छनि –
निहारैं ।
हंसनि दुज-चमक करवरिन लौं है झलक, नखनि-छत-घात ने जा –
सम्हारैं ।।आदि

– सूरसागर २७४७

आली री रास मंडल मध्य निरखत
मदन मोहन अधिक प्यार लाडिलो रूप निधान ।।
चरन चारु हंसत मंद, मिलवत गति,
भांति भांति भुव विलास मंद हास लेत नैन ही मैं मान ।।
दोऊ मिली राग अलापत गावत,
होड़ा-होड़ी उघटत है करतारी तान ।।

"परमानंद " निरखत गोपी जन,

बारत हैं निज तन मन प्रान ।।

- परमानंद २३२

बांके नैन अन्यारे बान ।

चितवनि फंदनि मंह मोहन- मृग, अरुझ गिर्यौ बिनु गान ।।

- हरिव्यास ५९३

नायिका के अलंकार -

नायिका के २८ अलंकारों की गणना भी अनुभावों में है । इनके भी लगभग सभी रूप कृष्ण साहित्य में उपलब्ध हैं । संपूर्ण कृष्ण साहित्य नायिका के विभिन्न अलंकारों से भरा-पूरा है और लगभग सभी भक्त कवियों की नायिकाओं में उपर्युक्त २८ अलंकार या अनुभावों को खोजा जा सकता है, अतएव उनके विस्तृत उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है । इनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं:-

भाव-

प्रथम सनेह दुहुनि मन जान्यौ ।

नैन-नैन कीन्हीं सब बातैं, गुह्य प्रीति प्रगटान्यौ ।।

- सूरसागर १२९२

नैक लाल टेकौ मेरी बहियां ।

औघट घाट चढ्यौ नहिं जाई रपटत हौं कालिन्दी महियां ।।

सुन्दर श्याम कमल दल लोचन देखि स्वरूप गुवाल अरुझानी ।।

उपजी प्रीति काम उर अन्तर तब नागर नागरी पहचानी ।।

हंसि ब्रजनाथ गह्यौ कर पल्लव जाते गगरी गिरन न पावै ।

"परमानन्द" ग्वालिन सयानी कमल नयन कर परस्यौहि भावै ।।

- परमानन्द ७२८

बनी बृषभानु-नंदिनी आजु ।

भूषन बसन विविध पहिरे तन पिय मोहन हित साजु ।

हाव भाव लावन्य भृकुटि लट हरत जुवति-जनु पाजु ।।

रुचिकेप्रकास परसपर खेलन लागे ।

राग रागिनी अलौकिक उपजत, नृत्य संगीत अलग लाग लागे ।।
रागही में रँग रह्यौ रँग के समुद्र में ये दोऊ झागे ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी, पै रँग रह्यौ रस ही में
पागे ।।

– केलिमाल २

हाव–

नागरि मन गई अरुझाई ।
अति बिरह तनु भई व्याकुल, घर न नैकु सुहाइ ।।
स्याम सुंदर मदन मोहन, मोहिनी सी लाई ।
चित्त चंचल कुँवरि राधा, खान-पान भुलाई ।।
कबहुं बिहँसति, कबहुं बिलपति, सकुचि रहत लजाई ।
मातु-पितु को त्रास मानति, मन बिना भई बाइ ।।
जननि सौं दोहनी माँगति, बेगि हीं दै री माइ ।
सूर प्रभु कौं खरिक मिलिहौं, गएमोहि बुलाई ।।

– सूर १२९६

अतिरति स्याम सुंदर सौं बाढ़ी ।
देखि सरूप गोपाल लाल कौ रही ठगी सी ठाढ़ी ।।
घर नहिं जाइ पंथ नहिं रेंगति चलनि बलनि गति थाकी ।
हरि ज्यौं हरि कौ मगु जोवत काम मुगधमति ताकी ।।
नैनहिं नैन मिले मन अरुझ्यौ यह नागरि वह नागर ।
"परमानंद" बीच ही बन में बात जु भई उजागर ।।

– परमानंद ३६७

अलबेली सुकुमारी नैननि के आगे रहै,
जब लगि प्रीतम के प्रान रहैं तन में ।
यहै जिय जानि, प्यारी रंचौं कौ न होत न्यारी ,
तिनही के प्रेम रँगि रही मन में ।।
परम प्रवीन गोरी हाव भाव में किशोरी,
नए नए छबि के तरंग उठै छिन में ।

हित ध्रुव प्रीतम के नैन मीन रसलीन,

खेलिवौ करत दिन प्रति रूप वन मैं ।।

-ध्रुवदास-ब्यालीस लीला-

भजन श्रृंगार सत लीला पृ०८७

बैंनी बिशाल रसालन की ।

उरझी मकरंद के लोभ लगी तन श्रेनी मनौं अलि वालन की ।

हौं कहा बरनौं अलबेली महा मधुरी गति मत्त मरालन की ।

श्री बिहारनि दासि कै और नहीं सिर मौर सबै नव वालन की ।

सखी श्याम सकाम सची सिर सुंदर बैंनी विशाल रसालन की ।।

- बिहारिन देव की वानी-निजीसंग्रह-

पृ० ५१

मंजन करि मन मोहनी मोहन मुदित परस्पर करत सिंगार ।

मांग सुहाग फबी शिर पाग अति अनुराग पहिर उर हार ।

मृग मद आड़ रचत कर बैंदी अंजन नैननिरखि मुख चार ।

श्री नागरी दासि बलि विचित्र बिहारी बिहारिन दुलँसि विलसि-

सुखसार ।

श्री नागरीदास की हस्तलिखित वाणी

- निजी संग्रह पृ०५ पर

लाल प्रिया कौ श्रृंगार बनावत ।

कोमल कर कुसुमनि कच गूंथत मृगमद आड़ रचत सचु पावत ।

अंजन मन रंजन नख बर कटि चित्र बनाय रिझावत ।

लेत बलाय भाय अति उपजत रीझ रसाल माल पहिरावत ।

अति आतुर आसक्त दीन भए चितवत कुंवरि कुंवर मन भावत ।

नैनन मैं मुसिकत जानि प्रिय प्रेम विवश हंस कंठ लगावत ।

रूप रंग सींवा भुज गीवा हंसत परसपर मदन लजावत ।

सरस दासि सुख निरखि निहाल भये गई निशा नव नव गुण गावत ।

- सरस देव की वाणी-निजीसंग्रह पृ०१

कछुक उगमगे रगमगे, देत सगवगे सैन ।

चपल खरे रस अनखेरे, भरे मनोरथ मैंन ।। माधुरी वाणी-उत्कण्ठा

माधुरी १३७

हेला-

सखियनि यहै विचार, पर्‌यौ ।
राधा कान्ह एक भए दोऊ, हमसौं गोप कर्‌यौ ।।
चंदावन तैं अबही आई, अति जिय हरष बढ़ाए ।
औरै भाव, अंग छबि औरै, स्याम मिले मन भाए ।।
तब वह सखी कहति मैं बूझी, मौतन फिरि हँसि हेर्‌यौ ।
जबहिं कही सखि मिले तोहिं हरि, तब रिस करि मुख फेर्‌यौ ।।
औरै बात चलावन लागी, मैं वाकौं पहिचानी ।
सूर स्याम कैं मिलत आजुहीं, ऐसी भई सयानी ।।

-सूर २३३८

बाँह डुलावति आवति राधा ।
बदन कमल झाँपति न उघारति रह्‌यौ है तिलक मिटि आधा।
गिरिधर लाल कुँवर नँद नँदन ते जु प्रेम करि लाधा ।।
रहसि मिली प्राण प्यारे कौं रही न एकौ साधा ।।
काजर अधर मिल्यौ नैननि कौं मिटी काम की बाधा ।
परमानँद स्वामी रति नागर तेरौ पुन्य अगाधा ।।

- परमानँद ४०८

नागरी निकुंज ऐन, किसलय दल रचित शैन, कोक कला-कुशल कुँवरि अति उदार री ।
सुरत संग अंग-अंग, हाव-भाव भृकुटि भंग, माधुरी तरंग मथत कोटि मार री ।।
मुखर नूपरनि सुभाव, किंकिनि विचित्र राव, बिरमि-बिरमिनाथ बदत वर विहार री ।
लाड़िली किशोर राज, हंस हंसिनी समाज, सींचत हरिवंश नैन-सुरस सार री ।।

- हित चौरासी ७६

नवल कुँवरि मुख कमल रूप रस करत पान नागर नैना अलि ।
त्रिपित होत नहिं नव नव भाइनु अटके सकत न इत उत कहूँ चलि ।।
परत न पलक अलक छबि निरखत बैंदी भाल कंठ मुक्तावलि ।
हित ध्रुव चाहत यहै रहै अब नाशा मूल कपोल चिबुक रलि ।।

-ध्रुवदास?वृन्दावन लीला,

आज छबि औरै तेरे तन की ।
ऊँचे स्वासनासिका नागरि वदन ऊपर कन वन की ।
चकृत चाहनी नैनन चहत है कहत प्रीतम के संग सुखन की ।
उरज पात नख बात जनावत भामिनि मनमथ रन की ।
अधरनि प्रगट देखियत प्यारी छाप छौहनी पिय चारु रदन की ।
दामोदरपिय लाल लाडिली फूली डोलत मन की ।।

- श्री दामोदर वर की वाणी का निजी संग्रह

पृ० ३

लीला-
----

कुंवरि कुंवर कौ रूप भेल धरि, नागर पिय पहं आई ।
प्यारिहिं हरि न मिले सकुची जिय उपजी तब इक बुद्धि उठाई ।।
हां बृंदावन-चंद छबीलौ, राधा-पति सुखदाई ।
तू कौ प्रिया-प्रिया कह टेरत, तजि बनभूमि पराई ।। आदि

- व्यास ४४८

कोऊ सौंधे सौं सनी पहिरावत सारी हौ ।
करते वंशी हरि लई हंसि कै सुकुंवारी हौ ।
तब ललिता- मिलीकै कछू इक बात विचारी हौ ।
प्रिया बसन पिय के दये पिय के दये प्यारी हौ ।।

- माधुरी वाणी -वंशीवर माधुरी पृ०६३

प्रगल्भता-
------

इन तै निधरक और न कोई ।
कैसी बुद्धि रची है नोखी, देखी सुनी न होई ।।
यह राधा सै हाथ विधाता, बुद्धि चतुरई बखानी ।
कैसै स्याम चुराइ चली लै, अपनै भूषन ठानी ।।
और कहा इनकौ पहिचानै, मोपै लखे न जात ।
सूर स्याम चंद्रावलि जानै, मनहीं मन मुसकात ।।सूर- २७७८

किलकिंचित्
--------

वृषभानु नंदिनी मधुर कल गावै ।
विकट औघर तान चर्चरी ताल सौं नंदनंदन मनसि मौद उपजावै ।।

प्रथम मज्जन, चारु चीर, कज्जल, तिलक, श्रवन कुंडल, बदन चंद्रहि
लजावै ।
सुभग नक बेसरी, रतन हाटक जरी, अधर बंधूक दशन कुंद चमकावै ।।
वलय कंकन चारु, उरसि राजत हार, कटिव किंकिनी, चरण नूपुर-
बजावै ।।
हंस कल गामिनी, मथत मद कामिनी, नखनि मद यंतिका रंग रुचि-
धावै ।।
निर्त सागर रभस रहसि नागरि नवल चंद्र-चाली विविध भंदनि जनावै ।
कोक विद्या विदित, भाई अभिनय निपुन, भ्रूविलासनि मकरकेतनि
नचावै ।।
- हित चौरासी ८१

कुट्टमिति
--------

क्रीड़त कुंज कुटीर किसोर ।
कुसुम-पुंज रचि सेज हेज मिलीं, बिछुरि न जानत भोर ।
स्याम काम बस-तोरि कंचुकी, करजनि गहि कुच-कोर ।
स्यामा मुंच-मुंच कहि, खंडित गंड अधर की ओर ।।
नागर नीवी-बंधनि मोचत, चरन गहि करत निहोर ।
नागरि नेति-नेति करि, कर सों पेलत गहि डोर ।।
मत्त-मिथुन मैथुन दोऊ प्रगटत, बरबट जोबन-जोर ।
व्यास-स्वामिनी की छबि निरखत, भये सखि लोचन चोर ।।
-व्यास ५६७

बिब्बोक-
------

तेरो मग जोवत लाल बिहारी ।
तेरी समाधि अजहू नहीं छूटति, चाहत नाहिने नैक निहारी ।।
औचक आय द्वै करसों, मूंदे नैन अरबराइ उठे बिहारी ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा ढूंढ़त, वन मैं पाई प्रीया छिहारी।।
-केलिमाल १५

उपर्युक्त स्वल्प उदाहरणों से इस शाखा में अनुभावों की प्रचुरता

प्रकट हो गई होगी । यथार्थ में इस शाखा में इन सात्विक, नायक-नायिका के यौवनालंकारों के अतिरिक्त अनेकानेक कायिक, वाचिक, आहार्य और मानसिक अनुभाव उपलब्ध हैं। उनकी सूची प्रस्तुत करना न तो इष्ट ही है और न लाभ दायक ही । इतना मात्र ही यथेष्ट है कि कृष्ण भक्ति शाखा क में अनुभावों की प्रचुरता है ।

(ख) व्यभिचारी भाव-

६- भूमिका-

रस के चार अवयवों -भाव, विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भावों में व्यभिचारी भाव अंतिम है पर कम महत्वपूर्ण नहीं है। यथार्थ में विभाव जहां भाव को उद्‌भूत करते हैं, अनुभाव उनकी बाह्य अभिव्यक्ति करते हैं, वहां व्यभिचारी भाव उनकी पुष्टि कर उन्हें रस की स्थिति तक पहुंचाने वाले होते हैं।

व्यभिचारी भावों की शास्त्रानुमोदित संख्या ३३ है। श्रृंगार रस के सुखात्मक एवं दुखात्मक होने के कारण सर्वाधिक व्यभिचारी रतिभाव के परिपोषक हो सकते हैं। सामान्यतः तेतीस व्यभिचारियों में से औग्र्य, मरण, आलस्य और जुगुप्सा को छोड़कर सभी इसमें आ सकते हैं। किंतु श्रृंगार का रस-राजत्व सिद्ध करने के लिए अनेकानेक प्रकार से इन्हें भी इसके अंतर्गत ले लिया जाता है। इसके अतिरिक्त विरोधी स्थायी भावों (करुण, वीभत्स, रौद्र, वीर, भयानक) को छोड़कर शेष स्थायी भाव भी इसके व्यभिचारी भाव के रूप में आ सकते हैं।

भक्ति-साहित्य में प्राप्त श्रृंगार रस इतना विशाल, विस्तृत गंभीर और बहुरूपी है कि उसमें सभी संचारी प्राप्त हो सकते हैं। विशेष कर प्रेमाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखा में इनकी बहुरंगी योजना है। ज्ञानाश्रयी और रामाश्रयी शाखा में श्रृंगार की स्वल्पता के ही अनुरूप इनकी मात्रा भी कम है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रत्येक शाखान्तर्गत प्राप्त व्यभिचारियों की विशेषताओं का उल्लेख एवं स्वल्प उदाहरण ही दिए जायेंगे। प्रत्येक संचारी के प्रत्येक भक्ति कवि से उदाहरण संग्रह करने का प्रयत्न नहीं किया गया है क्योंकि उससे कलेवर वृद्धि के अतिरिक्त अन्य कोई और लाभ की संभावना नहीं है।

७- ज्ञानाश्रयी शाखा-

इस शाखा में श्रृंगार रस सीमित मात्रा में उपलब्ध है और उसी के अनुपात में इसमें संचारियों की विविधता [illegible]।

जाती है । निर्गुण ब्रह्म के प्रियतम होने के कारण और उससे मिलन के क्षणों की स्वल्पता के कारण इस शाखा में वे ही संचारी भाव अधिक मात्रा में है जो कि हृदयकी इस पीड़ा को उभारने वाले, मिलन की उत्सुकता को अभिव्यक्त करने वाले तथा उस प्रिय के मद में डूबे हुए साधक की तन्मयता को प्रदर्शित करने वाले हैं । ऐसे व्यभिचारियों में प्रमुख दैन्य, मद, विबोध, गर्व, मरण, औत्सुक्य, शंका, स्मृति, हर्ष आदि है । इनके कुछ उदाहरण नीचे दिये जा रहे है:-

दैन्य:-

प्रिया का प्रेमी से घर आने की याचना और अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति दीनता से भरी है:-

बालम, आवो हमारे गेह रे ।
तुम बिन दुखिया देह रे ।
सब कोई कहै तुम्हारी नारी, मोकों लागत लाज रे ।
दिल से नहीं दिल लगाया, तब लग कैसा सनेह रे ।
अन्न न भावै नींद न आवै, गृह-बन धरै न धीर रे ।
कामिन को है बालम प्यारा, ज्यों प्यासे को नीर रे ।
है कोई ऐसा पर उपकारी, पिवसों कहै सुनाय रे ।
अब तो बेहाल कबीर भयो है, बिन देखे जिव जाय रे ।।[१]

मद-

प्रेम का चस्का लगने पर कौन यह कपड़ा छिनेगा । प्रेम का प्याला पी लेने पर फिर और क्या नशा करे । इसका खुमार कभी नहीं जाता और प्रेमी मतवाला होकर घूमता फिरता है-

को बीनै प्रेम लागो री माई को बीनै ।
राम-रसाइण-माते री माई को बीनै ।।[२]

---

१- कबीर-हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीरवानी- ३५

२- कबीर-हजारी प्रसाद द्विवेदी-कबीरवानी - १०२

तथा-

कबिरा प्याला प्रेम का, अंतर दिया लगाय ।
रोम रोम मैं रमि रह्या, और अमल क्या खाय ।।
राता-माता नाम का, पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का, मांगै मुक्ति बलाय ।।[3]

हरि-रस पीया जाणिये, जे कबहूं न जाइ खुमार ।
मैंमता घूमत रहै, नाहीं तनकी सार ।।[4]

बिबोध-

सूतल रहलूं मैं नींद भरि हो, पिया दिहलैं जगाय ।
चरन-कंवल के अंजन हो नैना ले लूं लगाय ।
जासों निंदिया न आवै हो नहिं तन अलसाय ।
पिया के वचन प्रेम-सागर हो चलूं चली हो नहाय ।।[5]

हर्ष, गर्व और धृति

प्रिय के प्रेम का ज्ञान होने पर हर्ष, गर्व और धृति भावों को अभिव्यक्त करने वाला एक सुंदर पद निम्नलिखित है-

सखियो, हमहु भई बलनासी ।
आयौ जौबन बिरह सतायो, अब मैं ज्ञान गली अठिलाती ।
ज्ञान-गली में खबर मिल गये, हमैं मिली पिया की पाती ।
वा पाती मैं अगम संदेसा, अब हम मरनै को न डराती ।
कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, वर पाये अबिनासी ।।[6]

स्मृति और व्याधि-

प्रिय की स्मृति मैं दिन-रात चैन नहीं मिलती, कलेजे मैं दर्द होता है और मन तरसा करता है । इन्हीं भावों को व्यक्त

---

३- कबीर- हजारी प्रसाद द्विवेदी-कबीरवानी- २०२
४- " " " " " १९०|२
५- " " " " " १८०
६- " " " " " ५१

करने वाला यह एक पद है-

साईं बिन दरद करेजे होय ।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, कासे कहूं दुख होय ।
आधी रतियां पिछले पहरवा, साईं बिना तरस रही सोय ।
कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, साईं मिले सुख होय ।।[७]

मरण-

श्रृंगार में मरण संचारी का सामान्यत: वर्णन नहीं होता, किंतु वियोग की पीड़ा मरणान्तक हो सकती है । इसी रूप में मरण संचारी श्रृंगार में सुशोभित हो सकता है । कबीर ने अत्यंत सहज रूप में इसका उल्लेख किया है ।

हमसो रहा न जाय मुरलिया के धुन सुनके ।
बिना बसन्त फूल इक फूलै भंवर सदा बोलाय ।
गगन गरजै बिजुली चमकै, उठती हिये हिलोर ।
विगसत कंवल मेघ बरसाने चितवत प्रभु की ओर ।
तारी लागी तहां मन पहुंचा, गैब धुजा फहराय ।
कहै कबीर आज प्रान हमारा, जीवत ही मर जाय ।।[८]

उपर्युक्त कुछ उदाहरण ज्ञानाश्रयी शाखा में व्यभिचारियों के यथेष्ट प्रयोग को बतलाने वाले हैं । जिन-जिन स्थानों पर भक्त-कवियों ने अपने मिलन-वियोग की भावनाएं व्यक्त की हैं, वहीं-वहीं संचारियों की सृष्टि अपने आप हो गई हैं । ध्यातव्य है कि इनका प्रवेश स्वाभाविक रूप में हुआ है तथा इनमें श्रृंगार विरोधी संचारी कम ही है ।

८- प्रेमाश्रयी शाखा-

प्रेमाश्रयी शाखा में श्रृंगार की विस्तृत एवं पूर्ण योजना है । इसमें श्रृंगार के सभी अंगोपांग उपलब्ध हैं । व्यभिचारियों की योजना भी इसी कारण से इस साहित्य में विस्तार से है । इस सम्बन्ध में यह

---

७- कबीर-हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीरवानी ५२

८- वही ६८

केवल कृष्णाश्रयी शाखा से पीछे है । शेष अन्य सभी शाखाओं से इस व्यभिचारियों की अभिव्यंजना अधिक है । इस शाखा में प्रेम कथाओं अनेक मोड़ के कारण जहाँ श्रृंगार के विभिन्न रूपों की व्यंजना संभव हो सकी है, वहाँ दूसरी ओर अपनी प्रबंधात्मकता के कारण ही नायक-नायिका की भावनाओं का वह उन्मुक्त उद्गार उनमें उपलब्ध नहीं है जो कि गीत-मुक्तक प्रधान कृष्णाश्रयी शाखा में प्राप्त है ।

प्रेमाश्रयी शाखा के साहित्य में लगभग सभी संचारियों को खोजा जा सकता है । मुख्य रूप से वियोग-प्रसंग में सर्वत्र जड़ता, मोह, उन्माद, व्याधि, विषाद, और चिन्ता आदि तथा संयोग-प्रसंगों में हर्ष, श्रम, मद, गर्व, अलसता, और धृति प्राप्त हैं । इनमें से उदाहरण स्वरूप कुछ संचारियों को नीचे दिया जा रहा है-

निर्वेद-

हृदय में प्रेम की अग्नि जल उठने के बाद प्रेमी का ध्यान केव प्रिय की ओर ही रहता है । संसार से उसे निर्वेद हो जाता है । व समस्त सांसारिक बंधनों को तोड़ने के लिए तत्पर रहता है । इस शाखा में प्रेमियों का योगी होना उनके ~~हृदय~~ इसी निर्वेद का द्योतक है । रत्नसेन, सुजान और मनोहर सभी ने राजपाट त्याग दिया । -नायिकाओं में भी प्रेम जनित इस निर्वेद के दर्शन होते हैं । इसका सबसे सुंदर रूप मधुमालती के पक्षी हो जाने पर व्यक्त हुआ है । पक्षी होते ही समस्त सुखों को छोड़ कर समस्त मोह-माया के बंधनों को तोड़ कर वह बावली सी अपने प्रेमी की खोज में सर्वत्र घूमती है । निर्वेद के दो उदाहरण नमून के रूप में नीचे दिए जा रहे हैः-

> मधुर नाव सुनि जिउ भागा, मधुमालती सब धंधा तजा ।
> छाँडेसि मया मोह संसारा, छाँड़िउ लोग कुटुंब परिवारा ।
> छाँडेउ सहस चाउ रस केली, छाँडेउ ते सब बारि सहेली ।
> छाँडेउ भोग भुगुति रस आसा, छाँड़ेउ मात पिता घर बासा
> छाँडेउ अर्थ दर्ब आथी, छाँडेउ जन परिजन संग साथी ।
> छाँडेउ राजपाट जत, सुख सेज्या नींद भोग ।
> छाँडेउ रहस चाउ सब, कियेउ पेम कर सोग ।।मधुमालती

तथा-

मोहि यह लोभ सुनाउ न माया । काकर सुख काकरि यह काया ।
जौ निआन तन होइहि छारा । माँटी फेखि मरै को मारा ।
का भूलहु एहिं चंदन चोवा । बैरी जहाँ अंग के रोवाँ ।।
हाथ पाउँ सरवन औ आँखी । ये सब हीं भरिहैं पुनि साखी ।
सोत सोत बोलहिं तन दोखू । कहु कैसें होइहि गति मोखू ।
जौ मल होत रण औ भोगू । गोपि चंद कस साधत जोगू ।
ओनहूं सिस्टि जौ देख परेवा । तजा राज कजरी बन सेवा ।।
देखु अंत अस होइहि गुरु दीन्ह उपदेश ।
सिंघल दीप जाव मैं माता मोर अदेस ।। पद्मावत १३०

दैन्य

इस शाखा के नायक-नायिकाओं केजीवन में असफलता के अ
अवसर आते है जिनके कारण निराशा और तज्जनिता दीनता उनमें
आजाती है । यह दीनता उनके प्रेम के कारण ही उत्पन्न होती
है । इसके साथ - साथ विक्षिप्तता, उन्माद आदि की स्थिति
भी आ जाती है और प्रेमी अपने प्रेम की सफलता एवं अपनी
सहायता के लिए भगवान से प्रार्थना करने लगता है । इस दैन्य
के दो उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं:-

सौरि हियैं चित्रावलि नेहाँ, नैनन्ह चुवै मघा कर मेंहा ।
नदी नार बन चहुं दिस फूला, भटकत फिरै कुंअर तहं -
भूला ।।
पंथ न सूझ असूझ बन, चलत राह नहिं पाइ ।
खन बैसइ खन धावइ, खन रोवइ बिलखाई ।।चित्रा०३०९

तथा

राजा बाउर बिरह बियोगी । चेला सहस बीस सँग जोगी।
पदुमावति के दरसन आसा । दंडवत कीन्ह मंडप चहुं पास
पुरब बार होइ कै सिर नावा । नावत सीस देव पँह आवा
नमो नमो नरायन देवा । का मोहिं जोग सकौं कर सेवा ।
तूं दयाल सब के उपराहीं । सेवा केरि आस तोहि नाहीं ।
ना मोहि गुन न जीभ रस बाता । तूं दयाल गुन निरगुन
दाता ।।

पुरवौ मोरि दास कै आसा । हौ मारग जोवौं हरि स्वांसा ।
तेहि विधि बिनै न जानौ जेहि बिधि अस्तुति तोरि ।
करु सुदिष्ट और किरिपा हिंछा पूजै मोरि ।।पद्मावत् १६५

विरह की स्थिति में बारहमासे के प्रसंगों में भी यह दैन्य अनेक स्थान पर प्रकट हुआ है ।

उग्रता-

श्रृंगार रस में संचारी रूप में उग्रता सामान्यतः नहीं आती है । हाँ, यदि किसी कारण से प्रेम-पंथ में कोई बाधा आजाए तो प्रेमी के हृदय में उग्रता की भावना आ सकती है । इस उग्रता का कारण भी प्रेमाधिक्य है, अतः इसे भी संचारी रूप में स्वीकार करना होगा । इसका सर्वोत्तम उदहहरण रत्नसेन का मंदिर के देवता पर बिगड़ना है -

अरे मलिछ बिसवासी देवा । कत मैं आई कीन्हि तोरि-
सेवा।
आपनि नाउ चढ़ै जो देई । सो तो पार उतारै खेई ।
सफल लागि पग टेकेउं तोरा। सुवा के सेंवर तू भा मोरा ।
पाहन चढ़ि जो चहै भा पारा । सो ऐसै बूड़ै मँझधारा ।
पाहन सेवा कहा पसीजा । जनम न पलुहै औ [illegible]
बाउर सोइ जो पाहन पूजा । सकति को भार लेइ सिर दूज
काहे न पूजिअ सोइ निरासा । मुएं जिअत मन जाकरि आस
सिंघ तरेंडा जिन्ह गहा, पार भए तेहि साथ ।
ते परि बूड़े वार ही भेड पोंछि जिन्ह हाथ ।।
- पद्मावत २०२

लज्जा और त्रास-

श्रृंगार रस में लज्जा और त्रास संयोग की स्थिति में विशेष रूप से होते हैं । प्रथम समागम के अवसर पर नायिका का लजाना और भयभीत होना स्वाभाविक है । इसका भी इस शाखा में चित्रण हुआ है -

हौं अबही रस रीति न जानौं, चितवति हँसनि प्रेम सुख -
मान।
तब हँसि कुँअर उलटि मुख हेरा, बरबस ला

घूंघट ओट रही मुख गोई, तरुनिन मान सुभावन होई ।

—चित्रा० ४०९

साँते पिअत रूप चखु दोऊ, रवि सीस मिलि एक भौ दोऊ ।
मुख मुख सैन सौंह ना करई, प्रथम समागम डर थरहरई ।
कुँअर अधर अधरन्ह सौं जोरै, कुँअरि बिमुख भै भै मुख मोरै ।
दीप भरम मुख फूकै बाला, अधिकौ करै रतन उजिआरा ।
दुऔ कर लै लाजन्ह मुख झाँपै, अधर दसन कै खंडित काँपै ।
एक वौय परम पिआरी, औ भौर्प्रीथि समंग ।
तिसरे लाज व्यापेउ, पलकन्ह दुहुं रति रंग ।।मधुमालती पृ०१३३

तथा—

सँवरि सेज धनि मन भौ सँका । ठाढ़ि तिवानि टेकि कै लंका ।
अनचिन्ह पिउ काँपै मन माँहा । का मैं कहब गहब जब बाँहाँ ।

\+ \+ \+

हौं सो बारि औ दुलहिनि पिउ सो तरुन औ तेज ।
नहिं जानौं कस होइहि चढ़त कंत की सेजर्।। पद्मावत ३००

तथा

आस पास सब घेरैं अलीं, सुंदरि कहँ कोहबर लै चलीं ।
प्रथम समागम बाला डरई, कैसहुं आगे पाव न धरई ।।चित्रा०५३

धृति, हर्ष,मद, श्रम, निद्रा,आलस्य आदि—

उपर्युक्त संचारी भी सामान्यतः संयोग श्रृंगार की सफलता के द्योतक है । नायक-नायिका के सफल संभोग में उत्पन्न होकर ये प्रेम की पुष्टि करते है । प्रेमाश्रयी शाखा में संभोग का स्पष्ट उ‍ होने के कारण उससे उत्पन्न तुष्टि, प्रसन्नता एवं मद का भी सुंदर संकेत है । उदाहरण स्वरुप निम्नलिखित पद है —

पिउ पिउ करत जीभ धनि सूखी बोली चात्रिक भाँति ।
परी सो बूंद सीप जनु मौती हिएँ परी सुख साँति।।

—पद्मावत ३१७

तथा—

भएउ बिहान उठा रवि साँई । ससि पँह आई नखत त...
सब निसि ... ले ससि सूरा । हार ... गीर ...

सो धनि पान चून मै चोली । रंग रंगीलि निरंग भौ भोली ।
जागत रैनि भएउ भिनुसारा । हि न संभार सोवसि बेकरारा ।।
-पद्मावत ३२१

तथा-

कंठहार गिवहार जे टूटे, दलिमल दलै देह सौं छूटे ।
बहुरि फूटिगौ अंम्रित खानी, भौं सांति जो सालति रानी ।
काम सकति डर जीतिये, कही एक न टार ।
तब गै दुओ सांति भौ जब गगन ते छिटका धार ।।
सुन्य सैन सुख दैनि बिहानी, बिरह दगधि हिये बुतानी ।
राज कुंअर उठि बाहर आवा, कै अस्नान मलै तनु लावा ।
मलया लाई फिरायेसि बागा, दीन्हा पुन्यजानि किछु त्यागा ।।
बाला पुनि सखिन्ह जगाई, निसरी जनु दुख समुद नहाई ।।
- मधुमालती पृ० १३३-१३४

तथा
सेद थंम रोमांच तम, आसु पतन सुरभंग ।
प्रथम समागम जो कियो, सितल भा सब अंग ।।५३६

\+ + +

चित्रावलि करि पाउ अडारी, परी बिसुध जानहु मतवारी ।
- चित्रावली ५३७

संयोग की स्थिति में होने वाले षट् ऋतु वर्णनों में सर्वत्र हर्ष संचारी उपलब्ध है ।

उपर्युक्त संचारियों के अतिरिक्त लगभग अन्य सभी भी इस साहित्य में उपलब्ध है जिनका उदाहरण देना केवल कलेवर-वृद्धि मात्र होगा । अतः उनके उदाहरण नहीं दिए जा रहे हैं । समग्र रूप में हम कह सकते हैं कि प्रेमाश्रयी शाखा में संचारियों का यथेष्ट उल्लेख है ।

९- रामाश्रयी शाखा-

रामाश्रयी शाखा में उपलब्ध श्रृंगार की अल्पता का उल्लेख पीछे किया जा चुका है । इस साहित्य में इष्टदेव-इष्टदेवी का संकेतात्मक रूप में ही है और इसीलिये इसमें श्रृंगार के सभी

उतनी स्पष्टता और प्रचुरता से नहीं मिलते हैं जितनी किअन्य शाखाओं में मिलते हैं पर इनका अभाव नहीं है और अनेक संचारी भाव यथा स्थान अभिव्यक्त हुए हैं। इस साहित्य में उपलब्ध संचारियों के कुछ उदाहरण नीचे दिया जा रहे हैं।

राम और सीता के प्रथम दर्शन में ही दोनों के हृदय में पूर्वराग का सूत्रपात हो गया था। दोनों की परस्पर उत्सुकता थी। इस उत्सुकता में "लालसा" का भी मिश्रण-६

तासु बचन अति सियहि सोहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने।[९]

तथा

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदयगुनि
मानहुं मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहं कीन्ही।[१०]

जड़ता

इसी प्रकार कवि ने जड़ता संचारी का भी उभय पक्ष में उल्लेख किया है। राम और सीता दोनों ही एक दूसरे को एकटक देखते रह जाते हैं-

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा
सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।[११]

तथा

थके नयन रघुपति छबि देखें।
पलकन्हिहूं परिहरीं निमेषें।।[१२]

इसी जड़ता का अत्यंत सुंदर वर्णन सीता का अपने कंकण के नग में राम के रूप को देखते रह जाने का है। अपनी कोमलता और भाव प्रवणता में यह अन्यतम है-

दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुंदर मंदिर माहीं
गावति गीत सबै मिलि सुंदरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।।
रामको रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
यातें सबै सुधि भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं।[१३]

---

९- मानस, बाल २२९। १०- वही २३०
११- वही २३०। १२- वही २३
१३- कवितावली, बाल १७

अवहित्था

कवि ने सीता में "अवहित्था" का भाव भी बड़ी कुशलता से दिखलाया है । वे मृग, बिहग और तरुओं को देखने के बहाने बार- बार रामचंद्र जी की ओर देखती हैं-

> देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि ।
> निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि ।।[१४]

इसी प्रकार जयमाल डालने के समय गुरुजन और बड़ों के समाज को देख कर वे बहाने से राम को देखती हैं-

> गुरजन लाज समाजु बड़ देखि सीय सकुचानि ।
> लागि विलोकन सखिन्ह तन रघुबीरहि उर आनि ।।[१५]

हर्ष गर्व, धृति, हास व्रीड़ा आदि संचारी भावों को भी बहुत ही सुंदर ढंग से व्यक्त किया गया है । इन भावों को व्यक्त करने वाले पृथक-पृथक अंश तो हैं हीं पर इनकी अत्यंत रमणीक और सुंदर व्यंजना करने वाला प्रसंग एक ही है । वन-मार्ग में ग्राम बधुओं द्वारा राम-लक्ष्मण का परिचय पूछने पर सीता ने जो उनका उत्तर संकेत से दिया है उसमें उपर्युक्त सभी भाव ही निहित नहीं है बल्कि कुछ और भी व्यंजित होता है जो कि अवर्णनीय है । मानस और कवितावली दोनों में ही इसके निम्नलिखित अंश हैं-

> बहुर बदनु विधु अंचल ढांकी । पिय तन चितइ भौंह करि बांकी
> खंजन मंजु तिरेछे नयननि । निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि[१६]

तथा

> सुनि सुंदर बैन सुधारस-साने सयानी हैं जानकी जानी भली ।
> तिरछे करि नैन, दै सैन, तिन्हैं समुझाइ कछू, मुसुकाइ चली ।
> तुलसी तेहि औसर सो है सबै अवलोकति लोचन लाहु अली ।
> अनुराग-तड़ाग में भानु-उदै बिगसी मनो मंजुल कंज कली ।।[१७]

---

१४- मानस, बाल २३४

१५- वही २४८

१६- मानस, अयोध्या० ११७

१७- कवितावली, अयोध्या० १२

वितर्क-

स्वर्ण-मृग रूपी मारीच को मार कर भाई लक्ष्मण के साथ पर्णकुटी पर लौटने पर जब राम को नित्य की भाँति स्वागत के लिए द्वार पर खड़ी सीता न दिखलाई पड़ी तब उनके मन चिन्ता के कारण वितर्क भाव उत्पन्न हुआ । इस वितर्क का सुंदर वर्णन तुलसी और केशव दोनों ने ही किया है-

आश्रम निरखि भूले, द्रुम न फले न फूले,
अलि-खग-मृग मानो कबहुँ न हे ।
मुनि न मुनि वधूटी, उजरी परन कुटी,
पंचबटी पहिचानि ठाढ़ेइ रहे ।।
उठी न सलिल लिए, प्रेम मुदित हिए,
प्रिया न पुलकि प्रिय बचत कहे ।
पल्लव-सालन हेरी, प्रान वल्लभा न टेरी,
विरह विथकि लखि लषन गहे । [१८]

तथा

निज देखौं नहीं सुभ गीतहि सीतहिं कारण कौन कहौ अबहा ।
अति मो हित कै बन माँफ गई सुर मारग मैं मृग मारयो जहीं ।
कटु बात कछु तुम सौं कहि आई किधौं तेहि त्रास दुराय रहीं ।
अब है यह पर्णकुटी किधौं और किधौं वह लक्ष्मण होइ नहीं ।।[१९]

इसी प्रकार का वितर्क अशोक-वाटिका में राम की मुद्रिका को देख कर सीता को हुआ था । इसमें शंका, चिंता, स्मृति आदि अनेक भावों का मिश्रण है-

तब देखी मुद्रिका मनोहर, रामनाम अंकित अति सुंदर ।।
चकित चितव मुदरी पहिचानी । हरष विषाद हृदय अकुलानी ।।
जीति को सकइ अजय रघुराई । मायामैं असि रचि नहिंजाइ
सीता मन बिचार कर नाना । मधुर बचन बोलेह हनुमाना ।[२०]

---

१८- गीतावली, अरण्य १०
१९- रामचंद्रिका १२।२७
२०- मानस, सुन्दर १३

तथा

जब लगि तियरी हाथ । यह आगि कैसी नाथ ।
यह कहूयौ लखि तब ताहि । मूनि जटित सुंदरी आहि ।।
जब बाँचि देख्यौ नाँव । मन पर्यौ संभ्रम भाउ ।।
आबाल मैं रघुनाथ । यह धरी अपने हाथ ।।
बिछुरी सु कौन उपाउ । केहि आनियौ यहि ठाँउ ।।
सुधि लहौं कौन प्रभाउ । अब काहि बूझन जोउ ।।
चहुँ ओर चितै संत्रास । अवलोकियौ आकास ।।
तह साख बैठो नीकि । तब पर्यौ बानर दीठि ।[२१]

इन भावों के अतिरिक्त क्रोध, दैन्य, स्मृति, उन्माद, व्याधि आदि भावों का भी रामसाहित्य में यथेष्ट उल्लेख है । राम और सीता की वियोगावस्था में हे विशेष रूप से ये प्रस्फुटित हुए हैं । उपर्युक्त और इन सभी भावों की अभिव्यक्ति में कवि-कुशलता सर्वत्र परिलक्षित होती है । अपनी उत्कृष्टता में ये श्रेष्ठ भी हैं, किंतु इन भावों का बाहुल्य वैसा नहीं है जैसा कि प्रेमाश्रयी शाखा में है फिर भी व्यभिचारी भावों की दृष्टि से इस शाखा को निर्धन नहीं कहा जा सकता । यह यथेष्ट संपन्न है ।

१०- कृष्णाश्रयी शाखा

भक्ति-साहित्य में अपनी विशालता एवं श्रृंगार की विविधता की दृष्टि से कृष्णाश्रयी शाखा सबसे महत्वपूर्ण है । इसमें श्रृंगार के सभी अंगों का रूप अति विस्तार से उपलब्ध है । संचारी भाव भी इनमें से एक है और इस साहित्य में सभी संचारी प्राप्त हो सकते हैं । इतना ही नहीं इन संचारियों की सीमा के बाहर के भी अनेक भाव हैं । ऐसे भावों में से कुछ "चकपकाहट", "खिजलाहलट", "झल्लाहट" आदि की और आचार्य शुक्ल ने लोगों का ध्यान आकर्षित किया है । इन सभी को किसी न किसी रूप में परंपरागत संचारियों के अंतर्गत लिया जा सकता है और इसीलिए प्रस्तुत अध्ययन में संचारियों की संख्या के विस्तार का प्रश्न नहीं उठाया जाएगा ।

---

२१- रामचंद्रिका १३।६६-६९

कृष्णाश्रयी शाखा में उपलब्ध संचारियों के अध्ययन विभिन्न कृष्ण संप्रदायों के अंतर्गत आवश्यकता नहीं है, क्योंकि ऐसी कोई संप्रदायगत विशेषताएं दृष्टिगोचर नहीं होती है। द्रष्टव्य इतना ही है कि वल्लभ संप्रदाय और संप्रदाय-मुक्त कवियों की रचनाओं में प्रेम की अभिव्यक्ति जिस आत्मानुभूति के रूप में हुई है उसमें हृदय-जगत की आंतरिक भावनाओं की व्यंजना अधिक सरल और स्वाभाविक है। इसीलिए इस साहित्य में संचारियों की विशेष बहुलता है। साथ ही इसी साहित्य में ही वियोग की विस्तृत स्वीकृति होने के कारण संचारियों की विविधता भी संभव है। अन्य संप्रदायों में सामान्यतः राधा-कृष्ण-केलि का वर्णन अधिक है। इस वर्णन में संचारियों का उल्लेख होने पर भी इनमें वह सूक्ष्मता संभव नहीं है जो आत्माभिव्यक्ति वाले पदों में है।

कृष्णाश्रयी शाखा में प्रयुक्त संचारियों में सामान्यतः संयोग-पक्ष में श्रम, मद, जड़ता, मोह, अवहित्था, औत्सुक्य, धृति आदि संचारी आए हैं तथा वियोग-पक्ष में दैन्य, विबोध, मोह, अपस्मार, उन्माद, व्याधि, विषाद, वितर्क, चिन्ता और स्मृति आदि हैं। मुख्य रूप में संभोग पक्ष में हर्ष संचारी सर्वत्र रहता है और वियोग-पक्ष में स्मृति तथा विषाद। इस शाखा में उपलब्ध संचारियों के कुछ नमूने नीचे दिये जा रहे हैं:-

औत्सुक्य और हर्ष, अमर्ष:
---------------------

राधा और कृष्ण का प्रथम मिलन में ही प्रेम हो गया था। कृष्ण एकाएक राधा को देख कर उसके प्रति उत्सुक होते हैं तथा उसका परिचय पूछते हैं। राधा भी प्रारंभ में अमर्ष युक्त हैं। कृष्ण द्वारा यह पूछने पर "तुम ब्रज क्यों नहीं खेलने आती हो," वह उत्तर देती है, "मैं क्यों ब्रज खेलने आती।" इसके साथ ही वे कृष्ण की माखन चोरी की घटना के द्वारा व्यंग भी कसती हैं। इस मिलन के मूल हर्ष का भी अत्यन्त मिश्रण है। इस प्रकार श्रृंगार के प्रारंभ में ही औत्सुक्य, अमर्ष और हर्ष संचारी का चित्रण प्राप्त है -

बूझत स्याम कौन तू गोरी।

कहाँ रहति [illegible] देखी नहीं कहू ब्रज खोरी

काहे को हम ब्रज-तन आवतिं, खेलति रहति आपनी पौरी ।
सुनत रहतिं स्रवननि नंद-ढोटा, करत फिरत माखन-दधि-चोरी ।।
तुम्हरौ कहा चोरि हम लैहैं, खेलत चलौ संग मिलि जोरी ।
सूरदास प्रभु रसिक-सिरोमनि, बातनि भुरइ राधिका भोरी ।।

-सूर १२९१

प्रथम परिचय ही नहीं, मिलन एवं क्रीड़ा विलास में भी नायक-नायिका की यह उत्सुकता सदा व्यक्त होती रहती है । जिन संप्रदायों में राधा-कृष्ण की केलि का ही वर्णन है, उनमें भी यह उत्सुकता निरंतर रहती है । उस केलि की नित- नूतनता के मूल में यही औत्सुक्य भाव है । इस उत्सुकता का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है :-

बिहरत राख्यौ रंग अंध्यारे ।
परे पीठ दै रूसत हू, दोउ लपटि भये नहिं न्यारे ।
चंचल अंचल सनमुख ह्वै, लै उसास दै गारे ।
बरवट ही आंकौ भरि बंधन करि, हंसि नैन उघारे ।।
अति आवेस सुवेस देखियत, दूरि करत पट फारे ।
व्यास स्वामिनी रूठीं तूठत, पिय के दुखहिं बिसारे ।। व्यास ५६२

वस्त्रों को फाड़ कर दूर करने में " आवेग" संचारी के साथ-साथ उत्सुकता की मात्रा भी विशेष है । एक अन्य उदाहरण-

हरष्यौं सुत ब्रज राज कौ, निलखि वसंत रितुराज ।
श्री भट अटक कछू नहीं, करिहै मन के काज ।।
आज मन कारज करियैरी ।
हरष्यौ सुत ब्रज पति कौ अति ही लखि चख टरियैरी ।।
रितु को राज बसन्त निरखि सोइ सुख उर धरियैरी ।
श्री भट्ट अटक नहीं अब तनकहु, महामुदित मन भरियैरी ।।

- युगल शतक ८४

लज्जा और अवहित्था

नारी के सह स्वाभाविक भाव है । उसका मनोविज्ञान ही नकारात्मक और लज्जा से परिपूर्ण है । अपनी इच्छा होने पर वह पहले निषेध अवश्य करती है । अनेक बार की क्रीड़ा [illegible] भी लज्जा उसे नहीं छोड़ती । रसिकों के [illegible]

होती है । इसी लज्जा और अवहित्था का दर्शन हमें कई स्थानों पर होती है ।-

सुन्दर पुलिन सुभग सुखदायक ।
नक्-नव घन अनुराग परस्पर खेलत कुंवरि नागरी नायक ।।

\+ \+ \+

विट कुल नृपति किशोरी कर धृत बुधि बल नीबी -बंधन मोचत ।
नेति नेति बचनामृत बोलत, प्रणय कोप प्रीतम नहि सोचत ।।
- हित चौरासी ७२

सुरति अंत बैठे बनवारी ।
प्यारी-नैन जुरत नहिं सन्मुख, सकुचि हंसत गिरिधारी ।
बसन सम्हारन लगे दोऊ तन, आनन्द उर न समाइ ।
चितवत दुरि-दुरि नैन लजाै है, सो छबि बरनि न जाइ ।।
नागरी अंग मरगजी सारी, कान्ह मरगजे अंग ।
सूरज-प्रभु प्यारी बस कीन्हीं, हाव-भाव रति-रंग ।।सूर २६१२

बन बिहरत वृषभानु -किसोरी ।
कुसुम-पुंज सयनीय, कुंज कमनीय,स्याम-रंग बोरी ।।
नीबी-बंधन छोरत, मुख मोरत, पिय चिबुक चारु टकटोरी ।
ओली ओढ़ि खोलि चोली, दुख मेटि भेटि कुच जोरी ।।
सरस जघन दरसन लगि, चरन पकरि हरि कुंवरि निहोरी ।
मदन सदन को बदल बिलोकत, नैननि मूंदति गोरी ।।-व्यास ५७९

श्रम, मद, जड़ता, आलस्य, धृति आदि-

उपर्युक्त संचारी मुख्यतः संभोग श्रृंगार में आते हैं । संभोग क्रीड़ा के कारण श्रम, मादकता, जड़ता, आलस्य और धृति का होन स्वाभाविक ही है । इनका वर्णन सुरत, विपरीत, रतिरण और सुरतांत के पदों में विशेष रूप से प्राप्त है । इनके कुछ उदाहरण दिए जा रहे हैः-

भोर ही कर सों कर जोरें अंग अंग मोरें आलस लेत जंभाई ।
पिय के अंक निशंक सबै निस हुलसि विलसि आनंद उनींदी थे-

अँगराग अनुराग रही फबि छबि बरनी नहिं जाई ।
अति सुख भरि भरि उमँगि श्री बिहारनि दासी सौं कहति ऐसैं हौ
लाल लड़ाई ।।
- श्री बिहारिन दास का निजी संग्रह पृ०६१

किये पान रस मत्त मन अँगसंगिनि की सैल ।
उमग -भरे मिलि चले दोऊ कुंज-कुटी की गैल।।
चले मिलीकुंज -कुटी की गैल ।
उमंग भरे अँग अंग रहे अँग संगिनि की सैल ।
किये पान रस मत्त परस्पर छकनि छके दोउ छैल ।
श्री हरि प्रिया प्रसन्न वदन अलबेले अलक लड़ैल ।।
- महावाणी-सुरतसुद ९१

अति उदार नागरि सुकुंवारी । पिय रूचि जानि केलि बिस्तारी ।
रति बिपरित बिलसत वर भांती । चुंबन अधर नैन मुसिकाँती ।
रस के वस ह्वै रस मैं भूले । बात नेम की ते सब भूले ।
बिरभि बिरभि बानी पिय बोलै । श्रमित जानि अंचल भकझोलै ।।
- ध्रुवदास(ब्यालीस लीला, रतिमंजरीलीला-
४१-४४

संभोग श्रृंगार के साथ ही साथ उपर्युक्त संचारियों में से कुछ वियोग श्रृंगार में भी आ सकते हैं, किंतु प्रमुखता दैन्य, जड़ता, स्वप्न, अपस्मार, उन्माद, स्मृति, व्याधि, विषाद आदि की ही है । वियोग में इनका होना स्वाभाविक है और ये प्रचुर मात्रा में प्राप्त हैं । इनमें से कुछ, विशेष रूप से जड़ता, स्मृति, उन्माद और व्याधि संयोग श्रृंगार में भी आ सकते हैं किंतु इनका स्वरूप वियोग में ही खिलता है ।

## दैन्य

दैन्य संचारी का उल्लेख मात्रा की दृष्टि से अधिक नहीं है, किन्तु फिर भी वियोग पीड़ा की स्थिति में इसका अस्तित्व विशेष रूप से रहता है । प्रिय के विरह में प्रिया के हृदय में जो मिलन की चाह की अपूर्णता है वही इसकी जनक है । ऐसी स्थिति में वियोगी के प्रत्येक उदगार में दीनता, की छाया रहती है । गोपियों के विप्रलंभ-श्रृंगार में सर्वत्र इसका रूप देखा जा सकता है गोपियों का

ऊधौ से अपनी दीन दशा को न कह गउओं की दीन-दशा का वर्णन कर, उसी के द्वारा प्रिय को बुलाने में दीनता की पराकष्ठा है-

ऊधौ इतनी कहियौ जाइ ।
अति कृस गात भई ये तुम बिनु, परम दुखारी गाइ ।।
जलसमूह वरषति दोउ अँखियां, हूँकति लीन्हैं नाउं ।
जहां- जहां गो दोहन कीन्हौं, सूँघति सोई ठाउं ।।
परतिं पछार खाई छिन ही छिन, अति आतुर ह्वै दीन ।
मानहु सूर काढ़ि डारी हैं, वारि मध्य तै मीन ।।सूर ४६८८

उन्माद, स्मृति, व्याधि, विषाद और मरण का भाव वियोगिनी राधा के स्वरूप में मूर्तिमान हो उठा है -

अति मलीन वृषभानु -कुमारी ।
हरिश्रम-जल भींज्यौ उर-अँचल, तिहिं लालच न धुवावतिं सारी ।
अध मुख रहति अनत नहिंचितवति, ज्यौं गथ हारे थकित जुवारी ।
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने, ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी ।
हरि संदेस सुनि सहज मृतक भइ, इक बिरहिनि, दूजे अलि जारी ।।
सूरदास कैसे करि जीवैं, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी ।।
- सूर ४६९१

मीरा के विरह में भी इनमें से कई संचारी हैं:-

प्यारे दरसण दीज्यौ आय, तुम बिन रह्यो न जाय ।
जल बिन कंवल चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्यां बिन सजनी ।
व्याकुल व्याकुल फिरूं रैण दिन, बिरह कलेजो खाय ।
दिवस न भूख नींद नहिं रैणा, मुखसूं कथत न आवै बैणा ।
कहा करूं कुछ कहत न आवै । मिल कर तपत बुझाय ।
क्यूं तरसावौं अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी ।
मीरादासी जनम जनम की, परी तुम्हारे पाय ।।
- मीराबाई की पदावली, परशुराम-
चतुर्वेदी १०१

अहो कदंब । अहो अंब-निंब । क्यौं रहे मौन गहि ।
अहो बट तुंग, सुरंग वीर, कहूं तैं इतउत लहि ।
अहो असोक, हरि सोक, लोकमनि पियहि बतावहु ।
अहो पनस सुभ-भासन, प्यासन, अमृत जु प्यावहु ।।
- नंददास, रास पंचाध्यायी

माई री चंद लग्यौ दुख दैन ।
कहां वौ देस, कहां मन मोहन कहां सुख की रैन।।
तारे गिनत गई री सब निस नैंक (लागे न) बैन ।
परमानन्द प्रभु पिय बिछुरे ते पल न परत चित चैन ।
— परमानंदन ५३७

इसी प्रकार इस साहित्य में सभी संचारियों के उदाहरण ढूढ़े जा सकते हैं । इनमें से अनेकसंचारियों का वर्णन और विशेषता सूरदास में ही आचार्य शुक्ल ने दिखलाई है । अतः इसका और विस्तार नहीं किया जाएगा । केवल स्वप्न का निम्नलिखित सुंदर उदाहरण देकर इस प्रसंग को समाप्त किया जाएगा +

सरस बसंत समय भल पाओलि ।
दखिन पवन बहु धीरे ।।
सपनेहुं रूप वचन एक भाखिए ।
मुख सौ दूरि करु चीरे ।।
तोहर वदन सम चान हो अथि नहिं ।
जइओ जनत बिहि देला ।
कए बेरी काटि बनाओल नव कए ।
तइओ तुलित नहि भेला ।।
लोचन तुअ कमल नहिं भए सक ।
से जग के नहिं जाने ।।
से फिरि जाए नुकैलाह जलभय ।
पंकज निज अपमाने ।।
भनइ विद्यापति सुनह बर जौवति ।
ई सब लछमि सयाने ।।
राजा सिव सिंघ रूप नरायन ।
लखिया देइ पति भाने ।।विद्यापति ३६

समग्र रूप से कृष्णाश्रयी शाखा के संबंध में कहा जा सकता है कि इसमें संचारियों की बड़ी विविधता और प्रचुरता है ।

११- निष्कर्ष

अनुभाव और संचारियों के इस संक्षिप्त अध्ययन से नि-

निष्कर्ष निकलते हैं:-

(१) भक्ति साहित्य में अनुभाव और संचारी भाव दोनों ही प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं ।

(२) मात्रा की दृष्टि से ज्ञानाश्रयी, रामाश्रयी शाखा, प्रेमाश्रयी शाखा तथा कृष्णाश्रयी शाखा में क्रमशः ये अधिक तथा विविध होते गए हैं ।

(३) अनुभावों के शास्त्रीय वर्गीकरण ( सात्विक भाव, कायिक, नायिका के अंगज एवं स्वभावज अलंकार, मानसिक, वाचिक एवं आहार्य) के सभी रूप भक्ति साहित्य में उपलब्ध हैं। किंतु इनमें महत्वपूर्ण केवल सात्विक, कायिक और नायिका के अलंकार ही हैं ।

(४) इन संचारियों में वे सूक्ष्म व्यंजनाएं भी हैं जो कि संचारियों के पारिभाषिक नाम से कुछ परे की हैं । उन सभी का विश्लेषण, वर्गीकरण एवं नामकरण न तो संभव ही है और न ही उपयोगी ।

(५) अनुभाव और संचारियों की दृष्टि से यह साहित्य अत्यन्त पुष्ट है ।

## दशम अध्याय

# हिन्दी भक्ति-काव्य में संभोग शृंगार

(क) पूर्वसंभोग क्रियाएं

(ख) संभोग

(ग) सुरतांत

(घ) हास-विलास

(ङ०) संभोग का साहित्य शास्त्रीय रूप

## हिन्दी भक्ति- काव्य में संभोग-श्रृंगार

### भूमिका -

श्रृंगार के दो भेदों में संभोग श्रृंगार ही महत्वपूर्ण है । विप्रलंभ के मूल में भी इसी संभोग की आकांक्षा रहती है और साहित्य में भी संभोग का विशेष वर्णन है । साहित्य-शास्त्रियों ने श्रृंगार रस के विवेचन में संभोग श्रृंगार के भेदोपभेद नहीं किए हैं । यह संभवतः संभव भी नहीं था । फिर भी इसका यह अर्थ नहीं है कि इसके कुछ मोटे भेदोपभेद नहीं किए जा सकते, यथार्थ में सामाजिकता का आग्रह ही इसका विस्तार न करने का कारण है । किंतु जिस कार्य को साहित्य- शास्त्र ने नहीं किया उसे काम शास्त्र ने उठाया । काम- शास्त्र का सीधा संबंध संभोग से है और उसका इस विषय को उठाना समीचीन था ।

भक्ति-काव्य में उपलब्ध संभोग श्रृंगार का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है । ये भेद संभोग केउपांगों के आधार पर हैं ।

भक्ति-काव्य में उपलब्ध संभोग श्रृंगार का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है :

(क) संभोग- पूर्व क्रियाएं । इसके अंदर वे सभी क्रियाएं आती हैं जो कि सामान्यतः संभोग - क्रिया के पूर्व की जाती है । आलिंगन, चुंबन आदि संभोग के अंग इसके अंतर्गत आते है । इन क्रियाओं के संबंध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये क्रियाएं पूर्व-संभोग क्रियाएं होती हुई भी संभोग में भी प्रयुक्त हो सकती हैं ।

(ख) संभोग । इसके अंतर्गत संभोग की क्रिया है । इसके भी तीन उपभेद किए जा सकते हैं । सामान्य अथवा रति, विपरीत रति तथा रति रण इसके अंतर्गत हैं तीनों में ही क्रिया की प्रमुखता के कारण इनका एक

(ग) सुरतांत । यह संभोग के अवसान का स्वरूप है । इसमें क्रिया के स्थान पर उसके द्वारा उत्पन्न रति शैथिल्य, श्रम, आनंद आदि का वर्णन रहता है । जिस प्रकार संभोग के पूर्व क्रियाएं संभोग की सम्पन्नता की दृष्टि से उसका अंग है उसी प्रकार सुरतांत भी संभोग की सफलता का प्रमाण और उसका अनिवार्य अंग है ।

(घ) हास-विलास । इसके अंतर्गत मिलन की स्थिति में नायक-नायिकाओं के हास- विलास, क्रीड़ा- श्रृंगार आदि आते हैं ।

(ङ) संभोग का साहित्य- शास्त्रीय रूप । इसके अंतर्गत संभोग का साहित्य- शास्त्रियों द्वारा स्वीकृत रूप आता है ।

संभोग के इन विविध रूपों के अंतर्गत भक्ति- काव्य में प्राप्त श्रृंगार का अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

## (क) पूर्व संभोग क्रियाएं

### १- आलिंगन-

भक्त कवियों द्वारा वर्णित संभोग श्रृंगार में आलिंगन का संकेत अनके स्थलों पर है । किंतु यह वर्णन इतना सूक्ष्म और विस्तृत नहीं है कि विविध भेदों को अलग- अलग उनमें देखा जा सके । सामान्यतः भक्त कवियों ने इतना मात्र कहा है कि नायक अथवा नायिका ने एक दूसरे का आलिंगन किया । इस आलिंगन में कुच- स्पर्श का विशेष उल्लेख है । किन्तु यह स्पर्श आलिंगन का अंग नहीं है । नख- क्षत तथा संप्रयोग के आसनों में इसका स्थान है ।।

यदि हम प्रयत्न करें तो काम शास्त्र में विवेचित विभिन्न आलिंगनों में से कुछ हमें विभिन्न भक्त कवियों में मिल सकते हैं । यथाः-

सामान्य आलिंगन -

की यह अवस्था है और इसी रूप में इसका उल्लेख है। इसके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

विद्यापतिः

प्रथमहि गेलि धनि प्रीतम पासे।
हृदय अधिक भैल लाज तरासे।।
ठारि भेलिहि धनि आंगो न डोले।
हेम मुरत सनि मुखहु न बोले।।

कर दुहु धय पहु पाश बैसाए।
रूसलि छलि धनि बदन सुखाए।।
मुख हेरि ताकय भमर झांपि लेल
अंकम भरि कैं कमल मुखि लेल।।
भनइ विद्यापति दइह सुमति मति।
रस बुझ हिन्दुपति हिन्दुपति।। विद्यापति ५७

पथमपि हाथ पयोधर लागु
पुलके प्रमोदे मनोभव जागु।
– – – –
दहन न माने, दोष न जाने
गहवर गाढ़ आलिंगन दानें।। विद्यापति ७२

खनरिखन महधि भइ किछु अरुन नयन कइ
कपटे धरि मान सम्मान लेही।
– – – – – –
प्रथमे रस भा भेले लोभे मुख सोभ गेले
बाँधि भुज-पास पिय धरब गीमा।। विद्यापति १११

सूरः

आजु नँद-नँदन्द रँग भरे।
बिबि लोचन सु बिसाल दुहुनि के चितवन चित्त हरे।।
भामिनि मिले परम सुख पायौ, मंगल प्रथम करे।
कर सौं कर जु करयौ कंचन ज्यौं, अंबुज उरज धरे।।
आलिंगन दै अधर पान करि, खंजन कंज लरे।
हठ करि मान कियौ जब भामिनि, तब गहि पाइ परे

कबहुं पिय हरसि हिरदै लगावै ।
कबहुं लै लै तान नागरी सुधर अति,
सुधर नंद-सुवन कौ मन रिझावै ।।
कबहुं चुंबन देति, आकरषि जिय लेति,
गिरति बिन चेत, बस हेत अपनै ।
मिलति भुज कंठ दै, रहति अंग लटकि कै, ~~जनत-दुख-दूरि-है-भ~~
जात दुख दूरि है झझकि सपनै ।।
लेति गहि कुचनि, बिव, देति अधरनि अमृत,
एक कर चिबुक इक सीस धारै ।।
सूर की स्वामिनी, स्याम सनमुख होइ,
निरखि मुख नैन इक टक निहारै ।। सूर १६७९

साध नहीं जुबतिनि मन राखी ।
मन बांछित सबहिनी फल पायौ, बेद-उपनिषद साखी ।।
भुज भरि मिले, कठिन कुच चांपे, अधर सुधा रस चाखी । सूर १७

रही री लाज नहिं काज आजु हरि, पाए पकरन चोरी ।
मूसि-मूसि लै गए मन-माखन, जौ मेरै धन होरी ।।
बांधौं कंचन-खंभ कलेवर, उभय भुजा दृढ़ डोरी ।
चांपौं कठिन कुलसि-कुच-अंतर, सकै कौन धौं छोरी ।।
खंडौं अधर भूलि रस-गोरस हरैं न काहू की री ।
दंडौं काम-दंड परघर कौ नाउं न लेई बहोरी ।।
तब कुल कानि, आनि भई तिरछौं छमि अपराध किसोरी ।
सिब पर पानि धराई सूर, उर सकुच मोचि खिर ढोरी ।। सूर :

कुंभनदासः
राधाके संग पौढे कुंज-सदन में सहचरी सबै मिलि द्वारैं ठाढ़ी ।
नन्दनन्दन कुंवर वृषभान-तनया सौं करत केलि मैं जु रुचि द
पिया-अंग-अंग सौं लपटाइ स्यामघन,
पिय-अंग-अंग सो लपटाई स्यामा ।।
दोउ कर सौं कर परसि उरोज अति-
प्रेम सौं कियो चुंबन अभिरामा ।। कुंभनदास ३०१

व्यास-

आज बन विहरत जुगल- किशोर ।
सघन निकुंज - भवन मंह बिहरत, सहज सयान प्रीति नहिं थोर
गौर-स्याम तन नील -पीत पट, मोर- मुकुट सिरहोर ।
भूषन, मालावलि, सज मृग मद, तिलक भाल भरि और ।
- प्रथम अलिंगन- चुंबन करि, अधरन की सुधा निचोर ।
मनहुं सरद- चंद की मधु, चातिक तृषित चकोर । ।

++++ ।। व्यास ५७८

जायसी:-

कहि सत भएउ कंठलागू । जनु कंचन मों मिला सोहागू ।।
पद्मा० ३१६-१

मन सौं मन तन सौं तन गहा । हिय सौं हिय बिच हार -
न रहा ।। वही-
३३९-३

उसमान:-

पुनि गहि कुंअर नारिकंठ लाई, कौल लागि हिय जरनि-
सिराई ।। चित्रा-
४०९

बिहंसि कंत कामिनि कंठ लाई, बिरह दगधि उर लाई -
बुझाई ।।वही-
५९७

मंझन:-

कबहिं अलिंगन जे हंसि देई, कबहिं कटाछ जीव जो लेई ।'
मधुमालती - पृ० ४१
कुंअर के गीवा कुंअरि लगाई, भा सचेत जो प्रीतम लाई ।।
वही पृ० १००

इसी प्रकार के सामान्य आलिंगन से संबंधित उद्धरण सभी कवियों के संयोग वर्णन में प्राप्त है ।

विद्धक[1]- इस भेद का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं किंतु गोपियों द्वारा यशोदा को दिए गए उलाहनों में संकेत है । कृष्ण छोटे होते हुए भी काम- कला प्रवीण है । गोपियाँ भी मदमाती है । वे स्वयं कृष्ण का आलिंगन करती हैं । तो कृष्ण भी उसका प्रत्युत्तर देते हैं ।

ग्वालिन उरहन कै मिस आई ।
नंद- नन्दन तन-मन हरि लीन्हौ, बिनु देखें छिन रह्यौ न जाई
सुनहु महरि अपने सुत के गुन, कहा कहौं किहि भाँति बनाई ।
चोलीं फारि, हार गहि तोरयौ, इन बातनि कहौ कौन-
बड़ाई ।। सूर ९२१

+ + +

झूठेहिं मोहिं लगावति ग्वारि ।
खेलत तैं मोहिं बोलि लियौ इहिं, दोउ भुज भरि दीन्हीं -
अंकवारि ।
मेरे कर अपनै उर धारति आपुन ही चोली धरि फारि ।।
सूर ९२२

+ + +

अपविद्धक[2]- सूर का निम्नलिखित पद इस आलिंगन के उदाहरण में दिया जा सकता है । कृष्ण की अवस्था बारह वर्ष की है । काम से पीड़ित होकर गोपियां उन्हें अपने हृदय से लगा लेती है ।

गए स्याम तिहिं ग्वालिन कैं घर ।
देखी जाइ मथति दधि ठाढ़ी, आपु लगे खेलन द्वारे पर ।
फिर चितई, हरि दृष्टि गए परि, बोलि लए हरुऐं [illegible]
घर ।।
लिए लगाई कठिन कुच कै बिच, गाढ़ै चाँपि रही [illegible]

---

१- विद्धक- यह नायक-नायिका का परस्पर आलिंगन है । [illegible]
नायिका किसी बहाने से नायक का अपने कुचों से आ[illegible]
स्पर्श करती है और नायक भी प्रत्युत्तर में उसका आ[illegible]
२- अपविद्धक- इसमें केवल नायिका ही सक्रिय भाग लेती है, ना[illegible]
निष्क्रिय रहता है ।

उमगि अंग अँगियाँ उर दरकी, सुधि बिसरी तन की तिहिं औसर ।
तब भए स्याम अरस आदस के, रिझे जुवती वा छवि पर ।
मन हरि लियौ तनक से ह्वै गए देखि रही सिसु रूप मनोहर ।
माखन लै मुख धरति स्याम कैं सूरज प्रभु रति- पति नागर वर ।।

सूर - ९१९

लतावेष्टित[3]

राधा और कृष्ण के संयोग में स्थान- स्थान पर उनके आलिंगन की उपमा तमाल से लिपटी लता द्वारा दी गई है । इस प्रकार के सभी आलिंगन तलावेष्टितक के अन्दर रखे जा सकते हैं ।

किसोरी अंग अंग भेंटी स्यामहिं ।
कृष्न तमाल तरल भुज साखा, लटकि मिली ज्यौं दामहिं ।
अचरज एक लता गिरि उपजै, सोउ दीन्है करूनामहिं ।
कछुक स्यामता स्यामल गिरि की, छाई कनक अगामहिं ।।

सूर २७४८

+ + +

रसना जुगल रस- निधि बोल ।
कनक बेलि तमाल अरूझी, सुभुज बंध अखोल ।

सूर २७५०

+ + + +

कुसुम माल असि मालति पाई । जनु चंपा गहि डार ओनाई ।।

पद्मावती ३१६-३

तिल तंडुलक और क्षीर नीरक

प्राप्त प्रसंगों में क्रिया और आलिंगन की [illegible] का विस्तृत उल्लेख न होने के कारण इनको अलग - अलग

---

३- लतावेष्टित- वृक्ष पर लिपटी हुई लता की भाँति नायिका द्वारा नायक का आलिंगन करना ।

बतलाना असंभव सा ही है । इन आलिंगनों का वर्णन मरकत-कंचन, घन- दामिनी या घी- शक्कर के संयोग की भांति किया गया है ।

नवल किसोर नवल नागरिया ।
अपनी भुजा स्याम -भुज ऊपर, स्याम भुजा अपने उर धरिया ।।
क्रीड़ा करत तमाल- तरुन -तर, स्यामा स्याम उमंगि रस भरिया ।
यौं लपटाइ रहे उर-उर ज्यौं, मरकत मनि कंचन मैं जरिया ।।
उपमा काहि देउं, कौ लायक, मन्मथ कोटि वारने करिया ।
सूरदास बलि- बलि जोरी पर,नंद कुंवर वृषभानु -कुंवरिया ।।
१३०६

स्यामा स्याम करत बिहार ।
कुंज गृह रचि कुसुम सज्जा, छबि बरनि को पार ।
सुरत- सुख कारि अंग आलस, सकुच बसन सम्हारि ।
परसपर भुज कंठ दीन्हैं, बैठे हैं बर नारि ।।
पीत कंचन - बरन भामिनि, स्याम घन- अनुहारि ।।
सूर घन अरु दामिनी, प्रकट सुख विस्तारि ।। सूर २२९७

निरखि सखि, स्यामा विहरति पि सौं ।
मुख मंह अधर, नाहु बाहुन मंह बिछुरत नाही कुच जुग हिय सौं ।।
लट मैं लट, पट मैं पट अरुभै, तन मैं तन, मन मैं मन हिय सौं ।
मिलि बिछुरी न " व्यास " की स्वामिनि, ज्यौंब खांड मिलि-
घिय सौं ।। व्यास - ५७६

स्तनालिंगन - इसका वर्णन - सूर सागर मैं - उदाहरणार्थ नीचे दिये गए पदों मैं आया है ।

---

४- तिल- तंडुलक - शयनावस्था मैं नायक - नायिका का [illegible] पर तिल की भांति आलिंगन ।

५- क्षीर नीरक- नायक- नायिका का एक दूसरे के शरीर [illegible] जाने का सा प्रगाढ़तम आलिंगन ।

६- स्तनालिंगन- नायिका द्वारा नायक का अपने स्तनों से आलिंगन

प्यारी स्याम लई उर लाइ ।
उरज उर सौं परस कौ सुख, वरनि कापै जाइ ।।
कनक-छवि तन मलय-लेपन, निरखि भामिनि - अंग ।
नासिका सुभ बास- लै लै, प्रुलक स्याम अनंग ।।
देति चुंबन, लेति सुख कौं, मानि पूरन भाग ।
सूर- प्रभु बस किये नागरि, बदति धन्य सुहाग ।। सूर १६९९

स्यामा स्याम अंकम भरी ।
उरज उर परसाइ, भुज- भुज जोरि गाढ़ै धरी ।।
तुरत मन सुख मानि लीन्ही, नारि तिहिं रंग ढरी ।
परस्पर दोउ करत क्रीड़ा राधिका नव हरी ।। सूर १७८५

\+ + + +

ललाटिका-[७]

इसके उदाहरण स्वरूप निम्नलिखित पद दिये जा सकते हैं:-

हरि उर मोहिनि- बेलि लसी ।
तापर उरग ग्रसित तव, सोभित पूरन- अंस ससी ।
चापति कर भुज दंड रेख गुन, अंतर बीच कसी ।
कनक- कलस मधु - पान मनौ करि भुजगिनि उलटि धंसी ।।
तापर सुंदर अंचल झाप्यौ, अंकित दंसत सी ।
सूरदास- प्रभु तुमहिं मिलत, जनु दाड़िम बिगसि हँसी ।।सूर १८१४

लपटे अंग सौं सब अंग ।
सुरसरी मनु कियौ संगम, तरनि तनया संग ।।
जोरि अंक प्रयंक पौढ़े, ओढ़ि बसन सुरंग ।
गिरत करते कुसुम कुंतल, अरल तरल तरंग ।।
नवल मृग- दृग त्रिषित आतुर, पिवत नीर निसंग ।।
नाद किंकिनि - केहरी सुनि, चपल होत सारंग ।
बाहुवनि बन विविध फूले, जलज जमुना-गंग ।।
ललित लटकनि डोल मानौ, मधुप माल मतंग ।

---

७- ललाटिका- नायिका का नायक के ऊपर या पार्श्व में लेटकर ललाट

कुच कठोर किसोर उर पिवि, लगत उछरि उमंग ।
कंठ पायौ असम, लाजत उपंगि - होत उतंग ।।
बनी क बेसरि नासिका मिलि, मिले दोउ अरधंग ।
मैन मनसा बस पर्यौ मिटि, चपल ताल तरंग ।
करम नथ नव जोति संगम, जोर भूप अनंग ।
देत दोन विलास- सहचर, सूर सुविधि सु अंग ।। सूर २७४९

वृक्षाधिरूढक-

पद्मावत में जनु चंपा गहि डार ओताई (३२६-३ ) के द्वारा व्यक्त किया गया है ।

वृक्षाधिरूढक-

नायिका का नायक के एक चरण पर अपना चरण रख कर दूसरे पैर को नायक के जंघो पर लपेट कर वृक्ष पर चढ़ने की भांति का रूपक कर आलिंगन करना और उसक विभिन्न अंगों को भुकाकर चुंबन करना ।

आलिंगन का उल्लेख ज्ञानाश्रयी और रामाश्रयी शाखा में नहीं है । प्रेमाश्रयी शाखा के संभोग प्रकरणों में भी उनका संकेत मात्र ही जिनका उल्लेख पीछे किया जा चुका है । कृष्णाश्रयी शाखा ही इसका भंडार है ।

३ भक्ति-काव्य में चुंबन के प्रकार-

भक्त कवियों ने संभोग के अंग रूप मे चुंबन का निरंतर उल्लेख किया है । वे तो अपने इष्टदेव, प्रियतम-प्रिया आदि को केलि का वर्णन करना चाहते ह थे । इस केलि में अ. चुंबन का प्रवेश स्वाभाविक रूप से हुआ है । जिस प्रकार हम रचनाओं को किन्हीं सिद्धांतों के उदाहरण स्वरूप नहीं उसी प्रकार कहीं भी उन्होंने चुंबन के प्रत्येक उपभेदों को या बताने का प्रयत्न नहीं किया है । उन्होंने तो चुंबन मात्र किया है । यह दूसरी बात है कि उनमें हम चुंबन के शास्त्रीय भेदों की खोजों में सफल हो सकें ।

नीचे कुछ कवियों द्वारा प्रस्तुत चुंबन के कुछ उल्लेख दिए जा रहे हैं। ज्ञानाश्रयी और रामाश्रयी शाखाओं में इसका अभाव है।

विद्यापति ने राधा कृष्ण और गोपियों के शृंगार का विस्तृत वर्णन किया है। इन सभी वर्णनों में चुंबन का महत्वपूर्ण स्थान है और इसका विभिन्न प्रकार से वर्णन है। कहीं कामांध नायिका व्याज से नायक को इसकी ओर आकर्षित करती है, तो कहीं नायिका के रसहीन अधरों को देखकर अन्य गुवालिने अधरपान किए जाने का अनुमान करती है, तो कहीं कृष्ण स्वयं चुंबन करते हैं। यथा:

सामरि है झामरि तोर देह।
की कह के सयँ लाइल नेह।।
नीन्द भरल अछ लोचन तोर।
अमिय भरमें जनि लुबुध चकोर।
निरस धुसर करु अधर पँवार।
कौन कुबुधि लुटु मदन-भँडार।। आदि।। विद्यापति ६८
प्रथमपि हाथ पयोधर लागु
पुलके प्रमोदे मनोभव जागु।

धाम्मिल धरइ अधरमधु पीवे। आदि। विद्यापति ७२

जायसी में पद्मावती नव-विवाहिता होते हुए भी प्रेम मार्ग में इतनी पगी हुई है कि प्रथम समागम के लिए उसे तैयार करने की आवश्यकता रत्नसेन को नहीं पड़ी। दोनों ही मँजे हुए खिलाड़ी हैं। रति-रण तो पहले से ही होने लगता है। रत्नसेन अंग अंग का आलिंगन कर के उसका रस लेता है:

कहि सत भाउ भएउ कँठ लागू। जनु कँचन सौं मिला सोहागू।
चौरासी आसन बर जोगी। खट रस बिंदक चतुर सो भोगी।
कुसुम माल असि मालति पाई। जनु चँपा गहि डार ओनाई।
कली बेधि जनु भँवर भुलाना। हना राहु अर्जुन के बाना।
कँचन करी चढ़ी नग जोती। बरसा सौं बेधा जनु मोती।
नारँग जानु कीर नख देई। अधर आँबु रस जानहु लेई।

नायिका के सभी अंग नायक के अंगों से जा मिले और अपना रस देने लगे -

> कै सिंगार तापहँ कहँ जाऊँ । ओहि कहँ देखौं ठावहिं ठाऊँ ।
> जौं जिउ महँ तौ उहै पियारा । तन महँ सोइ न होइ निरारा
> नैनन्ह माँह तौ उहै समाना देखउँ जहाँ न देखउँ आना ।
> आपनु रस आपुहि पै लेई । अधर सहै लागे रस देई ।। आदि।
>
> जायसी ३२५

रतिरण के लिए ललकारने पर रत्नसेन राम-रावण रण का रूपक देते हुए कहता है कि यहाँ अधरों में भरे अमृत रस को लूँगा -

> हौं अस जोगि जान सब कोऊ । बीर सिंगार जिते मैं दोऊ
> उहाँ न समुँह रिपुन दर माहा । इहाँ त काम कटक तुव पाहाँ
> उहाँ त कोपि बैरिदर मडौं । इहाँ त अधर अमिअ रस -
> खंडौं ।। आदि - जायसी-
>
> ३३४

जब सखियाँ पूछती हैं कि जो अधर"पान" को सहन नहीं कर पाते थे उन्होंने कैसे राजा के चुंबन का सहा-

> अधर जो कोवल सहत न पानू । कैसे सहा लागि मुख मानू ।।
>
> जायसी -३२३

चित्रावली में कौलावती से विवाह के उपरांत सुजान अपने प्रण के अनुसार रति छोड़कर अन्य सभी क्रियाएं कौलावती के साथ करता है जिनमें चुंबन भी है:-

> अधरन लाइ अधर रस लीन्हा, एक रस छाड़ि और सब लीन्ह
>
> चित्रावली ४०९

चित्रावली के अधरों का पान भी आलिंगन के बाद सुजान ने किया :-

> अधर घूंट सो अमिरित पीआ, जेहि के पिअत अमर भा हीया
>
> वही ५३६

श्री भट्ट की युगल वाणी में भी एक दोहा चुम्बन पर है:-

प्यारी प्रीतम परस्पर, उभ्यो अंग अनुराग ।
अधर सुधा रस देत हैं, लेत स्याम बड़ भाग ।। ७७

कृष्ण भक्त कवियों मे यों तो सभी ने चुंबन का कुछ न कुछ वर्णन अवश्य ही किया है पर जितना अधिक इसका उल्लेख सूर और हरिदास व्यास ने किया उतना अन्य किसी ने नहीं । नीचे चुंबन के कुछ उदाहरण और उनका विश्लेषण दिया जा रहा है ।

कभी राधा स्वयं कृष्ण को चुंबन देती है तो कभी प्रेमोन्मत्त होकर कृष्ण व राधा परस्पर अधर रसों का पान करते हैः-

कमल कोष तनु कोमल हमारे ।
दिढ़ आलिंगन सहए के पारे ।
जापि चिबुक है अधर मधुपीवे ।
कओने जानल हमेउ धरब जीवे ।। विद्यापति २८७

कबहुं पिय हरषि हिरदै लावै ।
कबहुं लै लै तान नागरी सुघर अति, सुघर नंद-सुवन कौ मन रिझावै
कबहू चुंबन देति, आकरषि जिय लेति, गिरति बिनु चेत, बस हेत अपनै ।।
मिलत भुज कंठ दै, रहति अंग लटकि कै, जात दुख दूरि ह्वै - झझकि सपनै ।।
लेति गहि कुचनि बिच,देति अधरनि अमृत, एक कर चिबुक इकसीस-धारै ।।
सूर की स्वामिनी, स्याम सन्मुख होइ, निरखि मुख नैन इक टक निहारै ।। १६७९

अधर रस अँचवत परसपर, संग सब ब्रजनारि ।। १६८०

प्यारी स्याम लई उरलाइ ।
उरज उर सौं परस कौ सुख, बरनि कापै जाई ।।
कनक छबि तन मलय- लेपन, निरखि भामिनि - अंग ।
नासिका सुख बास लै - लै, पुलक स्याम- अनंग ।।
देति चुंबन, लेति सुख कौं, मानि पूरन भाग ।
सूर- प्रभु बस किये नागरि [illegible] ।। सूर १६

रीझै परस्पर नर-नारि ।
कंठ भुज- भुज धरे दोऊ, सकत नहीं निवारि ।।
गौर स्याम कपोल सुललित, अधर अमृत -सार ।
परस्पर दोउ पीय प्यारी, रीझि लेत उगार ।।
प्रान इक, द्वै देह कीन्हे, भक्ति- प्रीति - प्रकास ।
सूर स्वामी स्वामिनी मिलि करत रंग विलास ।। सूर १७००

उपर्युक्त पदों में चुंबन का स्वरूप शुद्ध " पीड़ित"[८] है । तृतीय उदाहरण में चुंबन के साथ - साथ घ्राण का भी उपयोग है । चुंबन में प्रिय के अंगों की सुगंधि राग को तीव्र करने वाली होती है । प्रस्तुत उदाहरण में द्वितीय और तृतीय पद " उद्भ्रांत-चुंबन "[९] के उदाहरण स्वरूप भी दिये जा सकते हैं । निम्नलिखित पद में व्यक्त चुंबक में नायिका की सक्रियता द्रष्टव्य है । इसको चुंबन के परंपरागत भेदों में रखना कठिन है ।

पिय भावति राधा नारि ।
उलटि चुंबन देति रसिकिनि, सकुच दीन्हीं डारि ।। सूर-
३०७७

उपर्युक्त उदाहरणों में नायिका का निंसकोच सम-सहयोग दोनों की रागान्धता का परिचायक है ।

नेत्र - चुंबन -

कवियों ने नेत्रों के चुंबन का भी संकेत किया है । प्रायः यह संकेत नायिका के नेत्रों पर पान की लगी हुई पीक का वर्णन कर किया जाता है ।उदाहरण के लिए हरिराम व्यास को एक प- की कुछ पंक्तियां ही यथेष्ट होंगी :-

---

८- शुद्ध पीड़ित चुंबन- जब नायक- नायिका दोनों सक्रिय भाग लेकर अधर पान करते है तब उस चुंबन को " शुद्ध पीड़ित " चुंबन कहा जाता है ।

९- उद्भ्रान्त चुंबन - इसमें नायक अपने एक हाथ से नायिका के चिबुक को [illegible]

देखि सखी, आंखिन सुख दैन दोऊ जन ।
बिथुरी- अलक, पीक-पलक, खंडित - अधर ।
मंडित गंड, सिथिल- बसन गौर- सांवरे तन ।। व्यास ३१९

कपोल- चुंबन

कपोल चुंबन का उल्लेख भी नेत्र चुंबन के साथ ही साथ हुआ है । नेत्रों की भांति कपोलों पर पीक देख कर इसका अनुमान किया गया है ।

लालन सौं रति मानी जानी, कहे देत नैना रंग-भोए ।
चंचल अंचल कतहिं दुरावति, मानहु मीन महाउर धोए ।
पीक कपोलनि तरिवन कै ढिग, झलमलाति मोतिनि -
छवि जोए ।
सूरदास प्रभु छबि पर रीझे, जानति हौं निसि नैकु न सोए
सूर ३९८१

कामशास्त्र में वर्णित चुंबन विधियों में दो प्रकारों का उल्लेख नहीं है जिनका कवियों ने यथेष्ट वर्णन किया है । एक तो स्तन ग्रहण पूर्वक चुम्बन लेने की विधि और दूसरी केश पकड़ कर । इन दोनों के एक - एक, दो - दो उदाहरण रोचक होंगे ।

स्तन ग्रहण पूर्वक चुम्बन-

निरखि मुख कौ सुख, नैन सिरात ।
सैननि कौ सुख कहत बनै न, निमेष ओट मुसिक्यात ।।
अंग- अंग आलिंगन के रस, रोमनि पुलक चुचात ।
कुच गहि चुंबन करत, अधर मधु पीवत, जीवत गात ।।
"व्यास" बस निधि सब निसि लूटी, किसोर भोर पछतात ।
- व्यास ३९६

वह छबि अंग निहारत स्याम ।
कबहुंक चुंबन देत उरज धरि, अति सकुचति तनु बाम ।।
सन्मुख नैन न जोरति प्यारी, निलज भए पिय ऐसे ।।

राधा के संग पौढ़े कुंज-सदन में सहचरी सबै मिलि द्वारे-
ठाढ़ी ।
नन्दनन्दन कुंवर बृषभान- तनया सों करत केलि में जु-
रुचि बाढ़ी ।।
पिया - अंग - अंगसों लपटाई स्यामघन ।
पिय अंग अंग सों लपटाई स्यामा ।
दोउ करसों कर परसि उरोज अति -
प्रेम सों कियो चुंबन अभिरामा ।। आदि कुंभन दास ३०१

पीन पयोधर दै मेरी दीनै ।
अधर- सुधा मधु प्याइ जिवावहु, विरह रोग बलहीनै ।
ओली ओटत चोली के बंद, खोलन दे आधीनै ।
कुच गहि चुंबन दान लेन दे, चरन - कमल रज लीनै ।
अपनें अंग नयन के घर में, मिलन दे स्याम नगीनै ।
व्यास स्वामिनी सुनि रति - ललिता, पोषत मोहन-
मीनै ।। व्यास ५३६

धाम्मिल ग्रहण पूर्वक- चुंबन
---

गोरी-गोपाल लाल बिहरत बनवासी ।
सघन कुंज तिमिर-पुंज हरत, करत हांसी ।।
अधर-पान-मत्त, नैन-सैन भुव-विलासी ।
अकोर उरज पै किसोर, बांधे लट-पासी ।।
कच धरि ही चुंबन करि, भुजन बीच गांसी ।
कर अंचल चंचल अति, हित की निजु दासी ।।
विपरित रति रंग रचे, अंगनि छबि भासी ।।
व्यास निरखि मुदित, निगम-सिंधु-सींव नासी ।।

देखें ५७९

प्रथमंपि हाथ पयोधर लागु
पुलके प्रमोदे मनोभव जागु ।
- - - - -
धाम्मिल धरइ अधर-मधु पीवे । आदि । विद्याप

## ४ नख-क्षत

आलिंगन और चुम्बन से अधिक नख-क्षत का उल्लेख साहित्य में मिलता है। आलिंगन और चुम्बन तो संभोग के अनिवार्य अंग से ही है और शायद इसीलिए उनके विस्तृत और निरन्तर उल्लेख की आवश्यकता नहीं समझी गई। इसके विपरीत नख-क्षत संभोग के साथ-साथ सदैव स्थान प्राप्त करता रहा। इसके द्वारा नायिकाओं का सोहाग परिलक्षित होता रहा है और खंडिताएं इसी से प्रिय की अन्यत्र केलि से अवगत हुई हैं।

नख क्षत में काम पीड़ा का स्वरूप आलिंगन और चुंबन से अधिक स्पष्ट और तीव्र है। प्रवृद्ध रागावस्था में ही यह सह्य होता है और उसका यह द्योतक है।

ज्ञानाश्रयी और रामाश्रयी शाखाओं में नख-क्षत का उल्लेख नहीं है। कामशास्त्र में वर्णित नख-क्षतों के विभिन्न भेदों का वर्णन भक्त कवियों में नहीं मिलता। केवल विद्यापति ही में एक-दो रूपों का हम ढूंढ सकते हैं। उनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

रेखा [१०]

उधसल केस कुसुम छिरि आएल खंडित दशन अधरे।
पीन पयोधर नखरेख सुन्दर करै बांधह का गोरि।
मेरु शिखर नव उगि गेल ससधर गुपुति न रहलि ए चौरि।
विद्या २

अर्धचन्द्रक [११]

कुच कोरी फल नख-खत रेह
नव ससि छन्दे अंकुरल नव रेह ।। विद्या ३०२

घूंघट-पट न संभारत प्यारी
उर नख-अंक कलंक ससी, जनु तिलकन सरस सिंगारी
मरगजी माल, सिथिल कटि-किंकिन, स्वेद सलिल तन सारी।
सुरति भवन मोहन बस कीने। व्यासदास"बलिहारी ।।
व्यास ३१०

---

१०- रेखा- नख द्वारा खींची गई सीधी रेखाएं
११- अर्धचन्द्रक- गले और स्तनों पर अर्धचन्द्राकार दन्त चिह्न।

शशाप्लुतक[१२]

माधव सिरिस कुसुम सम राही ।
लोभित मधुकर कौसल मनुसर
नव रस पिवु अवगाही ।।
अँकम भरि हरि सयन सुतायल
हरल वसन अविसैखै ।
चाँपल रोस जलज जनि कामिनि
भेदनि देल उपेधे ।।
एक अधर कै नीवि निरोपलि
दू पुनि तीनि न होई ।
कुच-जुग पाँच पाँच ससि उगल
कि लय धरथि धनि गोई ।। २९२

मयूर [१३]

कुसुम तोरए गेलाहु जाहाँ ।
भमर अधर खँडल ताहाँ ।।
तै चलि अयलाहु जमुना तीर ।
पवन हरल हृदय चीर ।।
ए सखि सरूप कहल तोहि ।
आनु किछु जनि बोलसि मोहि ।।
हार मनोहर वेकत भेल
उजर उगर सैसपु गेल ।।
तैं धसि मगुरे जोड़ल भाँप ।
नखर गड़ल हृदय काँप ।।
भने विद्यापति उचित भाग ।
वचन-पाखे कपट लाग ।। विद्या ३५५

---

१२- शशाप्लुतक- स्तनाग्र के बगल मैं पाँचों उँगलियों को मिला कर किंचित दबाव से यह किया जाता है ।

१३- मयूर पदक - स्तनाग्र पर अँगूठा रख कर अन्य चारों उँगलि से ऊपर से नीचे खरोच देने का चिन्ह मयूर प कहलाता है ।

उत्पल पत्रमाला[१४]

गगन मगन होअ तारा ।
तइअओ न कान्ह तेजय अभिसारा ।।
आपना सरवस लाथे ।
आनक बोलि नुड़िअ दुहु हाथे ।।
टुटल गुम मोति हारा ।
बेकत भेल अछ नख-खत धारा ।।
नहि नहि नहि पए भाखे ।
तइअओ कोटि जतन कर लाखे ।।
भनइ विद्यापति वानी ।
एहि तीनहु मह दूती सयानी ।। विद्या ३४१

किंशुकनख-क्षत

विद्यापति ने अपने कुछ पदों ने नख-क्षत की उपमा किंशुक पुष्पों से दी है । इसके दो अर्थ हो सकते हैं । पहला तो यह केवल उपमा मात्र है । कुछ-कुछ रक्तिम नख क्षत किंशुक फूल से लगते हैं । दूसरी बात यह भी हो सकती है कि मिथिला प्रदेश में शायद उस समय नख-क्षत का एक भेद किंशुक माना जाता रहा हो । विद्यापति के एक दो ऐसे पद नीचे दिए जा रहे हैं ।

उधसल केस पास लाजे गुपुत हास,
रजनि उजागरे मुख न उजला ,
नख पद सुन्दर पीन पयोधर
कनक संभु जनि केसु पूजला ।। आदि ।। विद्या ३

सामर पुरुसा मधु घर पाहुन रंगे विभावरी गेली ।
काचा सिरिफल नख भूति लआलन्हि केसु पखुरिया भेली
से पिया दए गेल केसु पखुरिया धरय न पारल मोमें रे ।
आदि । विद्या ७७

---

१४- उत्पलपत्रक- स्तन मंडल या मेखला पंथ पर कमल के पत्ते का चिन्ह । कमर के चारो ओर जब बहुत से ऐसे चिन्ह किए जाते हैं तो उन्हें उत्पल पत्र माला

सामान्य नख-क्षत
---

काम - शास्त्र वर्णित नख - क्षतों के विभिन्न रूपों का उल्लेख भक्त- कवियों की रचनाओं में स्वाभाविक रूप से किया जा सकता था । इसके द्वारा नायक- नायिका के काम-शास्त्रज्ञ होने का संकेत बड़ी सरलता और सुन्दर ढंग से हो सकता था । पर भक्त कवियों ने नखक्षतों का इस रूप में प्रायः वर्णन नहीं किया है । इसके स्थान पर नख-क्षत का सामान्य उल्लेख प्रायः मिल जाता है । सामान्य नख-क्षत का यह वर्णन प्रेमाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखा में उपलब्ध है । इनके उदाहरणार्थ कुछ उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं :-

नारंग जानु करि नख देई । अधर आंबु रस जानहुं लेई ।
पद्मावत-- ३१६-६

अधर रदन छद उरज नख, उधसि गई पुनि मांग ।
प्रथम समागम जनु कियो, सिथल भयो सब आंग ।। चित्रा- ४०९

दीन्हीं चार नखच्छत छाती, फूट सिंधोर सेज भई राती ।।
वही-५९७

छबीले रंगनि अंग रचे ।
बिहरत रसिक निकुंज -भवन में, रति-सुख पुंज सचे ।।
+ + + +
खंडित गंड कपोलनि उमग, बिदारत कुचनि लचे ।
जनु रन में जूझत है जोधा, तामस तमकि तचे ।। व्यास- ५६३

राधा प्यारी तेरे नैन सलोल ।
तैं जिन भजन कनक तन जौवन लियो मनोहर मोल
अधर निरंग, अलक लट छूटी, रंजित पीक कपोल ।
तू रस मगन भई नहिं जानत, ऊपर पीत निचोल ।।
कुच युग पर नख रेख प्रगट मानों शंकर शिर शशि टोल ।
जै श्री हित हरिवंश कहत कुछ भामिनि अति आलस सौं

डग मगि चलि आगु कछु औरहिं बंदसि माई री । रही है बेनि छूटि ।
अधर निरंग अरु नख लागे उर पर, मरगजी चोली मोती लर गई टूटि।।
अंचल पीक तेरैं लागी है री, जहाँ- तहाँ पैंजनि सखी सकल करैं कूटि।
कुंभनदास सौरभ भरी जोबन,धन गिरिवर- धरन लालन लई लूटि ।।
- कुंभनदास ३१२

नायक के द्वारा नखक्षत संभोग शृंगार में अति प्रयुक्त है किन्तु नायिका के द्वारा नख-क्षत खंडिता के प्रसंग में ही सामान्यतः मिलता है:-

यथा - कृपा करी उठि भोरहीं मेरैं गृह आए ।
अब हम भई बड़भागिनी, निसि चिह्न दिखाए ।।
जावक भालनि सौं दियौ, नीकैं बस पाए ।
नैन देखि चकित भई, त्यौं पान खवाए ।।
अधरनि पर काजर बन्यौ, बहुरंग कहाए ।
बंदन बिंदुली भाल की, भुज आप बनाए ।।
यह मोसौं तुमहीं कहौ, उर - छत अकनाए ।
सूर स्याम जस-रासि हौं, धनि तिया हँसाए ।। सूर ३३०७

रति रण के विभिन्न आयुधों में नख की भी गणना की गई है :-

जोबन - बल दोऊ दल साजत, राजत खेत खरे ।
गौर-स्याम सैनिक सनमुख, रजनी मुख कोप क भरे।।
दस नख - बान प्रहार सहत दोउ, उरज-सुभट न टरे ।
भागत नहिं लागति छति अधरनि, दसनायुध निदरे ।।
नैन-सिलीमुख छूटत, अंगनि फूटति डर न डरे ।
मानहु मत्त गयंद- गयंदिनि, बन अहंकार परे ।।
तन सौं तन, मन सौं मन, अरुझ्यौ, धीर न प्रगु
व्यास हँसत दोऊ कुंज- सैन तैं, प्रात समय निकरे ।।
व्यास - ५८९

**एक बीभत्स वर्णन-**

नख-क्षत के प्रसंग में भक्त कवि हरिराम व्यास की एक

हुए नायक के कर ऐसे लग रहे है जैसे जौंक रुधिर पीती हों । यह वर्णन उत्प्रेक्षा की दृष्टि से चाहे कितना भी उपयुक्त हो किंतु इसका प्रभाव अत्यन्त वीभत्स है । यह पद निम्नलिखित है ।

व्यास -

नैन सिरात गात अवलोकै ।
इनि मंह सोभा- सिंधु समात न , पलक साँकरी ओकै ।।
प्रबन होत उर भवन हमारे, सुनत तुम्हारी टोकै ।
कहा- कहा अनुभव कहियै हो, सकल कला- कुल कोकै ।।
कुच कौ रस चाखत कर जैसै, रुधिरहिं पीवत जोकै ।
ऐसी ही "व्यास" रसिक रस- भोगी, बिरस दुखित सिर-
ठोकै ।। व्यास ६९७

५- दशनच्छेदन

भक्त कवियों ने उपर्युक्त अन्य प्रक्रियाओं की भांति - दशनच्छेदन श्री का भी उल्लेख मात्र किया है । उनके विभिन्न ब भेदों का वर्णन नहीं मिलता है । सामान्यतः दशनच्छेदन अधर पर किये जाने का उल्लेख है और इसमें स्पष्ट क्षत हो जाता है । यह क्रिया विन्दु[१५] के निकट किंतु उससे भिन्न है। नख-दंत क्षत के द्वारा ही सुरति का पता नायिका की सखियों को लगता है:- यथा -

सुनि री कुल की कामि, ललन सौं मैं झगरौ मांड़ौगी ।।
मेरे इनके कोउ बीच परै जिनि, अधर दसन खाड़ौगी ।।
चतुर नायक सौं काम परयौ है, कैसै कै छाड़ौगी ।
सूरदास- प्रभु नन्द- नन्दन कौ, रस लै लै डांड़ौगी ।। सूर

पियहिं निरखि प्यारी हँसि दीन्हौ ।
रीझे स्याम अँग-अँग निरखत, हँसि नागरि उर लीन्हौ
आलिंगन दै अधर दसन खँडि़, कर गहि चिबुक उठावत ।

१५- विन्दु- अधोदन्तावलि के अग्रदंत तथा उत्तरोष्ठ के बीच त्वचा के अत्यल्प प्रदेश को सँड़सी की भांति पकड़ने से बिन्दु की उत्पत्ति

नासा सौं नासा लै जोरत, नैन नैन परसावत ।।

इहिं अंतर प्यारी उस निरख्यौ, झझकि भई तब न्यारी ।
सूर स्याम मोकौं दिखरावत, उर ल्याए धरि प्यारी ।।

सूर ३०३०

आजु अति कौपे स्यामा- स्याम ।
वीर खेत वृंदावन दोऊ, करत सुरत - संग्राम ।।

\+ + + +

दसन -शक्ति, नख-सूलनि बरषति, अधर, कपोल बिदारे ।
घूंघट, घुंघी, मुकुट, टोपा, कवची, कंचुक भये न्यारे ।। आदि -

\- व्यास ५८८

मोहत री मन मैन मनावनि, रसिक वर की कुमरावनि ।
कोमल किसलय सयन सुहावनि, ता पर सुढर-ढरनि ढरकावनि ।।
अधर-सुधा अंचवनि अंचवावनि, दसन खंड गंडनि मंडावनि ।।
श्रीहरि प्रिया विमल विलसावनि, सदा सबनिकौ सुख- सरसावनि ।।

महावाणी, सुरतसुख ७६

प्रेमाश्रयी काव्यों में दशनच्छेदन का स्वल्प उल्लेख है । पद्मावत में पद्मावती रत्नसेन से कहती है तू रति के दस दांव करता है ।[१६] इसी संकेत में दशनच्छेदन का भाव भी है -

दसौ दांव तोरे हिय मांहा । पद्मावती ३१२-६

चित्रावली में इसका स्पष्ट संकेत है - अधर रदन छद उरज नख,

उधसि गई पुनि मांगा ।।

\- चित्रावली ४०९

६- केशोद्‌घास

भक्त - कवियों ने सुरत में केश और विशेष कर मा विखरने का उल्लेख किया है । सफल रति का यह भी चिह्न माना गया है । चित्रावली में जब सुजान का विवाह कौलावती से हुआ तो सोहाग रात के समय उसने संभोग नहीं किंतु कामोद्दीपन की समस्त क्रियाएं की जिनमें एक यह भी थी और जिसे देख कर उसकी माता ने रति सफल होने का अनुम

किया ।

अधर रदन छद उरज नख, उघसि गई पुनि मांग ।
प्रथम समागम जनु कियौ, सिथल भयौ सब आंग ।।

मित्रा - ४०९

अथवा पद्मावत में -

कहौं जूझि जस रावन रामा । सेज विधंसि विरह संग्रामा ।
लीन्ह लंक कंचन गढ़ टूटा । कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा ।।
औ जोबन मैमंत बिधंसा । बिचला बिरह जीव लै नंसा ।।
लूटे अंग अंग सब भेसा । छूटी मंग भंग भे केसा ।। आदि-

- जायसी ३१८

सुरतांत तथा उसी प्रकार के कुछ अन्य वर्णनों में शिथिल केश का उल्लेख किया गया है यथा -

रति रस केलि विलास हास रँग भीने हो ।
कोऊ सुन्दर नारि के लगाए गात ।।

\+ + + +

बाल सिथिल भुव सिथिल भाल ।
ससिमुख सिथिल जनात ।।
केस सिथिल वर वेस सिथिल ।।
वयकृम सिथिल सिरात ।। गोविन्द स्वामी २५९

बन बिहरत बृषभानु - किसोरी ।
कुसुम पुंज सयनीय, कुंज कमनीय, स्याम -रँग बोरी ।।
नीवी-बंधन छोरत, मुख मोरत, पिय चिबुक चारु टकटोरी ।
ओली ओढ़ि खोलि चोली, दुख मेटि भेटि कुच जोरी ।।
सरस जघन दरसन लगि, चरिन पकरि हरि कुंवरि निहोरी ।
मदन -सदन कौ बदन बिलोकत, नैननि मूंदति गोरी ।।
केस करषि आवेस, अधर खंडित, गंडनि झकझोरी ।
रति विपरीति, पीत छबि स्यामहि, फबि गई अंगनि रोरी ।।

- व्यास ५७९

नाहिन मन लगै निसि इहिं डर ।
[illegible] और उनकै जिय धर [illegible]

जरत-सुरति-संग्राम मच्यौ, छबि छूटि-छूटि कच, टूटि हार उर ।
अति सनेह दुहुँ बिसरि देह भिरि, मैन-मल्ल मुरझाइ गिर धरे ।।
आदि - सूर -३०३७

सामरि हे झामरि तोर देह ।
की कह के सयँ लाएलि नेह ।।
+ + + + + + +

केस कुसुम तो र सिरक सिन्दूर ।
अलक तिलक हे सेउ गेल दूर ।। आदि विद्यापति ६८

नव रँग, नव रस, नव अनुराग, जस, नव गुन - नव रूप, नव-
जोबन- जोर ।
नव वृंदावन, नव तरुवर, घन, नव निकुंज क्रीड़त नवलकिशोर ।।
नव घन, नव दामिनि, नव-राग- रागनि सुनि नटत नवल मोर ।
नवल चूनरी, नवल पीत पट तन, नव मुकुट नव सिर पाटी फूल-
जोर ।।
नव - नव - चुबंन नव परिरंभन, नव कच मीड़त नव कुच कठोर ।
नवल सुरत हाव भाव प्रगटत, देखत " व्यासहिं । नव प्रीति-
न थोर ।। व्यास ३७५

७- प्रहणनसीत्कृविरुत

अभी तक जिन क्रियाओं का उल्लेख किया गया है । वे सभी कामोत्तेजना के लिए हैं, किंतु प्रहणन, सीत्कार और विरुत रतारंभिक क्रियाएं नहीं हैं । ये स्वयं सुरतांग हैं ।

भक्त कवियों ने सुरत - क्रिया में प्रहणन [१७] का स्प उल्लेख नहीं किया है । उन्होंने अनेक स्थान पर नायक द्वारा नायिका के कुचों के पकड़े जाने का उल्लेख अवश्य किया है ।

---

१७- प्रहणन- मैथुन के समय कामोत्तेजना की अवस्था में एक दूसरे के विभिन्न अंगों पर प्रहार करने को प्रहणन कहते है । यह प्रहणन कंधे, सिर, स्तन, पीठ, नितम्ब और दोनों पार्श्वों में किया जाता है ।

आंशिक रूप में प्रहणन के एक भेद संदंशिका में ले सकते हैं । पर जो वस्तुतः आलिंगन और चुंबन के अंतर्गत आता है । किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि उस वर्णन में प्रच्छन्न रूप से भी प्रहणन का उल्लेख नहीं है । सुरत- रण की जिस तैयारी का वर्णन कवियों ने किया है उससे यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि उस क्रिया में प्रहणन भी अभीष्ट होता होगा ।

प्रहणन का स्पष्ट उल्लेख खंडिता के प्रसंगों में मिलता है जिसमें नायिका अनेक रति चिह्नों के साथ पीठ पर कंकण या वलय के चिह्न का उल्लेख करती है । यह चिह्न नायिकाओं द्वारा प्रदत्त होते हैं । नायकों द्वारा ऐसे प्रयोग कम मिलते हैं ।

विरुत[१८] के उदाहरण भी प्राप्त नहीं हैं । प्रहणन की ओर संकेत करने वाले कुछ उद्धरण दिए जा रहे हैं :-

काहे मोहन । बोलत नाहिनैं ? हम तैं कहा लजाने ?
वाही बगर तैं आवत देखे मैं जीए जब ही जाने ।।
करन फूल भुज-मूलनि सोभित कंकन-वलय चिन्ह पहिचाने।
कुंभनदास प्रभु गिरिधर के ढंग मोतैं कहा अजानैं ।।

- कुंभन - ३३१

आए सुरति - रंग - रस माते ।
मानहु छिनु विश्राम, निमित प्रिय, स्रमित भए है तातैं ।।
डगमगात मग धरत, परत पग, उठत न बेगि तहां तैं ।
मनु गज मत्त चरन सांकर करि, गहि आनत तिहिं ठांतैं ।।
उर नख- छत, कंकन- छत पाछै, सोभित है रुहिरातैं ।
सांचै करति आपने बोलनि, टरत न मरजादा तैं ।
सूर स्याम कहि गए आइहैं, पग धारे तिहिं नातैं ।।

-सूर -३३०४

---

१८- <u>विरुत</u>-

वे अव्यक्तार्थ अनुनासिक ध्वनियां (हिं, हूं आदि ) जो प्रहणन फलस्वरूप न होकर केवल कामोन्मत्तता की अवस्था में

७- सीत्कार[19] का एक संकेत पद्मावत में मिलता है :-

> बैन सोहावनि कोकिल बोली । अहुठ बसंत करी मुख खोली
> पिउ पिउ करत जीभ धनि सूखी बोली चातिक भाँति ।
> परी सो बूँद सीप जनु मोती हिएँ परी सुख साँति ।।
>
> पद्मावत - ३१७

(ख) संभोग

८- प्रेम की सभी क्रियाओं का आश्रय स्त्री- पुरुष का संयोग है । यह संयोग तभी सफल कहा जाता है जब कि स्थूल धरातल की बाह्य सफलता के साथ ही साथ मनोवैज्ञानिक धरातल पर भी संयोग हो । मनोवैज्ञानिक धरातल परसंयोग के लिए यह आवश्यक माना जाता है कि पुरुष के साथ - साथ स्त्री भी पूर्णरूप से इस क्रिया के लिए तत्पर हो, इसमें रुचि ले तथा यथा - संभव सक्रिय सहयोग प्रदान करे । इसी सक्रिय सहयोग को प्राप्त करने के लिए अनेक कामोत्तेजक क्रियाएं - आलिंगन, चुम्बनादि की आवश्यकता मानी जाती है । नई स्त्रियों को इस स्थिति तक लाना, लज्जा, नवीनता, भय आदि अनेक कारणों से प्रायः संभव नहीं होता है, किंतु धीरे धीरे भयादि के दूर होने पर उनका सक्रिय सहयोग भी प्राप्त होने लगता है ।

९- रति भय-

ऐसी नवोढ़ा राधा का वर्णन मुख्यतः विद्यापति में ही मिलता है। जिस समय वह प्रियतम के पास जाती है, उसका हृदय लज्जा और भय से व्याकुल हो जाता है । सोने की प्रतिमा के समान वह जा कर मूक खड़ी हो जाती है । शरीर तनिक भी नहीं हिलता है । प्रियतम ने जैसे ही दोनों हाथ पकड़ कर है वैसे ही उसने क्रोध किया और (भय से) मुख सूख गया ।[20]

यह रस, परिहास, आलिंगन, भ्रूविलास कुछ भी नहीं समझती है । तुम सब रस चाहते हो । सागर की गंभीरता जिस प्रकार नापी नहीं जा सकती उसी प्रकार इसके पास सब रस की

आशा नहीं की जा सकती । माधव हमारी सखी स्वभावतः अज्ञान है । जब उसकी उम्र होगी तब वह कुछ समझेगी । जब वह अनुभव के द्वारा संयोग समझ सकेगी, उस समय उस पर क्रोध करना । इस समय यदि अभिलाषा प्रकट करोगे तो केवल कलह होगी । बन्द मुकुल में पराग कहाँ ? [२१]

कितनी अनुनय करके, कितनी सान्त्वना देकर, पीछे पीछे चलकर सखियों ने (नायिका को) स्वामी के घर में सुलाया । कोई सुन्दरी विमुख होकर सोई, सम्मुख होकर नहीं सोई ।----। प्रिय कामुक और प्रिया अल्प वयसका, विलासिनी बालिका कोटि स्वर्ण देने से भी नहीं मिलती । मुख को वस्त्र से ढाँक कर रखती है, मेघ के नीचे चन्द्र प्रकाशित नहीं रहता । नये कच्चे सोने के पयोधरों को दोनों हाथों से दबाकर प्राण के समान रक्षा करती है । जोर करके गोद में लेने से भी पास नहीं आती, हाथ के ऊपर हाथ रख कर जोड़ लेती है । [२२]

राधा की सहचरी कहती है, "माधव, राधिका शिरीष पुष्प के समान कोमल है । लुब्ध मधुकर, कौशल का अवलम्बन करो एवं डूबकर नवीन रस का पान करो । नायिका का यही प्रथम वयस है एवं रजनी के प्रथम प्रहर में यह प्रथम संगम है । अनुराग के प्रति प्रतीति नहीं मानती और केलि के नाम से तो कुंठित ही हो जाएगी ।" परिपूर्ण आलिंगन पाश में बद्ध करके हरिने उसे सुलाया और सारे अंग का वस्त्र हरण कर लिया । कमल के समान कामिनी को दृढ़ता पूर्वक दबाया और उसे पृथ्वी पर गिरा दिया । राधा ने एक हाथ से अधर को ढाँका और दूसरे हाथ से नीवि बचाये रही । तीसरा तो है ही नहीं । कुचयुगल पर पाँच पाँच नख चन्द्र उदित हुए : अब किस प्रकार सुन्दरी अपनी रक्षा करे । आकुल एवं कुछ -- होने से नयन कोर में जल भर आए । वह छटपटा रही थी -- मन्मथ ने वंशी द्वारा मछली को नाथ लिया हो ।[२३]

---

२१- विद्यावती ५८

२२- विद्यापति ५९

वही २१२

वह कहने लगी, "मैं अबला, हे नाथ, तुम बलवान, इस प्रकार प्रेम करते हो कि मेरा जीवन जाता है। मन्मथ का मंत्र पढ़कर भाव प्रदर्शन करते हो। कौतुक से हस्ति प्रवर हस्तिनी के संग क्रीड़ा करता है। हे नाथ मुझे छोड़ो, प्राण दो। आज रात्रि समाप्त ही नहीं होगी। तुम दारुण हो, भिक्षा मांगने पर भी दया नहीं दिखलाते। रमणी-बध का भी डर तुम्हें नहीं होता। यदि रमणी जीती रहे तभी रमण का सुख है, पुष्प की रक्षा करता हुआ भ्रमर रसपान करता है।" [२४]

विद्यापति कहते हैं "बामा के मुख और आखों से जल बह रहा है, कुरंगिनी केसरी की गोद में कांप रही है।"(आदि) [२५]

एक अन्य पद में वे कहते हैं -

"एक तो (नायिका) बलहीना, उस पर भी अल्प वयसी, हाथ धरते ही कोटि अनुनय करती है। अंक के नाम से हृदय अवसन्न होता है, मानों हाथी के (पैरों) तले मृणाल पड़ गया हो। आखों में आंसू भर कर ना, ना, कहती है, मानों सिंह के भय से हरिणी के प्राण कांपते हों। कौशल से कुच को-रक हाथ में ले लिया, मुख देखने से स्त्री-बध का सन्देह हुआ। विलासिनी छोटी और कन्हायी युवा, कुतूहली मदन-बाधा नहीं सुनता। विद्यापति कहते हैं, मुरारि सुन, अतिरिक्त बल प्रयोग से नारी नहीं बचती। [२६]

उसमान ने चित्रावली में चित्रावली-सुजान के संयोग के प्रसंग में संक्षेप में इस भय का उल्लेख किया है :-

प्रथम समागम बाला डरई, कैसहुं आगे पाव न धरई।
चित्रावलि जनु गज मतवारी, छुद्रावली घंट झनकारी
आंदू सकुचि पाव दुहुं धरा, परगहिं परग होइ अरग
छलि आंखिन्ह अंधिआरी मेली, धक्कारहि गड़दार ए
कल बल गई सेज जहं अही, पाटी तीर ठाढ़ि होइ
चित बहलावी है निजसखी, और समुझा
सेज सुरंग जहं नदि बहै, चित्रनि छुवै न हाथ। ५३१

२४- विद्यापति २८८
२५- वही २८९
२६- वही २८५

जायसी ने पद्मावती-रत्नसेन की सोहागरात के अवसर पर पद्मावती के द्वारा ही इस भय का उल्लेख कराया है। समस्त शृंगार हो जाने के बाद पद्मावती के मन में शंका होती है। "उसकी बाँह पकड़ने के समय मैं क्या कहूँगी। प्रेम से मैं अनभिज्ञ हूँ। मैं अभी बालिका हूँ और पति तरुण। सेज पर चढ़ने पर न जाने क्या होगा।" उसकी अनुभवी सखियाँ आश्वासना देते हुए कहती हैं, कि "जब तक तुम दोनों की भेंट नहीं होती तभी तक भय है। कहीं भ्रमर के बोझ से भी डाली टूटती है।आदि[२७]

कृष्ण भक्त कवियों में प्रथम-समागम के भय का विशेष वर्णन नहीं मिलता। राधा या अन्य गोपिकाएँ सामान्यतः सुरत के लिए स्वयं अत्यंत उत्सुक रहती हैं। उनको केवल लक्षिता होने मात्र का भय रहता है पर अपनी रक्षा के लिए उनके पास बहानों की कमी नहीं है। उनके प्रेम का मार्ग ही ऐसा है वह स्वयं सब कुछ सिखा देता है।

१०- गोपियों की आसक्ति

सूरदास के काव्य में गोपियों की आसक्ति प्रारंभ से ही

---

२७- साँवरि सेज धनि मन भौ सैंका। ठाढ़ि तिवानि टेकि कै लंका।
अनचिन्ह पिउ काँपै मन माहाँ। का मैं कहब गहब जब बाहाँ।
बारि बएस गौ प्रीति न जानी। तरुनी भइ मैमत भुलानी।
जोबन गरब कछु मैं नहिं चेता। नैहु न जानिहु स्याम की सेत
अब जौ कंत पूँछिहि सेइ बाता। कस मुँह होइहि पीत कि र

हौं सो बारि और दुलहिनि पिउ सो तरुन और -
नहिं जानौं कस होइहि चढ़त कंत की सेज ।। ३००

सुनि धनि डर हिरदै तब ताईं। जौ लगि रहसि मिला नहिं साईं
कवन सो करी जो भंवर न राईं। डारि न टूटै फर गरुआईं।
आदि । ३०१

संयोग के लिए करती है। उनमें सबसे चतुरा राधा उसके लिए प्रत्येक अवसर खोजती रहती है तथा अनेक विधियाँ निकाल लेती है। कृष्ण संकेत से खरिक में मिलने के लिए कहते हैं।[२८] सखियों को टाल कर [२९] अत्यंत कठिनाई से वह अपना समय काटती है।[३०] माँ से बहाना कर खरिक जाती है। अवसर मिलते ही कृष्ण नीवी पकड़ते हैं और उरोजों को पकड़ना ही चाहते हैं कि यशोदा आ जाती है।[३१] चतुर कृष्ण तत्क्षण बहाना करने लगते हैं।[३२] वह कभी मिलने के लिए प्रातः वन में हरि की मुरली पाने का बहाना करके जाती है।[३३] गुरुजनों के बीच में बैठी हुई राधा जब कृष्ण को देखती है तो बहाने से तत्काल अपने प्रेम को प्रदर्शित करती है। "बैंदी संवारने के बहाने चरण-स्पर्श किया, कृष्ण को देख कर अपने हाथों को कंठ में लगाया। कृष्ण ने भी इसी प्रकार बहाने से अपना प्रेम जताया।"[३४] हृदय में उमंग के कारण कुच-कलश प्रकट हो गए, चोली तड़कने लगी।[३५] राधा की सखियाँ इन सब विशेषताओं को जानती हैं। वे कहती हैं कि कृष्ण तो अति खोटे हैं ही, यह उनसे भी खोटी है। [३६]

कभी राधा और कृष्ण मार्ग में कुछ देर के लिए मिलते हैं। कृष्ण अपना प्यार प्रदर्शित कर कहते हैं, अभी घर जाओ। हम लोग कुंज में मिलेंगे। तुम आकर संकेत करना। [३७] सखियों को किसी प्रकार वह टालती है। उसका मन किसी कार्य में नहीं लगता। वह कुंज-भवन में रतियुद्ध की कल्पना करती है। [३८]

---

२८- सूरसागर १२९४
२९- वही १२९५
३०- वही १२९६
३१- वही १२९७
३२- वही १३००
३३- वही ११८६
३४- वही २४९६-९७
३५- वही २४९८
३६- वही २५१९
३७- सूर २५६६
३८- वही २५८१

रात्रि में दोनों को नींद नहीं आती । प्रातः जल्दी से तैयार होते हैं ।[३९] उधर राधा के इस प्रकार शीघ्र उठ कर जाने से माता चकित है किंतु चतुर राधा मोतियों की माला खोने की बात कह कर मां को क्रुद्ध करती है । वह क्रोध में डांट कर खोजने के लिए कहती । बस राधा तो यही चाहती थी । निधड़क होकर राधा प्रिय से मिलने के लिए चल पड़ती है ।[४०]

कृष्ण राधा की प्रतीक्षा में व्याकुल बैठे है । किसी प्रकार कलेवा करना प्रारंभ करते हैं । राधा घर के पीछे आकर झूठ-मूठ सखियों का नाम पुकारती है। कृष्ण हाथ का कौर छोड़ कर धौरी गाय के बियाने की बात कहते हुए भागते हैं । इस प्रकार से संकेत पाकर कृष्ण संकेत-कुंज में राधा से जा मिलते हैं ।[४१]

कुंभनदास ने तो आसक्ति शीर्षक ही देकर (यदि संपादकों ने अपनी ओर से इसे नहीं बनाया है) अनेक पद लिखे है ।

एक गोपिका कहती है कि नंद भवन आने के लिए तू न जाने कौन-कौन मति ठानती है ।[४२] तू सदैव श्याम सुन्दर मदन मोहन की घात में रहती है ।[४३] राधा-कृष्ण तो सदैव रति-रस-रंग में सने रहते है ।[४४] इतना ही नहीं एक गोपिका तो यहां तक कहती है कि तुम आकर मेरे घर में रहो किसी प्रकार की शंका मत करो ।[४५] एक स्थान पर राधा कहती है कि मुझे सुरत रस लेने दे । संसार जो चाहे कहे, लोक वेद का उपहास सहने को मैं तैयार हूं । मैं यौवन मद माती हूं ।

---

३९- सूरसागर २५८३-८४
४०- सूरसागर २५८४-९५
४१- वही २५९५-२६०३
४२- ~~कहीं~~ कुंभनदास १९२
४३- वही १९३
४४- वही २०४
४५- वही २०६

जो भावै सो लोगनि कहन दै ।
अवनि पिछौड़ौ पाँव न दीजै, न्याव मैटि प्रीति निबहन दै ।
हौ जौवन मदमाती सखी री, मेरी छतियाँ पर मोहन रहत है ।
नव-निकुंज पिय अँग सँग मिलि, सुरति-पुंज रस-सिंधु बहन दै ।
या सुख कारन"व्यास" आस कै, लोक-वेद उपहास सहन दै ।[४६]

गोपियों और राधा की इस आसक्ति की परिणति सुरत मे होती है । सुरत के लिए जाने के पूर्व अनेक बार वे लोग अनेक प्रकार से श्रृंगार करती है ।

११- प्रिय-मिलन के लिए श्रृंगार

सोहाग रात के दिन बधू के श्रृंगार की परंपरा है । यह श्रृंगार बधू की सखियाँ करती है । जिस समय पद्मावती का विवाह हो चुका है और सोहाग रात की तैयारियाँ हो रही है), उस समय के श्रृंगार का वर्णन जायसी ने इस प्रकार किया है ।

सर्व प्रथम स्नान करा कर सुंदर शीतल वस्त्र पहनाए गए । माँग सँवार कर उसमें सोहाग का चिन्ह सेंदुर लगाया गया । मस्तक पर सुन्दर टीका, नेत्रों में अंजन, कानों में कुंडल और नाक में फूल पहनाया गया । मुख में पद्मावती ने पान रखा । गले में, कलाई में, कटि मे तथा चरणों में, श्रृंगार के बारहों स्थानों पर बारह गहने पहले और सोलहों श्रृंगार किया । उसका यह रूप अवर्णनीय है । ऐसा श्रृंगार कर पद्मावती प्रिय से मिलने गई ।[४७]

चित्रावली में कौलावती का भी सोहागरात के अवसर पर बारह-सोलह श्रृंगार किया गया है ।[४८] चित्रावली का सोहाग रात के अवसर का श्रृंगार नही है ।

कृष्ण भक्ति कवियों में से कुंभनदास ने राधा के इस का वर्णन अपने कुछ पदों में किया है । उनमें से दो निम्न‌ि है:-

---

४६-व्यास ७०३

४७- जायसी २९६-३

४८- चित्रावली, ४०

मदन गोपाल-मिलन कौं राधे । घोस कुंज-बन वनि चली कामिनि
सकल सिंगार विचित्र विराजित नखसिख-अंग अनूप अभिरामिनि ।।
जोबन नवल ठानि, कटि केहरि, कदलि जंघ जुगल गज-गामिनि ।
चकई बिछुरि, कमल पुट दीनौं कियो है उद्योत ससी भई जामिनि ।
ठाढी जाइ निकट पिय कैं भई, लई कर पकरि सेज पर भामिनि ।
कुंभनदास लाल गिरधर कै लागि सोहै जैसै-धन-मँह दामिनि ।[४९]

आजु आंजी आछी अँखियां सारंग नैनी मान सौं ।
लगति मनोंगज-बेलि की गांसी शानिधरी खरसान सौं ।।
और कोर चलि जाति स्यामता तकति तरुणि नैन-बान सौं ।
स्याम सुभग तन घात जनावति प्रगटत अधिक उनमान सौं ।।
घूंघट मैं मनमथ कौ पारधी तिलकु भाल, भृकुठी कमान सौं ।
कुंभनदास सजि सुरति लरन चली गिरधर रसिक सुजान सौं ।[५०]

गोविंद स्वामी ने एक लम्बे पद में केलि के लिए जा रही राधा के श्रृंगार का वर्णन किया है:-

स्याम रंगीली चूनरी रंग रंगी है रंगीले बिहारी हो ।
अति सुरंग पचरंग बनी पहिरे श्री राधा प्यारी हो ।।
चंपक तन कंचुकी खुली स्याम सुदेस सुढारी हो ।
मांडनि पिय पट पीत की ता ऊपर मोतिन हारी हो ।
प्यारी के सीस फूल सिर सोहै हो मोतिनि मांग संवारीहो
विविध कुसुम बेनी गुही चंपक बकुल निवारी हो ।।
स्रवननि भलमली भूलही रि सटकारे केस हो ।।
कठुला खुंभी यजराय की मृगमद आड सुदेस हो ।।
नक बेसरि अति जगमगै दूरि करै नव जोती हो ।
कंठ सिरी मोतिसिरी बीच जंगाली पोती हो ।।
चौकी हेम जरायकी रतन खचित निरमोला हो ।
नौग्रही कर पौंहचिया हो खये बरा अति गोला हो
कटि किंकनी रुनझुन करै पग नूपुर भलकारा हो ।
चलत हंसगति मोहियो सोभा करत अपारा हो ।।

---

४९- कुंभनदास २९४
५०- कुंभनदास २९८

इहि विधि बनि सुंदरी चली रसिक पिय पासा हो ।
कुंज महल मोहन मिले पूर्जी मन अभिलाषा हो ।
ब्रज वृंदावन भूपती पिय प्यारी की जोरी हो ।
गोविंद बलि बलि जाइ नवल किसोर किसोरी हो ।[५१]

इसी प्रकार हित हरिवंश कहते हैः-

आवति श्री वृषभानु दुलारी । रूप राशि अति चतुर शिरोमनि
अंग-अंग सुकमारी ।।
प्रथम उबटि, मज्जन करि, सज्जित नील-बरन तनसारी ।
गुथित अलक, तिलक कृत सुन्दर, सैंदुर मांग सँवारी ।।
मृगज समान नैन अंजन जुत, रूचिर रेख अनुसारी ।
जटित लवंग ललित नाशा पर, दसनावलि कृतकारी ।।
श्री फल उरज, कसुंभी कंचुकी कसि, ऊपर हार छबि न्यारी ।
कृश कटि, उदर गंभीर नाभिपुट, जंघन नितम्बनि भारी ।।
मानौं मृनाल भूषन भूषित भुज श्याम अंश पर डारी ।
जै श्री हित हरिवंश जुगल करनी गज बिहरत बन पिय प्यारी ॥[५२]

अन्य कृष्ण भक्त कवियों में भी इस श्रृंगार का उल्लेख है किंतु सूर से केवल एक और उदाहरण देना यथेष्ट होगा ।

प्यारी अंग-सिंगार कियौ ।
बेनी रची सुभग कर अपनै, टीका भाल दियौ ।।
मोतिनि मांग सँवारि प्रथमहीं, केसरि-आड़ सँवरि ।
लोचन आंजि, स्रुवन तरिवन-छबि, को कवि कहै निवारि ।।
नासा नथ अतिहीं छबि राजति, अधरनि, बीरा-रंग ।
नव सत साजि चीर चोली बनि, सूर मिलन हरि संग ।। [५३]

उपर्युक्त दिए गए तथा अन्य वर्णनों को यदि हम दे[illegible] नायिका के मिलन के लिए किए जाने वाले श्रृंगार दो श्रे[illegible] रखे जा सकते है :-

(१) सखियों द्वारा नायिका का कियाजाने वाला श्रृंगा[illegible]
(२) नायिका द्वारा स्वयं किया गया श्रृंगार ।[५४]

---

५१- गोविंद स्वामी १३५ तथा ६७ भी देखें ।
५२- श्रीहित चौरासी ४५
५३- सूर २६४५

प्रथम प्रकार का शृंगार वहीं संभव है जहाँ लोक-लज्जा तथा गोपनीयता नहीं है । प्रेम - काव्यों की नायिकाओं का विवाह के उपरान्त या उन कृष्ण भक्तों का शृंगार वर्णन जिनके यहाँ राधा- कृष्ण की प्रीति स्पष्ट है, सखियाँ सदैव जिनकी सेवा में रह कर आनन्द लेना चाहती तथा लेती है, उनकी नायिकाओं का शृंगार प्रसाधन अन्यों के द्वारा होता है । जिन कवियों की नायिका या राधा परकीया है ( चाहे उन्होंने रास में विवाह का उल्लेख ही क्यों न किया हो ), उन नायिकाओं का शृंगार दूसरों के द्वारा संभव नहीं है । ऐसी नायिकाएं चुप-चाप अपना शृंगार कर लेती है ।

१२- संकेत स्थान -

भक्ति काव्य के नायक- नायिकाओं को संकेत स्थल की कठिनाई नहीं है । विवाहिताओं के लिए तो उनका घर ही है जहाँ मिलन की उन्हें स्वीकृति है और किसी भी प्रकार की बाधा नहीं है । ऐसी ही नायिकाओं के अंतर्गत नित - निरन्तर निकुंज बिहार करने वाली राधा भी है जिनको कोई कठिनाई या गोपनीयता नहीं है । इनके केलि के स्थल अनेक हैं । ये निम्न-लिखित हैं :-

(१) महल

(२) कुंज, वन, उपवन

(३) नदी- पुलिन,

(४) हिंडोला

अन्य नायिकाओं में मुख्यतः सूर आदि की राधा और गोपिकाएं आती है । जिनके लिए घर पर इस प्रकार की सुविधा नहीं है, यद्यपि एक गोपिका ने एक बार यह अवश्य कहा है कि

तुम निशंक होकर हमारे यहां आकर रहो,[५५] पर यह अपवाद है। उनके मिलन के मुख्य स्थान वन, कुंज, कुंजगली, नदी-पुलिन या जो भी स्थान जिस समय सुविधा जनक रहा वहीं है। किंतु मुख्यतः वन में कुंजों में या यमुना विहार में ही रति का वर्णन है जहां सभी सुविधाएं प्राप्त हैं।

१३-सेज -

इन कुंजों में पुष्पादि प्राप्त हैं, जिनसे सेज को अलंकृत करते हैं। कभी ये सेज सखियों द्वारा सजायी जाती है, और कभी स्वयं राधा इसे सजा कर रखती है। एक बार तो कुंजगली में अनायास भेंट हो जाने के कारण सेज और कुंज का विशेष प्रश्न ही नहीं उठा। समय कम था। एक ओर कृष्ण ने अपना पीताम्बर जमीन पर बिछाया तो दूसरी ओर राधा ने स्वयं ही शीघ्रता से अपनी चोली खोली। ऐसे कुंज और सेज के दो - एक उदाहरण रोचक होंगे।[५६]

सूरदास के निम्नलिखित पदों में राधा सेज संवारती है -

राधा रचि रचि सेजन संवारति।
तापर सुमन सुगंध बिछावति, बारंबार निहारति।
भवन गवन करिहै हरि मेरै, हरषि दुखहिं पांवड़े निरुवारति।
आवैं कबहु अचानक ही कहि, सुभग पांवड़े डारति।।
इहिं अभिलाखहिं मैहरि प्रगटे, निरखि भवन सकुचानी।
वह सुख श्रीराधा माधौ को, सूर उनहिं जिय जानी।।[५७]

---

५५- परम भावते जिय के हो मोहन। नैननि आगें तें मति टरहु
तौलों जिउं जौलों देखौं बारंबार पा लागौं चित अनत न
तन सुख चैन तोही लौं प्यारे। जौ लौं लै- लै आंको भरहु।
रसिकनु मांझ रसिक नंदनन्दन तुम पिय। मेरे सकल दुःख हरो
आवहु, जाहु, रहहु गृह मेरे स्याम मनोहर। संक न करहु
"कुम्भनदास"प्रभु गोवर्द्धन -धर। तुम अरि-गजन काते व डर
- कुंभन दास २०६

५६- देखिए हित हरिवंश ७१- ७१२

अंग श्रृंगार सँवारि नागरी, सेज रचति हरि आवैंगे ।
सुमन सुगंध रचत तापर लै, निरखि आप सुख पावैंगे ।।
चंदन अगरू कुमकुमा मिश्रित, स्रम तै अंग चढ़ावैंगे ।
मैं मनत्साध करौंगी संग मिलि, वै मन- काम पुरावैंगे ।।
रति- सुख -अंत भरौंगी आलस,अंकम भरि उर लावैंगे ।
इस भीतर मैं मान करौंगी, वै गहि चरन मनावैंगे ।
आतुर जब देखौं पिय - नैननि, बचन रचन समुझावैंगे ।
सूर स्याम जुवती- मन - मोहन, मेरे मनहिं चुरावैंगे ।।[५८]

सूरदास के निम्नलिखित पद में राधा और कृष्ण मिल कर सेज - सँवारत हैं:-

नवल नागरि, नवल नागर किसोर मिलि, कुंज-कोमल- कमल दलनि- सज्या रची ।
गौर साँवल अंग रुचिर तापर मिले, सरस मनि मृदुल कंचन सु - आभा खची ।।
सुंदर नीवी बंध रहति पिय पानि गहि पीय के भुजनि मैं कलह - मोहन मची ।
सुभग श्री फल उरज पानि परसत, हुंकरि, रोषि, करि गर्ब- गर्व, दृग भंगि - भामिनि लची ।।[५९]

गोविन्द स्वामी के निम्नलिखित पद में कृष्ण सेज सजाते हैं:-

एरी लाल प्यारौ अति ही बिचछन बस कीने तैं सुहाग ।
सीतल सुवास कुसुमनि सिज्या रची -
तामैं मदन मोहन निस जाग ।।
बैठे कुंज के द्वार तुव पंथ चाहत भरि-
आवत नैन विसाल तुव अनुराग ।
दूती के वचन सुनि प्रेम मगन भई -
मिली जाइ गोविंद प्रभु कौं मिटयो विरह हृदै दाग ।।

---

५८- सूरसागर ३३९६

हरिराम व्यास के निम्नलिखित पद में अधिक समय और अनुकूल स्थान न पाने के कारण कृष्ण पीताम्बर से ही सेज बनाते हैं :-

दुहूँ आतुरनि चतुरता भूली ।
कुंजगली अनबोले डोलत, भेंट भई सुख- मूली ।।
स्याम पीतपट सेज करी, स्यामा निज कंचुकि खूली ।
रजनीमुख सुख देत परस्पर, चितवत भृकुटी हूली ।।
अंग टटोरि अंगुरियनि जातें, कहत कुँवरि सुख फूली ।
पिय- हिय सुख दे "व्यास" स्वामिनी, सुरति- डोलि चढ़ि झूली ।।[६१]

ध्रुवदास के निम्नलिखित पद में सखियाँ सेज की रचना करती हैं :-

सेज रंगीली रंगीली सखीन रची बहुरंग सुरंग सुहाई ।
तापर बैठे रंगीले छबीले हँसै रस में सुख की सरसाई ।।
(स) चिबुकनि अंजन नैन लसै मेंहदी झलकै पद पान रचाई ।
रूप की दीपत तें ध्रुव कुंज फनूस सी ह्वै रही यों उर आई ।।[६२]

उनके एक पद में सेज को तरुणाई की मदिरा का सरोवर कहा गया है :-

सेज सरोवर राजत है जल मादिक रूप भरे तरुनाई ।
अंगनि आभा तरंग उठै तहाँ मीन कटाक्षनि की चपलाई ।।
प्यासी सखी भरि अंजुल नैन पिये तें गिरी, उपमा ध्रुव पाई ।
प्रेम गयन्द ने डारे हैं तोरि के कंचन कंज चहूँ दिश माई ।।[६३]

सेज के स्वरूप, उसकी कोमलता और उसके सौंदर्य का बड़ा ही सुंदर वर्णन जायसी ने पद्मावत में किया है । वे कहते हैं, "धवलगृह में सात खंडों के ऊपर कैलास था । वहाँ सुखवासी में सोने की शैया थी । उसकी चार दिशाओं में श्रेष्ठ हीरे और रत्नों से जड़े हुए चार खंभे लगे थे । वहाँ माणिक्य और मोती दीपक जैसे

---

६१- व्यास ४५२
६२- ध्रुवदास पृ० ९२
६३- " पृ० ९१ दे० पृ० ९५ भी

चमकते थे जिनकी ज्योति से रात में भी उजाला रहता था । ऊपर लाल चँदोवा टाँगा हुआ था और नीचे भूमि पर लाल बिछावन बिछी थी । उसमें पलंग बिछा था जिस पर सेज लगी थी । जिसके लिए ऐसी सुख पाटी रची गई थी । दोनों ओर लंबे तकिये (गेंडुवा) और गोल चपटे तकिये (गलसुई) लगे थे । जिन्हें रेशम की रुई धुनकर उनके भीतर भरी गई थी । फूलों से भरी ऐसी सेज किसके ~~स्वै-~~ मौजूद है ? कौन उस पर सोकर सुख भोग करेगा ? वह सेज अत्यंत सुकुमार बनाई गई थी । कोई उसे छू नहीं पाता था । देखने मात्र से भी वह क्षण क्षण में झुकी सी जाती थी, पाँव रखने से तो न जाने कैसी हो जाएगी ?"[64]

२४- <u>कुंज शोभा</u> -

कुंज वर्णन प्रायः कृष्ण भक्त कवियों की रचनाओं में मिलता है । साधारण कुंजों के विपरीत रत्नों से निर्मित कुंजों का निम्नलिखित वर्णन माधुरी जी ने अपनी वाणी में किया है :-

आठ कुंज आठन के न्यारे । नव निकुंज के रचे ढिगारे ।
कहुँ भूमि मणिमय उजियारी । कहूँ कंचन की धरनि सँवारी ।।
कहुँ मुक्तन के चौक बनाऐ । विद्रुम फटिक विविध रंग लाऐ ।
कौन भाँति की सेज बनाई । कहाँ कमल दल कोमलताई ।।
निरखत तन गति रही भुलाई । मन ह्वै गये मदन मय माई ।।[65]

फूलों के कुंज का वर्णन तो पग- पग पर मिलता है । वन्य- प्रदेश में फूलों से भरे हुए कुंज ही स्वाभाविक है । श्रृंगार में भी फूलों की वर्ण- विविधता, सुकोमलता, सुशीतलता तथा सुगन्ध जितनी उत्तेजक होती है उतनी कोई अन्य नहीं ।

मैं वारी फूल गुलाब कुंज मंजुल में फूले हैं पिय प्यारी ।
फूली है चंद चाँदिनी ता मधि फूली फूल तिवारी ।।
फूलनि के तकिया लगि सौंहै छकियाँ सखि लखि पारी ।।
वल्लभ रसिक वपन चंदन तैं छबि की छुटहि छटारी ।।[66]

---

६४- पद्मावत २९१
६५- माधुरी वाणी- वृन्दावन माधुरी ७० देखें महावाणी- सिद्धा सुख- ३ और ४ भी ~~--६९-मर्म-~~
६६- वल्लभ रसिक वाणी, देखें महावाणी - सुरत सुख ४४, ६१ आदि

१५ सखी-शिक्षा

संभोग के पूर्व सफल समागम के लिए स्त्री को काम शास्त्र से परिचित होना चाहिए । यह शिक्षा सामान्यत: सखियाँ स्त्रियों को देती हैं । ऐसी शिक्षा का कोई महत्वपूर्ण उल्लेख भक्त-कवियों में नहीं मिलता है । इसका एक कारण है । कृष्ण भक्त कवियों की राधा स्वयं काम-कला विशारदा, कौक कला प्रवीण और कृष्ण तक को सिखाने वाली हैं । यही कारण है कि उन्हें समागम के पूर्व की शिक्षा की आवश्यकता नहीं । दूसरा कारण यह है कि राधा बहुत काल तक अपना प्रेम और कृष्ण से संयोग गुप्त रखना चाहती हैं और रखती हैं, इसलिए किसी से शिक्षा लेने का प्रश्न ही नहीं उठता ।

विद्यापति ने अपनी पदावलियों में इस शिक्षा का उल्लेख कुछ विस्तार से किया है । एक पद में सखी कहती है:-"कुन्द जिस प्रकार भ्रमर का मिलन के लिए आह्वान करता है, उसी प्रकार तुम नयनों (के कटाक्षों) से अनंग को जगाना; अंग की भंगिमा द्वारा आशा देकर अनुराग बढ़ाना । सुन्दरी कुछ उपदेश लो, सुललित वाणी सुनो, कुछ नागरियों की छल कला बताना चाहती हूं । जो चतुरा होती है, वह कही हुई बात सुनती है । कंठ से कोकिल कूजन के समान स्वर भरना, ऋतुराज की शोभा बढ़ाना । मुंह से मधुर हंसी लाना, कुछ क्षणों के लिए लज्जा त्याग करना । गाढ़ आलिंगन के समय ऐसा दिखावा करना जैसे तुम्हें लज्जा आती हो; क्रोध करना, फिर प्रबोध मानना, कुछ क्षणों के लिए मान मत करना । अर्द्ध मीलित नयनों से (नागर को) देखकर अपने शरीर का पसीना उसे दिखाना । प्रियतम को नख... करके मणिबन्ध छुड़ा लेना, सुरत में केलि बढ़ाना । मन्मथ का जे... हो गया हो । उस युद्ध को रस की वार्ता कहके जो फिर जा...

जो भाव नि:शेष हो गया हो, उसे फिर ला सके, वह नारी कला-वती है ।[67]

एक दूसरे पद में सखी शिक्षा देती है :-

'कुछ क्षणों के लिए महाधृष्ट होकर, कुछ लाल आँखें करके (कृत्रिम क्रोध करके) छलपूर्ण मान करके अधिक सम्मान लेना । सोने के समान प्रेम को कसौटी पर कस के, फिर पलट कर बंकिम हँसी हँसकर आधे अधर का मधुपान करने देना । ऐ चन्द्रमुखि, छल मत करना,

---

67 कुंद भमर संगम संभासन नयनै जगाओब अनंगे ।
आसा दए अनुराग बढ़ाओब भंगिम अंग विभंगे ।।
सुन्दरी है उपदेस धरिए धरि सुन सुन सुललित बानी ।
नागरिधन किछु कहवा चाह कहलहु बरुए सयानी ।।
कोकिल कूजित कंठ वइसाओब अनुरंजब रितुराजे ।
मधुर हास मुख मंडल मंडव छ घड़ि एक तेजब लाजे ।।
कैतव कए कातरता दरसब गाढ़ आलिंगन दाने ।
कोप कइए परबोधव मानव घड़ि एक न करब माने ।।
स्रम परसेवीन सह तनु दरसब मुकुलित लोचन हेरी ।
नखे हानि पिया मनिठाय छोड़ाओब सुरत बढ़ाओब केली ।।
जुम्फल मनमथ पुन ये जुम्फाएब बोलि बचन परचारी ।
गेल भाव जे पुनु पलटावए से है कलामति नारी ।।
सुख संभोग सरस कवि गावए ।
बुम्फ समय पचवाने ।।
राजा सिव सिंह रूप नारायण
विद्यापति कवि माने ।। विद्यापति 82

प्रियतम के हृदय का खेद करना, कुसुमशर (कंदर्प) का रंग (केलि) संसार का सार है। वचन से वश में मत होना, सरक कर अलग हो जाना, इस प्रकार सरकने की चेष्टा करना जिससे प्रत्येक अंग स्पर्श न होने पावे; वरन् सहज ही शैय्या की सीमा छोड़ देना (शय्या पर से उठ जाना)। प्रथम रस भंग होने से, लोभ से, असफलता के कारण श्री हत हो जाने पर वे तुझे भुज पाश में बांध कर गले से लगावेंगे। यदि आनन्दातिरेक से तेरे नेत्र अर्द्ध निमीलित होंगे तो वे नखक्षत करेंगे। ब्रह्मानन्द सम संभोग सुख तुम्हें चिरकाल तक प्राप्त हो। तुम सुंदरता और चतुराई से कामदेव की अराधना करो।[६८]

---

६८-
खनरि खन महधि मइ किछु अछन नयन कइ कपटे धरि मान सम्मान लेही।
कनक जांय पेम कसि पुनु पलटि बांक हसि अधि सयं अधर मधुपान देही ।।
अरेके इन्द्रमुखि अढ़ न कर पिय हृदय खेद हर कुसुम-सर रंग संसार सारा ।।
बचने बस होसि जनु ससरि भिन होइह तनु सहजे बढ़ छाड़ि देव सयन-सीमा।
प्रथमें रस भंग भेले लोभे मुख सोभ गेले बांधि भुज-पाय पिय घरब गीमा ।।
जदि नयन कमलवर मुकुल कर कान्ति धर खर-नखर-घात कइ सेहे बेला।
परम पद लाभ सम मोदे चिर हृदय रम नागरी सुरत-सुख अभिय मेला ।।
सरस कवि सुरख भने चारुतर चतुरपने नारि आराहिअइ पंचवाना।
सकल जन सुजन गति रानि लखिमाक पति रूप नारायन सिवसिंघ जाना ।।

विधापति १११

देखें २७३, २७५, २७६ भी

ध्रुवदास ने अपने दोहों में राधा की अंग गोपन विषयक इस चतुरता का उल्लेख किया है :-

जो अंग चाहत रसिक पिय, इन नैनन सौं छ्वाइ ।
सो ठां सुन्दरि पहिल ही, राखत बसन दुराइ ।।
कांपत कर थरकत हियौ, बनत न मन की बात ।
कुशल युगल कल कौक मैं, समुझि समुझि मुसिकात ।।[६६]

नायक की शिक्षा

हिन्दी भक्त कवियों की रचनाओं में नवेली नायिका से भोग करने में कितना अधिक धैर्य नायक को रखना आवश्यक है, किस प्रकार नायिका को मनाना चाहिए, किस प्रकार उसकी 'न - न' का सही अर्थ लगाना चाहिए आदि की शिक्षा का सामान्यत: अभाव है ।

---

६६ - ध्रुवदास व्यास लीला पृ १२३

विद्यापति में ही नायक की इस प्रकार की शिक्षा के पद प्राप्त हैं।[७०]

ऐसा ही एक पद राधावल्लभ संप्रदाय में श्री हितलाल स्वामी की अप्रकाशित वाणियों में मुझे प्राप्त हुआ है। इसमें सखी कहती है कि प्रेम से मनाकर कुछ देर तक हृदय से लगा कर रखना। प्यार से पान खिलाना और रिझाना। कुंज से मुझे भी हटाकर कुंज में शयन करते हुए संभोग की घात करना। नवीन आभूषणों को भेंट में देकर कंचुकी को खोलकर कोक कला कहना।[७१]

---

७० - प्रथम समागम के समय मदन क्षुधित रहता है, किंतु सुंदरीकी शक्ति देखकर रति लीला करना। संकट में पाकर बल प्रकाश मत करना। अत्यंत भूखा रहने पर भी कोई दोनों हाथों से नहीं खाता। कन्हायी तुम तो चतुर हो, कौन नहीं जानता कि महावत के निकट हाथी झुक जाता है, अर्थात् महावत हाथी को छल से झुकाता है, बल से नहीं, उसी प्रकार तुम भी कौशल से राधा को वश में करना। तुम्हारा गुण गान करके कितना समझाया, सब सखियां पहले ही सान्त्वना दे गयीं। बल प्रयोग करने से रति का क्रमानुयायी आनन्द नहीं होगा; कोमल रमणी की उल्टी सजा हो जाएगी। जितनी देर तक वेग सहन हो, उतनी ही देर विलास करना। अनिच्छा समझने पर नजदीक मत जाना। छोड़कर फिर जल्दी से हाथ मत पकड़ना, जिस प्रकार राहु चन्द्रमा को छोड़ देने पर शीघ्र ही ग्रास नहीं करता। विद्यापति कहते हैं, सुकोमलांगी शिरीष-कुसुम का भ्रमर के समान कौशल से उपभोग करना--विद्यापति २९७ तथा देखें २९३, - २९६

तथा

सुकुमार अंग हार मान जाएगा ऐसा सोच कर त्याग मत -- क्योंकि किसी ने कहीं देखा है कि भ्रमर के भार से मंजरी टूट जाती है। माधव, मेरी बात सुन, अर्थात् रख। न, न करने का विश्वास मत करना, जिस स्थान पर भूल होनी उचित नहीं वहां भी भूल होगी। अधर रस शून्य करके घसर करना, अच्छा भाव उत्पन्न होगा। दिनो-दिन चंद्रकला की वृद्धि के समान क्षण-क्षण रति-सुख अधिक होगा।।

वही देखें २८१ तथा देखें २८२ भी

७१- नहैं सों सनेह कीजो मनहि मनाइ लीजो उर सो लगाइ घट घरी एक रहियो।। प्यार सों खवाइ पान बा न उगार गाइ ऐसे ही रिझाइ रंग सब सख

१६- संभोग

विवाह के उपरांत के संभोग का स्पष्ट वर्णन प्रेमाश्रयी शाखा के काव्य ग्रंथों में ही मिलता है क्योंकि उनके कथानक का वह स्वाभाविक अंग है। अन्य भक्त-कवियों में भी यह वर्णन प्राप्त है पर वह बात उसमें नहीं है। इसलिए, उन वर्णनों का अलग से उल्लेख किया जाएगा। सूरदास ने भी रास के प्रसंग में कृष्ण-राधा के विवाह का उल्लेख किया है पर राधा-कृष्ण का संभोग इसके पूर्व से ही होता आ रहा है और जैसा कहा जा चुका है उपर्युक्त विवाह का अर्थ साधारण खेल मात्र है विवाह नहीं। अत: प्रेमाश्रयी शाखा में उपलब्ध विवाहोपरांत श्रृंगार का रूप नीचे दिया जा रहा है।

इन वर्णनों को कुछ अधिक विस्तार से नीचे दिया जा रहा है--

कामोत्तेजक क्रियाएं

पीछे हम नायिका को उत्तेजित करने वाली क्रियाओं का उल्लेख कर आए हैं जिनमें आलिंगन, चुंबन, नख और दंत क्षत प्रमुख हैं। चित्रावली में उसमान ने नायिका कौलावती और नायक सुजान के संभोग के समय नायक द्वारा प्रयुक्त एक अन्य क्रिया का भी उल्लेख किया है जो कि अन्य भक्त-कवियों की रचनाओं में नहीं मिलती है। यह है 'भगनासा-घर्षण' इसके लिए 'मनमथ' शब्द का प्रयोग हुआ है। इसके द्वारा नायिका में रागान्धता का उदय और जंघा का कंपन होने लगा --

मनमथ दाब जांघ पुनि कांपी। रावन बार लंक गहि चांपि

स्थितियां स्फुट रूप से मिलती हैं। सुजान और चित्रावली के प्रथम समागम का वर्णन उसमान ने इस प्रकार किया है--

कुंअर सपत कामिनि मन माना, सिंधु सपति बाचा परमाना ।
रही अंक ह्वैर समुझाई, लै सुजान तब अंक में लाई ।।
घूंघुट खोलि रूप अस देखा, सो देखा जेहि सीस सुरेखा ।
अधर घूंट सो अमिरित पीआ, जेहि के पिअत अमर भा हीया ।।
राहु गरास कलानिधि कांपा, लोयन पल आनन पट झांपा ।
पुनि मनमथ रति फागु संवारी, खोलि अकूत कनक पिचकारी ।।
रंग गुलाल दोऊ ते भरे, रोम रोम तन मोती झरे ।
सेद थंभ रोमांच तन, आसु पतन सुरभंग ।
प्रथम समागम जो कियो, सितल भा सब अंग ।। ५३६

सुजान कौलावती के प्रथम समागम का वर्णन ~~xxxxxxxx~~ उन्होंने इस प्रकार किया है--

पदुम कोस अलि लीन्ह बसेरा, हिए सोच भइ मालति केरा ।
नीरज लोचन रूप अतिसाए, दिन कर देखि नीर भरि आए ।।
बिहंसि कंत कामिनि कंठ लाई, बिरह दगधि उर लाइ बुझाई
मनमथ दाब जांघ पुनि कांपी, रावन बार लंक गहि चांपी।।
दीन्हीं चार नखच्छत छाती, फूट सिंधोर रोज भइ राती ।
होइगा अंग भंग नव साता, अति परसेद सिथल भइ गाता ।।
भयो प्रभात गयो उठि साईं, कौल पास कुई चलि आईं ।
हंसि हंसि पूछहिं सुख, रहसि करहिं परिहास ।
लाजन गावै कौंल मुख, सखियन अधर बिगास ।। ५६७

रत्नसेन-पद्मावती के प्रथम समागम का वर्णन जायसी ने इस प्रकार किया है--

कहि सत भाउ भएउ कंठ लागू, जनु कंचन मों मिला
चौरासी आसन बर जोगी । खट रस बिंदक चतुर
कुसुम माल असि मालति पाई। जनु चंपा गहि डार
करी बेधि जनु भंवर भुलाना । हना राहु अर्जुन के
कंचन करी चढ़ी नग जोती । बरमा सों बेधा जनु मोती ।

नारंग जानु कीर नख देई । अधर आंबु रस जानहुं लेई ।
कौतुक केलि करहिं दुख नंसा । कुंदहि कस्लहि जनु सर हंसा
रही बसाइ बासना चौवा चंदन मेद
जौ असि पदुमिनि रावै सो जानै यह भेद ॥ ३१६

चतुर नारि चित अधिक चिहूटै । जहां पेम बांधै किमि छूटै ।
किरिरा काम केलि मनुहारी । किरिरा जेहिं नहिं सो न सुनारी ।
किरिरा होइ कंत कर तोखू । किरिरा किहें पाव धनि मोखू ।
जेहि किरिरा सो सोहाग सोहागी । चंदन जैस स्यामि कंठ लागी ।
गोदि गेंद कै जानहुं लेई । गेंदहुं चाहि धनि कोंवरि भई ।
दारिवं दाख बेल रस चाखा । पिउ के खेल धनि जीवन राखा ।
बैन सोहावनि कोकिल बोली । भएउ बसंत करी मुख बोली ।
पिउ पिउ करत जीभ धनि सूखी बोली चात्रिक भांति ।
परी सो बूंद सीप जनु मोंती हिएं परी सुख सांति ॥ ३१७

कहां जूझि जस रावन रामा । सेज बिधंसि बिरह संग्रामा ।
लीन्ह लंक कंचन गढ़ टूटा । कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा ।
औ जोबन मैमंत बिधंसा । बिचला बिरह जीव लै नंसा ।
लूटे अंग अंग सब भेसा । छूटी मंग मंग मे केसा ।
कंचुकि चूर-चूर भै ताने । टूटे हार मोंति छहराने ।
बारी टाड सलोनी टूटीं । बांहू कंगन कलाईं फूटीं ।
चंदन अंग छूट तस भेंटी । बेसरि टूटि तिलक गा मेंटी ।
पहुप सिंगार संवरि जौ जोबन नवल बसंत ।
अरगज जेउं हिय लाइ कै मरगज कीन्हें कंत ।। ३१८ जायसी

मनोहर और मधुमालती के प्रथम समागम का वर्णन
ने इस प्रकार किया है--

किछु आनन्द मिलन के, किछु भै हिये धरेइ ।
प्रथम समागम बाल, दिस्टि न सौंठ करेइ ।।

ᐱ ᐱ ᐱ ᐱ

सांति पिअत स्म चरबु दोऊ, रबि ससि मिलि एक भौं दोऊ
मुख मुख सैन सौंहि ना करई, प्रथम समागम डर थरहरई ।

दीप भरम मुख फूकै बाला, अधिकौ करै रतन उजिआरा ।
दुऔ कर लै लाजन्ह मुख झापै, अधर दसन कै खंडित कांपै ।
एक बोय परम पिआरी, औ भौं प्रीथि समंग ।
निसरै लाज व्यपैउ, पलकन्ह दुहुं रतिरंग ।।

सुत पेम रस अंकम भरैऊ, रतन अबेध बेघ जौ परैऊ ।
कंचुकि तरकि तरकि उर फाटी, बौघसिस मांग औ पाटी ।
सैंदुर मिलिगा तिलक लिलारा, काजर नैन पीक रतनारा ।
कंठहार गिवहार जै टूटै, दलिमल दलै देह सौं छूटे ।
बहुरि फूटिगौ अंब्रित खानी, भौ सांती जौ मालति रानी ।
काम सकति उर जीतियै, कही एक न टार ।
तब गै दुऔ सांति भौं, जब गगन तै छिटका धार ।।पृ १३३

प्रथम समागम के इन वर्णनों में नायिका का रति-मय, नायक की संभोग-क्रिया, कुमारीच्छद के विदीर्ण होने और स्खलन का संकेत है । अंतिम दो संकेत 'रंग गुलाल से दोनों का भरना', 'सिधौरा फूटना', 'कंचन-गढ़-टूटना' तथा 'अमृत खान के फूटने' द्वारा और 'सीप में मोती का पकड़ना' तथा 'गगन से धार छिटकने' द्वारा किया गया है ।

प्रथम समागम का उल्लेख कृष्ण काव्य में अल्प मात्रा में है किंतु उसके पति-पत्नी के होने में संदेह है । इसके वर्णन विद्यापति, परमानंद और ध्रुवदास में ही उपलब्ध हैं । विद्यापति के वर्णनों में प्रथम समागम के अवसर पर नायिका के रूप और रति भय का ही वर्णन है । परमानंद ने इस अवसर पर राधा के श्रृंगार-प्रसाधन का उल्लेख किया है । इसमें रतिमय नहीं है बल्कि उत्सुकता का संकेत है । ध्रुवदास ने प्रथम-समागम के अवसर पर हुई केलि का उल्लेख कर नायिका की काम-कला-दक्षता का संकेत किया है । इस काम-केलि में विपरीत रति का उल्लेख है । उपर्युक्त वर्णनों में से कुछ नीचे दिए जा रहे हैं:-

पथमहि गैलि धनि प्रीतम पासे । हृदय अधिक भेल लाज तरासे ।
ठारि भैलिहि आंगी न डोले । हेम मुरत सनि मुखहुं न बोले ।।

कर दुहु घय पहु पाश बैसाए । रूसलि छलि धनि बदन सुखाए ।
मुख हेरि ताकय ममर फांपि लेल । अंकम भरि कं कमलमुखि लेल ।
मनइ विद्यापति दहड्ड सुमति मति । रस बुझ हिन्दुपति हिन्दुपति ।।

--विद्या० ५७

राधे बैठी तिलक संवारति ।
मृगनयनी कुसुमायुध के उर सुभग नंद सुत रूप विचारति ।।
दरपन हाथ सिंगार बनावत बासर जाय जुगति यौं डारति ।
अंतर प्रीति स्याम सुन्दर सौं प्रथम समागम केलि संभारति ।।
बासर गत रजनी ब्रज आवत मिलत लाल गोवर्धन धारी ।
परमानंद स्वामी के संगम रति रस मगन मुदित ब्रज नारी ।।

परमा० ३७१

प्रथम समागम सरस रस, वर बिहार के रंग ।
बिलसत नागर नवल कल, कौक कलन के अंग ।।१
नमित ग्रींव छवि सींव रही, घूघट पटरि संभारि ।
चरनन सेवत चतुरई, अति सलज्ज सुकुंवारि ।।२
जो अंग चाहत छुयौ पिय, कुंवरि छुवनि नहिं देत ।
चितवनि मुसकनि रसभरी, हरि हरि प्राननि लेत ।।३
रस बिनौद बिपरीति रति, बरसत प्यार को मेह ।
चल्यौ उमड़ि भरि नेम की, तौरि मेड़ जल बेह ।।ध्रुवदास-ब्यालीस-

लीला रस रत्नावली लीला पृ १६७-१६६

रतिरण

प्रथम समागम में नववधू की लज्जा उस सीमा तक होती है कि वह संभोग में खुलकर सहयोग नहीं दे पाती । किंतु जायसी व दामोदर स्वामी के पदों में प्रथम-मिलन पर ही रतिरण का उल्लेख है । जायसी कहते हैं,"अब उस युद्ध का बखान करता हूं जो राम रावण जैसा हुआ । विवाह के उस संग्राम में [illegible] सेज टूट गई । उसने लंका ले ली और वह कंचन का गढ़ टूट गया । जितना श्रृंगार किया था सब लुट गया । उसका मदमत्त यौवन चूर हो गया । दोनों के बीच में जो विरह था, वह प्राण लेकर भागा । अंग-अंग का सब श्रृंगार लुट गया । मांग छूट गई । केश खुल गए । कंचुकी के

बंध चूर-चूर हो गए। हार टूट कर मोती बिखर गए। बालियां और सुन्दर हइडे टूट गए। भुज बंध, और कलाई के कंगन टूट गए। उस आलिंगन से अंगों पर लगा हुआ चंदन पुछ गया। नाक की बेसर टूट गई और मस्तक का तिलक मिट गया। उस बाला ने यौवन के नवल बसन्त में पुष्पों का जो श्रृंगार किया था, उसे पति ने हृदय में अरगजे की भांति लगाकर सब मींड़ डाला।[७२]

दामोदर स्वामी ने नायिका का सुरत-समर में सुसज्जित होकर रस की वर्षा करने का निम्नलिखित उल्लेख किया है:-

रैन दिवारी की सुख सुख कारी। विकच कुंज सुख पुंज सेज पर बैठी प्रीतम प्यारी।।
नगर तन राजत पीताम्बर नागरि सही सारी। जामगाई रहयी ललित लता मुह दुहुं मुख की उजियारी।
सर्म सुदेसु बिचारी हरषि मन लाडिली नवल बिहारी। खेलनि चौपर लगे चतुर मनि मुदित निरखि सहचारी।।
डारनि पासे सारचलावनि नख मुंदरी दुति न्यारी। डोलनि पहुंची फांदा सुंदर सोभा कहां कहारी।।
कबहूं इक टक चितय रहत दृग कबहूं चंचलतारी। कबहूं ~~[illegible]~~ फगरत फुकल जुगल बर उपजत छवि अति भारी
कबहूं बदन बिलोकि रहत पिय न दाउ संभारी। चातुर सखी समधि आतुरता लखि पिय मन मई न्यारी।।
कौक प्रवीन किशोरी सब बिधि पियमन जाननि हारी। सुरत समर सजि सुंदर हरि मिलि करी रस की बरखा री।।
रंध्रनि मारग अवलोकत हित सखी ललिता री। दामोदर हित अविचल जोरी जीवन सदा हमारी।।[७३]

१७- <u>संभोग का वर्णन</u>

भक्त कवियों ने संभोग का वर्णन दो प्रकार से किया है प्रकार में उन्होंने पति-पत्नी, नायक-नायिका, राधा-कृष्ण सीता या शिव-पार्वती के श्रृंगार का संकेत मात्र किया है।

---

७२ पद्मावत ३१८

७३ लेखक के हस्तलिखित प्रति के संग्रह से पृ १६

तो यह संकेत इतना सूक्ष्म है कि संभोग का अनुमान मात्र ही किया जा सकता है । यथार्थ में मर्यादा की अतिशय भावना के कारण ही ऐसा है ।[७४] कभी -कभी संकेत इससे कुछ अधिक स्फुट पर अत्यंत मर्यादित होता है । इसमें संभोग का उल्लेख मात्र होता है वर्णन नहीं । इस प्रकार के वर्णन तुलसी में प्राप्त हैं । कभी-कभी संकेत के स्थान पर ~~उल्ले~~ उल्लेख है पर अल्प । नायक -नायिका के मिलन और संभोग का कथन मात्र इसमें रहता है । क्रियाओं की सूक्ष्मता, विविधता और उनके विस्तार का अभाव रहता है । इस प्रकार के सामान्य संभोग वर्णनों पर हम कुछ विस्तार से विचार करेंगे ।

~~नितांत स्फुट~~

द्वितीय प्रकार में संभोग के वे वर्णन रखे जा सकते हैं जो नितांत स्फुट हैं । उनमें नायिका -नायक में कामोद्दीपन की अनेक क्रियाओं और उनके प्रभाव तथा अन्य बातों का इतना विस्तृत वर्णन रहता है कि सामने चित्र सा खड़ा हो जाता है ।संभोग के ऐसे ~~क~~- वर्णनों का अध्ययन अलग से किया जाएगा ।

संभोग के संकेतात्मक वर्णन

संकेत मात्र :

इस प्रकार के वर्णन - यदि इन्हें वर्णन कहा जा सके तो - का मनोविज्ञान इष्ट देव के प्रति अत्यंत मर्यादित भावना है। विवाह के अनन्तर भी कवि नहीं चाहता कि सोहागरात का स्पष्ट उल्लेख किया जाए ।

आगे चल कर कवि एक शुभ दिन को कंकण छोड़ने की प्रथा का उल्लेख करता है । उस दिन बहुत ही विनोद और आनन्द हुआ , इतना ही कह कहता है । इस संकेत से ही पाठक को कल्पना कर लेनी है कि आज राम-सीता की सुहागरात हुई ।[७५]

---

७४ मानस - बाल ३५८।२

७५ सुदिन सोधि कल कंकन छोरे ।मंगल मोद बिनोद न थोरे।
मानस बाल० ३६०।१

लगता है कि मर्यादा की यह अतिशय भावना राम के चरित्र के साथ ही लगी थी । यही कारण है कि श्रृंगार-सम्राट सूर ने भी विवाहोपरांत अयोध्या - आगमन के बाद ही वनवा का प्रकरण प्रारंभ कर दिया और राम-सीता की केलि का एक मात्र संकेत भी नहीं किया ।[७६]

उल्लेख मात्र

तुलसी दास ने शिव-पार्वती के श्रृंगार का उल्लेख मात्र किया है । उसके वर्णन न करने का उन्होंने कारण दिया है शिव और पार्वती जगत के पिता और माता हैं फिर उनके श्रृंगार का वर्णन कैसे किया जा सकता है ? शायद इस वर्णन के समय उनके मस्तिष्क में कालिदास की याद कौंध गई जिन्हें इसी अनुचित वर्णन के कारण कहा जाता है कुष्ट रोग से पीड़ित होना पड़ा था । किन्तु इन दोनों के श्रृंगार का वर्णन न करते हुए भी उन्होंने अनेक प्रकार से भोग विलास किया इसका स्पष्ट उल्लेख तुलसीदास ने किया जिसका कि राम के संबंध में पूर्ण अभाव है । यह उल्लेख निम्नलिखित है :-

जबहिं संभु कैलासहिं आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए ।।
जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहिं सिंगार, न कहउं बखानी ।।
करहिं विविध बिधि भोग विलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा ।।
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि विधि बिपुल काल चलि गयऊ।
तब जनमेउ षटबदन कुमारा । तारक असुर समर जेहि मारा ।। [७७]

इस समस्त भोग-विलास के फलस्वरूप षट् बदन का जन्म हुआ ।

कथन मात्र

संभोग का विस्तृत वर्णन करने वालों ने भी अन्य कवियों की भांति इसका कथन मात्र भी किया है । यह दर्...

---

७६ देखें सूरसागर - ४७६-४७२

७७ मानस १०३।२-४

भी विस्तार के अनुसार विभिन्न उपविभागों में बांटा जा सकता है जैसे उदाहरणार्थ वे वर्णन जिनमें कवि ने इतना ही कहा है कि स्याम-स्यामा ने केलि की, , वे वर्णन जिनमें आलिंगन, चुंबन, कुच-ग्रहण का उल्लेख है, वे वर्णन जिनमें दोनों के विविध शृंगार का वर्णन, कुंज का वर्णन, सैज का वर्णन आदि भी है और उनकी केलि का भी। इन उपविभागों से कोई लाभ नहीं और न ही यह वर्गीकरण विशेष वैज्ञानिक ही हो सकता है । इस लिए प्रत्येक के विस्तृत उदाहरणादि हम नहीं देंगे ।

ऐसे वर्णनों की संख्या इतनी अधिक है कि सभी का उल्लेख करना असंभव और अनावश्यक है । कुछ उल्लेखनीय उद्धरण नीचे दिए जा रहे हैं :-

नयौ नेह, नयौ गेह, नयौ रस, नवल कुंवरि वृषभानु- किसोरी ।<br>
नयौ पितांबर, नई चूनरी, नई-नई बूंदनि भीजति गोरी ।।<br>
नये कुंज, अति पुंज नये द्रुम, सुभग जमुन-जल पवन हिलोरी ।<br>
सूरदास प्रभु नव रस बिलसत नवल राधिका जौबन-भोरी।। सूर १०३३

रस बस स्याम कीन्ही ग्वारि ।<br>
अधर-रस अंचवत परस्पर, संग सब ब्रज नारि ।।<br>
काम-आतुर भजी बाला, सबनि पुरई आस ।<br>
एक इक ब्रजनारि, इक-इक आपु कर्यौ प्रकास ।।<br>
कबहुं नृत्यत कबहुं गावत, कबहुं कोक विलास ।<br>
सूर के प्रभु रास-नायक, करत सुख-दुख नास ।। सूर १६८०

उज्वल मृदु बालुका, पुलिन अति सरस सुहाई ।<br>
जमुना जू निज कर तरंग करि आप बनाई ।।<br>
बिलसत बिबिध बिलास, हास नीबी-कुच परसत ।<br>
सरसत प्रेम अनंग, रंग नव घन ज्यौं बरसत ।। नंददास रास पंचाध्यायी<br>
२४३-४४६

४- पौढ़े हैं दोऊ पिय प्यारी ।
मंद सुगंध पवन जहाँ परसत तैसियै राजति निसि उज्यारी ।।
विविध भाँति फुलनि की सिज्जा सुख विलास बाढ्यौ अति भारी ।
तैसियै मिलि रची नव कुंज तन पहिरें नव तनसुख-सारी ।।
कंठ मेलि भुज, केलि करत हैं ज्यौं दामिनि घन सै तन न्यारी ।
कुंभनदास गोवर्द्धन-धारी सुख-सागर उपज्यौ रंग भारी।। कुंभनदास ३००

५- तू नैक देखि री, प्रीतम कौ मोहन-मुख ।
गौर चरन पर, अरुन,स्याम छवि, मनौ बिधुकुल सौं करत कमल मुख ।।
अरु लोचन जल- विंदु विराजत, मनहुं मधुप मधु बमत मानि दुख ।
आरत जानि आनि उर लालहिं, व्यास स्वामिनी देतिसुरत सुख।। व्यास
५३४

६- लाड़िली लाल बिलास करैं रचि सेज सुदेस सुरंग सुहाई ।
मंदहि मन्द हसैं रस मत्त भरे अनुराग महा छबि पाई ।।
कोक कलानि की घातनि माहिं बिचित्र बिनोद बढ़ावत माई।
सखी चहुं ओर लतानि लगी निरखैं ध्रुव प्राननि देत बधाई।।
ध्रुवदास पृ १००

७- जहाँ तहाँ कुंजन की काँति ।संत अरुण फूली बहु भाँति ।
सरस कुंज सिंगार हार की । रक्त कुसुम मन गति सुकुंवार की ।
रची सेज घर कुसुम चारु की । सुरत होत मन रुस विहार की ।।
माधुरी वानी - वृन्दावन
माधुरी ५३-५५

८- हेज सौं सेज पै लै लटकी नव लाल कौं लाड़िली केलि नवेली ।
कमनी रमनी मन रंग पगी लगी लाल तमाल सौं कंचन वेली ।
कला निधि सै मुख सौं मुख जोरि सो कोक कला निधि पी संग खेली
संतत प्रेम हत- महा बलि ता सुख फेलत हैं ललितादि सहेली ।।
दामोदर स्वामी निजी

९- माई री ये बसीठ ये इनके और घों को परै बीच ।
हाथा पाई करत जु श्रम भयों अंग अरंगजा की कीच ।
प्यारी जू के मुख अंबुज को डहडहाट ऐसो ,
लागत ज्यों अधर अमृत को सींच ।।
श्री हरि दास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी,
के राग रंग के लपटान के भेद न्यारे न्यारे ,
जैसें पानी मैं पीनी नरीच ।। हरिदास - केलिमाल ५५

१०- आजु देखि व्रजसुन्दरी मोहन बनी केलि ।
अंस-अंस बाहु दै, किशोर जोर रूप रासि,
मनौं तमाल अरु भि रही सरस कनक बेलि ।।
नव निकुंज भ्रमर गुंज, मंजु घोष प्रेम पुंज,
गान करत मोर पिकनि अपने सुर सौं मेलि ।।
मदन मुदित अंग- अंग, बीच-बीच सुरत रंग,
पल-पल हरिवंश पिवत नैन चषक मेलि।। हित चौरासी १७

संभोग का विस्तृत वर्णन सभी कवियों में नहीं मिलता है । अधिकतर कवि आलिंगन, चुंबन आदि का उल्लेख कर "श्याम-श्यामा ने सुरत की" द्वारा वर्णन समाप्त कर देते हैं । किन्तु ऐसे कवियों के अतिरिक्त भी कुछ कवियों ने संभोग का अधिक विस्तार से वर्णन किया है । संभोग के पूर्व की एक- एक क्रिया का आद्योपान्त वर्णन किसी भी एक पद में मिलना कठिन है पर उसके विभिन्न अंगों का वर्णन भिन्न- भिन्न कवियों में मिल सकता है । उदाहरणार्थ -

(१) आमंत्रण :- नई नायिका अत्यंत लज्जालु चित्रित की जाती है । नायक ही उसे प्यार से आमंत्रित कर वार्तालाप करता है । यथा -

मदन गोपाल- मिलन को राधे । चोस कुंज- बन बनि चली कामिनि
सकल सिंगार विचित्र विराजित नखसिख- अंग अनूप अभिरामिनि ।।
जोबन नवल ठौनि, कटि केहरि, कदलि जंघ जुगल गज गामिनि ।
चकई बिछुरि, कमल पुट दीनौं कियो है उद्योत ससी भई जामिनि ।
ठाढी जाइ निकट पिय कै भई, लई कर पकरि सेज पर भामिनि ।
"कुंभनदास" लाल गिरधर के लागि सोहै जैसे-घन-मंह दामिनि ।।

- कुंभनदास २९४

देखे सात कमल इक ठौर
तिनकौं अति आदर दैबे कौं, धाइ मिले द्वै और ।।
मिलत मिले फिर चलत न बिछुरत, अवलोकत यह चाल ।
न्यारे भए बिराजत है सब अपने सहज सनाल ।।
हरि तिनि स्याम निसा, निसि- नायक, प्रगट होत हँसि बो
चिबुक उठाइ कह्यौ अब देखौ, अजहूं रहत अबोले ।।
इतने जतन किये नँद नँदन, तब वह निठुर मनाई ।
भरि कै अंक सूर के स्वामी, पर्यंक पर ह्वां आई ।। -

(२) वार्तालाप :- नायिका के शैया पर आने के
दोनों में वार्तालाप का कवियों ने विशेष उल्लेख नहीं किया है ।
टट्टी संप्रदाय के बिहारनि देव ने एक पद में इसका उल्लेख किया है
इसमें कृष्ण राधा को काम- कहानी कह- कह कर रिझाते हैं ।

वह पद निम्नलिखित है :-

नैन्हीं नैन्हीं बूंद बन सघन मानौं प्रेम बरषै पानी ।
सींचि सींचि मन मोद बढ़ावत गावत प्रीतम प्रियहिं रिझावत
कहि- कहि काम कहानी ।
फुहिन पात चुचात गात सिरात रीझ- रीझ अंग संग रंग रसिक
खानी ।
श्री बिहारनिदास सुख संपति दंपति विलसि विलसि रस पावस
रितु रति मानी । - निजी संग्रह पृ०८५

इसके अतिरिक्त वार्तालाप के संकेत कुछ अन्य पदों में भी मिल जाते हैं, किंतु कामोद्दीपन के लिए वार्तालाप का इतना स्पष्ट उल्लेख और कहीं नहीं है । उदाहरण स्वरूप,

आज रस माते मोहन डोलत ।
नव निकुंज निशि सहज हि बिलसे विलसनि लालन बोलत ।।
- दामोदर वर - निजी संग्रह पृ० ६०

(३) ताम्बूल- निवेदन :- भारतीय श्रृंगार प्रसाधनों में पान का महत्वपूर्ण स्थान है । श्रृंगार ही क्यों वार्तालाप प्रारंभ करने के लिए जो स्थान आज कल सिगरेट देने का है, उससे भी महत्वपूर्ण स्थान कदाचित् मध्य युग में पान देने का रहा होगा । प्रवृद्धरागावस्था में पान के द्वारा नायक- नायिका परस्पर अनेक प्रकार की क्रीड़ा कर सकते हैं । प्रवृद्धरागावस्था में एक दूसरे की पीक पी लेने का कथन ही हरि राम व्यास के एक पद में है :-

स्याम कै गोरी सहज सिंगार ।
कंचन तन, हीरा दसनावलि, नख मुक्ता सुखसार ।।
कुच- कलसन मई प्रान- रतन धरि, अधर- सुधा आधार ।
चरन सिरोमनि कर नैननि धरि, भुज चंपक मनि- हार ।।
अंग- अंग सेवा रस मेवा, बन- बिहार आधार ।
परिरंभन पट- भूषन चुंबन, चितवनि हंसनि भंडार ।।
पिय के गंड अधर, रसना, मुख सुखमय जूठी धार ।
व्यासि दासि दिन पीक पियत, बड़भागिनि लेत उगार ।

यह तो पराकाष्ठा की स्थिति है । किन्तु प्रथम समागम के दिन पान- चर्वण का वर्णन कवियों ने लगभग नहीं ही किया है । राधावल्लभ संप्रदाय के ध्रुव दास जी तथा कुछ अन्य कवियों ने पान खाने का सामान्य उल्लेख अपने पदों में किया है । ध्रुवदास कों पद निम्नलिखित है :-

प्रीतम किशोरी गोरी रसिक रंगीली जोरी,
प्रेम ही के रंग वोरी शोभा कही जाति है ।
एक प्राण एक बेस एक ही सुभाव चाब,
एक बात दुहुनि के मनहि सुहाति है ।
एक कुंज एक सेज एक पट ओढे बैठे,
एक एक बीरी दोऊ खंडि खंडि खात है ।
एक रस एक प्राण एक दृष्टि हित ध्रुव,
हेरि हेरि बढै चौंप क्यों हू न अघाति है ।।[७८]

– भजन दुतिया श्रृंखला लीला – ब्यालीस लीला पृ० ९३

(४) <u>चुंबन – आलिंगन</u> :- चुंबन- आलिंगन संभोग वर्णन के अनिवार्य अंग ही है । सभी कवियों ने इनका उल्लेख किया है । इनके कुछ उदाहरण हम पीछे दे आए है और कुछ आगे दिए जाने वाले उद्धरणों में स्वयमेव आ जाएंगे । अतः उनका पुनः उल्लेख नहीं किया जा रहा है ।

(५) <u>वस्त्रापहरण</u> :- चुंबनादि के उपरांत स्त्री को निर्वस्त्रा करने के साथ संभोग का पहला महत्वपूर्ण कदम उठता है । यह क्रिया भी कई प्रकार से की जाती है जिसमें सबसे मुख्य विधि चोली खेलने से प्रारंभ होती है । दूसरी विधि में ~~मर्दि~~- परिहास में स्त्री के वस्त्रों को खींचा जाता है, जिससे वे स्वयं ही खुल जायं यदि चुंबनादि उपक्रियाएं ठीक विधि से संपन्न हुई होती है तो

---

७८- देखें श्री भट्ट युगल शतक पृ० १९।४४-४५ जिसमें नायक- नायिका दोनों परस्पर पान खिलाते है तथा वल्लभ रसिक – पान खात लपटात गात उर जात परस सरसार ।। पृ० १८॥ केलिमाल ४२, हित लाल स्वामी की वाणी, निधी संग्रह पृ० ४२

नायिका इस स्थिति तक में काफी उत्तेजित हो जाती है । कवियों ने वर्णन किया है कि संभोग के लिए प्रस्तुत होने की स्थिति में आनन्द के कारण नायिकाओं की चोली के बन्द स्वयं टूटने लगते है ।[७९] नायक द्वारा चोली खोलने के दो वर्णन नीचे दिए जा रहे हैं -

एक रसना कहा कहीं सखी री लालन की प्रीति अमोली ।
हंसनि खेलनि चितवनि जु छबीली अमृत बचन मृदु बोली ।।
अति रस भरे री मदन मोहन पिय अपुने कर कमल खोलत बंद चोली ।
गोविंद प्रभु की जु बोहोत कहां लो कहैं जे बातें कही अपुनो हृदौ
खोली ।। - गोविंदस्वामी
२७८

आज रस माते मोहन डोलत ।
नव निकुंज निशि सहजहि विलसे विलसनि लालन बोलत ।
महा मत्त अति प्रेम सने री कुच कंचुकि बन्द खोलत ।
प्रमुदित अंग लोभ आलिंगन चुंबनि गंडनि रोषत ।
वचन रचन लालन रस लंपट उमति उमगि झक झोलत ।
जै श्री दामोदर हित सुरत केलि कौं निरखि सखी सुख तोलत ।।
- दामोदर वर - निजी संग्रह पृ० ६०

कभी- कभी आवेश की स्थिति में कंचुकी बंदों को तोड़ कर ही नायक उनके अन्दर बन्द पड़ी निधि को पाता है -

क्रीड़त कुंज - कुटीर किसोर ।
कुसुम- पुंज रचि सेज हेज मिलि, बिछुरि न जानत भोर ।।
स्याम काम- बस तोरि कंचुकी, करजनि गहि कुच- कोर ।
स्यामा मुंच- मुंच कहि, खंडिति गंड अधर की ओर ।।
नागर नीवी- बंधनि मोचत, चरन गहि करत निहोर ।
नागरि नेति- नेति कहि, कर सौं कर पेलत गहि डोर ।।
मत्त- मिथुन मैथुन दोऊ प्रगटत, बरवट जोबन- जोर ।
"व्यास" स्वामिनी की छबि निरखत, भये सखि लोचन चोर
- व्यास ५६

---

७९- सूर १७६३, ३१४६

नायिका भी अत्यंत आतुरता के कारण कभी- कभी स्वयं चोली खोलती है ।

दुहू आतुरनि चतुरता भूली ।
कुंजगली अनबोले डोलत, भैंट भई सुख- मूली ।।
स्याम पीतपट सैज करी, स्यामा निजु कँचुकि खूली ।
रजनीमुख सुख देख परस्पर, चितवत भूला हूली ।
अंग टटौरि अँगुरियनि बातैं, कहत कुँवरि सुख फूली ।
पिय हिय सुख दै "व्यास" स्वामिनी, सुरत- डोलि चढ़ि भूली ।।

- व्यास ४५२

हित हरि वंश के "हित चौरासी" में वस्त्रापहरण का निम्नलिखित पद वर्णनीय है -

आज बन क्रीड़त श्यामा श्याम ।
सुभग बनी निशि शरद चांदनी रुचिर कुंज अभिराम ।।
खंडत अधर करत परिरंभन ऐंचत जघन दुकूल ।
उर नख पात, तिरीछी चितवनि, दंपति रस समतूल ।।
वैभुज पीन पयोधर परसत, बामा हशा पिय हार ।
वस नति पीक अलक आकर्षत, समर श्रमित सतमार ।।
पल पल प्रबल चौंप रस लंपट अति सुन्दर सुकुमार ।
जै श्री हित हरिवंश अश्रु तृण टूटत हौं वलि विशद बिहार ।।

- ३२ तथा देखें व्यास ६६०

ये वस्त्र आतुरता में फाड़ भी दिए जाते है जैसा कि हरि राम व्यास के निम्नलिखित पद में आता है -

बिहरत राख्यौ रंग अँध्यारे ।
परे पीठ दै रूसत हू, दौउ लपटि भये नहिं न्यारे ।।
चंचल अंचल सनमुख ह्वै, लै उसास दै गारे ।
बरबट ही आंको भरि, बंधन करि, हंसि नैन उघारे ।।
अति आवेस सुदेस देखियत, दूरि करत पट फारे ।
व्यास स्वामिनी रूठी तूठत, पिय के दुखहिं बिसारे ।।

- व्यास ५६१

सूर के निम्नलिखित वर्णन में भी यह आतुरता अपनी पराकाष्ठा को पहुंच गई है -

हरषि पिय प्रेम तिय अंक लीन्हीं ।
प्रिया बिनु बसन करि, उलटि धरि भुजनि भरि, सुरति रति पूरि, अति निबल कीन्हीं ।।
आपनैं कर- नखनि अलक कुरवारहीं, कबहुं बांधै अतिहिं लगत लोभा ।
कबहुं मुख मोरि चुंबन देत हरष ह्वै, अधर भरि दसन वह उनहिं सोभा ।
बहुरि उपज्यौ काम, राधिका- पति स्याम, मगन रस- ताम नहिं तनु सम्हारैं ।
सूर प्रभु नवल- नवला, नवल कुंज गृह अंत नहिं लहत दोऊ रति बिहारैं ।। - सूर २६०६

कुच- मर्दन और नख- दंत क्षतादि

भक्त कवियों के संभोग वर्णन में कुचों का बड़ा महत्व है । कवि व्यास ने तो इन पर अनेक पद लिखे हैं ।

राधा के साथ किए गए कामोद्दीपक क्रिया कलापों में सूर ने भी कुच स्पर्श को स्थान दिया है ।

नीबी ललित गही जदुराई ।
जबहिं सरोज धरयौ श्री फल पर, तब जसुमति गई आइ ।।[८०]

कुच मर्दन के उदाहरण आगे आएंगे, इसलिए यहां उन्हें देना अनावश्यक होगा ।

महाकवि जयदेव ने अपने "गीत गोविंद" में राधा के कुचों पर चंदन से चित्र बनाने में निपुण कृष्ण की वंदना की है ।

---

८०- सूर १३०० तथा देखें
गोविंद स्वामी ४०४ आदि
कुंभन ३०१ आदि
वल्लभरसिक २०४ आदि
व्यास ५६८, ५७८, ५६७, ३२६, ६८२ आदि ।

लेखक को वल्लभ रसिक का ही इस पर निम्नलिखित पद मिला है संभव है कि और कुछ पद भी अभी हिन्दी भक्ति - साहित्य में छिपे पड़े हों :-

नव उरज उतंग रंग मृग मदले नवल विचित्र चित्र रचत ।
ऐन मैन कंचुकी दुकीं सीं लिषि संवारीं षई षमकि सी बैठारी ।
मुहरी विच विच अति रंगु बाढत जब कर चलत ।
फैलै रंगहि गहि गहि पोंछत हारिन मानत फिरि फिरि -
गोंछत संभरि सुधारत नैंकु -
उमचत ।।
बल्लभ रसिक अधबनि ये कंचुकी सों बनी बनाक पर रीभ बनी -
अति गति रति रस मचत ।। वल्लभ रसिक - पृ० ७०

नख - क्षतादि का उल्लेख उनके प्रकरणों में यथेष्ट विस्तार के साथ हो चुका है और उनके नवीन उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है ।

नीवी मोचन -

नीवीं मोचन का वर्णन सूर और व्यास में यथेष्ट हुआ है इस क्रिया के वर्णन में विस्तार की संभावना नहीं है और इसीलिए सुरत के वर्णन मे इसका ~~यथेष्ट~~-मात्र उल्लेख मिलता है ।

बिहरत नवल रसिक राधा संग ।
रचित कुसुम सयनीय, भामिनी- कमल बिमल, हरि - भृंग ।
अधर-पान-परिरंभन- चुंबन, बिलसत कर जुग उरज उतंग ।।
नीबीं बंधन मोचत, सोचत, नेति वचन सुनि अधिक उमंग ।।
नैन- सैन, परिहास- वचन, हंसत बसत पुलिकित भ्रुव- भंग

नवनिकुंज रति पुंजनि बरषत, सुख सूचत, नखसिख अंग-अंग ।
बीच-बीच प्रंचम सुर गावत, सुनि धुनि बिथकित " व्यास " कुरंग ।।

- व्यास ५५८ तथा देखें

५६७

आज बन बिहरत जुगल- किसोर ।
सघन निकुंज- भवन महं बिहरत, सहज सयान प्रीति नहिं थोर ।
गौर-स्याम तन नील-पीत पट, मोर - मुकुट सिर होर ।
भूषन, मालावलि, सज मृगमद, तिलक भाल भरि ओर ।
प्रथम अलिंगन - चुम्बन करि, अधरन की सुधा निचोर ।
मानहुं सरद- चंद की मधु, चातिक तृषित चकोर ।
मंद हंसत मन मोह्यौ भृकुटिन, सैननि चित बिन - चोर ।
करजनि मधुर बचन- रचना रचि, नागर नीवीं छोर ।
सरस घन परसत सुख उपजत, कुंवरि हंसी मुख मोर ।।
कोक -सुरत -रस वीर धीर दोऊ, कहत रहत हो, होर ।
सिथिल नैन पिय के देखत, विपरीत "व्यास " रसगति गोर ।।

- व्यास ५७८ तथा दे ५६८,५७९,३२९,
६६० ।।

नवल नागरि, नवल नागर किसोर मिलि, कुंज कोमल- कमल दलनि-
सज्या रची ।।
गौर सांवल अंग रुचिर तापर मिले, सरस मनि मृदुल कंचन सु अ...
खची ।।
सुंदर नीबी बंध रहति पिय पानि गहि पीय के भुजनि मैं कलह-
मोहन मची ।
सुभग श्रीफल उरज पानि परसत, हुंकरि, रोषि, करि गर्व-
दृग भंगि, भामिनि लची

सुख रासि - अंतर- सखी ।।

- सूर १८०९

जघन- स्पर्श तथा मदन- सदन दर्शन

इनका उल्लेख तथा इनके प्रभाव का वर्णन कम ही कवियों में प्राप्त है । इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं --

निवि- बंधन हरि किए कर दूर । एहो पर तोहर मनोरथ पूर ।
हेरने कओन सुख न बुझ विचारि । बड़ तुहु ढीठ बुझल -
बनमारि ।।
हमर सपथ जौं हेरह मुरारि । लहु लहु तब हम पारब गारि ।।

- विद्या-६१

(१) बिहरत दोउ ललना- लाल ।
रसिक अनन्य सरस सुख - कारन, बैरिन के उर- साल ।।
कुंज महल मैं हेज सेज पर, चंपक बकुल गुलाल ।
उड़त कपूर-धूरि कुमकुम -रंग, अंग राग बनमाल ।।
गौर- स्याम परिरंभन राजत, पीवत बाहु- मृनाल ।
मानहुं कनक- बेलि बेलि सौं, उरझी तरुन तमाल ।।
कुचगहिं चुंबन करत, डरत नहिं, पीवत अधर- रसाल ।
नीवी मोचत नेति बचन सुन , सोचत नहीं गुपाल ।।
जघनि परस पुलकावलि बेपथ, कल कूजित नव बाल ।
भृकुटि- विलास हास मृदु बोलत, डोलत नयन विसाल ।। अ

- व्यास ५६८ तथा देखें ५७८ ।

(२) बन बिहरत वृषभानु - किसोरी ।
कुसुम- पुंज सयनीय, कुंज कमनीय, स्याम रंग बोरी ।।
नीवीं - बंधन छोरत, मुख मोरत, पिय चिबुक चारु ~
ओली ओढ़ि खोलि चोली, दुख मेटि भेटि कुच जोरी ।

सरस- जघन दरसन लगि, चरन पकरि हरि कुंवरिनिहौरी ।
मदन- सदन कौ वदन बिलोकत, नैननि मूंदति गोरी ।। आदि -

- व्यास ५७९ तथा देखें ३०८

(३) सघन जघन खन कुवन तन पिचकन सचि रंग रात ।
परसत दरसत अंगनि के तरसत रस सरसात ।। वल्लभ रसिक-

पृ० २४

(४) सघन जघन सु मदन के सदन लखि रीझ पंचाई न जाई ।
अत रौटे की सैलौटें द्वै चख लोटे पाइन आई ।। वल्लभ रसिक-

पृ० १५

(५) बसीठी सैननि ही जोरी ।
रूठेहूए न तजी चंचलता, जानत चित - बित चोरी ।।
कुंचित नासा, लोल कपोलनि, मोहति मन मुख मोरी ।
अंग- अंग प्रति रति-रस लालच, साहस चिबुक टटोरी ।।
काम-कनक - सिंहासन तरलित, सिथिल बसन कटि डोरी ।
कंपित कुच, कर, जघन, अधर,उर, स्रमजल पुलक न थोरी ।।
नैननि राची, भौंहनि, बिरची, हंसि पिय कुंवरि निहोरी ।
कैतव गुरु गोपाल "व्यास" प्रभु, चरन गहे लट छोरी ।।

- व्यास ४१३

सुरत -

उपर्युक्त समस्त क्रियाओं के बाद रति की मुख्य क्रिय संप्रयोग आती है । संप्रयोग का तो वर्णन कवियों ने नहीं किया है पर उनके इस सुख, का बहुत अधिक वर्णन किया ... वर्णन अनेक रूप में प्राप्त है । कुछ वर्णनों को तो ... में दिया जा चुका है और कुछ को उनके विविध रूपों ... दिया जा रहा है ।

सुरत का वर्णन करते हुए राधा और कृष्ण की उपमा कनक- बेलि और तमाल से दी गई है:-

रसिकनि रस में रहति गडी ।
कनक - बेलि बृषभान - नंदिनी स्याम तमाल चढ़ी ।।
विहरत लाल संग राधा के कौने भाँति गढ़ी ।
कुंभन दास लाल गिरिधर -संग रति-रस केलि पढ़ी ।। कुंभनदास १७

राधा रति में बाधक हार को उतारती है:-

उतारत है कंठनि ह तैं हार ।
हरि हिय मिलत होत है अंतर, यह मन कियौ विचार ।।
भुजा वाम पर कर- छबि लागति, उपमा अंत न पार ।
मनहु कमल दल नाल मध्य तैं, उयौ अद्भुत आकार ।।
चुंबत अंग परस्पर जनु जुग, चंद करत हित- चार ।
दसननि बसन चाँपि सु चतुर अति, करत रंग विस्तार ।।
गुन -सागर अरु रस- सागर मिलि, मानत सुख व्यवहार ।
सूर स्याम स्यामा नव रस रमि, रीझे नंदकुमार ।। सूर १३०५

नए प्रेम में दोनों पगे है । मदन की ज्वाला से वे जलने लगते है:-

नव गुपाल, नवेली राधा, नये प्रेम रस पागे ।
अंतर बन- बिहार दोउ क्रीड़त, आपु आपु अनुरागे ।।
सोभित सिथिल बसन मनमोहन, सुखवत स्रम के पागे ।
कबहुंक बैठि अंस भुज धरि कै, पीक कपोलनि पागे ।।
मानहु बुझी मदन की ज्वाला, बहुरि प्रजारन लागे ।
अति रस- रासि लुटावत लूटत, लालचि लाल सभागे ।।
नहिं छूटति रति- रुचिर भामिनी, वा रस में दोउ पा
मनहु सूर कल्पद्रुम की सिधि, लैउतरी फल आगे ।। सूर

हरषि पिय प्रेम तिय अंक लीन्हीं ।
प्रिया बिनु बसन करि, उलटि धरि भुजनि भरि, सुरति रति पूरि,
अति निवल कीन्हीं ।।
आपनै कर-नखनि अलक कुँवारहीं, कबहुँ बाँधै अतिहिं लगत सोभा ।
कबहुँ मुख मोरि चुंबन देत हरष ह्वै, अधर भरि दसन वह उबहिं-
सोभा ।।
बहुरि उपज्यौ - काम, राधिका -पति स्याम, मगन रस- ताम-
नहिं तनु सम्हारैं ।
सूर प्रभु नवल- नवला, नवल कुंज गृह, अंत नहिं लहत दोउ रति-
बिहारैं ।।
सूर-२६०६

क्रीड़त कुंज कुटीर किसोर ।
कुसुम पुंज रचि सेज हेज मिलि बिछुरि न जानत भोर ।।
स्याम काम बस तोरि कंचुकी, करजनि गहि कुच - कोर ।
स्यामा मुंच-मुंच कहि, खंडित गंड अधर की ओर ।
नागर नीवी- बंधनि मोचत, चरन गहि करत निहोर ।।
नागरि नेति नेति कहि, कर सौं कर पेलत गहि डोर ।
मत्त- मिथुन मैथुन दोऊ प्रगटत, बरवट जोबन जोर ।
"व्यास" स्वामिनी की छबि निरखत, भये सखि लोचन चोर ।।
-व्यास ५६७

सुरत के समय आभूषणों का रव होने लगता है-

तलप रची नवकुंज सदन में पौढे दंपति करत बिहार ।
अरस परस हँसि हँसि विलसै मिलि सुरत समागम परम अपार
परिरंभन चुंबन आलिंगन क्रीड़त ही भयो सिथिल सिंगार ।
कंकर्न बलय किंकिनी नूपुर धुनि विरमि विरमि उपजत ::-
स्रम कन बदन मदन रस लंपट राधा रसिकिनी नंदकुंवार ।
"गोविन्द" निरखि हरखि गुन गावन जुगल किसोर सिज्या -
कर
गोविन्दस्वामी -

नागरि नव बाल संग रंग भरी राजै ।
श्याम अंश बहु दिये कुंवरि पुलकि पुलकि हिये मंद मंद हँसनि प्रिये-
कोटि मदन लाजै ।
तरू तमाल श्याम लाल लपटी अंग अंग बेलि निरखि सखी बनि -
सुकेलि नूपुर कल बाजै ।।
जै श्री दामोदर हित सुवेश शोभित रस सुख सुदेश नव निकुंज भंवर-
गुंज कोकिल कल गाजै ।।

दामोदर वर - जिर्णि संग्रह -
पृ० ५३

देखि री देखि आज दंपति की अति अद्भुत रति केलि कलोलनि ।
सम्हरि गात छुरि जात जुरत फिरि आनंद उर न समात अतोलनि ।।
जावत रावत भावत मुरि मुरि ढरि ढरि भरि भरि अंक अमोलनि -
श्री हरि प्रिया अंग अंग उमगत अरि अनुसरत करत भकभोरनि ।।

- महावाणी-सुरत सुख ३३

नवल नवल सुख चैन ऐन आपने आपु बस ।
निगम लोक मर्यादा भंजि क्रीड़त रंग रस ।।
सुरत प्रसंग निशंक करत जोइ-जोइ भावत मन ।
ललित अंग चलि भंग भाइ लज्जित सु कोकगन ।।
अद्भुत बिहार हरिवंश हित निरखि दासि सेवक जियत ।।
विस्तरत, सुनत, गावत रसिक सु नित - नित लीला रस पियत ।।

-सेवक जी - रस रीति प्रकरण ९

नागरता की राशिकिशोरी ।
नव नागर कुल मौलि सांवरौ बरबस कियौ चितै मुख मोरी ।।
रूप रूचिर अंग - अंग माधुरी , बिनु भूषण भूषित ब्रज गोरी ।
छिन-छिन कुशल सुघंग अंग मैं,कोक रभस रस सिंधु भकोरी ।।
चंचल रसिक मधुप मोहन मन ~~रसत~~ राखे करन कमल कुच कोरी
प्रीतम नैन जुगल खंजन खग बांधे विविध निबंधन डोरी ।।
अवनी उदर नाभि सरसी मैं मनौ कछुक मादिक मधु चोरी ।
जै श्री हरिवंश पिवत सुन्दर वर सींव सुदृढ़ निगमनि तोरी

-हित चौरासी ८

आजु लवंग लता गृह बिहरत, राजत कुंज बिहारी ।
कुसुम-निकर सचि, ललित सेज रचि, नख सिख कुंवरि सिंगारी ।।
प्रथम अंग-प्रति-अंग संग करि, मुख -चुंबन सुखकारी ।
तब कंचुकि -बंद खोलत, बोलत चाटु बचन दुखहारी ।।
हस्त कमल करि विमल उरज धरि, हरि पावत सुखभारी ।
बधू कपट भुज पटनि दुरावति, कोप भृकुटि अनियारी ।।
नीवी मोचत मुंच अलंकृत, नेति कहत सुकवारी ।
चिबुक चारु टक टोलनि बोलनि, पिय कोपित है प्यारी ।।
नैन सैन मधु हंसन जब, कोटि चंद उजियारी ।
कोक कुसल रसरीति-प्रीति-बस, रति प्रगटत पिय-प्यारी ।।
अधर -सुधा मद मादक पीवत, आरज पथ सौ सींव बिदारी ।
बृंदावन-लीला-रस जूठनि, बाइस"व्यास" बिटारी ।।३२९ ।।

लपटे अंग सौ सब अंग ।
सुरसरी मनु कियौ संगम, तरनि तनया संग ।।
जोरि अंक प्रयंक पौढ़े, आढ़ि बसन सुरंग ।
गिरत करते कुसुम कुंतल, अरल तरल तरंग ।।
नवल मृग-दृग त्रिषित आतुर, पिवत नीर निसंग ।।
नाद किंकिन केहरी सुनि, चपल होत सारंग ।
बाहुवनि बन विविध फूले, जलज जमुना-गंग ।।
ललित लटकनि डोल मानौ, मधुप माल मतंग ।
कुच कठोर किसोर उर विधि, लगत उछरि उमंग ।।
कमठ पायौ असम, साजत उमंगि-होत -उतंग ।
बनि केसरि नासिका मिलि, मिले दोउ अरधंग ।।
मैन मनसा बस परयौ मिटि, चपल ताल तरंग ।।
करम नथ नव जोति सगंम, जोर भूप अनंग ।
देत दोन विलास-सहचर, सूर सुविधि सुअंग ।।सूर २७४९

इस सुरत आनन्द में दोनों को संतोष नहीं होता । बार बार वे बुझ रही कामाग्नि को प्रज्वलित करते हैः-

देखौ माई माधौ राधा क्रीरत ।
सुरत समय संतोष न मानत, फिरि-फिरि अंक भरत ।।
सुख कै अनिल सुखावत स्रम जल, यह छबि मनहिं हरत ।
मानहुं काम-अगिनि निरज्वल भई, ज्वाला फेरि करत ।।
द्वितिय प्रेम की रासि लाड़िली, पलकनि बीच धरत ।
सूर स्याम स्यामा सुख क्रीडत, मनसिज पाइ परत ।। सूर १८१८

राधा ने कृष्ण की आशा पूरी की:-

कुंज के निकट सुरत-निरत कंज-सेज राजै सुख गात ।
टूटि गई तनी चौली दरकि तरकि गई, चारयौ जाम रजनी
बिहरतीभयौ प्रात ।।
आरस सौं उठि बैठ अरस परस दोऊ दंपति अतिहिं मन मन
मुसुकात ।
सूर आस पूरी स्यामा, स्याम बनी जोरी निसि-रस-सुधि
आए नैन नैननि-लजात । सूर २६५२

इस सुरत में कृष्ण ने राधा को अबल कर दिया है-

गिरिधर नारिक अबल अति कीन्ही ।
सबल भुजा धरि अंकम भरि-भरि, चापि बठिन कुच (उर पर) लीन्ही
कौक अनागत क्रीड़ा पर रचि दूर करत तनु-सारी ।
बार-बार ललचात साधकरि, सकुचत पुनि-पुनि बाला ।
सूर स्याम यह काम करौ जनि, धनि-धनि मदन गुपाला ।। सूर ३२५०

राधा और कृष्ण दोनों में संयोग जन्य थकान और प्रस्वेद
का उल्लेख कवियों ने किया है । यथा-

रति नागर दोउ रंग भरे सुरत तरंगनि माहिं ।
चाह चौंप मन मन समुझि चितै चषनि मुसिकाहिं ।।
वर विहार कछु श्रमित भइ प्रिया परम सुकुमारि ।
रुचिर पति अंचल लिए मृदु कर करत बयारि ! [illegible]
हित श्रृंगार लीला-ट
लीला पृ १२६

पिय-भावती राधा नारि ।
उलटि चुंबन देति रसिकिनि, सकुच दीन्ही डारि ।

मनहु बुझी अनंगज्वाला, प्रगट करत लजात ।।
बहुरि उठे सम्हारि भट ज्यौं, अंग अनंग सम्हारि ।
सूर प्रभु बन धाम बिहरत, बने दोउ बर नारि । सूर ३०७७

देखौ माई, सोभा नागर-नट की ।
बिहरत राधा के संग निरखि, बिलखि कमला-रति सटकी ।।
सुरत भ्रमित प्यारी प्रीतम के कंठ भुजा धरि लटकी ।
मनहु मैघ मंडल मैं दामिनि, चंचलता तजि अटकी ।।
मोहन करजनि बीच सोभियत, सुंदरता कुच-घट की
मानहु कनक-कमल पर हंस, चरन धरि भंवरनि हटकी ।।
कुचगहि चुंबन करत, अधर खंडित हू कुंवरि न मटकी ।
मानहु निकट चकोर चौंच गहि चंद सुधा-मधु गटकी ।।
गौर गंड रस मंडित स्याम-बदन गति नैक न ठटकी ।
मानहु नूत मंजरी के रस, अनत न कोइल भटकी ।
देखत ही सुख कहत न आवै, क्रीड़ा बंसीवट की ।
व्यास स्वामिनी की छबि बरनत, कबिनु लिलारी पटकी ।
व्यास ४०४

१८ विपरीत

भक्त कवियों ने जिस प्रकार काम के किसी भी अंश को अछूता नहीं छोड़ा है उसी प्रकार संभोग के वर्णन में विपरीत का भी विस्तृत, सूक्ष्म रोचक वर्णन किया है । मात्रा में यह वर्णन सामान्य संभोग के वर्णन से कुछ ही कम होगा ।

१९ विपरीत की तैयारी

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, भक्त कवियों ने [illegible] प्रकार के वर्णन किये हैं, पर ऐसा नहीं है कि सभी [illegible] की सभी क्रियाओं का पूर्ण और विस्तृत वर्णन [illegible] अपनी-अपनी रुचि के अनुसार किसी ने किसी एक अंश का तो दूसरे ने किसी दूसरे अंश का वर्णन किया है । यही बात भ[illegible] कवियों के विपरीत वर्णन के संबंध में भी सत्य है । अत: भक्त कवियों में प्राप्त विपरीत वर्णन को हम विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत देख सकते हैं, जिनमें सब सबसे प्रमुख विपरीत की तैया[illegible]

विपरीत रति के लिए सामान्यतः राधा-कृष्ण विपरीत श्रृंगार करते हैं। यह श्रृंगार स्वयमेव भी हो सकता है तथा कभी कभी कृष्ण का राधा के द्वारा और राधा का कृष्ण के द्वारा। कृष्ण राधा का रूप बनाते हैं, उनके आभूषण पहनते हैं, घूंघट काढ़ते हैं और अंगिया पहनते हैं। कृत्रिम उरोज बनाने का वर्णन तो नहीं है पर संभव है कि स्वाभाविकता के लिए उन्हें भी बनाया जाता रहा हो। राधा, कृष्ण का श्रृंगार करती हैं। कृष्ण के आभूषण पहन कर राधा मुरली बजाती हैं। दोनों एक दूसरे के इस विपरीत श्रृंगार को देख कर मुग्ध होते हैं।[८१] हित हरिवंश राधा के ऐसे विपरीत श्रृंगार को देख कर कहते हैं कि कैसा अद्भुत है कि सजनी श्याम कहलाती है।[८२]

---

८१- स्याम-तनु प्रिया भूषन बिराजै।
 कनक-मनि-मुकुट, कुंडल स्रवन, माल उर अधर मुरली धरे नारिह
 निरखि छबि परस्पर रीझे दोउ नारि-बर, गयौ तजि बिरह
 डर, प्रेम पागे।
 सूर-प्रभु-नागरी हँसति, मन-मन रसीति, बसति मन स्याम कै
 बड़े भागे।। सूर २७६९

देखें सूर २७७०, ध्रुवदास-ब्यालीस लीला पृ० १०३-१०४ पदावली पद २५, हरिदास-केलिमाल ५६ भी।

८२- बन की लीला लालहि भावै।
 पत्र प्रसून बीच प्रति बिंबहिं नख-शिख प्रिया जनावै।
 सकुच न सकत प्रगट परिरंभन अलि लंपट दुरि धावै।
 संभ्रम देत कुलकि कल कामिनि रति रण कलह मचावै।
 उलटी सबै समुझि नैननि मैं अंजन रेख बनावै।
 जै श्री हित हरिवंश प्रीति रीति बस सजनी श्याम कहावै
 हित चौरासी ४७

२० विपरीत मान-क्रीड़ा

नायिका के लिए मान करना और नायक के लिए उसे मनाना स्वाभाविक है । विपरीत मान-क्रीड़ा में नायक मान करने अभिनय करता है और नायिका उसके मान-मोचन का अभिनय करती है । इस विपरीत मान-क्रीड़ा का वर्णन दो-एक कवियों ने किया यथा-

नीकैं स्याम मान तुम धारौ ।
तुम बैठे दृढ़ मान ठानि, मैं मेरवौ, मान तुम्हारौ ।
यह मन साध बहुत ही मेरैं, तुम बिनु कौन निवारै ।
नागरि पिय-तनु अपनी सोभा, बारंबार निहारै ।।
बेनी माँग, भाल बेंदी-छबि, नैननि अंजन-रंग ।
सूर निरखि पिय-घूँघट की छबि, पुलकि न मावति अंग ।।

सूर २७७१

२१- विपरीत वर्णन -

विपरीत की तैयारी एवं उसके वर्णनों के उपरांत विपरीत रति का वर्णन आता है । प्रायः सभी कवियों ने रति के पूर्व, चुंबन, आलिंगन, कुच-मर्दन एवं नीवी खोलने का स्पष्ट उल्लेख किया है । उसके उपरांत ~~किसी~~ विपरीत रति का वर्णन किया है ।

इन वर्णनों में विद्यापति का निम्नलिखित वर्णन अत्यंत काव्योचित हुआ है । उनकी नायिका सखी से विपरीत रति का वर्णन करते हुए कहती है, "सखि, क्या कहै, कहने का अन्त नहीं है । स्वप्न था या प्रत्यक्ष, निकट था या दूर, कह नहीं सकती (नायिका रूपी) विद्युत के तले (नायक रूपी) तिमिर ने प्रवेश किया । दोनों के बीच सुरधुनी की धारा (मुक्ता का हार) (नायिका के उन्मुक्त केश रूपी) तरल तिमिर ने मानो शशि (चन्दन बिंदु) और (सिन्दूर बिंदु) को ग्रस लिया । चारों ओर तारा (गले के हार की छितराई हुई फूल की कलियाँ) मानों फैले [illegible] थे । अम्बर (वस्त्र) गिर पड़ा था, पर्वत (कुच) उलट [illegible] (नितंब) [illegible] थे । प्रबल वेग से [illegible] रही थी) भ्रमरियाँ

कलरव कर रही थीं (चीत्कार ध्वनि हो रही थी )। प्रलय पयोधि जल ने मानों आच्छादन कर लिया था (स्वेद से सारा शरीर आप्लुत हो गया था), किंतु यह (आकाश का गिरना, पहाड़ का उलटना, सूर्य और चन्द्रमा का अंधकार में ग्रसित होना, पृथ्वी का हिलना, इत्यादि प्रलयकालीन व्यापार मालूम होने पर भी) युग का अवसान न था। विद्यापति कहते हैं कि इस विपरीत की बात कौन समझ कर विश्वास कर सकता है।"[८३]

विपरीत का इससे अधिक आलंकारिक और फिर भी स्पष्ट वर्णन शायद ही कहीं मिले। विद्यापति के ~~किरीत~~ विपरीत वर्णनों में भी यह अन्यतम है।

सूर ने विपरीत के वर्णन में समस्त अनुभाव आदि का उल्लेख करते हुए दोनों की कुशल जोड़ी की सराहना की है। उन्हें दोनों की शोभा ऐसी लगती है जैसे नव जलद पर दामिनी। अलकें बिखर रही हैं, राधा निसंकोच कृष्ण का चुंबन करती तथा दशन-छेदन करती है। श्रम से पसीने की बूंदें टपक रही हैं। विपरीति से वह बेहाल हो गई है। यथा-

स्याम स्यामा परम कुसल जोरी।
मनौ नव जलद पर दामिनी की कला,
सहज गति मेटि अति भई भोरी।।
अलक आकुल बिथुरि स्याम-मुख पर रहीं,
मानौ बल राहु ससि घेरि लीन्हौं।
चितै मुख चारु चुंबन करत सकुच तजि,
दसन छत अधर पिय मगन दीन्हौं।
परता स्रम-बूंद टप टपकि आनन-बाल,
भई बेहाल रति-मोहि भारी।
बिधु परसि देत विध्वैत अमृत चुवत,
सूर विपरीत रति पीउ प्यारी।। सूर २[illegible]

ध्रुवदास, कल्याण पुजारी, माधुरी जी, दामोदर वर, हित हरि वंश आदि सभी ने इस रति विस्तृत उल्लेख किया है। विपरीत रति इन सबका

८३ ~~[illegible]~~

१ विद्या. १०८

विषय रहा है । ८४

२२- आभूषणों की ध्वनि

संयोग के चित्र को प्रस्तुत करने की विधियों में सबसे सफल आभूषणों की ध्वनि का वर्णन रहा है । स्त्री और पुरुष के आभूषणों की ध्वनि के द्वारा रति के सामान्य और विपरीत आसनों का संकेत कराया जाता रहा है । अनेक कवियों

---

८४- कुंज के मंदिर सेज सरोजनि हेज परावधि जोवन वारी ।
भाजन कंचन प्रेम भरे घट साजन रंजन गंजन नारी ।
बाल रमैं विपरीत विचक्षण लाल लिलार लट कारी ।
कोटिका लोचन लोभ तृषा ऐसे राधिका वल्लभ की बलिहारी
श्री हित लाल स्वामी निजी
संग्रह पृ० २७

निरखत नैन चैन चित पूरन पग मंगन मन अगनित्त अगहन
रतिविपरीति सीतरितु सुरति अंत दंपति ~~स्न्उरु~~ दगहन ।
उश्नन जानि मंडन उर मंडल पुनि कर कमल करत कुच सगहन ।
प्रिय मैं लीन प्रवीन विचच्छन गति गंभीर लाल गुन अगहन ।।
हित लाल स्वामी निजी संग्रह पृ० ३५

जमुना कल कूल कलानिधि है अकलंक कलेवर केलि करैं ।
वर वेलि कुटी कटि बंध छुटी पर फूलत भूलत फूल भरैं ।
छिन ही छिन विपरीति सुप्रीति महा रस रीति तरंगनि मद्धि परैं
श्री हरिवंश के नैन सरोज सु लाल प्रिया मिलि भेलि भरैं । हित
निजी संग्रह-४२

जै जै श्री हरिवंश भोर जोरी लसै ।
पलटि परे पट देह नेह बरषत रसै ।
छूटी लट टूटी सर माल उर पर मरगजी ।
शिथिल भये अंग अंग मंद किंकिन बजी ।
बजी किंकिन मंद मुसिकान वदन दुति बाढ़ी घनी ।
नैन आलस वंत प्यारी नख सिख विलसी धनी ।
परस्पर अनुराग पागे श्याम उर गोरी बसी ।। कल्या
पुजारी ।। निजी संग्रह पृ

ने विपरीत रति के वर्णनों में आभूषणों के रव का उल्लेख इसी लिए किया है ।

विद्यापति ने अमरु शतक की भाँति विपरीत रति करती हुई नायिका की कृपा की ही आकांक्षा की है । वे कहते हैं, " मुक्त होकर केशों ने मुख-चंद को मेघमाला की भाँति छा लिया है । मणिमय कुंडल कानों में ढुलने लगे, पसीने से तिलक मिट गया । सुन्दरी तुम्हारा मुख मंगलदायक हो । विपरीत रति के समय तुम यदि रक्षा करो तो हरि हर विधाता मेरा क्या कर लेंगे । किंकिणियाँ, कंकण और नूपुर बजने लगे । मदन ने अपने गर्व का पराभव पाया । एक तिल जघन सघन रव करते ही (मदन - की ) सेना भंग हो गई । विद्यापति कवि यह रस गाते हैं । यमुना में गंगा की तरंग मिल गई ।[८५] कल्याण पुजारी, विट्ठल विपुल, हितलाल स्वामी, ध्रुवदास, व्यास, वल्लभ रसिक आदि भक्त कवियों

---

८५- विगलित चिकुर मिलित मुख मंडल, चाँद बेढ़ल घन माला ।
मनिमय, कुण्डल स्रवणे दुलित भेल, घामे तिलक बहि गेला ।।
सुन्दरि तुआ मुख मंगल-दाता ।
रति विपरीत- समय - यदि राखवि कि करब हरि हर धाता ।।
किंकिनी किनि किनि कंकन कन कन कलरव नूपुर बाजे ।
निज मदे मदन पराभव मानल जय जय डिंडिम बाजे ।
तिल एक जघन सघन रव करइत होयल सैनक भंग ।
विद्यापति ओ रस गाहक जामुने मिलली गंग तरंग ।। विद्या-
७०३ देखें ४९८, ४९९, ५०२ भी ।

तुलना-

अलोल मलकाविलं विलुलितां विभ्रच्चलत् कुंडलं ।
किंचिन्मृष्टविशेषकं तनुतरैः स्वदेम्भसां शीकरैः ।।
तन्वया यत् सुरतान्त तान्त नयनं वक्त्रं रति कात्यये ।
तत् तां पातु चिराय किं हरि हर ब्रह्मादि भि-र्दैवतैः
अमरु शतक-

ने भी अपनी रचनाओं में आभूषणों के रव का वर्णन किया है ।[६]

---

८६–, सुन्नावर केलि कलोल करै कल कूजित किंकिन के सुर जू ।
विपरीत रत्ये मिलि कै विलसैं विलसैं सु लसैं प्रिया पिय के उर-
जू ।।
छिन ही छिन स्वाद समूह पढ़ै सु कढ़ै नव जीवन अंकुर जू ।
श्री राधिका वल्लभ सेज समै दोंख फूली कली धुनि नूपुर जू ।।
– कल्याण पुजारी –

जै जै श्री हरिवंश भोर जोरी बसै । – निजी संग्रह प०५१
पलटि परे पट देह नेह बरषत रसै । छूटी लट टूटी उर माल उर-
पर मरगजी ।
शिथिल भये अंग अंग मंद किंकिन बजी । बजी किंकिन मंद मुसिकत –
बदन दुति बाढ़ी-
घनी ।।
नैन आलस वंत प्यारी नख शिख विलसी घनी । परस्पर अनुराग –
पागे श्याम उर गोरी बसी ।।
वही – पृ० ४५

विलसत प्यारी लाल कुंज रजनी ।
बदन बदन जोरैं मदन लड़ावत नूपुर के सुर मिलि वलया की बजनी ।
पुलक पुलक तन आनन्द मगन मन मधुरे वचन श्रवन सुनि सजनी ।
श्री वीठल विपुल रस रसिक विहारी वसन वतिय तिलवा सुरत जीति-
गजनी ।।विट्ठलविपुल
निजी संग्रह पृ० ४पद३२
तेरे नूपुर धुनि की प्यारी श्रवन सुनी ।
अचल चले री चल रहे ही थकित हृये खग मृग मानों धरयौ है मुनी ।
नवीन कुंज वर सुहस्त सँभारीलाल सेज्या बीचित कुसुम चुन चुनी ।।
श्रीविठल विपुल की रति मिली है मदन जीति तू सिरमौर सब गुनन
गुनी ।।वही पृ० ५पद३२
नव वन नव निकुंज नव वाला ।
नव सौ रसिक रसीलौ मोहन विलसत कुंज विहारी लाला ।
नव मराल जित अवनि धरत पग कूजत नूपुर किंकिनि जाला ।।
श्रीविठ्ल विपुल विहारी के उर यों राजत जैसे चंपे की माला ।।व
पद ३५
गहयो मौन मंजीर धीर किंकिण कोलाहल कारी ।
बेहद मदन सदन धन लूटत वल्लभ रसिक विहारी ।।वल्लभरसिकपृ०
प्रान नाथ प्रेम रूप सुन्दरी अनूप रासि रास मैं तरंग रंग अंग भेद
भाजनी
त्रिषा चकोर लाल को पियूष पुंज भाल की सरोज नैन जीविक
पुंज लाजिनी
सेज के समान काज हेत [illegible] हृय [illegible] छा ली छैल द

इसमें मुख्य रूप से कंकण, किंकिणि, नूपुर तथा क्षुद्र - घंटिका का उल्लेख है । इनके रव के द्वारा संभोग में हिलने वाले अंगों की ओर संकेत है । इन वर्णनों में वल्लभ रसिक का वर्णन बिहारी के विपरीत वर्णन से तुलनीय है ।

२३- कटि चालन

आभूषणों के रव से संबद्ध ही कटि - चालन का वर्णन भी है । सामान्य रूप से आभूषणों के रव में ही इसका अंतर्भाव हो जाता है । कहीं- कहीं एक आध कवियों ने आभूषणों के हिलने द्वारा इसका संकेत किया है । विद्यापति ने अपने दो पदों (सं० ७०३ और ७०४ ) में क्रमशः कुंडल तथा नितंबों के हिलने का उल्लेख किया है । वल्लभ रसिक ने इसका अधिक स्पष्ट तथा कामोत्तेजक वर्णन किया है ।

रति विपरीति सुरीति सुहाई । रसना हरसि कहत लुभ्याई ।।
छैल छकी छर हरी छबीली । लफि लफि लहलहात अरबीली ।।
सुख मुरनि बिथुरनि अलकनि की। शोभा स्वेद बिंदु भलकन की ।।
गोल कपोल तँबोल भलक छबि । नथ मोतिन की ज्योति रही फबि ।।
रति प्यारी प्यारी कहर करति सुरति विपरीति । ।
रति पति की मूरति भई लई दुहुनि मन प्रीति ।।
मतवारी हारी नहिं प्यारी रति विपरीति ।।
झुकि उरसों उर लाइ कैं लेति अधर रस मीति ।। वल्लभ रसिक -पृ०५६

अन्य कवियों ने इसका कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है ।

२४- शोभा वर्णन-

विपरीत की शोभा का वर्णन सभी कवियों ने किया है । जिनके उल्लेख ऊपर दिए गए उद्धरणों में है । राधा- कृष्ण की अलौकिक जोड़ी, उनके विपरीत रति का वर्णन पग - पग पर मिलते हैं । व्यास तो यहां तक कहते हैं कि इस शोभा का वर्णन करने शेष और चतुरानन की आयु समाप्त हो गई ।

करुना कर चरनालय नख सिख, मोहन अंगरसी री ।।
विपरीत रति विपरति पिय ऊपर, अधर - सुधा बरसी री ।।
रूप-सील गुन सहज माधुरी, रोम रोम बरसी री ।
यह छवि-"व्यास " सेष चतुरानन बरनत बैस ससीरी ।। व्यास ५८२

२५- रति श्रम-

रतिश्रम का प्रत्यक्ष या परोक्ष वर्णन सभी कवियों ने किया है । इसी के वर्णन द्वारा ही रति की तीव्रता और पूर्णता की व्यंजना की जाती रही है । प्रस्वेद श्रमित होने का सबसे स्पष्ट चिह्न है । हित हरिवंश, हरिदास तथा सूरदास ने रति श्रम जनित प्रस्वेद ~~ह~~ और क्लान्ति का स्पष्ट उल्लेख किया है । अन्य कवियों ने भी विपरीत के साथ श्रमित होने का उल्लेख किया है ।[८७]

विपरीत श्रृंगार

विपरीत रति के इस संक्षिप्त उल्लेख से यह स्पष्ट है कि भक्त कवियों ने संभोग के इस अंश का भी काफी विस्तार से वर्णन किया है । अपनी- अपनी रुचि के अनुसार कवियों ने कुछ या अनेक प्रसंग लिए हैं किंतु यदि सभी कवियों के सम्मिलित वर्णनों को लिया जाय तो यह स्पष्ट मालूम पड़ेगा कि विपरीत के सभी अंगों का कवियों ने वर्णन किया है । उनका यह वर्णन पूर्ण, प्रभावोत्पादक, चित्रात्मक तथा स्पष्ट है ।

---

८७- हितहरिवंश - हितचौरासी ३०,३४ , हरिदास- केलिमाल ;
सूर २६५१,३०८०,३३४३ तथा देखें ध्रुवदास- ब्यालीस लीला
पृ० १९४,२४९, व्यास ५७७,५८८ आदि, वल्लभ रसिक -
पृ० ५६

## २६ रतिरण

हिन्दी भक्त कवियों ने अपना काम-कला का सूक्ष्म ज्ञान सांकेतिक रूप में विपरीत रति तथा प्रत्यक्ष रूप में रतिरण के वर्णनों में प्रकट किया है। उनके संभोग वर्णनों में रतिरण का यथेष्ट वर्णन है।

### रतिरण का रूप :

संभोग को उन्होंने एक प्रकार का रण माना है जिसमें दो विरोधी दल एक दूसरे पर विजय प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हैं। एक दल नायिका का और दूसरा नायक का है। दोनों के रूप और अंग ही उनकी सेनाएं हैं। विभिन्न घात-प्रतिघात ही सेनाओं का युद्ध है। पुरुष या नारी की काम-तीव्रता ही उनका उत्साह है। पुरुष की स्त्री पर विजय, संभोग आदि ही मदन गढ़ का लूटना है। स्त्री भी अपनी संपत्ति के लुटने के पूर्व उसकी रक्षा करती है। अपने विभिन्न आयुधों के द्वारा पुरुष को क्षत-विक्षत कर वह उसकी कामोत्तेजना बढ़ाती है। रण से उसे संभोग शैथिल्य आदि के कारण मुड़ते देख कर वह उस पर स्वयं टूट पड़ती है और इस प्रकार संभोग[८८] रण को पुन: प्रारंभ करके दोनों के ही सुख की वृद्धि करनी है।

## २७ रतिरण की तैयारी

जैसा की पीछे बताया जा चुका है कि क्रीड़ात्मक होते हुए भी सुरत का स्वरूप रणात्मक होता है। अत: प्रिय और प्रिया रतिरण के लिए उसी प्रकार से तैयारी करते वर्णित किए जाते हैं जैसे के किसी पराक्रमी विपक्षी से मोर्चा लेने जा रहे हों। यह रण कई कारणों से हो सकता है, यथा -

### (क) अनंग नृपति से रण :

निम्नलिखित पदों में अनंग नृपति से रतिरण जान के राधा अपने बल को आंकती हैं।

---

८८ जुझल मनमथ पुन ये जुझ एव
बोलि वचन परचारी।
भेल भाव जे पुन पराट वए

भाव दियौ आवैंगे स्याम ।
अंग-अंग आभूषन साजति राजति अपनैं धाम ।
रति रन जानि अनंग नृपति सौं, आपु नृपति-दल जोरति ।
अति सुगंध, मरदन अंग- अंगनि, बनि बनि भूषन सौंरति ।।
बीरा-हार- चीर-चोली छबि, सैना साजि सिंगार ।
पान कवन सन्नाह कवच दैं, जोरै सूर अपार ।। सूर २६४४

तथा

राधा स्याम- सनेहिनी, हरि राधा-नेही ।
राधा हरि कैं तन बसै, हरि राधा देही ।।
राधा हरि कै नैन मैं, हरि राधा नैननि ।।
कुंज-भवन रति जुद्ध कौं, जोरत बल मैननि ।
आदि सूर २५८१

(ख) असफलता की प्रतिक्रिया जनित रण

कभी कभी रण की यह तैयारी प्रतिद्वंदिता की भावना से होती है । यह प्रतिद्वंदिता क्रीड़ात्मक है । सामान्य संभोग में कृष्ण द्वारा राधा को बराबर नीचा ही देखना पड़ता है । अत: आज राधा उन सभी पराजयों का बदला लेगी, कृष्ण से भयंकर रतिरण कर उन्हें पराजित करेगी अब वह रति-निपुणा है । कुंडल रूपी चक्र, तिलक रूपी अंकुश, चंदन रूपी अभिनव कवच, धारण करके , चक्षु में डोर डाल कर, कटाक्ष शर ले कर रमणी सज रही है । उसने मन्मथ को भी पत्र भिजवाया है -

त्रिवलि - तरंगिनी पुर पुर दुग्गम जनि मनमथे पत्र पत्र पठाउ ।
जौवन-दलपति समर तोहर ऋतुपति-दूत पठाउ ।।
माधव, आवे साजिए दहु बाला ।
तसु सैसव तोहैं जे सन्तापलि से सब आ औति बाला ।।
कुण्डल चवक तिलक अंकुस कए चन्दन कवच अभिरामा ।
नयन कटाख बान गुन धुनु साजि रहल अछि रामा ।।
सुन्दरि साजि स्वैत चलि अछलि विद्यापति कवि माने ।।
विद्या ४८३

सफल एवं कुशल नायिका राधा कृष्ण के काम को अनेक ~~विविध~~ विधियों से प्रवृद्ध करती हैं। कृष्ण के अनेक प्रयत्न भी उसको संभोग के लिए तत्पर करने में असफल होते हैं। हार कर वे पैरों पर गिर पड़ते हैं। राधा समझ गई जाती है कि कृष्ण काम- कला में अत्यंत प्रवीण हैं। वह काम देव के पुर से संकेत द्वारा आदेश देती है। मान शरीर रूपी गढ़ में आकर वास कर लेता है। यह देख कर मन्मथ नृपति हो जाता है। वह साम-दाम-दंड-भेद की सहायता से प्रिया के गढ़ में प्रवेश करता है :-

कछू न वसाय तब जाय गहि रहे पांच, प्यारी जीय जान्यौ पिय परम प्रवीन हैं।
वैनन न हंसि नैनन जनायो कहि मैन पुरिते निदेश सैनन सौं दीनों हैं।
इनके निदेस मानि काहू की न कीनीकानि, मान गढ़ बढ़्यौ आवि बासो अति लीनों हैं।
जे जे प्रतिकूल कंग कीने अनुकूल संग खंड के पसाप मंडि कैसो गंड कीनो है

प्रिया देस तन आज सौं, प्रकर बसायौ मैन।
जब सर लाग्यौ काम को, कुटिल भई सब सैन ।।

करके लौ ते ठौर ठौर कलमलि उठि काम के मिलन को न कोऊ ढिंग आयौ है।
ढीठ व्है गये हैं लोग कानि कछू मानत है तब मनमथ मन अधिक रिसायौ
कौऊ खंड कौऊ दंड बंधन सो बांधि राखे नृपति अनंग बल आपनौ जनायौ है
काहू सौं समलाप कीनो काहू कों तमोल दीनो कौऊ बांह बोलि बास सुबास ब बसायौ है।

त्रिपट वाम गढ़ प्रिया तन केहि विधि कियौ प्रवेश।
अकर देश पकर कर सौ, वढयौ अनंग नरेश ।। [८६]

(ग) मान-मोचन होने पर रण

मान [illegible] की तीव्रता तीक्ष्ण हो जाती है

वही नायिका अब पति से रूठ कर संभोग करती है । इस आवेश युक्त संभोग में वह अपने क्रोध को रतिरण में पति को पराजित कर निकालना चाहती है ।

दूती राधा के रूप का वर्णन कर कहती है कि तुमने काम का दल सजा लिया है । जैसे कहो वैसे ही कृष्ण से मिलाऊं । राधा विलास के इन सुवचनों को सुन कर चलने को तैयार हो जातीहै :-

राधे देखि तेरौ रूप ।
पठई हौं हरि संकि, मनु दल सज्यौ मनसिज भूप ।।
चाल गज, श्रृंखला नूपुर, नीबि नव-रुचि ढाल ।
किंकिनि-घंटा- घोष, माधौ भए भय-बेहाल ।।

कंचुकी-भूषन कवच सजि, कुच कसे रनबीर ।
अंचल ध्वज अवलोकि, नाहीं धरत पिय मन धीर ।।
भौं चाप चढ़ाइ कीन्हौ, तिलक तर संधान ।
नैंन की तक देखि गिरिधर, तज्यौ है मद मान ।।
चंवर चिकुर, सुदेस घूंघट छत्र, सोभित छांह ।
ज्यौं कहौ त्यौंही मिलाऊं, दै दयालुहि बाहं ।।
राधिका अति चतुर सुंदरि, सुनि सुबचन बिलास ।
सूर रुचि- मनसा जनाई, प्रगटि सुख मृदु हास ।। ६०

सूरसागर में लघु मान लीला में मान मोचन के उपरांत राधा यह कहती हैं,"आज उनकी सारी साध मेट दूंगी।" फल स्वरूप रति रण में दोनों ही नहीं मुड़ते । इस रतिरण का वर्णन कई पदों में कवि ने किया है :

निरखि अंग-अंग -छबि लैति राधा ।
यह कहति,कितिक सोभा करैंगे स्याम, मेटिहौं आजु मन सबै रस साधा।
उतहिं हरि-रूप की रासि,नहिं पार कहुं, दुहुनि मन परसपर होड़
कीन्हौ ।
ये इतहिं लुबध, वै उतहिं उदार चित, दुहुनि बल-अंत नहिं परत चीन्ह
सुरे रन बीर ज्यौं, एक तैं इक सरस, मुरत [illegible]उ नहीं, दोउ रूप मा[illegible]
सूर के स्वामि, [illegible]मिनि [illegible]धा स[illegible]-[illegible] को[illegible] नाहिं लखि [illegible]

व्यास ने भी मानोपरांत दोनों के रति-संग्राम का वर्णन किया है :

मनावौ मानिनि मान अली री ।
विलपत विपिन अधीर स्याम, काहे पठई बाल भली स्ली री ।।
धन-दामिनि कबहूं नहिं बिछुरत, मधुकर-कमल -कली री ।
सारस, कोक, मराल, मीन जल, प्रीति रीति कुसली री ।।
सहचरि-बचन रचन सुनि सुंदरि, मुरि मुसकाइ चली री ।
व्यास त्रास बाजि विहरत दोऊ, रति-संग्राम वली री ।। [६२]

रण की सज्जा

रतिरण के इन अनेक कारणों से प्रेरित होकर दोनों न तैयार हैं । अपने अपने बल को दोनों ने आंक लिया है ।[६३] अपने बल के अंहकार से दोनों भरे हैं । विभिन्न प्रकार से दोनों की तैयारियां हैं आभूषणों के व्यूह बने हैं । प्रति क्षण तीरों की वर्षा हो रही है । इस प्रकार दोनों सुसज्जित हैं :

देखियत दोउ अहंकार परे ।
उतहरि-रूप, नैन याके इत, मानहुं सुभट अरे ।।
रूप रुचिर सुदृष्टि मनोज महासुख, इन इत एक करे ।
उन उत भूषन-भेद व्यूह रचि, अंग- अंग धुनुष धरे ।।
ये प्रतिरन-रन रोष न मानत, निमिष निषंग भरे ।
बाहु-विथाहिं न बदत पुलक- रुद्र सब अंग सर सचरे ।।
वें श्री, ये अनुराग। सूर सजि, छिन-छिन बढ़त खरे ।
मानहु उमगि चल्यौ चाहत है :सागर सुधा भरे ।। [६४]

---

६२ व्यास ६७२
६३ सूर २५८१
६४ ,, २७४३

कवि व्यास ने तो व्याह के बाद ही मिलन में दोनों की " अनी अनियारी " को सुरत -रन में एक दूसरे के सम्मुख खड़ा कर दिया है :

बिहरत वृंदाविपिन बिहारी ।
दूल्हु लाल, लाड़िली दुलहिन, कोहि प्रान तें प्यारी ।।
बाम गौर स्यामल कल जोरी, सहज रूप सिंगारी ।
कुसुमपुंज कृत सैन कुंज महँ चंद- वृंद अधिकारी ।
कुंवर कुंवरि गहि चोली खोली, तिसी तरलित सारी ।
नागर नट के पटहिं झटक, हँसि मटकत नवल दुलारी ।।
सुरति-समर महं सनमुख राति, दोऊ अनी अनियारी ।
व्यास काम-बल जीते रति-रन बिहँसि बजावति तारी ।[६५]

ऐसे रति-रण-सुभटों की सेना का वर्णन अनेक कवियों ने किया है । रतिरण में दांत, आंख,नख, कटाक्ष, कुच आदि सभी अस्त्र हैं जिनकी तीक्ष्णता की कल्पना किसी भुक्त-भोगी के लिए ही संभव है । संभोग में इनके विभिन्न प्रयोग ही इस सेना द्वारा प्रयुक्त आयुध हैं ।

दोऊ राजत रति-रन धीर ।
महा सुभट प्रगटे भूतल वृषभानु-सुता बल-बीर ।।
भौहैं धनुष चढ़ाइ परस्पर, सजे कवच तनु-चीर ।
गुन-संधान निमेष घटत नहिं छूटे कटाच्छनि तीर ।।
नख नैजा-आहत उर लागैं नैकु न मानत पीर ।
मुरली धरनि डारि आयुधलौं, गहे सुभुज भट भीर ।।
प्रेम समुद्र छांड़ि मरजादा, उमंगि मिले तजि तीर ।
करत बिहार दुहूं दिसि तैं मनु, सींचत सुधा सरीर ।
अति बल जोबन धाइ रूधिर रचि बंदन मिलि श्रम-नीर ।
सूरदास-स्वामी अरु प्यारी, विहरत कुंज कुटीर।।[६६]

हरीराम व्यास ने नायिका के अंगों से रण के शास्त्रास्त्रों का सुंदर रूपक बांधा ।

---

६५ व्यास ५६८

६६ सूर २६०४ देखें ३०६७

है यथा -

सुंदर मंद गयंद की चाल ही गज हैं । अंचल ढाल, घूंघट छत्र और खुले हुए बाल ही काम- नृपति के चंवर हैं । दोनों कुच कठिन सुभट है, वस्त्र ही कवच और लट तलवार है । भांभ,संख और नूपुर से ही सैना के निशान है । ऐसी सेना है । नेत्र ही बाण हैं जो कि कान तक खिंचे हैं भौंहें धनुष हैं । दांत ही शक्ति नख ही शूल हैं । कुंज ही रथ है, सखी सारथी हैं इनसे लैस होकर दोनों रतिरण धीर युद्ध करते हैं ।

मानो माई, काम-कटकई आवत ।
मंद गयंद चंचल आगे दै, अंचल ढाल ढुलावत ।।
घूंघट-छत्र छांह, बिगलित कच, मानो चौंर ढुरावत ।
कुच जुग कठिन सुभट, कवची-पट सजि, लट,असि चमकावत ।।
कोकिल सी धुनि गावति, कीर धीर सहनाइ बजावत ।
भांभि भारही, संज भंवर, नूपुर नीसान बजावत ।।
अंग-अंग चतुरंग सैन-रच, नव नगरहि चुरावत ।
व्यास स्वामिनिहिं बाह बोल दैं, सहचरि हरिहिं मिलावत ।।

व्यास ५८५ तथा देखें ५८६,५८८ तथा ५६१ भी

संभोग में प्रयुक्त होने वाले सभी अंगों की कवियों ने इसी प्रकार से सैना के विविध अंगों तथा विभिन्न अस्त्रों से उपमा दी है । यह उपमाएं समान्यतः सभी कवियों में एक सी हैं और इस दिशा में विशेष मौलिकता का प्रदर्शन कवियों ने नहीं किया है यद्यपि इसका यह अर्थ नहीं है कि वे अपने कार्य में असफल रहे है ।

२८ <u>रतिरण का वर्णन</u>

रतिरण का वर्णन कवियों ने कई रूपों में किया है । कहीं तो यह वर्णन रूपक के रूप में है और कहीं यों ही साधारण रूप में

<u>रूपक</u>:-

रूपक दो ही प्रकार के मिलते हैं । एक तो राम रावण के युद्ध का और दूसरा किसी गढ़ को विजय करने का । राम-रावण के युद्ध का सर्वोत्तम वर्णन :

उक्त वर्णन में जायसी ने रूपक पूरा पूरा उतारने की कोशिश की है। लंका के कंचन गढ़ तोड़ने से उनका संकेत कुमारिच्छद भंग होने से है। साथ ही साथ इस रूपक के द्वारा उन्होंने पद्मावती तथा रत्नसेन दोनों ही के सक्रिय संभोग का वर्णन किया है।

षट-ऋतु वर्णन प्रसंग में तो पद्मावती रत्नसेन को रतिरण के लिए ललकारती है तथा कहती है कि - ' हे प्रियतम मैं नहीं जानती कि तुम्हारी प्रतिज्ञा की रेखा कहां खिंची है। पर मुझे अपने पिता की शपथ है, आज युद्ध से परांगमुख होकर न जाऊंगी। बक की तरह नहीं जो रामा अथवा स्त्री के साथ यों ही रहे। आज रावण - रमण करने वाले की भांति संग्राम करो। मैंने भी श्रृंगार का सैन्य दल सजा लिया है। हाथी की चाल मेरेपास है।ध्वजा की फहरान मेरे अंचल में है। समुद्र की हिलोर मेरे नेत्रों में हैं।खंग का रूप नासिका में है। युद्ध में मेरी तुलना में कौन टिक सकता है। मेरा नाम रानी पद्मावती है। सब सुख मैंने जीत लिए हैं। तेरे जैसा योगी जिसके योग्य हो, उससे तू बराबरी कर।'[९७]

पद्मावती की इस चुनौती पर रत्नसेन योग और श्रृंगार तथा शक्ति सभी पर अपना समान अधिकार बताते हुए कहता है कि मैं रावण की भांति तुम पर विजय प्राप्त करूंगा। वह कहता है - सब जानते हैं, मैं ऐसा जोगी हूं जिसने वीर और श्रृंगार दोनों रस जीत लिए हैं। वहां तो शत्रुओं के दल में सदा सामने रहता था। यहां तुम्हारे पार्श्व में जो काम का कटक दल है उसके सामने हूं। वहां कुपित होकर मैं बैरी दल का मर्दन करता था। यहां अमृत रस पीने के लिए तुम्हारे अधर का खंडन करूंगा। वहां तो खड्ग से राजाओं को मारता था। यहां तुम्हारी विरहाग्नि का संहार करूंगा। वहां तो केसरी बन कर हाथियों पर झपटता था। यहां हे कामिनी, तू मेरे सामने रक्षा के लिए हा हा करेगी। वहां तो कटक और स्कंधावार का नाश करता था। यहां तुम्हारे श्रृंगार को विजित करूंगा। वहां तो हाथियों का गंडस्थल झुकाता था। यहां तुम्हारे कुच कलशों पर हाथ चलाऊंगा।[९८]

---

६- ९७ - पद्मावत ३३३

इस प्रकार से राम-रावण, दो राजाओं तथा रमण और रमणी के रूप में जायसी ने पद्मावती तथा रत्नसेन की काम क्रीड़ा का वर्णन किया है।

२६ गढ़ - विजय -रूपक

उपर्युक्त उद्धरणों में गढ़ - विजय -रूपक भी आ गये हैं। इसमें स्त्री को काम में पराजित करने को गढ़ को जीतने के समान बताया गया है। जिस प्रकार से एक राजा अपने गढ़ की रक्षा करता है उसी प्रकार कामदेव से स्त्री तन रूपी गढ़ की रक्षा करती है। पुरुष विभिन्न प्रकार, साम, दाम, दंड और भेद से इस गढ़ को जीत कर इसके धन का अपहरण करता है। इस गढ़ प्रवेश का सर्वोत्तम रूपक कदाचित् माधुरी बाणी में प्राप्त है। उदाहरणस्वरूप वह दिया जा रहा है।

प्रथम हीं रूप कर देत न करन आगे जतन करत वै कछु न बनि आवहीं।
आगे एक बामता सहेली सावधान रहै सुरत के समैं प्रवेश हू नहीं पावहीं।
चातुरी चमू को कहूं ओर छोर पावत न मोहन इकलो मन कहां लौं चलावहीं।
हाहाएक हितु हरी आपनो सहाय कियो, तोहि पै बनैगी पग माथो जाय नावहीं।
कछू न बसाय तब जाय गहि रहै पांय, प्यारी जीय जान्यो प्रिय परम प्रवास है।
बैनन न बोली हंसि नैनन जनायो कहि मैन पुरि ते विदेश सैनन सौं दीनों है।
इनके निदेस मानि काहू की न कीनी कानि, मानगढ़ बढ़यो आनि बासो अति लीनों है।
जे जे प्रतिकूल अंग कीने अनुकूल संग खंडि के पसाय मंडि कैसो गंड कीनों है।

इस प्रकार साम, दाम और भेद में जो संभव थे उनका प्रयोग करके दंड का प्रयोग काम को जीतने के लिए कृष्ण करते हैं।

प्रिया देस तन आज सों अकर बसायो मैन।
जब सर लाग्यो काम को, कुटिल भई सब सैन।।

करके लै ते ठौर कलमलि उठि काम के मिलन को कोऊ ठिंग

कोऊ खंड कोऊ दंड बंधन सौ बाँधि राखै नृपति अनंग बल आपनौ
जनायौ है ।

काहू सौं मिलाप कीनौ काहू कौं तनोल दीनौ कोऊ बाँह बोलि बास
सुवस बसायौ है ।।

निपट वाम गढ़ प्रिया तन केहि विधि कियौ प्रवेश ।
अवार देश पकार करसौ, बढ्यौ अनंग नरेश । माधुरी वाणी
पृ० ६७-६८

३० रतिरण का वर्णन

रतिरण में अधिकतर वर्णन सामान्य रूप से ही है । अनेक उदाहरण पीछे ही विभिन्न आयुध आदि के प्रकरणों के अंतर्गत आ चुके हैं । इस रण के आयुधादि का वर्णन एक पद में बड़े सुंदर ढंग से किया है ।

दोऊ राजत रतिरन धीर ।
महा सुभट प्रगटे भूतल वृषभानु-सुता बलबीर ।।
भौंह धनुष चढ़ाइ परस्पर, सजे कवच तनु-चीर ।।
गुन संधान निमेष घटत नहिं छूटे कटाच्छिनि तीर ।।
नख नैजा आवृत उर लागैं नैंकु न मानत पीर ।।
मुरली धरनि डारि आयुध लौं गहे सुभुज भट भीर ।।
प्रेम समुद्र छाड़ि मरजादा, उमंगि मिले बाजि तीर ।
करत बिहार दुहूं दिसि तैं मनु, सींचत सुधा सरीर ।
अति बल जोबन धाइ रूचिर रचि बैंदन मिलि श्रम नीर
सूरदास- स्वामी अरु प्यारी, बिहरत कुंज कुटीर । सूर २६०४

दोनों ही योद्धा एक दूसरे के दस नखों के बाणों के प्रहार सहते हैं ।

जोबन-बल दोऊ दलसाजत, राजत खेत खरे ।
गौर-स्याम सैनिक सनमुख, रजनीमुख कोप भरे ।
दस नख बान प्रहार सहत दोऊ उरज सुभट न टरे ।
भागत नहिं लागति छति अधरनि दसनायुध निदरे ।।
नैन सिलीमुख छूटत, अंगनि फूटति डर नडरे ।।
म[illegible]त [illegible] [illegible]याँ [illegible]नि [illegible] [illegible]ङ्कार भरे ।।

वल्लभ रसिक ने तो इस रण में उरोजों के बुर्जों पर बैठ कर गोलों के चलाने तक की कल्पना की है ।

मारतु बैठि उरज बुरज गोलनि गोलनि मैन ।
हाथनि हाथनि तोरि बैद दिय पिय हाथनि ऐन ।
कौन प्रीति पिय हिय लग्यो जुर जनि तन मन वारि ।
सोलै तहस नहस कियो उरजनि गुरजनि मारि ।।
ज्यों ज्यों तहस नहस करै उरजनि गुरजनि मारि ।
समर समर बानैत पिय, मानैं नेकु न हारि।। वल्लभ रसिक
पृ ४४।१३,१५,

दामोदर स्वामी ने भी अपने पदों में इस रति युद्ध का वर्ण किया है । उनका एक ऐसा ही पद नीचे दिया जा रहा है ।

रति जुद्ध जुरे कल कुंज दुरे उर मंजु घुरे द्रग बान चले ।
कल खेत अनंग उमगे दोऊ नख आयुध लगि न कोउ टलैं ।
अंग अंग चमू चमकें चपला बल मान मनोज को नीकों दले ।
मुख नील सरोज के बैन सुनों सखि बोलैं बिरंचि भले जु भले ।
दामोदर स्वामी केपदों का
निजी संग्रह पृ० ७

सामान्य रतिरण का वर्णन हम ध्रुवदास के एक पद से समाप्त करेंगे इसमें उन्होंने सुरत केलि में प्रिय-प्रिया की शोभा का वर्णन किया

इंद्रनील मनि प्रिय प्रिया, कोमल कुंदन बेलि ।
लसति छबीली भांति सों सुरत समर रस केलि।। रंगविहार
लीला पृ० २१०।६

३१ <u>विपरीत रतिरण</u>

सामान्य संभोग के अतिरिक्त विपरीत संभोग भी भक्त कवि का प्रिय विषय रहा है , इसका उल्लेख हम पीछे कर आए हैं । रण की क्रिया दोनों ही प्रकार के संभोग में सामान्य रूप से प्र है ।

विपरीत रतिरण में के इन वर्णनों में राधा की क्रिया-विदग्धता दिखा कर तथा अंत में कृष्ण को हराने का उल्लेख कर कदाचित राधा का महत्त्व भी स्थापित करने का प्रयास किया गया है । ऐसे विपरीत रतिरण का एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा है

राजत दोउ रतिरंग भरे ।
सहज प्रीति बिपरीत निसा बस आलस सैज परे ।
अति रनबीर परस्पर दोऊ, नैंकुहुं कोउ न मुरे ।
अंग अंग बल अपने अस्त्रनि, रति संग्राम लरे ।
मगन मुरछि रहे सेज खेत पर, इत-उत कोउ न डरे ।
सूर स्याम स्यामा रतिरन तैं,इक पग पल न टरे।। सूर २६५

इस रण में दोनों भट बराबर के होते हैं[99] और लोक लाज छोड़ कर वे रतिरण करते हैं[100]। अपने को वे संभाल नहीं पाते हैं,[10]

---

९९ व्यास ५८९

१०० -

सनहु भैया श्रवन दै बात अति सरस है प्रेम रण रसिक जन लरत बर
भाइसों ।
साँचु शोभित सदा गृह जुद्ध गुन गन यदा लगत उर सुरत नहिं अधिक
चित चाइ सों ।
घुक्त घर परत उसरत नहीं अगमनै नैन जल द्रवत तन मुदित मन धाइ सं
सूर कल्यान तेई श्यामश्यामा भजे तजी सब लोक लाज ठलि कै पाइ
सों कल्याण
पुजारी प्र निजी
संग्रह - पृ० ४६

१०१

प्रेम पुहिम पर अरि रहे टरत न रन जुरि जोट ।
मतवारे घूमत महा नेह अगड़ की ओट ।।
नवरंग भीने नेह अगड़ में नींद घुरे घूमत मतवारे ।
निपट निशंक सुरत रन जीते सकल कला संपूरन भारे ।
झूमि झूमि झपकत झिझिकत दृग शिथिल गात नहिं जात
सम्हारे ।
श्री [illegible] प्रेम पु[illegible] [illegible]रि रहे परत टरत [illegible]

किंतु रतिरण से कोई भी नहीं मुड़ता है[१०२] इस प्रकार से यह रतिरण चलता है ।

रति संग्राम हुआ है तो किसी न किसी की जय और दूसरे की पराजय होनी ही चाहिए । भक्त कवियों ने भी इस जय पराजय का कई रूपों में वर्णन किया है

रतिसंग्राम में सामान्य रूप में काम देव की पराजय का ही प्रश्न उठना चाहिए । कामदेव ही प्रतिद्वंदियों के अंदर छिप कर दोनों को पीड़ित करता है । काम- शांति होने का ही अर्थ है कि कामदेव र पराजित हो गए । सफल संभोग भी यही है । सूर ने इसका निम्नप्रकार का वर्णन किया है :-

आजु अति सोभित है घनस्याम ।
मानहुं हैं आते नंद नंदन, मनसिज सों संग्राम ।।
मुकलित कच न समात मुकुट में, रोष अरुन दोउ नैन ।।
स्रम सूचत गति, भांति अलस बस बोलत बनत न बैन ।।
नख क्षत प्रीति, प्रस्वेद गात तें, चंदन गयो कछु छूटि ।
मदन सुभट के सर सुदेस मनु लगे सुदेस मुनु लगे कवच पट फूटि ।।
दसन-बसन पर प्रगट पीक मनु सनमुख सहे प्रहार ।
सूरदास प्रभु परम सूरमा, जाने नंद कुमार ।। सूर - ३०७६,२७४८
युगल शतक कार श्री भट्ट ने भी कामदेव के हारने की चर्चा की है :
चंचल चिकने लगो हैं, अरुन वरन रस ऐंन ।
अनियारे अति नागरी, नागर के ए नैन ।। ६२

---

१०२ बिहरत अति आनंद भरे। रसद काम प्रेम परति परे ।।
नव नव रंग महल मनि मंडल कुसुमित विमल वितान तरे ।।
लोचन ललित विलोक बदन बिब निमेष न नैन निमेष टरे।।
मुरत न सूर सुरत सन्मुख सुख अधर मधुर रस पान करें ।।
रस बस हंसि श्री बिहारी नागरी श्री नगरी दास के
रंग ढरे ।।
नागरी दास पृ० १२
निजी संग्रह तथा देखें-सूर

नागरि नागर के नैंन अनियारे ।
अति अनूप निज रूप निहारे, परम प्राणप्रिय प्रीतम प्यारे ।।
भृकुटि भौंहनि गूढि भावसी, डोरा कोर प्रेम फंदवारे ।।
वरुणवरण चैंने रसभीने चिकने लगों है प्रीति पन पारे ।।
पलक अलक मानौं अलि नलिन प्र प्रात मुदित हित पंख पसारौ ।।
अंजन अनिल रेख ईषद लसि, वसि नागिन मनै अंजन तारे ।।
चंचल कमल ललित प्रफुल्लित मनु भूतल गति निरखत रसभारे ।।
जै श्री भट सुरत समर मैं कोविद सुभट कोटि कन्द्रप यहां हारे ।।

युगल शतक - ६२

किन्तु कृष्ण भक्त कवियों द्वारा वर्णित रतिरण में राधा की पराजय का भी उल्लेख मिलता है । कृष्ण काम कला विशारद हैं और वे राधा की रति कामना शांत करने में समर्थ हो कर राधा को पूर्ण संतोष देते हैं, कृष्ण की विजय से कवियों का यहीं अर्थ है । ऐसा एक उद्धरण नीचे दिया जा रहा है ।

मनचीते कारज भये रनजीते जुगलाल ।
उरझि रहे अंग अंग सौं कंचन वेलि तमाल ।।
रंगरंगीले छैल छबीले, राजत दोऊ रसिक रसीले ।
रतिरन जीति जोरि जुगराज, किये सकल मनवंछित काज ।।
सजे सगवगे सहजसिंगार, रसरगमगे जगमगे अपार ।
मनु उरझी तरुन तरु कंचन वेली, यों सोहैं श्री हरिप्रिया सहेली।।

महावाणी पृ २६।७

युद्धोपरांत की लूट का भी वर्णन मिलता है :-

राधा रति रण में लुट गई हैं :-

मानो भई भूषन की सी पट-लूटी ।
बनी विचित्र उतंग तनी तन, देखति करति बट-लूटी ।।
कर गहि चुटी छुटी रति-रन महं, जहां जमुना तट कुटी ।
व्यास स्वामिनी के आदेस सुदेस भई व लट-छुटी ।।व्यास ७४६

इन वर्णनों में भयंकर रति संग्राम करके, विविधप्रकार से घायल होने के बाद भी कृष्ण अंत में रति रण में जीत ही जाते हैं । राधा की पराजय का यद्यपि यहां स्पष्ट उल्लेख नहीं है पर

रतिसंग्राम बीर -रस माते ।

हैं हरि सूर सिरोमनि अजहूं, नहिंन संभारत ताते ।
आनहिं बरन भए दोउ लोचन, अपने सहज बिनाते ।
मानहुं बीर परी जौधनि कौ, भए क्रोध अति राते ।।
बैठि जात, अलसात उनींदे, क्रम क्रम उठत तहां ते ।
परिमल-लुब्ध मधुप बहं बैठत, उड़ि न सकत तिहिं ठाते ।
मन मूरछा, कटाच्छ-नाटसल, कढ़ि न सकत हियरा ते ।
मनहुं मदन के हैं सर पार फौंक बाहिरी घाते ।।
डगमगात घूमत जनु घायल, सोभा-सुभट कला ते ।
सूरदास प्रभु रति-रन जीते, अब सकात धौं काते ।।सूर ३३०२

किन्तु राधा वल्लभ अथवा राधा प्रधान संप्रदायों में राधा की रतिरण में विजय दिखाई गई है । राधा की इस विजय का उल्लेख अनेक कवियों ने किया है । कृष्ण उनकी काम कला से मुग्ध हो जाते हैं और सदैव के लिए ने केवल काम कला में उन्हें अपना गुरू ही मान लेते हैं वरन् राधा द्वारा प्रदत्त आनन्द के कारण उनके सदैव के लिए दास भी हो जाते हैं । ऐसे ही कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं :-

नव निकुंज सुख पुंज नगर कौ, नागर सांचौ भूप ।
मृगज कपूर अ कुमकुमा, कुंकुम-कीच, अगर दिए धूप ।।
संग षडंग सुअंग सुदेसी रागिनि-राग अनूप ।
जीवित निरखि लाड़िली राधा रानी कौ गुन-रूप ।।
नव नव हाव-भाव अंग-अंग, अगाध सुरत रसकूप ।
व्यास स्वामिनी सौं हरि हार्‍यो, सरबस रति-रन- जूप।।
व्यास ३७६

एक दूसरे पद में तो कवि कह रहा है कि भयंकर रतियुद्ध में राधा जीत गईं और कृष्ण हार गए । पराजित कृष्ण पर पीन पयोधर, हार, नितंब से अनेक प्रहार कर राधा उन्हें दण्डित करती है और अंत में अपना दास बना कर वे उन्हें छोड़ देती हैं :-

आजु अति कोपे स्यामा-स्याम ।
बीर खेत वृंदावन दोऊ, करत सुरत -संग्राम ।।

मर्मनि कंचुकि-जर्म, सुदृढ़ कुच वर्मनि, कट करवाल ।
अंग-अंग चतुरंगसैन(वर) भूषन रव-दुंदभि-जाल ।।
गौर-स्याम आनेत करै निजु विरदावलि प्रतिपाल ।
अंचल अंचल धुजा-पताका, (छवि) केस चमर विकराल ।।
भौंह- धनुष तैं छूटत वहुं दिसि, लोचन बान बिसारे ।
भेदत हृदय-कपाटनि निर्दय, तीवर उरज अन्यारे ।।
दसन-सक्ति नख-सूलनि बरषति, अधर कपोल बिदारे ।
घूंघट घुघी मुकुट टोपा कवची, कंचुक भये न्यारे ।।
जीती नागरि, हारे मोहन, भुज संकट मैं घेरे ।
पीन पयोधर, हार नितंब, प्रहार कियौ बहुतेरे ।।
प्रनय-कोप बोली कैतव, अपराध किये तैं मेरे ।
परम उदार व्यास की स्वामिनि छांड दिए कच घेरे ।। व्यास ५२२

व्यास ने तो अंत मैं स्वयं कृष्ण से हार मनवा भी दी है :-

मेरे तनु चुभि रहे अंग अन्यारे ।
टारे हूं तैं टरत न सुंदरि, उर तैं पीन पयोधर भारे ।।
मेरे नैन-कुरंगनि बेधत, तेरे लोचन-बान बिसारे ।।
तेरे दसन प्रचंडनि मेरे, अधर गंड खंडनि कर डारे ।।
अति निसंक तेरे खर-नखरनि, मेरे गातनि अंग सिंगारे ।।
नख-सिख कुसुम बिसिख सर बरषत व्यास स्वामिनी तो सौं
हारे ।। ५६२

राधा ने केवल कृष्ण को रतिरण में हराती हैं वरन उनका
सर्वस्व लूट भी लेती हैं :-

प्रिया प्रवल प्रताप पिय रहे रीझि रन जूटि ।
सरवस रसकसि लाल कौ लयौ लुटेरिन लूटि ।।
लुटेरिनि लाड़िली लाल कौ लयौ सर्वस रस लूटि ।
बांधि कियौ अपने बस कस करि क्यों हू न पावत छूटि ।।
कुल बल सकल कला-कुल- कृतिकी गई आस-सी टूटि ।
श्री हरिप्रिया प्रताप प्रवल ते रीझि रहे रन जूटि ।।
महावाणी -सुरतसुख ८० पृ १४५

विहरत वृंदाविपिन विहारी ।
दूलहु लाल, लाड़िली दुलहिन, कोटि प्रान तैं प्यारी ।।
वाम गौर स्यामल कल जोरी, सहज रूप सिंगारी ।
कुसुम-पुंज कृत सैन कुंज महं, चंद-वृंद अधिकारी ।।
कुंवरि कुंवरि गहि चोली खोली, तिरनी तरकि सारी ।
नम नागर नट के पटहिं झटक, हंसि मटकत नवल दुलारी ।।
सुरति-समर महं सनमुख राति, दोऊ उभा अनधारी ।
व्यास काम-बल जीते रति-रन, विहंसि बजावति तारी ।। व्यास
५६८

किन्तु रतिरण में वस्तुत: किसी भी पक्ष की हार नहीं होती है। सूर ने कहा है कि रतिरण में कोक-कला कुशल राधा और कृष्ण दोनों ही विजयी हुए

नागर स्याम नागरि नारि ।
सुरत-रति-रन जीति दोउ, अंग मनमथ धारि ।।
स्याम-तनु घन नील मानों, तड़ित तनु सुकुमारि ।
मनो मरकत कनक संजुत, सव्यो काम संवारि ।।
कोक-गुन करि कुसल स्यामा, उत कुसल नंद-लाल ।
सूर स्याम अनंग - नायक, बिबस कीन्ही बाल ।। सूर २६०७

राधा कृष्ण की इस आनन्द मय केलि के दर्शक भक्त वृंद उ. स्वामी और स्वामिनी की इस कार्यकुशलता की सराहना करते हुए उनकी जय मनाते है :-

कमल कुमुदिनी वृंद के दायक उर आनन्द ।
जयति सुरत रनधीर बिबि विसद रूप रवि चंद ।।
जयति सुरति-रनधीर दोऊ कुंवर कुलमंडनै खंडनै दर्प कंदर्प दल
विसद ~~वसके~~ वरवेष रसिकेश सम-वय सुघर समर-सुख-रूप नि.
सकल के ।।

अद्भुतानंद के कंद कमनीय कल चंद रवि कुंद कुमुदिनि कमल के
श्री हरिप्रिया प्रानपोषक प्रवर प्रतिदिन छिन छिन परन दुख

पल्लहिं फल के ।। महावाणी सुरतसुख पद ३६

पृ १३७

रति-रण के प्रसंग के इस संक्षिप्त अवलोकन से स्पष्ट है कि भक्त कवियों ने संभोग के इस क्रीड़ात्मक अंश को अति विस्तार तथा अत्यंत रोचकता से निबाहा है । जीवन में संभोग के सच्चे स्वरूप से वे परिचित थे और कदाचित उसकी अनिवार्य आवश्यकता से भी वे अवगत थे ।

(ग) सुरतांत

३२- संभोग की इति सुरत से ही नहीं हो जाती है । इसके बाद दंपति की आनंद जन्य शिथिलता, संतोष द्वारा पोषित प्रेम की सुखद अनुभूति आती है । संभोग के बाद की इस स्थिति को ही भक्त कवियों ने सुरतांत नाम से अभिहित किया है । इस सुरतांत के दो उपांग किए गए हैं:-

१- बाह्य- इसके अंतर्गत सफल संभोग की अभिव्यक्ति करने वाले समस्त रति चिह्न आदि आते हैं ।

२- आंतरिक- इसमें दंपति द्वारा अनुभूत सुख संतोष एवं प्रेम की वृद्धि का उल्लेख होता है ।

सूरतांत के इन दोनों उपांगों का कवियों ने विस्तृत वर्णन किया है । दोनों ही अंगों का नीचे हम संक्षिप्त अध्ययन करेंगे ।

३३- बाह्य अंग-

सुरतांत के बाह्य अंगों में रति क्रिया को व्यक्त एवं उसके सफलता पूर्वक संपन्न होने की सूचना देने वाले सभी चिह्नादि आते हैं, जैसे वस्त्रों का मृदित होना, श्रृंगार का बिखरना, प्रस्वेद, एवं रति के चिह्न नख, दंत-क्षतादि । इसी के अंतर्गत रति जन्य श्रम भी आता है । इन्हीं क्रियाओं एवं चिह्नों के द्वारा सखियां एवं माता पिता सफल रति होने की सूचना पाते हैं और इन्हीं चिह्नों को लेकर सखियां एक और तो नायिका के भाग्य की ... करती है और दूसरी ओर उसको चिढ़ाती भी है ।

३४- वस्त्रों का मृदित होना-

वस्त्रों के मृदित होने का वर्णन लगभग सभी भक्त कवियों ने किया है उनमें से एक उदाहरण नीचे दिया जा रहा

राजत झल्लरी झंकार ।
करत मंगल आरती सखि हाथ कंचन थार ।।
विलसि निसि सुख सेज बैठे अलस लोचन रार ।
मरगजे अंबर बने तन टुटि छुटे उर हार ।।
मुदित तन मन सहचरी जन खरी कुंज दुवार ।
जांहि बलि बलि हित दामोदर देखि रूप अपार ।।
दामोदर स्वामी निजी सं० पृ० १०३

सुरत के उपरांत अन्य श्रृंगार के साथ - साथ वस्त्रों के चूर अर्थात् फट जाने का उल्लेख जायसी ने भी किया है:-

भएउ बिहान उठा रवि साईं । ससि पहं आई नखत तराईं ।
सब निसि सेज मिले ससि सूरू । हार चीर बलया भे चूरू ।।
जायसी - ३२१

वस्त्रों के अंतर्गत ही अंगिया के चूर होने, उसके बंद टूटने का भी उल्लेख आता है । रति की उत्सुकता में अंगिया को खोलने का धैर्य कहां? बंधनों को तोड़ दिए जाते हैं ।[१०४]
मरगजी अंगिया छूटे बंद आनन्द उर न समाई ।
तै सेई अंजन मन रंजन अंचल छबि छूट रही फबि कहुं कहूं पीक -
की लीक लाल के मन रही छाई ।।
सुरत के अंत आलस वस रस भरे बहुरि उमंग ढरे रहे लपटाई ।
भूषन वसन पहिरैं न मंजन करैं श्री विहारिन दासि अलबेली-
लाल लड़ाई ।। विहारिन देव-
निजी संग्रह पृ० ९५।८१

नवल कसनि कसि कंचुकी नवल हार गए टूटि ।
नवल प्रेम अंग अंग मिले नवल करत रस लूटि ।। नागरीदास
निजी संग्रह टट्टीसं०
पृ० २।१७

---

१०३- देखें सूर २३११,२६१२,२६२८,३२७३,२३११ आदि, ध्रुवदास-ब्यालीस लीला पृ० १२६ गोविन्द स्वामी २४४,व्यास ३१३

१०४- देखें -कुंभनदास-३१३,सूर २७९८,महावाणी पृ० २७।१३ ध्रुवदास- ब्यालीस लीला पृ० १७०, पद्यावली ८

होने
नायिका के वस्त्रों के मृदित होने के समान ही इस प्रसंग में कृष्ण की लटपटी पाग का भी प्रायः उल्लेख हुआ है। संभोग के कारण पाग की बंधाई ढीली पड़ गई है। उसको पुनः बाँधने के लिए न तो कृष्ण में आवश्यक सामर्थ्य ही है और न ही अवकाश।

आजु गिरिधर लाल नीकी बानक बने।
लटपटी पाग सिर लटकि रही भृकुटि तर -
अर्ध मीलित नैन जुग निस उनींदे घने ।।
तिलक खंडित अधर गंड अंजन रेख-
मरगजी माल उर विविध सौंधे सैनै।
बसन पलटत सुरति बैन अंग अंग प्रति-
निरखि "गोविंद"रसिक राधिका मन मनै ।।

गो० २३५ तथा देखें २४४ भी।

विचित्र विनोद बिहारी लाल रसीलौ हो रस रंग।
सेज सुरत पागे निस जागे प्रेम प्रिया अंग संग ।।
असन अधर अंजन छबि अलक पीक कपोल भ्रू- भंग।
अति आलस युत नैन रस मसे कसे है कसौटी अनंग।
लटपटी पाग अलक बिच सोहत श्याम सुभग अंग- अंग।
दासि नागरि के रस बस विहरत मन अनुराग अभंग ।।

नागरी दास - टट्टी स्थल-
निजी संग्रह - पृ० ६।६

३५- वस्त्र- परिवर्तन-

सुरतान्तर पुनः वस्त्र धारण करने पर नायक-नायिका के वस्त्रों के परस्पर परिवर्तन का भी उल्लेख किया है:-

नवल लाल दोउ प्रातहि जागे।
अंसनि भुज दिये जुगल छबि नैन निशा अनुरागे।
नील-पीत पट पलटे भूषन आलस जुत रस पागे।
सांवल गौर भांति तन शोभा उमगि उमगि उर लागे।

ललना लाल सुरत रस भीने प्रेम मत्त कल रागे ।
उमड़े सिंधु मगन मन नागर नागरी के रस पागे ।
रजनी बरषि हरषि रस सागर हरषि सखी बड़ भागे ।
जै श्री दामोदर हित ललित मनोहर राजत नखछत दागे ।।

~~मनत~~ दामोदर स्वामी-
राधावल्लभ-संग्रह पृ० ५८

३६- आभूषणों का टूटना -

मोतियों की माला टूटने का सुरतांत के वर्णनों में बार- बार उल्लेख आता है । संभोग के समय फूलों के गहनों का भी प्रयोग होता है । प्रिय- प्रिया के संभोग में ये मसल और टूट जाते हैं । ये आभूषण प्रायः सभी अंगों के होते हैं । सुरतांत में इनके टूटने का उल्लेख सुरतांत का वर्णन करने वाले लगभग सभी कवियों ने किया है । एक दो उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं:-

स्यामा स्याम सौं अति रति कीनी ।
स्रम-जल बुंद बदन यौं राजति, मनु ससि पर मोतिनि लर दीन
मुक्ता माल टूटि यौं लागति, जनु सुरसरी अधोगति लीनी ।।
सूरदास मन हरन रसिक बर, राधा संग सुरति-रस भीनी ।।

सूर - २६११

+ + + + + +

पीक कहुं अंजन कहूं, मुक्तावलि रही टूटि ।
सिथिल बसन भूषन कहूं, अलकावलि रही छूटि ।।

- ध्रुव - १७९।८४

३७- रति चिह्न -

रति में प्रयुक्त सभी क्रियाओं के चिह्नों का सुरतांत के वर्णनों में आता है । इनमें आलिंगन, नख एवं चुंबन, प्रहणन आदि के प्रभाव का वर्णन किया जाता है । चिह्नों के द्वारा ही रति की सफलता का अनुमान किया ज ऐसे ब रति के चिह्नों [illegible] महत्वपूर्ण स्थान ।

करती है । यथा -

कुंजते निकरि दोऊ ठाढ़े जमुना के तीर, आजु सखी और भाँति प्रिया -
रंग भरी है ।
निशि के चिन्हनि चितै मुसकाति रस निधि, बहु विधि सुख केलि -
रंग रस ठरी है ।
देखैं ध्रुव छबि सींवा मृद भुज ग्रीवा, हंसि भौरी मोरी मेगी ठौर -
ते न टरी है ।
हरी हरी जाल लाल पीत सेत सारी तन, पहिरे सहेली सबै चित्र की-
सी खरी है ।।
ध्रुव -ब्यालीस लीला पृ०८८

इन रति चिह्नों का एक सुंदर उदाहरण निम्नलिखित है:-

आजु पिय के संग जागी रात ।
दुरति न चोरी कुंवरि किसोरी, चीन्हैं परसत गात ।।
पुलकित कंपति गातनि, संकित, बात कहत सुतरात ।
जावक, पीक मखी रंग रंजित, सारी ब स्वेत चुचात ।।
छूटी चिकुर चंद्रिका, उरजनि पर लटकति लर पांत ।
मानहुं गिरवर कंचन ऊपर, मेघ घटा धुरवात ।।
खंडित अधर पीक गंडनि पर, लोचन अलस जंभांत ।।
हसत अकोर देत, चित चोरत, अंग मोर ऐंड़ात ।।
कहा- कहा रति बरनौं वैभव, फूली अंग न मात ।
वेगि देखाउ बहुरि वह कौतिक, व्यास दास अकुलात ।।
-व्यास ३१८

३८- शैथिल्य, आलस्य और प्रस्वेद -

भक्त कवियों ने सुरतांत के वर्णन में प्रस्वेद, आलस्
शिथिलता का उल्लेख किया है । राधा - कृष्ण की केलि रात -
भर चलने वाली है और उसमें तो यह शिथिलता और भी [illegible]
ती है । साधारण रति के उल्लेख में भी इनका वर्णन मिलता
प्रस्वेद, आलस्य और इस शिथिलता, के अनेक उदाहरण [illegible]
आप आ चुके हैं । कुछ नीचे दिए जा रहे हैं:-

शिथिलता आदि का वर्णन सखियां करती है।[१०५]

कहि यह बात सखी सब धाई। चंपावति कहँ जाइ सुनाई।
आजु निरंग पद्मावति नारी। जीउ न जानहुँ पवन कुब आधारी
तरकि तरकि गौ चंदन चोला। धरकि धरकि डर उठै न बोला।
अही जो कली कला रस पूरी। चूर चूर होइ गइ सो चूरी।
देखहु जाइ जैसि कुंभिलानी। सुनि सोहाग रानी बिहँसानी।
लै संग सबै पदुमिनी नारी। आइ जहाँ पदुमावति बारी।
आइ रूप सबहीसो देखा। सोन बरन होइ रही सो रेखा।
कुसुम फूल जस मरदिअ निरंग दीखु सब अंग।
चंपावति मै बारनै चूँबि केस औ मंग।। जायसी ३२७

ध्रुवदास ने राधा के श्रमित सौंदर्य का वर्णन इस प्रकार किया है:-[१०६]

वर विहार कछु श्रमित भइ पिया परम सुकुमारि।
रूचिर पीत अंचल लिये मृदुकर करत बयारि।।
गौर बदन पर फबि रही बिथुरी अलक रसाल।
शिथिल बसन भूषन सबै घूमत नैन विशाल।।
अति सुदेश आलस भरे अरुन छबीले नैन।
प्रेम की रैनी मैं मनो रँगे कंज रति मैन।।
अरुनाई विच स्यामता छबि नहिं परत बखानि।
मनौ - मधुप अनुराग के रँग मैं बौरे आनि।।
रति विनोद जामिन जगे शिथिल अटपटे बैन।
अंग अंग अरसाने सबै सरसाने सखि नैन।। ध्रुव -ब्यालीस पृ० १२६

---

१०५- देखें चित्रावली ५३७,५९७ भी।
१०६- देखें सूर २७९२,२७९४,२७९८,२७९९ आदि।

आलस्य का एक सुंदर वर्णन महावाणी कार ने भी - किया है । सखी पूछती है कि, " यह कौन सी अनोखी - बान पड़ी है । जैसे - जैसे सवेरा होता है वैसे- वैसे ही चादर तान कर लेटने लगते हो । अब आलस्य तजो । रात्रि बीत गई है ":-

आरस तजिये जाऊं बलि लगी भुरहरी होन ।
त्यौं त्यौं पौढ़त तानि पट बानि परी यह कौन ।

परी बलि कौन अनोखी बानि ।
ज्यौं- ज्यों भोत होत है त्यों - त्यौं पौढ़त हौ पट - तानि ।।
आरस तजहु अरु नई उदई गई निसा रति मानि ।
श्री हरि प्रिया प्रानधन जीवन सकल सुखन की खानि ।।
-महावाणी १३

अत्यधिक रति से क्लांत होकर राधा सो जाती हैं, जगाने पर जागती नहीं हैं जैसा कि महावाणी कार ने भी वर्णन किया है:-

प्यारी अब सोइ गई ।
ज्यौं ज्यौ जगावत त्यौं त्यौं नहि जागत ।
प्रेम रस बान करि भोइ गई ।
जागत होय तौ जगाऊं प्यारी ताते ।
व परम सच रसही रसिक रस बोइ गई ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी ।
उठ गरें लगाई प्रेम प्रीति सौं नोइ गई ।। हरिदास

३९- सखियों द्वारा परिचर्या-

रति श्रम को दूर करने के लिए सखियों का परि[illegible] करना स्वाभाविक नहीं है । सूरदास मदन मोहन की र[illegible] में इसका वर्णन एक स्थल पर मिलता है:-

प्यारे सौं खेलत तोहि अति जो श्रम भयो हाँको बया
अप[illegible] ऐंचत लै [illegible] सखी री रुचि वदन परिश्रम

श्रवण नासिका भूषण उलटे विथुरी अलकै बांधि सवारि ।
श्री सूरदास मदन मोहन मिलवे कों जाहिं न भावै डारु वारि ।।

सूरदास मदन - पृ० ११।३३

माधुरी वाणी -उत्कंठा वाणी १९४-

केलि- उपरांत जागरण पर पुनः श्रृंगार-

प्रातः काल उठने पर बिनानव श्रृंगार किए ही अपने - अपने भवन- गमन का उल्लेख तो हम पीछे कर ही आए है, किंतु अनेक बार प्रेमाधिक्य के कारण प्रिय- प्रिया स्वयं एक दूसरे का या अपना श्रृंगार ऐसे अवसर पर करते हैं, या उनकी सखियां करती हैं । दोनों ही के एक आध उल्लेख हमें मिल जाते हैं ।

निम्नलिखित पदों में राधा स्वयं अपना श्रृंगार करती हैः-

बहुरि फिरि राधा साजति श्रृंगार ।
मनहु देति पहिरावनि अँग, रन जीते सुरत अपार ।।
कटि तट सुभटहिं देति रसन पट, भुज भूषन, उर हार ।
कर कंकन, काजर, नकबेसरि, दीन्हौ तिलक लिलार ।।
बीरा बिहंसि देति अधरनि कौं, सन्मुख सहे प्रहार ।
सूरदास प्रभु के जू विमुख भए, वे बांधति कायर बार ।। सूर -
२८०१ तथा देखें २८०२

इस प्रकार राधा रति रण मे साथ देने वाले विभिन्न अंगों को पुरस्कार देती है ।

निम्नलिखित पदों में कृष्ण राधा दोनों परस्पर श्रृंगार करते हैं इसका अल्प वर्णन ही सूरदास ने किया है । केवल उल्लेख मात्र ही मिलता है ।-

दोउ बन तैं ब्रज-धाम गए ।
रति संग्राम जीत पिय प्यारी, भूषन सजत नए ।।
वै ब्रज गए आपु अपनैं गृह, चित तैं कोउ न टारत ।।
सूर -२८०

निम्नलिखित पद में राधा का सखियों द्वारा शृंगार होता है:- सुरत के उपरांत सखियां राधा को जगाती है और फिर उसका सभी प्रकार से पूर्ण शृंगार करती हैं:-

समय जानि सहचरी जगावति, एक मधुर रस बैन बजावति ।

\+ + + +

नौतन आय सिंगार बनाये । अपने बसन ताहि पहराये ।
भाल विसाल तिलक रचि कीनौं, माथे मृग - मद बैंदा - दीनौं ।।
बेसरि नाक बनाय सँभारी । दई रीझि कै लाल बिहारी ।
फूलनि को शृंगार बनायो । सोधौं सोंधि सुगन्धि मिलायौं ।।
जो भूषन निज आप उतारे । सो सहचरि के अंग सिंगारे।
अपने कर सों अंजन दीनौं । मन भायो माधुरि को कीन्हौं ।।

माधुरी वाणी - वंशीवट माधुरी -
१४९-१६४

कृष्ण के जागने पर भी राधा की सखियां उनकी परिचर्या और शृंगार भी करती है :-

जागे नवल कुंवर जब जाने । तब उपहार सबै उर आने ।
इक सुगन्धि जल पान करावत । वीरी एक बनाय खवावत ।
एक सखी दर्पन दिखरावत । एक चौर चहुं और दुरावति ।।

वही - १६६-१६९

४७- आंतरिक अंग -

बाह्य अंगोंके वर्णन के उपरांत सुरतांत के आंतरिक अं का वर्णन आता है ।इसका विस्तृत उल्लेख संभव नहीं है।

सूरदास कहते है कि सफल रति के उपरांत आनन्द के वशीभूत होकर दोनों परस्पर रीझते हैं:-

रीझै स्याम नागरी छबि पर ।
प्यारी एक अंगर्र पर अटकी, यह गति भई परस्पर

नागरि छबि पर रीझै स्याम ।
कबहुँक वारत हैं पीताम्बर, कबहुँक वारत मुकुता - दाम ।।
कबहुँक वारत हैं कर- मुरली, कबहुँक वारत मोहन- नाम ।
निरखि रूप सुख अंत लहत नहिं, तनु मनु वारत पूरन काम ।।
बारंबार सिहात सूर - प्रभु, देखि देखि राधा लै नाम ।
इनकौं पलक ओट नहिंकरिहौं, मन यह कहत बाबरहु वाम ।।

सूर २७५३

कृष्ण राधा पर कभी तो इतना रीझ जाते हैं कि उनको अंग- अंग पर उपमाएं न्योछावर कर डालते हैं । उनकी स्थिति पतंग के समान है जिसकी डोर राधा के हाथ में है ।[१०७] वे चातक, चकोर, चक्रवाक, हिरन, मीन की भांति राधा पर उसी तरह मोहित हैं जैसे ये अपने प्रिय पर[१०८] । यह प्रेम इतना बढ़ जाता है कि वे राधा के आभूषण ले- लेकर स्वयं अपना शृंगार करने लगते हैं:-

निरखि स्याम प्यारी- अंग सोभा, मन अभिलाष बढ़ावत हैं ।
प्रिया- अभूषन मांगत पुनि-पुनि, अपनैं अंग बनावत हैं ।।
कुंडल -तट तरिवन लै साजत, नासा बेसरि धारत हैं ।
बेंदी भाल मांग सिर पारत, बेनी गूंथि संवारत हैं ।।
प्यारी-नैननि कौ अंजन लै, अपने नैननि अंजत हैं ।
पीताम्बर ओढ़नी सीस दै, राधा कौ मन रंजत है ।।
कंचुकि भुजनि पहिरि उर धारत, कंठ हमेल सजावत हैं ।
सूर स्याम लालच तिय तनु पर, करि सिंगार सुख पावत हैं ।।

सूर २७५५

कृष्ण की भांति ही राधा भी कृष्ण पर रीझ कर उनके वस्त्राभूषणों से अपना शृंगार करने लगती है। यह बात यहीं न रुक कर क्रीड़ा रूप में इतने आगे बढ़ जाती है कि लघु मान प्रसंग प्रस्तुत हो जाता है । उसके भंग होने पर सुख- सरिता द्रुत गति से बढ़ने लगती है ।

---

१०७- सूर २७५४
१०८- सर २७५६

स्यामा स्याम - छबि कै साथ ।
मुकुट - कुंडल -पीत -पट -अँक, देखि रूप अगाध ।।
प्रिया हा हा करति पुनि- पुनि, देहु प्रीतम मोहिं ।
अंग- अंग सँवारि भूषन, रहति जह छबि तोहि ।।
काछि कछनी, पीत-पट, कटि किंकिनी अति सोभ ।
हृदय बन माला बनावति, देखि छबि मन लोभ ।।
श्रवन कुंडल धारि सोभा, ललित रचि सी खंड ।
"सूर स्याम सुहागिनी रुचि, कनक कर लै दंड ।। सूर २७५७[१०९]

राधा ऐसे प्रिय कृष्ण को प्राप्त कर उन्हें मन में कृपण की भाँति रखती है। सारा संसार धोखे में आ जाता है:-

स्याम मन जानि हिरदै चुरायौ ।
चतुर बर नागरी, महा मौन धरि लियौ, प्रिय सखी कौ तिहिं- नहिं बतायौ ।।
कृपन ज्यौं धरत धन, ऐसैं दृढ़ कियौ मन, जननि सुनि बात हँसि- कंठ लायौ ।।
गाँस दियौ डारि, कह्यौ मेरी बारि, सूर-प्रभु -नाम झूठैं उड़ायौ।।
सूर २३३७

इस प्रकार से विविध प्रकार के सफल संभोग से दोनों ही सन्तुष्ट होकर गले मिलते हैं और प्रसन्न होते हैं:-

हरि हँसि भामिनी उर लाइ ।
सुरति अंत गोपाल रीझे, जानि अति सुखदाइ ।।
हरषि प्यारी अंक भरि, पिय रही कंठ लगाई ।
हाव भाव-कटाच्छ लोचन, कोक-कला सुभाइ ।।
देखि बाला अतिहिं कोमल, मुख निरखि मुसुकाइ ।
सूर प्रभु रति- पति के नायक, राधिका समुहाइ ।। सूर १३०८

---

१०९- देखे वही - २७५८- २७६८ तक

(ख) हास - विलास

४१- संभोग क्रिया तो निरन्तर नवीन रूप धारण करने वाली तथा वर्द्धमान है । हिन्दी भक्ति काव्य के नायक और नायिका अनेक प्रकार से परस्पर क्रीड़ा- विलास का आनन्द उठाते रहते हैं । उन्हीं क्रीड़ा - विलास का स्वरूप हमें नीचे प्रस्तुत कर रहे हैं ।

४२- संभोग में परिहास और खेल

हिंदी कृष्ण भक्ति काव्य में संभोग, उसके पूर्व और बाद में कई प्रकार की क्रीड़ाओं का उल्लेख ही मिलता है । इनमें मुख्य कमल या फूलों से खेलना, दर्पण देखना और दिखाना, मुरली की छीना-झपटी ,आँख मिचौनी है । ये स्वयं संभोग के अंग या सम्पूर्ण नहीं है, किन्तु संभोग की तीव्रानुभूति की वृद्धि में इनका हाथ है

दर्पण देखना-दिखाना

प्रिय के साथ संभोग-पूर्व या उपरांत दर्पण देखना प्रिय-प्रिय में आनन्द उत्पन्न करने वाला एक खेल है:-

मुख सौं मुख मिलाइ देखत आरसी ।
विकसित नील कमल ढिंग उदित भयो किधौं ससी ।।
निरखि बदन मुसिक्याइ परस्पर करत बिहँसि गिरिधरलाल अंक हँसी
गोविंद" प्रभु प्यारी जु परस्पर देखियत परे प्रेम बसी ।।[११०]

आँख-मिचौनी

नायक या नायिका में से एक अचानक आकर दूसरे की [illegible] मूंद लेता है । जिसकी आँख मूंदी जाती है वह बूझता है [illegible] आँख मूंदी । इस प्रकार से आँख मूंदने का एक वर्णन नीचे [illegible] जा रहा है -

---

११०- गोविंद [illegible] वल्लभ रसिक [illegible]

बैठीं रहीं कुंवरि राधा, हरि अँखिया मूंदी आइ ।
अतिहिं बिसाल चपल अनियारी, नहिं पिय-पानि समाइ ।
छन छोरत छन ढाँकत, नागरि, मुख रिस मन मुसुकाई ।
ज्यौं मनिधर मनि छाँड़ि बहुरि फिरि, फन-तर धरत छपाइ ।।
स्याम अँगुरियनि अंतर राजति, आतुर दुरि दरसाई
मानौ बरसत मनि पिंजरनि मैं, बिबि खंजन अकुलाइ ।
कर कपोल बिच सुभग तरयौना, सोभा बढ़ी सुभाइ ।
मनु सरोज द्वै मिलत सुधानिधि, बिबि रवि संग सहाइ ।।
अपनै पानि पकरि मोहन के कर धरि लिए छँडाइ ।
कमल-चकोर चचरि ज्यौं, दै ससि दिनकर जुरति लगाइ ।।
उपमा काहि देउँ को लायक, देखी बहुत बनाइ ।
सूरदास प्रभु दंपति देखत, रति स्यौं काम लजाइ ।। सूर २८८३

मुरली की छीन-झपट -

राधा-कृष्ण की मुरली छीन कर उसे बजाने का प्रयत्न करती है-

मुरली लई कर तै छीनि ।
ता समय छबि कही जाति न, चतुर नारि नवीन ।।
कहति पुनि-पुनि स्याम आगै, मोहि देहु सिखाइ ।
मुरलि पर मुख जोरि दोऊ, अरस-परस बजाइ ।।
कृष्ण पूरत नाद उछरत प्यारि रिस करि गात ।
बार बारहिं अधर धरि-धरि, बजति नहिं अकुलात ।।
प्रिया-भूसन स्याम पहिरत, स्याम भूसत नारि ।
सूर प्रभु करि मान बैठे तिय करति मनुहारि । सूर २७६२

मान-विडंबना

कृष्ण राधा बनकर मान करते है । राधा मनाती है

कहति नागरी स्याम सौं, तजि मान हठीली ।
हम तै चूक कहापरी, तिय गर्व-गहीली ।।
है सतरहिं मैं तुम रिस कियौ, कह प्रकृति तुम्हारी
बार-बार कर धरति है, कहि-कहि सुकुमारी ।।

वृथा मान नहिं कीजिये, सिखवरननि धारति ।
आनन आनन औरि कै, पिय- मुखहिं निहारति ।।
निठुर भई हौ लाडिली, कब के हम ठाढ़े ।
तुम हम पर रिस करति हौ, हम हैं तुव चाढ़े ।।
स्याम किधौं हठि जानि के, इक चरित बनाऊं ।
सुनहु सूर प्यारी हृदय, रस बिरह उपजाऊं ।। सूर २७६३

४३- जलक्रीड़ा-

कृष्ण की अनेक लीलाएं और प्रधानतः रास यमुना के पुलिन पर हुए थे । रास के अंग रूप में जलक्रीड़ा का अपना स्थान है । कृष्ण और राधा की अनेक भेंट तथा अनेक सुखद रातें यमुना के तट या वक्षस्थल पर बीतीं । भक्त कवियों ने इस जल क्रीड़ा का यथेष्ट वर्णन किया है-

माधुरी वाणी के वंशीवट प्रसंग में जल-क्रीड़ा का निम्नलिखित विस्तृत उल्लेख है ।[१११] कृष्ण सभी के साथ जाकर कलिन्दी में विविध प्रकार से खेल करते हैं । अंजुली में पानी भर-भर कर वे एक दूसरे पर छीटते हैं । डुबकी लगाकर कभी कृष्ण राधा के गले से लिपट जाते कभी उनकी कंचुकी के बंद तोड़ते है । ललिता भी अत्यंत चतुर है । डुबकी मारकर वह कृष्ण को पकड़ लाती हैं । अकेले कृष्ण को पाकर गोपियां उन्हें खूब तंग करती हैं ।

इसके बाद कमल का खेल प्रारंभ होता है । एक-दूसरे पर फेंक-फेंक कर, नाच-गाकर यह खेल चलता है । इस प्रकार की काम-क्रीड़ा में मत्त होने के कारण सभी श्रमित हो जाते है ।

इस समय वे जल में एक महल देखते है । जल में स्थल और स्थल में जल, वह अद्भुत स्थान है । सभी प्रकार की सुख सुविधाएं वहां पर हैं । कहीं फूल तो कहीं केसर के सरोवर, कहां मणि-माणिक्य हैं । चौपड़, शतरंज आदि अनेक खेलों की वहां व्यवस्था है ।

१११- माधुरी वाणी- वंशीवट माधुरी पृ २५-४३

कृष्ण राधा के साथ श्रृंगार महल में आए। वहाँ दोनों ने एक दूसरे का श्रृंगार किया। कृष्ण की कामात्मक क्रियाओं को देख और उनकी इच्छा को भाँप कर राधा मुस्कराने लगती हैं। फूलों से श्रृंगार कर प्रिय-प्रिया भोजन करते हैं। बराबर हास परिहास चलता रहता है उसके बाद दोनों सेज पर आते हैं और विविध-भाँति से भोग करते हैं। इसके उपरांत दोनों शयन करते हैं।

जागने पर यमुना जी दोनों के विहार के लिए नौका प्रस्तुत करती हैं। मणि-माणिक्य और मुक्ता से यह नौका सजी है। छहों ऋतुओं की समस्तु वस्तुएं उसमें हैं। इस प्रकार सभी समाग्रियों से सुसज्जित होकर अनेक प्रकार से राधा-कृष्ण जल विहार और केलि विलास करते हैं।

वल्लभ रसिक ने जल-क्रीड़ा मांझ के अंतर्गत सरोवर में क्रीड़ा का उल्लेख किया है। संभोग का इसमें वर्णन नहीं है पर स्पर्श, आलिंगन आदि प्रेम की अनेक क्रीड़ाएं हैं।[११२]

राधा वल्लभ संप्रदाय के लगभग सभी कवियों ने कृष्ण की अनेक श्रृंगारिक लीलाओं के साथ यमुना जल-विहार आदि का भी वर्णन किया है। दामोदर स्वामी का एक पद नीचे दिया जा रहा है :-

जमुना जल में करत कलोलैं।
बाल समीप लाल मन मोहन ग्रीषम रितु हित क्रीड़त डोलैं।।
राजत संग समूह सखी जन तन जल में मुख ऐसैं लोलैं।
तिरत फिरत मानों पूरन शसि किधौं घन में गन उदित बिलोलैं।

कबहूं मिलि छिरकत लालन कों बास विवस गुंजत अलि टोलैं।
नृत मनमथ अवषेक होत मनों चहुं दिसते जैजै जै जै बोलैं।।
कबहूं बिहरत बाहां जोरी थाह सलित पाइनि टक टोलैं।
कबहूं लाल अगाध चलत लै बाल गहत भुज कंठ निचोलैं।।

---

११२- वल्लभ रसिक- पृ० ३६-३७

परसत अंग हंसी मन नागरि जाने पिय जद्यपि जल औलैं ।।
बार बिहार करत रस बाढ़यौ बरन सकै इहिं सुख की कोलैं ।
दामोदर हित मूक मिठाई इन स्वादक है, ढोलैं ।[113]

सूरदास और नंददास ने रास के अंग रूप में जल-क्रीड़ा का वर्णन किया है । सूरदास के काव्य में गोप-गोपियों के साथ यमुना में राधा-कृष्ण क्रीड़ा करते हैं । क्रीड़ा में सभी एक दूसरे के ऊपर जल-छिड़कते हैं । राधा कृष्ण भी इसी प्रकार केलि करते हैं । गोपियां राधा-कृष्ण को मंडल के बीच में ले कर क्रीड़ा होती है । इस केलि में कृष्ण राधा का आलिंगन करते, उरोजों का मर्दन करते और राधा शरमाती है । इस प्रकार यमुना में विहार कर रास के श्रम को सब लोग दूर करते हैं । होली वर्णन में तीन पदों में कृष्ण और गोपियों की जल-क्रीड़ा का सूर ने उल्लेख किया है ।[114]

४४- हिंडोल-क्रीड़ा

संभोग शृंगार में हिंडोल-क्रीड़ा का भी कृष्ण भक्ति काव्य में यथेष्ट वर्णन है । इस वर्णन में राधा कृष्ण के झूला-झूलने का साधारण और शृंगारिक, दोनों ही प्रकार का वर्णन है ।

लगभग सभी कवियों ने संभोग शृंगार के अन्तर्गत झूला-झूलने का वर्णन किया है । सूर में यह वर्णन "झूलन" शीर्षक के अन्तर्गत मिलता है । राधा कृष्ण से यमुना पुलिन पर झूला-झूलने के लिए कहती हैं । कृष्ण प्रार्थना स्वीकार कर के विश्वकर्मा को हिंडोला रचने का आदेश देते हैं । सोने के स्तभों पर हिंडोला डाला जाता है, पाटे पर रंग-विरंगे नग लगे हैं और ऊपर चांदी का चंदोवा तना है । विभिन्न वस्त्रों से सुसज्जित होकर गोपियां आती हैं । इसके उपरांत हिंडोल-क्रीड़ा प्रारंभ होजाती है । सखियां झुलाती हैं और राधा भयभीत होकर कृष्ण

---

११३- राधा वल्लभ संप्रदाय का निजी संग्रह पृ० ५
११४- सूर- १७७६-१७८५ । देखे नंददास रास पंचाध्यायी नंददास ग्रंथावली पृ० १८०-१८१

के अंक में चली जाती है। सारी प्रकृति आनन्द मनाने लगती है। कृष्ण स्वयं पैंग देते हैं। राधा भयभीत होकर प्रार्थना करती है कि अधिक पैंग न दें। कृष्ण उत्साहित होकर और अधिक झोंके देते हैं।[११५] दंपति की इस शोभा को देख कर करोड़ों कामदेव लज्जित होते हैं।[११६] इन वर्णनों में कहीं भी शृंगार का स्पष्ट वर्णन नहीं है। ऐसे वर्णनों को हिंडोले के सामान्य वर्णनों की कोटि में रक्खा जा सकता है।

उपर्युक्त प्रकार के सामान्य वर्णन वर्षोत्सव के अंग रूप में या अलग से भी सभी कवियों में प्राप्त हैं। दंपति के इस सुख को देख कर सारा संसार प्रसन्न है। कहीं-कहीं इनमें केलि का संकेत भी है।[११७]

हिंडोले के प्रसंग में स्पष्ट संभोग शृंगार का वर्णन भक्त कवि व्यास में प्राप्त है। झूलते समय "जोबन के जोर" से दोनों मत्त हैं। उर से उरोजों का स्पर्श कर, अधरों का वे आनन्द लेते हैं। इसी बीच में वर्षा होने के कारण दोनों की शोभा और भी बढ़ जाती है, वस्त्र, आभूषण और केश दोनों के आलिंगन में उलझ जाते हैं।[११८]

झूला-झूलते समय कृष्ण काम से आतुर होकर राधा की चोली खोलते हैं। नेत्रों द्वारा वर्जित करने पर भी कृष्ण परिरंभण और चुंबन करते हैं तथा बार-बार नहीं नहीं करने पर भी वस्त्रों को खींच कर नीवी खोलने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार सुख सागर में डूबे दोनों सुशोभित होते हैं:-

---

११५- सूर ३४४७-३४५४

११६- सूर ३४५८

११७- कुंभनदास-१०६-११०, गोविंददास १४१-१४३, द्रु-
७५,५५ रसानन्द लीला ११४-११९।

११८- व्यास- ६८७-६९१ तथा देखें ध्रुवदास पृ २५२-(२
युगलशतक ९२,९३।
गदाधर भट्ट- पृ० ५९-पृ० ६४, सूरदास
३३-३४

स्यामा-स्याम बने बन झूलत, मरकत-कनक-हिंडोरै ।
ऋतु बसंत अनुराग फाग सब, खेलत केसर बोरै ।।
बाजत ताल, मृदंग, झांझ, डफ, मुरली मिलै सुर घोरै ।
गावत मोहन की मोहन धुनि, सुनि सब को चित चोरै ।।
झूका जोवन-जोर देत दोउ, कुलकि-पुलकि झकझोरै ।
स्याम काम-बस बोली बोलत, आतुर निधि के भोरै ।
डांड़ी छांड़ि करत परिरंभन, चुंबन देति निहोरै ।
सैननि बरजति पियहिं किसोरी, दै कुच-कोर अकोरै ।
खैंचत पट लंपट नट-नागर, झटकति नीवी-बंधन छोरै ।
नेति-नेति सुनि रहत लाल, निहोरत चिबुक टटोरै ।।
देखि सखिन गुलाल उडायो, निरखत छबि कर जोरै ।
व्यास स्वामिनी राजति स्यामहिं, सुखसागर मैं बोरै ।।

व्यास ६६०

हिंडोले का वर्णन दो ऋतुओं में प्राप्त है । पावस ऋतु तो हिंडोले की स्वाभाविक ऋतु है किंतु होली के अवसर पर भी हिंडोले का आयोजन होता रहा है ।[११९] दोनों ही अवसरों पर राधा के प्रेम का वर्णन, कृष्ण की आतुरता का वर्णन तथा चुंबन, परिरंभन आदि क्रियाओं का उल्लेख है । जहां इनका स्पष्ट उल्लेख नहीं है वहां संकेत द्वारा दोनों के प्रेमाधिक्य का वर्णन है । सूर ने अपने होली के अवसर के हिंडोला वर्णन पर कृष्ण के मथुरा जाने की सूचना दी है यद्यपि अक्रूर का आगमन अभी नहीं हुआ है ।[१२०]

४५- होली:

भारतीय पर्वों में होली ही सबसे अधिक रोचक, रंगीन और कामोत्तेजक है । बसंत ऋतु के मध्य में जब सामान्य किसान वर्ग अपने पके हुए खेतों को देख कर सुख और शांति की सांस लेता

---

११९- सूर ३५३५-३५३९, वल्लभरसिक पृ० २८, कुंभन० ८०, गोविंदस्वामी १४१-१४६ हितहरिवंश-हितचौरासी ५९ आदि ।

१२०- सूर ३५३६

उस समय इस उत्सव का आयोजन होता है । रंग की धार में मर्यादाओं का सीमोल्लंघन अपवाद के स्थान में नियम होगया है और समाज ने उसे एक बड़े अंश तक स्वीकार भी कर लिया है । ऐसे सुखमय उत्सव का वर्णन सभी कवियों ने कुछ-न-कुछ अवश्य किया है । इसमें भी दो प्रकार के वर्णन है । कृष्ण का सखियों और राधा के साथ होली खेलना, परस्पर परिहास तथा राधा और कृष्ण की प्रेम लीलाएं । दूसरे प्रकार में होली के अवसर पर राधाकृष्ण का श्रृंगार और होली लीलाएं ही मुख्य है, सखियां दर्शक तथा सहायक मात्र है ।

वसंत ऋतु के साथ ही होली की तैयारी आरंभ हो जाती है । मृदंग, झांझ और डफ लेकर संगीत का आयोजन होने लगता है । सभी के हाथों में गुलाल रहता है ।[१२१] और फिर एक दिन होली का मुख्य पर्व आ ही जाता है । बालक-वृंद और युवतियां घर से निकल पड़ते हैं । पिचकारियां चलने लगती हैं । धर पकड़ में हार, वस्त्र आदि फट जाते है । आनन्द का सागर उमड़ आता है । सब रस-मग्न हो जाते हैं । कोई

---

१२१- गोविन्द स्वामी १०३- १०४, १११, ११२ आदि

बुरा नहीं मानता है ।[१२२]

वल्लभ रसिक ने होली- धमार के अंतर्गत राधा कृष्ण की केलि का विस्तृत वर्णन किया है । इसमें राधा का लगभग नखशिख वर्णन और राधा कृष्ण की संभोग लीला का स्पष्ट संकेत

---

१२२- जुवति- जूथ- संग फाग खेलत नंद लाल
कुंवर होरि हो, होरि हो, होरि बोलना ।।
गावत नट नाराइन राग मुदित देत चैन
फाग चहुं दिसा जुरि ग्वाल बाल- बृंद टोला ।।

+ + + +

काहू के चिबुक चारु परसि, काहू की बेसरि, काहू की-
खुंभी, काहू के करत कंचुकी के बंद खोलना ।।
काहू के लेत हार तोरि, काहू की गहत भुजा मरोरि,
काहू कों पकरि छाड़ि देत करि झकझोलना ।।
– कुं० ७४ तथा ६९-७९

+ + + +

तथा
होरी कौ है औसर जिनि कोऊ रिस मानै
काहू कौ हार तोरै, काहू की चूरी फोरै,
काहू की खुंभी लै भाजै अरु अचानक
काहू कों पिचकाई नैत्रनि तकि तानै ।।
काहू की नकबेसरि पकरि काहू की चोली,
काहू की बेनी गहै अरु कंठसरी झटकि आनै ।
"कुंभनदास" प्रभु इहि विधि खेलत,
गिरिधर पिय सब रंगु जानै ।। – ७५

है ।[१२३] माधुरी वाणी में होली के और अवसर पर सखियाँ कृष्ण को स्त्री रूप बना कर राधा के पास ले जाती है तथा राधा से कहती हैं कि इन्हें तुमसे मिलने की बहुत उत्कंठा है । अंक भर कर मिल लो । दोनों जब अंक भर कर मिलते हैं तब यह भेद

---

१२३- होरी खेलत है नव बाल छैल छबीले सौं आजु ।
    केस किसोरी गोरी गोरी चंपे की सी माल ।।१

+ + + +

झीनी आँगी अगु कुच झाँई यह मति देत ।
हिय की अँखिया तीय की पिय की छिपि छवि लेत ।। ९

+ + + +

रुकि रुकि रही जु नवल तिय धुकि धुकि पटके माँहि ।
लुकि लुकि देखै लाल को झुकि झुकि झटके बाँह ।। १४

+ + + +

कटि मन भावन पै रही जटि मन भावन फेर ।
दाबन लागी ही रहे घेरी दौबन घेर ।। २१

+ + + +

सघन जघन घन कुचन तन पिचकन रूचि रँग रात ।
परसत परसत अँगनि के तरसत रस सरसात ।। २६

+ + + + -

गहि गहि लाल गुलाल कौं करसौं छौडै बाल ।
कस भींजे लपटे भये कर बिच लाल गुलाल ।। २८

+ + + +

नवला सौंम सनेह की नवला सी लै आइ ।
नवल कपोल कलोल सौं छलसौं जाहि छुवाइ ।। ४३

+ + + +

दरकि दरकि चोली तनी तरकि तरकि गई टूटि ।
सरकि सरकि तनमन मिले ढरकि ढरकि रस लूटि ।। ५५

+ + + +

होरी खेल कहै न क्यों दुहुन मैन सुख दैन ।
वल्लभ रसिक सखीनि के रोम रोम मैं बैन ।। ५९

वल्लभ रसिक तथा पृ० २२

स्पष्ट होता है । कभी इसी प्रकार का परिहास बरसाने की गोपियाँ यशोदा के साथ करती हैं । कृष्ण को गोपी का रूप बना कर यशोदा के पास ले आती हैं और कहती हैं कि कृष्ण के उपयुक्त ही यह वधू हम लोग ले आई हैं । यशोदा प्रसन्न हो कर उसे गोद में बैठाती है तथा उसका मुख चूमती है । उस समय यह रहस्य प्रकट होता है । इसी प्रकार वृषभानु का संदेश गोपियाँ यशोदा के पास लाती हैं और परिहास करती हैं । कभी राधा और कृष्ण को पकड़- पकड़ कर उनका विपरीत शृंगार करती हैं और दोनों की गांठ जोड़ कर प्रसन्न होती हैं ।[१२४]

सूरदास ने बसंत के अंतर्गत होली का वर्णन किया है । इनके वर्णन में उत्साह, फाग तथा उत्कंठा और कुल की लज्जा आदि छोड़ कर होली खेलने का अनेक पदों में वर्णन है, पर कहीं भी अन्य भक्त कवियों की भांति शृंगार का वर्णन नहीं है ।[१२५]

सूर ने राधा तथा उनकी सखियों के कृष्ण से परिहास का विस्तृत वर्णन किया है । ललिता छिप कर कृष्ण को पकड़ लेती है । राधा कृष्ण को देख कर मुस्कराती है । किसी ने मुरली और किसी ने पीतांबर ले लिया । वेणी गूंथ कर तथा आंखों में अंजन आंज कर अनीत करती हैं पर एकाएक कृष्ण छूट कर भाग जाते हैं और वे सब देखती रह जाती हैं । गोपियां कहती हैं कि हम दांव लेंगे पर धूर्त कृष्ण अपने पीतांबर को लेने की ताक में हैं । एक सखा को स्त्री रूप में गोपियों के पास भेजते हैं । वह देख कर उसे अपने पास सुरक्षित रखने को कहती है । गोपियों के देते ही वह भाग कर आ जाता है और कृष्ण को दे देता है ।

गोपियां भी धूर्तता में कृष्ण से कम नहीं हैं । एक गोपी बलराम का रूप बना कर जाती है । कृष्ण अग्रज से मिलने के लिए जैसे ही सांकरी खोर की ओर आते हैं कि वह उन्हें पकड़ लेती है ।

---

१२४- देखें दामोदर स्वामी निजी संग्रह पृ० १०-११
हित चौरासी ५७
हरि व्यास ६५६- ६५९

१२५- सूर ३४६७- ३४९३ आदि

फिर गया, अनेक गोपियाँ आ जाती हैं। सभी नंद तथा यशोदा को सुहावनी गाली देती हैं। वे कृष्ण को राधा के पास ले जाती हैं।

राधा के पास जा कर गोपियों ने कृष्ण का वधू रूप में शृंगार किया है। कोई उनकी बाँह पकड़ने लगती है और कोई ठोढ़ी उठा कर मुख देखती है। कोई अधरों को पकड़ कर कहती है कि वह बोलती क्यों नहीं है। इस प्रकार हास- परिहास करते हुए उन्होंने कृष्ण की राधा से गाँठ जोड़ी है। फिर रंग घोर कर कृष्ण को तर कर दिया है। यह सुन कर नंद यशोदा को भेजते हैं। वे आकर तब कृष्ण को छुड़ाती हैं।[१२६]

गोपियों की इन होली लीला में कृष्ण से अधिक प्रमुख गोपियाँ ही हैं। बार- बार वे कृष्ण को पकड़ लेती हैं। उनकी एक ही इच्छा प्रतीत होती है कि चीर- हरण का बदला कृष्ण को नग्न कर के ले लें।[१२७]

होली के वर्णन में श्रमित होने के कारण जल- क्रीड़ा का उल्लेख सूर ने किया है।[१२८]

होली के दो वर्णन सूर दास में अपने तरह के निराले हैं। गोपियाँ कृष्ण से कहती हैं "होली है, अभी मथुरा मत जाओ। यह पर्व अपने घर पर करो। यह कामदेव का महीना है। इसमें धर्म, धैर्य और आचार रखना संभव नहीं है।"[१२९]

४६- <u>अक्षय तृतीया</u>

वैष्णवों में वर्षोत्सव के अंतर्गत अक्षय तृतीया का भी उल्लेख है। इस पर भी कुछ कवियों ने रचनाएं की हैं। गर्मी के प्रारंभ में इस उत्सव का आयोजन होता है। फलस्वरूप चंदन, गुलाब आदि शीतलता प्रदान करने वाली वस्तुएं और उनकी --

---

१२६- सूर ३४९४- ३४९७
१२७- वही ३५२१, ३५२५, ३५३४
१२८-       ३५२८- ३५३१
१२९-       ३५३९- ३५३३

इसमें आती है । मुख्य रूप से कृष्ण या राधा अथवा दोनों का कुंज में बैठ कर चंदन से शृंगार, पुष्पों से शैय्या निर्माण, खस के पर्दे लगा कर केलि करना आदि ही इसमें आते हैं । गोविंद स्वामी का एक पद इस उत्सव के संबंध का उदाहरणार्थ नीचे दिया जा रहा है -

सीतल उसीर गृह छिरको गुलाब नीर --
तहां बैठे पिय प्यारी केलि करत हैं।
अरगजा अंग लगाइ कपूर जल अंचाए --
फूल के हार आछे हिए दरसत हैं ।।
सीतल झारी बनाइ सीतल सामिग्री धराइ --
सीतल पान मुख बीरा रचत हैं ।।
सीतल सिज्या बिछाइ खस के परदा लगाइ --
गोविंद प्रभु तहां छवि निरखत हैं ।।
- गोविंद स्वामी १६४

४७- रास

कृष्ण की सभी लीलाओं में रास सबसे महत्वपूर्ण है तथा शायद ही कोई ऐसा कवि होगा जिसने इसका वर्णन न किया हो । संयोग और वियोग, मान और अभिसार सभी का रूप इसमें प्राप्त है । कृष्ण की अन्य संयोग लीलाएं तो बाद की कल्पना प्रसूत हैं पर रास की स्वीकृति तो स्वयं भागवतकार ने दी है तथा इसी में ही कृष्ण का ऐश्वर्य स्वरूप प्रस्फुटित हुआ है । इतना ही नहीं, इसको कृष्णावतार का मुख्य कारण तक बना दिया गया है जिसमें भगवान ऋषियों, देवी- देवताओं, तथा भक्तों को उनका परम साध्य प्रदान करते हैं । इस लीला में नृत्य आदि के साथ स्वल्प संभोग का भी उल्लेख है । यों तो नृत्यादि लीलाएं भी संभोग के अंतर्गत ही आती हैं पर सामान्यतः इससे आगे बढ़ कर कवियों ने कंचुकी खोलने के द्वारा संभोग का संकेत किया है ।[१३०] सूर ने भी कुच मर्दन का उल्लेख किया है । किन्तु यथार्थ संभोग का जैसा वर्णन अन्य स्थलों पर उन्होंने

---

१३०- कुंभनदास ३३

किया है वैसा रास में नहीं है ।[१३१] गोविंद स्वामी ने अपने रास वर्णन में आलिंगन का विशेष उल्लेख किया है । नृत्य करते करते राधा अनेक बार कृष्ण के हृदय से लपट- लपट जाती है ।[१३२] नंददास ने तो पूरी की पूरी रास- पंचाध्यायी ही कही है । प्रथम अध्याय में नीवी और कुच स्पर्श का उल्लेख किया है । यह दूसरी बात है कि वहीं पर उन्होंने मनमथ के आगमन की कल्पना भी की है । और उसकी पराजय का उल्लेख किया है ।

" बिलसत बिबिध बिलास, हास नीबी, कुच परसत ।
सरसत प्रेम अनंग, रंग नव घन ज्यों बरसत ।।
तब आयौ वह काम, पंचसर कर है जाके ।
ब्रह्मादिक कौं जीति बढ़ि बढ़्यौ अति मद ताके ।।"
रास पंचाध्यायी पंक्ति १४५-२४८

रास के ही साथ साथ जल विहार के प्रसंग में यद्यपि नंददास ने श्रृंगार का संकेत स्पष्ट किया है ।

हरिव्यास जी ने रास के अनेक वर्णन किए हैं । रास, रास की मलार तथा रास पंचाध्यायी शीर्षक के अंतर्गत उनकी रास संबंधी सभी रचनाएं आ जाती हैं । श्रृंगार, विशेष कर सुरत की और स्पष्ट संकेत रास शीर्षक के अंतर्गत है । रास की मलार में काम- वर्द्धक नृत्य का उल्लेख है । यह रास वर्षा ऋतु में भी होता है । रास पंचाध्यायी में कृष्ण के उपदेश देने पर गोपियां स्पष्ट रूप से काम की याचना करती हैं -

" रुदन करत नदी बड़ी गंभीर । हरि करिया बिनु -
को जौने " पीर ।
कुच- तुंबिन अवलंब दै ।।

+ + + + +

मंद हंसनि उपजायो काम। अधर सुधा दै करि विश्राम ।
बरषि सींच बरहानलै ।।

+ + + + +

---

१३१-सूर १७८५

बिरद तुम्हारौ दीन दयाल ।
कुच पर कर धर, करि प्रतिपाल ।
भुज दंडनि खंडहु बिथा ।।

गोपियों की इस काम याचना पर कृष्ण उनकी आशा पूरी करते हैं:-

कुच परसत पुजई सब साध ।
सुख - सागर मन बढ्यौ अगाध ।
रास रसिक गुन गाइहौं ।। व्यास - रास पंचाध्यायी - ९,१०,१३

शरद के रासोत्सव में यद्यपि व्यास ने संभोग का सूक्ष्म वर्णन नहीं किया है पर स्थान स्थान पर संभोग का स्पष्ट संकेत किया है ।[133] ये " शरद-रासोत्सव " के पद है । हरि राम-व्यास ने इसके अतिरिक्त " श्रृंगार - रस - विहार " शीर्षक के अंतर्गत भी रास के पद कहे हैं । इन " पदों में राधा कृष्ण के यमुना पुलिन पर नृत्य और संभोग का वर्णन है । कृष्ण राधा का सब सुख लूटते हैं-

पखावज ताल रबाब बजाइ ।
सुलप लेत दोऊ सनमुख, मुख मुसकित नैन बलाइ ।।
पद पटकनि, नूपुर -किंकिन -धुनि सुनि ननबेरी जाइ ।।
उरप मान मैंह, तिरप मान लै, सुर- बंधान सुनाइ ।
देसी सरस सुगंध सुकेसी, नाचत पियहिं रिझाइ ।
काम बिबस स्यामहिं तकि स्यामा, रचकि कंठ लपटाइ ।।
गुनसागर की सींवा उमगी, कवि न छबिहिं कहि जाइ ।।
व्यास स्वामिनी को सुख सर्वस, लूटत मोहन राइ ।। व्यास -४७

स्वामी हरिदास,श्रीभट्ट, सूरदास मदनमोहन, गदाधर भट्ट, वल्लभ रसिक माधुरी जी, ध्रुवदास तथा महावाणी कार आदि सभी ने रास का वर्णन किया है । इस रास के अंतर्गत

लगभग सभी ने विवाह कार्य वर्णन किया है । उसी प्रसंग में शृंगार का भी अल्प वर्णन आ गया है । माधुरी वाणी में रास का कारण राधा कृष्ण की परस्पर आनन्द की इच्छा है । परंपरा गत कारण का यहाँ अभाव है -

देखत शोभा हिये में उपजौ परम हुलास ।
यहै मनोरथ मन कियौ, हिल मिल खेले रास ।।
माधुरी वाणी पृ० ४१

इन सभी वर्णनों में उनके कोक-कला पांडित्य का उल्लेख है । वे विविध प्रकार से नृत्य करते हैं । राधा की सखियाँ उनके मिलन की तैयारियाँ करके उनके सौभाग्य को देखकर कृतकृत्य होती हैं ।

यदि रास के संपूर्ण वर्णन को एक विहंगम दृष्टि से देखें तो इसमें संभोग का उतना स्पष्ट वर्णन नहीं है जितने का वहाँ अवकाश है । इसके मूल में शायद भागवत के ऐश्वर्य स्वरूप का अदृश्य प्रभाव है । भक्त और कवि कृष्ण के ऐश्वर्य रूप से अपने को मुक्त न कर सके पर इसका यह अर्थ नहीं है कि संभोग का संकेत भी नहीं है । पूरे वर्ण-न में संभोग की स्पष्ट सरिता प्रवाहित होती रहती है ।[१३४]

४८- दान, फूलशृंगार, ऋतुवर्णन तथा स्वप्न - संयोग -

उपर्युक्त प्रकार के लगभग सभी वर्णन लगभग सभी कवियों ने अवश्य किये हैं किंतु विषय की दृष्टि से उनमें कोई विशेषता नहीं है । प्रेमाधिक्य की स्थिति में किस प्रकार जीवन की

---

१३४- हरिवंश -१०?११,१२,१९,२४,६१,६३,६५,६७१ ।
सेवक - श्री हित वाणी प्रकाश,५
श्रीभट- ९७,९८ । सूरदास मदनमोहन -१०१ । हरि-
गदाधर भट्ट - पृ० ३३-३४
माधुरी वाणी - वंशीवट माधुरी पृ० ४३ वल्लभ रसिक-

प्रत्येक क्रिया शृंगारात्मक रूप धारण कर लेती है और प्रत्येक अवसर उसके उद्दीपन के रूप में सहायक होता है यहा उनके द्वारा प्रकट किया गया है । राधा और कृष्ण के जीवन में उनकी सखियों के सहयोग से जो शृंगार की सरिता बही है उसमें उन्होंने एक भी अवसर अपनी प्रेम क्रियाओं को अधिक से अधिक सुख पूर्ण बनाने से नहीं छोड़ा है ।

(ङ) संभोग का साहित्य - शास्त्रीय- स्वरूप

४९- साहित्य- शास्त्रियों ने संभोग शृंगार की भेद- प्रभेद गणना असंभव बतलाई है । फिर भी विप्रलंभ के विभिन्न रूपों का आधार लेकर उनके अनन्तर संभोग की स्थिति से उसके चार भेद माने गए हैं । पूर्वराग के बाद होने वाला संभोग पूर्वरागान्तर संभोग, मान के बाद होने वाला संभोग मानान्तर संभोग, प्रवास के बाद होने वाला संभोग प्रवासानन्तर संभोग और करूण विप्रलंभ के बाद होने वाला करूणविप्रलंभानन्तर संभोग कहलाता है । इनमें क्रम से रागानन्द की प्रधानता होती जाती है ।

गौड़ीय वैष्णव - साहित्य - शास्त्रियों ने उपुर्युक्त भेदों को भिन्न नामों से स्वीकार करते हुए विशेष महत्व दिया है । उन्होंने पूर्वरागानन्तर संभोग को संक्षिप्त संभोग कहा है । प्रथम मिलन के कारण इसमें लज्जा विशेष होती है, अतएव इसे संक्षिप्त की संज्ञा दी गई है । इस मिलन के अवसर और स्थल बाल-क्रीड़ा, गावी दोहन, गोष्ठ इत्यादि है । मा- नंतर संभोग वैष्णव साहित्यश शास्त्र में संकीर्ण संभोग कहा- है । इसमें मान के कारण उद्भूत दुःख की स्मृति शेष रह -- है । अतः मिलन का आनन्द पूर्ण नहीं हो पाता । इ-- अवसर और स्थान रास-जलक्रीड़ा, कुंज, दान, वंशी चोरी, विहार, हैं । प्रवास के अनन्तर होने वाले संभोग को -- कहते हैं । यह यदि यों ही अचानक होजाए तो अत्यंत -- दायक होता है । यह मिलन स्वप्न या कुरूक्षेत्र में होता है

वैष्णव साहित्य- शास्त्र में संभोग का करूण विप्रलंभानन्तर रूप प्राप्त नहीं है । करूण स्थिति की स्वीकृति न होने के कारण उसकी स्थिति भी सम्भव नहीं है । इसके स्थान पर वैष्णव साहित्य- शास्त्रियों ने " प्रेम वैचित्य " की दशा को स्वीकार कर उसके बाद होने वाले मिलन को सम्पन्न संभोग की संज्ञा दी है । इसमें आनन्द पूर्ण होता है, अतः यह सम्पन्न संभोग कहलाता है । इस मिलन के अवसर सुदूरात् दर्शन, डोल, होली, वसंत, द्यूत-क्रीड़ा, झूलन इत्यादि हैं ।

हिन्दी भक्त कवियों ने सामान्यतः गौड़ीय - वैष्णव साहित्य- शास्त्र का आधार नहीं लिया अतएव उपर्युक्त संभोग रूपों की दृष्टि से उनकी रचनाएं नहीं रची गई है । उन्होंने स्वाभाविक रूप से विप्रलंभ के विविध रूपों का वर्णन किया है । जिनके बीच - बीच में उतने ही स्वाभाविक ढंग से संभोग वर्णन भी आ गया है । अतएव यदि हम चाहे तो उपर्युक्त रूप भक्त कवियों की रचनाओं में प्राप्त अवश्य हो जाएंगे । पर इस ओर उनका झुकाव था यह नहीं कहा जा सकता है । इसके अतिरिक्त इस साहित्य- शास्त्र का ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी और रामाश्रयी शाखा पर कुछ भी प्रभाव पड़ा है । यह बड़ा ही संदेहास्पद है । अतएव इस दृष्टि से इन साहित्यों का अध्ययन विशेष महत्व नहीं रखता ।

उपर्युक्त दृष्टि से हिन्दी - भक्ति - साहित्य में प्राप्त श्रृंगार के रूप परोक्ष रूप में पीछे अनेक स्थलों पर आ चुके हैं । इसलिए अनावश्यक पुनरूक्ति को बचाते हुए यहाँ केवल इन का संक्षिप्त उल्लेख ही किया जाएगा ।

५०- ज्ञानाश्रयी शाखा एवं रामाश्रयी शाखा-

इन शाखाओं में संभोग के उपर्युक्त रूप प्राप्त नहीं है । इसका कारण पूर्वराग, मान, प्रवास का अभाव एवं संभोग के स्पष्ट वर्णन का न होगा ।

५१- प्रेमाश्रयी शाखा-

इस शाखा में मुख्यतः संक्षिप्त और समृद्धमान संभोग

अभाव है इसलिए संकीर्ण संभोग की स्थिति नहीं है । संपन्न संभोग भी इस शाखा में प्राप्त नहीं है क्योंकि प्रेम- वैचित्य का वर्णन इन कवियों ने नहीं किया है ।

संक्षिप्त या पूर्वरागानन्तर संभोग -

सूफी साहित्य में इसी संभोग का विशेष वर्णन है । इसके अंतर्गत न केवल पूर्वराग के बाद होने वाले संभोग ही आते है , बल्कि पूर्वराग की स्थिति के अंतर्गत जो संभोग होते रहते है उनका भी उल्लेख रहता है । इस प्रकार पूर्वराग की स्थिति में और उसके बाद होने वाली सभी संभोग इसके अंतर्गत आएंगे । इसके निम्नलिखित प्रसंग हैः-

(१) पद्मावत -

(क) पद्मावती - रत्नसेन भेंट खंड । रत्नसेन और पद्मावती का पूर्वराग तो पहले ही पुष्ट हो चुका था । यह पूर्वराग विवाह तक है । विवाह के बाद प्रथम मिलन ही से संक्षिप्त संभोग की स्थिति मानी - जाएगी । इसमें पद्मावती- रत्नसेन भेंट का वर्णन - दोनों का परस्पर हास परिहास और प्रथम - समागम के संभोग का वर्णन है ।[१३५]

(ख) षट्ऋतु वर्णन खंड । यह भी उपर्युक्त खंड से संबंधित और उसी के क्रम में है । विवाह और प्रथम समागम के बाद नित्य प्रति ही पद्मावती और रत्नसेन की भेंट होती है । छहो ऋतुओं मे उन्होंने विविध प्रकार से संभोग किया । इसी का वर्णन " षट्ऋतु वर्णन-खंड " मे है । किस प्रकार से छहों ऋतुएं काम की उद्दीपन कारी और संभोग में सुख दायक है इसका विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन इसमें है ।[१३६]

---

१३५- पद्मावत २९१-३३१

१३६- वही ३३२-३४०

(२) चित्रावली-

(क) कौलावती -विवाह खंड [१३७] । सुजान का विवाह - सोहिल राज को पराजित करने के बाद कौलावती से हो जाता है । सोहागरात को सुजान एवं कौलावती की भेंट होती है । सुजान कौलावती से कहता है कि हम तुम सभी रस मानेंगे केवल" प्रेम रस " चित्रावली को पाने के बाद ही होगा ।[१३८] इसके उपरांत दोनों संभोग की सभी क्रियाएं करते हैं, केवल सुरत ही नहीं होता है । इस प्रकार "प्रेमरस" का अर्थ सुरत है और यह संभोग एक प्रकार से अपूर्ण संभोग रहा ।[१३९]

(ख) चित्रावली विवाह खंड ।[१४०] सुजान का यथार्थ प्रेम चित्रावली से था । इसीलिए कौलावती से विवाह कर भी उसने पूर्ण संभोग नहीं किया । अनेक कठिनाइयों के बाद सुजान चित्रावली को प्राप्त करने में समर्थ हुआ । दोनों की विधिवत विवाह हुआ और सोहागरात के दिन भेंट हुई । सुजान और चित्रावली में हास-परिहास हुआ और अंत में संभोग का कवि ने बड़ा ही स्पष्ट वर्णन किया है ।[१४१]

---

१३७ - चित्रावली ४०५-४११

१३८- वही ४०८ एक प्रेम रस होइ तव, जब चित्रावलि पाउ ।'

१३९- वही ४०९ अधर बदन छद उरज नख, उधरि गई पुनि
प्रथम समागम जनु कियो, सिथल भयो सब

१४०- वही ४३१-५३७

१४१- वही ५३६ पुनि मनमथ रति फागु सँवारी, ख
कनक पिचकारी ।।
संग गुलाल दोऊ लै भरे, रोम रोम र
सेद थंभ रोमांच तन, आसु पतन
प्रथम समागम जो कियो, सितल भ

(ग) कौलावती – गवन खंड ।[१४२] इसमें पुनः संभोग का वर्णन हुआ । यह संभोग भिन्न प्रकार का है । यह संभोग पूर्वराग के बाद का नहीं है क्योंकि इसके पूर्व ही दोनों का मिलन हो चुका है । इस रूप में इसे वमुद्धमान या प्रवासानन्तर संभोग के अंतर्गत रखना चाहिए । दूसरी और प्रथम संभोग अपूर्ण होने के कारण एक प्रकार से पूर्वराग की ही स्थिति मानी जा सकती है ।इसदृष्टि से इसे संक्षिप्त संभोग मानसकते है । यथार्थ में इसे भिन्न संभोग की संज्ञा देना अधिक समीचीन न होगा । इस संभोग वर्णन में काम-क्रियाओं औरसंभोग का स्पष्ट उल्लेख है ।[१४३]

(३) <u>मधुमालती –</u>

(क) मधुमालती जागी खंड ।[१४४] इस कथा में पूर्वराग अत्यंत संक्षिप्त है । मनोहर और मालती अप्सराओं द्वारा चित्रसारी में मिलते है । दोनों एक दूसरे को देखकर मोहित और काम पीड़ित हो जाते हैं । मधुमालती – संभोग न करने के लिए कहती है क्योंकि इससे माता-पिता को कलंक लगता है ।[१४५] अनेक प्रकार से दोनों एक दूसरे पर अपना प्रेम प्रकट कर संभोग करते हैं । यह अपूर्ण संभोग है ।

(ख) <u>भाव खंड एवं कुंअर मधुमालती मिले खंड</u> – १४६ इस खंड में पुनः दोनों का प्रेमा के माध्यम से संभोग होता है । इसमें संभोग को भी अपूर्ण संभोग की संज्ञा देनी चाहिए इसमें प्रवास है, एवं विवाह न होने के कारण पूर्वराग

---

१४२– वही ५९१–५९७

१४३– बिहँसि कंत कामिनि कंठ लाई, बिरह दगधि उर लाइ बुझाई ।
मनमथ दाव जांघ पुनि कांपी, रावन बार लंक गहि चांपी ।
दीन्हीं चार नखच्छत छाती, फूट सिधोर सेज भइ राती ।
होइगा अंग भंग नव साता, अति परसेद सिथल भइ गाता ।।

१४४– मधुमालती पृ० ३३–४२

१४५– वही पृ० ३९ कहेसि कुंअर एक कर्म न कीजै, माता पितहिं [illegible]
न दीजै ।।

१४६– वही पृ० ९६–१०० एवं १०१

का भी हुए थे । जैसा कि पूर्वराग के [illegible] निर्धारण में किया गया है कि विवाह के पूर्व पूर्वराग की स्थिति रहती है, उसी के आधार पर ही संक्षिप्त संयोग है [illegible] किया जा रहा है । इस संयोग का वर्णन आलंकारिक है । दोनों अधर से अधर और उर से उर मिला कर ऐसे सोए कि यह समझ नहीं पड़ता कि वे दो हैं या एक ।[१४७]

(ग) <u>ब्याह खंड</u>[१४८]

मनोहर और मधुमालती का विवाहोपरांत संयोग भी संक्षिप्त संयोग के अंतर्गत आएगा । इस संयोग का वर्णन संक्षेप में पर स्पष्ट [illegible] किया गया है ।[१४९]

(घ) <u>पेमा का ब्याह खंड</u>[१५०]

इस खंड में पेमा और ताराचंद के पूर्वराग की पूर्णाहुति हुई है और दोनों का ब्याह होकर मिलन होता है । इस संयोग का वर्णन संक्षिप्त और आलंकारिक है ।[१५१]

---

१४७- अधर अधर उर उर सौं, मेरै रहे मुख सोइ ।
देखि समुझि ना मन परै, दहु हहिं एक कि दोइ ।। वही पृ० १०१

१४८- वही पृ० १३१-१३४

१४९- वही पृ० १३३

१५०- पृ० १४६-१५०
सुत पेम रस अंकम भरेऊ, रतन अबेध बेध जौ परेऊ ।
कंचुकि तरकि तरकि उर फाटी, बौधलिस माँग औ पाटी ।
सुंदर मिलिगा तिलक लिलारा, काजर नैन पीक रतनारा ।
कंठहार गिवहार जे टूटे, दलिमल दलै देह सौं छूटे ।
बहुरि फूटिगौ अंम्रित खानी, भौं सांती जो सालति रानी ।
काम सकति डर जीतिए, कहीं एक न हार ।
तब गै दुऔ सांति भौ, जब मेगन तै छिटका धार ।।

१५१- वही १४७

समृद्धिमान या प्रवासानन्तर संभोग

सूफी साहित्य में समृद्धिमान संभोग कम ही है । इसका कारण यह है कि शुद्ध प्रवास की इस साहित्य में न्यूनता है । इस साहित्य में प्रवास यथेष्ट है पर वह अधिकतर पूर्वरागान्तर्गत है । ऐसे प्रवास के बाद होने वाले संभोग को मिश्र संभोग की संज्ञा दी गई है । पूर्वराग के अंतर्गत होने के कारण इन्हें संक्षिप्त संभोग के निकट ही मानना अधिक समीचीन होगा ।

शुद्ध प्रवासानन्तर या समृद्धिमान संभोग हमें पद्मावत में मिलता है । इसके कई स्थल हैं जिनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है ।

(क) लक्ष्मी-समुद्र खंड [१५२]

इसके अंतर्गत वह घटना आती है जिसमें पद्मावती और रत्नसेन समुद्र में वियुक्त हो जाते हैं । लक्ष्मी पद्मावती की रक्षा करती है और उनके प्रयत्न से दोनों का मिलन होता है । इस संभोग का संक्षिप्त और सांकेतिक वर्णन है । "कमल (पद्मावती) के नेत्र और सूर्य (रत्नसेन) का श्रीमुख दोनों एक दूसरे को देखकर अत्यंत रस-द्रवित हो गए । मालती को देखकर भौंरा विमोहित हो गया । भौंरे को देख कर मालती मन में फूल गई । दोनों ने एक दूसरे का दर्शन आँख भरकर किया । फिर दोनों एक दूसरे के पार्श्व में आगए । वह उसके वशीभूत हो गया और वह उसके वश्य हो गई । कंचन को तपा कर मानों उसे जीवन दान दिया गया । सूर्य उदय हुआ और शीत जाता रहा ।" [१५३]

(ख) चितौर आगमन खंड [१५४]

इस खंड के अंतर्गत रत्नसेन नागमती मिलन समृद्धिमान संभोग का अंश है । प्रवास से लौटकर रत्नसेन नागमती से मिलता है । मान-परिहार के साथ दोनों का संभोग होता है । कवि ने इसका स्वल्प एवं सांकेतिक वर्णन किया है । "राजा ने रानी को कंठ लगा कर मनाया । जो बेल जल गई थी वह सींचने से पुनः पल्लवित हुई ।"[१५५]

---

१५२- पद्मावत, ३९१-४०८

जिस समय रत्नसेन-नागमती संभोग कर रहे थे, उस समय पद्मावती ने [illegible] स्थिति में है । संभोगो-परांत [illegible] रत्नसेन पद्मावती से [illegible] मिले हैं । समृद्धिमान संभोग की स्थिति में शृंगार का अवसर है पर कवि ने उसका वर्णन नहीं किया है । पद्मावती रत्नसेन की आरती देती और [illegible] कहती, पर संभोग का उल्लेख नहीं है ।

(ग) केवल संकेत: पद्मावती मिलन खंड [156]

इस खंड में समृद्धिमान संभोग का स्वल्प संकेत मात्र है । अलाउद्दीन के यहाँ से छूटने पर रात्रि में राजा-रानी के मिलने और क्रीड़ा करने भर का कथन मात्र है । संभोग का विस्तृत वर्णन नहीं है ।[157]

(३) संपन्न अथवा करुण-विप्रलंभानन्तर संभोग

इसकी चर्चा हम पीछे कर आए हैं । सूफी साहित्य में प्रेम वैचित्य का अभाव होने के कारण शुद्ध वैष्णवीय संपन्न संभोग नहीं है ।

५२- रामाश्रयी शाखा-

रामाश्रयी शाखा में पार्वती का तथा सीता के विवाहो-परांत क्रमशः शंकर और राम के साथ संभोग संक्षिप्त संभोग के अंतर्गत आएगा । पार्वती के सती रूप की स्थिति को स्वीकार कर कुछ लोग संभवतः इस संभोग को करुण-विप्रलंभानन्तर या संपन्न संभोग कहना चाहें । किंतु यह उचित नहीं है क्योंकि सती पूर्णतः नवीन पार्वती रूप में शंकर से मिलती हैं ।

लंका विजयोपरांत राम-सीता के मिलन के शृंगार का वर्णन विशेष नहीं है । गीतावली में राज्याभिषेक के बाद उनके तथा सीता के संभोग के स्वल्प संकेत हैं । प्रवासानन्तर यह मिलन होने के कारण इसे समृद्धिमान संभोग माना जाएगा ।

संभोग के अन्य रूप इस साहित्य में उपलब्ध नहीं है ।

---

१५६- पद्मावत ६३८-६४२

१५७- वही ६४१ निसि राजै रानी कंठ लाई ।

५३- कृष्णाश्रयी शाखा

कृष्ण-भक्ति साहित्य में संभोग के चारों शास्त्रीय रूप न्यूनाधिक्य मात्रा में उपलब्ध हैं। इसका कारण कृष्ण की श्रृंगार लीला की विविधता एवं विस्तार है। कृष्ण लीला में पूर्वराग, मान, प्रवास और प्रेम-वैचित्य की अनेकानेक योजनाएं हैं जिनकी परिणति सामान्यतः संभोग में होती है। अपवाद स्वरूप प्रवास है। इसके उपरांत कृष्ण राधा या गोपियों का मिलन कुरुक्षेत्र में होता है पर इसका विशेष विस्तार कवियों ने नहीं किया है। सूरदास ने तो इसका संक्षिप्त संकेत किया भी है, शेष कवियों ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया है। कुछ संप्रदायों में तो प्रवास की योजना ही नहीं है।

कृष्ण साहित्य में करुण विप्रलंभ का अवकाश नहीं है, अतः करुण विप्रलंभानन्तर संभोग की योजना भी नहीं है। संभोग में इस स्थिति को सर्वोत्कृष्ट मानने के कारण इसी कमी की पूर्ति प्रेम वैचित्य की योजना द्वारा की गई है।

कृष्ण-भक्ति के कुछ संप्रदायों में पूर्वराग, मान और प्रवास का स्पष्ट उल्लेख नहीं है। उनमें प्रारंभ से अंत तक अबाध रूप से संयोग ही संयोग की धारा प्रवाहित होती है। इस संयोग को उपर्युक्त शास्त्रानुसार सामान्यतः संक्षिप्त संभोग के अंतर्गत ही रखा जा सकेगा, क्योंकि पूर्वराग का उल्लेख न होते हुए संभोग के पूर्व उसकी स्थिति मानी जा सकती है। इन संप्रदायों में प्रेमवैचित्य का उल्लेख प्राप्त है और इस प्रकार से कहीं कहीं संपन्न संभोग भी दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार से समग्र कृष्ण साहित्य में यद्यपि संभोग के सभी शास्त्रीय रूप प्राप्त हो सकते हैं किंतु यह प्रतीत होता है कि संभोग के पद निर्माण में इनका ध्यान नहीं रखा। यथार्थ में संभोग के इस गौड़ीय-शास्त्रीय रूप से कवि विशेष प्रभावित नहीं दीखते। उन्हें इससे कहीं अधिक संभोग के काव्यशास्त्रीय रूप ने प्रभावित कर रखा है, ऐसा मालूम होता है।

संक्षिप्त संभोग

कृष्ण-भक्ति साहित्य [illegible]

संक्षिप्त संभोग के अंतर्गत आएँगे । यथार्थ में विद्यापति और अष्टछाप के कवियों में मानोपरांत संभोग तथा प्रवासो परांत संभोग के अत्यल्प पदों को छोड़ कर तथा राधावल्लभ, हरिदासी संप्रदायादि में प्रेम-वैचित्य के कुछ पदों को छोड़ कर शेष सभी इसी भेद के अंतर्गत आएँगे । इस प्रकारप्रथम समागम[१५८], गोदोहन[१५९] गारुड़ी लीला [१६०] आदि प्रसंगों को इसके अंतर्गत लिया जाएगा । किशोर-किशोरी की नित्य लीला को यद्यपि शास्त्रीय दृष्टि से इसी के अंतर्गत स्थान देना होगा किंतु उस संभोग में जो निश्चिंतता, अबाधता एवं तन्मयता है वह उसे इस श्रेणी से ऊपर उठा देने वाली है । यथार्थ में राधावल्लभ संप्रदाय तथा हरिदास एवं हरिराम व्यास ऐसे कवियों में प्राप्त नित्य संभोग के पदों को संभोग के उपर्युक्त भेदों से परे ही रखना होगा । यदि हम उसका नामकरण करना ही चाहते हों तो"अखंड संभोग" की संज्ञा ही उसे दी जा सकती है, कोई दूसरी नहीं । उपर्युक्त पदों के अनेकानेक उदाहरण हम पीछे दे आए हैं अतएव उनका विवरण ही देकर संतोष किया जा रहा है। अभिसार के सभी पद भी इसी के अंतर्गत आएँगे । [१६२]

संकीर्ण संभोग

संकीर्ण संभोग विशेषतया विद्यापति और अष्टछाप के कवियों में प्राप्त है । इन्हीं ने मान की योजनाएँ की हैं अन्य संप्रदाय के कवियों ने नहीं । सूरदास तथा अष्टछापी कवियों में इस संभोग की लीलाएँ निम्नलिखित हैं - (क) रास लीला[१६३] (ख) दानलीला [१६४] (ग) नौकाविहर लीला [१६५]

---

१५८- विद्यापति-खगेन्द्रनाथ मिश्र ५७,५९,६५,२८२ आदि,२७७, परमानन्द ३७१ सूर १३००, १३०३, १३०४,१३०५ आदि गोविन्दस्वामी ४१,४३,४५ आदि ध्रुवदास-रस रत्ना. लीला, ब्यालीस लीला पृ० १६७
१५९- सूर १३६७,१३४७,१३५१,१३५२-१३६०
१६०- सूर १३६१-१३७८
१६१- विद्यापति ८९,९०,९२,९४,१२८,३४१,३४२,३४३ आदि परमानन्द ४३७-४७४ ।
१६३- सूर १६५४-१८०१, गोविन्द स्वामी पद ५२-६५, कुंभनदास ३६-४७, परमानन्द २१५-२५०
१६४- सूर २०७८-२३६७, गोविंदस्वामी २४-४७, परमा० नन्द ११-२१

(घ) जल- क्रीड़ा[१६६] और स्नान लीला तथा (ङ) कुंज लीला[१६७] इनमें मानोपरांत होने वाले संभोग के पद आते हैं ।[१६८] इनमें छेड़- छाड़, मान- मानमोचन, हास- परिहास, वेश- परिवर्तन द्वारा छल- कपट, नौका लीला, जल में स्नान- क्रीड़ा आदि हैं । ये पद अधिकतर शृंगारिक हैं । इनमें प्रकृति- वर्णन तथा नखशिख भी यथेष्ट प्राप्त है ।

समृद्धिमान संभोग

प्रवास के बाद होने वाले मिलन को समृद्धिमान संभोग कहते हैं । इसका वर्णन कृष्ण भक्तों ने बहुत ही कम किया है । ब्रज लीला तक ही अपने को सीमित करने वाले संप्रदायों में यह प्राप्त नहीं है । अन्य में भी यह केवल सूरदास में ही उपलब्ध है । इसका कारण संभवतः सूरसागर को भागवत के रूप पर ढालने की अभिलाषा है । इस प्रकार कृष्ण की मथुरा और द्वारका सभी लीलाओं का उल्लेख अनिवार्य हो गया । इसी में कृष्ण का यादवों के साथ कुरुक्षेत्र आना और गोपियों से भेंट करना है । फलस्वरूप इस भेंट के पद अपने आप आ गए । इन पदों में शृंगारिकता कम प्रिय- दर्शन- जनित विह्वलता अधिक है ।[१६९]

समृद्धिमान संभोग का दूसरा रूप स्वप्न संभोग का है । प्रिय की स्मृति के फलस्वरूप वह स्वप्न में क्षण भर को दर्शन दे जाता है । उसी की स्मृति ही सुख की पराकाष्ठा है । कभी कभी स्वप्न में मिलन के पूर्व ही, निद्रा भंग होकर सुख को नष्ट कर जाती है । इस स्वप्न संभोग के भी स्वल्प उदाहरण मिलते हैं ।[१७०]

रसोद्गार रूप में भी यह कहीं- कहीं व्यक्त हुआ है ।[१७१] समग्र रूप में इसकी मात्रा न्यून है ।

---

१६६- सूर १७७६- १७८६, गोविंद स्वामी १६५- १६६
राधावल्लभी निजी संग्रह पृ० ५

१६७- सूर १७५२, १७५३, १७५७, १७६९ आदि परमानंद ७५९ आदि

१६८- परमानंद ४०६, ४०७, ४०९, आदि,
कुंभन [illegible] २४- [illegible] [illegible] ५०५-५१२

१६९ [illegible]

संपन्न संभोग

कृष्ण- साहित्य में संपन्न संभोग के अनेक स्थल है । नायक- नायिका के प्रगाढ़ानुराग को संपन्न संभोग कहते है । यह अनुराग प्रेम- वैचित्य की स्थिति में और भी प्रगाढ़तर हो जाता है, इसलिए वह विशेष सुखद होता है । इससे संबंधित निम्नलिखित लीलाएं है - (क) वसंत लीला[१७२] (ख) होली लीला[१७३] (ग) जल लीला[१७४] (घ) झूलन लीला[१७५] (ङ) निद्रा[१७६] (च) धूर्तता[१७७]। इनमें श्रृंगार, हास- परिहास और आमोद- प्रमोद एवं उनकी पृष्ठ भूमि में राधा- कृष्ण के विलास का वर्णन है । उपर्युक्त लीलाएं अधिकतर सभी संप्रदाओं एवं सभी कवियों में प्राप्त है ।

संपन्न संभोग का यथार्थ विकास इन लीलाओं के अतिरिक्त प्रेम- वैचित्योपरांत संभोग में होता है । मिलन की स्थिति में ही प्रेमाधिक्य के कारण अपने को भूल जाना या विरहानुभूति करना ही प्रेम- वैचित्य है । इस प्रेम वैचित्य का स्वरूप संभ्रम मान में विशेष रूप से माना जा सकता है । इसमें नायिका प्रेमाधिक्य के कारण प्रिय- वक्ष में अपनी छाया देख कर ही उसे पर स्त्री समझ कर मान कर लेती है । इस भ्रम के निराकरण के बाद जो संभोग है वह संपन्न संभोग के अंतर्गत आता है ।

कृष्ण भक्त कवियों में से अनेक ने इस प्रेम वैचित्य स्थिति का वर्णन किया है ।[१७८] ऐसे स्थलों के अनन्तर संभोग

---

१७२- परमानन्द ३८०, ३८१ गोविंदस्वामी १०१,१०२-१०९ कुंभनदास ६५, ६९, ७१, ७२ आदि सूर ३४६१ आदि
१७३- सूर- वही परमानन्द ३३२- ३३५ कुंभन ६५-७९, गोविंद स्वामी ११०-१४०, राधावल्लभ सं० ९
१७४- डोल दामोदर वर- राधावल्लभ का निजी संग्रह पृ० ४ पद १- ३ परमानन्द ९२३- ९३०, कुंभन ८०, गोविंद १४[illegible] १४३
१७५- सूर १४४७- ३४६० परमानंद ७८७- ७९४ कुंभन १०६-११० गोविन्द १९४- २१५
१७६- परमानन्द ६८९, गोविंद ५१५, ५१६, ५२६- ५२८
१७७- सूर - गारुड़ी लीला ३६[illegible] [illegible]८२, २५८४- [illegible]
१[illegible]८- [illegible]

के स्थल भी आए हैं पर यह स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं है कि ये संभोग प्रेम वैचित्त्य के बाद के ही हैं । श्री कृष्ण भक्ति-साहित्य सामान्यतः पद साहित्य है । उनका संकलन क्रमानुसार नहीं है । अतएव यह संभावना है कि शुद्ध संभोग के पदों को संग्रहकर्ता के संकलन के आधार पर संपन्न संभोग मान लिया जाए । ऐसे पद कम ही हैं जिनमें प्रेम वैचित्त्य और संभोग का एक साथ ही वर्णन हो । ऐसे पदों को ही यथार्थ में इस शीर्षक के अंतर्गत रखना चाहिए । नमूने के तौर पर कुछ पद नीचे दिए जा रहे हैं :-

> आजु निकुंज मंजु में खेलत नवल किशोर किशोरी ।
> अति अनुपम अनुराग परस्पर सुनि अभूत भूतल पर थोरी ।।
> विद्रुम फटिक विविध निर्मित घर नव कर्पूर पराग न थोरी
> कोमल किशलय शयन सुपेशल तापर श्याम निवेशित गोरी ।।
> मिथुन हास परिहास परायन पीक कपोल कमल पर झोरी ।
> गौर श्याम भुज कलह मनोहर नीवी-बंधन मोचत डोरी ।।
> हरि उर मुकुर विलोकि अपनपौ विभ्रम विकल मान जुत भोरी
> चिबुक सुचारु प्रलोइ प्रबोधित पिय प्रतिबिंब जनाय निहोरी
> नेति नेति वचनामृत सुनि सुनि ललितादिक देखत दुरि चोरी
> जै श्रीहित हरिवंश करत करधूनन प्रणय कोप मालावलि [179]
> तोरी ।

> राधेहि मिलेहू प्रतीति न आवति ।
> यदपि नाथ विधु वदन विलोकति दरसन को सुख पावति ।
> भरि-भरि लोचन रूप परम निधि उर में आनि दुरावति ।
> विरह विकलमति दृष्टि दुहूँ दिसि सचि सरधा ज्यौं पावति।
> चितवत चकित रहति चित अन्तर नैन निमेस न लावति ।
> सपनौं आहि कि सत्य ईश बुद्धि वितर्क बनावति ।
> कबहुंक करति विचारि कौन हौं हरि केहि यह भावति ।
> सूर प्रेम की बात अटपटी मन तरंग उपजावति ।। [180]

---

१७९- हितचौरासी ७

१८०- सूर ३७४१

बिरह संजोग छिनहि छिन माहीं । जदपि प्रीतनि मैले बाहीं ।
इहि विधि खेलत रूप बिहाने । परम रसिक कबहुँ न अघाने ।।[181] आदि

मधुरतें मधुर अनूप तें अनूप अति, रसनि को रस सब सुखनि को सार री
बिलास को बिलास निज प्रेम की रचन दसा, राजै एक छत दिन विमल
बिहार री ।
छिन छिन त्रिषित चकित रूप माधुरी में, भूले सेई रहै कछु आवै न
बिचार री ।
भ्रमहुँ को बिरह कहत जहाँ डर आवे, ऐसे है रंगीले ध्रुव तन सुकुमार री[182]

ऐसे प्रेम की स्थिति में होने वाला संभोग संपन्न संभोग की कोटि का होगा ।

---

१८१- ध्रुवदास-रहस्य मंजरी, ब्यालीस लीला पृ० १८६-१८९
१८२- वही- हित श्रृंगार लीला ब्यालीस लीला पृ० १२६

२. निष्कर्ष

हिन्दी - भक्ति-काव्य में उपलब्ध संभोग शृंगार के अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्षों पर हम पहुंचते हैं :-

(१) भक्ति - काव्य की ज्ञानाश्रयी और रामाश्रयी शाखा में संभोग शृंगार अत्यल्प हैं। जो कुछ प्राप्त भी है वह सांकेतिक है, स्पष्ट और उच्छृंखल नहीं।

(२) भक्ति-काव्य की प्रेमाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखाओं में संभोग शृंगार का विस्तृत, सूक्ष्म और स्पष्ट उल्लेख है। संभोग के अनेकानेक रूपों के दर्शन इनमें हमें मिल सकते हैं।

(३) प्रेमाश्रयी शाखा में संभोग अपनी पत्नी के साथ होता है। इस प्रकार इसका रूप गार्हस्थिक है।

(४) कृष्णाश्रयी शाखा में राधा-कृष्ण-विवाह की स्थिति बड़े अंशों में संदिग्ध है। यदि इसे स्वीकार भी कर लें तो भी उसमें वर्णित संभोग गार्हस्थिक के स्थान पर उच्छृंखल है।

(५) संभोग के वर्णन में ये दोनों ही शाखाएं बड़े अंश में काम सूत्र से प्रभावित हुई हैं। यथार्थ में संपूर्ण संभोग वर्णन कामशास्त्र पर ही आधारित प्रतीत होता है।

(६) हिन्दी-भक्ति-कवियों ने सामान्यत: संभोग के शास्त्रीय (गौड़ीय) भेदों को नहीं माना है। उनकी रचनाओं में संभोग को गौड़ीय-शास्त्रानुसार रूप देने की चेष्टा कहीं नहीं है, फिर भी अपनी पूर्णता और विविधता के कारण ये सभी शास्त्रीय रूप उसमें न्यूनाधिक रूप में प्राप्त हो जाएंगे।

(७) संभोग के ये शास्त्रीय रूप भी केवल प्रेमाश्रयी और कृष्णाश्रयी शाखा में ही यथेष्ट मात्रा में प्राप्त हैं, अन्य में नहीं।

(८) इन शास्त्रीय रूपों में भी संक्षिप्त संभोग का ही अधिकतर वर्णन है। अन्य रूपों की मात्रा कम है। प्रेमाश्रयी शाखा में संकीर्ण संभोग का विशेष अभाव है। कृष्णाश्रयी शाखा में

समृद्धि मान संभोग कम है ।

(९) संभोग के कुछ ऐसे रूप भी हैं जो उपर्युक्त शास्त्रीय वर्गीकरण के अंतर्गत नहीं आते । उनमें से कुछ मिश्रित हैं तो कुछ रूप बंधन से पूर्णतः स्वतंत्र ।

(१०) कृष्णाश्रयी शाखा में प्रेम वैचित्यौपरांत संपन्न संभोग के उदाहरण मिलते हैं । ये राधावल्लभ संप्रदाय में अधिक हैं ।

(११) संभोग के वर्णन भावात्मक, सांकेतिक अथवा स्पष्ट शृंगारिक आदि अनेक रूपों में उपलब्ध हैं ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संभोग शृंगार सूफी तथा कृष्ण-भक्त- कवियों का प्रिय विषय रहा है । इसका उन्होंने जी खोल कर वर्णन किया है । उन्होंने सामाजिकता के आग्रह की अवहेलना की है और शृंगार के किसी भी अंग या उपांग को नहीं छोड़ा है । इनके वर्णनों में स्थूलता, मांसलता, हृदय की धड़कन और मन का उत्साह है । उनके नायक और उनकी नायिका रति-कला पटु हैं । उनकी क्रियाओं में काम कला की बारीकियां हैं तथा मन को मुग्ध करने की शक्ति भी है । समग्र रूप से भक्ति साहित्य की इन दो शाखाओं का संभोग वर्णन विस्तृत और उत्कृष्ट है ।

## एकादश अध्याय

# हिन्दी भक्ति-काव्य में विप्रलंभ श्रृंगार

## हिन्दी भक्ति-काव्य में विप्रलंभ शृंगार

### भूमिका

हिन्दी भक्ति-काव्य में संभोग शृंगार के साथ ही साथ वियोग शृंगार का भी महत्वपूर्ण स्थान है। यह महत्व वियोग शृंगार को विस्तार और उत्कृष्टता, दोनों ही दृष्टियों से प्राप्त है। यथार्थ में हिन्दी जगत भक्तिकालीन शृंगार के इसी रूप से विशेषतः परिचित है। यह शृंगार विशेष अध्ययन का विषय अनेक रूपों में हो चुका है और इसलिए प्रस्तुत अध्याय में हम बहुत विस्तार में न जाकर उसकी विशेषताओं और प्रवृत्तियों का ही संक्षिप्त अवलोकन करेंगे।

### १- ज्ञानाश्रयी शाखा

ज्ञानाश्रयी शाखा में शृंगार का विप्रलंभ रूप ही महत्वपूर्ण है। इसमें भी विशेष रूप से विरह वेदना का ही चित्रण है। सगुण भक्तों की भांति इस साहित्य में पूर्वराग, मान और प्रवास का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, यद्यपि इनके आभास यत्र-तत्र मिल जाते हैं। ज्ञानाश्रयी शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर में उपलब्ध विप्रलंभ शृंगार के स्वरूप का विवेचन नीचे किया जा रहा है।

### पूर्वराग

संत साहित्य में पूर्वराग का स्पष्ट और विस्तृत वर्णन नहीं है। संत भक्तों का प्रेमी निराकार ईश्वर है, इसलिए उसके प्रत्यक्ष, चित्र या स्वप्न दर्शन का प्रश्न ही नहीं उठता। भक्त का प्रथम परिचय प्रिय या ब्रह्म से गुरु कराता है। उसी के माध्यम से भक्त के हृदय में प्रेम की लौ प्रज्जवलित होती है। संतों की भक्ति में पूर्वराग गुण-श्रवण द्वारा माना जाएगा। कबीर ने गुरु के इस वचनों को तीर की संज्ञा दी है। इन वचनों द्वारा प्रेम की वर्षा होती है, यथा:

> सतगुर लई कमांण करि, बांहण लागा तीर।
> एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतर रह्या सरीर।[1]

---

१- कबीर

तथा पाधा पकड़या प्रेम का, सारी किया सरीर ।
सतगुर दाव बताइया, खैलै दास कबीर ।।[2]

तथा सतगुर हम सूं रीभि करि, एक कह्या प्रसंग ।
बरस्या बादल प्रेम का, भीजि गया सब अंग ।।[3]

इन प्रसंगों के अतिरिक्त पूर्वराग का एक ही अन्य उल्लेख कबीर में मिलता है । इसमें कवि कहता है राम के अनियारे तीर जिसके लगते है वही उसकी पीड़ा को जानता है । उसकी चोट कहीं दिखलाई भी नहीं पड़ती जो जड़ औषधि लगाऊं । अंत में कबीर कहते हैं कि सभी नारियां एक ही रूप में दृष्टिगोचर होती हैं । पता नहीं प्रिय को कौन प्यारी है ? पता नहीं किसके भाग्य में सौभाग्य बदा है ?"

पूर्वराग के उपर्युक्त उद्धरणों को शुद्ध पूर्वराग के अंतर्गत नहीं लिया जा सकता । गुरु द्वारा ब्रह्म के प्रति जो प्रेम उत्पन्न होता है उसमें प्रारंभ से ही शृंगार की स्थिति होती हो, इसकी संभावना कम है । गुरु द्वारा प्रदत्त ब्रह्म का ज्ञान कालान्तर में साधना के विकास के साथ पति-पत्नी रूप में विकसित होने लगता है । यह विकास पूर्वराग, संभोग और विप्रलंभ की सरणियों से होता हुआ नहीं चलता है । साधक या शिष्य के हृदय में आरंभ से ही इस भाव का आगमन पति-पत्नी रूप से हो जाता है । अतएव इसमें पूर्वराग के लिए अवकाश ही नहीं रहता । जिस प्रकार स्वामी और दासी के प्रणय संबंध में पूर्वराग नहीं होता उसी प्रकार इसमें भी नहीं है । जब एक दिन स्वामी-दासी-संबंध पति-पत्नी संबंध में बदल जाता है तो यह पूर्वराग की स्थिति को लांघ कर सीधा संभोग की स्थिति में पहुंच जाता है, वैसी ही स्थिति संतों के शृंगार की भी है । उनका प्रेम-प्रारंभ ही

---

२- कबीर ग्रंथावली-गुरुदेव कौ अंग ३२
३- वही ३३

रूप में होता है जिसमें प्रिय का आगमन भरतार[४] रूप में होता है। इसलिए इसमें पूर्वराग की स्थिति का विकास नहीं है। कहीं-कहीं जो मिलन की तीव्र आकांक्षा की अभिव्यक्ति है वह पूर्वराग नहीं है क्योंकि यह आकांक्षा प्रथम मिलनोपरांत जनित है।[५] एक आध पद में स्थिति का स्पष्ट संकेत न होने के कारण पूर्वराग माना जा सकता है[६] पर उपर्युक्त दिए गए तर्क के आधार पर उसे विरह के अंतर्गत लेना चाहिए।

---

४- दुलहनी गावहु मंगलचार। हम घरि आये हो राजा राम भरतार।। टेक

+ + + +

कहै कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिख एक अबिनासी।। कबीर ग्रंथा पद - १

५- हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव, हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव।। टेक

हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।।
किया स्यंगार मिलन कै ताई, काहे न मिलौ राजा राम गुसांई।।
अब की बेर मिलन जो पाऊँ, कहै कबीर भौ-जलि नहीं आऊँ।।

- वही ११७

तथा

हो बलियां कब दे खौंगा तोहि।
अह निस आतुर दरसन कारनि, ऐसी व्यापै मोहि।। टेक
नैन हमारे तुम्ह कूं चाहै, रती न मानैं हारि।
बिरह अगिन तन अधिक जरावै, ऐसी लेहु बिचारि।।

+ + + +

बहुत दिनन के बिछुरे माधौ, मन नहीं बांधै धीर। आदि।।

- वही ३०५

तथा ३०७ तथा २२४ और २२५

६- मेरे तन मन लागी चोट सठौरी।।
बिसरे ग्यांन बुधि सब नाठी, भई बिकल मति बौरी।। टेक
देह बदेह गलित गुन तीनूं, चलत अचल भइ ठौरी।
इत उत जित कित द्वादस चितवत, यहु भई गुपत ठगौरी।
सौई पै जानै पीर हमारी, जिहि सरीर यहु ब्यौरी।
जन कबीर ठग ठग्यौ है बापुरो, सुनि समानीं त्यौरी।।

- पदावली ३०

कबीर की कुछ साखियों में काम की १० दशाओं में से अनेक दशाएं मिल जाती है । इनका उल्लेख हम विरह के अंतर्गत करेंगे क्योंकि पूर्वराग की स्थिति को अस्वीकार करने के बाद इनका स्थान विरह के अंतर्गत ही है ।

मान

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों में मान का उल्लेख नहीं है । मान की स्थिति संयोग में ही संभव है । प्रिय के निर्गुण होने के कारण इस संभोग और उसके अंतर्गत मान की संभावना नहीं है ।

प्रवास

ज्ञानाश्रयी शाखा में श्रृंगार- अंशों के अंतर्गत विरह की स्थिति स्वाभाविक है । निर्गुण, ज्ञान गम्य ब्रह्म साधना की चरमावस्था में ही प्राप्य हो सकता है । यह स्थिति क्षणभंगुर है । उसके बाद विरह ही विरह है । इस विरह की अभिव्यक्ति प्रिय के दूसरे देश में जाने के रूप में की जा सकती है जिससे यह प्रवास जन्य कहलाएगा, अथवा विरह की वेदना का स्वतंत्र रूप से भी कथन हो सकता है । कबीर में दोनों ही रूप का उल्लेख है । किन्तु प्रवास का स्पष्ट उल्लेख अत्यल्प है । प्रवास का जहां कहीं उल्लेख है भी वह संकेतात्मक है । विरहिणी प्रिय का पंथ देखते देखते थक गई । पथिक को देखते ही दौड़ कर यही पूछती है कि पति कब आएंगे । पति के अन्यत्र होना का यह बड़ा ही स्पष्ट संकेत है ।

विरहीनि ऊभी पंथ सिरि, पंथी बूझै धाइ ।
एक सबद कहि पीव का, कबर मिलैगे आइ ।। [७]

विरह के अन्य उल्लेख भी प्रवास के अंतर्गत ही आएंगे । इन उल्लेखों में विरह की तीव्र पीड़ा एवं काम की अनेक दशाओं की अभिव्यंजना है । यह विरह निर्गुण ब्रह्म के प्रति होते हुए भी साधक के विरहिणी होने के कारण स्वाभाविक एवं श्रृंगार से परिपूर्ण है । इस विरह में कबीर का नारी रूप अत्यंत मुखरित हो उठा है ।

---

७- वही, विरह कौ अंग ५

विरह में हंसना, बोलना एवं चंचलता नष्ट हो गई है। सतगुर द्वारा प्रिय के प्रेम का बाण लगते ही विरह की ऐसी स्थिति आ गई है।[८] विरह की इस स्थिति में न दिन में सुख न रात्रि में सुख है। स्वप्न में भी सुख के दर्शन नहीं होते।[९] "तुमसे मिलने के लिए मन तरसता है। कितने दिनों से बाट जोह रही हूं। तुम्हारे दर्शन के बिना मना को विश्राम नहीं मिलता"[१०]। विरहिणी प्रिय की सामर्थ को ध्यान में रख कर कहती है - "वे दिन कब आएंगे जब तुम मुझसे "अंग लगा" कर मिलोगे। इसी मिलन के लिए ही तो मैंने यह देह धारण की है। हे समर्थ "राम राइ" तुम मेरी अभिलाषा पूरी करो। मेरी निद्रा दूर हो गई। सेज सिंह के समान है जो मुझे खाए जाती है। मेरी यह प्रार्थना सुनो, तन की तपन मिटाओ।[११] इस अभिलाषा के पीछे बड़ी आतुरता छिपी हुई है। वह कहती है, "मेरा राम कब घर आवेगा जिसको देख कर हृदय को सुख मिलेगा। विरहाग्नि ने सारे शरीर को जला दिया है। बिना प्रिय दर्शन के शीतलता कैसे मिलेगी। जिस प्रकार चातक स्वाति नक्षत्र के जल का प्यासा होता है वैसी ही मैं प्रिय दर्शन की व्याकुल दिन रात उदास रहती है"[१२]। विरहणी रात्रि भर रोती रहती है ज्यों "बंबो" का कुंज फूला हो। उसके हृदय में विरहाग्नि का पुंज प्रज्वलित रहता है।[१३] विरह- सर्प शरीर में निवास कर रहा है।[१४] उसका शरीर जर्जर हो गया है।[१५] प्रिय का पंथ निहारते- निहारते आंखों में झांई पड़ गई है, उसका नाम पुकारते- पुकारते जीभ में

---

८- वही गुरुदेव कौ अंग ९

९- वही विरह कौ अंग ४

१०- वही विरह कौ अंग ६

११- वही पद ३०६

१२- वही " ३२५

१३- वही विरह कौ अंग १

१४- वही विरह कौ अंग १८

१५- वही विरह कौ अंग १४

छाला पड़ गया है[१६], उसकी चिन्ता करते- करते शरीर की स्थिति ऐसी हो गई है जैसे काठ में घुन लग गया हो ।[१७] वह कहती है, "न मैं रो पाती हूं न हंस पाती हूं । अन्दर ही अन्दर घुटती जा रही हूं ।[१७] बिना प्रिय को प्राप्त किए हृदय तड़पता रहता है"[१८] । "मेरा शरीर ऐसा कृश हो गया है कि लोग पिंड रोग से गृस्त समझते हैं ।[१९] यह प्रेम की चोट है प्रियतम तुम्हीं ने मुझे दी है । प्रेम बाण के लगने पर ही मैं जान पाई ।[२] अब मैं अपने विरह को तुम्हारे अतिरिक्त किससे कहूं । यह पीड़ा रात- दिन मुझे पीड़ित करती रहती है । तुम्हारे दर्शन बिना मैं कैसे जी सकती हूं ।"[२१] "हे भाई, हरि मेरा प्रिय है मैं उसके बिना जीवित नहीं रह सकती । वह मेरा प्रिय और मैं उसकी पत्नी हूं ।[२२] हे प्रिय, मुझ विरहिणी को या तो दर्शन दो या मृत्यु । आठों पहर की यह जलन सही नहीं जाती ।[२३] मैं विरह की धीरे- धीरे सुलगने वाली लकड़ी हूं । अब जब पूरी ही जल जाऊंगी तभी इससे छुटकारा मिलेगा ।[२४] अब तो मृत्यु निश्चित है । हे प्रिय अब भी मिलो । मरने के बाद मिलने से क्या लाभ होगा ।"[२५]

इस प्रकार कबीर के विरह वर्णन में न केवल विरहिणी की मानसिक एवं शारीरिक दशा का बड़ा ही हृदय ग्राही उल्लेख है बल्कि प्रेम की वह तीव्र व्याकुलता व्यंजित है जिसमें मिलन की आकांक्षा अपने स्वर्णिम रूप में अभिव्यक्त होती है । उपर्युक्त विरह वर्णन को यदि हम चाहें तो काम दशाओं के अंर्तगत

---

१६- वही - विरह कौ अंग २२
१७- " " २८
१८- " " ३४
१९- " - साध साक्षीभूत कौ अंग १०
२०- " - विरह कौ अंग १६
२१- " - पद २८७
२२- " " ११७
२३- " - विरह कौ अंग ३५
२४- " ३७
२५- " ।

सरलता से रख सकते है, किन्तु विरह की तीव्रता की अनुभूति के लिए इसे उपर्युक्त रूप में रखा गया है ।

ज्ञानाश्रयी शाखा में विप्रलंभ का विस्तृत वर्णन नहीं है पर जो कुछ भी है वह अपनी तीव्रता एवं भावना की गहराई में किसी अन्य शाखा के विप्रलंभ से न्यून नहीं है ।

निष्कर्ष

निष्कर्ष रूप में इस के संबंध में निम्नलिखित तथ्य स्पष्ट होते है :-

(१) ज्ञानाश्रयी शाखा में संभोग श्रृंगार की अपेक्षा विप्रलंभ श्रृंगार के लिए अधिक अवकाश है । इसका कारण प्रिय का निर्गुण निराकार होना है जिससे मिलन साधना एवं भावना की गहराई के स्वल्प क्षणों में ही संभव है । अतएव विप्रलंभ ही अधिक स्वाभाविक है ।

(२) इस विप्रलंभ में पूर्वराग को विशेष महत्व नहीं दिया गया है । प्रिय से प्रेम सतगुरु द्वारा होता है पर वह तत्क्षण दांपत्य रूप धारण कर लेता है जिसके कारण पूर्वराग की स्थिति का का स्पष्ट विकास नहीं हो पाता । यह पूर्वराग गुण श्रवण द्वारा उत्पन्न माना जा सकता है ।

(३) मान का इसमें स्थान नहीं है ।

(४) विरह-वर्णन में प्रवास का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, किन्तु उसकी कल्पना सरल और उसके संकेत स्पष्ट है ।

(५) इस विरह-वर्णन में काम की अनेक दशाओं का उल्लेख है । इसमें विरह की तीव्रता और गंभीरता दोनों ही सुंदरतम रूप में व्यक्त हुई है और भावना की दृष्टि से यह उच्च कोटि का है ।

(६) इस विरह के द्वारा आत्मा की परमात्मा से मिलन की आकुलता और उस मिलन के अभाव में आत्मा की पीड़ा और व्याकुलता का सुंदर निर्देश है । इस विरह का स्थूल आधार नहीं है तथा यह साधना की ऊंचाई पर और भावना की गहराई में ही संभव है ।

संयोग का यथेष्ट वर्णन होते हुए भी प्रमुखता विप्रलम्भ की ही है। इसका कारण सूफी दर्शन है। निर्गुण परमात्मा से मिलन इस शरीर से क्षणिक ही हो सकता है और साधक का शेष जीवन उस प्रेम की पीर से भर उठता है। उसी पीर की व्यंजना सूफी साहित्य में व्यक्त हुई है। प्रेम की यह पीर पूर्व-राग और प्रवास-विरह के रूप में मिलती है। अन्य साहित्यों में जहां संयोगोपरान्त मान, प्रवास या अन्य प्रकार के विरह की ही विशेष अभिव्यक्ति हुई है, वहां सूफी साहित्य में विरह की व्यंजना विशेष रूप से पूर्वराग में ही हुई है। जायसी में "नागमती का विरह" प्रवास जन्य है और उसमें तीव्र विरह की अभिव्यक्ति भी है किंतु फिर भी जायसी का इष्ट नागमती का विरह उतना नहीं है जितना की रत्नसेन और पद्मावती का पूर्वराग। यहां तक कि अन्य कवियों में तो बड़े अंश में विरह केवल पूर्वराग में ही प्राप्त है अन्यत्र नहीं। विप्रलम्भ के इस प्राप्त रूपों का अध्ययन ही नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है।

पूर्वराग:-

सूफी-साहित्य में पूर्वराग के दो स्वरूप प्राप्त हैं:-
(क) सफल एवं (ख) असफल पूर्वराग।

सफल पूर्वराग के अंतर्गत वे सभी आकर्षण आएंगे जिनकी परिणति नायक-नायिका के मिलन में होती है। इसके अंतर्गत पद्मावती- रत्नसेन, सुजान- चित्रावली, सुजान- कौलावती, मनोहर-मधुमालती, एवं ताराचंद-प्रेमा आते हैं।

असफल पूर्वराग के अंतर्गत वे सभी आर्कषण आते है जिन्हें प्रेम पात्र को प्राप्त करने में सफलता नहीं मिलती तथा जिनकी रति प्रेम की सुदृढ़ भित्ति पर आधारित नहीं होती है एवं जिनके प्रति पाठक के हृदय में सहानुभूति उत्पन्न नहीं हो पाती। ऐसे पात्रों में पद्मावत में अलाउद्दीन और चित्रावली में सोहिल है। पूर्वराग के अंतर्गत इनकी परिगणना करने का कारण यही है कि उपयुक्त प्रोत्साहन प्राप्त होकर ये अपनी पूर्णता को प्राप्त कर सकते थे तथा कवियों ने इनकी असफलता दिखलाते हुए भी इनका स्थायी भाव रति रखा तथा इन्हें भी उसी विरा

प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से इनका इतना स्वल्प उल्लेख ही यथेष्ट है ।

पूर्वराग का एक अन्य वर्गीकरण रति की एक पक्षता तथा पारस्परिकता के आधार पर भी हो सकता है । इसके अंतर्गत सफल एवं असफल दोनों ही प्रकार के पूर्वराग आ सकते हैं । इनका नामकरण (१) एक पक्षीय पूर्वराग एवं (२) पारस्परिक पूर्वराग हो सकता है ।

(१) एक पक्षीय पूर्वराग

इसके अंतर्गत उन नायक-नायिकाओं का पूर्वराग आएगा जो एक ही तक सीमित रहता है । नायिका के हृदय में नायक को देख कर प्रेम उत्पन्न होता है । उसमें पूर्वराग की दशा प्रकट होती है पर नायक इस सबकी ओर से पूर्णतः उदासीन रहता है । यही नहीं कभी कभी तो नायिका के इस प्रेम से अवगत होने पर भी उसके हृदय में रागोद्भव नहीं होता है, परिस्थितिवश चाहे दोनों का संबंध हो जाए । सफल पूर्वरागों में ऐसा पूर्वराग कौलावती एवं ताराचंद का है । प्रथम में सुजान के हृदय में कौलावती के प्रति कोई आकर्षण नहीं उत्पन्न हुआ और दूसरे में प्रेमा के हृदय में ताराचंद के प्रति, किंतु परिस्थितिवश सुजान और प्रेमा दोनों ही विवाह सूत्र में बंधे और उनके हृदय में श्रृंगार उत्पन्न हुआ । किन्तु पूर्वराग की दृष्टि से इसका उद्भव एक पक्ष में ही सीमित रहा ।

असफल एक पक्षीय पूर्वराग में अलाउद्दीन, सोहिल है । अलाउद्दीन और सोहिल के पूर्वराग में काम की तीव्र अंतःधारा है जिससे प्रेरित होकर दोनों ही अपने इष्ट को पाशविक शक्ति द्वारा प्राप्त करना चाहते हैं ।

(२) पारस्परिक पूर्वराग

इसके अंतर्गत सभी सफल पूर्वराग है । नायक और नायिका दोनों ही परस्पर एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते है । और अंत में उनका संयोग होता है ।

प्रारंभ

पूर्वराग की विविध पद्धतियाँ सूफी-कवियों ने अपनाई है। यथार्थ में जितनी विविध पद्धतियाँ सूफी-साहित्य में पूर्वराग के उत्पन्न होने की मिलती है, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं। इनका उल्लेख नीचे किया जा रहा है:-

(१) गुण-श्रवण-

गुण-श्रवण के द्वारा नायक एवं नायिका के हृदय में प्रेम उत्पन्न होने की विधि का प्रयोग जायसी ने ही पद्मावत में किया है। अन्य कवियों ने इस पद्धति को नहीं अपनाया है। पद्मावत में रत्नसेन हीरामन तोते के मुख से पद्मावती के रूप-सौंदर्य को सुन कर मुग्ध ही नहीं हो जाता है वरन् उसको प्राप्त करने के लिए राज-पाट सब कुछ छोड़ कर चल देता है। उसका यह प्रेम सिंहल-गढ़ में पद्मावती के रूप-दर्शन से ह और भी पुष्ट हो जाता है। इसी प्रकार पद्मावती भी शुक के मुख से रत्नसेन के प्रेम और त्याग को सुन कर उस पर क्षुब्ध हो जाती है और दर्शन देने के लिए शिव-मंदिर में आती है। उसका प्रेम भी दर्शन एवं नायक के त्याग तथा प्रयत्न से पुष्ट होता है अवश्य पर उसका प्रारंभ, गुण-श्रवण, जिसके अंतर्गत रूप-श्रवण भी है, से ही माना जाएगा। अलाउद्दीन और सौम्रिल का असफल पूर्वराग भी इसी के अंतर्गत आएगा।

(२) रूप-दर्शन

पूर्वराग के लिए रूप-दर्शन का प्रयोग उसमान और ... दोनों ने ही किया है और दोनों में ही यह विशेषता है कि रूप-दर्शन द्वारा पूर्वराग की उत्पत्ति नायक अथवा नायि... न होकर उप नायक और उप-नायिका में होती है। ... ने अपने ग्रंथ "चित्रावली" में सुजान के प्रति उप-नायि... में पूर्वरागोदय रूप-दर्शन द्वारा कराया है। चित्... में भटकता और अनेक संकट से बचता हुआ जब सुजान ... में सागर गढ़ पहुँचा तो वहाँ फुलवाड़ी में उसे घूमता देख ...

उसे अपने अधिकार मे कर लिया पर उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न न कर सकी । परिस्थितियों के चक्रानुसार सुजान को कौलावती मिली फिर भी दोनो का संयोग चित्रावली-मिलन तक अपूर्ण ही रहा । इसके विपरीत मंझन में उपनायक ताराचंद मधुमालती की सखी "प्रेमा" को झूले पर झूलते देख कर उसके रूप-दर्शन पर लुब्ध होकर मूर्च्छित हो गया । ताराचंद को प्रेमा को प्राप्त करने में कठिनाई नहीं हुई क्योंकि प्रेमा का पिता तो उसे पहले ही नायक मनोहर को सौंपना चाहता था और आज भी वह मनोहर की प्रसन्नता के लिए उसे उसके मित्र को भी सौंपने को उतना ही उत्सुक है । इस प्रकार से उपर्युक्त विधि का उपयोग उप-नायक-नायिकाओं के लिए ही हुआ है और दोनो ही ग्रंथ में यह एक-पक्षीय पूर्वराग का उदाहरण है ।

(४) इंद्रजाल- इंद्रजाल का उपयोग भी मंझन और उसमान ने ही किया है तथा नायक-नायिका के पूर्वराग में ही यह प्रयुक्त हुआ है । इसके भी दो रूप मिलते हैं: (१) चित्रदर्शन तथा (२) प्रत्यक्ष-दर्शन ।

(क) चित्र दर्शन -"चित्रावली" का नायक शिकार में भटक कर एक देव की मढ़ी में जा फंसा । वह देव अपने एक मित्र के साथ नायक सुजान को भी लेकर रूपनगर में चित्रावली की वर्षगांठ का उत्सव देखने गया । उसने सुजान को चित्रावली की चित्रसारी में सुला दिया और आप उत्सव देखने चला गया । जब रात में कुमार की आंख खुली तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ । वहां उसने राजकुमारी का चित्र देखा और उसपर आसक्त हो गया । वहीं पर रंग आदि सामग्री रखी हुई थी । सुजान ने उनसे वहीं पर एक अपना चित्र बना कर और उसे चित्रावली के चित्र के पास रख कर सो गया । सबेरे देव उसे उठा कर ले आए । जब सुजान जागा तो उसे स्वपन का भ्रम हुआ पर अपने वस्त्रों में रंग आदि लगा देख कर उसे घटना की सत्यता पर विश्वास हुआ और वह राजकुमारी के प्रेम में विह्वल हो गया । चित्रावली ने जब प्रातः चित्रसारी में सुजान का चित्र देखा तो वह भी उस पर आसक्त हो गई । इस प्रकार इंद्रजाल के द्वारा चित्र-दर्शन से दोनों के [illegible] हुआ ।

पूर्वराग का प्रारंभ मंझन ने "मधुमालती" में दिखलाया है । कनेसर नगर के राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर को एक बार अप्सरायें सोते में उठा ले गईं और महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की चित्र सारी में रख आईं । वहाँ जागने पर दोनों मिले और परस्पर मोहित हो गए । दोनों के सो जाने पर अप्सराओं ने पुनः मनोहर को उसके यहाँ पहुँचा दिया । प्रातः उठने पर दोनों को रात की घटना एक मधुर स्वप्न सम लगी पर जब उन्होंने रात्रि में एक दूसरे को दी गई "सहदानी" देखी तो उन्हें उसकी सत्यता पर विश्वास हुआ और दोनों के हृदय में पूर्वराग उत्पन्न हुआ । इन्द्रजाल द्वारा यह प्रेम आगे चल कर प्रगाढ़ प्रेम के रूप में विकसित हुआ । इस प्रकार सूफी- साहित्य में पूर्वराग के प्रारंभ में विविधता यथेष्ट मात्रा में उपलब्ध है जो कि अन्य साहित्यों में प्राप्त नहीं ~~रू~~- है ।

पूर्वराग में प्रथम दर्शन का प्रभाव -

सूफी- साहित्य की एक विशेषता जो कि अन्य साहित्यों में नहीं प्राप्त है, वह है नायक- नायिका के प्रथम दर्शन का प्रभाव । इस प्रभाव का उल्लेख यों तो अनुभावों के अंतर्गत होता है, किन्तु इनकी एक बड़ी विशेषता यह है कि जैसी इनकी एकरूपता सूफी- साहित्य में मिलती है वैसी अन्य साहित्यों में नहीं । इनमें काम की अनेक दशाएँ भी मिलती हैं । इन्हें पूर्वरागान्तर्गत विरह से भिन्न मानना होगा । इनमें मुग्ध होना, काम- ज्वाला से दग्ध होना, कंप, अश्रु, जड़ता, उन्माद, वैवर्ण्य, तथा मूर्च्छा आदि हैं ।

इन प्रभावों का यदि तनिक सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाय तो स्पष्ट होगा कि सामान्यतः नायक पर ना के गुण- कथन, रूप- श्रवण, प्रत्यक्ष- दर्शन आदि का अधिक शीघ्र प्रभाव पड़ता है । वह तत्क्षण उत्कंठित, पीड़ित और मूर्च्छित हो जाता है ।[२६] इसके [illegible]

---

२६- रत्नसेन, मनोहर, अलाउद्दीन

नायिकाओं में इस प्रभाव का उतना उग्र रूप नहीं है । कहीं-कहीं तो अत्यंत धैर्य का प्रदर्शन कवि ने कराया है जैसा कि मधुमालती में जहां राजकुमारी नायक से अनेक प्रश्नादि करती है । इस प्रकार नायक जहां अधिक संवेदनशील है वहां नायिका कम । यद्यपि अपवाद भी मिलते हैं ।[२७]

पूर्वराग का विकास

उपर्युक्त प्रभाव के कारण ही सर्वस्व न्यौछावर की इच्छा नायक- नायिका में जागृत होती है और इष्ट प्राप्ति के लिए प्रयत्न होता है । प्रयत्न से लेकर पूर्वराग के अंत तक के कथांश का अध्ययन "विकास" शीर्षक के अंतर्गत किया जा सकता है । सूफी- साहित्य का यही अंश सबसे महत्वपूर्ण है । साधना की दृष्टि से भी इसी में सूफी धर्म का दार्शनिक रूप प्रकट होता है और विप्रलम्भ की दृष्टि से भी इसी में प्रेम के पीर की व्यंजना है । कथा की दृष्टि से भी यही अंश सबसे गतिशील और रोचक होता है । पद्मावत को छोड़ कर अन्य ग्रंथों में तो कथा के विकास की परिणति नायक- नायिका मिलन में होती है और इसीलिए उनमें जिस विरह की व्यंजना हुई है वह पूर्वराग का ही विरह है । मान और प्रवास विरह का तो अल्प- वर्णन ही हुआ है । इसके संबंध में हम पुनः विप्रलम्भ के प्रसंग में चर्चा करेंगे ।

सूफी कथा के विकास को कई खंडों में बांटा जा सकता है । जैसे,

(क) प्रयत्न - प्रथम परिचय के उपरांत नायक अथवा नायिका परस्पर मिलने का प्रयत्न करते हैं । यह प्रयत्न नायक तथा नायिका के संदर्भ से भिन्न- भिन्न रूप ले लेता है ।

(१) नायक का प्रयत्न - नायक अपने प्रयत्न में सामान्यतः योगी हो जाता है । नायक की मनोस्थित को

---

२७- सुजान, कीलावती के प्रसंग में

अभिव्यक्त करने की यह सर्वोत्तम विधि है । योगी होने में सांसारिक मोह का त्याग, एकाग्रता, अहंकार का नाश आदि अनेक भावनाएं अपने आप व्यंजित हो जाती है । नायक अकेले ही या किसी की सहायता के द्वारा अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने चल देता है । इस कार्य में सारा परिवार तथा अन्य अनेक कठिनाइयां बाधक होती हैं । पर नायक उन पर क्रमशः सफलता प्राप्त करता जाता है । इस प्रयत्न का प्रथम विश्राम नायक-नायिका के दर्शन में होता है ।

असफल नायकों के प्रयत्न में अपनी पाशविक शक्ति का उपयोग है जिसके कारण वे इष्ट तक नहीं पहुंच पाते है ।

(२) नायिका का प्रयत्न - नायिका का नायक की भांति घर- बार छोड़ कर जोगिनी बन कर निकल पड़ना सरल नहीं है पर इसका अर्थ यह नहीं कि वे निश्चेष्ट बैठी रहती है । उपर्युक्त सीमा ही उनके प्रयत्नों को विविध रूपी कर देती है । उनके ये प्रयत्न निम्नलिखित रूपों में मिलते है :-

संदेश वाहक भेजना - प्रेम पीड़ा से अभिभूत होकर प्रिय की खोज में नायिका अपने विश्वस्त भृत्यों को भेजती है । चित्रावली अपने प्रिय का पता लगाने के लिए चार नपुंसक भृत्यों को भेजती है ।

छल - छल का प्रयोग भी प्रिय प्राप्ति के लिए नायिकाओं द्वारा कवियों ने कराया है । इनमें सबसे प्रचलित छल प्रिय को चोरी के अपराध में पकड़ा देना है । प्रिय को किसी बहाने से भोजनादि के लिए बुलवा लेना और उसके भोज- नादि में अपनी कोई बहुमूल्य वस्तु छिपवा कर उसे दिया [illegible] है । चित्रावली में योगी रूप में सुजान पर मुग्ध होने के कौलावती ने यही छल किया था । किन्तु द्रष्टव्य यह है कि इस छल से सफलता शायद ही कभी मिलती है । कौलावती को भी इस छल के फलस्वरूप सफलता नहीं मिली ।

प्रेम निवेदन - प्रेम होने पर स्त्री क्या ~~कहल~~- नहीं कर सकती । यदि नायिका नायक [illegible] छल से अपने अधिकार में कर[illegible] ।

पहुंचाना आवश्यक हो जाता है । कौलावती यह प्रेम- निवेदन कुमुदनी द्वारा बंदी नायक सुजान के पास भेजती है । इस कार्य में असफल होने पर भी वह निराश नहीं होती और स्वयं जा कर उससे प्रेम की भिक्षा मांगती है ।

संदेश तथा पत्र भेजना - अपने प्रेम के निवेदन की यह सरल और प्रचलित पद्धति है । सूफी- साहित्य में इसका भी उपयोग हुआ है । रत्नसेन के पास पद्मावती संदेश द्वारा और सुजान के पास चित्रावली "पाती" द्वारा अपने प्रेम का निवेदन करती है ।

चित्रावली में नायिका का क्रोध भी दिखलाया गया है । यह क्रोध उसके प्रयत्न में बाधक के प्रति होता है । जब कुटीचर चित्रावली की माता से सब बात बता देती है तो वह क्रुद्ध होकर उसका सिर मुड़वा कर, उसे उसका मुख काला करवा दिया और गधे पर बैठाकर नगर भर में घुमवाया तथा देश निकाला दिया ।

इस प्रकार सूफी- साहित्य में पूर्वरागावस्था में दोनों ही पक्ष प्रयत्नशील रहते हैं ।

(ख) प्रथम- दर्शन

इस प्रयत्न का फल होता है नायक- नायिका का प्रथम दर्शन । यह दर्शन मिलन नहीं है, मिलन तुल्य भी नहीं है । यह तो नायक- नायिका का प्रथम सम्पर्क है जो कि उनके प्रेम को और भी उद्दीप्त कर देता है । इस प्रथम दर्शन द्वारा नायिका को नायक के प्रेम की तीव्रता का ज्ञान होता है और वह उसके प्रति और भी अधिक आकर्षित होती है । नायक भी अपने प्रयत्न की सफलता तथा प्रिय- पात्र की निकटता देख कर [illegible] प्राप्त करने के लिए अंतिम त्याग करने को तत्पर हो जाता है । इसके द्वारा उसे भी ज्ञान होता है कि जिस प्रेम से पीड़ित होकर मैं दौड़ा हुआ आया हूं उसकी आग इधर भी लगी है । यह ज्ञान उसे विशेष प्रोत्साहन देता है ।

यह प्रथम दर्शन या कहीं- कहीं प्रथम मिलन किसी [illegible] द्वारा संभव होता है । [illegible] में

मैं करता है। तथा रत्नसेन की ही भाँति उसे भी चित्रावली के प्रेम का ज्ञान होता है। मधुमालती में उसकी सखी प्रयत्न कर दोनों को परस्पर मिलाती है।

इस दर्शन का प्रभाव तत्क्षण मूर्च्छा होना है। दार्शनिक दृष्टि में साधक की अपरिपक्वता की यह द्योतक है। पद्मावती में रत्नसेन भी पद्मिनी को देखते ही मूर्च्छित हो गया। चित्रावली में सुजान तो दर्पण में ही उसे देख कर मूर्च्छित हुआ, किंतु मधुमालती में इस मिलन में मूर्च्छा के साथ- साथ प्रेम का प्रदर्शन और उल्लास प्रकट है। ताराचंद के पूर्वराग में मूर्च्छा का उल्लेख है।

दर्शन तथा मिलन की क्षणिकता के कारण पूर्वराग की स्थिति यहीं समाप्त नहीं हो पाती। मिलन के क्षण में या तो मूर्च्छा रूपी बाधा नायक की कचाई सिद्ध करती है या कोई अन्य कठिनाई उपस्थित हो जाती है। फलस्वरूप नायक की साधना अभी सफल नहीं होती और नायिका को प्राप्त करने के लिए उसे पुनः प्रयत्न करना पड़ता है। इन प्रयत्नों में अनेक बाधाएं आती हैं जिन पर विभिन्न प्रकार से नायक सफलता प्राप्त करता है। इनका वर्गीकरण निम्नलिखित रूप में हो सकता है :

(ग) <u>बाधाएं</u> - युद्धादि की बाधाएं ऐसी हैं जिनका कभी- कभी नायक को सामना करना पड़ता है। पद्मावती में रत्नसेन को गढ़ पर चढ़ाई करनी पड़ी और बंदी होकर शूली पर चढ़ने के लिए तैयार भी रहना पड़ा। देवताओं की कृपा से यह बाधा दूर हुई और रत्नसेन का विवाह पद्मावती से हो सका।

दूसरी बाधा कुटीचरों द्वारा उत्पन्न होती है। चित्रावली में इसका उपयोग हुआ है। इंद्रजाल के द्वारा कुटीचर नायक सुजान को अंधा कर एक पर्वत की गुफा में डाल देता है वहाँ एक अजगर उसे लील लेता है और उसकी विरह ज्वाला से घबड़ाकर उसे फिर उगल भी देता है। फिर एक बनमानुष [illegible] कृपा द्वारा वह दृष्टि लाभ करता है। [illegible]तु मुसीबतों का [illegible] यहीं नहीं हो जाता। एक हाथी [illegible]

से सुजान की रक्षा "पक्षी" करता है जो कि हाथी को ही पकड़ लेता है । इसके उपरांत चित्रावली की नगरी में पहुँचने पर भी वह उससे न मिल सका क्योंकि उसके पथ- प्रदर्शक को कैद कर लिया गया था । विरह से व्याकुल हो कर सुजान पागलों तरह सिर पर धूल डाल कर चित्रावली का नाम लेता हुआ नगर में घूमने लगा । राजा ने उसे खूनी हाथी द्वारा मरवाना चाहा पर वह मर न सका । फिर वह स्वयं सेना लेकर उस पर चढ़ने को हुआ । इसी समय उसके सच्चे स्वरूप का ज्ञान चित्रावली के पिता को हुआ और वह सुजान से चित्रा का विवाह करता है । इस प्रकार से अनेक बाधाओं को पार कर सुजान चित्रावली को पा सका ।

मधुमालती में बाधा का रूप कुछ दूसरा ही है । मधुमालती मां को जब उसके प्रेम का ज्ञान हुआ तो उसने उसे पक्षी होने का शाप दिया । जब पक्षी रूप में मधुमालती उड़ गई तब उसकी मां पछताने लगी । पक्षी रूप में मधुमालती ने मनोहर को खोजने का बहुत प्रयत्न किया पर वह सफल न हो सकी । मनोहर भी योगी वेश में उसके लिए भटक रहा था । फिर ताराचन्द द्वारा पकड़ी जाकर वह अपनी मां के पास आई जहां उसकी मां ने शाप वापस लिया तथा मनोहर की खोज प्रारंभ की । प्रेमा की सहायता से मनोहर का पता चला और दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ । इस प्रकार मनोहर और मधुमालती दोनों को ही संयोग के पूर्व अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा ।

पूर्वराग के अंतर्गत पूर्णमिलन के पूर्व की एक अन्य विशेष बाधा कौलावती को मिलती है । सुजान से विवाह हो जाने पर भी कौलावती को तब तक सोहाग सुख नहीं मिला जब तक कि सुजान को चित्रावली न मिली । सोहाग रात्रि के दिन सुजान ने कौलावती के साथ "एक रस" छोड़ कर और सब रस लिया । बाह्य संसार को तो ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों सुजान ने पूर्णरूपेण सोहाग रात मनाई पर सचमुच कौलावती कुमारी ही रह गई ।[२८] इस प्रकार मिलन हो कर भी उसका

---

२८- चित्रावली - ४०८ तथा ४०९

प्रिय से मिलन नहीं हुआ तथा चित्रावली को प्राप्त करने में सुजान को जितनी भी कठिनाइयां पड़ीं वे सभी कौलावती के प्रेम मार्ग की भी हो गईं । इतना ही नहीं चित्रावली से मिलने पर जो उसके प्रेम में निमग्न सुजान हुआ तो वह भी कौलावती के प्रेम मार्ग की बाधाएं कुछ कम विकट नहीं हैं ।

सूफी- साहित्य के इस प्रकार के अपूर्ण मिलन को पूर्वराग की सीमा नहीं माना जा सकता । यह मिलन उसके अंतर्गत आएगा और इसके कारण उत्पन्न विरह भी प्रवास- विप्रलंभ में न माना जा कर पूर्वरागान्तर्गत विरह में ही माना जाना चाहिए । इसके बाह्य रूप से भ्रमित नहीं होना चाहिए ।

(घ) विरह - इस पूर्वराग के विकास के अंतर्गत अनेक स्थल विरह के आते हैं और उनमें कवियों ने नायक तथा नायिका दोनों के ही विरह का विस्तृत वर्णन किया है । इन वर्णनों में प्रेम की पीर और उसकी महत्ता का बड़े रमणीय ढंग से उल्लेख किया गया है । नायिका अपने प्रेम को गोपन रखना चाहती है और प्रकट होने पर अपना सारा दुखड़ा कह देती है । इसका सबसे सुंदर वर्णन मधुमालती में प्राप्त है । सखी प्रेमा जब मधुमालती से उसके प्रेम के विषय में पूछती है तो वह उसे अनेक बात कह कर कहती है "जैसी बात तू हंसी में कह रही है ऐसी बात तो संसार में कोई नहीं कहता । मैं स्त्री जाति की हूं । उस पर यह ऐसा अपयश है जो कि कुल का नाश करने वाला भी है ।"[२९] किन्तु जब प्रेमा ने उसे मनोहर की "सहदानी" मुंदरी दिखला दी तब उस बेचारी की आंखों में आंसू भर आया । नेत्रों से वह बरबस उमड़ पड़े । वह अपने को रोक न सकी । प्रेमा का गला पकड़ कर वह फफक पड़ी ।[३०] स्त्री स्वभाव की यह अत्यंत सुंदर व्यंजना है । इस प्रकार नारी- विरह की मर्यादा का कवियों ने सदा ध्यान रखा है ।

भक्ति- कालीन सूफी- साहित्य में निम्नलिखित पूर्वरागान्तर्गत विरह के प्रसंग मिलते हैं :-

(१) रत्नसेन में पद्मावती का नख-शिख-वर्णन सुन कर उत्पन्न विरह । पद्० ११९- १२५
(२) पद्मावती में रत्नसेन के योग प्रभाव से उत्पन्न विरह पद्० १६८
(३) पद्मावती- दर्शन की मूर्च्छा से उत्पन्न रत्नसेन का विरह पद्० २०० आदि
(४) पद्मावती को रत्नसेन का विरह- पत्र - पद्० २२३ आदि
(५) रत्नसेन- दर्शन से उत्पन्न पद्मावती का विरह - पद्० २२७
(६) पद्मावती का रत्नसेन को उत्तर और विरह पद्० २३२, २३४ आदि
(७) रत्नसेन के पकड़े जाने पर पद्मावती का विरह प्रेम व्यक्त करना - पद्० २४७, २४८, २४९, २५५ आदि
(८) पकड़े जाने पर रत्नसेन का पद्मावती के प्रति प्रेम का कथन पद्० २४५, २४६
(९) चित्रावली में चित्र- दर्शन- जनित सुजान का विरह चित्रा० ९०
(१०) चित्र देख कर चित्र- दर्शन- जनित चित्रावली का विरह चित्रा० १२३, १२६
(११) चित्र धुल जाने से और भी उद्दीप्त विरह - चित्रा० १३२- १३४
(१२) जोगी (परेवा) से चित्रावली का वृत्तान्त सुन कर सुजान का उद्दीप्त विरह - चित्रा० १६४
(१३) जोगी से चित्रावली का नखशिख सुनकर सुजान का विरह चित्रा० २०१
(१४) चित्रावली का विरह - षट् ऋतु के माध्यम से - चित्रा० २३९- २५१
(१५) कुटीचर द्वारा सुजान के अंधे किए जा कर हटाए जाने पर चित्रावली का विरह- चित्रा० २९६- २९८
(१६) अजगर खंड में सुजान के विरह की तीव्रता - चित्रा० ३०
(१७) दर्शन- जन्य कौलावती का विरह - चित्रा० ३१९ आदि

(१८) कौलावती का प्रेम निवेदन - चित्रा० ३४२, ३८०

(१९) चित्रावली का सुजान को खोजने का प्रयत्न और विरह - चित्रा० ४१७, ४१८ - ४२९ - ४३३

(२०) चित्रावली का "पाती" लिखना तथा बारह मासा - चित्रा० ४३४- ४५९

(२१) कौलावती का सुजान के जाने से उत्पन्न विरह चित्रा० ४७१- ४७४

(२२) सुजान का "परेवा" दूत के न आने पर विरह - चित्रा० ४९०

(२३) कौलावती का संदेश - चित्रा० ५४६ आदि

(२४) मधुमालती का स्वप्न- मिलन जन्य विरह - मधु० पृ० ४३-४४

(२५) मनोहर का मिलन जन्य विरह - मधु० पृ० ४५-६७

(२६) मनोहर का विरह । प्रेमा से कथन - मधु० पृ० ६८-६९, ७४ आदि

(२७) मधुमालती का विरह । प्रेमा से कथन - मधु० पृ० ९२-९३ आदि

(२८) मधुमालती का पक्षी रूप में विरह - मधु० पृ० १०६-१०७ तथा ११०-१११

(२९) मधुमालती का विरह - बारह मासा - मधु० पृ० १२०-१२७

(३०) तारा चंद का विरह - मधु० पृ० १४०- १४५

उपर्युक्त विस्तृत सूची से स्पष्ट है कि सूफी- साहित्य में पूर्वराग के अंतर्गत विरह का विस्तृत वर्णन है । यथार्थ में यदि हम विवाह से ही पूर्व राग की समाप्ति मानें तो समस्त सूफी- साहित्य में नागमती के विरह- वर्णन के अतिरिक्त शेष विरह पूर्वराग के अंतर्गत ही आएगा ।

दूसरी बात जो उपर्युक्त सूची से स्पष्ट है वह यह कि सूफी- साहित्य में विरह दोनों नायक और नायिका का समान मात्रा में है ।

तीसरी बात इस विरह में यह है कि नायक और नायिका दोनों ही विविध प्रकार से प्रिय को प्राप्त करने की चेष्टा में लगे रहते हैं ।

ही सच्चे प्रेम का प्रमाण है ।

पाँचवीं बात नायिका का पत्र द्वारा अपने प्रेम का निवेदन है ।

छठी बात इस विरह की वर्णन-पद्धति से है । अधिकतर इसमें बारहमासा शैली अपनाई गई है, यद्यपि कहीं-कहीं षट्ऋतु के रूप में भी विरह-वर्णन है ।

इस विरह वर्णन में प्रेम की तीव्र पीड़ा तथा काम की लगभग सभी दशाएं प्राप्त है ।

पूर्व-राग की सीमा- उक्त समस्या की ओर संकेत एक दो बार पीछे किया जा चुका है । यथार्थ में सूफी-साहित्य के लिए इस सीमा का निर्धारण आवश्यक है । सामान्यतः मिलन के पूर्व तक की स्थिति पूर्वराग के अंतर्गत आती है । प्रश्न यह है कि किस मिलन को पूरा माना जाय । स्वप्न में मिलन, इन्द्रजाल द्वारा मिलन, सखी के प्रयत्न से क्षणिक मिलन या विवाह होने पर भी संभोग के प्रतिबंध से मुक्त मिलन । क्या इन सभी मिलनों को सच्चा मिलन मान कर उनके बाद की स्थिति को पूर्वराग के अंतर्गत न लिया जाय ? उपर्युक्त में स्वप्न-मिलन कोई मिलन नहीं है और उस पर विचार करने की आवश्यकता नहीं । इन्द्रजाल द्वारा मिलन सच्चा होता है तथा उसमें संभोग की सभी क्रियाएं भी होती है, किंतु अनुभव में स्वप्नवत होने के कारण तथा प्रेम के बीज रूप में होने के कारण इसे भी पूर्वराग की सीमा नहीं मान सकते । यथार्थ में यह तो पूर्वराग का प्रारंभ है, अंत नहीं । सखी, मित्रादि द्वारा अल्पकालीन मिलन जो कि न तो विवाह से पुष्ट है और न ही जिसमें प्रेम-प्राप्ति का दृढ़ आधार है उसे भी पूर्वराग की सीमा नहीं मान सकते । यह भी प्रेम का उद्दीपक और पोषक है । हां यदि यही मिलन स्थायी जाए फिर चाहें विवाह हो या न हो तो इसे पूर्वराग की सीमा अवश्य मान सकते हैं । अंतिम प्रकार का मिलन सबसे विलक्षण है । सांसारिक दृष्टि में प्रेम पात्र की उपलब्धि तथा पूर्वराग की समाप्ति विवाह से हो जाती है । किंतु यदि प्रेम पात्र अपने समर्पण में और प्रिया की स्वीकृति में कुछ कारणों से कुछ न्यून-

भी विवाह की सच्ची स्वीकृति प्रिय-प्रिया के संभोग से ही सिद्ध होती है । यदि यह संभोग कुछ कारणों से टाला गया है तो बाह्य मिलन सच्चा मिलन नहीं है । अभी भी बाधाएं हैं, और इसको सच्चे अर्थों में विवाह मान लेना प्रतियुक्त नहीं होगा । कौलावती का विवाह ऐसा ही है । यथार्थ में इस विवाह में " प्रेम रस " का अभाव है जैसा कि नायक स्वयं कहता है :-

हम तुम मानहिं सबै रस, जहां लहु प्रेम सुभाउ ।
एक प्रेम रस होइ तब, जब चित्रावलि पाउ ।।[31]

सुजान और कौलावती की सोहागरात का वर्णन करते हुए कवि कहता है- अधर लाइ अधर रस लीन्हा, एक रस छाड़ि और सब लीन्हा ।"[32] तथा इस मिलन को वह स्वयं भी प्रथम समागम अथवा सोहागरात नहीं मानता है । इसे तो वह " प्रथम समागम जनु " मानता है और इसलिए इसे पूर्वराग की सीमा मानना उचित नहीं है ।

कवि स्वयं आगे " कौलावती - गवन खंड " में सुजान और कौलावती के समागम के प्रथम समागम होने का संकेत करता है यह संकेत निम्नलिखित है:-

दीन्हीं चार नखच्छत छाती, फूट सिंधोर सेज भई राती ।।[33]

इसलिए इसी स्थल पर ही पूर्वराग की सीमा मानना उचित होगा न कि विवाह के अवसर पर । इस प्रकार निष्कर्ष यह निकला कि पूर्वराग की सीमा विवाह - सच्चे अर्थों में सम्पन्न विवाह तक मानी जानी चाहिए । इस मान्यता के आधार पर सूफी साहित्य में बड़े अंशों में पूर्वरागान्तर्गत विरह का ही वर्णन है, यद्यपि यह विरह बाह्य रूप से प्रवास और करुण-विप्रलंभ सा दिखलाई पड़ सकता है ।

---

३१- चित्रावली ४०८

३२- चित्रावली ४०९

३३- वही ५९७

पूर्वराग की काम दशाएं

सूफी- साहित्य में पूर्वराग के अंतर्गत काम-दशाओं का बहुत अधिक और विविध उल्लेख है । उन सबका विस्तृत उल्लेख न तो इष्ट ही है और न ही उपादेय । अतः उदाहरण स्वरूप कुछ का निर्देश नीचे किया जा रहा है :-

(१) अभिलाषा-

कहु सुगंध धनि कसि निरमरी । भा अलि संग कि अवहि करी ।
औ कहु तहाँ जो पदुमनि लोनी । घर घर सब के होइ जसि -
होनी ।।[३३]

तथा-

हीरामन जौ कही रस बाता । सुनि कै रतन पदारथ राता ।
जस सुरुज देखत होइ ओपा । तस भा बिरह काम दल कोपा ।।[३४]

तथा-

करहु खोज ता कर सखी, जेहिक चित्र यह आहि ।
नाहिं तो मरिहौं बूड़ि मैं, विरह समुद्र अगाह ।। [३५]

चिन्ता- अब कै फनिग भृंगि कै करा । भंवर होउं जेहि कारन जरा ।
फूल फूल फिरि पूछौं जौ पहुंचौं ओहि केत ।
तन नेवछावर कै मिलौं ज्यौं मधुकर जिउ देत ।।[३६]

तथा-

अब न जिऔं वोहि बिनु घरी, अचक गाज कहंवा ते परी
बिना जीव सखि सरीर यह, तिल तिल रह संदेह ।
जीव अति निठुर विछोही, सकै तौ रह किदेह ।।[३७]

---

३३- पद्मावती पद ९४
३४- वही १७९
३५- चित्रावली पृ० ४९ पद १२३
३६- पद्मावत १९५
३७- मधुमालती पृ० ४४

तथा- खोजहु सखी सो जोगना, जो दे गयो मोहि मारि ।
नाहि तौ करिबौ कौंथरी, तन दुकूल मैं फारि ।। [३८]

स्मृति -

भए अंक नल दमावति । नैना मूंद छपी पदुमावति ।
आइ बसंता छपि रहा होइ फूलन्ह के भेस ।
केहि विधि पावौं भंवर होइ कौन, सो गुरु उपदेस ।। [३९]

तथा- चित्रिनि सुरति रहं चख घेरी, सकै न दिष्टि आन मुख हेरी [४०]।

गुण-कथन-

कहा कुंअर सुन पेम की बाता, जब सौं जिउ मधुमालती राता ।
सुना न देखा यहि कलि कोई, जेहि परिचै वोहि देस की होई [४१]

उद्वेग-

विरह दवा अस को रे बुझावा । को प्रीतम सै करै मेरावा ।। [४२]

तथा-

दोउ नैनन जनु समुंद अपारा । उमंड़ि चले राखै को पारा ।
फारै झंगा औ लोटे परा, बंधुन कोऊ हाथ को धरा ।। [४३]

उन्माद-

कबहुं अगर लै निकट जरावै, धूम देखि चखु जल भरि आवै ।
देखै धाइ सेज दिन भीजी, कहै राति हौं बहुत पसीजी ।। [४४]

तथा - कबहुं चाहै अंचल गहा, हाथ न आव अवक मन रहा ।। [४४]

व्याधि-

बदन पिअर और खीन, सरीरा, प्रगट तोहि पेम की पीरा । [४५]

तथा- दहकि सरीर अगिनि जनु आई, जहं जहं भीजै जाई सखाई [४५]

---

३८- चित्रावली पृ०१२४ पद ३२४
३९- पद्मावत - पद २००
४०- चित्रावली पृ० १३४ पद ३४९
४१- मधुमालती पृ० ७४
४२- पदमावत - पृ० १९९
४३- चित्रावली पृ० ३६ पद ९०
४४- चित्रावली पृ० ९३ प० २४२, वही पृ० ३४ प० ८५
४५- मधुमालती पृ० ९१, चित्रा पृ० ८द ९३

जड़ता-

औ चितचेत न सकै सँभारी, मन गुनि गुनि जो पेम पिआरी ।
तथा- नैन लगाय रहेउ मुख बौरा, चित्र चाँद भा कुँअर चकोरा ।।[४६]

मुच्छा-

मुरछि परी जौ दह दिसजोवै । छन छन ऊभि साँस लै रोवै ।[४७]

तथा-

आनन देखि रही खिन रुखरी , पुनि मुरछाइ पुहमि खरि परी[४८]।।

षट्ऋतु और बारह मासा

संयोग और वियोग दोनों में ही प्रकृति उद्दीपन करती है । इसके माध्यम से कवियों ने संयोग का सुख और वियोग का दुख, इन दोनों ही का वर्णन किया है । यह पद्धति षाट्ऋतु और बारह मासा वर्णन की है छहों ऋतुएं किस प्रकार संयुक्त- दंपति को अपार आनन्द औ सुख प्रदान करने वाली होती है तथा साल के बारहो महीने किस प्रकार क्रम से उसके विरह को उद्दीप्त करने वाले होते हैं, इन्हीं का वर्णन बारह मासे में रहता है । सामान्यतः षट्ऋतु वर्णन संयोग में तथा बारहमासा वियोग में प्रयुक्त होता है पर इसके अपवाद भी मिलते है । ये दोनों पद्धतियां लोक जीवन से घनिष्ट रूप में संबंधित हैं । सूफी कवियों ने भी अपने काव्य में दोनों का अपनाया है । बारह मासे का प्रयोग सामान्यतः विरहिणी के विरह को अभिव्यक्त करने के लिए हुआ है । षट्ऋतु मुख्यतः संयोग शृंगार में प्रयुक्त हुआ है । यद्यपि इसके अपवाद भी है ।

पूर्वराग में षट्ऋतु का वर्णन केवल उसमान ने चित्रावली में किया है । प्रिय के विरह में चित्रावली की भूख और नींद समाप्त हो गई । अपने विरह को वह प्रकट भी नहीं कर सकती थी । छिपाये हुए वह उसे हृदय में ही रखती थी जिससे उसका शरीर भीतर ही भीस्तर नष्ट हो रहा था । वस्त्र उसे भार स्वरूप हो गए थे ।

४६- मधुमालती पृ ४४ चित्रावली पृ० ३४ पद ८५
४७- " पृ ४५
४८- चित्रावली पृ० १२२ पृ० ३२९

आभूषणों मे उसकी कोई रूचि नहीं रह गई थी । विरह असह्य हो गया था, दूत अभी तक नहीं आए थे । गुप्त रूप मे रो रो कर उसने छहो ऋतुओं को काट दिया । अपनी सखी से एक बार उसे उन भीषण छः मासों का दुख कहने का अवसर मिलता है ।

बसंत, ग्रीष्म, पावस, शरद, हेमन्त और शिशिर समय - समय पर आकर अबला विरहिणी के जीवन में और भी कसक भर देते है । न तो कोई उसका हितैषी है और न रक्षक । विरह के अथाह समुद्र में वह डूबी जा रही है । अंत में उसके हृदय की अभिलाषा होती है कि मैं अपने शरीर मे होली लगा कर इसे राख कर दूं और पवन के साथ उड़ कर अपने प्रिय को खोजू ?

अब तन होरी लाइ कै, होइ चहौं जर छार ।
चहु दिस मारूत संग होइ, ढूंढ़ौं प्रान अधार ।।[४९]

प्रिय के मार्ग को देखने के लिए बार-बार प्राण बाहर आ आकर झांक जाते है :-

कबहू अधर कबहु हिएं, जानति हौं केहि भाइ ।
अति व्याकुल तेहि कंत मगु, झांकि झांकि जिअजाइ ।।[५०]

बारहमासा -

पूर्वराग के अंतर्गत बारहमासे का प्रयोग मंझन और उसमान दोनों ने ही किया है । मधुमालती अपनी सखी से अपने विरह का निवेदन पत्र से बारहमासे के द्वारा करती है और चित्रावली अपने इस विरह का वर्णन" पाती " मैं लिख कर अपने प्रिय के पास भेज रही है । इस प्रकार बारह मासा होते हुए भी दोनों स्वरूप में अंतर है ।

मधुमालती का बारह मासा सावन के प्रारंभ होकर आषाढ़ में समाप्त होता है । चित्रावली अपने पत्र में अपने

---

४९- चित्रावली पृ० ९४-९६

५०- " " ९६ प० २५०

विरह का वर्णन चैत से प्रारंभ कर फाल्गुन में समाप्त करती है । दोनों ही विरहिणियाँ अत्यंत मार्मिक रूप में प्रति मास किस प्रकार उनका विरह अधिकाधिक बढ़ता जाता है और किस प्रकार प्रत्येक मास के प्रारंभ की आशा प्रिय के न आने के कारण निराशा में बदलजाती है, इसी का वर्णन है । दोनों ही बारहमासे, सरस, सरल, हृदयद्रावक और प्रेम की पीर को व्यंजित करने वाले तथा नागमती के बारहमासे के समकक्ष है । बारह मासा में सर्वत्र प्रिय-मिलन की उत्कट कामना तथा सर्वस्व समर्पण करने की उत्कृष्ट भावना सर्वत्र मिलेगी । मधुमालती अपनी सखी से कुछ उपाय करने को कहती है [५१] और चित्रावली अपने प्रिय को ही अपनी विषम परिस्थिति बतलाती है [५२] तथा अपनी रक्षा की याचना करती है ।

इस प्रकार सूफी साहित्य में विविध रूपों में अत्यन्त विस्तार से पूर्वराग प्राप्त है ।

मान-

सूफी साहित्य में मान के प्रसंग बिलकुल ही नहीं मिलते हैं । इस साहित्य में जहाँ संभोग श्रृंगार का वर्णन कवियों ने किया है वहाँ कम से कम प्रणय मान का प्रसंग तो वे ला ही सकते थे, फिर भी उन्होंने इसे बचाया है । जहाँ कहीं ईर्ष्या मान चित्रित करने का अवकाश था, उसे भी इन्होंने छोड़ दिया । इसका कारण कथा-शिल्प, नायिकाओं की एक-दूसरे के प्रति सहानुभूति और संभोग में क्रीड़ा-पक्ष का विस्तार न करने की चाह ही हो सकता है ।

प्रवास-

सूफीसाहित्य में पूर्वराग के अंतर्गत ही प्रवास की भी योजना है । पूर्ण मिलन के पूर्व ही नायक को अनेक बाधाओं के कारण परदेश जाना पड़ जाता है, जिसके कारण प्रवास विप्रलंभ की सृष्टि होती है । इसको पूर्वराग के अंतर्गत ही रखना समीचीन

---

५१- मधुमालती पृ० १२० -१२३

५२- चित्रावली पृ० १६९-१७३

होगा क्योंकि यह मिलन के पूर्व की ही स्थिति है ।

जायसी ने अपने ग्रन्थ पद्मावत में प्रवास का विशेष वर्णन किया है पर वह पूर्वराग के अंतर्गत नहीं आता है । उसे शुद्ध प्रवाह के अंतर्गत ग्रहण करना होगा ।

पूर्वराग के अंतर्गत प्रवास की योजना उसमान की "चित्रावली" मंझन "मधुमालती " तथा आलम की रचना " माधवानल" काम कंदला" में है ।

" चित्रावली" में पूर्वरागान्तर्गत प्रवास की स्थिति उस समय से प्रारंभ होती है जब योगी के वेश में सुजान प्रथम बार स्पष्ट रूप से चित्रावली से शिव मंदिर में मिलता है और फिर कुटीचर के छल से अन्धा होता हुआ भटकता है । इसके उपरांत का उसका विरहउपर्युक्त के अन्तर्गत आएगा ।

"मधुमालती " में उपर्युक्त प्रकार का प्रवास मधुमालती की माता रूपमंजरी के क्रोध से माना जा सकता है । जब रूपमंजरी क्रुद्ध होकर मधुमालती को पक्षी होने का शाप देती है, उसी समय से पूर्वरागान्तर्गत प्रवास प्रारंभ हो जाता है ।

प्रवास की स्थिति मे विरह के स्वरूप का वर्णन पूर्वराग के अंतर्गत किया जा चुका है अतः इसके पिष्टपेषण की आवश्यकता नहीं है।

विरह-

पूर्व राग के अतिरिक्त विरह का वर्णन केवल जायसी ने किया है । यह वर्णन दो स्थलों पर हुआ है :-

(१) नागमती का विरह वर्णन

(२) विदा के बाद समुद्र में पद्मावती और रत्सैन को वियोग के वाद का विरह ।

नागमती का विरह प्रवास - जन्य है और हिन्दी साहित्य की वह अमूल्य निधि है । उसकी श्रेष्ठता और विशेषता पर बहुत कुछ लिखा जा चुका है तथा और अधिक लिखने की आवश्यक नहीं है ।

पद्मावती - रत्नसेन का वियोग उपर्युक्त से भिन्न है । प्रकृति तथा राक्षस की धूर्तता से दोनों का वियोग जहाज़ टूटने के कारण हुआ है । पद्मावती को लक्ष्मी ने बचा लिया और वहाँ अपने को अकेला पाकर वह विरहाग्नि में दग्ध होने लगी । इस विरह का जायसी ने विशेष वर्णन किया है । पद्मावती लक्ष्मी के यहाँ होश में आने पर रोने लगी । उसे लगा कि जैसे वह वृक्ष से टूट कर गिरी हुई पत्ती हो ।[५३] उसके (रत्नसेन) के वियोग में वह पुनः मूर्च्छित हो गई । उसके नेत्र से रक्त के आँसू बहने लगे । वह क्षण - क्षण होश मे आती और बेसुध होती । उस पर पागल पन छाने लगा । और वह प्रिय वियोग में मरने को तैयार हो गई ।[५४] उसे अपना प्रिय हृदय-दर्पण दिखलाई पड़ने लगा । पर फिर भी वह अत्यन्त दूर है ।[५५] वह सती होने के लिए तैयार हो गई । वह मरना चाहती पर उसे कोई मरने नहीं देता ।[५६] लक्ष्मी के समझाने पर भी वह भोजन नहीं करती, उसे नींद नहीं आती । उसकी दशा अशोक विटप के नीचे सीता कि सी होगई । वह नागिन से डँसी सा अनुभव करती है। वह एकदम सूख गई थी । उसकी दशा चातक सी थी ।[५७] पद्मावती की यह दशा देख कर लक्ष्मी ने उसे रत्नसेन से मिलाया ।

उधर दूसरी ओर पद्मिनी को खोकर रत्नसेन भी विरह में व्याकुल था । वह धाड़ मार मार कर रोने लगा ।[५८] मिलने के लिए वह व्याकुल हो गया । वह पद्मिनी को पाने के लिए अग्नि में पड़ने को, मेरु पर्वत से युद्ध करने को, आकाश और पाताल को छान डालने को तैयार होगया पर उसे अपनी प्रिया का समाचार तो मिले । उसे प्रिया का संदेश देने वाला कोई हनुमान न मिला । वह एकदम असहाय सा अनुभव कर रहा था । वह ईश्वर

---

५३- पद्मावत -३९९

५४- " ४००

५५-" ४०१

५६- " ४०२

५७- " ११४

५८- "

को याद करता है और पद्मावती का नाम लेकर मर जाना चाहता है ।[५९] उसी समय समुद्र ब्राह्मण वेश में उसकी रक्षा करता है । और लक्ष्मी उसकी खोज में पहुँचती है । लक्ष्मी पद्मिनी रूप में उसकी परीक्षा लेती है पर राजा धोखे मे नहीं पड़ता । उसे अपनी रानी की शारीरिक गंध नहीं मिलती । उसके सत्यभाव को देखकर लक्ष्मी रत्नसेन की पद्मावती से भेंट कराती है और दोनों का विरह समाप्त होता है ।[६०]

इस प्रकार जायसी में विप्रलम्भ की योजना हुई है जिसमें काम की सब नहीं तो अनेक दशाओं का वर्णन हुआ है ।

## निष्कर्ष-

सूफी-साहित्य में प्राप्त विप्रलंभ श्रृंगार के संबंध में उपर्युक्त अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं:-

(१) इस साहित्य में श्रृंगार के संयोग और वियोग दोनों ही पक्षों का वर्णन है, किंतु मात्रा में विप्रलंभ ही प्रमुख है ।

(२) विप्रलंभ में भी इस साहित्य में पूर्वराग की प्रधानता है ।

(३) पूर्वराग की स्थिति, इस साहित्य में नायक-नायिका के विवाह के पूर्वतक माननी चाहिए, क्योंकि कवियों ने उसी स्थिति के मिलन को यथार्थ मिलन माना है । विवाह का अर्थ सफल संभोग-संपन्न विवाह है । विवाह के पूर्व नायक- नायिकाओं का क्षणिक मिलन पूर्वराग के अंतर्गत ही आएगा । यह प्रेम के बीज का पोषक है जिसके फलस्वरूप ही प्रेम में ऐसी तीव्रता आती है कि पूर्वराग का विरह संभव हो सकता है ।

(४) इस साहित्य मे पूर्वराग के प्रारंभ की लगभग सभी मान्य विधियां मिलती हैं । प्रथम आकर्षण के इतने विविध कारण अन्य साहित्य मे नहीं मिलते हैं ।

(५) इस पूर्वराग के वर्णन में कवियो ने "बारहमासा "और "षट्ऋतु" दोनों ही की पद्धतियां अपनाई है ।

(६) पूर्वराग के अंतर्गत ही "प्रवास"विप्रलंभ की योजना की गई है ।

(७) इस साहित्य में मान का अभाव है ।

(८) "प्रवास"विप्रलम्भ का इस साहित्य में सच्चे रूप में उल्लेख केवल "नागमती" के विरह " में ही है ।इसमे बारहमासा पद्धति अपनायी गई है ।

इस प्रकार यह साहित्य विप्रलम्भ श्रृंगार में अत्यन्त समृद्ध है, तथा इसमें पूर्वराग की अपनी अनोखी योजना है ।

---

५९- पद्मावत ४०५-४०९

६०- वही ४०९-४१२ और ४१[illegible]

## 1- रामाश्रयी शाखा

रामाश्रयी शाखा के अंतर्गत तुलसी और केशवदास ही दो प्रमुख कवि आलोच्य काल के अंतर्गत आते हैं। केशव के भी समस्त ग्रन्थों को भक्ति-काव्य के अंतर्गत नहीं लिया जा सकता। केवल 'रामचन्द्रिका' ही इस अध्ययन के भीतर आती है।

### विरह का अल्प वर्णन :-

रामाश्रयी शाखा का अधिकतर साहित्य प्रबंधात्मक है और उसमें वियोग- वर्णन के विस्तार का विशेष अवकाश है। किंतु कुछ तो जगज्जननी के शृंगार की अनौचित्यता, कुछ कथा-प्रवाह की की आग्रहता तथा कुछ कर्तव्य- परायणता की महत्ता- प्रदर्शन आदि के कारण इस शाखा में विरह का विशेष वर्णन नहीं हुआ है।

### विरह का स्वरूप

पूर्वराग, मान और प्रवास विरह में से इस शाखा में मान का तो पूर्ण अभाव है। राम और माता जानकी के उस जीवन का चित्रण ही कवियों ने नहीं किया है जहां मान और मान-मोचन के दृश्य उपस्थित होते हैं। पूर्वराग का वर्णन अवश्य हुआ है पर वह भी स्वल्प है। कथा में ही प्रवास - यदि हम इसे प्रवास कहना चाहें तो -- का अंग निहित है। इसलिए प्रवास जन्य विरह का वर्णन इस काव्य में है। यथार्थ में यह प्रवास तो नहीं है। इसके लिए 'विछोह' जन्य विरह संज्ञा अधिक उपयुक्त होगी। इस विरह का ही अल्पविस्तार कवियों ने किया है। इस प्रकार से इस शाखा के विरह-वर्णन में विविधता की न्यूनता तथा वर्णन की अल्पता स्पष्ट है।

### पूर्वराग -

गोस्वामी तुलसी के ग्रंथों में पूर्वराग के पाँच प्रसंग हैं जिनमें स्त्री का आकर्षण पुरुष के प्रति या पुरुष का आकर्षण स्त्री के प्रति या दोनों का परस्पर आकर्षण वर्णित है। ये प्रसंग निम्नलिखित हैं :-

(३) राम-सीता-प्रसंग

(४) राम-लक्ष्मण- शूर्पणखा प्रसंग

(५) रावण-सीता -प्रसंग

सफलता या पूर्वराग की परिपक्वता की दृष्टि से दोही प्रसंग ऐसे हैं जिनमें सफलता मिली है। शिव-पार्वती तथा राम-सीता का प्रेम ही सफल और पूर्ण है। राम-लक्ष्मण और शूर्पणखा-प्रसंग तथा रावण -सीता प्रसंग में से प्रथम में शूर्पणखा का आकर्षण राम और बाद में लक्ष्मण के प्रति काम-भाव से प्रेरित था। इसके अन्दर प्रेम की वह गंभीरता नहीं थी जो इसको परिपक्व प्रेम में करवा सकती। फलस्वरूप यह पूर्वराग प्रेमी की उपेक्षा से क्रोध में परिणत हो गया। द्वितीय प्रसंग में पूर्वराग की स्थिति नगण्य सी है रावण का सीता के प्रति आकर्षण मूलतः प्रतिशोध-भावना से हुआ था जिसमें बाद में रूपाकर्षण का पुट भी मिला पर यह विशेष स्पष्ट नहीं है। रावण ने कभी अपने प्रेम का निवेदन नहीं किया। उसने सदा अपनी शक्ति और वैभव का प्रदर्शन ही किया। अतः इस प्रसंग को सच्चे रूप में पूर्वराग के अंतर्गत नहीं ले सकते हैं।

## पूर्वरागोदय -

'मानस' में पूर्वराग का उदय निम्नलिखित प्रकार से हुआ है :-

(क) **प्रत्यक्ष दर्शन द्वारा -**

(१) नारद का राजा शीलनिधि की कन्या के प्रति-

'देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी।[६१]

(२) राम का सीता के प्रति -

असि कहि फिरि चितए तेहि ओरा। सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।।[६२]

(३) शूर्पणखा का राम-लक्ष्मण के प्रति -

पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि विकल भइ जुगल कुमारा।।[६३]

---

६१ मानस - बा० १३१।१ देखो गीतावली भी पद ७५

६२ वही २३०।३

(ख) गुण-श्रवण द्वारा -

गुण-श्रवण के अंतर्गत मानस में प्रेम की उत्पत्ति के पार्वती और जानकी के प्रसंग हैं। दोनों में दृष्टव्य यह है कि यह गुण-श्रवण जन्म-जन्मान्तर की प्रीति का उत्प्रेरक है। इसे अन्य कोई नहीं जान सकता। इसके दो रूप है - (१) नारद द्वारा शिव का कथन- उमा के हृदय में अपने पति के लक्षणों का वर्णन सुन कर प्रीति उत्पन्न होती है। वे मन में प्रसन्न होती है। ऋषि की बात की सत्यता में विश्वास करती है और अपने प्रेम को छिपा लेती हैं। इस प्रकार यहां सच्चे अर्थों में गुणश्रवण नहीं है वरन् पति स्वरूप का संकेत है जो कि पूर्वजन्म की प्रीति को जागृत करता है -

सुनि मुनि गिरा सत्य जियँ जानी। दुख दंपतिहि उमा हरषानी
+ + +
होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो वचनु हृदय धरि राखा।
उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू।।
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछंग बैठि पुनि जाई।।[६४]

(२) सखियों द्वारा राम का रूप-श्रवण कर सीता के हृदय में भी राम के रूप को सुन कर प्रारंभ में सामान्य उत्कंठा हुई और "दरसन लागि लोचन अकुलाने लगे"। अपनी सखियों को आगे कर वे चलीं। उनकी पुरातन प्रीति को कोई देख न सका। नारद के वचनों की स्मृति से उनके हृदय में प्रीति उत्पन्न हो गई -

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत।।[६५]

यह पूर्वराग राम के दर्शन से पुष्ट होता है। सीता नेत्र मूंद कर राम के ध्यान में मग्न हो जाती है :-

---

६४ मानस - बाल ६८।१,६

६५ वही २२६

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहचाने ।।
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूं परिहरी निमेषें।।
अधिक सनेहं देह भै भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ।
लोचन मग रामहि उर आनी । दीन्हें पलक कपाट सयानी ।।[६६]

इस प्रकार स्पष्ट है कि केवल राम सीता का पूर्वराग ही परि- पारस्परिक है शेष का एकपक्षीय।

पूर्वराग की सीमा -

यदि शूर्पणखा और रावण के प्रसंगों को हम छोड़ दें तो शेष पूर्वराग की सीमा निम्न प्रकार की होगी ।

(१) शंभु - पार्वती प्रसंग में - नारद -वचन से विवाह तक ।

(२) नारद-शीलनिधि-पुत्री प्रसंग में- कन्या दर्शन से मोह भंग तक तक ।

(३) राम-सीता प्रसंग में - प्रथम दर्शन से विवाह तक ।

इस प्रकार से दोनों सच्चे पूर्वरागों का पर्यवसान स्वाभाविक विवाह में होता है तथा मोह- जनित पूर्वराग उस मोह के भंग होनेपर स्वयं ही नष्ट हो जाता है ।

पूर्वराग में प्रिय- प्राप्ति के उपाय -

पूर्वराग की स्थिति में प्रेम उत्पन्न होने पर भी हमें नायक-नायिका की अपने प्रेम-पात्र को प्राप्त करने की चेष्टा तथा विधियों में विविधता दृष्टिगोचर होती है । नारद पात्री के अनुकूल अपने को सुन्दर बनाने के लिए विष्णु से उनके रूप की मांग करते हैं तो दूसरी ओर पार्वती अपनी कठोर तपस्या से चराचर को विचलित कर शिव को विवाह करने के लिए बाध्य करती हैं । एक ओर शूर्पणखा इन्द्रजाल का सहारा ले परमसुन्दरी बन अपने वाग्जाल और वैभव-कथन के द्वारा राम-लक्ष्मण को आकर्षित करना चाहती है और असफल होने पर भंयकर रूप धारण कर बदला लेना चाहती है तो दूसरी ओर रावण ने सीता को अपने कृपाण का ही भय निरंतर दिखाता रहता है । तीसरी ओर सीता का प्रेम है जो पिता की प्रतिज्ञा से भयभीत होकर गौरी कृपा के द्वारा अपनी मनोकामना की पूर्ति चाहता है ।

---

६६ वही २३२। २-४

इस प्रकार सीता के पूर्वानुराग के अतिरिक्त शेष सभी में इष्ट की प्राप्ति की स्पष्ट सक्रियता लक्ष होती है । अत: इसके दो रूप किए जा सकते हैं -

(१) सक्रिय प्रयत्न- पार्वती, नारद, शूर्पणखा और रावण ।

(२) निष्क्रिय प्रयत्न - सीता ।

तथा पात्रों में भी इसी के अनुरूप वर्गीकरण हो सकता है -

(१) सक्रिय पात्र - पार्वती, नारद, शूर्पणखा, रावण और सीता

(२) निष्क्रिय पात्र - शिव, शीलनिधि कन्या, राम और लक्ष्मण ।

इस साहित्य में सक्रिय और निष्क्रिय दोनों पक्षों में सफलता मिलती है ।

## पूर्वराग की दशाएं

पूर्वराग की काम जन्य दस दशाओं का वर्णन भी तुलसी दास में कुछ अंश में प्राप्त है । यथार्थ में केवल पार्वती की तपस्या में ही उनमें से अनेकको दिखलाया जा सकता है । किंतु यह ध्यान रखना है कि गोस्वामी जी का उद्देश्य कोई विरह काव्य लिखना नहीं था । अतएव उन्होंने इनका विस्तृत उल्लेख नहीं किया है । साथ ही उन्होंने कहीं भी पूर्वराग की स्थिति में उन्माद, जड़ता आदि दशाओं का भी वर्णन नहीं किया है क्योंकि ये उनकी पूर्वराग की उत्साह वर्धक स्थिति की मान्यता के प्रतिकूल है । नीचे कुछ दशाओं के उदाहरण दिए जा रहे हैं :-

**अभिलाषा -**

मोर मनोरथु जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही कें ।।[६७]

**चिंता**

जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे विधि-मिलइ कवन विधि बाला ।[६८]

**स्मृति**

महादेव अवगुन भवन विस्नु सकल गुन धाम ।
जेहि कर मनु रम जाहि सन तेहि तेही सन काम ।।[६९]

---

६७ वही बा० २३६ ।३
६८ वही १३१ । ४
६९ वही ८०

गुण कथन -

हृदय सराहत सीय लोनाई । गुर समीप गवने दोउ भाई ।।[७०]

जड़ता -

थके नयन रघुपति छवि देखें । पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ।।[७१]

राम को रूपु निहारति जानकी कंकन के नग की परिछाहीं
यातें सबै सुधि-भूलि गई कर टेकि रही पल टारत नाहीं ।।[७२]

उपर्युक्त काम दशाओं के अतिरिक्त आचार्यों द्वारा वर्णित पूर्वराग की अन्य दशाएं नयनानुराग, चित्रासक्ति, संकल्प आदि भी थोड़े बहुत रूप में तुलसी साहित्य में प्राप्त हो जाएंगे ।

केशव ने 'रामचंद्रिका' में पूर्वराग के प्रसंग को पूरा का पूरा छोड़ दिया है ।

मान

रामाश्रयी शाखा में विरह के 'मान' स्वरूप का पूर्णतः अभाव है ।

विरह

रामाश्रयी शाखा में यथार्थ 'प्रवास' विरह का अभाव है । राम और सीता दोनों ही बन गए थे इसलिए उनके प्रेम में प्रवास जन्य विरह हो ही नहीं सकता । लक्ष्मण और उर्मिला की स्थिति में इस विरह का वर्णन हो सकता है पर इस शाखा के कवियों ने इसका वर्णन नहीं किया है । राम और सीता का जो विछोह है वह प्रवास नहीं है । सीता को रावण राम की अनुपस्थिति में में हर ले गया है । राम अपनी कुटी में लौटने पर उसे सूना पाते हैं और विरह-दुख में निमग्न हो जाते हैं । अपने भाई लक्ष्मण के साथ वे सीता को खोजने निकलते हैं और इस समय उनके विरह

---

७० वही २३७ ।१

७१ ,, २३२। ३३

७२ कवितावली -बा० १७

का दारुण और हृदयद्रावक वर्णन है। उधर हरण होते ही सीता राम को रक्षा के लिए पुकारती हैं। अपनी निर्बुद्धिता पर तथा असहायावस्था पर आक्षेप करती हुई वे लंका में राम के ध्यान में निमग्न रहती है। रावण-वध के उपरांत सीता-राम के मिलन तक इस विरह की स्थिति है। इस विरह को प्रवास-विरह न कह कर विछोह-विरह ही कहना अधिक उपयुक्त होगा।

इस विरह की इस विशेषता की ओर भी ध्यान रखना है कि इसमें नायक कहीं अन्य देश में नहीं जाता है। नायक के स्थान पर नायिका ही दूसरे देश में ले जाई जाती है जिससे कि यह उत्पन्न होता है।

विरह का स्वरूप

इस विरह का स्वरूप हृदयंगम करने के लिए हमको निम्नलिखित खंडों में विभाजित कर के देखना चाहिए :-

(१) सीता का हरण होने पर विलाप
(२) राम का आश्रम को सूना पाने पर विलाप
(३) राम का वन में विलाप
(४) सीता से हनुमान द्वारा राम विरह- कथन
(५) सीता का विरह- स्वरूप
(६) राम से हनुमान द्वारा सीता- विरह-कथन

(१) सीता का हरण होने पर विलाप

सीता का यह विलाप अत्यंत संक्षिप्त है। इसमें हृदय की विरह जन्य वेदना की अभिव्यक्ति के स्थान पर रक्षा के लिए पति और देवर की पुकार है। साथ ही साथ अपनी हठ धर्मी पर सीता को पश्चाताप भी है। अपने कटु वचनों और रेखा का उलंघन करने के लिए वे क्षमा-प्रार्थी हैं।[७३] यह विलाप एक आर्त, परवश पड़ी हुई अबला का है।

---

७३ कहे कटु वचन, रेख नाँघी मैं, तात छमा सो कीजै। गीतावली-अरण्य ७ । रामचन्द्रिका १२।२

(२) आश्रम को सूना देख कर राम का विलाप

राम के हृदय में लक्ष्मण के आजाने के कारण पहले से ही चिन्ता उत्पन्न हो गई । इसी कारण आश्रय को जानकी हीन देखकर वे अत्यंत व्याकुल होकर रोने लगे । उन्हें सारा समाज और ही तरह का जान पड़ने लगा ।[७४] उनके आगमन पर सीता किस प्रकार उनका स्वागत सत्कार करती थीं, इस सबको याद कर वे रोने लगे । इस विलाप और तीव्र विक्षिप्तावस्था में भी लक्ष्मण के साहचर्य और अपनी कर्तव्य- परायणता के कारण राम तरकस कस कर तथा धनुष लेकर अनुज सहित पत्नी को खोजने चले ।[७५] सीता की खोज में ही राम के विरह का यथार्थ रूप प्रकट होता है । उन्हें जड़चेतन की पहिचान भूल गई । वे खग, मृग, मधुकर, खंजन, शुक, कपोत, पिक आदि सीता के अंगों के सभी उपमानों से अपनी प्रिया का पता पूछते हैं । उन्हें प्रकृति के उपमेय, जो जानकी की अनुपस्थिति में अपने उपमेयत्व को पुन: प्राप्त कर सके, अत्यंत प्रसन्न प्रतीत होते हैं । प्रिया को पुकारते हुए वे कहते हैं कि तुम प्रकट क्यों नहीं होती । इस प्रकार अत्यंत कामी की भांति राम चन्द्र जी विलाप करते हैं । इस विलाप में काम की दशाएं अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन आदि भी बड़े अंश में मिलती हैं ।[७६]

३ राम का वन में विलाप

वन में राम के विलाप तथा विरह का वर्णन गोस्वामी जी तथा केशव दोनों ने ही कुछ अधिक विस्तार से तथा विविध रूप से किया है । वन में विचरण करते हुए राम का प्रकृति से निकट संपर्क रहा है । वियोग में वह प्रकृति कैसी दुखद है इसी का विशेष वर्णन है यदि हम इस वर्णन का विश्लेषण करें तो हमे इसके निम्नलिखित रूप मिलते हैं -

---

७४ वही अरण्य ६ रामचन्द्रिका १२।२६

७५ वही ,, ११

७६ मानस - अरण्य ३०।४-८

(क) दुखदायी प्रकृति -

विरह में प्रकृति दुख दायी है । उसे देख कर किसका मन-डोला मन चुमित नहीं होता है । सभी खग, मृग, वृन्द-वृन्दि वृक्षादि नारि समेत हैं । राम सोचते हैं, नारि विहीन केवल मैं हूं । वे मेरी निन्दा करते हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि काम चतुरंगिणी सेना लेकर सभी को चुनौती देता फिर रहा है । ऐसे समय कौन धैर्य धारण कर सकता है । इससे बचाव तो नारी के द्वारा ही हो सकता है[७७] इस समय सूर्य के समान चन्द्रमा संतप्त करने लगा है । मलय पवन वज्र सा लगता है , दिशाएं आग सी जलती है, विलेपादि अंग को जलाते हैं और रात्रि कालरात्रि सी प्रतीत होती है ।[७८] पंपासर भी दुखदाई है ।[७९] बादलों की गर्जना डराती है ।[८०]

(ख) व्यंग्य करने वाली प्रकृति -

दुख में प्रकृति न केवल दुख देने वाली ही लगती है पर कभी-कभी व्यंग करती सी भी प्रतीत होती है । धनुष बाण लिए विरह में व्याकुल राम को देख कर मृग- मृगी भयभीत होकर वन में भाग नहीं जाते । राम सोचते हैं कि मृगी ही भागने को उद्यत मृगों को यह कह कर रोक देती है कि ये तो कंचन- मृग खोजने आए हैं । तुम आनन्द करो । इस तरह उन्हें प्रकृति चिढ़ाती सी प्रतीत होती है ।[८१]

(ग) सहायक प्रकृति -

विरह में राम चक्रवाक-युग्म से सीता का पता बताने की प्रार्थना करते हैं । वे कहते हैं तुम सीता के कुच-युग्मों की बराबरी नहीं कर सके इस बात को भूल कर मेरी सहायता करो क्योंकि मैं चन्द्रमा के स्थान पर तुम्हें सीता के चन्द्रमुख का दर्शन

---

७७ मानस - अरण्य अरण्य ३६ -३८-६

७८ रामचंद्रिका १२।४२

७९ वही १२।५० तथा

८० मानस - किष्कि० १४।१ तथा रामचंद्रिका १३।१६ आदि ।

८१ रामचंद्रिका-१२ मानस- अरण्य ३७।३

करने देता था । कभी केवड़े से अपनी प्रिया का पता पूछते हैं क्योंकि चंपा, अशोक, केतकी और जाति वृक्ष नीच हैं तथा दुखियों की सहायता करना नहीं जानते ।[८२]

(घ) सुखदायक प्रकृति -

कभी-कभी विरह में भी प्रकृति सुखदायक हो जाती है । कलहंस, कलानिधि, खंजन, कंजा आदि को देख कर राम जीवन धारण कर सके क्योंकि ये सीता की गति मुख, नेत्र और पैरों के समान हैं । इस प्रकार यह प्रकृति कुछ सुखदायी है ।[८३] पर कराल वर्षा उसे भी छीन लेती है ।

पट-नूपुर- दर्शन -

इस प्रकार प्रकृति को देख कर राम विविध प्रकार से विलाप करते हैं । इस विलाप और विरह में तीव्रता उस स्थान पर पुन: आ जाती है जब राम को सीता के वस्त्राभूषणादि सुग्रीव भेंट करते हैं । प्रिय की वस्तु देख कर प्रेम का बांध पुन: उमड़ पड़ता है :- वे वस्तुएं उन्हें प्राण के समान लगती हैं ।[८४] उसे देख उनके हृदय में अनेक स्मृतियां जागृत हो जाती है ।[८५] वे उसे हृदय से लगा लेते हैं ।[८६] उनके अन्दर अनेक अनुभाव प्रकट होते हैं । सीता की बात कहने में संकोच तो होता है पर हृदय में प्रेम उमड़ा चला जाता है । प्रिय की वस्तुओं को देख कर राम की ऐसी दशा हो जाती है ।[८७]

---

८२ रामचंद्रिका १२ ।३६-४१

८३ रामचंद्रिका १३।२२

८४ ,, १२।६१

८५ ,, १२।६२

८६ मानस किष्कि० ५।३

८७ गीतावली - किष्कि० १।१-२

वर्षा ऋतु में तो सभी कार्य बंद रहे । उसके बाद शरद ऋतु भी आ गई पर सीता की सुधि न पाने से राम व्याकुल हैं वे कहते हैं कि किसी प्रकार से एक बार सुधि मिल जाती तो पल भर में काल को जीत कर भी मैं उसे ले आऊं । इसी समय सीता -खोज की क्रिया में जो शिथिलता आ गई थी उसे पुनः गतिमान करने की प्रेरणा राम में आई । [८८]

(४) हनुमान का सीता से राम- विरह-कथन

हनुमान अशोक वाटिका में सीता से राम के विरह का वर्णन करते हैं । गोस्वामी जी ने यह वर्णन अल्प किया है । केशव ने भी विरह का वर्णन अधिक नहीं किया पर सीता को राम के सांत्वना के संदेश बहुत दिलाए ।

सीता के पूछने पर कि क्या राम कभी हमारी याद करते हैं , उन्होंने निष्ठुरता क्यों धारण कर ली है । हनुमान राम का विरह तथा उनका संदेश सीता को सुनाते हैं ।

हनुमान कहते हैं, कि राम का प्रेम आपके प्रेम से दूना है । उनके विरह को कहना कठिन है । उनके लिए सभी कुछ विपरीत हो गया है । सभी सुखदायक वस्तुएं दुख देने लगी हैं । नवतरु के किसलय कृशानु सम हो गए हैं । काल के समान रात्रि हैं और चंद्रमा सूर्य के समान दुखदायी हो गया है । मलयें कमल-वन भालों के समान लगते हैं और वर्षा का जल ऐसा प्रतीत होता है मानों खौलता तेल ही गिर रहा हो । [८९] मन- विरह से व्याकुल होकर वे सिंह की तरह अब गुफाओं में बसने लगे । केसर की क्यारियां देख कर उन्हें भय होता है । चंद्रमा देख कर चकवा की भांति व्याकुल हो जाते हैं और मोरों का शब्द सुन कर सर्प की तरह कंदराओं में छिप जाते हैं । काले बादलों की गर्जना उन्हें ज्वाला की भांति जलाती है ।

---

८८ मानस -किष्कि० १८।१-८

८९ - मानस सुं० १४

भ्रमर की भांति चंचल चित्त हो कर वे वनों में घूमते हैं और रात्रि में योगियों की भांति जागते हैं तथा शाक की भांति तुम्हारा नाम रहते हैं।[60] उनकी पीड़ा को उनके सिवाय और कोई कह नहीं सकता। उनका शरीर तो दीपक की बत्ती की तरह प्रेम वश रात दिन जला करता है :

अपनी दसा कहाँ दीप दसी सी देह।
जरत जाति बासर निसा केशव संहित सनेह।।[61]

राम अपने प्रेम के संबंध में कहते हैं मेरे प्रेम को जानने वाला मेरा मन है, पर वह तुम्हारे पास रहता है। इतने से ही मेरे प्रेम को जान लो।[62] विरह में वे कितने कृष्टा हो गए है, इसकी ओर संकेत केशव ने मुद्रिका प्रसंग में बड़े मार्मिक ढंग से किया है। जब जानकी राम की मुद्रिका से अनेक प्रश्न करती हैं और वह चुप रहती है तो उसके चुप रहने का कारण बतलाते हुए हनुमान कहते हैं कि आपके विरह में राम इतने कृश हो गए हैं कि यह कंकण की भांति उनकी कलाई में चली जाती है। इसी से अब यह मुद्रिका आप से नहीं बोलती। ~~३२(क)~~ ६३

इस प्रकार राम के विरह का वर्णन हनुमान सीता जी से करते हैं। इसके साथ ही साथ वे राम की ओर से सीता को धैर्य रखाते है।[64] कहीं कहीं तो राम ने स्वयं धैर्य का संदेश ही भेजा है -

सुगति,सुकेशि, सुनैनि सुनि, सुमुखि, सुदंति सुश्रोनि।
दरसावेगो वेगिही तुमको सरसिज योनि।।[65]

राम के उपर्युक्त विरही स्वरूप में पुरुषोचित गांभीर्य तथा धैर्य स्पष्ट रूप से व्यंजित हैं। अपने दूत और संदेश के द्वारा वे अपनी प्रिया को सांत्वना देते हैं। तथा अपनी प्रयत्नशीलता और सक्रियता का संकेत भी देते हैं। यह विरह वर्णन अतिउपयुक्त है।

---

६० रामचंद्रिका - १३।८८
६१ वही - १३।६३
६२ मानस- १५।३
६३ (क) रामचंद्रिका १३।८७
६४ वही - १४।६-७,१५।१-२
६५ रामचंद्रिका १३।६४

(५) सीता का विरह-स्वरूप -

अशोक वाटिका में दिन में राक्षसियों से घिरी और रात्रि को अकेली विरहिणी सीता का स्वरूप अत्यंत हृदय द्रावक है। विरह में वे अत्यंत कृश हो गई हैं।[९६] उनके शरीर में धूल लगी है। उनकी अब एक ही वेणी है। वे दिन रात भगवान का नाम रटती रहती हैं।[९७] उनके नेत्रों से निरंतर आंसू बहते रहते हैं। विरह की ज्वाला तथा रावण के अत्याचार से पीड़ित हो कर वे मृत्यु की आकांक्षा करती हैं।[९८] उन्माद में वे तारों से, अशोक के वृक्ष से अग्नि की आकांक्षा करती हैं जिससे कि वे अपने शरीर को जला सकें।[९९]

प्रिय-वस्तु- दर्शन- प्रभाव -

अपने प्रिय की मुद्रिका देख कर सीता की दशा उन्मादिनी की सी हो जाती है। अनेक प्रकार के विचार उनके हृदय में उत्पन्न होते हैं। वे उसी मुद्रिका से अनेक प्रकार के प्रश्न करने लगती हैं।[१००] राम को छोड़ कर आई मुद्रिका को देख कर सीता एक अत्यंत मार्मिक बात ह कहती हैं। वे कहती हैं कि राज्य लक्ष्मी ने अयोध्या में वन में मैंने और मार्ग में तूने राम को छोड़ कर अनीत की। हे मुद्रिके तीन-तीन बार स्त्रियों की अनीत देख कर बतलाओ अब कौन उन पर विश्वास करेगा :-

श्री पुर में, वन मध्य हौं तू मग करी अनीति।
कहि मुंदरी अब तियन की, को करिहै परतीति ।। १०१

विरह में प्रिय की वस्तु तथा उसे लाने वाला भी अत्यंत प्रिय और विरह- व्यथा को कुछ कम करने वाला होता है। राम की मुद्रिका और संदेश लाने वाले हनुमान जी भी सीता को अत्यत प्रिय और विरह समुद्र में डूबती हुई जानकी के लिए जल्यान

---

९६ मानस- सुंदर ४ गीतावली सुंदर २
९७ गीता -सुंदर २
९८ मानस- सुंदर १०।३
९९ ,, सुंदर १२।४-६, रामचंद्रिका १३।६५
१०० गीता ,, ३, रामचंद्रिका १३/८५
१०१ रामचंद्रिका १३।८

की भाँति सिद्ध हुए[१०२]। जानकी हनुमान से प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं। वे पूछती हैं, कि राम और लक्ष्मण कुशल से तो है? कोमल चित्त राम ने मेरे प्रति यह निष्ठुरता क्यों धारण कर ली है? क्या कभी उनके श्याम शरीर को मैं देख सकूँगी[१०३]? सीता को इसी बात का खेद है कि राम से बिछुड़ने पर भी वे अभी तक जीवित हैं। उन्हें इस बात का पश्चाताप है कि उन्होंने पति के वचनों का उलंघन किया[१०४]। कब राम आएँगे जिससे कि मैं उनके सुन्दर मुख का दर्शन कर सकूँगी[१०५]। यह कहते-कहते सीता मूर्च्छित हो गई[१०६]।

सीता -संदेश

शत्रुओं के बीच में प्रिय का संदेश लाने वाला दूत जब विदा माँगने आया तो सीता का गला भर आया। सीता जी पति के पास संदेश भेजना चाहती हैं पर प्रिय की अवस्था का विचार कर हृदय के भावों को हृदय में ही छिपा लेती हैं[१०७]। फिर भी किसी प्रकार वे अपना संदेश कहती हैं। अपना प्रणाम, अपनी विपत्ति को हरने की प्रार्थना, राम के पराक्रम की स्मृति तथा एक मास का समय जिसके भीतर उनकी रक्षा होनी चाहिए, यही सीता का संक्षिप्त संदेश है।[१०८] चतुर दूत हनुमान के लिए यही यथेष्ट था।

(६) हनुमान का राम से सीता-विरह-कथन

अत्यंत ज्ञानी और कुशल संदेश वाहक की भाँति हनुमान जी ने राम के सम्मुख सीता के विरह का बड़ा ही हृदय द्रावक वर्णन किया है। हनुमान के आते ही राम अत्यंत उत्सुकता से सीता का वृतांत पूछते हैं। वे पूछते हैं कि प्रिय यह बतलाओ कि विरह सागर में डूबती हुई व्याधे के हाथों में फँसी मृगी सी सीता कैसे अपने प्राणों की रक्षा करती होंगी।

---

१०२ मानस - सुंदर १४।१
१०३ वही १४।२-४
१०४ गीतावली सुंदर ७
१०५ गीतावली सुंदर १०
१०६ वही सुंदर ७
१०७ गीतावली सुंदर १५
१०८ मानस सुंदर २७।२-३

इसी प्रश्न के उत्तर में ही हनुमान अत्यंत कुशलता से सीता के तीव्र विरह की व्यंजना कर देते हैं। वे कहते हैं, कि आपके विरह में सीता के प्राण कम तो कभी के निकल गए होते पर आपका नाम वे जो दिन-रात रटती रहती हैं, वह पहरेदार की भांति है, आपका निरंतर ध्यान ही किवाड़ सदृश तथा अपने नेत्रों को चरणों में लगाए रहने के कारण मानों उस किवाड़ में ताला, पड़ गया है। इस प्रकार प्राण के निकलने के सभी मार्ग अवरुद्ध हो गए हैं, फिर वे किधर से जाएं।[१०९] इस प्रकार हनुमान राम को बतला देते हैं कि सीता का ध्यान सदा आपमें ही केंद्रित रहता है

इतना कह कर प्रमाण स्वरूप हनुमान जी राम चन्द्र जी को सीता जी की चूड़ामणि देते हैं। प्रिय की वस्तु प्राप्त होते ही राम उसे हृदय से लगा लेते हैं।[११०] उसे प्राप्त कर उनका हृदय इस प्रकार फूल उठा जैसे दरिद्र को नवोंनिधि मिली हों। अथवा अंधे को सुदृष्टि प्राप्त हुई हो। राम को वह मणि सीता के मन के सदृश ही लगी। हृदय में प्रेम दीपक प्रकाशित हो उठा और साथ ही साथ भावावेश में वे भी उन्माद की भांति उससे प्रलाप करते हुए कहने लगते हैं कि तुम मेरी ओर प्रेम से देखती नहीं स्वत: मेरे हृदय से लगती नहीं और मुझे अपना प्रिय समझ कर मेरे प्रश्नों का उत्तर देती नहीं। ऐसा लगता है कि तू मुझे अपराधी समझ रही है।' ऐसी उन्माद की दशा में भी शीघ्र ही उन्हें अपने कर्तव्य का ध्यान भी आता है। सीता की खोज-खबर न रहने के कारण जो हृदय में अंधकार सा छाया था और जिसकारण वे किंकर्तव्यविमूढ़ थे वह अब दूर हो गया और अब अपना कर्तव्य जान गये।[१११] इस प्रकार सीता की चूड़ामणि ने राम के हृदय में प्रमावेश के साथ ही भावी कार्यक्रम की योजना लादी।

चूड़ामणि देने के उपरांत हनुमानजी सीता का संदेश कहते हुए उनके विरह का वर्णन भी करते हैं। यह विरह वर्णन हृदय द्रावक और विस्तृत है। वे कहते हैं, सीता की दशा कहने

---

१०९ मानस - सुंदर ३०

११० वही ३१।१

१११ रामचंद्रिका ।।३०।

में मैं असमर्थ हूं । उसे सुन कर चैतन्य की बात का जड़ भी दुखित हो जायेंगे । फिर भी मैं सामर्थ्य भर कहता हूं ।'

' सीता निरंतर सौमित्रबन्धो, करुणानिधे, दीन बंधो आदि शब्दों के द्वारा आपको रटती रहती हैं ।' लक्ष्मण के प्रति अपने कटुवचनों के कारण यही उनके मन से निकलना स्वाभाविक है हनुमान कहते हैं उन्होंने कहा है कि मन, वचन और कर्म से उनका अनुराग सदा आपके चरणों में है, फिर भी किसी अपराध के कारण आपने मुझे त्याग रखा है अभी तक सुधि नहीं ली है । आपके विरह में तो यह शरीर क्षण मात्र में भस्म हो सकता है पर आपके दर्शनों के लोलुप ये नेत्र अविराम रूप में स्रावित होकर मुझे मरने भी नहीं देते हैं ।[११२]

सीताजी की विरह-दशा का और वर्णन करते हुए हनुमान जी कहते हैं, विरह में सीताजी अशोक वन की वीथियों में भ्रमरी के समान आपको खोजती फिरती हैं । आपके से श्यामल तमाल को भ्रम से आप समझ कर वे भेंटने को दौड़ती हैं । प्रकृति और उसका सौंदर्य उन्हें भयंकर लगता है । चातक की भांति वे आपका नाम रटती रहती हैं । वे आपके शौर्य की स्मृति आपको दिलाती है । यदि एक मास में आपने उनकी रक्षा न की तो वेदों में वर्णित आपकी श्री नृसिंह और प्रह्लाद की कथा झूठी पड़-जायेगी ।

हनुमान जी कहते हैं कि आपके वियोग में सीताजी मूर्तिवत हो गई हैं । वे पुकारने पर भी नहीं सुनती । उनके हृदय में बस आपके दर्शनों की ही तीव्र लालसा है । उनके विरह की तीव्रता से अशोक वाटिका के पशु पक्षी तक वहां से भाग गए हैं , वहां शीतल मंद पवन पैर नहीं रखता । उनके दुख को मैं जान तो सका हूं पर कह नहीं पा रहा हूं ।' अंत में वे स्वयं प्रार्थना करते हैं कि प्रभु आप उन्हें दर्शन दीजिए और उनके दुख को दूर कीजिए ।[११४]

---

११२ मानस - सुंदर ३०।१-२

११३ रामचंद्रिका १४।२६-३०

११४ गीतावली - सुंदर १७-२० तथा मानस सुंदर ३०।३ तथा ३

सीता के इस विरह से राम के नेत्रों में आंसू भर आए। सीता के प्रेम सागर में वे डूबने लगे। उनके मुख से शब्द तक नहीं निकलते थे। राम इस प्रकार सोच करने लगे जैसे वे साधारण मनुष्य हों।[११५]

उपर्युक्त वर्णन में विरह की दशाओं का भी वर्णन अनेक स्थलों पर आया है। उनमें से कुछ के उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं।

(१) अभिलाषा

कबहुं नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता।[११६]

(२) चिंता

कबहूं, कपि! राघव आवहिंगे।[११७]

(३) स्मृति

१- है सौमित्रि-बंधु करुनानिधि! मन महँ रटति, प्रगट नहिं कहति[११८]

२- सगुन रूप, लीला-विलास-सुख सुमिरति करति रहति अंतरगत ॥

(४) गुणकथन

श्री नृसिंह प्रह्लाद की वेद जो गावत गाथ।
गये मास दिन आसु ही झूंठी ह्वै है नाथ ॥[११९]

(५) उद्वेग

बचनु न आव नयन भरे बारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥[१२०]

---

११५- मानस - सुंदर ~~xxxxx~~ ३२।१, गीतावली-सुंदर १७,२१
११६- मानस-सुंदर १४।२
११७- गीतावली-सुंदर १०
११८- ,, ,, १७, १
११९- रामचंद्रिका-सुंदर ३०
१२०- मानस - सुंदर १४।२

(६) प्रलाप

मणि होहि नहीं मनु आप प्रिया को ।
उर प्रगट्यो गुन प्रेम दिया को ।।
सब भाग गयो जु हुतो तम छायो ।
अब मैं अपने मन को मत पायो ।।[१२१]
हे खग मृग हे मधुकर श्रैनी ।
तुम्ह देखी सीता मृग नैनी ।।

(७) उन्माद

श्री पुर मैं बन मध्य हौं, तू मग करी अनीति ।
कहिं मुंदरी अब तियन की । को कहिहै परतीति ।।[१२२]

(८) व्याधि

(१) हिमांशु सूर सो लगै सो बात बज्र सी बहै ।
दिशा लगै कृशानु ज्यों विलेप अंग को दहै ।।[१२३]
(२) कुबलय विपिन कुंत बन सरिता ।
बारिद तपत तेल जनु बरिसा ।।[१२४]

(९) जड़ता

चित्र-से नयन अरु गढ़े से चरन-कर, मढ़े से स्रवन, नहिं सुनत पुकारे ।।[१२५]

(१०) मूर्च्छा

इतनी कही सो कही सीय, ज्यों ही त्यों ही
रही, प्रीति परी सही, विधि सों न बखानि ।।[१२६]

(११) मरण

तजौं देह करू बेगि उपाई । दुसह बिरहु अब नहिं सहि जाई ।।[१२७]

---

१२१- रामचंद्रिका - १४।२५
१२२- ,, १३।८५
१२३- ,, १२।९२
१२४- मानस - सुंदर १५।२
१२५- गीतावली - १ [illegible] १८

निष्कर्ष:

उपर्युक्त अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष स्पष्ट होते हैं:-

(१) राम साहित्य में वियोग श्रृंगार का पूर्वराग और सीताहरण में ही प्रकाश हुआ है। मान का पूर्णतः अभाव है।

(२) पूर्वराग का प्रारंभ विविध तथा स्वाभाविक रूप में है। यह पूर्वराग मर्यादित रूप में है तथा इसमें काम दशाओं का विस्तृत वर्णन नहीं है।

(३) प्रवास विरह के स्थान पर "विछोह-विरह" ही रामसाहित्य में है।

(४) इस विरह का विस्तृत तथा विविध वर्णन प्राप्त है।

(५) यह विरह अत्यंत तीव्र होते हुए भी कर्त्तव्य का प्रेरक है।

(६) इस विरह में मिलन की कामना अत्यधिक है पर उसमें सुख-भोग विलास की चाह नहीं है।

इसी तरह का राम-साहित्य में विरह का स्वरूप है।

---

कृष्णाश्रयी शाखा-

(क)
४-वल्लभ सम्प्रदाय-

हिन्दी-साहित्य में वल्लभ- संप्रदाय और उसके साहित्य का अत्यंत विस्तार से अध्ययन हो चुका है । इन अध्ययनों में "विरह " का भी यथेष्ट विस्तार से विवेचन किया जा चुका है । इसलिए यदि पुनः विस्तार से इस पर यहां भी विचार किया जाय तो वह केवल पिष्ट- पेषण मात्र होगा । अतएव नीचे की पंक्तियों में हम अत्यंत संक्षेप में वल्लभ-संप्रदाय में उपलब्ध श्रृंगार की चर्चा करेंगे ।

विरह की स्वीकृति

वल्लभ- संप्रदाय में भगवान की ब्रजलीला- मथुरा-लीला और द्वारका लीला तीनों को ही स्वीकार किया गया है । इन प्रकट लीलाओं के अतिरिक्त उनकी अप्राकृत नित्य लीला भी वृन्दावन धाम में सदा चलती रहती है । इस प्रकार अप्राकृत रूप में कृष्ण-गोपियों का यद्यपि कभी भी वियोग नहीं होता, फिर भी प्रकट रूप में वह परिलक्षित होता है तथा वह वर्णनीय है । इसी स्वीकृति के कारण ही वल्लभ-संप्रदाय में राधा एवं गोपियों का पूर्वराग, मान एवं विप्रलंभ सभी प्राप्त है ।

आसक्त भक्त का विरह-

इस विरह के संबंध में एक और बात समझ लेनी चाहिए कि सम्प्रदाय में तथा आलोचकों द्वारा यह माना गया है कि उपर्युक्त अवस्थाएं आसक्त भक्त की दशाएं भी है । इस मान्यता के फलस्वरूप गोपियों का विरह यथार्थ में गोपी भा की भक्ति करने वालों का विरह हो जाता है । यदि इसी स तथ्य को कुछ इस प्रकार कहें तो अधिक उपयुक्त होगा कि गोपी विरह को व्यजित करके भक्तों ने अपनी भावभूमि को अपना लक्ष निर्देश किया है । वह उन्हीं का यथार्थ विरह वर्णन है, ऐसी बात नहीं है । अस्तु ।

विरह का स्वरूप

वल्लभ- सम्प्रदाय में विरह अनेक रूप में प्राप्त है । यथार्थ में विरह के स्वरूप की पूर्णता और विविधता जितनी इस सम्प्रदाय में प्राप्त है वह अत्यन्त दुर्लभ है । करुण-विप्रलंभ को छोड़कर जिसके लिए भक्ति काव्य में कोई स्थाननहीं है, विरह के तीनों स्वरूप पूर्वराग, मान और प्रवास विप्रलंभ इसमें उपलब्ध है ।

पूर्वराग -

अष्टछापी कवियों ने पूर्वराग का वर्णन बड़ी ही तन्मयता और प्रभावशाली ढंग से किया है । यह पूर्वराग की आसक्ति अनन्य पूर्वा कुमारी गोपिकाओं की है । यह पूर्वराग की अवस्था रूप-गुण -श्रवण, प्रत्यक्ष दर्शन और बाल-स्नेहआदि के विकास से उत्पन्न होती है ।

प्रत्यक्ष दर्शन-

साँवरौ बदन देखि लुभानी ।
चले जात फिरि चितयौ मौतन तब ते सँग लगानी ।।
बे वा घाट पिवावत गैया हौं इतते गई पानी ।
कमल नैन उपरेना फैर्यौ परमानन्दहि जानी ।।[१२८]

तथा-

भई भैंट अचानक आई ।
हौं अपने गृह तैं चली जमुना, वे उतते चले चारन गाई ।
निरखत रूप ठगौरी लागी, उनकौ डग भरि चल्यौ न जाई ।।
छीत स्वामी गिरधरन कृपा करि मौतन चितए मुरि-मुसिकाई ।।[१२९]

प्रतिमा - दर्शन -

रूपमंजरी का अनुराग उत्पन्न करने में उसकी

सखी इंदुमती ने यही विधि अपनाई । गोबर्द्धन पर उसने रूपमंजरी को कृष्ण- प्रतिमा के दर्शन कराए । इसी से उसके हृदय में अनुराग प्रारंभ हुआ -

इक दिन गिरि गोबर्द्धन जाई, गिरिधर प्रिय प्रतिमा दिखि आई
तब तैं यो उर-अनंद राखी, जो गुरुदेव दया करि भाखी ।।[१३०]

स्वप्नदर्शन-

रूपमंजरी स्वप्न में अपने अनुरूप नायक(कृष्ण ) को देखती है :-

इक दिन सखि संग राजकुमारी, पौढ़ी हुती कनक चित्रसारी ।
सुपन मांझ इक सुन्दर नाइक, पायौ कुंवरि आपनी लाइक ।।
तन मन मिलि तासौ अनुरागी, अधर सुधरखंडन मैं जागी ।।[१३१]

गुण-श्रवण-

कृष्ण-नाम जब तैं श्रवन सुन्यौ री आली ।
भूली री भवन हौं तौ बावरी भई री ।।[१३२]

बेणु- श्रवण-

बेनु धर्‌यो कर गोविंद गुन निधान ।
जाति हुति बन काज सखिन संग ठगी धुनि सुनि कान ।
मोहन सहस कल खग मृग पसु बहु विधि सप्तक सुर् बंधान ।।
चतुर्भुज दास प्रभु गिरिधर तन मन चोरि लियो करि मधुर-
गाथ ।[१३३]

तथा-

गोपाल तेरी मुरली हौं भारी ।
सबद बान बेधी उर अंतर नंद किसोर मुरारी ।।

---

१३०- रूपमंजरी-पंक्ति १८१-१८२
१३१- रूपमंजरी-नंददास-ग्रन्थावली-शुक्ल प्रथम भाग पृ० ९-१०
१३२- पदावली नंददास ग्रन्थावली शुक्ल पृ० ३४१
१३३- चतुर्भुज दास - अष्टछाप और वल्लभ संप्रदाय पृ० ६३१ अ

कहति राधिका सुनि मन मोहन तुम्हरी दासिन चेरी ।।[१३४]

सहायता के फलस्वरूप-

ऐसा देखा जाता है कि विपत्ति में सहायक के प्रति अनुराग स्वयमेव उत्पन्न हो जाता है । कृष्ण जहां गोपियों से विविध प्रकार की छेड़- छाड़ किया करते थे वहां दूसरी ओर आवश्यकता पड़ने पर क्या गोपी क्या गोपाल, ब्रज के सभी व्यक्तियों की सहायता करने को भी तत्पर रहते थे । उनके इस लोक कल्याणकारी रूप का भी आकर्षण कम न रहा होगा, और जिस समय कभी उन्होंने किसी संकट पूर्ण स्थिति में किसी गोपिका का उद्धार किया होगा तो वहां प्रीति का स्वयमेव उत्पन्न हो जाना कठिन नहीं । इस प्रीति के पीछे नायक की रक्षा की भावना, उसकी ख्याति तथा उसका रूप सभी का मिश्रण होता है ऐसा ही "पनघट " समय का एक पद है :-

नैक लाल टेको मेरी बहियां ।
औघट घाट चढयो नहिं जाई रपटत हों कालिन्दी महियां ।
सुन्दर स्याम कमल दल लोचन देखि स्वरूप गुपाल अरूझानी ।
उपजी प्रीति काम उर अन्तर तव नागर नागरी पहचानी ।।
हँसि ब्रजनाथ गह्यो कर पल्लव जाते गगरी गिरन न पावै ।।
"परमानन्द" ग्वालिन सयानी कमल नयन कर परस्योहि भावै ।।[१३५]

बाल-स्नेह के विकास के कारण-

बालापन के स्नेह का परिपक्व होकर प्रणय में बदलना स्वाभाविक है । सूर ने राधा के प्रेम का विकास इसी रूप में दिखलाया है । चकई- भंवरा खेलते हुए जो राधा कृष्ण की भेंट हुई थी वही बालकपन की मित्रता से बढ़ती हुई प्रगाढ़ प्रणय में बदल गई ।

---

१३४- परमानन्द सागर पद ३५२

१३५- वही पद ५१८

पूर्वराग का स्वरूप

यह पूर्वराग " मंजिष्ठा " प्रकार का है । यह स्थायी होने के साथ ही साथ व्यक्त होकर अत्यन्त सुशोभित भी है ।

पूर्वराग की दशाएं-

पूर्वराग अवस्था की वियोग- वेदना और मिलन की उत्कट कामना आदि का भी सुन्दर और प्रभावशाली वर्णन इन कवियों में प्राप्त है । इस संबंध में यह ध्यान रखना चाहिए कि पूर्व-राग की विरह वेदना में एक प्रकार की मिठास एक अद्भुत उत्साह और उमंग होती है । ऐसी स्थिति में काम की सभी दशाओं का वर्णन विशेष उपयुक्त नहीं होता है । " प्रलाप", " जड़ता " तथा " उद्वेग" आदि भावों का वर्णन इन कवियों ने किया है पर कम जो कि उचित ही है । इनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जा रहा है ।-

अभिलाषा-

परम भावते जिय के हो मोहन, नैननि आगें तें मति टरहु ।
तौलों जिउं जौलों देखौं वारंबार पा लागौं चित अनत
न धरउ ।।[१३६]

चिन्ता-

नागरि मन गई अरुझाई ।
अतिविरह तनु भई व्याकुल, घर ननैकुं सुहाई ।
स्याम सुंदर मदन मोहन, मोहिनी सी लाई ।
चित्त चंचल कुंवरि राधा, खान पान भुलाई ।
कबहुं विंहसति, कबहुं बिलपति, सकुचि रहति लजाई ।
मातु-पितु कौ त्रास मानति, मन बिना भई बाई ।
जननि सौं दोहनी मांगति, बेगि देरी माई ।
सूर प्रभु लौ खरिक मिलिहौं, गए मोहिं बुलाई ।[१३७]

१३६- कुंभन दास - पद २०६

१३७- सूरसागर १९९६

स्मृति और- वो मुख देख्यौ हो ( मोहि ) भावै ।

गुणकथन- मदन गोपाल जगत को ठाकुर बन ते जब घर आवै ।
लोचन लोल नासिका सुन्दर कुंडल ललित कपोल ।।
दसन कुंद बिम्बाधर राते मधु ते मीठे बोल ।
कुंचित केस पीत रज मंडित जनु मोरन की पांत ।
कमल कोस ते कढ़ि ढिग बैठे पांडुर बरन सुजात ।
चंदक चारु मुकुट सिर सोहत बिच बिच मनु गुंजा ।
गोपी मोहन अभिनव मूरत प्रगट प्रेम के पुंजा ।।
कंठ कंठमनि स्याम मनोहर पीतांबर बनमाल ।
परमानन्द सुवन मनि कुंडल कूजत बेनु रसाल ।।[१३८]

पूर्वराग की अन्य दस काम दशाएँ, नयनानुराग, चित्रासक्ति संकल्प, निद्राच्छेद, तनुता, विषयनिवृत्ति, त्रपनाश, उन्माद, मूर्च्छा और मरण भी इनमें प्राप्त है । उदाहरण स्वरूप दो एक उदाहरण दिये जारहे हैं :-

नयनानुराग- अखियां मेरी लालन संग अटकीं ।
वह मूरति मो चित मैं चुभि रही छूटत नहीं मो भटकी ।
मौंह मरोरि डारि पिक बानी पिय हिय ऐसो घटकी ।
नंददास प्रभु की प्यारी लाज तजि डरी चलि निकट की ।।[१३९]

चित्रासक्ति- चलन चहति पग चलै न घर कौं ।
छांडत बनत नहीं कैसे हूं, मोहन सुन्दर बर कौं ।
अंतर नैकु करौ नहिं कबहूं, सकुचति हौ पुर-नर कौं ।
कछु दिन जैसी तैसी खोऊं, दूरि करौं पुनि डर कौं ।
मन मैं यह विचार करि सुंदरि, चली आपने पुर कौं ।
सूरदास प्रभु कह्यौ जाहु घर, घात कर्यौ नख उर कौं।[१४०]

संकल्प- हमहिं ब्रज लाड़िले सौं काज ।
जस अपजस कौ हमैं डर नाहीं कहनो होइ सो कह लेउ आज

१३८- परमानन्द सागर पद २११
१३९- नंददास शुक्ल पृ० ४३८
१४०- सूरसागर १३५६

किधौं काहु कृपा करी धौं न करी सो सनमुख व्रज नृप जुवराज ।
गोविंद प्रभु की कृपा चाहिये जो है सकल घोख सिर ताज ।।[१४१]

निद्रोच्छेद-

जबतें प्रीति स्याम सौं कीनी ।
तादिन तें मेरे इन नैननि नेंकहु नींद न लीनी ।
सदा रहति चित चाक चढ़्यौ सो और न कछू सुहाय ।
मन में करत उपाय मिलन कौ इहै विचारत जाय ।।
परमानंद प्रभु पीर प्रेम की काहू सौं नहि कहिऐ ।
जैसे व्यथा मूक बालककी अपने तन मनसहिए ।।[१४२]

कुल-कानि त्याग-

इसी प्रकार की अवस्था मे लोक-लज्जा, कुल-कानि सभी अपने आप छूट जाती है । प्रेमिका खुले रूप में अपने प्रम को प्रकट कर अ अपने प्रिय को प्राप्त करने के लिए सब कुछ करने लगती है -

तबते और न कछू सुहाय ।
सुंदर स्याम जबहिं ते देखे खरिक दुहावत गाय ।
अवति हुती चलि मारग, सखि, हौं अपने सतभाय ।
मदन गोपाल देखि कैं इकटक रही ठगी मुरझाय ।
विसरी लोक लाज गृह काजर बंधु पिता अस भाय ।।
दास चतुर्भुज प्रभु गिरिवर धर तन मन लियो चुराय ।।[१४३]

पूर्वराग की इन स्थितियों में विरहानल प्रज्ज्वलित रहता है जब तक कि मिलन न हो । इस विरहाग्नि का अत्यंत सुंदर वर्णन नन्ददास ने रूपमंजरी में किया है । वे कहते है कि रूपमंजरी का हृदय दर्पण है और शरीर रूई । प्रीतमरूप-रवि की किरणों के हृदयरूपी दर्पण पर पड़ते ही तन-रूई से विरह की आग जाग उठी-

---

१४१- गोविन्द स्वामी ५७३
१४२- परमानंद सागर ४४६

तिय हिय दरपन, तन रूई, रही हुती पुट पागि ।
प्रीतम तरनि किरनि परसि, जागि परी तन आगि ।।[१४४]

पूर्वराग की यह विरहाग्नि प्रिय- मिलन पर ही शांत होती है ।

षट्ऋतु वर्णन- सामान्यतः विरह का वर्णन"बारहमासा"पद्धति पर और षट्ऋतु पद्धति पर होता है । किंतु रूपमंजरी मे पूर्वराग का विरह वर्णन षट्ऋतु के रूप में प्रकट हुआ है । जिसमें छहों ऋतु में विरह की तीव्र व्यंजना की गई है ।

मान-

वल्लभ संप्रदाय में मान का उल्लेख विशेष रूप से है । यह मान प्रणय और ईर्ष्या जन्य दोनों ही प्रकार का है । सूर-सागर में चार बार इस मान का उल्लेख है । इसके निम्नलिखित ४ भेद किए जा सकते है :- (१) साधारण मान- प्रणय जन्य । कृष्ण राधा को मनाने आते हैं और राधा के न मानने पर लौट जाते है । तब राधा का मान कपूर की भांति उड़ जाता है और वह विरह में व्याकुल हो जाती है । ललिता दूती बन कर कृष्ण को मनाने जाती, उनसे राधा के रूप की प्रशंसा करती तब कहीं कृष्ण आते हैं और राधा को हृदय से लगाते हैं जिससे उसका विरह ताप शांत होता है ।

(२) विभ्रम मान-

राधा कृष्ण के हृदय में नारी का प्रतिबिंब देखकर मान करती है । कृष्ण की मनुहारें असफल होती हैं । कृष्ण दूती भेजते हैं जोकि राधा से कृष्ण और उसकी एकता बतलाती है जिससे मान भंग हो जाता है ।[१४५]

(३) ईर्ष्या जन्य मान

इस मान का कारण कृष्ण की अन्य स्त्री द्वारा हुए

१४४- रूपमंजर

रति चिह्नादि से युक्त रूप को देखना है । राधा कृष्ण को इन चिह्नों से युक्त देखकर पहले परिहास करती है, फिर कटाक्ष कटाक्ष से बढ़कर तिरस्कार और रोष तक उसकी भावना विकसित हो जाती है । वे सखियों से कृष्ण की शिकायत करती है ।

इसमान के कारण राधा और कृष्ण दोनों ही व्याकुल हैं । सखियां मनाने में असफल । कृष्ण की अनुनय- विनय बेकार होती है, किंतु जब गुप्त चरित्र का संकेत कृष्णराधा के प्रति करते हैं तो उसका हृदय पसीज जाता है ।

(४) बड़ी मान-लीला-

यह भी ईर्ष्या जन्य है और अत्यन्त विकट भी । इस बार राधा को कृष्ण के पर-गृह गमन का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल गया । सखियों के साथ यमुना-स्नान को जाते समय राधा एक सखी कोबुलाने उसके घर ठीक उसी समय पहुंची जब कि कृष्ण केलिकर उसके यहां से निकल रहे थे । इससे अधिक मान के लिए और क्या कारण चाहिए । इस मान को भग करने के सभी उपाय असफ हुए । न तो अपनी प्रशंसा सुनकर और न ही कृष्ण की दीन दशा देख कर राधा पसीजती । कृष्ण स्वयंदूती भी बनने पर असफल रहते । असम्भव संभव हो जाता है । पर राधा का मान नहीं डिग सकता । अंत में कृष्ण को एक उपाय सूझता है वे राधा के संमुख दर्पण रख कर पीछे खड़े हो गए । दर्पण में राधा के नेत्र कृष्ण के नेत्रों से मिले । राधा का चेहरा खिल उठा । उसे निश्चय हो गया कि कृष्ण की वही प्रेयसी है । मान भंग हुआ ।

मान का दूसरा बड़ा वर्णन नन्ददास ने " मान-मंजरी नाममाला " में किया है । इसमे नन्ददास ने शब्दों के पर्याय के साथ साथ दूती द्वारा राधा - मान- मोचन के उद्योग का भी वर्णन किया है ।

राधा के इस मान का कारण भी " सम्भ्रम " है । कृष्ण के हृदय में अपनी परछांही देखकर राधा मान करती है । दूती कृष्ण की आतुरता देख कर राधा को मनाने जाती है ।

है । उनके हाथ में गेंदे का फूल है जिससे वे खेल रही है । दूती को देखकर वे तकिये के सहारे गंभीर बन मान से बैठ गई ।

दूती राधा का मान भंग करने का प्रयत्न करने लगी । उसने दोनों की जोड़ी की सराहना की और बताया कि तू ही उनकी एक प्रिया है । ये कृष्ण नर नहीं है, वेद उनका वर्णन करते हैं फिर भी वे तेरी भ्रू भंगिमा से भयभीत रहते हैं ।

राधा कहती है कि कृष्ण भले नहीं हैं । इस पर दूती पुनः उनका स्वरूप बतला कर राधा को मनाती है । वह राधा का गोवर्द्धन- धारण और कलिय-दमन के अवसर के प्रेम का वर्णन करती है । फिर कृष्ण की समृद्धि का वर्णन करती है । इस पर राधा बिगड़ जाती है । वह कहती है कि मैं गणिका नहीं हूँ । दूती संभल कर उसके पातिव्रत की प्रशंसा करती है । कहती है कि तेरा जाप कर ही पार्वती शिव-प्रिया बनी । अब तुम मान छोड़ दो । प्रकृति कितनी सुंदर है । कृष्ण कितने व्याकुल है । मार्ग कितना सरल है । वृक्ष के नीचे उन्होंने शैय्या बना ली है । तुम्हें भयभीत भी नहीं होना चाहिये । तुम्हारा अनुज उनका सखा है तथा तुम्हारे माता- पिता तो उनसे विवाह करने को स्वयं ही तैयार है ।

राधा पुनः बिगड़ कर कहती है कि दूती तू मदिरा पी कर कैसी मद्यप सी बातेकर रही है । यह सुन कर दूती राधा की भर्त्सना करती है । कहती है कि मेरी शिक्षा तवे पर की बूंद हो रही है । अब तुम्हारी क्या आज्ञा है? मैं लौट जाऊँ ।

राधा का मान भंग हो गया । उसने हँस कर उत्तर दिया कि अर्द्धरात्रि हो गई । अब प्रातः चलूँगी । दूती ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया । उसने राधा की पनही लाकर रख दी तथा उसे लेकर चली । दोनों का मिलाप होता है । [१४६]

अन्य कवियों में मान के ऐसे विस्तृत पद नहीं हैं, यद्यपि मान का वर्णन किया सभी कवियों ने है ।

मान- मोचन-

मान- मोचन की विविध विधियों का वर्णन इन कवियों ने किया है । " साम ", "भेद", "नति" और एक आध स्थल पर " उपेक्षा" का उपयोग हुआ है । मुख्यता " भेद " पद्धति की है जिसमें सखी अथवा दूती के द्वारा कार्य - साधन होता है । इस प्रसंग में " पाती " की कल्पना भी मिलती है ।

साम-

प्यारी मनावत कुंज बिहारी ।
वृथा मौन कित करति न मित मुख नैकु चितै इत प्यारी
तुव मुख चंद चकोर नैन मेरे प्यार सुधा बलिहारी ।
रह्यौ हृदौ मम छार विरह तम नैकु बोलि जैसे होई-
चंद-चंद्रिका उजियारी ।
जो अति प्रकट करो भ्रुज बंधन नख सों हृदौ विदारी ।
गोविंद प्रभु के प्रेम वचन सुनि छाँड़ि मान हृदये लागि-
कुसुम सुकुमारी ।।[१४७]

दान-

बैठे लाल कालिन्दी के तीरा ।
लै राधे पठ्यो है यह प्रसाद को बीरा ।।
प्यारी तेरे कारन चुनि राखे है जे निरमोलक हीरा ।।[१४८]

भेद- दूती कृष्ण के विरह [१४९] को देख कर राधा को मनाने चली । उसने एक चतुरता सोच ली[१५०] राधा से उसने जाकर कहा कि कृष्ण ने तुम्हें बुलाया है । [१५१] राधा कारण पूछ कर कहती है कि क्या इसी से तुम दौड़ कर आई हो ।तुम और तुम्हारे कृष्ण दोनों भले है। अब तो उनको एक नई युवती मिल गई है । उसको बुला लें । यथार्थ में उन्होंने उस छिपा रखा है । और इसी से तुम्हें यहाँ भेजा है । इस प्रकार से दूती और राधिका

१४७-गोविन्द स्वामी ५०९ तथा सूर ३०३१, ३०३४ आदि, ३१७७ आदि ३२२१, ३४४४ ।

१४८- परमानन्द ।

मे वाद - विवाद होता है । दूती राधा के विरह का वर्णन करती है पर राधा पर कुछ असर नहीं होता है। अंत में वह कहती है कि तुम और सवाई मान करो । कोटि करो फिर तो तुम और मोहन एक होगी । मोहन का नाम सुनते ही राधा का मान भंग होता है ।

> मान करो तुम और सवाई ।
> कोटि करो एकै पुनि ह्वै हो, तुम अस मोहन भाई ।
> मोहन सो सुनि नाम सुवनहीं, मगन भई सुकुमारी ।
> मान गयो रिस गई तुरतहीं, लज्जित भई मन भारी ।।[१५२]

(ii) क्षणिक यौवन का उपयोग करो ।

> हरि सों कैसो मानछबीली ।
> इह जोवन धन दिवस चारि को काहे कों वृथा करत हो
> नबीली ।।[१५३]

(iii) स्वयं दूतिका -

सखी असफल होने पर कृष्ण को स्वयंदूतिका बनने को कहती है:-

> मोहन रही सकुचाई मनायो मानत नाहिं गुपाल ।
> आपुन ही चलियै प्यारे प्रीतम मोहन गण गति चाल ।।[१५४]

कृष्ण दूती का रूप रख कर जाते है :-

> प्यारी को मान मनावत आए ।
> नवसत साजि सिंगार किये तन सहचरि भेज बताए ।।[१५५]

(४) दूती द्वारा पत्ती भेजना-

> मोहन बाई बोली री । अधरतियाँ,
> उठि-चलि वेगि लाल गिरिधर पै, यह लै पिउ की -
> पतियाँ ।।
> सुनि मृदु बचन भई अति आतुर धर-धर करै री छतियाँ ।

---

१५२- वही ३०५५

१५३- गोविन्द स्वामी ४८९, कुंभनदास २८१, परमानंद ३९९.४१३
सूरसागर ३११०, ३११६

कुंभन दास लाल गिरिधर की मानि लई सब बतियां ।।[१५६]

(५) मुखबीरी के साथ संदेश

कृष्ण अपना संदेश भेजते हैं और साथ में अपने मुख की बीरी भी-

लै राधे । गिरिधर दे पठई अपने सुंदर मुख की बीरी
सुनहु संदेसौ प्रान-प्यारे कौ कित सकुचति आवैं किनि
नियरी ।।[१५७]

(६) भर्त्सना

छांडि न देत झूठे अति अभिमान ।
मिलि रस रीति प्रीति करि हरि सौं सुंदर है भगवान ।।
यह जौवन धन द्यौस च्यारि कौ पलटत रंग सौ पान ।
बहुरि कहां यह अवसर मिलि है गोप भेष कौ ठान ।।
बार बार दूतिका सिखवै करहि अधर रस पान ।
"परमानन्द स्वामी" सुख सागर सब गुन रूप निधान ।।[१५८]

(७) चतुरता-

दूती राधा से कहती है कि कृष्ण द्वार पर खड़े हैं । तू उनसे मान मत तजना ।[१५९] इतना सुनते ही राधा का मान भंग हो जाता है । वे कहती हैं कि क्यों द्वार पर खड़ा रखा है ।

जब दूती यह बचन कहयौ ।
तब जाने हरी द्वारे ठाढ़े, उर उमग्यौ रिस नहीं रहयौ ।।
काहे कौ हरि द्वार खरे हैं किनि राख्यौं कहि जिभ-गरै ।
मौन गहौ मैं ही कहि आऊं । तू काहे कौं रिसिनिजरै ।।[१६०]

---

१५७- कुंभनदास २८९ २९२

१५८- परमानंदसागर ३९९, सूरसागर ३४४४

१५९- सूरसारगर ३१८६

१६०- वही ३१८७

(८) दूती के चरणों पर पड़ना

राधा को मनाने के लिए कृष्ण दूती के चरणों पर पड़ना भी भेद के अंतर्गत ही आएगा:-

प्यारी, प्रीतम आरति करतु
तुम्हरै कारन कुंवरिराधिका, मेरै पाइंनि परतु ।।[१६१]

नति- राधिका तजि मान मया करू ।
तेरै चरन-सरन त्रिभुवन-पति, मेहि कलप तू होहि कलपतरू ।।[१६२]

तथा

जिहिं ललाट त्रिभुवन कौ टीकौ, सो पाइनि तन सोवै ।[१६३]

उपेक्षा-

कमल नयन राधिका मनावत
उठि जब चले चरण लपटानी भीत भये मुख बोल न आवत ।[१६४]

तथा

यह जान्यौ जिय राधिका, द्वाहरि लागे
गर्व कियौ जिय प्रेम कौ ऐसे अनुरागे ।।
जहां वै कुहूं नहिं रहे, नहि दरसन दीन्हौ ।
सूर स्याम अंतर भए, जब गर्वहि चीन्हौ ।।[१६५]

अलौकिक कृत्य

कृष्ण ने चंद्रावली का मान-भंग अलौकिक लीला द्वारा किया । चंद्रावली किवाड़ बंद कर सेज पर लेटने गई तो कृष्ण को वहां लेटे देखा । बाहर आई तो वहां दूसरे कृष्ण को देखा । एक विनय करते हैं तो दूसरे अंक में भरते । फलस्वरूप चंद्रावली का मान-भंग होता है:-

---

१६१- सूरसागर ३४२२
१६२- वही ३४३५
१६३- वही ३४४४,३४४६
१६४- परमानन्द दास-जीवन और कृति-श्यामशंकर दीक्षित (प्रभु०)पद ५७८
१६५- सूर २६९१ त T ।।३

यह कहि प्यारी भवन गई ।
रीझे स्याम देखि वा छवि पर रिस मुख सँदरई ।।
द्वार कपाट दियौ गाढ़े करि, कर आपनै बनाइ ।
नैकु नहीं कहुँ संधि बचाई, पौढ़ि रही तब जाइ ।।
इहिं अंतर, हरि अंतरजामी-जो कछु करैं सु होइ ।।
जहाँ नारि मुख मूँदि पौढ़ि रही, तहाँ संग रहे सोइ ।।
जौ देखै त्यों संग विराजत चली तिया झहराइ ।
एक स्याम आँगनहीं देखे, इक गृह रहे समाइ ।
उत कौं वै अति विनय करत हैं, इत अंकन भरि लीन्ही ।
सूरस्याम मनहरनि कला बहु, मन हरि कै बस कीन्हीं ।।[१६६]

विरह- मानान्तर्गत विरह का वर्णन सामान्यतः मान के वर्णनों में आ ही जाता है । इसमें अधिकतर नायक की आतुरता, अभिलाषा, चिंता आदि का चित्रण नायिका से सखी या दूती करती है । कभी-कभी इनमें काम की अनेक दशाओं का विस्तृत वर्णन भी हो जाता है । जैसे-

~~मूर्छा~~- मूर्च्छा

सुनि यह स्याम विरह भरे ।
बार बारहि गगन निरखत, कबहुँ होत खरे ।।
मानिनी नहिं मान मोच्यौ, दूसरी निसि आजु ।
तब परे मुरछाइ धरनी, काम कर्यौ अकाजु ।।
सखिनि तब भुज गहि उचाए कहा बावरे होत ।
सूर-प्रभु तुम चतुर मोहन, मिले अपनै गोत ।।[१६७]

प्रलाप-

जब तैं स्रवन सुन्यौ तेरौ नाम ।
तब तैं हा राधा हा राधा, हरि, यहै मंत्र जपत दुरि दाम ।[१६८]

---

१६६- सूर ३१४४ आदि
१६७- सूरसागर ३४१९
१६८- वही ३३९९

विप्रलम्भ -

विप्रलंभ या वियोग श्रृंगार का वल्लभ संप्रदाय में बाहुल्य है। कृष्ण की ब्रजलीला, मथुरा लीला और द्वारका लीला की स्वीकृति के कारण स्थूल विरह के लिए इस सम्प्रदाय के कवियों को यथेष्ट अवसर मिला। यथार्थ में यही वियोग-वर्णन और इसकी उत्कृष्टता ही इस साहित्य के अमरत्व और आकर्षण का कारण है।

सूक्ष्म विरह का सामान्यतः अभाव-

सूक्ष्म विरह की जैसी कल्पना राधावल्लभ या हरिदासी सम्प्रदाय में है उसका इस साहित्य में अभाव सा ही है। इसका कारण यही है कि राधा-गोपी-कृष्ण का नित्य संयोग मानते हुए भी प्रकट लीला में वियोग की स्वीकृति ने उन्हें सूक्ष्म विरह की कल्पना के लिए बाध्य नहीं किया। जो तनिक सा सूक्ष्म विरह का उल्लेख मिलता है वह "प्रेम वैचित्त्य" के रूप में। इसमें प्रेम की पराकाष्ठा और अतृप्ति का संकेत रहता है। नंददास ने अपनी विरह मंजरी में जिन दो प्रत्यक्ष और ल पलकांतर विरह का उल्लेख किया है वे इसी के अंतर्गत आएंगे। इनके एक-एक उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं।

प्रत्यक्ष विरह-

जब प्रीतम से अबाध संयोग होते हुए भी संभ्रम के कारण विरह उत्पन्न हो जाए तो उसे प्रत्यक्ष विरह कहते हैं। यही प्रेम वैचित्य भी है। सूर का इस पर एक सुंदर पद हैः-

राधेहि मिलेहू प्रतीति न आवति।

यद्धपि नाथ विधु वदन विलोकति दरसन को सुख पावति।
भरि-भरि लोचन रूप परम निधि उर में आनि दुरावति,
विरह विकलमति दृष्टि दुहूं दिसि सचि सरधा ज्यों पावति।
चितवत चकित रहति चित अन्तर नैन निमेष न लावति।
सपनौं आहि कि सत्य ईश बुद्धि वितर्क बनावति।
कबहुंक करति विचारि कौन हौं हरि केहि यह भावति।
सूर प्रेम की बात अटपटी मन तरंग उपजावति।। १६९

पलकांतर विरह-

जब संयोग में पलकों का झंपना भी विरहोत्पादक हो तो उसे पलकांतर विरह कहते हैं। नन्ददास ने ही इसका उदाहरण दिया है:-

> सोभा-सदन बदन अस सोनों, कोटि मदन छबि करि नहि होनों
> सो मुख जब अवलोकन करैं, तब जु आन्हि बिच पलकैं परैं।
> व्याकुल भई कहत ब्रजनारी, तिहि दुख देहिं विधातै गारी।
> बड़ो मंद अरविंद-सुत, जिहिं न प्रेम पहिचानि।
> पिय-मुख निरखत दृगन के, पलक रची बिच आनि।[१७०]

उपर्युक्त, दोनों ही प्रकार के विरह सूक्ष्म विरह के अंतर्गत आएंगे। वल्लभ साहित्य में इनका स्वल्प वर्णन है। केवल "विरह मंजरी" में नंददास ने बारहमासा शैली में इसका कुछ विस्तार से वर्णन किया है।

स्थूल विरह-

वल्लभ साहित्य में मुख्यता स्थूल विरह की है। यह विरह सचमुच प्रिय के दृष्टि ओट होने से उत्पन्न होता है।

भेद-

नंददास ने विरह मंजरी में स्थूल विरह के भी दो भेद ब बताएं हैं। इनका कारण कृष्ण की ब्रज तथा मथुरा-द्वारका लीला है। ब्रज में गोचारण के अवसर पर, रात्रि में तथा अनेक अवसरों पर उन्हें गोपिकाओं से अलग रहना पड़ता था। इन सबमें भी गोचारण में सबसे लम्बा समय लगता था। इसी के कारण उत्पन्न विरह को बनांतर विरह की संज्ञा दी गई है। दूसरा भेद देशांतर विरह है। यह कृष्ण के मथुरा और द्वारका गमन से उत्पन्न है। इन दोनों में भी देशांतर विरह ही मुख्य है। इनमें बनांतर विरह को साधारण तथा देशांतर विरह को प्रवास विरह की संज्ञा दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त एक अन्य और भेद रास के अवसर पर कृष्ण के अंतर्धान होने से उत्पन्न विरह भी है। इन्हीं दोनों का विशेष वर्णन प्राप्त है।

<u>बनान्तर-विरह</u> नंददास ने "विरह मंजरी" में ही इसका निम्नलिखित उदाहरण दिया है:-

जब वृंदावन गो-गन गोहन, जात है नंद-सुवन मनमोहन ।
तब की कहिन परत कछु बात, इक इक पलक कलप सम जात ।
इकटक ह्वगन लिखी सी डोलै, बोलै तौ पुतरी सी बोलै ।
नैन, बैन, मन, श्रवन सब, जाइ रहैं पिय पास
तनक प्रान घट रहत है, फिरि आवन की आस ।।[१७०]

यह-पत्नी की उक्ति भी इसी बनांतर विरह के अंतर्गत आएगी :-

पिय जनि रोकहि जान दे ।
हौ हरि-विरह-जरी जाँचति हौं, इति बात मोहिं दान दै ।।
मन क्रम वचन सूर अपनौ प्रन, राखौंगी तन-प्रान दै ।।[१७१]

~~कंस-पत्नी-की-उक्ति-भी~~

<u>कृष्ण के अंतर्धान होने से</u>

<u>उत्पन्न विरह-</u> रास लीला के अवसर पर गोपियों तथा राधा के हृदय में उत्पन्न गर्व को नष्ट करने के लिए कृष्ण अंतर्धान हो गए थे । एक बार राधा को लेकर गोपियों के बीच से और दूसरी बार राधा को छोड़ कर । इस प्रकार इस विरह के दो उपभेद हो जाते हैं- (१) गोपी विरह तथा (२) राधा विरह । इसे वनांतर विरह के अंतर्गत लिया जा सकता है ।

(१) <u>गोपी विरह-</u> कृष्ण के अंतर्धान होने पर गोपियों की व्याकुलता तथा विरहाग्नि की तीव्रता एवं मिलन की तीव्र आकांक्षा उनके विरह वर्णन में व्यक्त होती है । उन्हें अभी-अभी साथ में रहे कृष्ण के इस प्रकार से अंतर्धान होने पर आश्चर्य और व्याकुलता प्रकट होती है ।

हुते कान्ह अबहीं संग बन मैं, मोहन-मोहन कहि-कहि टेरै ।
ऐसौ संग तजि दूरि भए क्यौं, जानि परत अब गैयनि घेरै ।
चूक मानि लीन्ही हम अपनी, कैसेहु लाल बहुरि फिरि हेरै
ढूँढति हैं द्रुम बेली बाला, भई बिहाल करति अवसेरै ।[१७२]

---

१७०- विरह मंजरी-नंददास-शुक्ल २९
१७१- सूरसागर १५२५

तथा-

ह्वै गई विरह विकल मन, बूझत द्रुम- बेली बन ।
को जड़, को चैतन्य, कछुन जानत विरही जन ।।[१७३]

तथा- माई री डार डार पात पात बूझत बनराजी ।
हरि कौ पथ कोउ न कहै सबनि मौन साजी ।।
वसुधा जड़ रूप धर्यौ मुखहू नहीं बोलै ।
हरि को पद परस भयो संग लागि डोलै ।।
"परमानंद" स्वामी" गोपाल निरभै भये माई ।
हमरो गुन दोस जानि कीनी चतुराई ।।[१७४]

राधा-विरह-

गोपियों को छोड़कर कृष्ण जब अकेली राधा को लेकर अंतर्धान हो गए तो उनमें गर्व का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही था । गर्वोन्नत होकर राधा कृष्ण से अनुचित प्रस्ताव (कंधे पर चढ़ाना ) करती हुई भी न हिचकिचाई । भगवान ने उनका भी गर्व खंडित किया । वे वहाँ से भी अंतर्धान होगए ।[१७५] दुःसह विरह में राधा पड़ गईः-

बाएं कर द्रुम टेके ठाढ़ी ।
बिछुरे मदन गोपाल रसिक मोहिं, विरह -व्यथा तनु बाढ़ी ।
लोचन सजल, वचन नहिं आवै, स्वास लेति अति गाढ़ी ।
नंद लाल हमसौं ऐसी करी, जल तैं मीन धरि काढ़ी ।
तब कत (लड़ाइ/लाड़) बढ़ैतै, बेनी कर गुही गाढ़ी ।
सूरस्याम प्रभु तुम्हरे दरस बिनु अब न चलत डग आढ़ी ।।[१७६]

तथा-

---

१७३- नंददास- रास पंचाध्यायी - शुक्ल, पृ० १६७

१७४-परमानंद सागर २३५

१७५- सूरसागर १७९०

१७६- वही १७९१

पूछत है खग मृग द्रुम बेली ।
हमैं तजि गये री गोपाल अकेली ।।
अहो चंपक मालती तमाला ।
तुम्है परसि गये नंद लाला ।।
ज्यौं गजराज बिना गजकरनी ।
कृष्ण सार बिन व्याकुल हरिनी ।।
परमानंद प्रभु मिलहु न आई ।
तुम दरसन बिन हंस उड़ाई ।।[१७७]

गोपी और राधा का यह विरण वर्णन सूर, नंद और परमानंददास ने ही किया है । अन्य अष्टछापी कवियों ने रास के आनन्दोत्सव पक्ष का ही वर्णन किया है ।

देशान्तर अथवा प्रवास जन्य- विरह

देशान्तर अथवा प्रवास जन्य - विरह का ही वल्लभ सम्प्रदाय साहित्य में सबसे अधिक विस्तार मिलता है । इस विरह के वर्णन में सूरदास ने तो जो कुछ भी संभव था सब कह दिया । यथार्थ में विप्रलंभ के अंतर्गत इसी श्रृंगार का विश्लेषण आलोचकों ने किया है । यह वियोग कंस के संदेश के अनुसार अक्रूर के साथ कृष्ण और बलराम के मथुरा जाने के समय से प्रारंभ होकर गोपियों के जीवन भर रहता है । कुरुक्षेत्र में ही क्षणिक भेंट- उसे मिलन कहना अधिक उपयुक्त न होगा - इसमें संयोग माना जा सकता है और यही तथा मिलन की निरंतर आशा ही इसे करुण विप्रलंभ होने से बचा लेती है । इस विप्रलंभ के दो रूप हैं - (१) साधारण विरह तथा (२) भ्रमरगीत ।

साधारण विरह-

इसके अंतर्गत गोपियों और राधा का भ्रमरगीत के अतिरिक्त का विरह है । इसे भी दो उपभागों में बांट सकते हैं । एक तो गोपियों का विरह तथा दूसरा राधा का विरह । इनमें भी गोपियों के विरह का ही विशेष वर्णन है । राधा का अधिक

में वह ऐसी डूब गई थी कि वहां अपने दर्द को कहने की हालत नहीं रही । उसे कृष्ण से न कोई शिक्वा था न शिकायत । पर गोपियों के विरह- कथन के पीछे से राधा का विरही हृदय झांकता रहता है । यथार्थ में उसी के गंभीर प्रेम की एक झलक हमें गोपियों के विरह में मिलती है । गोपियों का विरह अधिक मुखर और विविध रूप में चित्रित है । यह वर्णन सभी कवियों ने किया है तथा इसका विस्तार से अष्टछाप का अध्ययन करने वाले सभी विद्यार्थियों ने किया है, अतएव उसके विषय में विशेष नहीं लिखा जा रहा है ।

भ्रमरगीत-

उपर्युक्त विरह का प्राण तथा वल्लभ- संप्रदाय का सर्वोत्तम अंश भ्रमरगीत का है । हिन्दी साहित्य के पूर्व से ही भ्रमर-गीत काव्य की परंपरा रही है, और उसका अत्यन्त सुंदर विकास इस संप्रदाय में हुआ है । भ्रमरगीत में कृष्ण का उद्धव के ज्ञान गर्व को खंडित करने, गोपियों के प्रेम की महत्ता स्थापित करने तथा अपना संदेश देने का उल्लेख है । इसमें एक भ्रमर के बहाने कृष्ण और उद्धव, योग तथा ज्ञान पर ऐसे छींटे कसे गए हैं जिनका रस अनिर्वचनीय है । हिन्दी में भ्रमरगीत का विस्तृत अध्ययन स्वतंत्र रूप से दो विद्वानों द्वारा हो चुका है ।[१७८] अतएव इसका भी विशेष उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है । इसके संबंध में केवल निम्नलिखित बातों की ओर ध्यान आकर्षित कर देना आवश्यक है:-

(१) भ्रमरगीत में भी राधा के विरह का प्रत्यक्ष वर्णन अल्प है, उसकी व्यंजना ही अधिक है ।

(२) कृष्ण भी सबको संदेश भेजते है पर राधा को नहीं । राध भी अपने प्रेम की गंभीरता को समझ उसकी मर्मान्तिक पीड़ा को हृदय में ही छिपाए रहती है ।

(३) राधा ने उद्धव से भी न तो एक शब्द कहा और न कृष्ण को अपने विरह का एक संदेश भेजा ।

---

१७८- डा० स्नेहलता श्रीवास्तव एवं डा० श्यामसुन्दर दी...

(४) फिर भी उसका ही विरह सम्पूर्ण काव्य पर छाया रहता है । प्रत्येक उक्ति के पीछे राधा के हृदय की धड़कन सुनाई पड़ती है । और यही कारण है कि उद्धव ने सभी गोपियों को छोड़-कर राधा के विरह का ही कृष्ण से अत्यंत हृदय-द्रावक वर्णन किया है:-

चित दै सुनौ स्याम प्रवीन ।
हरि तुम्हारै विरह राधा, मैं जु देखी छीन ।
तज्यौ तेल तमोल भूषन, अंग बसन मलीन ।।
कंकना कर रहत नाहीं, टाड़ भुज गहि लीन ।
जब संदेसौ कहन सुंदरि, गवन मो तन कीन ।
छुटी छुद्रावलि चरन असम्मी गिरी बल हीन ।
कंठ बचन न बोलिआवै, हृदय परिहस भीन ।
नैन जल भरि रोइ दीनौ, ग्रसित आपद दीन ।
उठी बहुरि सँभारि भट ज्यौं, परम साहस कीन ।
सूर हरि के दरस कारन रही आसा लीन ।।[१७९]

कुरुक्षेत्र में भी रुक्मिणी राधा की चितवन देखते ही उसके प्रेम की गंभीरता समझ गई । तभी तो उससे सगी बहन की भाँति भेंटी ।।[१८०] वियोग जन्य दुख स्थिति में सभी गति तो हो गई । सारा गोकुल बदला सा लगने लगता है । शरीर में अनल से भी अधिक दाहकता आ जाती है । श्रृंगार और सुख सभी छूट जाते है । मिलन की कोई आशा नहीं दीखती । मुरली का रव फिर नहीं सुनाई पड़ा । स्वप्न में भी प्रिय दर्शन नहीं होता और प्रकृति भी या तो जड़ हो गई है, या वह भी वियोगनी सी प्रतीत होती है अथवा विरही को और अधिक दुख देती है । ऐसी स्थिति में विरह की सभी दशाएं हो गई । इन दशाओं का वर्णन सभी कवियों ने संक्षेप अथवा विस्तार से किया है । उनमें से कुछ के उदाहरण नीचे जा रहे है:-

---

१७९- सूरसागर ४७२५

१८०- वही ।।।१

विरह की दशाएं:-

(१) अभिलाषा- ऐसे समय जो हरि जू आवहिं ।
निरखि निरखि वहरूप मनोहर, नैन बहुत सुख पावहिं ।
तैसिय स्याम घटा घन घोरनि, बिच बगपांति दिखावहिं ।।
तैसेइ मोर कुलाहल सुनि सुनि, हरषि हिंडोरनि गावहिं ।
तैसीयै दमकति दामिनी अरु, मुरलि मलार बजावहिं ।।
कबहुंक संग जू हिलि मिलि खेलहिं, कबहुंक कुंज बुलावहिं ।
बिछुरे प्रान रहत नहिं घट मैं, सो पुनि आनि जियावहिं ।।
अबकै चलत जानि सूरज, प्रभु सब पहिले उठि धावहिं ।।[१८१]

(२) चिन्ता- रात पपीहा बोल्यो री माई ।
नींद गई, चिंता बाढ़ी, सुरति स्याम की आई ।
सावन मास देखि वरखा, रितु हौ उठि आँगन धाई ।
गरजत गगन दामिनी, दमकत तामें जीउ उड़ाई ।।
राग मलार कियौ जब काहू मुरली मधुर बजाई ।
बिरहिन बिकल- दास "परमानंद" धरनि परी मुरझाई ।।[१८२]

(३) स्मृति- कोउ कहै रे मधुप हौहि तुम से जो संगी ।
क्यौं न हौहि तन स्याम, सकल बातन चतुरंगी ।।
गोकुल मैं जोरी काऊ, पाई नाहिं मुरारि ।
मदन त्रिभंगी आप है, करी त्रिभंगी नारि ।।
रूप-गुन -सील की ।।[१८३]

(४) गुणकथन- कहा दिन ऐसे ही चलि जैहैं ।
सुनि सखि मदन गुपाल आंगन मैं, ग्वालिन संग न ऐहैं ।
कबहू जात पुलिन जमुना के, बहु बिहार बिधि खेलत ।
सुरति होत सुरभी संग आवत, पुहुप गहे कर झेलत ।
मृदु मुसकानि आनि राख्यौ जिय, चलत कह्यौ है आवन ।
सूर सुदिन कबहूं तौ ह्वै है, मुरली सबद सुनावन ।।[१८४]

---

१८१- सूरसागर ४००५
१८२- परमानंद -सागर -५३१
१८३- भँवरगीत नंददास- शुक्ल पृ० १३७
१८४- सूरसागर ३८४१

(५) उद्वेग-

माई । कुछ न सुहाई मोहि, मोर- बचन सुनि बन मैं लागे सोर-
करन ।
स्याम -घटा पंगति बगुलानि की देखि-देखि लागी नैन भरन ।।
गरजत गगन, दामिनी कौंधति निसि अँधियारी, लाग्यौ जीउ-
स डरन ।
नींद न परै, चौंकि चौंकि जागति सूनी सेज, गोपाल घस न
चंदन-चंद, पवन, कुसुमाबलि भए विष-सम लागी देह जरन ।।
कुंभनदास प्रभु कबहिं मिलहिंगे गिरिवर-धर दुख काम - हरन ।[१८५]

(६) प्रलाप-

गोविन्द बीच दै सर मारी ।
उर तन कुटी विरह दावानल फूँकि फूँकिं सब जारी ।
सोच सोच तन छीन भयो अति कैसी देह विगारी ।
जो पहले विधि हरि के कारन अपने हाथ सँवारी ।
बरु गोपी धर जन्म न लेती रहत गरभ मैं डारी ।
परमानन्द विरहनी हरि की सोचत अरु पछताई ।।[१८६]

(७)उन्माद-

कोउ माई बरजैरी या चंदहि ।
अति हीं क्रोध करत है हम पर, कुमुदिनि कुल आनंदहि ।।
कहाँ कहौं बरषा रवि तमचुर, कमल बलाहक कारे ।
चलत न चपल रहत थिर कै रथ, बिरहिनि के तन जारे ।।
निंदति सैल उदधि पन्नग, कौं, श्रीपति कमठ कठोरहिं ।।
देतिं असीस जरा देवी कौ, राहु केतु किन जोरहिं ।।
ज्यौं जलहीन मीन तलफतिं, ऐसी गति ब्रजवालहिं ।
सूरदास अब आनि मिलावहु, मोहन मदन गुपालहिं ।।[१८७]

---

१८५- कुंभनदास ३५३
१८६- परमानंद सागर ५२८

(८) व्याधि-

निसि अँधियारी दामिनि डरपावति मोकों चमकि-चमकि
सघन बूंद परति माई री ? अस चहुं दिसि घन गरजै धमकि-
धमकि ।
बिनु हरि-समीपु भवन भयानकु अकेलै -
आँखि न लागै चौंकि- चौंकि परौं हमकि - हमकि ।
"कुंभनदास" प्रभु गोवर्द्धन -धर रसिक वर लाल,
कब मिलि हैं? लागि ह्वै रमकि- रमकि -।।[१८८]

(९) जड़ता -

व्याकुल बार न बांधति छूटे ।
जब तें हरि मधुपुरी सिधौरे उर के हार रहत सब टूटे ।
सदा अनमनी विलख बदन अति यहि ढंग रहति खिलौना फूटे ।
विरह बिहाल सकल गोपी जन अभरन मनहुं बटकुटन लूटे ।
जल प्रवाह लोचन तें बाढ़े बचन सनेह अभ्यन्तर घूटे ।
"परमानंद" कहौं दुख कासों जैसे चित्र लिखी मति टूटे ।।[१८९]

(१०) मूर्च्छा -

जबहि कह्यौ ये स्याम नहीं ।
परी मुरछि धरनी ब्रजबाला, जो जहं रही सु तहीं ।।
सपने की रजधानी ह्वै गई, जो जागी कछु नाहीं ।
सूर कहत सब ऊधौं आए, गई काम-सर मारी ।।[१९०]

(११) मरण-

मोहन वो क्यों प्रीति बिसारी ।
कहत सुनत समुभत उर अंतर दुख लागत है भारी ।
एक दिवस खेलत बन भीतर बैनी हाथ सम्हारी ।।
बीनत फूल गयो चुभि-कांटो ऐसी सही बिथारी ।

---

१८८- कुंभन दास ३५४
१८- परमानन्द दास - ५५८

हम पै कठिन हुई अत कीन्हौ लाल गुवरधन धारी ।
"परमानंद" बलबीर बिना हम मरत विरह की मारी ।।[१९१]

प्रवास में अंगों में असौष्ठव, सन्ताप, पांडुता, दुर्बलता, अरूचि, अधीरता, अस्थिरता, तन्मयता, उन्माद, मूर्च्छा और मरण, ये ग्यारह कामदशाएं भी हैं । अष्ट छाप के कवियों में इनके भी अनेक उदाहरण उपलब्ध हैं । इनमें से कुछ ही उदाहरण नीचे दिये जा रहे हैं :-

(१) असौष्ठव-

अति मलीन बृषभानुज कुमारी ।
हरि श्रम-जल भींज्यौ उर- अंचल, तिहिं लालच न धुवावति-
सारी ।।
अध मुख रहति अनत नहिं, चितवति, ज्यौं गथ हारे -
थकित जुवारी ।।
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने,ज्यौं नलिनी हिमकर की मारी ।।
हरि संदेश सुनिसहज मृतक भइ, इक विरहिनि, दूजे अलिजारी ।
सूरदास कैसें करि जीवैं, ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी ।।[१९२]

(२) संताप-

हरिबिन बैरिन रैन बढ़ी ।
हम अपराधिन निष्ठुर बिधाता काहै संवारि गढ़ी ।
तन धन जौवन वृथा जात है विरहा अनल रढ़ी ।
"परमानंद" स्वामी" न मिलै तौ घर ते भली मढ़ी ।

---

१९१- परमानंद सागर ५३२
१९२- सूरसागर ४६९१

(४) अरुचि-

आगम सावनु क्यों भरिये ?
चातक, पिक, मोर बोलत सुनि- सुनि श्रवननु जरिये ।[१९४]

निष्कर्ष-

वियोग श्रृंगार का इस प्रकार से वल्लभ - संप्रदाय में विस्तृत वर्णन है । समग्र रूप में इस विप्रलंभ के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं:-

(१) वल्लभ संप्रदाय में विरह के सभी स्वरूप प्राप्त है ।

(२) पूर्वराग, मान और विरह के वर्णन में स्वाभाविकता, विविधता और विस्तार यथेष्ट है ।

(३) भ्रमर गीत प्रसंग का विशेष विस्तार इस संप्रदाय की विशेषता है ।

(४) विरह वर्णन में राधा का अंतर्मुखी विरह उसकी तीव्रता को व्यंजित करने वाला तथा नूतन है ।

---

१९४- कुंभन दास ३५०

## ५ राधावल्लभ संप्रदाय

### स्थूल विरह का अभाव :

राधा वल्लभ संप्रदाय में नित्य-संयोग की स्थिति मानने के कारण प्रिया-प्रियतम (राधा-कृष्ण) के बीच में विरह का प्रश्न ही नहीं उठता। राधा और कृष्ण एक पल के लिए भी एक दूसरे से वियुक्त नहीं होते हैं, अतएव इस सम्प्रदाय के कवियों में उस स्थूल विरह का वर्णन नहीं किया है जो प्रवास (गोचारण अथवा मथुरागमन) से उत्पन्न होता है अथवा जिसका कारण राधा-कृष्ण के मिलन में होने वाली बाधाएं होती हैं। यहां तो अति मधुर प्रेम है। यह प्रेम विलक्षण है। इसमें मिलना या बिछुड़ना कुछ नहीं है। केवल रूप सौंदर्य का निरंतर पान कर जीवित रहना मात्र ही इसमें है।[१६५] विरह के अभाव का एक अन्य कारण भी है। जहां जैसा प्रेम होता है वहां वैसा ही विरह भी होता है। जहां स्थूल प्रेम होता है वहां स्थूल विरह भी होता है। प्रिया-प्रियतम का प्रेम अति सूक्ष्म है, इसलिए उनका विरह भी सूक्ष्म है।[१६६] इसी कथन को और भी अधिक स्पष्ट करते हुए ध्रुवदास कहते हैं कि "ऐसे अद्भुत प्रेम में और भांति को विरह न संभवै। जो फूलनि की माला देखे कुम्हिलाइ ताको असिवर को दिखाइवो अनीत। या प्रेम में न स्थूल प्रेम की समाई। न स्थूल विरह की समाई। न मान की। एक रस यह प्रेम ही विरह रूप है"।[१६७] इन कारणों से स्थूल विरह को अमान्य कर इस सम्प्रदाय ने सूक्ष्म विरह की कल्पना की है।

### सूक्ष्म विरह की कल्पना

कारण: जिस समय श्री हितहरिवंश जी ने राधा-कृष्ण के नित्य-संयोग को अपने संप्रदाय की आधार-भूमि बनाया होगा उसी

---

१६५- १ महाप्रेम निज मधुर अति, सबतें न्यारो आहि।
तहां न मिलिबो बिछुरिबो जीवत रूपहि चाहि।
ध्रुवदास-श्री ब्याहुलोल्लास लीला पृ २३

१६६- २ ध्रुवदास-सिद्धांत विचार लीला पृ ५०

समय उनके मन में यह बात भी उठी होगी कि परंपरा से स्वीकृत विचारधारा के अनुसार लोग कहीं यह न समझ लें कि उनके प्रेम भाव में विरह-सदृश तीव्रता, उत्सुकता, उत्साह, उत्कर्ष और उल्लास नहीं है। साथ ही पूर्व के भक्त और साहित्यिक भी विरह का वर्णन कर गए हैं।[१६६] अतएव विरह को अस्वीकार करते हुए भी उन्हें उसे स्वीकार करना पड़ा। यह कार्य उन्होंने विरह की एक नवीन, सूक्ष्म और विलक्षण कल्पना द्वारा किया है। इस कल्पना के द्वारा उन्होंने विरह को स्वीकार करके भी अस्वीकार कर दिया है। इस विधि से जहां एक ओर उन्होंने लोगों के आक्षेपों का समाधान किया वहां दूसरी ओर अन्य संप्रदायों में वर्णित प्रेम से अपने प्रेम के स्वरूप की श्रेष्ठता भी प्रमाणित की है। राधा वल्लभ संप्रदाय की यह कल्पना सचमुच अपने में अनूठी है।

सूक्ष्म विरह का स्वरूप

'सूक्ष्म विरह वह है जहां प्रिया-प्रियतम एकही पर्यंक पर समासीन होते हुए अपने तन और मन के पार्थक्य को असह्य मान कर तादात्म्य की बलवती उत्कंठा से प्रेम विह्वल होकर एक दूसरे में लीन हो जाना चाहते हैं। तन-मन का पार्थक्य उन्हें विरह-जन्य वेदना का का प्रतीत होता है। निरंतर एक दूसरे के रूप सौंदर्य का पान करते हुए भी मन में एक प्रकार की अव्यक्त अतृप्ति बनी रहती है और उसके कारण वे सूक्ष्म-विरह का अनुभव करते हैं।[१६७] प्रिया का एक निमिष से कम का अंतर भी प्रिय को सह्य नहीं है।[१६८] यदि प्रिया सुखी

---

१६६- "जो कोऊ कहै कि मान विरहा महापुरुषन गायौ है सो सदाचार के लिए। बौरनि को समुझाइबे को कह्यौ है। पहले स्थूल प्रेम समझै तब आगे चलै। जैसे श्री भागवत की बानी
ध्रुवदास वही -प

१६७- वि०स्नातक - राधावल्लभ संप्रदाय - पृ १४१

१६८- अद्भुत गति सखि प्रीति की, कैसेहूं कहत बनै न।
थोरेहु अंतर निमिष को, सहि न सकत पिय नैन।
ध्रुवदास रंगविहार लीला पृ २१३

से मुख मोड़ कर कोई बात करने लगती है तो प्रिय की गति कोटि विरही सदृश्य हो जाती है।[१९९] लाडली जी की तनिक सी भ्रू भंग हुई कि लाल्ड़ी भारी विरह दुख में पड़ जाते हैं।[२००] विरह की यह विचित्र दशा अत्यंत विस्मयकारी है। प्यासा जल न पीकर जल ही प्यास को पी जाता है। प्यास ही जल हो गई। अटपटी बात है।[२०१] मिलन में ही होने वाला यह ऐसा अद्भुत विरह है। श्रीकृष्ण के क्रोड़ में विराजमान राधा भी सहसा हा मोहन। मोहन करके प्रलाप कर उठती हैं। मिलन में, सामीप्य लाभ के क्षणों में भ्रम, कल्पना या अल्पतम व्यवधान से उत्पन्न यह विरह है। विरह के इस स्वरूप को स्पष्ट करने वाली को कुंडलियाँ भी श्री हरिवंश जी की स्फुट वाणियों में मिलती हैं। "इन कुंडलियों में संसार में प्रसिद्ध दो कोटि के प्रेमियों के उदाहरण देकर इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। चक्रवाक-दंपति और सारस युगल का प्रेम काव्य-साहित्य में अपने-अपने ढंग से त्याग और बलिदान के लिए प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि चकई रात्रि होते ही अपने प्रियतम चकवा से वियुक्त होकर नदी के दूसरे किनारे चली जाती है। रात भर विरह वेदना से संतप्त रहती है और दैव के इस विधान को सह कर प्रभात होने तक अपने प्रियतम से मिलने की बाट जोहती है। रात्रि के विरह से उसकी अनुभूति तीक्ष्ण और प्रबल हो जाती है और प्रभात का मिलन उसे अपेक्षाकृत अधिक आह्लादक एवं आनन्दमय प्रतीत होता है, 'सुखं हि दुखान्यनुभूय शोभते।' चकई की दृष्टि में यह विरह उसके प्रेम की परीक्षा है, उसकी वेदना का

---

२०० चितई नैक चपल भ्रू भंगा। कांपत लाल सकल अंग अंगा।
बचन सगर्व सुनत हुंकारा। प्रीतम देह रही न संभारा।
बिवस भये विरहज दुख भारी। लटकि परे गहि चरन बिहारी॥
-ध्रुवदास-रति मंजरी लीला पृ १९३

और भी
जबही उर सौं धुर लपटांही। तब नैना विरही ह्वै जांही
छूटे जबही छवि देख्यौ करैं। विरह अगनि अंगनि संचरै।

विरह [illegible] छिनहि छिन मांही। जदपि ग्रीवनि [illegible]
--ध्रुव-रहस्य मंजरी लीला पृ १८६

२०१ अटपटी भांति को बिरह सुनि, भूलि रह्यौ सब कोई।

अन्त मिलन रूपी वरदान में होता है अत: वह इस वियोग को सहन करने में गौरव ही समझती है । चकई की इस दशा पर व्यंग करता हुआ सारस कहता है--"हे चकई, प्रिय वियोग के बाद भी तेरे शरीर में प्राण व्यर्थ ही रहते हैं । सरिता के दो कूलों की दूरी, रात्रि का भयंकर समय, भयावह निर्जन स्थान और भविष्य मेघ गर्जन के होते हुए भी तू अपने प्रियतम से बिछुड़ कर जीवित रहती है, तुझे अपने इस जीवन पर लज्जा क्यों नहीं आती ? अश्रुविहीन नेत्रों से कैसे तू प्रभात की प्रतीक्षा करती हुई प्राण-रक्षा करती है ? कौन-सा ऐसा सन्देश है जो तुझे प्रभात तक जीवित बनाए रहता है ? विरह की दारूण घड़ियों में जीवित रहने को मैं तो प्रेम की न्यूनता ही मानता हूं । विरह में जीवित रहना क्या किसी सच्चे प्रेमी को शोभा देता है ।[२०२]

सारस की इस व्यंग्योक्ति में विरह-भाव पर गंभीर आक्षेप छिपा है जो प्रेम में वियोग की कल्पना भी सहन नहीं कर सकता । किंतु बिना विरह के प्रेम का पूर्ण परिपाक भी तो संभव नहीं ? तब फिर कौन सी स्थिति यथार्थ , युक्तियुक्त और मनोवैज्ञानिक है । सारस की इस उक्ति के पीछे उसका अपना आत्मबलिदान, त्याग और प्राण विसर्जन का भाव छिपा है ।

सारस युगल के लिए प्रसिद्ध है कि ज्योंही उनमें से एक का बिछोह होता है, दूसरा उसके विरह में तड़प-तड़प कर प्राण गंवा देता है । अत: सारस की दृष्टि में चकई का विरह दशा में भी जीवित रहना प्रेम का दंभ करना है । चकई का प्रेम कहीं न कहीं न्यून है, तभी तो विरह में भी वह जीवित रहकर मिलन की आकांक्षा सहेजती है । किंतु चकई की दृष्टि में से विरह में जीवित रहना प्रेम की न्यूनता नहीं वरन् प्रेम की परिपूर्णता ही है । सारस की व्यंगमयी भर्त्सना का उत्तर देती हुई चकई कहती है कि--हे सारस । सरित के दूसरे कूल पर जाकर रात्रि-भर विरह वेदना को सहकर और प्रेमाग्नि के संताप -- अनुभव करके जीवित रहना ही प्रेमोन्माद का परिचायक है । में प्राण देने से तो प्रेमी के प्रति अपनी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति --

---

२०२ श्री हितहरिवंश - स्फुटवाणी ५

ही नहीं आता । प्रेम की यथार्थ और परिपूर्ण अनुभूति के लिए विरह की घड़ियों का दाह अनुभव करना अनिवार्य है । हे सारस तुम निरंतर अपने प्रेम पात्र के पास रहते हो अतः प्रेम के मर्म का तुम्हें भला क्या पता हो सकता है ।[२०३]

"सारस-चकई" के इस संवाद को प्रस्तुत करने का हमारा प्रयोजन यही है कि ये दोनों कुंडलियाँ सम्प्रदाय में प्रेम-सिद्धांत की स्थापना करने वाली मानी जाती हैं । इनमें से कोई सा एक पक्ष स्वीकार नहीं किया जाता वरन् चकई की विरहाकुलता और सारस का आत्म-त्याग दोनों ही मिलकर प्रेम के स्वरूप को स्पष्ट करते हैं । श्री करपात्री जी ने इस प्रेम तत्व को इस प्रकार व्यक्त किया है --'सारस-पत्नी लक्ष्मणा केवल संप्रयोग-जन्य रस का ही अनुभव करती है और चक्वी विप्रयोग-जन्म तीव्र ताप के अनन्तर सहृदय-हृदय-वेद्य सम्प्रयोग-जन्म अनुपम रस का आस्वादन करती हैं, परंतु वह भी विप्रयोग काल में सम्प्रयोग-जन्य रसास्वादन से वंचित रहती है । परंतु नित्य-निकुंज में श्री निकुंजेश्वरी को अपने प्रियतम परम प्रेमास्पद श्री ब्रजराज किशोर के साथ सारस-पत्नी लक्ष्मणा की अपेक्षा शत कोटि गुणित दिव्य संप्रयोग-जन्म-रस की अनुभति होती है और साथ ही चक्वी की अपेक्षा शतकोटि गुणित अधिक विप्रयोग-जन्य तीव्र ताप के अनुभव के अनन्तर पुनः दिव्य रसानुभूति होती है । यही इसकी विशेषता है ।[२०४] भागवत संप्रदाय नामक ग्रंथ में राधावल्लभीय संप्रदाय प्रकरण में इस विषय पर विचार व्यक्त करते हुए श्री बलदेव उपाध्याय ने लिखा है-- 'प्रेम विरहा ही राधावल्लभीय पद्धति का सार है । मिलने में भी विरह जैसी उत्कंठा इसका प्राण है । युगल किशोर श्री राधावल्लभ-लाल के नित्य मिलन में वियोग की कल्पना तक नहीं है । परन्तु इस मिलन में प्रेम की क्षीणता नहीं, प्रत्युत प्रतिक्षण नूतनता का स्वाद है ।[२०५] प्रेमासव का अनवरत पान करने पर भी अतृप्ति रूपी महान विरह की छाया सदा बनी रहती है, प्रतीत होता है

---

२०३ हितहरिवंश-स्फुटवाणी ६

२०४ श्री भगवत्तत्व - श्री करपात्री जी पृ १६१

२०५ भागवत सम्प्रदाय - श्री बलदेव उपाध्याय पृ ४४०

रहत मानों कबहुं मिले ना ।[२०६,,२०७]

विरह के भेद:

राधावल्लभ संप्रदाय में वर्णित विरह के दो ही भेद हैं। पूर्वराग और प्रवास का तो वहां स्थान ही नहीं है। केवल एक या दो स्थल ऐसे हैं जिनमें पूर्वराग का आभास देखा जा सकता है किंतु साम्प्रदायिक दृष्टि से उसकी स्वीकृति नहीं है। इस संप्रदाय में विरह के प्राप्य भेद हैं सूक्ष्म विरह जिसे प्रेम-वैचित्य या पलकांतर विरह भी कहते हैं तथा मान।

प्रेम वैचित्य अथवा पलकांतर विरह :

साहित्य तथा भक्तिशास्त्र में निरंतर मिलन की स्थिति में भी अव्यक्त अतृप्ति से उत्पन्न सूक्ष्म विरह को प्रेम वैचित्य कहते हैं। उज्ज्वल नीलमणि में रूप गोस्वामी ने इसकी निम्नलिखित परिभाषा दी है।

---

२०६ तन मन से बिछुरे नहीं चाह बढ़े दिन रैन।
कबहुं संजोग न मानहीं देखत भरि - भरि नैन।
श्री लोकनाथ-चतुरासी के टीकाकार

२०७ वि०स्नातक-राधावल्लभ संप्रदाय पृ ४३८-४४०

२०८ नन्द के लाल हरयो मन मोर।
हौं अपने मोतिन लर पोवति कांकर डारि गयो सखि मोर
बंक बिलोकनि चाल छबीली रसिक शिरोमणि नंद किशोर
कहि कैसे मन रहत श्रवन सुनि सरस मुरली की घोर
इंदु गोविन्द बदन के कारन चितवन कों भये नैन चकोर।
जै श्री हित हरिवंश रसिक रस जुवती तू ले मिलि सखी प्रा...
हित चौरासी १३ तथा ध्रुवदास ब्रजलीला पृ ...

प्रियस्य संनिकर्षेऽपि प्रेमोत्कर्षस्वभावतः ।
या विश्लेषधियार्तिस्तत्प्रेम वैचित्यमुच्यते ।।[२०९]

इस विरह में पलक गिरने तक के समय का वियोग भी असह्य होता है इसलिए इसेपलकांतर विरह भी कहते हैं । हित हरिवंश जी ने इस भाव को जो व्यक्त करने के लिए नेत्र वर्णन का प्रसंग चुना है और एक पल के लिए केश लट के नेत्र के आगे आजाने से दर्शन की बाधा को विरह की तीव्र वेदना कहा है ।[२१०]

ध्रुवदास में इस विरह का एक उदाहरण निम्नलिखित है:

मधुर ते मधुर अनूप ते अनूप अति ।
रसनि को रस सब सुखनि को सार री ।
विलास को विलास निज प्रेम की राजे दशा ।
राजै एक छत्त दिन विमल विहार री ।
छिन छिन त्रिषित चकित रूप माधुरी में,
भूले सेई रहै कछु आवै न विचार री ।
भ्रमहू को विरह कहत जहां डर आवै ।
ऐसे है रंगीलै ध्रुव तन सुकुमार री ।।[२११]

पलकांतर वियोग को व्यक्त करते हुए ध्रुवदास जी ने कहा है -------- एक सेज पर रूप देखत चन्द चकोर ज्यों नैनाचल ओट भये महा कठिन दशा होइ अरू देहु हू अपनी न्यारी नाही सहि सकति यह हू विरह मानत है ।[२१२]

---

२०९- पृ० ५४८

२१०- कहा कहौं इन नैननि की बात ।
ये अलि प्रिया वदन अम्बुज रस अटके अनत न जात ।
जब जब रूकत पलक सम्पुट लट अति आतुर अकुलात ।
लम्पट लव निमेष अन्तर ते अलप कलप सत सात ।
श्रुति पर कंज, दृगजन कुच विच मृग मद ह्वै न ....
जै श्री हित हरिवंश नाभि सर जलचर जांचत सांवल गात
हित० चौ०

२११- ध्रुवदास - हित श्रृंगार लीला - पृ० १९६

प्रेम वैचित्य या सूक्ष्म विरह का यही रूप है । राधा-वल्लभीय संप्रदाय में स्थूल विरह का कोई स्थान नहीं है जैसा कि ध्रुवदास जी ने स्पष्ट कहा है ।[२१३] डा० स्नातक भी इसी मत से सहमत है,[२१४] किंतु हित चौरासी में ही एक - आध पद ऐसे हैं जिनमें स्थूल विरह का आभास है ।

> बेगि चलहि उठि गहर करत कत निकुंज बुलावत लाल ।
> हा राधा राधिका पुकारत निरख मदन गज ढाल ।।
> करन सहाय शरद शशि मारुत, फूटि मिली उर माल ।
> दुर्गम तकत, समर अति कातर, करहि न प्रिय प्रतिपाल ।।
> जै श्री हितहरिवंश चली अति आतुर श्रवन सुनत तेहि काल ।।
> लै राखे गिरि कुंज बिच सुन्दर सुरत सूर ब्रज वाल ।।[२१५]

फिर भी, उक्त निःसन्देह है कि राधावल्लभीय साहित्य में ऐसा स्थूल विरह अपवाद स्वरूप ही कहीं मिलेगा ।

मान-

स्थूल मान का अभाव -

सिद्धांत रूप में राधा-वल्लभ संप्रदाय में स्थूल मान का अभाव है जो कि स्थूल विरह की अस्वीकृति के कारण स्वाभाविक ही है । " हित श्रृंगार लीला" में ध्रुवदास ने इसका खंडन निम्न-लिखित शब्दों में किया है ।

> तहां मान कैसे बनै अद्भुत अहै यह प्रेम ।
> भीजे दोऊ आसक्त रस कह समाय बिच नेम ।।[२१६]

---

२१३- जहां संयोग में देखत देखत विरह रहे तहां स्थूल विरह ... समाई नहीं । सब रस, सब श्रृंगार , सब प्रेम, सब ... धरै श्री किसोर किसोरी जू की सर्वदा सेवत रहत है पृ० ४४

२१४- वि० स्नातक- राधावल्लभ सम्प्रदाय १४२

२१५- हित चौरासी - ३८

किंतु जिस प्रकार से इस सम्प्रदाय में स्थूल विरह को अस्वीकार कर भी सूक्ष्म विरह की कल्पना द्वारा उस अंग की पूर्ति की है, वैसे ही स्थूल मान का खंडन करके भी कवियों ने मान के मधुर क्षणों का वर्णन कियाहै। सूक्ष्म विरह के अनुरूप ही इसे भी सूक्ष्म मान कहा जाता है।

सूक्ष्म मान का स्वरूप

मिलन के क्षणों में उद्भूत यह मान है जो कि सामान्यतः संभ्रम से उत्पन्न होता है। साहित्यिक शब्दावली में इसे प्रणयमान के अंतर्गत लिया जा सकता है। हरि उर के मुकुर में अपने ही प्रतिबिम्ब को अन्य स्त्री समझ कर राधा मान करती है।[२१७] अथवा बिनाकारण ही कभी वे कोप कर रुठतीहैं अथवा उदासीन हो जाती है।[२१८] ऐसे क्षणों में संयोग होते हुए भी मान विप्रलंभ की सृष्टि होती है। यह मान क्षणिक होता है पर इसकी विरहानुभूति अत्यंत तीव्र होती है। "साहित्यिक ईर्ष्या मान" का वर्णन इस संप्रदाय में उपलब्ध नहीं है।

---

२१७- हरि उर मुकुर विलोकि अपनुपौ विभ्रम विकल मान जुत मोरी।
चिबुक सुचारु प्रलोय प्रबोधित प्रिय प्रतिबिम्ब जनाय निहोरी
नेति नेति वचनामृत सुनि सुनि ललितादिक देखति दुरि चोरी
जैश्री हित हरिवंश करत कर धूनन प्रणय कोप मालावलि तोरी
हित चौरासी पद ७

तथा - भक्त कवि व्यासजी -श्रृंगार रस विहार पृ० ३१८

२१८- राधा प्यारी हो मान न करु
अन्तर विरह दहन तन जारत, बरखावहि बिम्बाधर जलधरु।
बिन अपराध कोप न कीजै, दीनै हौ प्यारी
प्रान दान धन, राजा तेरो हौ अनुचर,
व्यास स्वामिनी मन्द हास करि, कंठ लगाइ लयै।
श्री व्यासवाणी (मान प्रकरण)
पृ० २४७

मान का विस्तृत वर्णन श्री व्यास जी ने अपनी वाणी में किया है। डा० स्नातक का कथन है कि "उसका साम्प्रदायिक भावना से ही अर्थ करने पर वह संगत प्रतीत होता है।[२१९] ऐसा मानने की कोई विशेष आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। उदारमना भक्ति कवि साम्प्रदायिक सिद्धांतों को ही दृष्टि में रख कर रचना करते रहे हैं। यह अनिवार्य नहीं है।। फिर राधावल्लभ संप्रदाय में जिसकी अपनी कोई पुष्ट दार्शनिक आधार भूमि भी नहीं भी नही थी यह और भी आवश्यक नहीं है। संभावना तो यही है कि कुछ भक्तों ने बाद में इन्हीं महात्मा की वाणियों से साम्प्रदायिक सिद्धांतों की रूपरेखा का निर्माण किया होगा। ऐसा होने के बाद भी संभव है कि अनेक भक्तों ने हृदयहारी स्थलों की अभिव्यक्ति साम्प्रदायिक भावना से परे होकर की है। यही कारण है कि श्री हरिवंश जी तथा व्यास जी में स्थूल मान के प्रकरण भी मिलते हैं। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित दृष्टव्य है:-

तेरे हित लैन आई, बन ते श्याम पठाई, हरति कामिनि घन कदन-
काम कौ।
काहे को करत बाधा, सुनिरी चतुर राधा, भेटि कै मेटि री-
माई प्रगट जगत भौ।
देखिरी रजनी नीकी, रचना रुचिर पिय की, पुलिन नलिन-
नभ उदित रोहिनी धौ।
तू तौ व सखी सयानी, तै मेरी एकौ न मानी, हौं तोसौं -
कहत हारी जुवति जुगति सौ
मोहन लाल छबीलौ, अपने रंग रंगीलौ, मोहत विहंग पशु मधुर-
मुरली रौं।
वै तौव गनत तन जीवन जोवन तब जे श्री हित हरिवंश हरि-
भजहि भामिनि जौं।[२२०]

---

२१९- वि० स्नातक - राधावल्लभ संप्रदाय पृ० १३७
२२०- हित चौरासी ५८

तथा-

चलहि किन मानिनि कुंज कुटीर, तो बिन कुंवरि कोटि बनिता-जुत
मथत मदन की पीर ।
गद-गद सुर, विरहाकुल, पुलकित, स्रवत विलोचन नीर ।
क्वासि-क्वासि वृषभानु नंदिनी बिलपत विपिन अधीर ।।
बंशी बिसिष, व्याल माला बलि, पंचानन पिक कीर ।
मलयज गरल, हुतास्न मारूत, साखामृग रिपुधीर ।।
जै श्री हित हरि वंश परम कोमल चित चपल चली पिय तीर ।
सुनि भयभीत बज्र को पंजर सुरत सूर रणवीर ।।[२२१]

उपर्युक्त दो उदाहरणों से तथा इन कवियों के अन्य वर्णनों से स्पष्ट हो जाएगा कि इन कवियों ने स्थूल मान का वर्णन किया है और उसको इसी रूप में ग्रहण करना चाहिए ।

मान मोचन

राधावल्लभ सम्प्रदाय में मान-मोचन के छः शास्त्रीय उपाय, साम, भेद, दान, नति, उपेक्षा और रसान्तर में साम और भेद ही का विशेष प्रयोग हुआ है । दान, उपेक्षा और रसान्तर का नितान्त अभाव है । नति के भी स्वल्प उदाहरण मिल सकते हैं । इनके कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं :-

(१) साम- जब नायक प्रिय वचनों द्वारा नायिका को मनाता है तो उसे साम कहते हैं ।

काहे कों लाडिली, मो सों मान करति ।
मेरी प्रकृति जैसी, वैसी तुहि जानति, गुन अपगुन कत जिय मंह धरति ।।
ताही पर कीजे कोप, जाही सों सपनेहू न बीच, नीच कामहिं पाहे
हू डरति ।
'व्यास' स्वामिनी तू चतुर-सिरोमनि, ओचका पाहे तैं निकै
मरति ।।

---

२२१ वही ३७ तथा देखे व्यासजी- श्रृंगार रसविहार पृ ३२३ आदि
२२२ व्यास श्रृंगार रस-विहार पृ ३१६ पद ४८१

अथवा

बिरह-व्याधि तन बाढ़ी, राधा करि उपचारू ।
दै अधरामृत, मृतक-रसाइन, कुच-गुटिका घटिका उर डारू ।।
रोग-हरन निज-चरन-सरोरूह, नैननि धरि कर-पंकज चारू ।
अंगराज-अंजना सु देहि अब, अंजन-पीक लीक गदसारू ।।
प्रतिपालय, करूना-बरूनालय, तौ बिनु अनत नहीं निस्तारू ।
यह सुनि व्रत तजि, प्रिय अंग-अंगनि 'व्यास' स्वामिनी करत बिहारू।।[223]

(२) भेद

जब नायक नायिका की सखी को अपनी ओर मिला लेता है और उसके सहारे अपना कार्य-साधन करता है तो उसे भेद कहते हैं । मान-मोचन की यह सबसे महत्वपूर्ण और बहु प्रयुक्त विधि है । इस प्रसंग का भी व्यासजी ने ही अत्यंत मोहक विस्तार किया है । इस प्रसंग को निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत देखा जा सकता है :-

(क) श्री कृष्ण का सखी से अपना विरह निवेदन

श्री कृष्ण सखी से अपना विरह निवेदन करते हैं, कि मेरे हृदय के ताप को मिटाने वाली कहां मिलेगी । मैं कोई युक्ति नहीं जानता हूं ।[224] मैं किससे अपनी दारूण पीड़ा कहूं । काम की ज्वाला मुझे जलाती रहती है । आभूषणादि दुख देने वाले लगते हैं । माला व्याल सम, मुकुट कुकुट सम, बंसी सर तीर सम, किशलय की शैय्या कंटक सम तथा चंद्रमा, चंदन और समीर विष सम लगते हैं । मोर, चकोर, हंस, पिक, मधुकर और कीर की बोली भयानक लगती है ।[225] ललिता मुझको आधीरात को दुख सागर में प्रिया छोड़ गई । रात्रि कैसे बीतेगी । प्रात: प्राण छूट जाएंगे । जब राधा के उरोजों को देखूंगा तभी मेरे नेत्रों से कामदेव निकलेंगे ।[226] हे सखी ---

---

२२३ - वही पद ४८२ तथा ४८३-४८८

२२४ - ६ हरिव्यास श्रृंगार रस बिहार पृ 321 पद ४८६

२२५ - १० वही वही पद ४६१

२२६ - ११ वही वही पृ ३२२ पद ४६२

उससे जाकर मेरा संदेश कहना । मनुहार कर चरण कमलों को पकड़ रहना । मुझे जो कुछ किशोरी कहे उसे सहन करना तथा मेरी ओर से उसका प्रगाढ़ालिंगन करना ।[२२७] इस प्रकार से लालजी सखी से अपना विरह निवेदन कर राधा के मान मोचन का उपाय करते हैं ।

(ख) सखी का राधा से मान-मोचन के लिए कथन

मान-मोचन के प्रसंग में ऐसे ही कथनों की प्रधानता है । सखी विविध प्रकार से सीख देकर, ऊंच-नीच समझा करके राधा का मान-भंग कर कृष्ण से मिलाती है । कभी वह कृष्ण-विरह का वर्णन करती है,[२२८] कभी वह राधा की कठोरता का उल्लेखकर उसकी भर्त्सना करती है ।[२२९] कभी वह उसके पावों पड़ती है, बलाएं लेती है, हा, हा खाती है ।[२३०] कभी वह कहती है, 'नागरी मान न करो, कितनी बार तुझे सिखा चुकी हूं,[२३१] इससे 'निशा-रस' की हानि होती

---

२२७- १२ वही वही पृ ३२१ पद ४६०

२२८- १३ वही वही पृ ३२२ पद ४६५ । पृ ३२४ पद ५०० आदि

२२९- १४ कबहूं तैं काहू को कह्यौ न कियौ ।
जुरत बसीठी तैं सीठी करि डारी, हठ करि कछु न लियौ ।।
नैननि तोहि कुटिलता सिखईं, और न हेत बियौ ।
कठिन कुचन की संगति कौ फल, ह्वै गयौ कठिन हियौ ।।
बिनु अपराधहिं साधु पियहिं, तै कबहुं न चैन दियौ ।
सरधा हू तैं कृपन अधर-मधु, पिय न अघाइ पियौ ।।
सुनत चली आतुर ह्वै, चातुरता बिसरी सखियौ ।
'व्यास' स्वामिनी भेंटत ही, मेरौ मोहन मरत जियौ ।।
वही पृ ३२३ पद ४९७

२३०- वही पृ ३२३ पद ४९८

२३१- वही पद ४९९

है ।[232] तेरे बिना उस स्याम-सरोवर का जल क्षीण हो गया है ।[233] कभी वह कहती है, कि सेवक का अपराध क्षमा करो। तुम्हारे भय से वे कांप रहे हैं ।[234] कभी वह समझती हैं कि ऐसे सुहावने अवसर मान के लिए नहीं होते हैं[235] तो कभी वह कहती है कि मेरे कहने से तुम चलो । कृष्ण काम कला में निपुण हैं ।[236] उनसे मान करे ऐसी कौन कामिनी है ।[237]

इस प्रकार अनेक विधियों से सखी राधा का मान-भंग करती है ।

(ग) दूती का राधा से कृष्ण का संदेश और मान-मोचन का प्रयास

सखी के अतिरिक्त कृष्ण दूतिका के द्वारा भी अपना विरह निवेदन ~~कदल~~ कराते हैं ।

---

२३२ - वही पृ ३२५ पद ५०४

२३३ - वही पृ ३२७ पद ५१४ । तथा पद ५३०, ५३५

२३४ - वही पृ ३३० पद ५२४

२३५ - वही पृ ३२७ पद ५१४

२३६ - आज मेरे कहे चलौ मृग नैनी ।
भावत सरस जुवति मंडल में पिय सौं मिलें मलें पिक बैनी ।।
परम प्रवीन कौक विधा में अभिनय निपुन लाग-गति लैनी ।।
रूपराशि सुनि नवल किशोरी पल-पल घटति चांदनी रैनी ।।
जै श्री हितहरिवंश चली अति आतुर राधारमण सुरत सुख दैनी ।
रहसि रमसि आलिंगन चुम्बन मदन कौटिकुल भई कुचैनी ।।
हित चौरासी १६

२३७ प्यारे बोली भामिनी, आजु नीकी जामिनी,
भेंटि नवीन मेघ सौं दामिनी ।
मोहन रसिक राइरी माई, जु मान करै (तासों) ऐसी कौन कामिनी
जै श्री हित हरिवंश श्रवण सुनत प्यारी राधिकारमण सौ
मिली गज गामिनी ।
हित चौरासी २
और देखें - हित चौरासी ७४, ७५, ८३

संदेसौ ई कह्यौ दूतिका आनि ।
अनबोलैं सब अंग दिखाये, नागरि लैहै जानि ।।
बदन पसारि निमेषनि बिनु चितयौ, सिर पर धरि पानि ।
कान कुकाइ, गाइ-हसि नाच्यौ, धरनि गिरनि मुरफानि ।।
पुलकित, कंपित, स्वेद भेद तन, अंसुवनि आंखि चुवानि ।
मूंदत स्रवन, उसास कंठ धरि, फारत पट दुखदानि ।।
बनमाला तोरति, जोरति कर, पौइं परति मुस्कानि ।
सीतल भैंटि कमल उर पहं धरि, कदलि-खंभ लपटानि ।।
बौरी विपदा सुनि मुनिव्रत तजि, छूटी जिय की बानि ।
'व्यासदास' के समुझि बिनोदनि, कुंवर जिवाये आनि ।।[२३८]

(ञ) स्वयं दूतिका

मान-मोचन के उपायों में भेद के अंतर्गत ही स्वयं दूतिका बनकर प्रियाजी के मान-मोचन का प्रयास भी आएगा । इसमें नायक दूती का रूप धारण कर नायिका के पास-विरह निवेदनादि करता है तथा चतुरता पूर्वक नायिका का आलिंगन-चुंबनादि प्राप्त कर लेता है । नायिका उस समय पहचान कर मुस्करा देती है और मान भंग हो जाता है । इसके, प्रसंग भी व्यासजी की ही वाणी में विशेषत: प्राप्त है । इस कार्य में सखी भी सहायक हो सकती है ।

कृष्ण दूती का रूप धारण कर राधा से कहते हैं कि प्रिय ने एक संदेश कहलाया है । वे अत्यंत व्याकुल हैं । उनके प्राण तभी रहेंगे जब तू मेरी सखी (अर्थात् दूतिका) को अपने उरोजों का दर्शन कराएगी । यदि मेरी दूती का आलिंगन करेगी तो मुझे बहुत सुख मिलेगा । दूती को चुंबन देने से मेरा हृदय शीतल होगा । यह दूती जो कुछ कहे उसे मेरा कहा समझना । राधा इस विनोद समझ कर हंस देती हैं और उनका मान भंग हो जाता है ।[२३९]

---

२३८ - व्यास जी पृ॰३२८ पद ५१८
२३९ - ,, पृ॰ ३३२ पद ५३२

एक अन्य प्रसंग में कृष्ण दूती का रूप धारण करके कहते हैं कि राधा तुम तो यहां मान किये बैठी हो वहां कृष्ण एक दूसरी ही सुंदरी पर रीझ कर केलि कर रहे हैं। विश्वास न हो तो चलकर देख लो, वृषभानु की दुहाई है। इन वचनों को सुनकर दुख से राधा रोने लगती हैं और दूती के हृदय से लिपट जाती हैं। आलिंगन करने पर दूती को कुच-विहीन देखकर तथा कृष्ण की चतुरता समझ कर सकुचा कर वे हंस देती हैं।[२४०]

सखी भी राधा से किसी श्याम किशोरी की चर्चा कर राधा से उसे देखने चलने को कहती हैं। राधा के जाने पर उनका मान भंग होता है।[२४१] अथवा राधा के समान श्याम गोरी सुंदरी हो गई हैं और कामदेव उसे अपनाने जा रहे हैं। इस कौतुक को देखने जाने से राधा का मान-भंग होता है।[२४२] ऐसे ही कई प्रसंगों की कल्पना कवि ने की है जिनमें या तो कृष्ण स्वयं दूती बने हैं अथवा सखी उनके स्त्रीरूप को दिखाने के बहाने राधा का मान भंग करती है।[२४३]

(३) नति

नायिका के मान मोचन के लिए जब नायक नायिका के चरणों पर गिर पड़ता है तो उसे नति कहते हैं। गुरू मान के मोचन की यह विधि है। इस मान का वर्णन अत्यल्प हुआ है।

ध्रुवदास ने सभा मंडल लीला में एक स्थल पर इसका उल्लेख किया है। मान कुंज में आते ही राधा की भौंहें टेढ़ी हो गईं। यह देखते ही कृष्ण उनके चरणों पर गिर पड़े और आर्ति वचनों में कहा कि तुम्ही मेरी प्राणाधार हो। राधा यह सुनकर उन्हें हृदय से लगा लेती हैं:

---

२४० व्यास पृ० ~~पदसंख्या~~ ३३५ पद ५४१
२४१ वही पृ ३३४ पद ५४०
२४२ वही पृ ३३६ पद ५४६
२४३ वही पद ५४०-५५८

मान कुंज आये जबहिं, कुंवरि भौंह भई भंग ।
चिते लाल पाइन परे, समुझि मान कौ अंग ।।
ऐसे रस में हो प्रिये, ऐसी जिय न बिचारि ।
तासों इतनी चाहिए, तन मन जौरयो हार ।।
कैसे के सहिजात है, नैक रूखाई भौंह ।
अब यातै नाहिंन और दुख, प्यारी तेरी सौंह ।।
मेरे तौ कछुवे नहीं, तुमहीं प्राननि प्रान ।
यहै बात जिय समुझि के, चित जिन आनौ आन ।।
मेरे है गति एक, तुम पद पंकज की प्रिये ।
अपने हठकी टैक, छांड़ि कृपा करि लाड़िली ।।
मोहन के मोहन वचन, सुनि मोहनी मुस्काई ।
प्यारी प्यारी प्यार सौं, लकि लियौ उर लाइ ।।[२४४]

व्यासजी ने भी मान प्रसंग में नति का एक स्थल पर वर्णन किया है :-

तू नैक देखि री, प्रीतम कौ मोहन-मुख ।
गौर चरन पर, अरून-स्याम छबि, मनौ बिधुकुल सौं करत कमल रूख ।।
अस लोचन जल-बिंदु बिराजत, मनहुं मधुप मधु बमत मानि दुख ।
आरत जानि आनि उर लालहिं, 'व्यास' स्वामिनी देति सुरत-सुख ।।[२४५]

कृष्ण-उत्सुकता और सखी की सांत्वना

मान-मोचन में जितना ही विलंब लगता जाता है नायक की उत्सुकता और चिंता भी उसी अनुपात में बढ़ती जाती है । ऐसे अवसर पर अपनी चिंता वही सखी से व्यक्त करता है और सखी नायिका का उसके प्रति प्रेम है इसकी स्मृति दिला कर उसे सांत्वना देती है । इस भाव को व्यक्त करने वाले दो-एक पद व्यासजी की वाणी में प्राप्त है । कृष्ण सखी से कहते हैं कि तमचुर बोलने लगे

---

२४४ ध्रुवदास पृ १३७
२४५ व्यासजी - पृ ३३३ पद ५३४

कमल खिल रहे हैं, चन्द्रास्त हो रहा है, भ्रमर घूमने लगे किंतु अभी भी मेरी प्यारी नहीं आई है:-

बोलन लागे री, तमचुर मधुर बोल।
अज हूं न आई प्रान प्यारी, फूलन लागे कमल-टोल।।
बरुन-दिसा खसत ससि, कंज-कोष मधुप लोल।
मदन-दहन ताप ज्वलित, अंग-राग कुसुम झोल।।
पिय-बिलास सुनत निकट, मिलत कंप पुलकित कपोल।
बिहरत 'व्यास' स्वामिनी मोहन, बस कीनो बिनु मोल।।[२४६]

कृष्ण को सांत्वना देती हुई सखी कहती है कि प्यारी अभी ही आवेगी। तुम्हारे ही समान उसे भी 'चाँप' लगी है। संतोष करो, धैर्य रखो। वह नारी है। मैं अभी देख आई हूं कि वह विकट मार्ग से आ रही है :-

अब हीं आवेगी पिय, प्यारी।
काम पोच अति, स्याम सोच तजि, सुनहु मते की--
बात सुवन दे, तनक रहीं उजियारी।।
जैसी तुमहिं चाँप, तैसीयै उनहिं जानि,
मोहि संतोष आनि, जाउं बलिहारी।
धीर धरहु मन, पीर सहहु तन, तुम जु कहावत--
सूर सब ही बिधि, कहा करै वह नारी।।
अरबरात, हौं अब ही देखि आई,
बिकट बीथिनु धाई, देह न सिंगारी।
व्यास की स्वामिनी दामिनि सी चमकति, लखी न परति,
अंग-अंग लपटानी बिहरत बिहंसि बिहारी।।[२३२]

मान के उपर्युक्त रूप ही राधावल्लभ सम्प्रदाय में प्राप्त हैं तथा ये भी कुछ थोड़े से ही भक्तों की रचनाओं में।

निष्कर्ष

राधावल्लभ संप्रदाय के विप्रलंभ श्रृंगार के रूपों के अध्ययन से

---

२४६ वही पद ५३७

आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं:-

(१) इस संप्रदाय में स्थूल विरह की मान्यता नहीं है। अतएव सामान्यत: इस संप्रदाय के कवियों ने उसका वर्णन नहीं किया है।

(२) विरह की महत्ता को समझने के कारण इस संप्रदाय में सूक्ष्म विरह की कल्पना की गई है। यह विरह मिलन में ही होता है।

(३) इस विरह के दो ही रूप प्राप्त हैं। एक तो प्रेम वैचित्य और दूसरा मान।

(४) प्रेम वैचित्य से अधिक मान का वर्णन हुआ है और इस मान के वर्णन को पूरा-पूरा सूक्ष्मविरह के अंतर्गत नहीं रखा जा सकता। यह स्थूल विरह की सीमा के अंतर्गत आ जाता है। केवल एक-या दो उदारमना सिद्ध कवियों में ही इसके रूप मिलते हैं जिनमें व्यासजी प्रमुख हैं।

(५) मान मोचन की साम, भेद और नति विधियाँ ही अपनाई गई हैं। भेद के अंतर्गत 'स्वयंदूतिका' विधि भी आती है।

(६) प्रवास विप्रलंभ का इस संप्रदाय में पूर्णत: अभाव है। पूर्वराग का केवल दो-एक उल्लेख ही प्राप्त कहे जा सकते हैं। वहभी एक जगह ब्रजलीला के अंतर्गत है[२४७] जो कि सम्प्रदाय में पूर्णत: मान्य नहीं है। दूसरी में उसका आभास स्पष्ट है[२४८] पर परवर्ती कवियों ने उसको नहीं अपनाया है।

(७) राधावल्लभ संप्रदाय का विरह वर्णन जितना भी है एक नई उद्भावना से प्रेरित, सुंदर और मोहक है।

---

२४७ - ध्रुवदास - ब्रजलीला पृ २६०-६१

२४८ - हित चौरासी - १३

६- हरिदासी - संप्रदाय-

हरिदासी संप्रदाय का विस्तृत अध्ययन डा० गोपालदत्त शर्मा ने अपने शोध प्रबंध " स्वामी हरिदास जी का संप्रदाय उसकी वाणी साहित्य " ( अप्रकाशित ) में किया है । इस संप्रदाय के इष्ट कुंजबिहारिणीश्रीराधा तथा कुंज बिहारी श्याम हैं । इनका जन्म नहीं हुआ और इनका बिहार नित्य तथा अबाधित है । वृषभानु और नंद के घरों में जन्म लेने वाले राधा- कृष्ण से यह भिन्न हैं । इनके संप्रदाय में युगल प्रेमियों का जैसा अबाधित मिलन है वैसा अन्यत्र नहीं है । उनके विहार में कभी अंतर नहीं है । यह बिहार हरिदासी सहचरी के बल पर होता है । अन्य किसी का वहां प्रवेश नहीं है ।[२४९]

विरह का अभाव-

इस प्रकार इस सम्प्रदाय में भी विरह का पूर्ण अभाव है । यहां तो लालजी लाड़िली जी से प्रार्थना करे रहते हैं कि सदा हृदय से हृदय, तन से तन, नयन से नयन मिले रहें । उन्हें तो भ्रूक्षेप भी सहन नहीं है :-

ऐसी जीय होत जो जीय सों जीय मिलै,
तनसों तन समाइ ल्यौंतौ देखौं कहा हो प्यारी ।
तोही सौंहि लग आंखिनिसों आंखें,
मिली रहें जीवत को यहै लहा हो प्यारी ।
मोकों इतौ साज कहांरी प्यारी हौं अतिदीन ।
तुव रस भ्रुवक्षेप जाय न सहाहो प्यारी ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कहत राखिलै,
बांह बल हौं वपुरा काम कहा हौं प्यारी ।।[२५०]

इस प्रेम में विरह और मान स्थूल होने के कारण बाधक है और उनका कोई स्थान नहीं है । इसके स्थान पर प्रेम की

---

२४९- गोपालदत्त शर्मा- हरिदास संप्रदाय ९५-९६

२५०- केलिमाल ३५

उत्कृटता प्रकट करने के लिए मिलन में ही विरह की कल्पना कर ली गई है । इसे भी राधावल्लभ सम्प्रदाय के विरह के अनुरूप ही सूक्ष्म विरह की संज्ञा दी जा सकती है ।

## सूक्ष्म विरह -

विरह में जो पुनः मिलन की आतुरता, उत्कंठा और छटपटाहट होती है वहीयहाँ सूक्ष्म विरह के रूप में प्रकट है । प्रिया-प्रिया प्रगाढ़ालिंगन में भी क्षण- क्षण गंभीर विरह - वेदना का अनुभव करते रहते हैं ।

## विरह का कारण -

इस विरह का मूल कारण लालजी की आशंका है । उन्हें सदा यह भया बना रहता है कि कहीं प्रिया जी किसी भी कारण से (लज्जा, कपट या मान के कारण ) कभी " न " न कर दें । यह आशंका उनके मन में प्रतिक्षण अधिकाधिक विरहानुभूति के द्वारा प्रगाढ़ातिगाढ़ प्रेम उत्पन्न करती रहती है । इस प्रकार यह विरहा आशंका जन्य है :-

> प्यारी जू एक बात को, मोहि डरु आवत है री ।
> मति कबहूँ कुमया करि जात ।
> पलु पलु हित बंछतु हौं री मति परै भाँति के।
>
> केलिमाल

अथवा -

> नील लाल गौर के ध्यान बैठे कुंजविहारी ।
> ज्यों ज्यों सुख पावत नाहिं, त्यों त्यों दुख भयो -
> भारी ।।[२५१]

## विरह के भेद-

इस विरह के विरह और मान दो भेद हैं । इस संप्रदाय में पूर्वराग और प्रवास जन्य विरह का नितांत अभाव है । मान का अध्ययन हम आगे तनिक विस्तार से करेंगे । यहाँ इस सूक्ष्म विरह के संबंध में इतना ही बतला देना है कि इसके प्रेम- वैचित्य की भाँति

के उपरूप नहीं है । यह आशंका और कल्पना जन्य है ।

अपवाद-

सम्प्रदाय में स्थूल की विरह की अमान्यता होते हुए भी तथा डा० गोपालदत्त द्वारा भी उसे अस्वीकार करने पर[२५२] भी लेखक को उसके एक - दो उल्लेख मिले हैं । सम्पूर्ण साहित्य को देखते हुए इसकी उपेक्षा की गई है पर यह उपेक्षणीय नहीं है । श्री विहारिन देव जी की वाणी में इस स्थूल विरह के तीन पद प्राप्त है ।

प्रथम पद में राधा अपने दुख को प्रकट करती हुई कहती है कि वे रंगीली बातें कैसे विस्मृत हो सकती है । उन बातों को तो रसमय होकर अपने सुन्दर करों से प्रिय ने मेरे उरोजों पर अंकित किया था उन्हीं अंकों के कारण ही तो प्राण हैं पर काम आघात करता रहता है । कब प्रभु पुनः शरद की रात्रि को याद कर मेरा दुख दूर करेंगे ।

> रंगीली क्यों बिसरैं बतियां ।
> रतिपति रस बस भये परस्पर लिखी सुरङ्गत छतियां ।
> उनहीं अंकन प्रान रहत पै करत काम खतियां ।
> बरु विष घोरि पिवायौं हो तो अनहित कित हतियां
> स्याम सनेह बिसारि सखी सुनि कागद की पतियां ।
> श्री बिहारीदास प्रभु बहुरि सुमिरहैं सुखद शरद की -
> बतियां ।।[२५३]

दूसरे पद में राधा विरह वेदना व्यक्त करती हुई कहती है कि अवधि का मध्यभाग निकट आगया । मेरे प्रिय कब मिलेंगे ।

---

२५२- डा० गोपालदत्त शर्मा - हरिदास संप्रदाय (अ०) पृ० ३३९

२५३- बिहारिन देव का निजी हस्तलिखित संग्रह पृ० ३५।१३४

हरि बिन क्यों राखौं ए प्रान ।
लागत नैन निमेष जिने सखि बीतत कल्प समान ।
हौ बलहीन भई समभावत मानत सप्त न आन ।
जानति हौं छुटि जैहै तुव तन सुमिरत बैन बखान ।
रटई रहत कहत कब मिलीहैं अवधि बीच नियरान ।
श्री बिहारीदास प्रभु विरहिन कौ दुख मिलि मेटौ श्याम -
सुजान ।।[२५४]

तीसरे पद में राधा को प्रिय मार्ग में मिलते हैं । वे अत्यन्त आतुर हैं । यह देख कर राधा उन्हें सुख देती है :-

आवत लाल बीच ही पाये ।
आतुर जानि महामन मोहन मोहनि अंग अंग उरभाये ।
कारे मनुहारि निहारि बदन विधु अधर मधुर पियप्याये।
श्री बिहारनि दासि दंपति सुख सींवा समर संताप न साये ।।[२५५]

उपर्युक्त तीनों पदों को यदि अप्रामाणिक न माना जाय तो स्पष्ट रूप से कम से कम हरिदासी संप्रदाय के एक प्रमुख कवि की रचनाओं में स्थूल विरह मिलता है यह मानना पड़ेगा कुछ ऐसी ही स्थिति राधावल्लभीय साहित्य में भी है जिसका समाधान पीछे किया जा चुका है । लेखक का विचार है कि उदारमना भक्त कवियों ने साम्प्रदायिक भावना को मानते हुए भी कृष्ण के पौराणिक चरित्र की पूर्ण उपेक्षा नहीं की और यदा-कदा भी कोई स्थूल विरह की रचना उनके श्री मुख से विसृतुत हो गई तो उसे कोई बड़ा पाप नहीं समझा ।

इस प्रसंग में यह भी दृष्टव्य है कि इन उदाहरणों में विरह लालजी का न होकर लाड़ली जी का जब कि सामान्य मान्यताः लालजी के विरह की होती है ।

मान-

<u>अभाव</u>- स्थूल विरह की ही भांति इस साहित्य में स्थूल मान का अभाव माना जाता है ।डा० गोपालदत्त कहते है कि लाल का ध्यान

२५४- विहारिन देव का निजी हस्तलिखित संग्रह पृ० ब ३५।१३५
२५५- वही पृ० १३५।१४०

अन्यत्र जाता ही नहीं, किंतु मान में मनाने का जो सुख है, रूठने में जो रस है, उससे रसकी जो वृद्धि होती है उसका उपभोग प्रिया प्रियतम इस नित्य विहार मे पूर्णरीति से करते हैं। यह सूक्ष्म मान द्वारा होता है।

स्वरूप -

गर्वीली लाड़ली का प्रतिक्षण रूठना और मनाये जाने पर प्रसन्न होना संभोग सुख को चौगुना करने वाला है। यह मान सत्य न होकर लीला मात्र है पर लालजी इसे भी सहन नहीं कर पाते। इसलिए सहचरी लालजी की ओर से उन्हें मनाती है और वे क्षण भर में ही प्रसन्न होकर प्रिय को अंक में भर लेती है। वे प्रिय को निरंतर अनंग रंग से लड़ाती रहती है। रूठना और पुनः प्रसन्न हो जाना, इसी में वे रस पाती हैं। उन्हें " तूठने " से रूठना अधिक प्रिय है।

> प्रेम प्रवीना प्रिया प्रिय आतुर चातुर केलिकला गुरू गावै
> नाहिं करै तब पाईं परै हंस आसल यौं मन मोर बढ़ावै।
> श्री विहारीदास कै प्रेम अभंग सुरंग मैं रंग अतंग लड़ावै।।
> रूठनौ तूठनौ यौं रस बूठनौ तूठनै तैं अति रूठनौ -
> भावै।।[२५६]

साहित्यिक दृष्टि से यह मान "प्रणय मान" के अंतर्गत आएगा। इसका सभ्रम आदि कोई कारण नहीं है। यह तो प्रिया जी की क्रीड़ा मात्र है।

डा० गोपालदत्त के उपर्युक्त विचारों से बड़े अंश में सहमत होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि इस सम्प्रदाय के कवियों द्वारा मान का जो वर्णन कियागया है वह पूर्णतः सूक्ष्म मान का नहीं है। अनेक स्थल ऐसे हैं जहां सूक्ष्म मान की सीमा का अतिक्रमण होगया है। मान के प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाएगा:-

---

२५६- गोपाल -दत्त- हरिदासी संप्रदाय पृ० ३३९-४१
निजी संग्रह पृ० ५७।१४५

सखी का प्रिया को मान न करने की शिक्षा-

सखी प्रिया जी को शिक्षा देती है कि भूल कर भी मान न करना । तुम्हारी कुटिल भौंहो को देखते ही लालजी के तन में प्राण नहीं रहते :-

भूलै भूलै हू मान न करिरी प्यारी ।
तेरी भौंहै मैली देखत प्रान न रहत तन ।
ज्यौं न्यौछावर करौं प्यारी री ।
तो पर काहेतैं तू मूंकी कहत स्याम घन ।।[२५७]

राधा मान करने में असमर्थ -

जब लाल जी मनाते है तो प्रिया जी से मान भी नहीं करते बनता -

मनावत लाल री मानिनी मान कियैं न बनैं ।
तूंही तूंही करै तोहिं हिरदै धरै तेरे गुनन गनैं ।
तन सौं तन मन सौं मन मिलि प्रानन सो प्रान सनैं ।
श्री विहारिन दासि को मानि कह्यौ सु लहो सुख अपने-
सींचि श्याम सजनैं ।।[२५८]

मान- मोचन-

इतना सब होने पर भी प्रिया जी मान करती है और उसे भंग करने के लिए लालजी को अनेक प्रयत्न करने पड़ते हैं । राधा-वल्लभीय भक्तों में वर्णित मानमोचन की ही तीनों विधिया, साम, भेद और नति का यहां भी प्रयोग होता है ।

साम-

लाल जी अपनी प्रिया के मान- भंग के लिए अनेक प्रकार प्रयत्न करते हैं । ये प्रयत्न निम्नलिखित हैं :-

---

२५७- केलिमाल १०

२५८- बिहारिनदेव - निजी संग्रह पृ० ७५।३३

(१) प्राणान्तक पीड़ा का उल्लेख कर मान तजने की प्रार्थना -

वे कहते है कि हे दुलारी मान तजो । मेरे प्राण जाते है । मुझे सिर पर हाथ रख कर अभय दान दो :-

राधे दुलारी मान तजि ।
प्रान पायो जात हेरी मेरो री सजि ।।
मेरे माथे अपनो हाथ धरि अभयदान दै अजि ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत,
प्यारी वलि वलि रंग रुचिसों लजि ।।[२५९]

(२) वाणी की प्रशंसा कर -

लालजी राधा जी की वाणी की मधुरता की प्रशंसा कर कहते है कि तू बोल कर मेरे नयन, मन, श्रवण और तन को शीतल करो और विरह के फंदे को खोल डालोः-

मधुरे मधुरे बोल बोलि निरमोल रही क्यों तू अबोलिये ।
बोलिये जू बहुरि नैन श्रवन मन शीतल होत तन तेरे कहत प्यारी
डोलिये ।
बोल इत उत न चितै मुसिकाय तू ही धौंसभि रहौ अरुभि
विरह फंद खोलिये ।
श्री विहारिन दासि प्रीतम प्यारी सों कहत छिन छिन प्रति रति
दृष्टि पला तो लियो ।।[२६०]

(३) प्रेम निवेदन कर -

हे प्रिये, तुम सहज ही मेरे मन को हर लेने वाली, प्रेम मैं अति प्रवीण हो । तुम्हारे बिना मेरी कोई और गति नहीं है । तुम्हीं मेरे तन, मन में बसी मेरा जीवन हो । तुम मेरी सर्वस्व हो । मुझे " मान रति दान " दो । आदि

---

२५९- केलिमाल २२

२६०- विहारिन देव - निजी संग्रह पृ० ११५।१९५

प्यारी सहज मनैं हर लेति ।
तू मन मोहनी री मोहन हेत ।
तुम अति प्रेम प्रवीन हो प्यारी सुघर सिरोमनि जानि ।
मन क्रम बचन विलासनी मेरें तुम बिन गति नाहिन आन ।
तू तन तू मन मैं बसी तू मम जीवन प्रान ।
तू सर्वस धन माननी दे मोहि मान रति दान ।
भामिनि तुव भुव छेप होत मोपै सह्यौ न जाय ।
अंचल पल अलकावली के अंतर मन अकुलाय ।
मो मन ऐसी होत है प्यारी तो तन मैं मिल जाऊं ।
तो मुख चंद चकोर लौं नैना पान करत न अघाऊं ।
श्रवन सुयश रसना रसौं तुव दरस परश आघ्रान ।
तू सौन्दर्य गुन निधि नागरी अब जिन करहि निदान ।
पूरन प्रेम प्रकाशनी दै मोहि अधर मधुपान ।। आदि [२६१]

(४) एक कुंज के सखा बतला कर -

प्यारी हम तुम दोनों एक कुंज के सखा है । बताओं रूठने से कैसे बनेगा । यहां हम लोगों का कोई और दूसरा तो है नहीं । हमही दोनों एक दूसरे के है :-

प्यारी हम तुम दोऊ एक कुंज के सखा रूठें क्यों बनैं ।
इहां न कोऊ मेरौ न तेरौ हितू जो यह पीर जनैं ।
हो तेरौ बसीठ तू मेरौ तो मेरे बीच और न सनैं ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी, कहत-
प्रीति पनै ।। [२६२]

(५) छल से गले लगा कर-

काहे कों मान करत मोहि व क्त दुखदेति ।
वासे की सी दृष्टि लिये रहौं तेरी जीवन तोहि समेति ।
अब कछू ऐसी करौ भौहिन टाटी,
जिनि देहु कहत इतनेति ।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुंजविहारी

---

२६१- नागरीदास - निजीसंग्रह पृ० ११
२६२- केलिमाल - ७९

छलु कै गरे लगाई भई रमैति ।।[२६३]

भेद–

मान मोचन की दूसरी विधि का विस्तृत उपयोग किया गया है । इसमें ध्यान रखने की यह बात है कि यहाँ केवल एक ही सखी है । वही लालजी की ओर से प्रिया जी के मान को भंग करने का प्रयास करती रहती है । इस विधि के अनुसार निम्नलिखित प्रकार से मान भंग करने का प्रयत्न किया गया है :–

(१) कृष्ण की व्याकुलता बताकर मान छोड़ने की प्रार्थना –

हे प्यारी तू मान न कर । तू प्रिय की पीड़ा नहीं जानती । वे कितने व्याकुल है । उनको कुछ भी सुहाता नहीं है । तुम मान छोड़ दो ।

तूना ब/ कर मान मनोहर मनोहर लाल लड़ावैगे ।
छिन छिन मान अयान करहु न सयान समझि सुकुमारी जू ।
प्यारे पिय की पीर न जानत व्याकुल विरह विहारी जू ।
आसन शैन सुहाय न परस्यौ असन वसन कर वीरा जू ।
दरसन-परस की आश अवधि बदि हौं आई दै धीरा जू ।।[२६४]

तथा–

तू रिस छाँड़िरी राधे राधे ।
ज्यौं ज्यौं तोकौं गहस त्यौं त्यौं, मोकौं विथारी साधे –
साधे ।।[२६५]

(२) एक बार बोलने की प्रार्थना –

सहचरि प्रिया जी से एक बार मान तोड़ कर बोलने प्रार्थना करती है:-

एक बोल बोल दै जू मान न करौं ।
मन वच क्रम – तीन हूँते न टरौं ।।[२६६]

२६४– विहारिन देव – निजी संग्रह पृ० १४५
२६५– केलिमाल –१७
२६६– वही – १८

(३) प्रिय के प्रेमासक्ति का वर्णन कर -

हे नागरी तू प्रिय सेक्यों मान करती हो । तुम्हारे बिना वो रह नहीं सकते और तुम्हारी भी ऐसी ही स्थिति है । फिर क्यों दुख पा रही हो । तुम जब नेत्र से नेत्र मिलाती हो तभी सुख मिलता है :-

सुनि नव नागरी जू पिय सौं तू काहे कौं मान बढ़ावति ।
रहि न सकत तुम विन तुम इन छिन छिन देखे दुख पावति ताते-
मोहि अनहूं कहैं कहि आवति ।
जिय विचारि उत्तर निवारि कित करत आदि मो तन निहारि-
कहि कहहे को प्रीत दुरावति ।।
श्री विहारिन दासि प्रिय प्रान पति अतिशै सुख पावत जब तू -
सन्मुख नैनन सौं नैन मिलावति ।। २६७

(४) भर्त्सना कर-

तू प्रिय से जो - जो करे सब ठीक है । तू क्यों बिना काज मान करती है :-

पीय सौं तू जोई जोई करैं सोई सोई छाजै ।
और सैंध करै जो तेरी सोई लाजै ।
तू सुरज्ञान सब अंग सखीरी मान करत क्त बेकाजै ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, जीय मैं बसै तू नित नित-
विराजै ।।

तथा-

मानत नाहिरी मनायौ तू कौं त्यौं करि रही री हठ मोसौं ।
न कहूं सुनी न समझी न देखी नैननि तिहूं लोक गुन रूप-
निपुन जो करि सकै री-
सर तासौं ।।
तुव हित नित चितवत छिन ही छिन तिनसौं क्यों कीजे मन
मन मैलो अन देखौं

---

२६७- विहारिन देव - निजी संग्रह १०३।९९

श्री विहारिन दासि की विन्ती मानि रसिक राधे रहसि मिलिरी-
तजि रोषनौ ।।

(५) सुरत समय की लाल की व्याकुलता वर्णन कर -

हे सयानी मैं यह समझ कर आई हूं कि तुम मान छोड़ दोगी हे मानिनी मान छोड़ो । सुरत का समय है । कृष्णने रुचिर शैय्या रची है तथा वहां विरह में वे अत्यन्त व्याकुल और आकुल है । उनको अंक लगाओ । प्रिय के साथ मिल कर रस रंग करो ।

नेकु माननी मान निवारिये ।
यहै जानि जिय मानि सयानी हौं आंई हौं सब समझ संवारिये ।
रची रुचिर नव कुंज कुसुम तरु सुरत सौ समयौ सम्हारिये ।
विरहज श्याम अधीर पीर अति आतुर पिय अंकवारिये ।
मिलि रस रंग अंग अंग पिय संग सरस कुसुम सुकुमारिये ।
श्री विहारिन दासि सुख निरखि हरषि तुन तोरि प्रान धन-
वारिये ।।[२६६]

(६) स्वयं दूतिका बन कर -

मान भंग करने के लिए लालजी स्वयं दूतिका का रूप धारण कर राधा के पास जाते है और कहते है कि तुम्हारा पथ लाल जोह रहे है । तुम्हारी समाधि (मानरूपी ) अभी तक नहीं टूटी है और (तुम) तनिक देखना तक नहीं चाहती । यह कहते कहते वे अचानक उनकी आंखों को मूंद लेते है । राधा पहचान जाती है और इस प्रका मान भंग हो जाता है :-

तेरौ मग जोवत लाल विहारी ।
तेरी समाधि अजहू नहीं छूटति, चाहत नहिने नैंक निहारी ।
औचक आय कै करसौं, मूंदे नैन अरबराइ उठे विहारी ।
श्रीहरिदास के स्वामी श्यामा ढूंढ़त, बन मैं पाई ...
बिहारी ।।[३]

नति -

मान भंग के लिए प्रयुक्त तीसरी ... है । इसका वर्णन

भी विशेष नहीं हुआ है ।

कृष्ण कब से विनती कर रहे हैं । चरण पकड़े हुए हैं । अत्यंत आतुर हैं । यह देख राधा जी उन्हें सुधा रस पिलाती हैं ।

कब से बैठे विन्ती करत चरन धरत सुन्दर वर सुकुमार किशोर ।
अति ही आतुर चातुर चपल धीरज न धरत चितवत छिन छिन -
तुव विध वदन ओर।

प्रीत उदै करि सुदृष्टि किरन तृषित मोहन नैन चकोर ।
श्री विहारी विहारिन दासि पिय प्याइ सुधारस उमगि ढरे तन-
मन आनंद न थोर ।।[२६८]

पर यहाँ राधा का गुरु मान है । वे कुछ भी करने पर नहीं मानती है । सखी कहती है कि यह प्रेम की रीति नहीं है । इस प्रकार प्रीतम से प्यारी खेल रही हैं और प्रिय उनके बार- बार चरणों पर पड़ रहे हैं कि वे पुनः मान न करें ।

कछु न सुहाय समाय न मन मैं लालन ललना ललना करैं ।
तोसों लाल कही मैं कहि रही मुख मोरि जोरि दृग देखत हू न सरैं ।
यह न प्रीत की रीत लाडिली जानत हो तुम नेम प्रेम कौ जो जिहिं-
भाय ढरैं ।
श्री विहारिनदासि प्रीतम प्यारी मिलि खेलत मैं मान मनावत बहुरि-
मान जिन करैं तातैं फिर फिर पायँ-
परैं ।।[२६९]

नति के उपर्युक्त उदाहरणों में दो बातें दृष्टव्य हैं । प्रथम तो लाड़िली जी का मान गुरु है जो लालजी के चरणों को पकड़ने से ही भंग नहीं होता । उसके लिए सहचरी का प्रयास है । द्वितीय विशेषता है कि मान- भंग होने पर भी लालजी बार बार प्रिया जीके चरणों पर पड़ते हैं जिससे कि भवि- मान न करें ।

---

२६८- विहारिनदेव- निजी संग्रह १०१।९२
२६९- वही ११५।१२६

राधा का उत्तर - मान के प्रसंग में सखी द्वारा जब मान- मोचन का प्रयास होता है उस समय के राधा के उत्तर उनके मान के स्वरूप को बतलाने वाले हैं । राधा कहती है कि उनका मान झूठा है । सचमुच उन्होंने मान नहीं किया है :

तू जानत हौ मेरे मन की मैं कब मान कियौ ।
तुम मेरे जीवन जिय कौ जानत हौ कित मानत हौ पिय संभ्रम वचन वियौ ।।
क्यौं अनबोले ह्वै रहे गहे से मन कहे वचन समझाय सुनत हंस आयौ हुलसि हियौ ।
श्री विहारनिदासि प्रीतम प्यारी प्रति बोलत खोलत कर कंचुकि कुच छलि मुख अमृत पियौ ।। [२७०]

तथा प्यारी सहज मनैं हर लेति
तू मन मोहगी री मोहन हेत ।।

+ + + +

तब ललित वचन सुनि श्याम के हौं नैननि मैं मुसिकाय ।
व्याकुल विरह विलोकि कै प्यारी लिये है लाल उर लाय ।
मैं मान कियौ तुम सौं कबै हौ कलपि कलपि कित लेत ।
मेरे प्रीतम प्रान हौ प्रिय जीवन तुमहिं समेत ।। [२७१]

मान का उपर्युक्त स्वरूप अन्य संप्रदायों में प्राप्त नहीं है ।

मिलन के लिए प्रस्थान - मान के झूठ होने को बतला कर या मान भंग होने पर राधा कृष्ण को संभोग सुख देने जाती है ।

लाल कौं ललना सुख दैन चली ।
विगसे मुखचंद अनंद सनैं रूचिहार कुच बिच पाँति भली ।
उत तैं रस रासि हुलास हियैं इत चौंप बढ़ी मिलि श्याम अली
श्री बिहारी बिहारनि दासि सदा सुख देखत राजत कुंज बली
तजि मान अयान सयान सबै लाल कौं ललना सुखदैन चली ।।

---

२७०- बिहारनिदेव - निजी संग्रह पृ० ११७।१२५
२७१- नागरीदास - " पृ० ११
२७२- बिहारनिदेव - वही पृ० ५७।१४७

निष्कर्ष -

हरिदासी संप्रदाय के विरह के अध्ययन पर हम निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचते हैं :-

(१) इस संप्रदाय में स्थूल विरह और मान का अभाव माना जाता है। प्रेम की प्रगाढ़ता और उत्कंठा व्यक्त करने के लिए सूक्ष्म विरह और मान के वर्णन किए जाते हैं। एक आध स्थूल विरह के वर्णन भी मिल जाते हैं।

(२) इस संप्रदाय में विरह का "प्रेम वैचित्य" वाला स्वरूप प्राप्त नहीं है। यह आशंका जन्य अधिक है।

(३) विरह के मान का अधिक विस्तृत वर्णन मिलता है। इसमें यथेष्ट विविधता है तथा इसके दोनों ही रूप- स्थूल और सूक्ष्म मान मिलते हैं।

(४) राधा मान करने में असमर्थ हैं। यदि वे मान करती हैं तो भी वह झूठा तथा क्रीड़ा के लिए होता है।

(५) झूठा और क्रीड़ा के लिए होने पर भी कभी- कभी यह गुरु मान है तथा कठिनाई से भंग होता है।

(६) मानभंग के साम, भेद और नति उपायों का प्रयोग विभिन्न तथा विविध रूपों में किया गया है।

इस प्रकार इस संप्रदाय की मान्यता के अनुसार कवियों ने विरह और मान का वर्णन किया है पर वह अपेक्षाकृत कम है।

७- निम्बार्क संप्रदाय -

वैष्णव चतुः सम्प्रदाय में संभवतः निम्बार्क सम्प्रदाय सबसे प्राचीन है किन्तु इसके हिन्दी साहित्य का विस्तृत अ[illegible] अभी तक नहीं हुआ है। यह साहित्य अभी तक पूरी तरह उपलब्ध भी नहीं है। इस सम्प्रदाय के दो ग्रंथ "श्री युगल[illegible] और "महावाणी" मुद्रित हो चुके हैं। कुछ अन्य आचार्यों की स्फुट रचनाएं भी मिल जाती हैं। प्रस्तुत अध्ययन इन्हीं ग्रंथों पर आधारित है। यथार्थ में यह पूरा सम्प्रदाय अनुसंधान की अपेक्षा

पूर्वराग-

निम्बार्क सम्प्रदाय में राधा कृष्ण का संबंध विवाह सूत्र में बंधे हुए दंपति का है। राधा पूर्ण रूप से स्वकीया है। अतएव इस साहित्य में पूर्वराग और प्रवास विप्रलंभ के लिए यथेष्ट अवकाश रहा है। किंतु राधा के निकुंज विहारिणी स्वरूप के बढ़ते हुए आकर्षण ने प्रवास विप्रलंभ की संभावना कम कर दी है। फिर भी पूर्वराग के मनोहर वर्णन तो होने ही चाहिए थे किंतु उसका भी इस साहित्य में नितांत अभाव है। श्री जुगल शतक में केवल एक उल्लेख है जिसे श्री पूर्वराग के अंतर्गत लिया जा सकता है। राधाकृष्ण के मुकुट की "चटक लटकनि" पर मोहित हो जाती है:-

चरण चरण पर लकुट कर, धरे कक्ष नर रंग ।
मुकुट चटक छवि लटक सजि, बने ललित त्रिभंग ।।
बने बन ललित त्रिभंग बिहारी ।
बंशी धुन मानों बनसी लागी आई गोप कुमारी ।।
अरप्यो चारु चरण पर ऊपर लकुट कक्षतर धारी ।
(जै) श्री भट मुकुट चटक लटकनि में अटकि रही पिय प्यारी ।।[२७३]

उक्त पूर्वराग रूप-दर्शन जन्य है। इसमें राधा के आकर्षण मात्र का ही वर्णन है। पूर्वराग की स्थिति में जो विरह है तथा काम की दशाएं हैं उनका वर्णन नहीं है। इस प्रकार इस साहित्य में एक प्रकार से पूर्वराग का अभाव ही है।

विरह और मान-

इस सम्प्रदाय में सिद्धांत रूप में विरह और मान की स्थिति को स्वीकार नहीं किया गया है। महावाणी कार कहते हैं कि रसिक राय कृष्ण के रसमय भवन में मान, विरह और भ्रम का लेश भी नहीं है:

मान विरह भ्रम को न लेश जहां रसिक राय को रा...
यद्यपि अति उत्कृष्ट सृष्टि तऊ कृपा-दृष्टि बिन कौन ।। [२७४]

---

२७३- श्री भटटदेव-जुगलशतक-पद ९९
२७४- महावाणी पृ १७३

फिर भी विरह के स्वल्प क्षण आ ही जाते हैं और उनके दो एक छुटपुट वर्णन भी मिलते हैं । मान के संबंध में स्थिति कुछ भिन्न है । श्री भट्ट ने इसे रस-वर्द्धक माना है । मधुर वस्तु खाने के बीच-बीच में कड़वी वस्तु के अल्प स्वाद से जैसे मधुर वस्तु का स्वाद बढ़ जाता है, वैसे ही संयोग को बर्द्धमान करने वाला मान होता है । यही कारण है किविरहकी अपेक्षा मान का अधिक वर्णन मिलता है । दोनों का ही अध्ययन नीचे पृथक-पृथक प्रस्तुत किया जा रहा है ।

विरह-

श्री युगल शतक और महावाणी में से केवल महावाणी में ही राधा के विरह का उल्लेख मिलता है और वह भी केवल दो स्थलों पर । प्रथम स्थल पर राधा अपने विरह का निवेदन कर सखी से प्रार्थना करती है, "हमें प्रिय से मिला दो । वे मेरे प्राण हैं । मैं तेरा बहुत एहसान मानूंगी । मेरे प्राणों की लज्जा अब तुझे है । क्या करूं, बिना देखे मुझे चैन नहीं पड़ती । मेरे नेत्र प्रिय मुख देखने को तरसते रहते हैं । मेरी सभी गति हो चुकी है। अब कुछ भी बाकी नहीं है । जलविहीन मीन की भांति मैं तड़प रही हूं । मुझसे पल मात्र भी नहीं सहा जाता है । वस्त्र सिंह भी भांति मुझे फाड़ खाने को तैयार है । सर्वश मुझे दुख ही दुख दिखलाई पड़ता है । बिना प्रिय के क्यों शीतलता मिलेगी । मेरे अंग-अंग शिथिल हो गए हैं, बुद्धि विकल हो गई है, मैं बेहाल हो रही हूं । कपूर भी भांति प्राण गुंजारूपी गोपाल के बिना

न रहेगौ ।"[२७५]

विरह का उपर्युक्त वर्णन बड़ा सीधा-सादा, मोहक, हृदय संवेद्य और स्पष्ट है । राधा की व्याकुलता और विरह की अनेक काम-दशाओं का इसमें सुंदर संकेत है । नायिका की सखी-सहायय की याचना बड़ी स्वाभाविक है ।

दूसरे पद में राधा जी कृष्ण के प्रेम का वर्णन करते हुए बतलाती है कि उनके हृदय में मेरे लिए विशेष प्रेम है तथा मुझे भी उनको देखे बिना एक क्षण भी कल नहीं पड़ती ।[२७६] विरह का इतना ही उल्लेख निम्बार्क सम्प्रदाय में प्राप्त है ।

---

२७५- अतिकी गति सब होय चुकी तन धीरज न धराय ।
मेरी जीवन प्रान बलि ए अलि मोहिं मिलाय ।।
मोहिं मिलाय दे री मेरी जीवन प्रान ।
मैं बहुते करि मानिहौं भो पर तेरौ अहसान ।।
तू ही तू हिय की हितू री तो बिन सरत न काज ।
अब मेरे या जीय की री है सब तो को लाज ।।
कहा करौं कैसे भरौं री किन देखे नहिं चैन ।
मन मोहन मुख अवलोकन को तरसत मेरे नैन ।।
अति की गति सब होय चुकी री अब कछु रती रहि न ।
तरफर तरफर करत फरफरत जैसे जल बिन मीन ।।
तनक न तन धीरज धरै री मनहुं निपट अधीर ।
पलक सहयौ नहिं परत है मोहि सारना मृगरिपु चीर ।।
जित देखौं तित दुख मई री भई दिसि विदिसा मोहिं ।
आनन्द कंदाचंद के बिनु क्यों सियराई होहिं ।।
अंग अंग सिथिल भये री बुद्धि विकल बेहाल ।
रहत न प्रान कपूर ज्यों ये बिनु गुंजा-गोपाल ।।
महावली पृ ७३

२७६- वही पृ० ७५

५- मान -

जैसा कि पीछे कहा जा चुका है मान रस वर्द्धक है।[२७७] इसलिए राधा-कृष्ण प्रेम में मान न रहते हुए भी मान का उल्लेख है।

भेद -

इस संप्रदाय में मान के दो भेदों का वर्णन है -
(क) संभ्रम मान। कृष्ण के शरीर में अपने ही प्रतिबिंब को देख कर राधा मान करती हैं। यह मान प्रसंग रास के अवसर का है :-

एकसमैं श्री राधिका, कृष्ण कांति परकाश।
आन त्रिया तट जानि कैं, मान कियौ रस रास।।
रसिकनी मान कियौ रस रास।
एकसमैं पिय तन मैं अपनौं निज प्रतिबिंब प्रकाश।।
यह संभ्रम उपजावौ उन मैं पर तिरिया कोउ पास।
जै श्री भट हठ हरि सौं करि रहि नागर निपट उदास।।[२७८]

(ख) सहज प्रणय मान -

इसका कोई कारण नहीं है। राधा अपनी सखी से स्वयं इसकी चर्चा करती हैं :-

कबहूं सहज मैं करि रहौं री प्रनय-कोप जुत मान।
मोहिं मनावत कारने पिय केतौ करत विधान।।[२७९]

६ मान-मोचन

मान-मोचन के लिए निम्बार्क संप्रदाय में भी साम, भेद और नति विधियां ही अपनाई गई हैं।

---

२७७ कीरति कूं खिजु कुमुदनी, सकै वास को जान।
श्री भट भानु कुंवारि के, रस वर्धन यह मान।। युग०

२७८ वही २६

(१) साम -

राधा के मान को भंग करने के लिए कृष्ण अनेक प्रकार के विधान करते हैं। राधा के मानने से ही वे अपना जन्म सफल मानते हैं और उनको प्रसन्न करने के लिए उनकी प्रत्येक सुख सुविधा का ध्यान रखते हैं, उनका श्रृंगार करते हैं। राधा का मुख ही मुख देखा करते हैं।[२८०]

(२) भेद -

कृष्ण-राधा की सखियाँ राधा के मान करने पर उन्हें मनाती हैं। वे कृष्ण के अनन्य प्रेम की दोहाई देती हुई कहती हैं कि कृष्ण ने तो अपना सर्वस्व तुम पर न्योछावर कर दिया है।[२८१] अथवा नायिका का विविध रूप से श्रृंगार कर उसे मनाती हैं।[२८२]

---

२८० मान मनावत मानिनि पिय लै लै बलिहार।
लाल बिहारी सेज-सुख मुख- रुख रहे निहार।। महावाणी पृ

२८१ भामिनि तो जु सुभाव की कछु गति समझी हौं न।
पिय तो कौं सर्वस दियौ, कियौ मान विधि कौन।।
मान अवसान कछु नहीं, भामिनी कैसे कीनौं।
नन्द लाल गोपाल नैं तोहिं सर्वस दीनौं।।
अबलौं कछु न दुरावती कहि का रंग भीनौं।
कह्यौ श्री भट कोमल कुंवरि, सहचरि सौं भीनौं।। युगल शतक २७

२८२ जड़ युवती ज्यौं जिन करौ, होइ बढ़ैती बाल।
हठ तजि सजि पहिराउंगी, फूलन की उर माल।।
फूल माल उर मेलि हौं, चलि अलक लड़ैती।
जड़ युवती ज्यौं जिन करौ, इत चितै हंसैती।।
कह्यौ काहु कौ मानि, वै जिन होउ बढ़ैती।
श्री भट अलि कलसुनि( नत) कुंवरि हरि मिली [illegible]

वही

(३) नति - (क) राधा के मान को भंग करने के लिए कृष्ण से सखियां चरण स्पर्श करने को कहती है तब जाकर कहीं राधा का मान भंग होता है ।

श्याम बतायौं नैन में, रही समझि सुकुंवरि ।
चरन लग्यौ सब कह्यौ तब हरषी लाल निहारि ।।बादि

२८३

(ख) कभी इतने पर भी न मानने पर कृष्ण उनके चरणों को अपने नेत्रों से छुवाते हैं तब कभी मान भंग होता है :

कबहुं लै निज करन में, लावत नैंन विशाल ।
प्रान प्रिया मन हरिन कै, चरण पलौटन लाल ।। २८४

(ग) और कभी कभी तो सखी को बतलाता पड़ता है कि कृष्ण परब्रह्म है । मन वचन और कर्म से भी अत्यंत दुर्गम है । तेरे च प्रेम के कारण आज वे तेरे चरण पलोट रहे हैं । फिर भी तू नहीं मानती है । यह तेरा कैसा प्रेम है । इस प्रकार महात्म्य ज्ञान के साथ-साथ राधा की भर्त्सना भी है :

मन वच क्रम दुर्गम सखा, ताह्वि चरण छुवात ।
राधे तेरे प्रेम की, कहि आवो नहिं बात ।।
राधे तेरे प्रेम की कापै कहि आवै ।
तेरी सी गोपाल की, तो पै बनि आवै ।
मन वच क्रम दुर्गम किशोर, ताहि चरण छुवावै ।
जै श्री यह अति वृष भानु जे जु प्रताप जनावै ।। २८५

इस कथन से स्पष्ट है कि सखी कृष्ण के माहात्म्य से अवगत है और राधा को मनाने के साथ-साथ उसके प्रेम की महत्ता की ओर भी संकेत कर रही है । राधा वल्लभ और हरिदासी संप्रदाय में इस माहात्म्य ज्ञान का प्रयोग नहीं किया गया है ।

राधा की स्थिति

मान मोचन के प्रसंग में राधा की स्थिति को स्पष्टकरने वाला एक प्रसंग आया है । सखी कहती है कि कृष्ण के नेत्रों की

---

२८३ जुगलश तक ३०

ऐसी सुंदरता है कि उनका एक बार का देखना ही मानिनी का मान नष्ट कर देता है :

जाकौ निरखत नैंक जब, हरयौ, मानिनी मान ।
मदन सदन जानीजु मैं, अंखियां श्याम सुजाज ।।
मैं जानीजु मदन सदन मोहन जू की अंखियां ।
निरखत मान हरयौ वामिनि कौ, हारि रहीं सब सखियां
कोई इक चितवनि चित कुंवरितन, इन थामन की लखियां ।
श्री भट अटक छुटी पट अंतर, मंद- मंद हंसि मुखियां।।२८६

मिलन -

मन-भंग के उपरांत का मिलन संभोग के अंतर्गत है पर उसका यहां भी उल्लेख कर दिया जा रहा है । यह मिलन ऐसा है मानो दंपति का गौना हुआ हो ।[२८७]

निष्कर्ष -

निम्बार्क संप्रदाय के विरह के उपर्युक्त अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :-

(क) इस सम्प्रदाय में भी विरह और मान का स्वल्प व वर्णन है ।

(ख) विरह के रूपों की विविधता का अभाव है ।पूर्वराग का नाममात्र को संकेत है तथा प्रवास का नितांत अभाव । मान के अतिरिक्त जो विरहाभिव्यक्ति है वह स्वल्प है ।

(ग) मान का वर्णन तनिक विस्तार से हुआ है । यह संभ्रम और प्रणयमान नामक दो प्रकार का है ।

(घ) मान मोचन की साम भेद और नति विधियां अपनाई गई हैं । भेद विधि में नायिका का श्रृंगार करने का सखी द्वारा कथन तथा नति में सखी का कृष्ण के मन-वचन और कार्य अगम्य तथा परब्रह्म होने का उल्लेख दो नई चीजें हैं ।

---

२८६ वही ३३
२८७ ,, ३४

८ ७- चैतन्य सम्प्रदाय -

हिन्दी में चैतन्य सम्प्रदाय का विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं है। अभी तक मुख्य रूप से चार कवियों की रचनाएं प्रकाश में आई है - श्री माधुरी जी, श्री वल्लभ रसिक, श्री सूरदास मदनमोहन तथा गदाधर भट्ट। इन्हीं रचनाओं पर प्रस्तुत अध्ययन आधारित है।

चैतन्य सम्प्रदाय की मान्यता के अनुसार राधा-कृष्ण का प्रेम परकीय - प्रेम है। कृष्ण की सभी ब्रज लीलाएं मान्य हैं। इस प्रकार राधाकृष्ण का पूर्व राग और प्रवास दोनों ही उसमें स्वीकृत हैं और इस सम्प्रदाय के कवियों में पूर्वराग, मान और प्रवास जन विप्रलम्भ के विस्तृत वर्णन की संभावना है। पर आश्चर्य है कि साम्प्रदायिक स्वीकृति प्राप्त होने पर भी इन कवियों ने विप्रलंभ का नगण्य वर्णन किया है। पूर्वराग और प्रवास का कठिनाई से एक-आध वर्णन प्राप्त है तथा मान प्रसंग की भी श्री माधुरी जी के अतिरिक्त अन्य कवियों ने बड़े अंश में उपेक्षा की है। इसके अतिरिक्त मान के स्वरूप तथा मान- मोचन की विधियों में भी विविधता का अभाव है।

१-पूर्वराग -

राधा का कृष्ण का प्रेम दर्शन से हुआ। यह दर्शन विभिन्न प्रकार का और विभिन्न स्थल का है। दर्शन होते ही राधा के हृदय में प्रेम उत्पन्न हो गया। उसके निम्न प्रकार हैं :

(क) स्वप्न दर्शन से -

नायिका ने स्वप्न में कृष्ण को देखा। उस सूरत को ही वह बिक गई। जागने पर वह स्वप्न नष्ट हो गया पर प्रिय आंखों के आगे से हटता ही नहीं है। नायिका कहती है, मैंने सुना है कि वह गाय चराने जाता है। हे सखि वह कन्हैया कौन है?

सखी, हौं स्याम रंग रंगी।
देखि बिकाइ गयी वह मूरति, सूरति मोहिं पगी ।।
संग हुतो अपनों सपनो सो, सोइ रही रस खोई।
जागेहु आगे द्रष्टि परै सखि, नेकु न न्यारो होई ।।

गाइ चरावन जात सुन्यौ सखि, सौधौं कन्हैया कौन ।
कासौ कहौं कौन पतियावैं, कौन करै बकवाद ।
कैसै कै कहि जात गदाधर, गूंगे कौ गुरु स्वाद ।।गदाधर भट्ट पृ २५

कृष्ण साहित्य में इस रूप में पूर्वराग का प्रारंभ सामान्यत: नहीं है । इसमें नायिका कृष्ण से परिचित नहीं है । वह अपनी सखी से पूछती है कि वह कन्हैया कौन है । इस रूप में यह विशेष प्रकार का उल्लेख है जो कि अन्य संप्रदायों में उपलब्ध नहीं है ।

(ख) प्रत्यक्ष दर्शन :-

नायिका खरिक में गई । वहां नन्द के सांवरे का रूप देखते ही उसे ठगौरी सी लगी । मार्ग में वे उसे मिले । उनके एक हाथ में कनक की दोहनी थी और दूसरे में पाट की दांवरी । उन्हीं ने नायिका का मन हर लिया ।[२८८]

एक दूसरे स्थल पर कृष्ण के रूपदर्शन से प्रेम होने का वर्णन नायिकाइन शब्दों में करती है । वह कहती है, कि मैं मार्ग से निकली कि अचानक पौर से कृष्ण मिल गए । उनकी दृष्टि से दृष्टि मिलते ही रोम-रोम शीतल हो गया तथा तन में कामाग्नि प्रज्वलित हो गई । उनका सुंदर वेश था । भौंहों पर लाल पाग लटक रही थी, पान खाते हुए वे मुस्करा रहे थे तथा अंग में चंदन का खौर दिया हुआ था । उन्हें देख कर ऐसी उत्कंठा होती कि दौड़ कर मिलूं ।'

हौं तौ या मग निकसी अचानक कान्ह कुंवर ठाढे अपनी पौर ।
दृष्टि सौ दृष्टि मिली रोम रोम सीतल भई तन में उठत किधौं काम रौर ।
लालपाग लटकि रही भौंह पर पान खात मुसकात अंग किये चंदन खौर ।
श्री सूरदास मदन मोहन रंगीले लाल विहारी मन में आवत किधौं मिलूंगी दौर ।।

३ भेद-

पूर्वराग के भेदों में इस राग को मंजिष्ठा राग कहा जा सकता[२८] है। यह स्थायी भी है तथा सुशोभित भी खूब होता है ।

दशाएं -

पूर्वराग का विकास न दिखलाने के कारण आलोच्य साहित्य

स्मृति और गुण कथन का संकेत अवश्य देखा जा सकता है, जैसे :-

अभिलाषा -

श्री सूरदास मदन मोहन रंगीले लाल विहारी मन में आवत कियौं मिलूंगी दौर [289(क)]

स्मृति -

सखी, हौं स्याम रंग रंगी ।

देखि बिकाइ गयी वह मूरति, सूरति माहिं पगी ।[290]

गुण कथन अथवा रूप कथन -

लाल पाग लटकि रही भौंह पर पान खात मुसकात बंलकिये चंदन खौर ।

पूर्वराग के जिस विस्तार की राधा के परकीया होने के कारण संभावना थी उसका इस साहित्य में अभाव है जिसका कारण संभवतः वृंदावन में हितहरिवंश एवं हरिदास आदि संतों का बढ़ता हुआ प्रभाव है ।

४ प्रवास -

प्रवास विप्रलंभ का एक मात्र उदाहरण सूरदास मदनमोहन में प्राप्त है । यह वर्णन पावस के पद के अंतर्गत किया गया है जिसमें नायिका प्रिय के विदेश में होने से पावस में अपने विरह का वर्णन कर रही है । वह कहती है कि प्रकृति दुख को तीव्र करने वाली है तथा विरह में काम मेरे टुकड़े टुकड़े कर रहा है :-

ससकि ससकि रही मोरन की कूक सुनि अजहुं न आये पिया ॥

चहुं ओर बादर तंबुआ से है रहे पावस को पेसखानौं आन
बालम विदेश देश कैसे रांखू बाल बैस कोकिला की कूक ॥

श्री सूरदास मदनमोहन बिन अति दुख पावै बाम काम -

५ सामान्य विरह

विरह का एक सुंदर और विस्तृत वर्णन श्री माधुरीजी ने ` उत्कंठा माधुरी ` में किया है । इस विरह वर्णन को शुद्ध श्रृंगार के अंतर्गत लेना तनिक कठिन है क्योंकिइसका स्थायी भाव दाम्पत्य रति नहीं है । फिर भी इसमें श्रृंगार के विप्रलंभ स्वरूप का सुन्दर प्राकट्य हुआ है । इसे हम साधक या सखी का इष्ट के प्रति विरह कह सकते हैं । सखी अपनी तीव्र विरह वेदना का निवेदन करती हुई कहती हैं कि तुम कब कृपा कटाक्ष करोगे । अब वियोग में प्राण तज दूंगी । तुमसे भेंट हो सके इसलिए वन-वन डोलूंगी । उसे अपने रूप की हीनता का ध्यान आता है । पर कुब्जा की कथा याद कर संतोष होता है । वह कहती है कि मुझ पर राधा जी कृपा करेंगी । तब मैं दम्पति विहार में सेविका होकर सुख पाऊंगी[२६२] । इस प्रकार से यह सखी की निकुंज लीला में प्रवेश पाने की उत्कंठा है जिसकी वेदना का वर्णन कवि ने किया है । इसे शुद्ध विरह के अंतर्गत नहीं लिया जा सकता ।

६ संभ्रम विरह -

श्री माधुरी जी की ` वंशीवट ` में संभ्रम विरह की एक लीला है जो अपनी नूतनता में रोचक है ।

एक बार राधा और कृष्ण परस्पर केलि कर रहे थे । कि विचित्र प्रेम से उन्हें संभ्रम हो गया और दोनों ही मूच्छित हो गए । सभी प्रयत्न किए कि मूर्च्छा छूटे पर वे व्यर्थ गए । तब कृष्ण के कान में राधा और राधा के कान में कृष्ण नाम उच्चारण किया गया जिससे दोनों को होश आया । उठने पर राधा पूछती हैं कि प्रिय तुम अब तक कहां थे । कृष्ण कहते हैं कि प्रिये, तुम्हारी सूरत देखते -देखते मेरे नेत्र लग गए तो मैंने क्या देखा कि तुम्हारी सूरत कुछ गूढ़ संकेत कर आगे चली । मैं भी पीछे चला पर तुमको पा नहीं सका रहा था । अत्यंत निकट से तुम्हारा, दर्शन कर रहा था पर तुम्हारा स्पर्श नहीं कठिन था । जब दूर होता था तो तुम निकट दिखलाई पड़ती थी और जब निकट पहुंचता था तो दूर । सुख में

---

२६२ श्री माधुरी जी - उत्कंठा माधुरी

दुख और दुख में सुख भरा था । कभी संयोग था तो कभी वियोग । ऐसी अद्भुत स्थिति थी ।[२६३]

उपर्युक्त वर्णन भी शुद्ध विरह का नहीं है । संभ्रम वियोग की एक लीला मात्र है जिसमें नायक ने विरहानुभूति की कल्पना की है । इससे स्पष्ट है कि इस सम्प्रदाय में विरह का अभाव ही है ।

७-मान -

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस संप्रदाय में मान की स्वीकृति है पर उसका विशेष वर्णन नहीं । इस मान में सूक्ष्म या स्थूल का प्रश्न नहीं है ।

महत्ता -

मान का विस्तृत वर्णन न होते हुए भी इसकी महत्ता मानी गई है । इसके बिना स्नेह नहीं होता और स्नेह बिना मान नहीं होता । प्रेम की यह रोचकता बढ़ाता है । ऊपर से यह कठोर होता है पर अन्दर से रस मय । इसके बिना सब कुछ नीरस होता है ।[२६४] यथार्थ में प्रेम तरु में यह अत्यंत मधुर फल है जिसका रस रस लोभी ही जानते हैं :-

माली नव मदन तरुनी तन आलबाल जतन जुगति सों जोवन ब
बीज बोयो है ।
उपज्यो है अंकुर सनेह को सरस अति सुरति के मेह सों सुनित सर-
सायो है ।

---

२६३ माधुरी जी - वंशीवट माधुरी पृ ३६-४०

२६४- बिन सनेह नहिं मान, मान बिना न सनेह कछु ।
जैसे रस मिष्टान्न, नोंन सहित रोचक अधिक ।
जैसो जहां सनेह, मान तहां तैसो बनें ।
ज्यों बरषे नित मेह, सोखत न सूर प्रकाश बिन
मिश्री मान समान, छूवत कर लागत कठिन ।
जब कीजे रस पान, तब जाने रसना सुरस ।।

मूल प्रतिकूलता सुमन फूल फूलि रह्यौ हाव-भाव पल्लव सघन छांह छायौ है ।
मधुरतै मधुर लग्यौ है एक मान फल सोई जानै सुख जिन लोभी रस ल्यौं है ।[२६५]

८- मान के कारण

मान के विशेष कारण प्राप्त नहीं है । अधिकतर मान प्रणय मान प्रतीत होते हैं । एक स्थल पर "संभ्रम मान" का विस्तृत उल्लेख है । नायक के शरीर में अपना प्रतिबिम्ब देख कर राधा जी मान कर बैठती है ।[२६६] सखी और कृष्ण द्वारा भेद तथा नति के प्रयोग से भी यह मान नहीं टूटता है, तब कृष्ण एक फीना पट ओढ़ लेते हैं जिससे वह छवि मिट जाती है और मान भंग होता है ।[२६७] इस प्रसंग का अत्यंत विस्तृत और रोचक वर्णन श्री माधुरी जी ने किया है ।

---

२६५ माधुरी वाजी पृ ८२

२६६ एक समै रस रास में रसिक रसीली संग ।
दामिनि ज्यौं दमके दुरै, प्रिया पीय के अंक ।।
निरखत निज प्रतिबिंब तन, मन संभ्रम में आनि ।
उठनि उठी मन मान की, और त्रिया संग जानि ।।
चपल चली तेहि ठौरते, कीनो कठिन सुभाय ।
बैठी रही रिसाय के, गरब सिंहासन छाय ।। माधुरी जी मानमाधुरी पृ७६

२६७
तब कछू प्यारे बाल कीठिनौ है ज्ञान एक नख सिख लाल ओढि लीनौं पटफीनौ है ।
तैसी ये चरन चलैं मोरि चलैं अगवार प्यारी जू के पाइन परस आनि कीठिनौं है ।
कहा भ्रम गहि रही जानत काहू भ्रमाई उनहीं के काजे ऐसो कहा हठ लीनौं है ।
मन बच क्रम करि तिय तो तुम्हें ही जानो मैं तो तन मन प्रान तुम ही को दीनौं है ।
माधुरीजी मान माधुरीपृ ८१-८२

तिरछी व्है चाही तब संभ्रम सो मिटि गयो हंसि मुसिकाय दियो सौहैं मुख करि कै
पट में न प्रतिबिंब देख्यौ निज अंगनि कौं कछुक लजाय रही नीचै चख ढरिकै ।
किहूं किहूं काहू भांति हास करि प्रानपति कर गहि प्यारी लै उठाई पांय
रसिक रसीली रस रास में सरस दोऊ कछुक बरस परस मिलि खेलैं अब धरि कै

माधुरी जी मान
पृ ८२

६ मान मोचन -

मान -मोचन में सामविधि का प्रत्यक्ष प्रयोग नहीं है। भेद विधि से भी जब काम नहीं चलता तो सखी उन्हें ले जाती है। उस समय वे अपने प्रेम का निवेदन करते हैं तथा पट द्वारा मान -भंग करते हैं।

साम -

मान मोचन में साम विधि का अधिक प्रयोग किया गया है। इसके लिए निम्नलिखित तर्क तथा अनुनय- विनय किए गए है :-

(१) मानिनी कृष्ण से मान मत करो। उससे मिल कर अपना जीवन सफल करो।[२९८]

(२) कृष्ण ने तेरे लिए शैय्या रच रखी है। वे तेरा पंथ जोह रहे हैं। शीघ्र चलो।[२९९]

(३)द्रुम के नीचे वंशी बजाकर तुम्हें बुला रहे हैं। दिन-रात उन्हें तेरा ही ध्यान रहता है यह तेरी कैसी प्रकृति है।[३००]

(४) कृष्ण तुम्हारे मान का कारण तक नहीं जानते। प्रियतम से हंसना -खेलना ही जीवन को सफल बनाना है सोच समझ कर रिस करो।[३०१ (क)]

मान मोचन का रोचक प्रसंग मान माधुरी में है जिसमें ललिता राधा के मान का कारण पूछ कर अनेक तर्कों से उसे मनाने का प्रयत्न करती हैं जिनमें से कुछ तर्क ऊपर दिए तर्कों में से ही हैं। न मानने पर वह कृष्ण को ले आती है। और राधा का संभ्रम दूर कराती है।[३०१]

---

२९८ गदाधर भट्ट पृ ३१

२९९ वही तथा सूरदास मदन मोहन ११

३०० सूरदास मदन मोहन १२

३०१ मान माधुरी संपूर्ण

सखी की कृष्ण से उक्ति

मान मोचन में असफल होने पर सखी कृष्ण के पास आकर राधा मान की विकटता बतलाती है। वह मनाने से नहीं मानती है। मैं तुम्हारे गुणों का वर्णन करती हूं तो वह करोड़ो अवगुण गिनती है। नेत्रों में आंसू भरे है। ऐसा पता चलता है कि तुम्हारे चलने पर ही मानेगी।[३०२]

नति -

राधा को मनाने के लिए कृष्ण सखी के साथ आते हैं। सखी राधा को बतलाती है और कहती हैं कि जो चाहो करो। ये तो तुम्हारी दासी के भी दास है :

कीजिये सोई जो है जिय में अहोनिक चिते नहीं होय निबेरों।
नीचे ही चाहति चूक कहा परी ए तो सदा सखी चेरी को चेरौं।[३०३]

कृष्ण हाथ जोड़ कर खड़े हैं। मल्लिका की एक नवीन माला लाए हैं। आगे रख कर मनुहार करते हैं, चरण पड़ते हैं, चिबुक पकड़ कर उठाते हैं।[३०४] मीन की तरह व्याकुल हैं[३०४] तब भी जब तक भ्रम नहीं जाता राधा का मान-भंग नहीं होता। इस मान की संज्ञा गुरु ही होगी।

मिलन -

सखी के द्वारा मान भंग होने पर राधा कृष्ण से मिल कर केलि करती हैं।[३०५]

---

३०२ सूरदास मदनमोहन पृ १६।५३

३०३ माधरीजी, मान माधुरी पृ ८०-८१

३०४ - आये सनमुख लाल लोचन सजल कीछिने माला एक मल्ली की नवल कर लीने हैं।
आगे लै लै धरत करत मनुहार अति पाइन परत कर कैसे डारि दीने हैं।
मोहन मनावत उठावति चिबुक गहि जतन बनावत न सौंहैं दृगकीने हैं।
कुछ न सकात पै न रह्यौं पुनिजात जिय अति अकुलात जैसे मीन जल हीने हैं।
मान माधुरी ८८

३०५ सूरदास मदन मोहन पृ १६।५४

निष्कर्ष

उपर्युक्त अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं -

(१) विप्रलंभ के लिए विशेष प्र अवसर होते हुए भी इस संप्रदाय के कवियों में इसका अभाव है ।

(२) विरह में "सखी की उत्कंठा" का विशेष वर्णन इसी संप्रदाय में है ।

(३) राधा - कृष्ण की मुक्तावस्था में विरह की लीला भी अपनी नूतनता और रोचकता में अनूठी है । यह अन्यत्र प्राप्त नहीं है ।

(४) मान - वर्णन में विभिन्नता का अभाव है । विभ्रम तथा प्रणाय मान ही मिलता है तथा मान-मोचन में मुख्य रूप से "भेद" विधि का ही वर्णन है । इसी के अंतर्गत साम और नति भी आ जाते हैं ।

(५) सखी और राधा का मान-मोचन के प्रसंग में विस्तृत वार्तालाप यहां प्राप्त है ।

कुल मिला कर इस संप्रदाय का विरह वर्णन स्वल्प पर नवीन और रोचक है ।

९ रसखान -

अपनी मधुर और हृदय ग्राही रचना के लिए प्रसिद्ध रस की खान ' रसखान ' में विरह का वर्णन अत्यंत अल्प मात्रा में हैं। यथार्थ में रसखान संयोग - श्रृंगार के कवि है जिन्होंने भूले भटके ही विरह का वर्णन किया है। विरह में जो कुछ उन्होंने वर्णन किया है वह भी बहु अंश में पूर्वराग के अंतर्गत आएगा। इसमें उन्होंने कृष्ण के प्रति स्नेह उत्पन्न होने तथा उसके प्रभाव का वर्णन किया है। इस वर्णन में उत्साह की सरिता प्रवाहित होती रहती है।

मान का वर्णन तथा विरह का अत्यल्प वर्णन है। इन सभी का संक्षिप्त विवरण नीचे है।

पूर्वराग -

रसखान ने गोपियों के पूर्वराग का वर्णन किया है। यह पूर्व राग दर्शन एवं श्रवण दोनों से ही उत्पन्न है।

दर्शन-जन्य

कृष्ण के सुंदर रूप, मोहनी मुस्कान देख कर गोपियां अपने आप मोहित हो जाती हैं। इस रूप को देखते ही कोई बावली हो जाती और किसी के हृदय में प्रेम बाण बिध जाते। ब्रज में तो अब अबला के लिए जगह ही नहीं है :-

आजु सखी नंदनंदन री, तकि ठाढ़ो है कुंजनि की परिछाहीं।
नैन बिसाल की जोहन को, सर बेधि-गयो हियरा जिय माहीं।
घायल घूमि खुमार गिरी, रसखानि संभार रह्यो तन नाहीं।
ता पर वा मुसकानि की डौंड़ी, बजी ब्रज में अबला कित ~

श्रवण जन्य -

श्रवण जन्य पूर्वराग में मुरली ध्वनि हृदय में पूर्वराग उत्पन्न है। इसको सुनते ही ब्रज में ठगौरी लग जाती है। सब लोग कहने लगते हैं।

---

३०६ रसखान कवित्त-सवैया - ३२, और ३६१ ३६। आदि

मेरो सुभाव चितैबे को माइ री, लाल निहारि कै बंसी बजाई ।
वा दिन तें मोहिं लागी ठगौरी सी, लोग कहैं कोई बावरी आई ।[309]

राधा की हालत तो और भी खराब है । वंशी बजाकर उसने टोना सा डाल दिया है । तनिक सी तिरछी दृष्टि से देख कर वह जब से गया है, राधा सेज पर पड़ी है और किसी से नहीं बोलती है ।

बंसी बजावत आनि कढ़्यौरी, गली मैं अली कुछ टोना सो डारै
नेक चितै तिरछी करि दीठि, चलो गयौ मोहन मूठि सी मारै ।
ताही घरी सों परी वह सेज पै, प्यारी न बोलति प्रानहु वारै ।[307]
राधिका जी है तो जी है सबै, न तो पी है हलाहल नन्द के द्वारे।

पूर्वराग की दशाएं

पूर्वराग का वर्णन होने पर भी पूर्वराग की दशाओं का अल्प उल्लेख रसखान के काव्य में आया है । पूर्वराग के भीतर प्रेमकी ठगौरी, कुलकानि का न्यौछावर होना तथा उस प्रेम के प्रति ललक का ही उत्साह पूर्ण वर्णन कवि ने किया है ।

प्रेम की ठगौरी- गाइगो तान जमाइगो नेह, रिझाइगो प्रान चराइगो गैया ।[308]

कुल कानि का त्याग

ए सजनी वह नंद को सांवरो, या बन धेनु चराइ गयो है ।
मोहिनि ताननि गोधन गाइकै, बेनु बजाइ रिझाइ गयो है
ताहीं घरी कछु टोना सो कै, रसखानि हिये में समाइ गयो है ।
कोऊ न काहू की कानि करै, सिगरे ब्रजबीर बिकाइ गयो है ।[310]

---

307- रसखान कवित्त-सवैया ५०
308- वही ८०
309- वही २९, ५०, ७९
310- वही ८४

प्रलाप -

मेरो सुभाव चितैवे को माइ री, लाल निहारि के बंसी बजाई ।
वा दिन तें मोहिं लागी ठगौरी सी, लोग कहैं कोई बावरी आई।
यों रसखानि घिरयौ सिगरो ब्रज, जानत हैं जिय की जियराई ।
जो कोऊ चाहै भलौ अपनो, तौ सनेह न काहू सों कीजियो माई ।।[311]

रसखान के पूर्वराग में कृष्ण के प्रभाव का मुक्त वर्णन है । उसमें विरह की परिपक्वता नहीं, हृदय में इस प्रेम पीड़ा की सुखानुभूति है । साथ ही इस बात का आत्मतोस है कि इस पथ पर हमीं अकेली नहीं है । ब्रज की सभी ग्वालिनों का यही हाल है ।

मान -

मान का कुल एक पद प्राप्त है जिसमें सखी कृष्ण के प्रेम का उल्लेख कर मान तोड़ने के लिए कहती है :-

मान की औधि है आधी घरी, अरु जो रसखान डरैं डर के डर ।
तोरिये नेह न छोड़िये पौं परौं ऐसे कटाच्छ मन हियरा हर ।।
लाल गुपाल को हाल बिलोक री, नैक छुवैं किन दै कर सों कर ।
ना कहिबे पर वारत प्रान, कहा लख वारिहै हां कहिबे पर।।[312]

विरह -

विरह का रसखान में लगभग पूर्ण अभाव है । प्रवास का तो उन्होंने उल्लेख ही नहीं किया है । कृष्ण के गोचारण समय के विरह का उल्लेख है । इस विरह में नायिका की दुत मलीन हो गई मुख मुरझा गया, विरहाग्नि की लपटें लगने लगीं । पर इसी कृष्ण के आगमन का समाचार सुनते ही आनन्द से अंगियों के बंद तरक उठे तथा तन की जोति जाग उठी :-

---

३११ रसखान कवित्त सवैय्या ५०

३१२ वही ११२

रसखानि सुन्यो है वियोग के ताप, मलीन महादुति देह तिया की
पंकज सो मुख गो मुरझाइ, लगीं लपटैं बिरहागि हिया की ।।
ऐसे मैं आवत कान्ह सुनै, हुलसी सुतनी तरकी अंगिया की ।
यों जग जोति उठी तन की, उसकाइ दई मनो बाती दिया की ।।[313]

विरह की दशा में अभिलाषा को व्यक्त करने वाला एक कवित्त भी प्राप्त है । इसमें रूपदर्शन, बंशी श्रवण और सामीप्य सुख की अभिलाषा व्यंजित है :-

चीर की चटक औ लटक नवकुंडल की ,
भौं की मटक नेक आंखिन दिखाउ रे ।
मोहन सुजान गुन रूप के निधान, फेरि
बाँसुरी बजाय तुनु तपन सिराउ रे ।।
ए हो बनवारी बलिहारी जाउं तेरी, आजु
मेरी कुंज आप नेक मीठो गान गाउ रे ।
नंद के किशोर चितचोर मोर पंखवारे ।
बंसी वारे सांवरे पियारे इत आइ रे ।। ३१४

रसखान का इतना ही विरहवर्णन है जिससे स्पष्ट है कि रसखान में गोपी-विरह की अभिव्यक्ति की प्रतिमा तथा कसक और समझ दोनों थी किंतु उस पक्ष में उनका उतना मन नहीं रमा जितना प्रेम के संयोग एवं उत्साहवर्धक पक्ष के वर्णन में ।

---

३१३ वही ८७
३१४ ,, ४१

## १० मीराँ

मक्तों में मीरा का स्थान अन्यतम है । वे तत्कालीन सामान्य मक्त कवियों से बहुत अधिक भिन्न हैं । संभवत: वे किसी संप्रदाय में दीक्षित नहीं थीं और इसी लिए उनकी भक्ति-धारा उनकी आत्मा के निर्देशानुसार स्वच्छंद गति से प्रवाहित हुई है । उन्होंने अपने गिरधर गोपाल पर तन-मन वार दिया है और अपने प्रेम में वे आत्मविभोर हैं । उनके इस प्रेम में विप्रलंभ की वेदना और मिलन की तीव्र आकांक्षा है । भक्त- कवियों में उनका ही प्रेम " गोपी माव " का है और इस रूप में वे सभी भक्तों से निराली हैं । अन्य भक्तों ने जहां सखी भाव से राधा-कृष्ण के संभोग सुख का दर्शन जन्य सुख और साहचर्य जन्य आनन्द लिया है वहां मीरा तो स्वयं उनकी प्रिया हैं । उन्होंने राधा या किसी अन्य गोपी से अपना तादात्म्य किया हो ऐसा तो प्रतीत नहीं होता । वे तो अपने स्वतंत्र अस्तित्व में उनकी प्रेमिका है । इसी आत्म तत्व ने, स्वयं कृष्ण की प्रेमिका होने से उनके काव्य में जो सच्ची, सरल और सघन आत्मानुभूति भर दी है वह अन्यत्र दुर्लभ है ।

जिस समय मीरा ने अपना हृदय अपार्थिव भगवान कृष्ण से लगाया उसी समय उन्होंने स्थायी वियोग को वरण कि कर लिया। इस प्रेम में भक्त इष्ट- और इष्टदेवी के लीला-विहार की कल्पना कर सुख के समुद्र में निमज्जित नहीं रह सकता । साधना, भगवत्कृपा या भक्ति समाधि के किसी एक क्षण में भक्त प्रिय-दर्शन या संभोग की उच्चावस्था को प्राप्त कर सकता है । किंतु यह स्थिति स्थायी नहीं हो सकती ।फल-स्वरूप भक्त इस स्थिति से उतरने पर सर्वत्र विरह ही विरह देखता है । संभोगानुभूति उसकी विरहानुभूति को सहस्र गुना कर देती है और इस विरह में वह छटपटाता रहता है । यही स्थिति मीरा की रही होगी और इसी कारण से उनके काव्य में प्रेम की इतनी पीड़ा, वेदना की इतनी सघनता और दुखिनी का इतना चीत्कार है । उनके इस वियोग के रूपों का संक्षिप्त अध्ययन नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है ।

### पूर्वराग

मीरा के प्रेम-विकास में पूर्वराग का विकास इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है । इस पूर्वराग में उन्होंने प्रिय के किसी

उनका हृदय लगा और अब उनकी कैसी स्थिति है इसका हृदयग्राही वर्णन है । कृष्ण के प्रति उनकी यह प्रीति अनेक रूप से उत्पन्न हुई है । ये रूप निम्नलिखित है :-

(क) रूप - दर्शन

कृष्ण की छबि देख कर मीरा उस रूप- माधुरी पर बिक गई । वह छवि उनके हृदय में अटक गई । उनको वह रूप भा गया जिस दिन से उसे देखा वह एक घड़ी के लिए भी उनको विस्मृत नहीं कर सकीं । इस रूप दर्शन के होते ही उन्हें परिवार काल-तुल्य लगने लगा तथा उन्होंने लोक- लज्जा, कुलकानि आदि सभी का त्याग कर दिया ।[३१५]

(ख) बचपन की प्रीति

मीराँ ने अपने विरह निवेदन में बचपन की प्रीति का उल्लेख किया है । उनके इन पदों में बचपन के प्रेम के साथ-साथ उसके निर्वाह का संकेत भी मिलता है । वे उस समय के प्रेम वचनों का प्रतिपालन करने का निवेदन करती हैं ।[३१६] इस भावना के पीछे मीराँ का अपने को गोपी समझना है । वे अपने पूर्वजन्म का स्मरण करती हैं जब कि वृंदावन की गलियों में बाल्यावस्था में ही कृष्ण से प्रेम हुआ होगा और दोनों ने इस प्रेम को निबाहने के अनेक वादे किए होंगे ।

(ग) जन्म - जन्म की प्रीति

मीराँ ने अपनी प्रीति को जन्म जन्मांतर की बतलाया है । वे अपने पूर्व जन्म की प्रीति की याद कृष्ण को दिलाती हैं । जन्म -जन्म से उन्हें अपना पति मानती हैं और इसी

---

३१५ मीरा-बृहद्-पद-संग्रह पद २०,२७,२८,४५,११७,११८,११९, १२०

३१६ बाला पन की प्रीति रमइया जी, कदे नहिं आयी थांरो तोल।।वही।६३

तथा बालपने की बाल सनेही, प्रीति बचन प्रतिपाली रे ।। —

कारण उनसे नाता तोड़ना असंभव बतलाती हैं।[३१७]

भक्तों में सुप्त रूप से व्याप्त प्रीति किसी क्षण किसी कारण से उद्दीप्त हो सकती है। ऐसी प्रीति का रूप जन्म जन्मांतर की भावना से और भी दृढ़ हो जाता है। "मीराँ -बृहद-संग्रह" में शबनम द्वारा प्रक्षिप्त माने गए एक पद में मीरा अपने पूर्व जन्म में गोपी होने का उल्लेख करती है।[३१८] उस जन्म में कुछ चूक पड़ने से यह जन्म उनको मिला है। इसी धारणा के कारण उन्होंने माता- पिता आदि की झूठी प्रीति छोड़ कर अपने परम-स्नेही प्रीतम -प्यारे से प्रीति लगाई है। अपनी इस भावना के कारण भी मीरा का पूर्वराग और भी अधिक उद्दीप्त हुआ होगा।

यदि भक्ति-भावना की दृष्टि से न भी देखें तो भी इस जन्म-जन्म की प्रीति में कोई असंगति नहीं है। प्रेम की भावना ही ऐसी है कि होने के बाद प्रेमी-प्रेमिका को ऐसा प्रतीत होता है मानो वे चिर - परिचित हों। साधारण लौकिक व्यवहार में ही यह दिखलाई पड़ता है। फिर जहाँ मीरा सी प्रेम भावना हो वहाँ इसका होना अत्यंत ही स्वाभाविक है।

(घ) स्वप्न - विवाह

स्वप्न- दर्शन द्वारा पूर्वराग होने का उल्लेख अन्य भक्त-कवियों ने किया है। मीराँ ने अपने एक पद में (जिसकी प्रामाणिकता संदिग्ध हो सकती है) स्वप्न में गिरिधर से अपना विवाह होने का उल्लेख किया है।[३१९] इस प्रकार वे कृष्ण की पत्नी हो गईं और उनके हृदय में कृष्ण के प्रति प्रीति जागृत हो गई। इस स्वप्न को पूरा-पूरा सत्य समझ कर मीराँ गिरिधर को अपना पति स्वीकार करती हैं।

---

३१७ पूरब जनम की प्रीति हमारी, अब नहीं जात निवारी।

१

३१८ पूरब जनम की मैं तो गोपिका चूक पड़ी मुझ मांही।
जगत लहर व्यापी घट भीतर दीन्ही हरि छिटकाई।
३१९ माई, म्हांने सुपणों में परण गया जगदीस।

## पूर्वराग की काम की दशाएं

मीरां के पूर्वराग और विप्रलंभ के अन्य पदों को अलग करना संभव नहीं है । इस रूप में यह कहना कठिन है कि उनके पूर्व राग में काम की दसों ~~न~~ दशाएं उपलब्ध है या नहीं है । हां, उनके विप्रलंभ श्रृंगार में ये दशाएं उपलब्ध हैं इसमें संदेह नहीं । मीरां के प्रेम में संयोग के क्षण अल्प और क्षणिक ही रहे होंगे । इस आधार पर कल्पना की जा सकती है कि उनके पूर्वराग में भी काम की दशाओं की अभिव्यक्ति हुई होगी । इसी रूप में ऐसे कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं । ये पूर्वराग तथा अन्य विप्रलंभ के भी हो सकते हैं ।

### अभिलाषा

मीरां में अभिलाषा बड़े ही उद्दाम रूप में व्यक्त हुई है । उनका समग्र विप्रलम्भ काव्य इसी अभिलाषा से ओत प्रोत है । इसमें प्रिय के मिलन, अंग-संग की कामना आदि अत्यंत स्पष्ट है अन्यत्र अभिलाषा का ऐसा रूप सरलता से उलब्ध नहीं है ।

आवो मनमोह्ना जी मीठां थांरा बोल ।
बालपनां की प्रीत रमइया जी, कदे नहिं आयोथारां तोल ।
दरसण बिना मोंहि जक न पड़त है , चित्त डांवाडोल ।
मींरा कहे मैं भई रावरी, कहो तो बजाऊं ढोल ।

तथा साजन, म्हांरी सेजड़ली कद आवे हो । ३२०
हंसि हंसि बात करूं हिड़दा की, जब जिवड़ोजक पावे हो ।
पांचू इन्द्री बस नहीं मोरी, धन ज्यूं धीर धरावे हो ।
कठिन विरह की पीड़ गुंसाईं, मिलि करि तपत बुझावे हो ।
या अरदास सुणों हरि मोरी, विरहणी पल्लो बिछावे

### चिन्ता

लाग रही ओसेर कान्हा, तेरी लाग रही ओसेर।
दरसण दीजे, कृपाकीजे,कहां लगाई बेर ।
दिन में नहीं चैन, रैन नहीं निद्रा, बिरह बिथा ~~ने~~ है
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, सुण जो मुंहारी ~~टे~~ ।

३२० वही ६३ आदि
३२१ वही ५६ आदि
३२२ वही १०३ आदि

स्मृति

मतवारो बादर आए रे, हरि को संदेशो कछु नहीं लाए रे ।
दादुर मोर पपइया बोले, कोयल सबद सुनाए रे ।
कारी अंधियारी बिजरी चमकै, बिरहिन अति डरपाये रे ।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लाए रे ।
कारी नाग बिरह अति जारे, मीरा मन हरि भाए रे ।।[323]

गुण -कथन

माई, मेरे नैनन बान पड़ी री ।
जा दिन नैना श्यामहिं देख्यो, बिसरत नाहिं घरी री ।
चित बस गई सांवरी सूरत, उर तें नाहिं टरी री ।
मीरा हरि के हाथ बिकानी, सरबस है निबरी री ।[324]

उद्वेग

दरस बिन दूखण लागे नैण ।
जब के तुम बिछुरे प्रभुजी, कबहूं न पायो चैन ।
सबद सुणत मेरी छतियां कांपै, मीठे मीठे बैन ।
बिरह बिथा कांसू कहूं सजनी, बह गई करवत ऐन ।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण ।
मीरां के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण ।।[325]

प्रलाप और उन्माद

बिरहनी बावरी सी भई ।
ऊंची चढ़ चढ़ अपने भवन में टेरत हाय दई ।
ले अंचरा मुख अंसुवन पोंछत उघरे गात सही ।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, बिछुरत कछु ना कही ।।[326]

---

३२३ वही १४२ आदि

३२४ वही ११८

३२५ वही १२७

३२६ वही १३२

सखी मोरी नींद नसानी हो ।
पिया को पंथ निहारते, सब रैण बिहानी हो ।
सखियन मिलि कै सीख दई, मन एक न मानी हो ।
बिन देखें कल ना परै, जिय ऐसी ठानी हो ।
अंग छीन व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो ।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीर न जानी हो ।
ज्यौं चातक घन कौं रटै, मछरी जिमि पानी हो ।
मीराँ व्याकुल बिरहणी, सुध बुध बिसरानी हो ।। [327]

पूर्वराग की जो अन्य दसदशाएं नयनानुराग, चित्रासक्ति, निद्रोच्छेद आदि हैं, उनमें से भी अनेक मीराँ में मिलेंगी । इनमें निद्रोच्छेद का मीराँ ने अनेकानेक बार उल्लेख किया है । इसके कुछ उदाहरण पीछे स्वयमेव आ गए हैं अत: उनकी पुनुरुक्ति कर कलेवर नहीं बढ़ाया जाएगा ।

मान

मीराँ में मान का अभाव है । मान की स्थिति में बाह्य दृष्टि से संयोग या संयोग की स्थिति रहती है । मीराँ के साथ यह संभव नहीं था । अतएव कृष्ण के लिए मीराँ को मनाना या रूठे कृष्ण को मीरा के लिए मनाना असंभव है । अत: ऐसे पद मीराँ में नहीं मिलते हैं ।

प्रवास

मीराँ के विप्रलंभ में प्रवास का यथेष्ट उल्लेख है । यथार्थ में मीराँ के पदों में पूर्वराग तथा प्रवास जनित विरह दोनों घुले मिले हैं जिस कारण से दोनों को पृथक करना कठिन है । इन प्रवास विप्रलम्भ के पदों में प्रिय के प्रवास जाने लौट कर न आने तथा अपनी पीड़ा आदि का उल्लेख है । संदेश, पाती और उपालंभ भी इनमें प्राप्त हैं । इसी विप्रलंभ में काम की अनेक दशाओं का संकेत है जिनमें से कुछ का उदाहरण हम पीछे दे आए हैं । प्रवास-विप्रलंभ के

---

३२७ वही १२३

विभिन्न रूपों को नीचे दिया जा रहा है ।

(क) कृष्ण का मथुरा - प्रवास

' कृष्ण मधुबन जाकर दूज के चांद हो गए हैं । वे तो मधुबन जा कर' मधुबनिया' बन गए हैं । हम पर प्रेम का फंदा डाला है । ऐसा प्रतीत होता है कि उनका प्रेम मंद हो गया है । इस तथा ऐसे अन्य पदों में कृष्ण के प्रेम के मंद होने, प्रीति न जोड़ने आदि का संकेत है । शबनम ने इस भावना को बाथ ब ब प्रमुख द्योतक पदों में भी माना है ।[३२८] यह भावना अत्यंत स्वाभाविक है । परदेश में जा कर अन्य रमणियों से स्नेह-संबंध स्थापित कर वहीं रह जाने पर प्रेमिका के हृदय से निकला यह अत्यंत व्यंग्ययुक्त उद्गार है ।

(ख) कृष्ण का द्वारका - प्रवास

कृष्ण भक्त कवियों में कृष्ण के द्वारका प्रवास जन्य पीड़ा और विरह का उल्लेख कम मिलता है । मीराँ में यह भावना काफी मिलती है । जब तक वे मधुपुरी में थे तब तो कुछ न कुछ आशा थी किंतु उनके द्वारका जाने से यह आशा लगभग टूट ही गई। अपने समस्त प्रेम आश्वासन तोड़ कर चले जाने वाले प्रिय की यह निष्ठुरता कितनी दाहक होगी इसकी कल्पना ही की जा सकती है । वियोगिनी मीराँ को लगता कि वे मुझे टाला दे गए । कभी वह अपने बचपन की-प्रं प्रीति की याद दिलाती है और कभी प्रिय के बिना अंधियारे घर का संकेत करती है अब उसमें प्रेमगर्व के लिए अवकाश नहीं अतः वह अपने ब अबलत्व, दासित्व की दुहाई देकर

---

३२८ वही १२६ ५३३, ५३५

अपने स्वामी को बुलाती हैं पीड़ा, निराशा, और प्रेम की एक निष्ठता का बड़ा ही सुंदर रूप ऐसे पदों में हुआ है।

(ग) प्रवास में कुब्जा से प्रीति

कृष्ण की कुब्जा से प्रीति सभी गोपियों की विरहाग्नि को अधिक उद्दीप्त करने वाली रही। मीरा को भी इसका बड़ा दुख है। उसके सब सुख कुब्जा ने छीन लिए हैं। ऐसी प्रीति के कारण ही उसे ऐसा प्रतीत होता है मानों अमृत में विष घोला जा रहा है। इसी से वह कहती है कि निर्मोही से प्रीति न जोड़नी चाहिए।[३३०]

(घ) दर्शनों की आकांक्षा

प्रिय के दर्शन की मीरा में तीव्र आकांक्षा है। अपनी इस आकांक्षा को वे अनेक प्रकार से व्यक्त करती हैं। कभी वे कहती हैं कि प्रिय के दर्शनों के बिना नैत्र दुखने लगे हैं।[३३१] तो कहीं प्रिय के न आने के कारण दर्शन के लिए तरसती हैं।[३३२] वे बार बार पुकार कर प्रिय से दर्शन देने की प्रार्थना करती हैं। बारहमासे के द्वारा प्रिय वियोग में अपनी दयनीय दशा बतला कर वे कहती हैं कि कब दर्शन होगा।[३३३] वे अपने अनन्य प्रेम की चर्चा करती हैं, प्रिय के वादे का उसे ध्यान दिलाती हैं और कहती हैं कि प्रिय के दर्शन के बिना कुछ भी अच्छा नहीं लगता है।[३३४]

---

निजर भर न्हालो नाथ जी, हूं तो थांरे चरणा री दासी।
मैं अबला तुम सबला स्वामी, नहीं मिलणा को टालो रे।
फूंक फूंक पग धरूं धरणी पर, मति लागज्यो कोई कालो रे।
आप तो जाइ द्वारका छाये, हमसूं दे गया टालो रे।
बालपने को बाल सनेही, प्रीति वचन प्रतिपालो रे।
च्यारि महिना आयो सियालो, च्यार महिना उन्ह्यालो रे।
कृपा करि मोहिं दरसण दीज्यो, अब ऋतु आयो बरसालो रे।
सब जग म्हांरी निंदा करत है, कीन्हीं मुंढो कालो रे।
सरण तुम्हारी लई सांवरा, तुम भी दियो म्हांसू टालो रे।
म्हांरो घर में भयो अंधेरो, आण करो उजियालो रे।
मीरां के प्रभु गिरिधर नागर, विरह अगनि मत जालो रे।

वे कहती हैं `मेरी सुधि जैसे भी हो लो । प्रत्येक पल में पंथ देखती रहती हूं, मुझे दर्शन दो । मैं अनेक अवगुणों से भरी हूं पर उन पर ध्यान मत दो । मैं तो तुम्हारे चरण कमल की दासी हूं, मिल कर बिछुड़न मत करो[335] । इस प्रकार अनेकानेक पदों में अपना प्रेम तथा विरह निवेदन और दर्शनों की अभिलाषा मीरा ने प्रकट की है । इन [336] में मीरा ने अपने को जन्म जन्म की दासी, अवगुण से भरी माना है । उसे अपने रूप-यौवन का गर्व नहीं है । वह तो पूर्णतः प्रिय की कृपा पर अवलंबित है । इस प्रकार इस विरह वेदना में मीरा का दाम्पत्य भाव बड़े ही मनोहर रूप में निखरा है । उसे अपनी सेवा और प्रिय की कृपा का ही भरोसा है ।

(ङ) कुल -लज्जा का त्याग

उपर्युक्त पदों में जहां मीरा की निरीहता, निरावलंबिता, और प्रिय के कृपा-कटाक्ष की छटा है वहां कुछ ऐसे पद भी हैं जिनमें प्रेम के लिए अपने त्याग का उल्लेख कर प्रीति निबाहने की चर्चा की गई है । ऐसे पदों में मीरा कहती हैं कि उन्होंने प्रिय के लिए लोक-लज्जा, कुल-कानि आदि का त्याग किया है । जिस प्रिय के लिए प्रिया समस्त सांसारिक बंधनों का त्याग करती है उसे भी तो अपनी प्रीति निबाहनी चाहिए । इस प्रकार इन पदों में परकीया भावना और प्रिय की निष्ठुरता का द्रावक संकेत है ।

च) पाती

पाती का उल्लेख हुआ है पर कम । यह उल्लेख दो रूपों में हुआ है । एक में तो कृष्ण के पाती लिख भेजने का उल्लेख है[338] । इसमें वे अपने विरह का उल्लेख कर संदेश भेजती है कि मेरा प्रिय कब घर आवेगा । दूसरे में कृष्ण के पत्र भेजने का उल्लेख है[339] । पता नहीं ऐसी कितनी पातियां कृष्ण भेज चुके

---

३३५ वही ७८
३३६ ,, ६६,७३,१९६,२१२ आदि
३३७ ,, ८९ १८०
३३८ ,, वही ६१

तभी तो वह कहती हैं," पातियों का कौन विश्वास करे ।

हे हरि आकर खबर लो । तुम तो झूठी पातियां लिख-लिख कर भेजते हो । उससे क्या लेना देना । इतना होने पर भी बिना पढ़े मन नहीं मानता और पढ़ते ही इतने अश्रु निकलते हैं और इतना प्रस्वेद प्रवाहित होता है कि उस पाती को पढ़ा नहीं जाता । इसी लिए वह किसी से पत्र को बांच कर सुनाने की बात कहती है ।

(ङ) उपालंभ

मीरां के उपालंभ दो प्रकार के हैं । एक तो सामान्य विरह में प्रिय की निष्ठुरता का उपालंभ । ऐसे में वे कहती हैं " विश्वास घात कर मुझे छोड़ कर । जा कर मधुपुरी रहने लगे ।[340] हे निर्मोही तुम्हारी प्रीति जान गई । तुम गरज के मित्र हो ।।[341] दुनिया मुझे ताने देती है और स्वयं विदेश में छा गए हो ।[342] हे प्रिय तु गोपियों के बालम हो फिर मुझसे ही ब्रह्मचारी क्यों बन गए हो ।[343] दूसरे प्रकार के उपालंभ " भ्रमरगीत" प्रसंग के हैं । ऐसे पद थोड़े ही हैं । इनमें उद्धव के माध्यम से कृष्ण की निष्ठुरता की अभिव्यक्ति है । वह कहती हैं", ऊधो कृष्ण ने भली प्रीति निबाही । गोपियों और गोकुल को त्याग कर वह मुझे तरसा रहा है । मैंने उससे प्रीति लगाई पर उसे लाज न आई ।[344] अंत में निराश हो कर वह कहती है," अपने ही कर्म का दोष है और किसे दूं । मैं समझती थी कि हरि नहीं तजेंगे पर

---

[340] वही ३१

[341] वही ३२

[342] ,, ३४

[343] ,, ३३

[344] ,, ६८

क कर्म में ही खोट लिखी है।[३४५]

उपालंभ के प्रसंग विशेष मार्मिक नहीं हैं। हां, समस्त दोषों को अपने सिर पर लेकर अपने भाग्य को ही दोष देने में निराशा की तीव्र अभिव्यक्ति हुई है।

(ज) विरहाभिव्यक्ति

मीरां ने अपने पदों में अपने विरह की वेदना की अभिव्यक्ति बार-बार की है। ऐसे ही पद मात्रा में अधिक और उच्च कोटि के हैं। इने इनमें मन न लगने,[३४६] दिन रात रोने,[३४७] निरंतर बाट जोहने,[३४८] वियोग में काशी में करवट लेने,[३४९] प्रकृति के के दुखदायी होने का उल्लेख है।[३५०] मीरां की इस प्रेम व्याधि को कोई समझ पाता।[३५१] लोग दवा-दारू करते, बैद बुलाते। पर वह किसी रोग से तो पीड़ित है नहीं। उसका रोग तो तभी जा सकता है जब कन्हैया वैद बन कर आएं।[३५२] इन सभी विरह निवेदन में संयोग की तीव्र कामना है। मीरां अपने जाते हुए यौवन का उल्लेख करती है।[३५३] प्रिय के लिए सेज सजाने को कहती हैं।[३५४] और फिर भी जब प्रिय नहीं मिलता तो प्रेम न करने की ही सीख देने लगती हैं।[३५५] इस प्रकार विविध रूप में अत्यंत मनमोहक ढंग से मीरां की विरहाभिव्यक्ति हुई है जो कि हिन्दी साहित्य की निधि है।

---

| | | |
|---|---|---|
| ३४५ | वही | ३५ |
| ३४६ | ,, | ३०,४० |
| ३४७ | ,, | ६४ |
| ३४८ | ,, | ४१,~~८८~~ |
| ३४९ | ,, | ४६ |
| ३५० | ,, | ~~३८,५३,५४,८५~~ ४७,४८,५५,८५,६६,६८ |
| ३५१ | ,, | ३८,५३,५४,८५ |
| ३५२ | ,, | ३६ |
| ३५३ | ,, | ३७ |
| ३५४ | ,, | ८७ |

निष्कर्ष

मीराँ में प्राप्त विप्रलंभ श्रृंगार के इस संक्षिप्त अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष निकलते हैं :-

(१) मीराँ का प्रेम और भक्ति गोपी भाव की है जैसा कि अन्य भक्त कवियों में नहीं है । अतएव उनका विरह इष्टदेव और इष्टदेवी का न होकर उनका और उनके प्रिय कृष्ण का है ।

(२) मीराँ के विप्रलंभ में सर्वत्र संयोग की अत्यंत तीव्र आकांक्षा झलकती रहती है ।

(३) इस विप्रलंभ के पूर्वराग और प्रवास, ये दो ही रूप प्राप्त हैं । मान का अभाव है ।

(४) पूर्वराग की उत्पत्ति के कई कारण हैं जिनमें रूपदर्शन, जन्म-जन्म की प्रीति, बालपन की प्रीति और स्वप्न- विवाह महत्वपूर्ण हैं ।

(५) प्रवास में मथुरा और द्वारका प्रवास दोनों का उल्लेख है ।

(६) पूर्वराग तथा प्रवास दोनों की ही विरहाभिव्यक्ति अनेक प्रकार से हुई है जिसमें अपनी पीड़ा का उल्लेख मीराँ ने अत्यंत करुण रूप में किया है ।

(७) इस विप्रलंभ में अधिकतर उनका पत्नी रूप प्रकट हुआ है तथा प्रेम-निवेदन के साथ -साथ बार -बार अपने दासी होने का उल्लेख है । इस प्रकार इस प्रेम में गार्हस्थिकता अधिक है ।

(८) मीराँ का विप्रलंभ श्रृंगार करुण, तीव्र, हृदयद्रावक और मधुर है ।

(९) समग्र रूप से हिन्दी भक्ति-काव्य में विप्रलंभ-श्रृंगार अत्यतविविध एवं प्रभावशाली रूप में अभिव्यक्त हुआ है। इसकी महत्ता का यही प्रमाण कि जिन संप्रदायों ने सैद्धांतिक रूप में विप्रलंभ को नहीं माना है — सूक्ष्म विरह आदि की आयोजना द्वारा अपने साहित्य को इससे ही संपन्न किया है । इसमें श्रृंगार का अत्यंत उदात्त रूप प्राप्त है जो कि अपनी रमणीयता में अन्यतम है ।

## द्वादश अध्याय

## हिन्दी भक्ति-काव्य में प्रतीकात्मकता

# हिन्दी भक्ति- काव्य में श्रृंगार की प्रतीकात्मकता

## भूमिका -

भक्ति- काव्य में श्रृंगार की प्रधानता लगभग स्वयंसिद्ध सी है । हिन्दी - भक्ति- काव्य इसका अपवाद नहीं है जैसा कि अब तक के अध्याय से स्पष्ट हो गया होगा, इस श्रृंगार में संभोग श्रृंगार का बड़ा अंश है । निर्गुण संत शाखा इससे अछूती नहीं है । सूफी प्रेमाश्रयी शाखा में इसका विशेष वर्णन है । राम- भक्ति शाखा में दास्य - भाव की भक्ति होने के कारण इष्टदेव का श्रृंगार अत्यंत अल्प और मर्यादित है । इस साहित्य में श्रृंगारिक परंपरा आगे चलकर विकसित हुई पर आलोच्य युग के साहित्य में इसका अभाव सा ही है ।

हिन्दी भक्ति-काव्य की कृष्णाश्रयी शाखा में यह श्रृंगार विशेष है । कृष्ण - भक्ति में राधाकृष्ण का लीलापक्ष प्रधान है । इस पक्ष में भी वल्लभ- सम्प्रदाय को छोड़कर अन्य सम्प्रदायों में वात्सल्य का -सा अभाव ही है । वल्लभ - संप्रदाय में भी सैद्धांतिक रूप में कृष्ण के बाल रूप की मान्यता होते हुए भी सूर के अतिरिक्त अन्य कवियों ने उनका किशोर या युवक रूप ही लिया है, और स्वयं सूर ने भी अधिकतर श्रृंगार की ही रचनाएं की है । श्रृंगार के क्षेत्र में भी कवियों ने विप्रलंभ की अपेक्षा संभोग - श्रृंगार पर ही अधिक पद लिखे हैं । यथार्थ में केवल वल्लभ - संप्रदाय में ही विप्रलंभ - श्रृंगार को विशेष मान्यता मिली है । अन्य सं- जैसे, राधावल्लभ, हरिदासी आदि में विप्रलंभ का लगभग अभाव है । इसका कारण इन संप्रदायों की धार्मिक मान्यताओं में है राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदाय कृष्ण का वृन्दावन में नित्य निवास मानते हैं । कृष्ण कभी भी वृन्दावन नहीं छोड़ते हैं । अतए उनके लिए वियोग का प्रश्न ही नहीं है । हाँ, मान, प्रेम -वैचित्र्य आदि में कहीं कहीं वियोग का अल्प चित्रण है । यही कारण है कि इन सम्प्रदायों में भ्रमरगीत ऐसे सरस और मनोवैज्ञानिक प्रसंग तक का अभाव है ।

उक्त संभोग शृंगार की रचनाओं में जिस प्रकार के खुले शृंगार का वर्णन है उसके संबंध में लोगों के मस्तिष्क में अनेक प्रश्न उठते हैं। जिन बातों का सामान्य जीवन में उल्लेख करना हम उचित नहीं समझते उनका सूक्ष्म और विस्तृत वर्णन भक्ति के रूप में देख कर हम आश्चर्यचकित हो जाते हैं। आज के मनोविश्लेषण के युग में जबकि मनोवैज्ञानिक हमारी भोली- भाली क्रियाओं को चीर-फाड़ कर उनके पीछे के काम-प्रवाह को प्रकट करता है उस समय इन स्पष्ट शृंगारिक रचनाओं के पीछे की अतृप्त और दमित काम-वासनाओं के संकेतों को खोज लेना उसके लिए सरल है। काम- क्रोध का दमन कर जिन व्यक्तियों ने शताब्दियों से भक्तों की श्रेणी में स्थान प्राप्त कर लिया है, उनके संबंध मे उपर्युक्त कथन सुनने का मन नहीं करता। इस विषय में किसी भी प्रकार की रोचकता की कमी न होते हुए भी विचारकों ने सामान्यतः इस समस्या पर या तो लेखनी ही नहीं उठाई और या इन्हें " प्रतीक " मात्र कह कर संतोष कर लिया है। केवल एक दो लेखकों ने ही इन शृंगारिक लीलाओं को समझाने का प्रयत्न किया है। उनके विचारों को जान लेना उपयुक्त होगा।

डा० आनन्द कुमार स्वामी ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक " डांस - आफ शिव " (१९१८) में " सहज" शीर्षक के अंतर्गत राधाकृष्ण की लीलाओं का उल्लेख करते हुए कहा है :-

"All this is an allegory- the reflection of reality in the mirror of illusion. This reality is the inner life, where Krishna is the Lord, Gopies are the souls of men, and Vrindavan the field of consci

विदेशी रहस्यवादियों की उपासना- पद्धति इन की उपासना से तत्वतः भिन्न है, किंतु शृंगारिक प्रेम बहुलता उनमे भी उतनी है। इसकी व्याख्या करते हुए ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक " मिस्टीसिजम्" में लिखा है :

"that he some times forgets to explain that his utterence is but symbolic..."[2]

"The great saints who adopted and elaborated this symbolism, applying it to their pure and arden passion for the Absolute, were destitute of the prusient imagination which their modern commentators too often possess."[2]

"In the place of the 'sensuous imagery' which is so often and so earnestly deplored by those who have hardly a nodding acquaintance with the writings of the saints, we find images which indeed have once been sensuous; but which are here anointed and ordained to a holdy office, carried up, transmuted and endowed with a radient purity, an intense and spiritual life."

उपर्युक्त उद्धरणों में शृंगार परक काव्य को आत्मा परमात्मा की मिलन उत्कंठा, भावोल्लास, योग- साधना और आत्म समर्पण आदि मान कर समझाने का प्रयत्न किया गया है। महाप्रभु वल्लभाचार्य ने सुबोधिनी में इन लीलाओं का प्रतीकात्मक और स्थूल, दोनों ही अर्थ लिया है, किंतु स्थूल अर्थ के संबंध में यह स्. करने के लिए अत्यंत उत्सुक है कि ये लीलाएं न केवल वासना से ... ही है, बल्कि वासनाओं की नाशक और भक्ति - भाव की प... भी है।[४]

२-

विदेशी साहित्य की बात छोड़कर, हिन्दी- भक्ति- साहित्य के बड़े अंश में जो शृंगार- वर्णन है उसे प्रतीकात्मक रूप

---

२- अध्याय : दि कैरेक्टरिस्टिक आफ मिस्टिसिज्म

३- वही अ०- स्पिरिचुअल मैरिज इन मिस्टीसि

ग्रहण करने में कुछ कठिनाई है । अच्छा यह होगा कि इस विषय के अध्ययन में भावात्मकता को सुप्रयास अलग रख कर हम सत्य को खोजने का प्रयत्न करें । इसके लिए आवश्यक है कि हम पहले "प्रतीक" के अर्थ और स्वरूप को संक्षेप में समझ लें ।

३- प्रतीक का अर्थ -

मानव विचार शील प्राणी है । उसके ये विचार बहिर्जगत के अनुभवों के आधार पर बनते हैं । अपनी विभिन्न इन्द्रियों के द्वारा वह अनेक प्रकार के अनुभव प्राप्त करता है जो कि उसके विचारों के मूलाधार होते हैं । प्रारंभ में विद्वानों का ऐसा विचार था कि विभिन्न अनुभवों के योग द्वारा ही विचार बनने की प्रक्रिया होती है । यही कारण है कि इन्द्रियों के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाता था । उस समय मस्तिष्क को एक मात्र विचार-संग्रह करने वाली इन्द्रिय समझा जाता था । आधुनिकतम खोजों ने इसे भ्रामक सिद्ध कर दिया । नई खोजों के अनुसार मस्तिष्क केवल संग्रह करने वाली इन्द्रिय नहीं है । यह प्रत्येक अनुभव को स्वीकार करने के पूर्व उसमें कुछ परिवर्तन कर देती है । ये परिवर्तित रूप ही विचार के मूलाधार होते हैं । इन्हें प्रतीक कहते हैं ।

४- प्रतीकों का महत्व-

जिस प्रकार मानव की मूल आवश्यकताओं में खाना, देखना आदि है, उसी प्रकार प्रतीक- निर्माण- क्रिया भी उसकी मूल आवश्यकताओं में से एक है । मस्तिष्क की यह मौलिक क्रिया निरन्तर चला करती है । कभी हम सचेत होकर इसकी क्रिया को कुछ देख लेते हैं और कभी इसी के फलस्वरूप हमें अपने अनु- रूप में प्रकट होते दिखलाई पड़ते हैं । इसी प्रतीक - निर्माण द्वारा विचार बनते हैं । रिट्शी का कथन है कि प्रतीक-क्रिया ही विचार-क्रिया है । यह एक मानसिक क्रिया है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि प्रतीक भी सूक्ष्म और वायवी होते हैं । अधिकतर प्रतीक तो स्थूल ही होते हैं । इसके मानसिक क्रिया होने का व

यह है कि विचार की क्रिया ही प्रतीकात्मक है । मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मस्तिष्क अनुभवों को प्रतीकों में बदलता रहता है और इनमें से आवश्यकता और तर्क- सम्मतता के आधार पर कुछ प्रतीक प्रकट होते हैं और शेष मस्तिष्क में सुप्त पड़े रहते हैं । ये प्रतीक ही मानव-मस्तिष्क को समझने की कुंजी हैं । मानव और पशु के बीच की विभाजक रेखा यही प्रतीक- निर्माण की शक्ति है, उसकी संवेदनशीलता या स्मृति नहीं । यही कारण है कि अंधा, बहरा और गूंगा मनुष्य भी समस्त इन्द्रियों से युक्त पशुओं से अधिक विस्तृत और पूर्ण जगत में रहता है ।[५]

५- प्रतीक का सीमित अर्थ -

जीवन का कोई भी अंग, भाषा, साहित्य, धर्म, विचार आदि प्रतीकों से अछूता नहीं बचा है । किंतु सामान्यतः हम प्रतीकों का सीमित अर्थ में प्रयोग करते हैं । इस प्रयोग के पीछे अपनी भावना और विचारों को भाषा के माध्यम द्वारा स्पष्टतम और प्रगाढ़-तम रूप में प्रकट करने की इच्छा है । ऐसे प्रतीकों से धर्म और साहित्य परिपूर्ण है । जो कुछ हमें कहना है उसे सीधे न कह कर हम घुमा कर कहते हैं । पवित्रता के लिए कमल, तेज के लिए - मार्तंड, विस्तार के लिए आकाश और ब्रह्मानन्द के लिए सहवास-सुख का प्रयोग हम करते हैं । हम मूर्ति के द्वारा ईश्वर को व्यक्त करते हैं पर मूर्ति ईश्वर नहीं होती । प्रतीकों के ऐसे प्रयोग द्वयर्थक होते हैं । उनका एक बाह्य, साधारण, प्रकट अर्थ होता है और दूसरा आन्तरिक, गुह्य और यथार्थ । अतः इन प्रतीकों के अ... में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कब किसी कथन में प्रतीक... इष्ट है और कब केवल सामान्य अर्थ । इस बात का ध्यान ... पर शब्द अपने यथार्थ अर्थ खो देंगे और कवि की बात को न... कर हम कुछ और ही समझने लगेंगे । उपर्युक्त बात को ध्यान में र... हुए प्रतीकों का इस सीमित अर्थ में अध्ययन ही हमारा विषय है ।

६- प्रतीकों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या-

मनोविश्लेषकों के अनुसार अधिक

दबा हुई कामात्मक इच्छाओं को प्रकट करते हैं। उनके अनुसार प्रतीकों द्वारा हम अपनी कमात्मक इच्छाओं को अकामात्मक आवरण प्रदान करते हैं। अचेतन मनस् की भावनाओं को छिपाने के लिए ये प्रयुक्त होते हैं। इनके द्वारा प्रच्छन्न रूप में विचारों को अत्यंत स्पष्टता से प्रकट किया जा सकता है। इस प्रकार प्रतीक अचेतन मन की बातों को छिपा कर प्रकट करने की सर्वोत्तम विधि है।[६] फ्रायड के अनुसार ये सदा कामात्मक होते हैं। मिलर और पद्मा अग्रवाल के अनुसार यह अनिवार्य नहीं है। पद्मा अग्रवाल के अनुसार सामान्य जीवन में दबी हुई अतृप्त कामात्मक या अकामात्मक इच्छाओं को प्रकट करने वाली अभिव्यक्ति ही प्रतीक है।[७]

बेवेन अपनी पुस्तक " बिब्लिकल सिम्बालिज़्म " में प्रतीक की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि प्रतीक इन्द्रिय या कल्पना के सम्मुख एक वस्तु के स्थान पर प्रस्तुत अन्य वस्तु है।[८]

श्री परशुराम चतुर्वेदी प्रतीक की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि " प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की ओर इंगित करने वाला न तो कोई संकेत मात्र है और न उसका स्मरण- दिलाने वाला कोई चित्र या प्रतिरूप ही है। यह उसका एक जीता- जागता एवं पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है जिस कारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके व्याज से उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावों को सरलता पूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है। ऐसे प्रतीकों का प्रयोग अपनी भाषा में केवल किन्हीं चमत्कारों द्वारा क्षमता लाने के उद्देश्य से भी नहीं किया जाता है और न इससे उसमें उक्ति- वैचित्र्य का ही समावेश कराया जाता है। सादृश्य मूलक दीख पड़ने के कारण इसे कभी- कभी उपमानों का स्थान दे दिया जाता ... उचित नहीं है, यह उससे कहीं अधिक व्यापक है। इसकी सह... बहुधा ऐसे अवसरों पर ली जाती है जब हमारी भाषा पंगु ... अशक्त सी बन कर मौन धारण करने लगती है और जब अनुभव कर्ता के विविध भाव पत्थरों से चतुर्दिक टकराने वाले स्त्रोतों की भाँति

---

६- पद्मा अग्रवाल कृत सिंबालिज्म में उद्धृत ई० जोन्स का मत पृ० ११-१[illegible]

७- वही पृ० १२-१५

८- पृ० ११

फूट निकलने के लिए मचलने से लग जाते हैं। ऐसी दशा में हम उनकी यथेष्ट अभिव्यक्ति के लिए उनके साम्य की खोज अपने जीवन के विभिन्न अनुभवों में करने लगते हैं और जिस किसी को उपयुक्त पाते हैं उसका उपयोग कर उसके मार्ग द्वारा अपनी भावधारा प्रवाहित कर देते हैं।[१]

उपर्युक्त विविध परिभाषाओं के आधार पर प्रतीक के संबंध में दो निष्कर्ष निकलते हैं :-

प्रथम, प्रतीक ज्ञात अनुभवों द्वारा अज्ञात की अभिव्यक्ति करते हैं।

द्वितीय, प्रतीक साधन मात्र हैं। जहां वे स्वयं साध्य होकर अज्ञात की अभिव्यक्ति से दूर हो जाते हैं वहीं पर वे प्रतीक नहीं रहते।

७- धार्मिक प्रतीक -

जिन प्रतीकों का उद्देश्य किसी धार्मिक तथ्य को व्यक्त करना होता है उन्हें धार्मिक प्रतीक कहते हैं। प्रस्तुत अध्ययन का संबंध विशेषतः इन्हीं से है।

८- धार्मिक प्रतीकों के भेद -

धार्मिक प्रतीकों के कई प्रकार से भेदोपभेद किए जा सकते हैं। परशुराम चतुर्वेदी ने एक ऐसा ही वर्गीकरण प्रस्तुत किया है[१] किंतु वह वैज्ञानिक नहीं है। धार्मिक प्रतीकों का एक अन्य प्रकार का वर्गीकरण भी किया जा सकता है। इसमें प्रथम प्रकार के वे हैं जिनके पीछे के मूल सत्यों को हम जानते हैं और स्पष्ट मे साधारण शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं। उदाहरण ... भागवत के चतुर्थ स्कंध, अध्याय २५-२८ तक की राजा पुरंजन की कथा जिसकी व्याख्या नारद ने २९ वें अध्याय में की है। ऐसे प्रतीकों में हम जहां कहीं भ्रम की संभावना देखते हैं, वहीं प्रती

---

१- कबीर साहब की प्रतीक योजना, ...

आवरण छोड़कर साधारण भाषा में उसका निवारण कर देते है। यह जानते हुए भी कि प्रतीक का प्रयोग अस्पष्टता का कारण है, हम उसका प्रयोग करते हैं क्योंकि इस प्रकार वह सत्य कथन से अधिक ग्राह्य हो जाता है। हम उसकी प्रतीकात्मकता और उसके पीछे के सत्य से अवगत रहते हैं।

दूसरे प्रकार के प्रतीक वे है जिनके पीछे के सत्य को साधारण भाषा में व्यक्त नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए ईश्वरीय प्रेम या इच्छा। हम जानते है कि ईश्वरीय प्रेम या इच्छा का मानवीय प्रेम या इच्छा से कोई संबंध नहीं है। फिरभी हम मानव- जीवन के एक तत्व को ईश्वरीय जीवन के एक तत्व को व्यक्त करने के लिए क्यों लेते हैं? इसका कारण है कि हम इस सत्य को और किसी प्रकार स्पष्ट रुप में व्यक्त नहीं कर सकते। इसी प्रतीक द्वारा ही हम उसके पीछे छिपे सत्य के निकटतम पहुँच सकते है।

प्रतीकों के उपभेद की यह विभाजक रेखा अत्यंत अस्पष्ट है और सूक्ष्म है।

९- प्रतीकात्मक व्याख्या और उसकी सीमा- रेखा /

ऐसे अनेक लोग है जो सभी धार्मिक कथाओं या आख्यानों की प्रतीकात्मक व्याख्या करने को तैयार रहते है। उदाहरण के लिए चीर हरण या रास लीला है। यही क्यों कुछ तो संपूर्ण भागवत की ही प्रतीकात्मक व्याख्या कर देते है।[११] इन प्रतीका-त्मक व्याख्याओं के पीछे यथार्थ में इन कथाओं की सत्यता में विश्वास का अभाव है। इन ग्रन्थों में अनेक ऐसे प्रसंग है जो [illegible] वर्तमान नैतिकता के विरुद्ध है। धार्मिक ग्रन्थों को शाश्वत [illegible] करने की इच्छा और नैतिक आदर्शों का स्थायी मानदंड [illegible] आकांक्षा ही प्रतीकात्मक व्याख्या की जननी है। किंतु इस प्रतीकात्मकता को स्वीकार कर हम इसे संपूर्ण कृष्ण लीला प

---

११- श्री कालीकुमार मुखोपाध्याय - वैष्णव भावना और साधना

लागू करने लगें तो वे ही इसका विरोध करने को तैयार हो जाते हैं। -वे कुछ प्रसंगों को प्रतीक और कुछ को सत्य स्वीकार करने का आग्रह करते हैं। इसके विपरीत आधुनिक बुद्धिजीवी एक बार प्रतीकात्मक व्याख्या को स्वीकार कर फिर किसी सीमा पर रुकना नहीं चाहते

इस प्रकार यह प्रश्न उठता है कि धार्मिक कथानकों को किस अंश तक प्रतीक माना जाए और किस स्थान से उन्हें सत्य - स्वीकार किया जाए। प्रश्न है कि क्या केवल चीरहरण, रासलीला आदि ही प्रतीक हैं अथवा स्वयं कृष्ण, नंद, यशोदा और कंस आदि भी प्रतीक हैं? यदि हम इनको भी प्रतीक मान लें तो अनेक धार्मिक संप्रदायों की नींव ढह जाएगी। इसलिए प्रतीकात्मक व्याख्या की सीमा का यह प्रश्न जटिल है। प्रत्येक संप्रदाय और प्रत्येक व्यक्ति के लिए इसकी सीमा भिन्न - भिन्न हो सकती है। ऐसी स्थिति में प्रतीकात्मक व्याख्या की सीमा रेखा वहीं तक होगी जहां तक इस व्याख्या के द्वारा उस सम्प्रदाय की मूल-भित्ति पर आघात नहीं होता भक्ति-काव्य की प्रतीकात्मकता की समस्या हल करने की यही कसौटी है।

प्रतीकों के संबंध में इस सामान्य विचार के उपरांत हमारा ध्यान धर्म और धार्मिक साहित्य में प्राप्त उन विशेष प्रकार के प्रतीकों की ओर आकृष्ट होता है जिन्हें " काम या शृंगार "7 पु की संज्ञा दी जाती है।

१०- <u>शृंगार - प्रतीक -</u>

हम पूर्व अध्यायों में बता आए हैं कि लगभग समस्.. में किसी न किसी रूप में स्त्री- पुरुष-- जननेन्द्रियां तथा ... क्रिया की उपासना स्वीकृत रही है। इन क्रियाओं के महत्व इनकी रहस्यमयता को स्वीकार करने के कारण इनमें ... प्रवेश हुआ।

काम के इस आधार को लेकर शृंगार प्रतीकों का निर्माण हुआ। इन्होंने दो दिशाएं लीं या दो रूप अपनाए में तो काम एवं तत्सम्बन्धी ि्याओं को आवरण देकर व्यक्त

दीखने पर भी मूल में स्त्री-पुरुष- जननेन्द्रियों या संभोग को व्यक्त करने वाले है । दूसरे प्रकार के काम प्रतीक वे है जो कि मूल रूप में काम- स्वरूप होते हुए भी कामांग और काम- क्रियाओं की अभिव्यक्ति न कर किसी अन्य दिशा मे संकेत करते है । प्रकट रूप में श्रृंगारिक होते हुए भी ये श्रृंगारिक नहीं होते । ऐसे प्रतीकों में मिथुन, युगनद्ध शिव- शक्ति आदि है । दूसरे प्रकार के काम- प्रतीकों में स्पष्ट यह है कि उनका प्रयोग प्रतीक रूप में हुआ है या स्थूल रूप । दोनों के स्वरूप में कोई अंतर नहीं है पर दोनों के अर्थ में भिन्नता है । साहित्य में प्राप्त श्रृंगारिक रूपों के संबंध की यही समस्या है कि वे प्रतीक है या स्थूल ?

११- प्रतीकात्मक व्याख्या के आग्रह का कारण -

मानव जीवन मे स्त्री-पुरुष की रति मे ही जीवन की पूर्णता है । अकेला पुरुष और अकेली स्त्री, दोनों ही एक प्रकार से अपूर्ण है । जिस समय दोनों अपने व्यक्तित्व को, अपने विचारों और समस्त आवरणों को छोड़ कर अपने शरीर को न केवल एक दूसरे को समर्पित ही करते है बल्कि नमक और जल की भांति एक दूसरे मे लीन होने कीकामना कर रति- क्रिया संपादित करते है, उस समय वे न केवल पार्थिव आनन्द की चरम सीमा को छू लेते है, बल्कि अपार्थिव आनन्द ( यदि कोई ऐसा आनन्द है तो ) को भी पाने लगते हैं । कहा जा सकता है कि पूर्ण रूप से पार्थिव- मानसिक धरातल पर संपादित रति पार्थिवता को छोड़कर आध्यात्मिकता [illegible] प्राप्त कर लेती है ।

इस प्रकार संसार मे प्राप्त सर्वोत्तम पुरुषार्थ " [illegible] के स्वरूप का इन्हीं मिथुन रूप मे अंकन अनेक देवालयों में [illegible] है । इनका रहस्य, यदि यह कोई रहस्य है तो अभी तक [illegible] इनकी स्पष्टता ही में अस्पष्टता है । जीवन अब धर्म [illegible] अंग न होकर उसका विरोधी हो [illegible] इन मूर्तियों को देखकर नाक भी सिकोड़ते है और इन्हें धर्म के [illegible] रूप में स्वीकार करने में हिचकिचाते है । उन मूर्तियों मे जीवन [illegible]

का रस ऊपर आकर छलकता है और प्रेम की पूर्ण परिणति की
ने वे सुन्दर अभिव्यक्तियाँ है। आधुनिक नैतिक और पवित्र कहे
जाने या बनने वाले मानव की दमित कुंठाएं इनके द्वारा झकझोर
उठती हैं, अतएव वह उनका प्रतीकात्मक अर्थ खोजने लगता है।
पुराणों के श्रृंगार - प्रसंगों, मंदिरों में उत्कीर्ण मूर्तियों आदि
की प्रतीकात्मक व्याख्या के पीछे यही मनोविज्ञान है।

१२- हिन्दी-भक्ति- साहित्य में प्रतीकात्मकता -

भक्ति साहित्य में श्रृंगारिकता का बाहुल्य है। बड़े
अंश में यह श्रृंगार स्पष्ट नग्न या खुला है। जायसी, सूर तथा अन्य
भक्त कवियों के पदों में प्रेम की सामान्य चेष्टा और प्रबलता के
अतिरिक्त रति, विपरीत और रतिरण का स्पष्ट वर्णन है। इस
वर्णन में अतीन्द्रियता नहीं जीवन की स्थूलता और मांस की उष्णता
है। प्रतीकों के उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर हमें देखना है कि इन
वर्णनों को कितने अंशों तक प्रतीक रूप में स्वीकार किया जा सकता
है।

१३- ज्ञानाश्रयी शाखा -

इस संबंध में हमें दो एक बातों को प्रारम्भ में ही
जान लेना चाहिए। निर्गुण शाखा की ज्ञानाश्रयी धारा के कवियों
ने सदैव अपने " राम " या इष्टदेव को अवतारी राम आदि से
भिन्न माना है।[१२] प्रेमाश्रयी शाखा की सुप्रसिद्ध कृति का समासोक्ति
रूप भी अब निश्चित नहीं है। ज्ञानाश्रयी शाखा के अतिरिक्त अ-
भक्तों ने कभी इष्ट को पति रूप में स्वीकार कर अपने को पत्नी
नहीं माना है। भक्ति- साहित्य की प्रतीकात्मकता को समझने के
लिए इस बातों को ध्यान में रखना होगा।

निर्गुण भावना की ज्ञानाश्रयी शाखा के ~~अतिरिक्त~~ कवि
कबीर में श्रृंगार प्रतीकों का यथेष्ट प्रयोग हुआ है। उनकी
त्मकता अत्यन्त स्पष्ट है।

---

१२-कबीर ग्रंथावली पृ० १३ और ४५

इन्हीं से उनका प्रेम है। वे अपने को पत्नी रूप में मानते हैं वे कहते हैं " भर्तार राम विवाह करने आए हैं। हे दुलहिन मंगल चार गाओ। मैं पूर्ण व्यस्क यौवन से मस्त हूं। पांचों तत्व बराती हैं। ब्रह्मा पुरोहित और यह शरीर ही वेदी है। तैंतीस कोटि देवता और अट्ठासी सहस्त्र मुनि श्रेष्ठ आए हैं, मैं एक अविनासी पुरुष को ब्याह कर जा रही हूं।"[१३]

" इस प्रिय से मिलने के लिए मैंने श्रृंगार किया है। पता नहीं वह क्यों नहीं मिला।"[१४] हे सखी वहां चलो जहां परमानंद मिले। मेरा मन चोरी चला गया है, इसी से कुछ अच्छा नहीं लगता। स्वप्न में उसके दर्शन होते हैं पर जागते ही वह विलुप्त हो जाता है। जब तक शरीर में सांस है तब तक चलकर स्वामी

---

१३- दुलहनी गावहु मंगल चार। हम घरि (कूचारि) आए राज्य राम भरतार।
तन रत करि मैं मन करिहूं पंच तत बराती।
रांम देव मोरे पाहुणे आये मैं जौवन मैंमाती।।
सरीर सरोवर वेदी करिहूं, ब्रह्मा बेद उचार।
रांम देव संगि भांवरि लैहूं, धंनि धंनि भाग हमार।।
सुर ते तीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठयासी।
कहै कबीर हंम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अविनासी।।पदा-...

१४- हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव।। टेक
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया,
रांम बड़े मैं छुटक लहुरिया।।
किया स्यंगार मिलन कै ताईं,
काहे न मिलौ राजा रांम गुसाईं।।
अब की बेर मिलन जो पांऊं,
कहै कबीर भौ- जलि नहीं आंऊं।। पदावली ११७

से मिल ' । सखी विलम्ब न करो ।"[15] पति की इस उपेक्षा से उसे संपूर्ण विवाह ही धोखा लगने लगता है । वे कहते हैं " वह विवाह ही कैसा जिसके बाद पति का मुख भी देखने को न मिले । अब प्रकट होकर मिलो अन्यथा मैं मर जाऊंगी ।"[16] " "वह मिलन वेला आ ही नहीं रही है । जब तक अंग लगाकर नहीं मिलोगे, तब तक जीवन सार्थक कैसे होगा । इसी कारण तो देह धरी है । तुम समर्थ हो, मेरी कामना पूर्ण करो । तन की तपन बुझा दो । तब मंगल गाया जाय ।"[17] हे प्रिय तुम मेरे

---

१५- चलौ सखी जाइये तहाँ, जहाँ गयैं पइयैं परमानन्द ।।टेक
यहु मन आमन धूमनां, मेरौं तन छीजत नित जाइ ।
च्यंतामणि चित चोरियौ, ताथैं कछू न सुहाई ।।
सुनि सखी सुपिनैं की गति - ऐसी, हरि आये हम पास ।
सोवत ही जगाइया, जागत भये उदास ।।
चलु सखी बिलम्ब न कीजिये, जब लग साँस सरीर ।
मिलि रहिए जगनाथ सूं, यूं कहै दास कबीर ।। पदा० ३०२

१६- मैं सासने पीव गौंहनि आई ।
साँई संगि साध नहीं पूगी, गयौ जौबन सुपिनां की नाई ।।टे
पंच जना मिलि मंडप छायौ, तीन जनां मिलि लगन लिखाई ।
सखी सहेली मंगल गावै, सुख दुख माथै हलद चढ़ाई ।।
नांनां रंगै भांवरि फेरी, गांठि जोरि बाबै पति ताई।
पूरि सुहाग भयौ बिन दूलहा, चौक कै रंगि धरयौ सगौ भाई
अपनैं पुरिष मुख कबहू न देख्यौ, सती होत समझी समझाई
कहै कबीर हूं सर रचि मरिहूं, तिरौं कंत लौ तूर बजाई ।
२२६

१७- वै दिन कब आवैंगे भाई ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंग लगाई ।।टेक
हौं जांनूं जे हिलमिलि खेलूं, तन मन प्रान समाइ ।
या कांमनां करौ परिपूरन, समरथ हौ राम राइ ।
मांहि उदासी माधौ चाहै, चितवत रैनि बिहाई ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाई ।
यहु अरदास दास की सुनियै, तन की तपनि बुझाई ।
कहै कबीर [illegible], मिलि करि मंगल गाई ।।

घर आओ । सब लोग मुझे तुम्हारी पत्नी कहते है । जब तक एक साथ सेज पर न सोओगे तब तक तुम्हारा प्रेम कैसा है । तुम मुझे उसी प्रकार प्रिय हो जैसे कामी को काम और प्यासे का पानी तुम्हारे पीछे प्राण जा रहे है ।"[१८] "तुम अभी नहीं मिलोगे तो मरने के बाद मिलने से लाभ क्या ?"[१९] राम उसकी बात सुन लेते है । वे आने को तैयार है पर आज अब अनिश्चित का भय हो रहा है । कबीर कहते है " विश्वास, प्रेम, विधि सभी का तो मुझसे अभाव है । पता नहीं, प्रियतम कैसे प्रेम निभेगा ।"[२०] किन्तु समस्त कार्य कितना सरल और आनन्द"मय था । वे कहते है " मैं रानी बन-गई । सुख की राशि मुझे मिली पर इसमें मेरी कुछ भी बड़ाई नहीं । मैं तो अबोध हूं । मैंने कुछ नहीं किया । राम ने स्वयं ही

---

१८- बाल्हा आव हमारे गेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं ईंह अदेह रे ।
एक मेक ह्वै सेज न सोवै, तब लग कैसा नेह रे ।।
आन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बन धरै न धीर रे ।
ज्यूं कामी कौ कांम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर ने ।।
है कोई ऐसा पर- उपगारी, हरि सूं कहै सुनाई रे ।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखे जीव जाइ रे ।।पदा० ३०७

१९- मूवां पीछै जिनि मिलै, कहै कबीरा राम ।
पाथर घाटा लोह सब,( तब) पारस कौणें काम ।।सांखी ३-८

विरहिन ऊठै भी पड़े, दरसन कारनि राम ।।
मुवां पीछै देहुगे, सो दरसन किहि काम ।। साखी ३-७

२०- मन प्रतीत न प्रेम रस, ना इस तन मैं ढंग ।
क्या जाणौं उस पीव सूं, कैसें रहसी रंग ।। सा

मुझे सोहाग दिया ।"[२१] " मैं सच्चे अर्थों में सुहागिन हो गई । -क्योंकि मुझे पति का प्यार प्राप्त होगा । मैंने सब कुछ उन पर न्योछावर कर दिया । मेरा समस्त श्रृंगार सार्थक हो गया । बिना पति के प्यार के क्या श्रृंगार करना और क्या सुहागिन कहलाना ।"[२२] " अब इस सौभाग्य और सुख के बाद मुझे अपने देश ले चलो । इस विदेश में मुझे सुख नहीं है ।"[२३] " सुख तो केवल राम के साथ ही है । अन्यत्र तो कष्ट ही कष्ट है ।"[२४]

---

२१- बहुत दिनन थैं मैं प्रीतम पाये ।
भाग बड़े घरि बैठें आये ।। टेक
मंगलचार माँहि मन राखौं, राम रसाइण रसनां चाषौं ।
मंदिर माँहि भया उजियारा, ले सूती अपना पीव पियारा ।।
मैं रनि रासी जे निधि पाई, हमहि कहा यहु तु महि बड़ाई ।
कहै कबीर मैं कछू न कीन्हां, सखी सुहाग रांम मोहि दीन्हा।।
पद० २

२२- जौ पै पिय के मनि नहीं भायें, तौ का परोसनि कै हुलराये ।।टेक
का चूरा पाइल झमकायें , कहा भयौ बिछुवा ठमकायें ।।
का काजल स्यंदूर कै दीयें, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयें । ।
अंजन मंजन करै ठगौरी, का पचि मरै निगौड़ी बौरी ।।
जौ पै पतिव्रता ह्वै नारी, कैसैं ही रहौ सो पियहि पियारी
तन, मन जीवन सौंपि सरीरा, ताहि सुहागिन कहै कबीरा।।
पद०१३९

२३- अब मोहिले चलि नणद, के बीर, अपनैं देसा ।
इन पंचनि मिलि लूटी हूं,कुसंग आहि बदेसा ।।टेक
गंग तीर मोरी खेती बारी, जमुन तीर खरिहानां ।।
सातौं बिरही मेरे नीपजे, पंचू मोर किसांनां ।
कहै कबीर यहु अकथ कथा है, कहतां कही न जाई ।
सहज भाई जिहिं ऊपजै, ते रमि रहे समाई ।। पद:-

२४- सासु की दुखी ससुर की प्यारी जेठ के नाम डरौं रे ।
सखी सहेली ननद गहेली देवर कै बिरहि जरौं रे ।।
मेरी मत बौरी मैं राम बिसारयो किन बिधि रहनि रहौं
सेजै रमत नयन नहीं पेरौ इहु दुख कासौं [illegible]
बाप सावका करै लराई मया सद मतवारी

प्रेम कहानी अकथनीय है।[२५]

वह अन्य स्थान पर कवि जीवको पुरुष और शरीर को नारी मानता है।[२६] जीव शरीर को ठग कर चला जाता है।

कबीर के उपर्युक्त श्रृंगार वर्णन से स्पष्ट है कि उन्होंने अपने को ईश्वर की जो कि दाशरथी राम से भिन्न है, यद्यपि उसका संबोधन सदैव "राम " नाम से ही किया गया है, "बहुरिया" माना है। उन्होंने राम को ही सर्वस्व माना है वे उनके वियोग में दुखी हैं और सभी नातों को झूठा मानते हैं। उन्होंने इस संसार में लूटने वाले पंच विकारों का उल्लेख किया है। अनायास एक दिन उन्हें प्रिय का संग हो जाता है, और उस प्रेम का वर्णन करते में वे असमर्थ हैं।

उपर्युक्त वर्णनों का स्थूल अर्थ लगाने का यदि हम कबीर की स्पष्ट उक्तियों के आधार पर करें तो उनका अर्थ निकलना कुछ कठिन होगा कबीर स्वयं भी पहले से ही कहते हैं कि उनके पति स्थूल देह धारी नहीं हैं। यह स्पष्ट होते ही कि इनका अर्थ प्रकट नहीं, प्रच्छन्न है, इन वर्णनों का स्थान प्रतीकों में हो जाता है। इन वर्णनों को

---

२५- अकथ कहांणी प्रेम की, कछू कही न जाई।
गूंगे केरी सरकरा, बैठे मुसकाई।।टेक।
भोमि विनां अरु बीज बिन, तरवर एक भाई।
अनंत फल प्रकासिया, गुर दीया बताई।।
मन थिर बैसि विचारिया, रांमहि ल्यौ लाई।
झूठी अनभै बिस्तरी, सब थोथी बाई।।
कहै कबीर संकति कछु नांही, गुर भया सहाई।
आंवण जांणी मिटि गई, मन मनहि समाई।। पदा० १५

२६- यहु ठग ठगत सकल जग डोलै।
गवन करै तब मुषहु न बोलै।।
तूं मेरो पुरिषा हौं तेरी नारी, तुम्ह चलतैं पाथर थैं भारी।
बालपनां के मींत हमारे, हमहि लाड़ि कत चले हो निनारे।
हम सूं प्रीति न करि री बौरी, तुम्ह से केते लागे ढौरी।
हम काहू संगि गये न आये, तुम्ह से गढ़ हम बहुत बसाये।
माटी की [illegible] हीरा, ता ठग सूं जन डरै कबीरा।

आ... प्रतीक स्वीकार करने के पहले यह देखना आवश्यक कहीं इनकी प्रतीकात्मक व्याख्या कबीर की विचारधारा के वह ...रीत पड़ कर उनके मूल सिद्धान्तों पर से तो आघात नहीं करती । प्रतीकात्मक व्याख्या की इस कसौटी पर कसने से हम देखेंगे कि उनका स्थूल अर्थ लेते ही कबीर के राम का सूक्ष्म अस्तित्व नष्ट हो जाएगा । साथ ही साथ समस्त वर्णन स्वयं में भी अत्यन्त सूक्ष्म और संकेतात्मक है । उनमें श्रृंगार,प्रेम, या यदि " मान " भी लें तो आत्मा-परमात्मा की प्रेम-क्रीड़ा भौतिक श्रृंगार - केलि के रूप में व्यक्त नहीं हुई । उनके प्रिय न तो कोक-कला विशारद है और ना ही कबीर काम- विशारदा । इनके संबंध मे एक प्रश्न उठ सकता है कि शायद ये कबीर की दमित कामात्मकता है जिसने धर्म का आवरण ले लिया है । इस प्रसंग में यह ध्यान रखना चाहिये कि कवि सन्यासी नहीं थे वरन् कदाचित् एक संतुष्ट गृहस्थ । दूसरे यदि ये कबीर की दमित भावनाएं होतीं तो इनमें और अधिक स्थूलता अवश्य होती । संभोग की अल्पता और उसका कथन मात्र ही बतलाता है कि वे इस संयोग के विस्तार में नहीं जाना चाहते हैं । वे तो इसके द्वारा किसी अन्य अनुभव को हृदयंगम कराना चाहते है । उनका उद्देश्य इस संभोग का वर्णन नहीं है । इसके द्वारा उन्होंने किसी अन्य संयोग की बात कहीं है । और इसी रूप में ये काम प्रतीक माने जा सकते हैं । स्थूल अर्थ इनका नहीं स्वीकार किया जा सकता है ।

कबीर के संबंध मेंकेवल एक प्रश्न और उठ सकता है और वह है उनका अपने को स्त्री रूप में स्वीकार करना । इसके पीछे च... भारतीय परंपरा को हम मान ले जिसके अनुसार स्त्री ही सदैव प्रेम की भिखारिणी रहती है या प्रत्येक मानव में निहित स्त्री अंश की कबीर मे प्रबलता मान लें ।

१४- प्रेमाश्रयी शाखा -

प्रेमाश्रयी शाखा क सबसे प्रसिद्ध और प्रातिनिधि कवि जायसी है । जायसी की सबसे प्रसिद्ध रचना पद्मावत है और रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार इसका धार्मिक रूप में भी कुछ मान है

... दाना का ही विस्तृत वर्णन है। इस धारा
अमहय
... प्रसिद्ध रचना उसमान कृत चित्रावली तथा तीसरी मंझन
वह
... मधुमालती है। चारों ही रचनाओं में एक- एक लोक प्रसिद्ध कथा है। पहले में तो कथा का उत्तरार्ध इतिहास प्रसिद्ध भी है। इनके विरह का वर्णन पर हम विचार नहीं करेंगे क्योंकि उनके संबंध में तो कोई समस्या है नहीं। केवल संभोग वर्णन पर ही हमें ध्यान देना है कि वे कहाँ तक प्रतीकात्मक है? इन ग्रन्थों के संबंध में यह ध्यान रखना भी आवश्यक है कि ऐसा माना जाता है कि इन्हीं के द्वारा सूफी सिद्धान्तों का व्यक्तीकरण हुआ है। कुछ भी विचार करने के पूर्व इन ग्रन्थों के संभोगात्मक अंशों को देख लेना अच्छा होगा।

जायसी-
-----

जायसी ने पद्मावती, का नख- शिख वर्णन अनेक स्थानों पर किया है।[२७] इतना ही नहीं, अलाउद्दीन के दरबार में पद्मावती के नखशिख वर्णन के पूर्व भूमिका स्वरूप काम शास्त्रानुकूल स्त्रियों की चार जातियाँ हस्तिनी, संखिनी, चित्रणी और पद्मिनी का वर्णन चार छँदों में किया है।[२८]

यौवनागम पर पद्मावती के शरीर में काम लहरे लेने लगता है। वह संभाले नहीं संभलता। पहले तो उसने सोचा था कि यौवन में सभी सुख और आनन्द प्राप्त होंगे किन्तु अब तो यह मस्त हाथी, भादों की गंगा की भाँति दग्ध कर रहा है।[२९] काम को संयमित रखना कठिन हो रहा है। ऐसी स्थिति में निपुण धाय उसे प्रिय के मिलने तक इसे संयमित रखने को कहती है।[३०] काम- मोहिता पद्मिनी इसे कठिनाई से समझती है। वह बतलाती है कि विर-

---

२७- पद्मावत - गुप्त पद ९९-११८ ( सुआ द्वारा ), ...
( सोहागरात के पूर्व ), ४६७ एक पद में राघव चे...
४६८-४८५

२८- वही - ४६३, ४६४, ४६५ और ४६६

२९- वही पद १७०,

३०- वही पद १७१

असह्य है और यथार्थ में तो यह विरह यौवन को नष्ट कर डालता है ।[३१] यह इच्छा इतनी अधिक बढ़ जाती है कि वह स्वप्न में प्रतीक द्वारा न केवल प्रिय को ही वरन् संपूर्ण रतिक्रिया को भी ग्रहण करती है । उपर्युक्त को समझने में समर्थ सखी इस स्वप्न की पूर्ण व्याख्या कर पद्मावती को सान्त्वना देती है कि तुम्हारे प्रिय शीघ्र आने वाले हैं ।[३२]

अनेक कठिनाइयों के बाद रत्नसेन पद्मावती से विवाह करने में समर्थ होते हैं । सखियाँ रत्नसेन से परिहास करती हैं ।[३३] फिर

---

३१- वही पद १७२

३२- वही पद यह इस प्रकार है :-

पदुमावति सो मंदिर पईठी, हँसत सिंघासन जाइ बईठी ।
निसि सूती सुनि कथा बिहारी, भा बिहान औ सखी हँकारी ।
देव पूजि जब आइउँ काली, सपन एक निसि देखिउँ आली ।
जनु ससि उदौ पुरुब दिसि कीन्हा, और रवि उदौ पाछिवं दिसि लीन्हा ।
पुनि चलि सुरुज चाँद पहँ आवा । चाँद सुरुज दुहु भएउ मेरावा
दिन औ राति जानु भए एका। राम आई रावन गढ़ छेका ।।
तस किछु कहा न जाइ निखेधा। अरजुन बान राहु गा वेधा ।
जनहुँ लंक सब लूसी हनूँ बिधांसी बारि ।
जागि उठिउँ अस देखत सखि सो कहहु विचारि ।।१९७।।
सखी सो बोली सपन बिचारू। कान्हि जो गइहु देव के बारू
पूजि मानइहु बहुत बिनाती । परसन आइ भएउ तुम्ह राती
सूरुज पुरुष चाँद तुम्ह रानी । अस बर देव मिलावै ...
पछिवँ खण्ड कर राजा कोई । सो आवै बर तुम्ह ...
पुनि कछु जूझि लागि तुम्ह रामा। रावन सो होइहि ...
चाँद सुरुज सिउँ होइ बिआहू। बारि ...
जस ऊखा कहँ अनिरुध मिला ; ...
सुख सोहाग तुम्ह कहँ पान फूल रस भोग ।
आजु कान्हि भा चाहिअ अस सपने क संजोग ।। १९८

३३- वही १९४-१९६

[illegible] पद्मावती का सौन्दर्य सौ गुना हो जाता है । वह सोलहों श्रृंगार करती है ।[३४] समस्त श्रृंगार कर वह पति के पास जाने को तैयार है । इस समय मन में एक अज्ञात भय सा आ जाता है । वह सोचती है, मैं प्रेम से परिचित नहीं हूं । प्रिय जिस समय बांह पकड़ कर सब बातें पूछेगा उस समय भय से पता नहीं पीली या लज्जा से लाल हो जाऊंगी । मैं अभी बाला हूं और पति पूर्ण तरुण । उसकी सेज पर चढ़ते कैसे बीतेगा, यह पता नहीं ।[३५] किंतु अनुभवी सखी सान्त्वना देती है । वह कहती है कि जब तक रहस (हर्ष) पूर्वक प्रियतम नहीं मिलता तभी तक भय है । अब निर्भय होकर अपने तन मन और यौवन की भेंट देने को चलो ।[३६]

उसके बाद पद्मिनी और रत्नसेन के संभोग का विस्तृत वर्णन है । दोनों ने एक दूसरे के अंग- अंग का आलिंगन किया ।[३७] कवि यहीं पर बताता है कि यही क्रीड़ा स्त्री के मोक्ष का साधन है । अनेक प्रकार से संभोग कर पति ने काम की तृष्णा शांत की । चातकी की भांति"पिउ- पिउ" कहते स्त्री की जीभ सूख गई थी । जिस प्रकार सीप में मोती की बूंद पड़ती है वैसी ही सुख शांति उसे मिली ।[३८]यहां पर यह निश्चित है कि सीप में बूंद का पड़ना वीर्य-

---

३४- वही २९७-२९९

३५- वही ३००

३६- वही ३०१

३७- वही ३१४

३८- चतुर नारि चित अधिक चिहूटै । जहां प्रेम बांधै किमि [illegible]
किरिरा काम केलि मनुहारी । किरिरा जेहि नहीं [illegible]
सुनारी ।।
किरिरा होई कंत कर तोखू । किरिरा किंह पाव धनि मोखू,
जेहि किरिरा सो सोहाग सोहागी । चंदन जैस स्याम कंठ
लागी ।।
गोदि गेंद कै जानहु लई गेंदहु चाहे धनि [illegible]
दारिवें दाख बेल र[illegible] चाखा। [illegible]
बैन सोहावनि [illegible]
पिउ पिउ करत [illegible]

· रण हो ही चुका है । कवि ने स्वप्न के अनुरूप ही इसकी तुलना लंका के युद्ध से की है । कमर पकड़ते ही योनि- आवरण ( कंचन गढ़ ) टूट गया । रत्नसेन ने अंग - अंग का रस लिया । मांग छूट गई, कंचुकी तार - तार हो गई, हार के मोती बिखर गए, गहने तथा कलाई फूट गई, साड़ी मरगजी हो गई ।[३९]

रत्नसेन की काम- क्रीड़ा सीमा का अतिक्रमण करने लगती है । पद्मावती संयम करने के लिए कहती है । पर साथ ही साथ यह भी कह देती है कि मैं तुम्हारी ही हूं । जैसा तुम चाहो करो ।[४०] रत्नसेन कहता है कि जो इस मदिरा को पी लेता है वह सब कुछ लाभ- हानि भूल जाता है ।[४१] उसके उपरान्त दोनों सो जाते हैं । कवि इसका वर्णन भी करता है ।[४२] सखियां प्रातः जगा कर पूंछती हैं, "तुम तो फूलों के हार का बोझ भी सह नहीं सकती थीं । तुमने प्रिय के शरीर का बोझ कैसे सहा । तुम्हारी कटि ने

---

३९- कहौं जूझि जस रावन रामा । सेज बिधंसि बिरह संग्रामा ।
लीन्ह लंक कंचन गढ़ टूटा । कीन्ह सिंगार अहा सब लूटा ।
औ जोबन मैमत बिधंसा । बिचला बिरह जीव लै नंसा ।
लूटे अंग अंग सब भेसा । छूटी मंग भंग भै केसा ।
कंचुकि चूर चूर भै ताने । टूटे हार मोति छहराने ।
बारी टाड सलोनी टूटी । बांहू कंगन कलाई फूटी ।
चंदन अंग छूट तस भेंटी । बेसरि टूटि तिलक गा मेंटी ।
पुहुप सिंगार संवारि जो जोबन नवल बसंत ।
अरगज जेउं हिय लाइ कै मरगज कीन्हें कंत ।।३१८

४०- वही - ३१९

४१- वही ३२०

४२- वही - ३२१

... सहा, यह बतलाओ ।[४३]

...हागरात के बाद सखियों के ये प्रश्न अत्यंत स्वाभाविक है । पद्मावती उत्तर में कहती है, "मैं प्रेम का मर्म जान गई । सभी अंग तो उसके ही है । स्वयं पति के एक एक अंग से जा कर मिल गए । उसने मेरे रस को लूट लिया ।[४४]" पद्मावती के सोहागरात की कथा सखियां जा कर चंपावती, उसकी माता से कहती हैं । पद्मावती के रति- शिथिल शरीर को देख कर चंपावती प्रसन्नता से उसकी मांग

---

४३- वही ३२२-३२३

हंसि हंसि पूंछहि सखी सरेखी । जानहुं कुमुद चंद मुख देखी ।
रानी तुम्ह ऐसी सुकुमारा । फूल बास तनु जीउ तुम्हारा ।
सहि न सकहु हिरदै पर हारु । कैसे सहिहु कंत कर भारु ।
मुखा कवंल बिगसत दिन राती । सो कुंभिलान सहिहु केहि भांती ।
अधर जो कौंवल सहत न पानू । कैसे सहा लागि मुख भानू ।
लंक जो पैग देत मुरि जाई । कैसे रही जो रावन राई ।
चंदन चोंप पवन अस पीऊ । भइउ चित्र सम कस भा जीऊ ।
सब अरगज भा मरगज लोचन पीत सरोज ।
सत्य कहहु पदुमावति सखीं परीं सब खोज ।। ३२३

४४- वही ३२४- ३२५

कै सिंगार तापंह कहं जाऊं । ओहि कहं देखौ ठावहिं ठाऊं ।
जौं जिउ महं तौ उहै पियारा । तन महं सोइ न होइ निरारा ।
नैनन्ह मांह तो उहै समाना । देखउं जहां न देखउं आना ।
आपनु रस आपुहि पै लेई । अधर सहैं लागीं रस देई ।
हिया थार कुच कंचन लाडू । अगुमन भेंट दीन्ह होई चाडू ।
हुलसी लंक लंक सों लसी । रावन रहसि कसौटी कसी ।
जोबन सबै मिला ओहि जाई । हौं रे बीच हुति गई हेरा-
जस किछु दीजै धरै कहं आपन लीजै संभारि ।
तस सिंगार सब लीन्हेसि मोहि कीन्हेसि ठठि यारि

पद्मावती और रत्नसेन का नित नया शृंगार होता । एक दिन पद्मावती ने राम- रावण रूपक से रत्न सेन को रति- रण के लिए ललकारा । रत्न सेन कहाँ पीछे रहने वाला था । उसने भी शरीर के अंग- अंग की तुलना रावण की सेना से कर उस पर विजय करने की शक्ति प्रकट की ।[४६] फिर क्या यह संभोग बराबर चलता

---

४५- कहि यह बात सखीं सब धाईं । चंपावति कहँ जाइ सुनाईं ।
आजु निरंग पदुमावति बारी । जीउ न जानहु पवन अधारी ।
तरकि तरकि गौ चंदन चोला । धरकि धरकि उर उठै न बोला ।
अही जो करी करा रस पूरी । चूर चूर होइ गई सो चूरी ।
देखहु जाइ जैसि कुँभिलानी । सुनि सोहाग रानी विहँसानी ।
लै संग सबै पदुमिनी नारी । आइ जहाँ पदुमावति बारी ।
आइ रूप सबही सो देखा । सोन बरन होइ रही सो देखा ।
कुसुम फूल जस मरदिअ निरंग दीखु सब अंग ।
चंपावति मैं बारनै चूँबि केस औ मंग ।। ३२७

४६- भै निसि धनि जसि ससि परगसी । राजै देखि पुहुमि फिरि बसी
भै कातिकी सरद ससि उवा । बहुरि गँगन रवि चाहै छुवा ।
पुनि धनि धनुक भौंह कर फेरी । काम कटाख टँकोर सो हेरी ।
जानहु नहिं कि पैग पिय खाँचौ । पिता सपथ हौं आजु न बाँचौं ।
काल्हि न होइ रहै सह रामा । आजु करौ रावन संग्रामा ।
सेन सिंगार महूँ है सजा । गज गति चाल अँचर गति धुजा ।
नैन समुँद खरग नासिका । सरवरि जूझि को मैसौ टिका ।
हौं रानी पदुमावति मैं जीता सुख भोग ।
तूं सरवरि करु तासौं जस जोगी जेहिं जोग ।। ३३३

हौं अरु जोगि जान सब कोऊ । बीर सिंगार जिते [illegible]
उहाँ त समुँद रिपुन दर माहा । इहाँ त काम कटक तुव पाहाँ ।
उहाँ त कोपि बैरि दर मडौं । इहाँ त अधर अमिपु रस खंडौं ।
उहाँ त खरग नरिंदन्ह मारौ । इहाँ त विरह तुम्हार संघारौ ।
उहाँ त गज पेलौ होइ केहरि । इहाँ त कामिनि कर [illegible] हेहरि
उहाँ त लूसौ कटक खँधारू । इहाँ त [illegible] तुम्हा[illegible]
उहाँ त कुंभस्थल गज नावौं । इहाँ [illegible]
परा बीचु धरहरिया पेम राज कै [illegible]
भोग छहू रितु मिलि दुन[illegible]

चित्तौड़ लौटते समय भी लक्ष्मी के आतिथ्य के अवसर पर लक्ष्मी रत्नसेन और पद्मिनी को रस भोग करने के लिए कहती है ।[४८]

इसी प्रकार से बादल जिस समय नव विवाहिता पत्नी को छोड़ कर रण भूमि जाने के लिए तैयार होता है उस समय उसकी पत्नी कहती है - "यदि तुम रण में जूझना ही चाहते हो तो रति- रण में जूझ कर मेरे विरह शत्रु को नष्ट करो ।[४९]

जायसी के उपरांत प्रेमाख्यान धारा में दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना उसमान कृत चित्रावली है । इसमें भी प्रारंभ से लेकर अंत तक प्रेम की महत्ता तथा उसके विविध रूपों का चित्रण है ।

इस कथा में कवि स्पष्ट रूप से कहता है कि प्रेम का आधार रूप है ।[५०] इस कथा में भी पूर्व कथा की ही भांति उपनायिका (कौलावती) के मन में संभोग की आकांक्षा तथा विवाहोपरांत रति अनभिज्ञता के कारण भय[५१] का वर्णन है । कौलावती से विवाह के उपरांत अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार कुंवर उसके साथ संप्रयोग

---

४७- वही ३३५-३४०

४८- वही ४१७

४९- जो तुम्ह जूझि चहौ पिय बाजा । किहै सिंगार जूझि मैं साज
जोबन आइ सौंह होइ रोपा।पखरा बिरह काम दल कोपा ।
भएउ बीर रस सेंदुर मांगा । राता रुहिर खरग जस नांगा ।
भौंह धनुक नैन सर सांधे । काजर पनच बरुनि बिख बांधे ।
दै कटाख सो सान संवारे । औ नख सेल भाल अनियारे ।
अलक फांस गियं मेलि असूझा । अधर अधर सौं चाहै जूझा
कुंभस्थल दुइ कुच पैमंता । पेलौं सौंहं संभारहु कंता ।
कोपि संधारहु बिरह दल टूटि होइ दुइ आध ।
पहिले मोहि संग्राम कै करहु जूझ कै साध ।। ६१९

५०- चित्रवली ३०-३१

५१- वही ४०४

करता है।[५२] कौला की माता दूसरे दिन संभोग के इन बाह्य चिन्हों से यह अनुमान कर कि सोहागरात पूर्णरूप से सम्पन्न हुई अत्यंत प्रसन्न होती है।[५३]

इसके उपरांत जब कुंवर का विवाह नायिका चित्रावली से हो जाता है तो सखियां कोहबर में कुंवर को सेज पर बैठा कर रसकेलि के लिए चित्रावली को लेने जाती है।[५४] नव- वधू चित्रा में भी प्रथम समागम का भय और संकोच है। सखियां उसे ढकेल कर ले जाती हैं। वह सेज की पाटी के पास खड़ी है। सखियां उसे समझाती है।[५५] कुंवर चित्रा का घूंघट हटाना चाहता है[५६], उसका हाथ पकड़ता है तब चित्रावली उससे परिहास करती है[५७], कौलावती के व्याह की बात ले कर व्यंग करती है।[५८] तब कुंवर बतलाता है कि मैं तुम्हारे ही कारण योगी हुआ हूं। यदि तुम आज्ञा दोगी तो मुझे काम का आनन्द प्राप्त हो सकेगा।[५९] इतने सब उपचार के बाद संभोग प्रारंभ होता है। सोहागरात के इस संभोग का कवि ने स्पष्ट वर्णन किया

---

५२- वही ४०९
५३- वही ४१०
५४- वही ५३०
५५- वही ५३१
५६- वही ५३२
५७- वही ५३३
५८- वही ५३४
५९- वही ५३५

दूसरे दिन सखियाँ प्रातःकाल ही आ पहुँची । सेज में रति-चिन्हों को देख कर वे आनंदित हुईं । चित्रावली रतिजन्य शैथिल्य के कारण मतवाली, बेसुध, अस्त- व्यस्त पड़ी थी । एक सखी जा कर चित्रा की माता को सूचना देती है । सूचना देते समय वह स्वयं शरमायी जा रही है । रानी जब आकर इस प्रकार के चिन्हों से सफल समागम का अनुमान करती है तो प्रसन्नता से चित्रावली की माँग को चूम कर उसके भाग्य की सराहना करती है ।[६१] दूसरे दिन पूर्व दिन के कष्टों को याद कर चित्रावली सेज के पास जाते डरती है ।[६२] किन्तु कौलावती के भय के कारण उसे समस्त भोग प्रदान

---

६०- वही

कुंअर सपत कामिनि मन माना, सिंभु सपति बाचा परमाना ।
रही अंक हेवर समुझाई, लै सुजान तब अंक में लाई ।।
घूंघट खोलि रूप अस देखा, सो देखा जेहि सीस सुरेखा ।
अधर घूंट सो अमिरित पीआ, जेहि के पिअत अमर भा हीया ।।
राहु गरास कलानिधि काँपा, लोयन पल आनन पह झाँपा ।
पुनि मनमथ रति फागु संवारी, खोलि अछूत कनक पिचकारी ।।
रंग गुलाल दोऊ लै भरे, रोम रोम तन मोती झरे ।
सेद थंभ रोमंच तन, आसु पतन सुरभंग ।
प्रथम समागम जो कियो, सितल भा सब अंग ।। ५३६

६१- वही

दिन कर उदय होत परभाता, आयी कुंअर जहाँ बरि आता ।
सुखसाला सखिआं मिलि गईं, सेज बिलोकि अनंदित भईं ।।
चित्रावलि करि पाउं अडारी, परी बिसुध जानहु मतवारी ;
उधसि माँग अलकावलि छूटी, बेनी खुली बली कर फूटी
सखी एक हीरा पहं आई, बिकसे अधर दसन चमकाई ।
कहिसि कि आई देखु धिय साजा, मोहिं कहत आ[illegible]
रानी आइ देखि मुसुकाई, माँग चूमि चित्रिनी [illegible]
कहिसि कि धन दिन धन घरी, धनि माथा धनि भाग,
नैन सिराने निरखि कै, चित्रावलि के भाग ।। ५३७

[६]२- वही

राम समां अभिराम हुइ, [illegible]रि कै गईं लेवाइ ।

तुम मेरे शरीर पर राज्य

उधर कौलावती का विरह संदेश सुनाने के लिए हंस चित्रावली रूप में पहुंचता है। धीरे- धीरे उसकी ख्याति काम-शास्त्री के रूप में सुजान के पास पहुंच जाती है और वह राज- दरबार में बुलाया जाता है।[६४] इसके बाद उसने पूर्ण-रूपेण काम- शास्त्र का वही वर्णन किया है जो कि लगभग सभी नए- पुराने भारतीय काम- शास्त्र के ग्रन्थों में प्राप्त है। सबसे पहले काम- शास्त्र की महत्ता, इसके ज्ञान के बिना संभोग पशु जन्य है बतलाने के बाद पद्मिनी, चित्रणी, शंखिनी और हस्तिनी नारी के लक्षणों का वर्णन है। यह सभी वर्णन जैसा कि "वेद में" कहा (अनुमान) हुआ है वैसा ही किया गया है।[६५] विभिन्न प्रकार की स्त्रियों के लिए कौन सी तिथि उत्तम है। इसके उपरान्त संभोग की दृष्टि से मृगी, अश्विनी और हस्तिनी नारी तथा शश, बृषभ और अश्व पुरुष और इनके संभोग का वर्णन है। पुरुष के वर्णन में उसके वीर्य-गंध तथा गुह्यांग परिभाषा का भी वर्णन कवि ने किया है। स्त्री के गुह्यांग की गहराई का भी वर्णन अन्य वर्णनों के साथ किया गया है। उच्च, नीच, सम रति तथा तिथि अनुसार काम की स्त्री शरीर में स्थिति और उनको जागृत करने की विधि बतलाई गई है।[६६]

अंत में कौलावती और सुजान का संभोग वर्णन है। कौलावती को कंठ से लगा कर उसके विरह को पति ने नष्ट किया। कहा गया है कि उसके अरांत कामातुर करने के लिए भगनासा को दाबा और कामाधिक्य के कारण कौलावती की जांघ कांपने लगी। उसने भी पति की कटि को पकड़ा और पति ने भी उसकी कटि पकड़ी; कुच पर नख क्षत देकर पति ने संभोग किया। कौला का कौमा- भंग हुआ, योनि- आवरण टूटा, सेज रक्त से लाल हो गई,

---

६३- वही ५४२

६४- वही ५५०

६५- वही ५५१-५५६ " जस कछु अहै बेद अनुमाना, चारि नारि ग कहेउं सुजाना " - ५५६

६६- वही - ५५७ - ५७९

...अतः ... हो गई । प्रातःकाल सखियाँ परिहास ... रात की कथा पूछती है ।[६७]

मालती -

मंझन कृत मधुमालती इस शाखा की एक अन्य प्रसिद्ध रचना है । इसमें कनेसर नगरके राजा सूरजभान के पुत्र मनोहर और महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की प्रेम कथा है । प्रासंगिक रूप में ताराचन्द और प्रेमा की कथा है । इस ग्रन्थ में संभोग शृंगार का वर्णन है किंतु उतना विस्तृत और स्पष्ट नहीं जैसा कि पद्मावत या चित्रावली में है । इसमें संभोग वर्णन के निम्नलिखित स्थल हैः-

मधुमालती की चित्रसारी में मधुमालती को सोती देख कर मनोहर के हृदय में उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है । वह सोचता है कि अब इसे जगा कर रस की वार्ता कहूं ।[६८] इतने मे राजकुमारी जागजाती है । मनोहर मधुमालती से अपनी जन्म-जन्म की प्रीति बतलाता है । प्रेम की वार्ता सुनते- सुनाते दोनों के हृदय में काम जाग उठता है । अनुभाव प्रकट होते हैं ।[६९] मधुमालती मनोहर से प्रार्थना करती है कि एक कर्म न करना जिससे

---

६७- चित्रा- पदुम कोस अलि लीन्ह बसेरा, हिए सोच भई मालति केरा ।

नीरज लोयन रूप अतिसाए, दिनकर देखि नीर भरि ...

बिहंसि कंत कामिनि कंठ लाई, बिरह दगधि उर ... बुझाई

मनमथ दाब जांघ पुनि कांपी, रावन बार ...

दीन्ह चार नखच्छत छाती, फूट सिंधोर ...

होइगा अंग भंग नव साता, ...

भयो प्रभात गयो उठि साईं, कौल पास कुई चलि आईं ।
हँसि हँसि पूछहिं रैनि सुख, रहसि करहिं परिहास ।
लाजन गोवै कौल मुख, सखियन अधर बिगास ।।५९७

६८- अब जगाई रस ब ... कहाऊं और बचन सुनत रस भाऊं ।

६९- सुनत सुनत रस । ...

मधुमालती का स्पष्ट संकेत संभोग अलग है। संभोग छोड़कर दोनों अन्य सभी भोग - विलास करते हैं।[७१] जोकि उनके रूपों को देख कर अप्सराओं और मधुमालती की सखियों को मालूम पड़ता है।[७२]

मनोहर और मधुमालती का द्वितीय मिलन प्रेमा के प्रयत्न स्वरूप होता है। दोनों आनन्द केलि करते हैं जिसका संकेत कवि ने किया है।[७३] इस मिलन में भी सुरत के अलावा अन्य सभी क्रियाएं होती हैं।

मनोहर और मधुमालती का तृतीय मिलन विवाहोपरांत सोहागरात के दिन है। इस श्रृंगार का कविने कुछ विस्तृत वर्णन किया है पर फिर भी विस्तार में यह जायसी के वर्णन से कम है। कवि कहता है कि प्रथम समागम के कारण बाला सामने दृष्टि नहीं करती थी। कुंवर उसे मनाता है पर वह प्रथम - समागम के डर से थर थर कांपती है। वह कभी दीपक बुझाने का प्रयत्न करती, कभी लज्जा से मुख ढकती। इसके बाद संभोग का वर्णन है। कंचुकी फट गई, मांग उधस गई, सेंदुर और तिलक मिल गए, काजल लगे नेत्रों में पानकी पीक लग गई, कंठहार टूट गया और फिर वह अमृत-की खान भी फूट गई तथा वह ( कामाग्नि ) जो राजकुमारी को दुख देती थी शांत हो गई। कवि कहता है कि जब गगन से धार छूटी तब दोनों की शांति -

---

७०- कहेसि कुंअर एक कर्म न कीजै, माता पितहिं अकलंक न दीजै।
वही।

७१- वही पृ० ४१

७२- पुछरिन्ह देखि कहा मन जानी, इन्ह दुनहु आपुस मौ रति मानी।
पृ०

तथा - कुंअरि उनींद सोइ अरसानी, जानहु रति[illegible] मानी। [illegible]

७३- पुनि गै दुवौ सेज चढ़ि वैसे, सो[illegible]

अधर अधर [illegible] सौ, मेलै रहे

? ६ जया सोहाग रात की बात पूछती है ।

तारचन्द और प्रेमा के संभोग का संक्षेप में ही
है पर उसमें भी प्रेम- क्रियाओं का उल्लेख है ।[७५]

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सूफी प्रेमाश्रयी शाखा के काव्य में उपलब्ध श्रृंगारिक अंशों में प्रतीकात्मकता नहीं है । इसका कारण स्पष्ट है । सूफी साधना में लौकिक प्रेम भी पारमार्थिक प्रेम का ही एक रूप माना गया है । इन दोनों में उस प्रकार का विरोध नहीं है जिस प्रकार के विरोध की कल्पना भारतीय साधना में कभी - कभी की गई है । सूफी साहित्य में इसी से लौकिक प्रेम का तिरस्कार नहीं है । दूसरे शब्दों में हम कह सकते है कि सूफी साहित्य में लौकिक प्रेम की धार्मिक स्वीकृति है । फलस्वरूप सूफी कवियों ने लौकिक प्रेम का लौकिक धरातल पर सांगोपांग वर्णन किया है । इसके द्वारा किसी अलौकिक

---

७४- प्रथम समागम बाल, दिस्टि न सौंह करेइ।।वही पृ० १३२
तथा - मुख मुख सैन सौंह ना करई, प्रथम समागम डर थरहरई ।
कुंअर अधर अधरन्ह सौं जोरै, कुंअरि विमुख भै ?, मुख मोरै ।
दीप भरम मुख फूकै बाला, अधिकौ करै रतन उजिआरा ।
दुऔ कर लै लाजन्ह मुख झापै,अधर दसन कै खंडित कांपै ।।
वही पृ० १३६

तथा - सुत पेम रस अंकम भरेऊ, रतन अबोध बेध जो परेऊ ।
कंचुकि तरकि तरकि उर फाटी, वोधरसिस मांग औ पाटी
सेंदुर मिलिगा तिलक लिलारा, काजर नैन पीक रतनारा
कठहार गिवहार जे टूटे, दलिमल दलै देह सौं छूटे ।
बहुरि फूटिगौ अंब्रित खानी, भौ सांती जो सालति रानी ।
काम सकत डर जीतिये, कही एक न टार
तब गै दुऔ सांति भौ, जब गगन ते छिटका चार।वही पृ०१६६

७५- उठा कोह जो मनमथ दाधा, मन ढीला औ गात बिआधा ।
बज्र समान आह जो व्यपा, भौ रवि उदै सौर [illegible] ।
कुंअर चपरिकै अंगुरी [illegible] सघन [illegible]
बहुरि जो कर कंच [illegible] संबु [illegible]
नौल नेह तौ [illegible]

मा के मिलन सुख की अनुभूति व्यक्त नहीं
न कह सकते हैं कि इस काव्य में सभी कथाएं स्थूल
धरातल पर हैं । सभी में प्रेम का महत्व स्वीकार
किया । इस प्रेम और काम मे कोई अंतर नहीं । इस प्रेम को
व्यक्त करने वाले वर्णन स्वाभाविक रूप में लिए जाने चाहिए ।
उनके पीछे कोई प्रतीकात्मकता नहीं है ।

सूफी काव्य में उपलब्ध श्रृंगार वर्णन प्रतीकात्मक नहीं है पर उसमे उपलब्ध संभोग क्रिया तथा तत्संबंधी अंग और कर्मादिके लिए कुछ ऐसी शब्दावलियों का प्रयोग हुआ है जिन्हे प्रतीक कह सकते है । इनके द्वारा कामात्मक शब्दावली को अधिक ग्राह्य बनाया गया है और चित्रो को अधिक सजीव रूप मे चित्रित किया गया है ये प्रयोग उपमान और रूपक से अधिक प्रतीक के अंतर्गत आएंगे । ऐसे प्रयोग निम्नलिखित है :-

संभोग- राम - रावण का युद्ध, गुलाल से रंग खेलना, राधावेध, बरमे से मोती का बींधना, कमल में भ्रमर का प्रवेश ।

पुरुष- गुह्यांग - कनक पिचकारी, अंकुश

स्त्री- गुह्यांग - कली, सीप, कामागार, मकरध्वज, भंडार, कमल कोश, अमृतखान - प्रथम समागम पर योनिच्छद भंग होना- सिंधौरा फूटना, गुलाल खेलना, अमृतखान का फूटना स्खलन - स्वाति बूंद, वर्षा ।

इन्हीं शब्दों को इस काव्य में प्रतीक माना जा सकता है अन्यथा इस काव्य मे प्रतीकात्मकता का अभाव ही है ।

१५- कृष्णाश्रयी शाखा -

कृष्ण- साहित्य तो पूरा का पूरा एक प्रकार से श्रृंगार साहित्य कहा जा सकता है और इसमें संभोग श्रृंगार की है । यह साहित्य स्पष्ट रूप में भक्ति-साहित्य है और यही है कि प्रतीकात्मकता की दुहाई भी सबसे अधिक इसी साहि[illegible] प्राप्त है । इस साहित्य [illegible] रास [illegible] कृष्ण [illegible]
निकुंज विहारिणी राधा
साहित्य से संभोगात्मक

तिनिधि अंशों को लेकर उनकी
...र करेंगे ।

पहले हम वल्लभ संप्रदाय के सूरदास को ही लें । इस ... भक्ति और इनके काव्य की उत्कृष्टता के संबंध में कोई ... नहीं । सूरसागर नामक बृहद् संग्रह में अन्य अवतारों का गान ...प में करके कृष्ण चरित्र को अत्यंत विस्तृत रूप से अपनाया गया है । कवि ने कृष्ण के ब्रजलीला जीवन का कोना- कोना केवल झांका ही नहीं बल्कि उसके प्रत्यक्ष वर्णन भी किया है ।

बचपन से ही कृष्ण गोपियों का मन मोहते रहे । अपनी माता के सम्मुख बाल रूप रखते हुए भी ग्वालिनों के लिए वे तरुण थे । अधिकतर गोपियों ने उन्हें बाल-रूप में शायद ही जाना । कृष्ण के साथ उनका व्यवहार भी शायद ही कभी ऐसा हुआ जैसा बालक के प्रति होता है । पांच वर्ष की अवस्था से ही कृष्ण गोपियों की चोली फाड़ने लगते हैं और दस वर्ष की अवस्था आते- आते तो गोपियां उनके किशोर रूप को देख कर काम से पीड़ित हो कर काम चेष्टाएं करने लगती हैं ।[७६] नृशास्त्र और मनोविज्ञान की दृष्टि से गोपियों की इस क्रिया में विशेष अस्वाभाविकता नहीं है यद्यपि भक्त-कवियों ने कभी इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को स्पष्ट व्यक्त नहीं किया है । इस दिशा में थोड़ा सा संकेत सूर ने गोपियों के उलाहना देने पर कृष्ण और यशोदा के उत्तर में दिया है जिसमें कृष्ण कहते हैं कि ये स्वयं बुला कर मेरा आलिंगन करती हैं[७७] और यशोदा उन्हें जोबन- प्रयत सुंदरी कहती हैं ।[७८] क्या सूरदास ने भी यह कहा है ? या किसी भी हिन्दी कवि ने ऐसा कहा है ? नृशास्त्र की दृष्टि से भले ही ऐसा हो किन्तु इस प्रकार की कल्पना किसी कृष्ण काव्य के कवि को नहीं रही होगी । धीरे- धीरे यह संबंध कम से कम समवयस्क सखियों पर प्रकट होने लगता है । एक मुंह की बात दस मुंह में पहुंच कर गोपियों

---

७६- सूरसागर १०, ३००-३०६, ३२७, ३३७, ३४१, ७७१-७७२,
            १४८५-८९, १५०० आदि ।

७७- वही १०, ३०४-३०५

७८- वही १०, ३०७-३१०

। गोपियाँ भी इस बात
वे बेबस हैं । कृष्ण की याद आते ही उनके
त हो जाता है ।[८०] कृष्ण भी इस काम-कला से
हैं । राधा से मिलते ही वे उसकी नीवी पकड़ते हैं । साथ
उनका हाथ राधा के कुचों पर पहुंचता है कि वैसे ही यशोदा
जाती है ।[८१]

अब कृष्ण बालक नहीं रहे । राधा कृष्ण का संयोग जब भी अवसर मिलता तभी होता । हार से संभोग में बाधा होती है उसे राधा उतार देती है ।[८२] दोनों का संयोग मरकत और कंचन के संयोग की भांति है । काम- केलि में चकोर रूपी राधा है तथा चंदा समान कृष्ण । अंत में चातक के मुख में स्वाति की बूंद पड़ी ।[८३] कवि का यह उल्लेख और प्रेम शाखा कवियों का भी ऐसा उल्लेख तुल्य है ।

रास में भी स्थल- स्थल पर कृष्ण ने गोपियों का काम शांत किया है । कवि इतना ही कह कर नहीं रुक गया है । उसने स्पष्ट उल्लेख किया है कि कुच- भुज स्पर्श कर, उन्होंने तन की तृषा बुझाई ।[८४]

---

७९- वही १०, ६४७

८०- वही १०, ३७१, ७२८, १२२६, १५८९-९०, १८७०, १८९६

८१- वही १०, ६८२

नीबी ललित गही जदुराई ।
जबहिं सरोज धरयौ श्री फल पर, तब जसुमति गई आइ ।

८२- वही १०, ६८७

८३- वही १०, ६९१

नवल नेह नव पिया नयौ- नयौ दरस,
बिवि तन मिले पिय अधर धरौ री ।
प्रीति की रीति प्रान चंचल करत लखि,
नागरी नैन सौं चिबुक मोरी ।।
काम की केलि कमनीय चंदक चकोर,
स्वाति कौ बूंद चातक परौ री ।
सूरदास रसरासि बरसि कै चली,

...विवाह हो जाता है। विवाह के ...रंभ होती है। दोनों को संतोष नहीं हो ...दान- लीला आदि अनेक अवसरों पर कृष्ण की ... अत्यंत प्रसिद्ध है और उनका उल्लेख विशेष आवश्यक नहीं है।[८६] सफल रति के उपरांत राधा प्रसन्न भी होती है और अपनी प्रसन्नता छिपाना भी चाहती है। किन्तु सखियाँ भाँप ही लेती हैं। यह सुख कहीं छिपाए छिपता है?[८७] दोनों काम विशारद हैं ही। सुरत युद्ध छिड़ता रहता है।[८८] अपनी क्रीड़ा से दोनों कामदेव और रति को लज्जित करते हैं।[८९] कृष्ण राधा को फ़ौरन भुजाओं में लेकर निर्वस्त्रा कर देते हैं और काम में निर्बल कर[९०] विवश कर देते हैं।[९१] इस क्रिया में राधा पसीने

---

८५- वही १०, ११९०, ९१, १२००, १२०१, १२०३, १२०६
८६- वही १०, १६७८- ८०
८७- वही १०, १६९५- ९७, १७००- १७०५ आदि
८८- दोऊ बाजत रति- रन धीर।
महा सुभट प्रगटे भूतल वृषभानु- सुता बल- बीर।।
भौहैं धनुष चढ़ाइ परस्पर, सजे कवच तनु- चीर।
गुन- संधान निमेष घटत नहिं छुटे कटाच्छनि तीर।।
नख नेजा- आकृत उर लागी नैंकु न मानत पीर।
मुरली धरनि डारि आयुध लौं, गहे सुभुज भट भीर।।
प्रेम समुद्र छाँड़ि मरजादा, उमँगि मिले तजि तीर।
करत बिहार दुहूँ दिसि तैं मनु, सींचत सुधा सरीर।
अति बल जोबन धाइ रुचिर रचि बंदन मिलि श्रम- नीर।
सूरदास- स्वामी अरु प्यारी, बिहरत कुंज कुटीर।।
वही १०, १९८६ तथा २१२८, २१२९-३३

८९- वही १०, १९८७
९०- हरषि पिय प्रेम तिय अंक लीन्ही।
प्रिया बिनु बसन करि, उलटि धरि भुजनि भरि, सुरति रति पूरि अति निबल कीन्ही।
आपनैं कर- नखनि अलक कुरवारही, कबहुँ बाँधै अतिहिं लगत लोभा
कबहुँ मुख मोरि चुंबन देत हरष ह्वै, अधर भरि दसन वह उनहिं सोभा
बहुरि उपज्यौ काम, राधिका- पति स्याम, मगन रस-ताम नहिं तनु सम्हारै।
सूर- प्रभु नवल- नवला, नवल कुंज गृह, अंत नहिं लहत दोउ रति बिहारै।
- वही १०- १९८८
९१- नागर स्याम नागरि नारि।
सुरत- रति- रन जीति दोउ[illegible]
स्याम- तनु घन नील मा[illegible]
मनो मरकत कनक [illegible]
कोक- गन करि [illegible]

गई, वस्त्र मलगीज गए । सखियों
... द.त छिपती नहीं है[९२] और इसी प्रकार
...ए नई- नई तरकीबें सोची जाती हैं । जब भी
...धा को पाते हैं, वे उतावले हो जाते हैं । राधा कहती है
इतनी उतावली क्यों करते हो, मैं कहीं भागी थोड़े ही जा रही
हूँ ।[९३] अनेक प्रकार से वे रति, विपरीत रतिरण किया करते हैं ।[९४]
सभी सखियां इस बात को राधा के अंग- प्रत्यंग से जान जाती हैं ।
आपस में सखियां यही बातें करती हैं । वे कहती हैं कि राधा ने

---

९२- स्यामा स्याम सौं अति रति कीनी ।
श्रम- जल बुंद बदन यौं राजति, मनु ससि पर मोतिनि लर दीनी ।।
मुक्ता- माल टूटि यौं लागति, जनु सरसरी अधोगति लीनी ।
सूरदास मनहरन रसिक बर, राधा संग सुरति- रस भीनी ।।
१०, १९९३

सुरति अंत बैठे बनवारी ।
प्यारी- नैन जुरत नहीं सन्मुख, सकुच हँसत गिरिधारी ।।
बसन सम्हारन लगे दोऊ तन, आनन्द उर न समाइ ।
चितवत दुरि- दुरि नैन लजौंहैं, सो छबि बरनि न जाइ ।।
नागरि अंग मरगजी सारी, कान्ह मरगजे अंग ।
सूरज प्रभु प्यारी बस कीन्ही, हाव- भाव रति- रंग ।।
१०, १९९४ तथा २१७९- ८०

९३- स्याम सकुच प्यारी उर जानी ।
लई उछंग बाम भुज भरि कै, बार- बार कहि बानी ।।
निरखत सकुचि बदन- हरि प्यारी, प्रेम- सहित जुहरानी ।
करत कहा पिय अति उताइली, मैं कहुं जाति परानी ।।
कुटिल कटाच्छ बंक करि- भृकुटी, आनन मुरि मुसकानी ।
सूर स्याम गिरिधर रति नागर, नागरि राधा रानी ।।
१०, २०३१

९४- वही १०, २०३२, २०३३, २०३४, २०३५, २०३६, २१५१-५
२१७४- ७९ आदि ।

... बल प्रकट किया किन्तु कहने पर धीरे- धीरे सखियों से समझौता हो जाता है। ...- क्रिया देखा करती है और दोनों की कोक- कला की सराहना करती रहती हैं। इस प्रकार दोनों विहार करते है।[९६]

सूरदास के अतिरिक्त वल्लभ- संप्रदाय में कुंभन दास तथा गोविन्द दास के पदों के संग्रह भी प्रकाशित हो चुके हैं। दोनों के ही ग्रन्थों में श्रृंगार का वर्णन है पर रति का उतना स्पष्ट और विस्तृत वर्णन किसी मे नहीं है जितना कि सूरदास में। इतनी भिन्नता होते हुए भी दोनों में मौलिक भिन्नता नहीं है। रति की उत्सुकता, तैयारी, उसके बाद की लज्जा, अंगों की थकान और वस्त्रों कामलगीजंना सभी में एक सा है, अतः इसका विस्तृत रूप से उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। इनके अनेक उदाहरण प्रस्तुत अध्ययन में पीछे आ ही चुके है।

वल्लभ संप्रदाय के अतिरिक्त राधावल्लभ सम्प्रदाय के भक्त - व्यास जी की पूरी वाणियां प्रकाशित हो गई है। इनकी वाणियों में श्रृंगार का सूर से भी उन्मुक्त रूप दीखता है। साथ ही साथ इस श्रृंगार की कामोत्तेजकता से भी ये स्वयं इतने अधिक अवगत हैं कि बार बार इस श्रृंगार को अपार्थिव कहना उनके लिए आवश्यक हो जाता है। उनके काव्य में राधा काम-कला - विशारदा है। संपूर्ण काव्य में अविरत संयोग की धारा है राधा लोक लज्जा से भयभीत नहीं है। संसार कुछ भी कहे किन्तु वह तो "सुरति सुख" अवश्य

---

९५- वही १०, २०३९, २०४१- ४७, २०४९

राधिका- सदन ब्रज- नारि आईं।
रही मुख मूंदि कै बचन बोलै नहीं, नैन की सैन दै वै बुलाईं।।
इन तबहिं लखि लई, रचति है चतुरई, बुद्धिरचि के अबहिं और कैहै
चोर चोरी करै आपनै जंघ- बल प्रगट कैहै तुमहिं नहिं पत्यैहै।
भौंह देखौ निरखि ज्वाब दैहै कौन, तुमहु राखतिं गरब बोलि देखौ
सूर प्रभु- संग तै अतिहिं निधरक भई, ...- मनमीर ...

९६- वही १०, २१२७, २१२८- ३४

...वरण ही काम वत लगता है ।[९८]
...रहता है ।[९९] वह अवसर मिलने पर कृष्ण
...ती है ।[१००] इसी काम के द्वारा वह अपनी काया
...रती है ।[१०१] अवसर मिलने पर वह स्वयं परोक्षरूप में

---

जो भावै सो लोगनि कहन दै ।
अबनि पिछौड़ौ पाँव न दीजै, न्याव मैटि प्रीति निबहन दै ।
हौं जोबन मदमाती सखी री, मेरी छतियाँ पर मोहन रहन दै ।।
नव- निकुंज पिय अंग संग मिलि, सुरति- पुंज रस-सिंधु थहन दै ।
या सुख कारन "व्यास" आस के, लोक- बेद उपहास सहन दै ।।
पद ७०३

९८- मेह सनेही स्याम के बृंदावन परबत ।
दामिनि दमकति चमकति कामिनि, झूलत दंपति तन मन हरवत।।
ललना- लाल हिंडोरा गावत, सुनि धुनि मुनिव्रत कौ मन करषत ।
झूलकि- पुलकि बेपुथ जुत भैंटत, उर उरजनि सौं घरषत ।।
झूका सह तन डाँड़ी गहत न, कर गहि चुंबन लेत न लरषत ।
नैन- सैन दै हँसत- लसत दोऊ, "व्यासदासि" बिबि मुख सुख
बरसत ।। ६८८

९९- वही ७२६, ७२७, ७५३
१००- वही ३२९, ३३१ तथा
कुंवरि प्रवीन सुबीन बजावति ।
बंसी वट निकट निकुंजनि बैठी, सुख पुंजनि बरषावति ।।
कोटि काम दै स्यामहिं मोहति, हँसि- हँसि कंठ लगावति ।
लेति उसाँस देति कुच दरसन, परसत सकुच दुरावति ।।
कुसुम- सयन पर कोकि- कलाकुल, प्रगटति पतिहिं सिखावति ।
इहिं बिधि रसिकनि की निधि राधा, व्यासहिं सुख दिख...
४४५

१०१-
श्री वृषभान- किसोरी सुंदरि, बृंदावन की रानी जू ।
चंद- बदन, चंपक- तन गोरे, स्याम- घरनि जग जानी जू ।
† † † †
आदि अंत छूटत नहिं जैसे, विषयनि बाँधति जायाज ।
हाव भाव करि पिय पर बरषति
† † † †
व्यास स्वामिनी के द- नख की,

...ति के अनुकूल जो कुछ भी संभव है उतना
।[१०२]

... का भा कवि ने विस्तृत और स्पष्ट वर्णन किया है
... ही वर्णनों में उसका मन रमा है । सुरत प्रारंभ होते ही
कृष्ण राधा को निर्वस्त्रा कर देते हैं । उसके सुंदर जांघों और योनि
को देखने की इच्छा से वे जांघों को पकड़ते हैं । लज्जा से राधा नेत्र
मूंद लेती है । उसके बाद तो रति प्रारंभ होती ही है ।[१०३] सभी
ओर सुख बरस रहा है । सखियां देख रही हैं ।[१०४] कभी- कभी
आतुरता वश राधा स्वयं कंचुकी शीघ्रता से खोलती हैं । उंगलियों से
टटोल कर बातें होती हैं । रस लिया जाता है[१०५]। फिर इसके पूर्व ही

---

१०२- सुरंग चूनरी भीजत, लाल । उढ़ाउ पीत पट ।
भला भकोरत आवत दुहु दिसि, निसि अँधियारी,
दामिनि कौंधति, बेगि चलहु प्रीतम बंसी वट ।।
बीथिनि बीच कीच मचिहै, तब मोहि लयौ चहौगे कनियां,
कंटक बिकट घने जमुना- तट ।
लई उछंग "व्यास" की स्वामिनि रसिक- मुकुट- मनि,
धनि- धनि मोहन बार- बार कर परसत कुच- घट ।। ६८२

१०३- बन बिहरत वृषभान- किसोरी ।
कुसुम- पुंज सयनीय, कुंज कमनीय, स्याम- रंग बोरी ।।
नीबी- बंधन छोरत, मुख मोरत, पिय चिबुक चास टकटोरी ।
ओली, ओढ़ि खोलि चोली, दुख मैंहि भैंटि कुच जोरी ।।
सरस जघन दरसन लगि, चरन पकरि हरि कुंवरि निहोरी ।
मदन- सदन को बदन बिलोकत, नैननि मूंदति गोरी ।।
केस करजि, आवेस, अधर खंडित, गंडनि भकभोरी ।
रति बिपरीति, पीत छबि स्यामहि, फबि गई अंगनि खोरी ।
विविध बिहार माधुरी अद्भुत, जो कोऊ कहै सु थोरी ।
जाहि प्यास या रस की तासों, "व्यास" प्रीति नित जोरी ।।
५७९

१०४- वही ५५७ - ६०, ५६६, ५६७, ५७६ आदि

१०५- दुहू आतुरनि चतुरता भूली ।
कुंजगली अनबोले डोलत, भेंट भई सुख- मूली ।
स्याम पीत पट सेज करी, स्यामा निज कंचुकि खूली ।
रजनी मुख सुख देख परस्पर, चितवन भला हली ।।
अंग टटोरि अंगु [illegible]
पिय- हिय सुख

तोड़कर कंचुकी खोलते, कुचों का स्पर्श करते,
दखाती । नहीं नहीं करती है और कृष्ण नीवी
T कोक कला में प्रवीण है । रस लेकर राधा का
भंग करते है ।[१०६] इस प्रकार निशिदिन सुरत सिंधु में राधा
रहती है । यहाँ रति निरंतर विविध रूपों में चलती रहती

जैसा कि हम पीछे कह आए है हरिव्यास और उनके संप्रदाय में राधा कृष्ण का श्रृंगार जीवन के प्रतिक्षण में व्याप्त है । यथार्थ में इसके अतिरिक्त और कुछ उसमें है ही नहीं । उदाहरण स्वरूप हिंडोला में झूलते समय भी कृष्ण राधा की चोली खोलते, चुंबन लेते और नीवी बंधन को तोड़ने में ही लगे रहते हैं और उनकी इस क्रिया को देख कर सभी सखियाँ आनन्द विभोर होती है ।[१०७]

---

१०६- आजु लवंग लता गृह विहरत, राजत कुंज बिहारी ।
कुसुम-निकर रचि, ललित सेज रुचि, नखसिख कुंवरि सिंगारी ।।
प्रथम अंग-प्रति अंग संग करि, मुख-चुंबन सुखकारी ।
तब कंचुकि-बंद खोलत, बोलत चाटु बचन दुखहारी ।।
हस्त कमल करि बिम्ब उरज धरि, हरि पावत सुख भारी ।
बधू कपट भुज पटनि दुरावति, कोप भृकुटि अनियारी ।।
नीवी मोचत मुख अलंकृत, नेति कहत सुकंवारी ।
चिबुक चारु टक टोलनि बोलनि, पिय कोपित है प्यारी
नैन सैन मधु बैन हँसन जब, कोटि चंद उजियारी
कोक-कुसल-रसरीति प्रीति-बस, रति प्रगटत पिय प्यारी।।
अधर-सुधा मद मादक पीवत, आरज पथ में सो सीव बिदारी
बृंदाबन-लीला-रस-जूठन, बाइस व्यास" बिटारी ।। ३२९

१०७- स्यामा-स्याम बने बन झूलत, मरकत-कनक-हिंडोरै ।
ऋतु बसंत अनुराग फाग सब, खेलत केसर घोरै ।।
बाजत ताल, मृदंग, झांझ, डफ, मुरली मिलैं सुर कोरै
गावत मोहन की मोहन धुनि, सुनि सब को चित चोरै
झूका जोबन-जोर देत दोउ, कुलकि-पुलकि झकझोरै
स्याम काम-बस चोली खोलत, आतुर निसि को भोरै ।
डाँड़ी छाँड़ि करत परिरंभन, चुंबन रति हिलोरै
सैननि बरजति पियहिं किसोरी, [illegible]
खैंचत पट लंपट नट-नागर [illegible]
नेति-नेति सुनि रहा [illegible]
देखि सखिन बलाः [illegible]

...तरण प्रसंग कवि को अत्यंत प्रिय है। स्थान-
राधा कृष्ण के विविध श्रृंगार और अंगों की उपमा
शस्त्रों से दी है ।[१०८] युद्ध होता है पर रण क्षेत्र में
शय्या पर । दोनों ही एक दूसरे को इस में पराजित करने के
प्रयत्न में रहते हैं । कभी कृष्ण हारते हैं,[१०९] कभी बराबर का जोड़
होता है, और कभी इस रतिरण में राधा लुटी हुई कुटी की
भाँति हो जाती हैं ।[१११] यह रण कभी-कभी विपरीत रति का रूप
भी धारण कर लेता है । इस विपरीत रति में शरीर के स्पर्श से ही
राधा आनन्द से सिहर उठती है । जब कृष्ण उसकी जांघों को
छूते हैं तो आनन्द से राधा कूजने लगती हैं । उसकी विपरीत रति
क्या है नृत्य है । उसके अंग-अंग से आनन्द बरसता है ।[११२]

---

१०८ वही ५७५, ५८५, ५८६, आदि
१०९ मेरे तनु चुभि रहे अंग अन्यारे । टारे हूं ते टरत न सुंदरि डरते
पीन पयोधर मारे ।।
नख-सिख कुसुम बिसिख सर बरजत, व्यास स्वामिनी तो सों हारे।।
५९२,५८८,५९०,५९१
११० ५८६
१११ ७४६
११२ बिहरत दोउ ललना-लाल ।
रसिक अनन्य सरस सुख- कारन, बैरिन के उर साल।।
कुंज-महल में हेज सेज पर, चंपक बकुल गुलाल ।
उड़त कपूर-धूरि कुमकुम-रंग, अंगराग बनमाल ।।
गौर-स्याम परिरंभन राजत, पीवत बाहु- मृनाल ।
मानहुं कनक-बेलि बेली सों, उरभी तरुन तमाल ।।
कुच गहि चुंबन करत, डरत नहिं, पीवत अधर-रसाल ।
नीवी मोचति नेति वचन सुनि, सोचत नहीं गुपाल ।।
जघनि परस पुलकावलि बेपथ, कल कूजित नव बाल ।
भृकुटि- बिलास हास मृदु, डोलत नयन बिसाल
उरजन पर कच सोभित, जनु कमलनिपर बगत मराल।
रति विपरीत राधिका निरतति, बजति नीवी जगति ताल।।
अंग सुधंग रंग -रस बरषत, हरषत सहचरि जाल।
बृंदाविपिन राधिका-मोहन, व्यास दास प्रति पाल।।५९८ [illegible]
बाज ... बिहरत [illegible]

...ार रति रंग के अतिरिक्त सुरतांत का भी कवि ...के और वह अत्यंत विस्तृत तथा सूक्ष्म है ।

...दि राधा के वस्त्रादि मलगिंत गए हैं, वह शिथिल ...र प्रस्वेद से सनी है । शरीर में स्थान-स्थान पर नख-क्षत है जिससे उसकी रति प्रकट होती है ।[113] केश उसके बिखर गए है, आंचल गिर जाता है । उसके इस रूप को देख कर सखियाँ विपरीत रति का अनुमान करती है ।[114]

उपर्युक्त था उससे मिलता जुलता शृंगार वर्णन ही अन्य सभी कृष्ण-धाराओं में प्राप्त है अतः उस पर और विस्तार से जाना अनावश्यक है । उनके स्वरूप की यथेष्ट झलक प्रस्तुत अध्ययन मे मिल चुकी होगी ।

इस सभी अध्ययन के उपरांत यह सोचना कि कृष्ण-धारा के कवियों की समस्त शृंगार चर्चा एक प्रतीक मात्र है, केवल क्लिष्ट कल्पना ही हो सकती है । यह संभव है और सत्य भी है कि कवि के धार्मिक मतानुसार राधा और कृष्ण दोनो ही ब्रह्म हैं ।

---

११३- घूँघट-पटन सँभारत प्यारी ।
उर नख-अंक, ...क ससी, जनु तिलकन सरस सिंगारी ।।
मरगजी माल, सिथिल कटि-किंकिनि, स्वेद सलिल तन सारी।
सुरति भवन मोहन बस कीने, व्यासदास बलिहारी ।।
३१०,३११, ३१६, ३१८, ३१२, ३१३ ।
देखि सखी आँखिन सुख पै न दोऊ जन ।
बिथुरी-अलक, पीक-पलक, खंडित-अधर,
मंडित गंड, सिथिल-बसन गौर साँवरे तन ।।
नव निकुंज, कुसुम-पुंज रचित सैन, मैन-केलि,
कलित दुहूँ अंग-अंग, स्रम-जलकन"
आवेस असन चकित नैन चाह, बिबस कमल बैन
सैननि कछु कहत व्यास दासी जन ।। ३१९

११४- ४३९

ही इसे नहीं मानेंगे । [११५] किन्तु साथ भी अधिक सत्य है कि यह केलि-विलास ...ी का नहीं है । जिस समय कवि इस केलि-रस का ...र्णन कर आनन्द मग्न हो जाता है उस समय राधा-कृष्ण मूलतः चाहे कोई क्यों न हों केवल स्त्री-पुरुष मात्र रह जाते हैं । कवि तथा उसके संप्रदाय वाले स्वयं यह मानने को तैयार नहीं है कि यह रस केलि सत्य नहीं है । राधा कृष्ण का अस्तित्व काल्पनिक है । उनके अनुसार तो यही केवल सत्य है अन्य सब कुछ ही असत्य है ।

दूसरी ओर यदि हम इसे प्रतीक मान कर इसके पीछे छिपे अर्थ को जानने का प्रयत्न करें तो शीघ्र ही हमें विदित हो जाएगा कि यह प्रयास कभी भी सफल होने का नहीं । राधा-कृष्ण के प्रतीकात्मक अर्थ की कल्पना तो संभव भी है पर उनकी एक-एक काम-क्रियाओं का भी कोई प्रतीकात्मक अर्थ हो सकता है यह असंभव है । यथार्थ में ये वर्णन इतने स्पष्ट, स्थूल और संवेदनात्मक है कि इनके पीछे के किसी संकेत की कल्पना न तो हम कर सकते हैं और न ही संभवतः कवि ने कभी की थी । वह सब कुछ मानने को तैयार हो जाएगा यदि हम उसके राधा-कृष्ण के स्वरूप को केवल मान लें । जिस क्षण हम उसके राधा-कृष्ण को किशोरी-

---

११५- सुनी न देखी ऐसी जोट ।
उपजी अबही के पहिले हीं, यह रूप- गुननि की पोट ।।
गौर-स्याम सोभा मानौं, कंचन-मरकत के गिरि-कोट
भामिनि चलत न देखत बरननि, तुंग कुचनि की ओट ;:
घटत न बढ़त एक रस दोऊ, जोबन-जोर अ...
रति-रन बीर धीर दोऊ सनमुख, सहत समर-सर चोट ।।
वृन्दारन्य अनन्य हेत के समरस नित्य अभोट ।
"व्यास" उपासक प्रभुहिं न जानत, नीरस कवि-कुल-खोट ।

ही इसे नहीं मानेंगी । [११५] किन्तु साथ भी अधिक सत्य है कि यह केलि-विलास ा का नहीं है । जिस समय कवि इस केलि-रस का कन कर आनन्द मग्न हो जाता है उस समय राधा-कृष्ण मूलतः चाहे कोई क्यों न हों केवल स्त्री-पुरुष मात्र रह जाते हैं । कवि तथा उसके संप्रदाय वाले स्वयं यह मानने को तैयार नहीं है कि यह रस केलि सत्य नहीं है । राधा कृष्ण का अस्तित्व काल्पनिक है । उनके अनुसार तो यही केवल सत्य है अन्य सब कुछ ही असत्य है ।

दूसरी ओर यदि हम इसे प्रतीक मान कर इसके पीछे छिपे अर्थ को जानने का प्रयत्न करें तो शीघ्र ही हमें विदित हो जाएगा कि यह प्रयास कभी भी सफल होने का नहीं । राधा-कृष्ण के प्रतीकात्मक अर्थ की कल्पना तो संभव भी है पर उनकी एक-एक काम-क्रियाओं का भी कोई प्रतीकात्मक अर्थ हो सकता है यह असंभव है । यथार्थ में ये वर्णन इतने स्पष्ट, स्थूल और संवेदनात्मक है कि इनके पीछे के किसी संकेत की कल्पना न तो हम कर सकते हैं और न ही संभवतः कवि ने कभी की थी । वह सब कुछ मानने को तैयार हो जाएगा यदि हम उसके राधा-कृष्ण के स्वरूप को केवल मान लें । जिस क्षण हम उसके राधा-कृष्ण को किशोरी-

---

११५- सुनी न देखी ऐसी जोट ।
उपजी अबही के पहिले ही, यह रूप- गुननि की पोट ।।
गौर-स्याम सोभा मानौं, कंचन-मरकत के गिरि-कोट
भामिनि चलत न देखत बरननि, हंग कुचनि की ओट ।;
घटत न बढ़त एक रस दोऊ, जोबन-जोर झकोट
रति-रन बीर धीर दोऊ सनमुख, सहत समर-सर चोट ।।
वृन्दारन्य अनन्य सेत के समरस नित्य अघोट ।
"व्यास" उपासक प्रभुहिं न जानत, नीरस कवि-मुख-ओट ।

...यगतो रूप प्रदान करने लगते है, उसी ...वासना को जड़ पर आघात करते हैं और यह ...य है।

रामाश्रयी शाखा

राम शाखा में तुलसी और केशव ही महत्वपूर्ण हैं और उनमें भी विशेषकर तुलसी। तुलसी के राम मर्यादा पुरूषोत्तम हैं और स्वयं तुलसी भी मर्यादा की सीमा का कहीं भी अतिक्रमण न करने वाले। यही कारण है कि तुलसी ही नहीं केशव, में भी राम-सीता के श्रृंगार का अत्यंत सूक्ष्म रूप ही वर्णित है। यथार्थ में वहां केवल उनकी रति का संकेत मात्र ही है। यह संकेत इसलिए नहीं है कि मानस या चद्रिका के पात्र अपार्थिव हैं, क्योंकि इस लीला स्वरूप में वे पूर्णतः मानव हैं, यद्यपि उनका यह शरीर साधारण मानव शरीर की भांति नश्वर और जड़ नहीं है, बल्कि इसलिए है कि राम-सीता, या उमा और शंकर पूज्य हैं। उनकी रति का वर्णन उचित नहीं है। इसलिए राम आदि की समस्त क्रियाएं यथार्थ हैं और राम आदि किसी अन्य वस्तु के प्रतीक नहीं हैं। वे स्वयं अपने ही स्वरूप हैं।

१७- इस संक्षिप्त अवलोकन के उपरांत यह स्पष्ट है कि भक्ति-साहित्य में श्रृंगारिकता का बाहुल्य है। जायसी, सूर तथा अन्य भक्त कवियों के पदों में सुरति, विपरीत तथा रति-रण के अतिरिक्त प्रेम की सामान्य प्रबलता का वर्णन भी है। हम सभी शाखाओं के साथ ही उनके इस वर्णनों के प्रतीकात्मक न होने के संबंध में भी कह आए हैं।

इस संबंध में हमें एक बात को स्पष्ट रूप से जान ... कि निर्गुण ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों तथा मीरा के अतिरिक्त अन्य भक्त कवियों ने कभी भी अपने इष्ट देव को पति रूप में स्वीकार नहीं किया है। निर्गुण कवियों में स्वकीयात्व की भावना प्रबल है। ऐसी स्थिति में पत्नी का अपनी ... का वर्णन स्वाभाविक नहीं है। पत्नी का तो अपनी ... सम्मुख भी मुखर हो स...ना असंभव है। यदि कभी ... होता है तो वह केवल अपने प्रेम की ...

...ताओं के विस्तार का नहीं । यही
...र ने अनेक बार अपने को राम की पत्नी कह
वर्णन हीं किया । यही क्यों स्वयं समस्त कृष्ण
...र्ण ही राधा ने भी कभी अपने श्रृंगार का वर्णन नहीं किया
..., उसने यदि कुछ कभी कहा है तो अपनी कामना का ही वर्णन
है । यही स्वाभाविक है । जो कि कुछ हमें वर्णन हमें मिलता
है वह तो उसकी सखियों के द्वारा है । ये सखियाँ अनुमान के
आधार पर अथवा आंखों देखा वर्णन करती है ।

१८ ईसाई भक्तों में ईसा या परमात्मा को पति तथा गिर्जाघर या प्रत्येक भक्त को उसकी पत्नी मानने की परंपरा चली आ रही है । फलस्वरूप उनकी रत्यानुभूति अधिक स्वाभाविक और स्थूल है और ईश्वर से संयोग के आनन्द को स्थूल क्रियाओं द्वारा व्यक्त करना उपयुक्त भी, यद्यपि इसमें भी यथेष्ट संदेह है । किंतु भक्ति संप्रदायों में तो इस बात का कहीं अवकाश ही नहीं है कि भक्त अपना तादात्म्य राधा सेकर सके । यथार्थ में ईसाई और भारतीय भक्तों की मूल भावना में ही अंतर है । एक में पत्नीत्व की स्पष्टता है तो दूसरे में इसका वैसा स्थान नहीं । भक्त कभी भी राधा से अपना तादात्म्य नहीं कर सकता और इसलिए अपनी प्रेमानुभूति या रत्यानुभूति या अपनी आत्मा के ईश्वर से मिलन द्वारा उत्पन्न आनन्द की अनुभूति को लौकिक रत्यानुभूति के रूप में वर्णन करने का प्रश्न ही नहीं उठता है । भक्त को कृष्ण की लीला में दर्शक रूप मानने से भी प्रतीकात्मकता की समस्या हल नहीं होती । अनेक कवियों ने तो स्वयं को इस स्थूल देह से उस लीला का दर्शक माना है और इस प्रकार वे किसी के प्रतीक नहीं । कुछ ने सखियों के द्वारा राधा-कृष्ण की लीला के रहस्य का वर्णन कराया है पर उनको उन सखियों का प्रतीक मानने में यह आपत्ति है कि उन्होंने साधारणतः अपने को उन सखियों से भिन्न समझा है और या अपने को ही उन सखियों में एक पृथक सखी माना है । इस प्रकार वे किसी और का प्रतिनिधित्व नहीं करते । इसलिए इस प्रकार भी प्रतीक की कहीं नहीं रहती है ।

...ण उसी रूप मे है। उनकी प्रतीकात्मकता नहीं
राधा मानव नहीं है। राधा, गोपी आदि वेद की
...हों पर यह तो, उनके मूल स्वरूप की बात है।
...इष्ट रूप में वे मांसल और सजीव हैं। यह सब तो उनकी
लीला है और इसमें श्रृंगारिकता नहीं, भक्ति है। पर साथ ही
...थ उनके संभोग का सूक्ष्मतम वर्णन भी इसमें वर्तमान है। अतः
यदि हम कवि के दृष्टिकोण से देखें तो यह स्पष्ट होगा कि
उसने कभी भी अपने इष्ट देव में प्रतीकात्मकता का आरोप नहीं किया
है, और ऐसा करना उसके प्रति अन्याय और उसके मनोविज्ञान को
न समझना होगा।

काव्य की दृष्टि से इन वर्णनों को पढ़कर, उनकी विस्तृत
व्याख्या को देख कर, उनकी स्थूलता को अनुभव कर भी उन्हें प्रतीक
समझना मोह है। जहां अनुभूति की तीव्रता का व्यक्तीकरण है
वहां प्रतीक है, किंतु जहां वर्णन ही ध्येय है, प्रतीक के पीछे के
संकेत के साथ पर क्रिया के अंग-अंग का वर्णन है, वहां प्रतीक की
स्थिति संदिग्ध है; और यदि हम इस सीमा का उल्लंघन करते हैं तो
जीवन की प्रत्येक क्रिया ही प्रतीक है।

"चैतन्य एंड हिज एज" के ग्रंथकार का कहना है कि गौड़,
चंद्रिका के प्रमाणानुसार कृष्ण-राधा की लीलाओं का प्रतीकात्मक
अर्थ है और स्वयं चैतन्य ने अनेक स्थानों पर यह व्यक्त किया है।[११६]
वल्लभाचार्य ने भी इसका प्रतीकात्मक और यथार्थ दोनो ही अर्थ
स्वीकार किया है। इसके साथ ही साथ वे यह भी कहना नहीं
भूले हैं कि इस श्रृंगार वर्णन में कामवासना और अश्लीलता का अभाव
है। (सुबोधिनी, १० २६-४२)। इस कथन के पीछे दो ही
भावनाएं हैं। प्रथम सामाजिक आक्षेपों का समाधान। इन वर्णनों
की स्पष्टता, हृदयग्राहिता तथा स्थूलपन, सांप्रदायिक आचार्यों,
आलोचकों एवं अन्य लोगों को इन्हें प्रतीक रूप देने पर बाध्य करता
रहा। इस प्रतीकात्मक व्याख्या के पीछे इन आचार्यों, आलोचकों
आदि के हृदय में अपना तथा अपने संप्रदाय के भक्तों के आत्मविश्वास

---

११६ श्री दिनेश चन्द्र सेन, कलकत्ता विश्वविद्यालय १९२२, पृ १९९.

अन्य लोगों की तीव्र आलोचक
र्यकर रहा था। ये प्रतीकात्मक व्याख्याएं
क की वस्तुएं हैं। दूसरा कारण कवियों तथा
मिति की रक्षा की भावना है। यदि हम इन
नों की यथार्थता को भूल जाएं तो जिस सौंदर्य की कवियों ने
सृष्टि की है उसकी सुन्दरता, उसकी सजीवता और उष्णता
ष्ट हो जायगी। अतः हमें इन वर्णनों को उनके व्यक्त रूपों
में ही स्वीकार करना चाहिए।

———o———

# उपसंहार

[illegible] स्वरूप स्पष्ट हो गया होगा । इस अध्ययन के आधार पर हम कह सकते हैं कि धर्म में शृंगार की स्वीकृति बड़ी पुरानी है । हिन्दी भक्ति- साहित्य में यही स्वीकृति विविध रूपों में प्रस्फुटित हुई है । इस शृंगार रस की महत्ता अनेक भक्ति संप्रदायों ने मानी है । अधिकतर विद्वानों ने भक्ति - शृंगार के वियोग पक्ष को ही महत्ता दी है । किंतु प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया होगा कि भक्ति शृंगार में संभोग पक्ष उपेक्षणीय नहीं है ।

## 2 धर्म और शृंगार का संबंध

धर्म और शृंगार का सदा और घनिष्ट संबंध रहा है । इस संबंध का कुछ भी कारण रहा हो पर यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि सभ्यता के विभिन्न स्तरों में लगभग सभी देशों में यह संबंध मिलता है । इस धर्म और शृंगार के संबंध के रहस्य का अंतिम उद्घाटन अभी तक नहीं हो सका है और न ही इसकी संभावना है । धर्म के दार्शनिक और नैतिक पक्ष के विकास के साथ - साथ यह शृंगारिकता दो रूप लेती है । कहीं तो इसका प्रभाव क्षीण होता जाता है और धर्म अधिकाधिक बौद्धिक होकर कुछ ही लोगों की आत्म तुष्टि का साधन रह जाता है । ऐसी स्थिति अधिक समय तक नहीं रह पाती और उसके विरोध द्वारा शृंगार का धर्म में पुन: प्रवेश होने लगता है । इसके विपरीत कुछ धर्म शृंगार के महत्व को स्वीकार कर इसे धार्मिक मान्यता प्रदान करते हैं । इसकी स्थिति को दार्शनिक आधार प्रदान कर वे इसे एक ऊंचे धरातल पर ले जाते हैं । कभी- कभी यह उच्च स्थिति स्थायी नहीं रह पाती और शृंगार विलासिता में परिणत हो जाता है । धर्म और शृंगार का यह संबंध अत्यंत स्पष्ट रूप में हिन्दी भक्त कवियों में प्राप्त है । इस शृंगार के दो स्त्रोत हो सकते हैं । प्रथम तो यह स्वतंत्र रूप से विकसित हो सकता है और द्वितीय इसके विकास का स्त्रोत भक्ति- शास्त्र हो सकते हैं ।

### स्वतंत्र स्रोत -

हिन्दी भक्ति- शृंगार के स्वतंत्र विकास का अर्थ है कि यह शृंगार किसी निश्चित साहित्यिक

स्रोतों से प्रेरणा लेकर और उनसे प्रभावित हो विकसित हुए थे । ये विभिन्न स्रोतों निम्नलिखित

[illegible] स्वरूप

धर्म के विकास में निहित शृंगार - भावना के ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक और साहित्यिक रूप को हम पीछे देख चुके हैं । धर्म की इस शृंगार भावना को भक्ति काल के पूर्व उभार मिला । जनता का झुकाव भी धर्म के इस सहज और रोचक रूप की ओर होना स्वाभाविक ही था । अतः भक्ति-कालीन संप्रदाय इनसे प्रभावित हुए और उन्होंने न्यूनाधिक मात्रा में इस शृंगार को अंग रूप में स्वीकार किया । जिन संप्रदायों ने संपूर्ण जीवन को भक्ति से ओत: प्रोत माना है, उन्होंने उसी मात्रा में इस शृंगार का मर्यादित और संतुलित रूप लिया है । जिन संप्रदायों ने जीवन के एक पक्षीय रूप को लिया, उनमें इस शृंगार की मात्रा की अधिकता रही है । ज्ञानाश्रयी, प्रेमाश्रयी और रामाश्रयी शाखाओं में यह शृंगार सीमित और जीवन का अंग रूप बन कर रहा । कृष्णाश्रयी शाखा में महाकवि सूर में भी यह संतुलन बड़ी मात्रा में रहा । अन्य कवियों तथा अन्य संप्रदायों में यह अंग रूप न हो कर अंगी हो गया।

भक्तों के इस शृंगार की अनेकानेक व्याख्याएं दी जाती हैं । मोटे तौर पर इनके दो वर्ग किए जा सकते हैं । प्रथम वर्ग में नृशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक व्याख्याएं हैं जो कि इनमें काम का दमित रूप देखती हैं । दूसरा वर्ग धार्मिक व्याख्याओं का है जो कि इनमें काम का अभाव देखती हैं । वस्तुत: इस साहित्य में शृंगार के इतने स्पष्ट रूप को देखते हुए भी इसे नितांत लौकिक नहीं कहा जा सकता । आज समय बदल गया है, परिस्थितियां बदल गई हैं, पुरानी भावनाएं और विश्वास बदल गए हैं । अतएव आज के मापदंड उस समय के साहित्य पर पूर्णत: लागू नहीं हो सकते । जिन भक्तों ने लौकिक धरातल पर काम का दमन करने का उपदेश ही नहीं दिया किंतु अपने त्याग मय जीवन द्वारा उस पर अधिकार भी प्राप्त किया था, उन्होंने, ऐसा नहीं है कि अपनी दबी हुई काम - भावना अपने साहित्य में उड़ेल दी हो । [illegible] भक्त कवियों में से अनेक गृहस्थ थे । उनके जीवन की सच्चरित्रता बड़ी मात्रा में स्वीकृत थी । उनमें से अधिकतर ने कहीं भी स्वयं शृंगार-[illegible]

[illegible] । [illegible] के उपरांत उन्होंने इष्ट देव
[illegible] के शृंगार के रूप में, वस्तुत: में, पुन की भावना की
[illegible] विवेचन के उपरांत ही शृंगार का अत्यंत उदात्तीकरण हो
[illegible] है । यदि इस प्रकार के भक्त पर "गोपी भाव" की भावना
[illegible] में [illegible] अधिक संभावना रहती कि उनके
शृंगार में उनके काम का प्रकृत रूप है । वह एक विश्वास का युग था
जिसमें तर्क की कोई स्थिति नहीं थी । संसार की सभी वस्तुओं पर
संदेह किया जा सकता था, यहाँ तक कि अपनी स्थिति पर भी संदेह
करने पर कोई आश्चर्य नहीं करता था । किंतु जिस समय किसी संप्रदाय
में कोई भावुक व्यक्ति प्रवेश करता था उस समय उसे संप्रदाय में मान्य
इष्ट-स्वरूप और इष्ट लीला पर पूर्ण विश्वास होता था । उसकी
यथार्थता या समीचीनता पर कोई प्रश्न किया नहीं जा सकता था ।
इस महत् विश्वास के आधार पर ही इष्ट की अनन्त अलौकिक लीलाओं
का अस्तित्व है । इन लीलाओं का मनन, चिंतन, ध्यान और गायन
ही इन भक्तों की दिन चर्या हो जाती थी । उसी में अपनी प्रखर
अंतर्दृष्टि और अभूतपूर्व कल्पना शक्ति के आधार पर भक्तों ने उन
लीलाओं के जो स्वरूप देखे और शब्दों में निबद्ध किए वे आज भी
रसिकों के प्रेरणास्रोत हैं । हो सकता है कि मनोवैज्ञानिक कहें कि इसका
मूल कारण उन भक्तों की काम-भावना है पर यह निश्चित रूप से कहा
जा सकता है कि यह काम का सूक्ष्म, उदात्त रूप है जिसमें लौकिकता की
गंध नहीं । यह भी संभव हो सकता है कि कुछ व्यक्ति इन संप्रदायों
में काम - तुष्टि की भावना से घुसे हों किंतु वे नगण्य और महत्वहीन
रहे होंगे । या तो उनकी भावना का उदात्तीकरण हुआ होगा या
वे काल के गाल में इस प्रकार चले गए कि आज उन्हें कोई जानता भी
नहीं । आलोच्य भक्त-कवियों के संबंध में कोई संदेह नहीं है । उनकी
नैतिकता, त्याग और तपस्या एक प्रकार से प्रमाणित है । जिनके
जीवन में काम का कुछ संकेत मिलता भी है वह उनके भक्ति क्षेत्र में
प्रवेश के पूर्व का है । इस काम पर विजय प्राप्त कर ही वे श्रेष्ठ भक्तों
की श्रेणी में आ सके हैं । इस प्रकार उनके काम की धारा अपार्थिव
की ओर मुड़ गई और उसका उदात्तीकरण हुआ । अतएव आलोच्य
साहित्य में शृंगार के स्वरूप के आधार पर ही भक्त कवियों के
जीवन पर आक्षेप करना तथा इनके काव्य को दमित वासना कहना
ठीक नहीं ।

[illegible] रखा है । अतः इसमें उनके काव्य का [illegible] में दृष्टिगोचर नहीं है जिस रूप में अन्य भक्त कवियों में । [illegible] का लौकिक स्तर से ऊपर का है । अलौकिक कृष्ण के [illegible] प्रेम [illegible] वियोग [illegible] है । फलतः स्थूलता के स्थान पर यह सूक्ष्म और मानसिक है । संयोगानन्द के स्थान पर चिर वियोगानुभूति ने लौकिक श्रृंगार के ताप को कम कर उसे स्वच्छ और श्रेष्ठ कर दिया है ।

आलोच्य काल की धार्मिक साधनाओं में यह श्रृंगार विभिन्न मात्रा और रूपों में व्यक्त हुआ है । ज्ञानाश्रयी शाखा ने आध्यात्मिक मिलन को श्रृंगार का संयोग पक्षीय रूप दिया तथा आत्मा-परमात्मा के वियोग को ही विप्रलम्भ माना । यथार्थ में इस प्रकार से श्रृंगार को अभिव्यक्ति का माध्यम माना गया है । अपनी अनुभूतियों को दूसरों तक पहुंचाने का यही सहारा उन्हें सर्वाधिक लगा और उन्होंने उसे स्वीकार किया । इसी कारण श्रृंगारिक शब्दावली तथा रूप उनके साहित्य में उपलब्ध हैं पर श्रृंगार नहीं । प्रेमाश्रयी शाखा ने लौकिक श्रृंगार के द्वारा अलौकिक श्रृंगार के भी दर्शन कराए है यद्यपि श्रृंगार भाव को अलौकिक माना है । रामाश्रयी शाखा ने जीवन के समग्र रूप को लेने के कारण इसका मर्यादित, संतुलित तथा गार्हस्थिक रूप लिया जिसमें संभोग और वियोग के संकेत सूक्ष्म हैं । कृष्णाश्रयी शाखा के अधिकतर भक्तों ने कृष्ण कथा के एक पक्ष को ले कर उसके माध्यम से इसका अत्यधिक विस्तार किया । इनमें प्रेम के उन्मुक्त, क्रीडात्मक और अनुरंजन कारी रूप का उद्घाटन है ।

(ख) साहित्यिक परंपरा :-

हिन्दी का जन्म और विकास एक अत्यंत पुष्ट साहित्यिक परंपरा में हुआ है । वैदिक - लौकिक संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य की पीठिका पर ही हिन्दी का विशाल प्रासाद निर्मित हुआ है । उक्त साहित्यों में श्रृंगार की स्वस्थ स्वीकृत है और उसे बड़ी महत्ता प्राप्त है । वह समय ही ऐसा था कि संस्कृत भाषा और साहित्य का प्रभाव सर्वव्यापी था । उससे बचना सरल नहीं था । यही श्रृंगार प्रधान साहित्य आदर्श और समाज का कंठहार था । उसी आदर्श को भक्ति के माध्यम से प्राप्त करने का, वैसी ही सरस

[illegible] का प्रभाव भक्ति-साहित्य में भी [illegible] शृंगार की स्वीकृति है वहीं भक्ति शृंगार में भी प्रकट हुआ है । यह प्रभाव [illegible] रूप में साहित्य पर पड़ा है ।

लौकिक प्रेम भावों को आध्यात्मिक रूप देने की परंपरा [illegible] में प्राचीन से चली रही है । इस परंपरा का भी प्रभाव प्रेमाश्रयी शाखा के काव्य पर पड़ा है ।

(ग) कामशास्त्र का प्रभाव

भारतीय साहित्यों पर काम - शास्त्र का कितना प्रभाव पड़ा है इसका ठीक - ठीक अध्ययन अभी तक नहीं हुआ है । इस शास्त्र का प्रमुख ग्रंथ काम सूत्र है । अनुमान है कि इस ग्रंथ का भारतीय जन जीवन पर बड़ा प्रभाव पड़ा है । काम सूत्र, उसकी अनेक टीकाओं तथा अन्य ग्रंथों ने समाज में खुले मुक्त रूप से विचार किए जाने वाले विषयों में बना दिया होगा । जीवन में सफल होने के लिए इसका ज्ञान आवश्यक माना जाता रहा होगा । यही कारण है कि अपने इष्ट देव या नायक नायिका को सर्वगुण सम्पन्न, चरम-सफल प्रदर्शित करने के लिए तथा उनकी शृंगार - क्रियाओं को आदर्श बनाने के लिए काम शास्त्र का सहारा लिया गया होगा । कृष्णाश्रयी तथा प्रेमाश्रयी शाखा में शृंगार का जो स्वरूप प्राप्त है वह काम शास्त्र से बड़ी मात्रा में प्रभावित दिखलाई पड़ता है और ऐसा प्रतीत होता है कि उनके प्रणेता सब काम-शास्त्र से अच्छी तरह परिचित थे ।

(घ) रस-शास्त्र का प्रभाव

भक्ति काव्य के पूर्व ही साहित्य-शास्त्र में रस की महत्ता स्थापित हो चुकी थी । साहित्य-दर्पण का निर्माण हो चुका था जिसने रस को काव्य की आत्मा माना है । रसों में शृंगार रस राज है और इसी शृंगार को जब भक्त कवियों ने अपनाया तो उनका अपने आप रस की शास्त्रीय विवेचन की ओर गया और उनका [illegible] इससे प्रभावित हुआ । यह प्रभाव प्रत्यक्ष नहीं है अर्थात् [illegible] ने रस के अवयवादि को क्रमिक रूप से लेकर उसका विस्तार अपने [illegible] में नहीं किया है । दूसरे शब्दों में भक्ति - काव्य को हम [illegible]

... साहित्य ही रीति साहित्य की भूमिका है। उसी की [भू]मि पर रीति कालीन शृंगार विकसित हुआ है। रीति कवियों [को भ]क्ति कालीन साहित्य में शृंगार की सघनता, विलास की उच्छृंखलता अभिव्यक्ति की मनोहरता और समाज की स्वीकृति मिल गई थी। आलंबन - आश्रय की एकरूपता दोनों ही में है। ऐसी स्थिति में प्रश्न है कि क्या रीति साहित्य को भी भक्ति के अंतर्गत लिया जाए अथवा दोनों को ही + शृंगार का रूप माना जाए।

इस संबंध में मतभेद संभव है। शृंगार की अभिव्यक्ति तथा आश्रय-आलम्बन की एक रूपता के आधार पर दोनों ही अ साहित्य समान हैं। अतः अनेक व्यक्ति दोनों में ही भक्ति का हृदय ग्राही रूप देखने को तत्पर हैं तो अन्य लोग दोनों ही में शृंगार की सरिता प्रवाहमान दृष्टिगोचर होती है। कुछ लोग यह अन्तर रचनाओं के आधार पर न कर कवियों की जीवनी के आधार पर करते हैं। किसी संप्रदाय में दीक्षित कवि की रचनाएं सदा ही भक्ति की हैं और एक दरबारी कवि की सभी भक्ति परक रचनाओं के पीछे अन्य कारण सदा खोजा गया है। किंतु यह उचित नहीं है। मानव के बाह्य जीवन और उसकी आंतरिक भावनाओं में बड़ा अंतर हो सकता है। भक्त होने के लिए किसी संप्रदाय में दीक्षित होना और तिलक, कंठी धारण करना आवश्यक नहीं है तथा वृंदावन आदि में निवास कर, लंगोटी लगा दिन रात राधा-कृष्ण का जाप कर भी मानव की भावनाएं शृंगारमयी भ हो सकती हैं ऐसी स्थिति में संप्रदायों के आधार पर किसी साहित्य के शृंगार को भक्ति तथा दूसरे को वासना मानना अनुचित है। उपयुक्त तो यह है कि प्रत्येक पद और दोहे का अलग - अलग विश्लेषण कर उसकी शृंगारिकता को स्वीकार या अस्वीकार किया जाए। इस दृष्टि से भक्ति और रीति शृंगार का भेद उठ जाएगा। यह सब होते हुए भी यह कहना कठिन है कि समस्त भक्ति- शृंगार साहित्य को वासना मूलक मान लें या समस्त रीति साहित्य को भक्ति परक। दोनों ही पक्षों के प्रति न्याय करने की दृष्टि से हम कह सकते हैं कि भक्तों ने ईश्वर की भक्ति हृदय की शृंगारिक भावनाओं के माध्यम से की है और रीति कवियों ने हृदय की शृंगारिक भावनाओं को ईश्वर के माध्यम से व्यक्त किया है।

## परिशिष्ट

### सहायक ग्रंथ

[illegible]): Jestropp & Jake

[illegible] Orissa: A.K.Sura

[illegible] y, its [illegible] ology: Bhaktivinode

[illegible] the World: (1930) E.Verrier

[illegible] in Ancient India: B.K.G.Shastri

Chaitanya and his Age (1922) D.C.Sen

7. Chaitanya's Pilgrimage and Teaching (1913): Jadunath Sarka[illegible]

8. Collected Papers (1946): Freud

9. Critical Study of 'Rasa' in the light of Modern Psychology (1950): C.B.L.Gupta 'Rakesh'

10. The Dance of Siva (1918): A.Coomerswamy

11. Elements of Hindu Iconography (1914): T.A.Gopinath R[illegible]

12. Emotions of Men (1930) F.H.Lund

13. Encyclopaedia of Religion and Ethics: Hasting

14. The Evolution of Indian Mysticism: K.S.Ramaswami Sastri

15. Expression of the Emotion in Man and Animal (1934) (Abridged Ed.) C.Darwin

16. Feeling and Emotions (1928) M.L.Raymert

17. General Introduction to Tantra Philosophy (1922): S.N.Dasgupta

18. Hindu Medieval Sculpture: R.Burnier

19. Hindu Mysticism (1927) S.N.Dasgupta

20. Hindu Mysticism M.N.Sarkar

21. History of Indian and Indonesian Art (1927): A.Coomarswamy

22. History of Religious Architecture (1951): E.Short

23. History of Sanskrit Literature (1947): S.N.Dasgupta and S.K.De

24. A.History of Indian Philosophy S.N.Das Gupta

25. The Interpretation of Religious Experience (1912): J.Watson

26. Inscriptions of Kambuj Desh: R.C.Majumdar